बारह रुपए ❖ फरवरी २००१

साहित्य अमृत

मासिक

साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-६ अंक-७ | माघ-फाल्गुन, संवत्-२०५७ | फरवरी २००१

संपादक
विद्यानिवास मिश्र

प्रबंध संपादक
श्यामसुंदर

सहायक संपादक
कुमुद शर्मा

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन-फैक्स : ३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@indianabooks.com
वेब ठिकाना : indianabooks.com/sahityaamrit

शुल्क
एक अंक—१२ रुपए
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—१२५ रुपए
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—१५० रुपए
विदेश में
एक अंक—दो यू.एस. डॉलर (US$2)
वार्षिक—बीस यू.एस. डॉलर (US$20)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

इस अंक में

संपादकीय

'असमानस मानस चख चाहीं'

गोस्वामी तुलसीदासजी की ऊपर लिखित पंक्ति का अर्थ है—ऐसे मानस को देखने के लिए मानस की आँख चाहिए, मानस की दृष्टि चाहिए। यही बात भारत पर भी लागू होती है। भारत की अंतरात्मा को समझने के लिए भारत की दृष्टि चाहिए। बाहर के अच्छे विचारक अब यह बात समझ रहे हैं कि उन्हें अब अपना चश्मा उतार देना चाहिए और भारत की दृष्टि किन बिंदुओं को आलोकित करती है, इसे देखना चाहिए, जो वे अब तक नहीं देख पाए हैं। तभी सही समझ पैदा होगी और भारत के साथ, भारतीय विचारधारा के साथ सही संवाद स्थापित हो सकेगा। पिछले संपादकीय में संस्कृति संवाद की आवश्यकता की बात की गई थी। उसीको आगे चलाते हुए हम यहाँ उस संवाद की तैयारी की बात करेंगे। भारत की संस्कृति की जटिलता विसंगति के रूप में न देखकर संश्लिष्टता के रूप में देखें तो एक अच्छी शुरुआत होगी। पहले हम इतिहास और मिथक की अवधारणाओं को ही लें। ये दोनों अवधारणाएँ पश्चिम और भारत में अलग-अलग हैं।

इन दोनों अवधारणाओं के मूल में है इन दोनों संस्कृतियों की देशकाल संबंधी अवधारणाएँ। पहले देश को लें। देश के दो आयाम हैं—व्यापक और अनंत देश तथा व्याप्य और सीमित देश। दोनों देश हमारे ध्यान में बराबर रहते हैं और अत्यंत आसन्न देश, वह भी व्यापक अनंत देश से जोड़कर हम देखते रहते हैं। प्रत्येक क्रिया-कलाप में, अपने धार्मिक अनुष्ठान में, अपने सर्जनात्मक अनुष्ठान में हम संश्लिष्ट रूप में ही देश की बात करते हैं। देश का अर्थ है दिशा की पहचान करानेवाला। कोई व्यक्ति या पदार्थ हमसे आगे है, हमसे पीछे है; हमारे बाएँ है, हमारे दाएँ है; हमारे ऊपर है, हमारे नीचे है—ये ही दस दिशाएँ हैं। जब आदमी दस दिशाओं को देखकर बात करता है तो वह परस्पर अपेक्षा की दृष्टि से बात करता है। जो व्यक्ति हमारे बाएँ है, उसके लिए मैं दाएँ हूँ। जो व्यक्ति हमसे ऊपर है, उसके लिए मैं नीचे हूँ। आत्यंतिक या निरपेक्ष रूप से कोई दाएँ-बाएँ या ऊपर-नीचे नहीं होता। इसी प्रकार कोई देश निरपेक्ष रूप से सुख या दुःख देनेवाला नहीं होता। जिस देश का व्यक्ति रहता है उसीका ऋतुचक्र, उसीके मौसमों का फेरा, उसीके पौधे, पेड़, झाड़, ओषधियाँ, उसीकी मिट्टी, उसीके रज-कण उसके भीतर रचे-पचे होते हैं। अनुकूल होते हैं। उसके भिन्न में रहते हुए वह अपने को अनुकूल बना तो लेता है, पर कहीं-न-कहीं वह अनुभव करता है कि रम नहीं पा रहा हूँ। रमने के लिए उसे अपने देश की स्मृति का अवलंब लेना पड़ता है। यह देश ही आकाश भी है और यही दो दंत-पंक्तियों के बीच में अवकाश या अंतराल भी है। यह यदि समुचित रूप में न हो तो एक-दूसरे को देखना संभव न हो, एक-दूसरे से बात करना संभव न हो। यह आकाश भी खाली नहीं है। इसमें जाने क्या-क्या भरा हुआ है। आपसी संबंध की स्मृति भरी हुई है, एक-दूसरे के देश की स्मृति भरी हुई है। पति पत्नी से बात करता है तो पति-पत्नी के बीच दोनों के जन्म के देश भी रहते हैं, जन्म के रिश्तों के देश भी रहते हैं। उन रिश्तों को हटा करके पति-पत्नी के बीच संवाद नहीं हो सकता। हम जो मंदिर बनाते हैं वह खाली आकाश को भरने के लिए बनाते हैं। हम निराकार आकाश को आकार देने के लिए बनाते हैं। अनंतता के लिए एक सांत (अंतयुक्त) रूप देने के लिए बनाते हैं। इसीलिए हम देश के जिस बिंदु पर खड़े हैं, केवल उसकी बात नहीं करते, उसके पूरे परिवेश की बात करते हैं—और परिवेश का विस्तार पृथ्वी या सौरमंडल तक ही सीमित नहीं होता है, पूरे ब्रह्मांड तक फैला हुआ होता है। इसलिए हमारे यहाँ देश विशिष्ट भी होता है और सामान्य भी। विशिष्ट देश के अनुकूल जो भी कार्य होते हैं, उनमें सामान्य देश की स्मृति होते हुए भी क्षण भर के लिए नहीं होती। इसीलिए संकीर्ण राष्ट्रीयता हमारे स्वभाव में नहीं है; न संकीर्ण प्रांतीयता हमारे स्वभाव में है। इसी तरह खोखली सार्वभौमता भी हमारे स्वभाव में नहीं है। विशिष्ट के लिए लगाव साधारणीकरण को रंग देता है। देश की अवधारणा का यह रूप पश्चिम के देश की अवधारणा से अलग है—और इस अलग की पहचान के साथ पश्चिम भारत को समझने की कोशिश करेगा तो उसे विरोध नहीं दिखेगा। उसे दिखेगा कि छोटी-छोटी नदियों को भी गंगा का नाम दे दिया गया है। छोटी नदी में भी गंगा का अवतरण करा दिया गया है। यह भौगोलिक भ्रांति नहीं है। सीता की रसोई, सीता की नहानी,

सीतावनी एक नहीं, अनेक हैं। इसका कारण यह नहीं है कि सीताएँ अनेक हैं। इसका कारण यह है कि सीता तो एक है, पर छोटे-से-छोटे दायरे में भी उस सीता की पूरी कहानी समेटकर उसे नितांत अपना बनाने की कोशिश यहाँ अनेक हैं। इसको इस रूप में भी समझा जा सकता है कि सीता के देश को महादेश में रूपांतरित करके उसे अनेक देशों में उपस्थित बनाने की प्रतिभा इस देश के स्वभाव में है।

अब हम काल की अवधारणा पर आएँ। वह भी देश की अवधारणा की तरह ही दो स्तरों पर सक्रिय दिखाई देती है—व्यापक और निरवधि स्तर पर तथा व्याप्य और सावधि स्तर पर। हम दोनों स्तरों का निरंतर एक साथ ध्यान रखते हैं। संकल्प लेते हैं तो सृष्टि के आदि से लेकर, काल की गणना से पूर्व से लेकर, एक तरह से अ-काल की स्थिति से लेकर आज इस क्षण तक का स्मरण किया जाता है। इसका अर्थ क्या है, सिवाय इसके कि हम काल को संश्लिष्ट रूप में देखते हैं। अवधिबद्ध रूप में नहीं देखते; न उसे केवल आवर्ती रूप में देखते हैं—आवर्ती रूप में देखने का अर्थ होता है कि समय घूमकर वहीं आ गया। हमारी दृष्टि में समय घूमता तो है, पर ठीक उसी बिंदु पर नहीं लौटता। आना चाहे भी तो महाकाल की दृष्टि से या अनंतकाल की दृष्टि से वह बिंदु अपना स्थान छोड़ चुकी होती है। उस बिंदु तक ही लौटना संभव नहीं है। हम जब दोनों प्रकार के काल स्तरों को साथ जीते हैं और जीते हुए अपने सारे कार्य-कलाप करते हैं तो हम न तो इतिहास से ग्रस्त होते हैं और न विच्छिन्न क्षण की आत्यंतिकता में घुटने लगते हैं। कुछ इसको और विशद रूप में समझाएँ। जब कोई इतिहासग्रस्त होने की बात करता है तो उसका अर्थ यह होता है कि जो काल बीत चुका है उसका परिणाम हमारे ऊपर बोझ की तरह है। हम उसे उतार नहीं सकते। हमारे जो शत्रु थे, वे हमारे शत्रु बने हुए हैं। हमको जिन्होंने सताया, उनसे बदला लेने की भावना बनी हुई है। हमको जिन्होंने ऊँचा उठाया, हमारे यश का विस्तार किया, उनका सपना हमें दिखता रहता है। यह हमारी दृष्टि में शुभ नहीं है। हमारे लिए इतिहास की समझ इतनी ही मात्रा में आवश्यक है जितनी मात्रा में वह आज के आचार-विचार में संक्रांत है। सारे का सारा इतिहास हम नहीं जी सकते। जिएँ तो जीवन दूभर हो जाए। उसका कुछ अंश है, जो हम इतिहास से निकाल चुके हैं, उसे सनातन को दे चुके हैं। रघु के वंश के इतिहास को हम सनातन को दे चुके हैं और रघुपति रामचंद्र को अपने वर्तमान जीवन का अंग बना लिया है। उनकी प्राचीनता की हमें चिंता नहीं। किस-किसने हमारे देश पर आक्रमण किया—यह जानना आवश्यक हो तो भी जिसने आक्रमण किया उनके वंशज ही हमारे आक्रांता हैं, दुश्मन हैं—यह समझना हमारे स्वभाव में नहीं है। और हम समझते हैं कि जो अपने को अक्रांता मानते हैं उनको छोड़ दें। अधिकांश जन ही यह भूल चुके हैं कि हमारे पूर्वजों ने इस देश पर आक्रमण किया। इतिहास का अलग पाठ पढ़ानेवालों ने जरूर यह दोहरी मानसिकता हमारे भीतर पैदा की है। एक ओर हम स्वभाव और सनातन की चिंता करते हैं, पर दूसरी ओर हम इतिहास के जाल में फँसकर राम की जन्मतिथि और जन्म-देश के लिए अपनी अंतरात्मा को प्रमाण न मानकर पत्थर के टुकड़े की तलाश करते हैं, जिनपर राम या राम के वंशज ने कुछ लिखवाया है। यह कोई नहीं सोचता कि जो लिखवाया जाता है वह सही ही हो, यह निश्चित नहीं है। अधिकांश में वह सही नहीं होता, वह सही पर आवरण डालनेवाला ही होता है।

हाँ, वर्तमान में जीने का और वर्तमान के सनातन में जीने का अर्थ यह नहीं है कि हम जीवन के आगे जीने की अपरिहार्यता ही भूल जाएँ। क्षण तो हम बाँध नहीं सकते, बाँधते ही वह हमारे हाथ से निकल जाएगा। जिस प्रकार हमने इतिहास को इतिहास से बाहर किया है उसी प्रकार वर्तमान को वर्तमान से अतिक्रमण कराने की कला भी हमें मालूम है। संकल्प लेने का अर्थ ही यही होता है कि मैं इन परिस्थितियों में इस समय की बिंदु पर पैदा हुआ, मैं कुछ करने जा रहा हूँ जिसमें यह परिस्थिति, यह समय ही हमारे साथ रूपांतरित हो जाएँगे।

यह संतुलन रखना आसान नहीं होता। इसके नाते कुछ विडंबनाएँ जरूर पैदा होती हैं। परंतु संस्कृति के प्रवाह की यह विशेषता है कि इन विडंबनाओं को रोड़ों की तरह चूर-चूर करके रेत बना देता है। जब प्रवाह मंद पड़ता है तो यह क्षमता कम हो जाती है। यदि भीतर से कोई-न-कोई सोता फूटता है तो प्रवाह तीव्र हो जाता है। सही आँख प्रवाह को भी देखती है और उन संभावित स्रोतों को भी तलाशती रहती है।

संस्कृतियों के बीच में संवाद की बात से मैंने चर्चा शुरू की है, उसीकी भूमिका तैयार करने के लिए मैंने देशकाल की बात की है। देशकाल की इस चर्चा से ही जुड़ी चर्चा है व्यक्ति, निजता, समाज और वर्ग की पश्चिमी अवधारणाओं की चर्चा तथा दूसरी तरफ कुल, जाति, ग्राम, जनपद और लोक की भारतीय अवधारणाओं की चर्चा। इधर दोनों की अवधारणाओं में घालमेल बहुत हो रहा है। उसको ठीक-ठीक तरह से समझने के लिए यह चर्चा आगे बढ़ाएँगे। हम यह मानते हैं कि मनुष्य ही अवधारणाएँ बनाता है, उसका रूपांतरण करता रहता है। पर जब अवधारणाएँ जीवन का अंग बन जाती हैं तो वे भी मनुष्य के जीवन की नियामक या संचालक हो जाती हैं। इसलिए इनको समझना और समझकर संतुलन बनाए रखना आवश्यक हो जाता है। आगे हम इसी बिंदु पर चर्चा करेंगे। □

श्यामपुर

जगमोहन सिंह

भारतेंदु युग के उत्कृष्ट रचनाकारों में ठाकुर जगमोहन सिंह का नाम उल्लेखनीय है। कविता के क्षेत्र में कोमल अनुभूतियों के मार्मिक चित्रांकन के कारण एक प्रेम पथिक कवि के रूप में चर्चित हुए तो गद्य के क्षेत्र में उन्होंने आरंभिक हिंदी गद्य निबंधकार के रूप को एक साहित्यिक कलेवर प्रदान किया। यहाँ हम पाठकों के लिए उनकी एक दुर्लभ गद्य रचना 'श्यामपुर' प्रस्तुत कर रहे हैं।

भारतखंड में अनेक खंड हैं, पर आर्यावर्त-सा मनोहर और कोई देश नहीं। पृथ्वी के अनेक द्वीप-द्वीपांतर, एक-से-एक विचित्र, जिनका चित्र ही मन को हर लेता है, वर्तमान हैं; पर आर्यावर्त-सी पुण्यभूमि न तो आँखों देखी और न कानों सुनी। इसके उत्तर भाग की सीमा में हिमालय सा ऊँचा पर्वत, जो पृथ्वी के मानदंड के सदृश है भूगोलमात्र में ऐसा दूसरा नहीं। गंगा और यमुना-सी पावन नदी कहाँ हैं, जिनके जल साक्षात् अमृतत्व को पहुँचानेवाले हैं।

त्रिपथगा की, जो आकाश, पाताल और मर्त्यलोक को तारती है, कौन समता कर सकता है? सुर और असुरा के मुकुट-कुसुमों-सी रजराशि की परिमलवाहिनी, पितामह के कमंडलु की कर्मरूपी द्रवधारा, धरातल में सैकड़ों सगरसुतों को सुरनगर पहुँचाने की पुण्य डोरी, ऐरावत के कपोल घिसने से जिसके तट के हरिचंदन से तरुवर स्यंदन होकर सलिल को सुरभित करते हैं, गंध से अंध हुई भ्रमरमाला, छंदोविचित्ति की मालिनी अंबतमसारहित भी तमसा के सहित भगवती भागीरथी हिमालय की कन्या-सी जगत् को पवित्र करती हुई नरक से नरकियों को निकालती है, इस असार संसार की असारता को सार करती है। भगवान् मदनमथन के मौलि की मालती को सुमनमाला, हलाहलकंठवाले के काले बालों की विशाल जाला, पाला के पर्वत से निकालकर सहस्र कोसों बहती विष्णु से जगत् व्यापक सागर से मिलती रहती है, इसकी महिमा कौन कह सकता है?

यम की छोटी बहन यमुना से सख्यता करने से यमराज नगर के नरकादि बंदियों की मुक्ति कराने में कुछ प्रयास नहीं होता। प्रयागराज में यमुना की सहचरी होकर इस बात को दरशाती है। इसका समागम इस स्थल पर उनकी श्याम और सेत सारी प्रकट होता है।

इसके दक्षिण विंध्याचल-सा अचल उत्तर-दक्षिण को नापता भगवान् अगस्त्य का किंकर दंडवत् करता हुआ विराजमान है। इसके पुण्य चरणों को धोती मोती की माला की नाईं मेकलकन्या बहती है। यह पश्चिमवाहिनी जिसकी सबसे विलग गति है, अपनी बहन ताप्ती के साथ होकर विंध्य के कंदरों की दरी में तप करती सूर्य के ताप में तापित, सोतों के सदृश अपने बहुवल्लभ सागर में जा मिलती है। इसी नर्मदा के दक्षिण दंडकारण्य का एक देश दक्षिण कौशल के नाम से प्रसिद्ध है।

याही मग ह्वै कै गए दंडक बन श्रीराम।
तासों पावन देस यह विंध्याटवी ललाम॥

मैं कहाँ तक इस सुंदर देश का वर्णन करूँ? कहीं-कहीं कोमल श्याम, कहीं भयंकर और सूखे-सूखे वन, कहीं झरनों का झंकार, कहीं तीर्थ के आकार मनोहर-मनोहर दिखाते हैं। कहीं कोई बनैला जंतु प्रचंड स्वर से बोलता है, कहीं कोई मौन ही होकर डोलता है। कहीं विहंगमों का रोर, कहीं निष्कूजित कुंजों के छोर, कहीं नाचते हुए मोर, कहीं विचित्र तमचोर, कहीं स्वेच्छाहार विहार करके सोते हुए अजगर, जिनका गंभीर घोष कंदरों में प्रतिध्वनित हो रहा है, कहीं भुजंगों की स्वास से अग्नि की ज्वाला प्रदीप्त होती है, कहीं बड़े-बड़े भारी भीम भयानक

अजगर सूर्य की किरणों में घाम लेते हैं, जिनके प्यासे मुखों पर झरनों के कनूके पड़ते हैं, शोभित हैं।

जहाँ की निर्झरनी, जिनके तीर वानीर के भिरे मदकल-कूजित विहंगमों में शोभित हैं, जिनके मूल से स्वच्छ और शीतल जलधारा बहती है और जिनके किनारे के श्याम जंबू के निकुंज फल-भार से नमित जनाते हैं, शब्दायमान होकर झरती हैं।

ये बेचारे सीधे-साधे बुड्ढे जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर पुआल बिछा-बिछा के अपने परिजनों के साथ युवती और वृद्धा, बालक और बालिका, युवा और वृद्ध—सबके सब बैठ, कथा कह दिन बिताते हैं। कोई पढ़ा-लिखा पुरुष रामायण और ब्रजविलास की पोथी बाँचकर टेढ़ा-मेढ़ा अर्थ…

जहाँ के गिरि विवर कुहिरे के तिमिर से छाए हैं। इसमें से भालुनी थुत्कार करतीं निकलकर पुष्पों की टट्टियों के बीच प्रतिदिन विचरती दिखाई देती हैं। जहाँ के शल्लकी वृक्षों की छाल में हाथी अपना बदन रगड़-रगड़ खुजली मिटाते हैं और उनमें से निकला क्षीर सब वन के शीतल समीर को सुरभित करता है।

ये वही गिरि हैं, जहाँ मत्त मयूरों का जूथ बरूथ का बरूथ होकर वन को अपनी कुहुक से प्रसन्न करता है। ये वही वन की स्थली हैं, जहाँ मत्त हरिण हरिणियों समेत बिचरते हैं।

मंजु बंजुल की लता और नील निचुल के निकुंज, जिनके पत्ते ऐसे सघन कि सूर्य की किरणों को भी नहीं निकलने देते, इस नदी के तट पर शोभित हैं। कुंज में तम का पुंजित है, जिससे श्याम तमाल की शाखा निंब के पीत पत्रों से मिली है। रसाल का वृक्ष अपने विशाल हाथों को पिप्पल के चंचल प्रवासों से मिलाता है। कोई लता जबू से लिपटकर अपनी लहराती हुई डार को सबसे ऊपर निकालती है। अशोक के ललित पुष्पमय स्तवक झूमते हैं। माधवी तुषार के सदृश पत्रों को दिखलाती हैं और अनेक वृक्ष अपनी पुष्पनमित डारों से पुष्प की वृष्टि करते हैं। पवन सुगंध के भार से मंद-मंद चलती है, केवल निर्झर का रव सुनाई पड़ता है। कभी-कभी कोइल का बोल दूर से सुनाता है और कलरव निकट स्थित वृक्ष से सुनाई पड़ता है। ऐसे दंडकारण्य के प्रदेश में भगवती चित्रोत्पला, जो नीलोत्पलों की झाड़ी और मनोहर पहाड़ी के बीच होकर बहती है, कंकगृद्ध नामक पर्वत से निकल अनेक-अनेक दुर्गम, विषम और असम भूमि के ऊपर से बहुत से तीर्थ और नगरों को अपने पुण्यजल से पावन करती पूर्व समुद्र में गिरती है।

इस नदी के तीर अनेक जंगली गाँव बसे हैं। वहाँ के निवासी वन्य पशुओं की भाँति आचरण करने में कुछ कम नहीं हैं; पर मेरा ग्राम इन सभों से उत्कृष्ट और शिष्टजनों से पूरित है। इसके नाम ही को सुनकर तुम जानोगे कि वह कैसा ग्राम है। इस पावन अभिराम ग्राम का नाम श्यामपुर है। यहाँ के आम आराम थकित पवित्र यात्रियों को विश्राम और आराम देते हैं। यहाँ क्षीरसागर के भगवान् नारायण का मंदिर सुखकंद इसी गंगा के तट पर विराजमान है। राम, लक्ष्मण और जानकी की मूरतें सजीव सूरतें-सी झलकती हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो अभी उठती-बैठती हों। मंदिर के चारों ओर गौर उपल की छरदिवाली दिवाली की शोभा को लजाती है। मंदिर तो ऐसा जान पड़ता है मानो प्रालेय-पर्वत का कंदर हो। भगवान् रामचंद्र के सम्मुख गरुड़ की सुंदर मूर्ति कर कमल जोड़े सेवा की तत्परता सुझाती है। सोने का घंटा सोने की ही साँकर में लटका धर्म के अटका सा झूलता दीन-दु:खी दर्शनियों के खटका को मटकाता है। भटका-झटका भी कोई यद्यपि किसी दु:ख का झटका खाए ही यहाँ आकर विराम पाता है और मनोरंजन दु:खभंजन खंजन गंजन विलोल-विलोचनी जनकदुलारी के कृपा-कटाक्ष को देखते ही सब दु:ख-दारिद्र्य छुटाता है।

देवालयों की अवली नदी के तीर में नीर पर परछाईं फेंकती है। ऐसा जान पड़ता है कि जितने ऊँचे कँगूरों से वह अंबर को छूती है, उसी भाँति पाताल की गहराई भी नापती है। जहाँ विचित्र पाठशाला, बाला और बालक-पाठशाला, न्यायाधीश और प्रबंधकों के आगार बनियों का व्यापार, जिनके द्वारे फूलों के हार टँगे हैं, जहाँ के राजपथों पर व्यापारियों की भीर सदैव गंभीर सागर-सी बनी रहती है, चित्त पर ऐसा असर करती है, जो लिखने के बाहर है।

पुरानी टूटी-फूटी दीवालें इस ग्राम की प्राचीनता की साक्षी हैं। ग्राम सीमांत के झाड़, जहाँ झुंड कौए और बगुले बसेरा लेते हैं, गँवई की शोभा बताते हैं। पौ फटते और गोधूली के समय गैयों के खिरके की शोभा, जिनके खुरों से उड़ी धूल ऐसी गलियों में छा जाती है मानो कुहिरा गिरता हो।

यहाँ कोविद भरथरी, गोपीचंद, भोज, विक्रम (जिसे विक्रमाजीत कहते हैं), लोरिक और चंदैनी, मीराबाई, आल्हा, ढोलामारू, हरदौल इत्यादि की कथा के रंजित हैं। ये बेचारे सीधे-साधे बुड्ढे जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर पुआल बिछा-बिछा के अपने परिजनों के साथ युवती और वृद्धा, बालक और बालिका, युवा और वृद्ध—सबके सब बैठ, कथा कह दिन बिताते हैं। कोई पढ़ा-लिखा पुरुष रामायण और ब्रजविलास की पोथी बाँचकर टेढ़ा-मेढ़ा अर्थ कह सबमें चतुर बन जाता है। ठीक है—'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते'। कोई लड़ाई का हाल कहते-कहते बेहाल हो जाता है, कोई किसी प्रेम कहानी को सुन किसीकी प्रबल विरह वेदना को अनुभव कर आँसू भर लेता है। कोई इन्हें मूर्ख ही समझकर हँस देता है। यह भोली कविता भी कैसी होती है। अनुप्रास भी इन ग्रामीणों को सुखद होता है। धानों के खेत, जो गरीबों के धन हैं, इस ग्राम की शोभा बढ़ाते हैं। मेरा इसी ग्राम का जन्म है। □

कहानी

रहे बनारस, बना बनारस

✍ अजय मिश्र

जन्म : १२ नवंबर, १९४८ को काशी के एक संस्कृतज्ञ परिवार में।
शिक्षा : काशी हिंदू विश्वविद्यालय से स्नातक।
कृतित्व : प्राय: तीन दशक की हिंदी-अंग्रेजी पत्रकारिता के बाद साहित्य लेखन की ओर मुड़े। बनारस के पक्के महालों पर लिखे उपन्यास से, जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में।
संप्रति : धनबाद में कालक्षेप करते हुए बनारस और धनबाद पर दो उपन्यासों का लेखन। प्राय: साथ-साथ।

तिवारीजी की मृत्यु हुई तो मृत्युलोक उनसे छूट गया। वे मोह-माया से मुक्त हो गए— अपनी पत्नी से, जो तिवारीजी को किसी काम का नहीं मानती थी; दो पुत्रों से, जिन्हें तिवारीजी नालायक मानते थे; पड़ोसियों से, जो तिवारीजी की महानता के बोझ तले दबे रहते थे। अब सब खुलकर चैन की साँस लेंगे। स्वयं तिवारीजी भी; क्योंकि उन्होंने सुन रखा है कि स्वर्गलोक में भोजन-पानी का टंटा नहीं होता। चिंता तिवारीजी को केवल भाँग-बूटी की थी। मृत्युलोक की तरह वहाँ भी यदि सोमरस एवं विभिन्न प्रकार के आसवों का प्रचार-प्रसार अधिक हुआ तो वे विजया कहाँ पाएँगे। भोले बाबा तो अपने कोटे में से कुछ देने से रहे। एक ही बात उन्हें निश्चिंत कर रही थी। इतने वर्षों में शिवजी का आश्रम भी मृत्युलोक की उस परंपरा से अछूता न बचा होगा, जिसके अनुसार परिवार के कर्ता को सठियाया सिद्ध कर पत्नी और पुत्र उसे हरि-भजन की ओर प्रवृत्त कर चिंता-निवृत्त हो जाते हैं।

ऐसा हुआ तो अवश्य ही कार्तिकेय और गणेश पिता की भाँग न पीसते होंगे। पार्वती भी सोलह सिंगार कर देव-पत्नियों से स्वर्ग के नूतन समाचार प्राप्त करने नंदी पर बैठ निकल जाती होंगी। तिवारीजी को विश्वास है कि वे भाँग छानने, घोटने की अपनी अद्‌भुत प्रतिभा के बूते औघड़दानी के उन भृत्यों की टोली में अपनी जगह बना लेंगे, जिन्हें महादेव के बुलाने पर 'आकाशवाणी' के कार्यक्रम छोड़कर जाने में भीषण मानसिक संताप होता होगा। हजारों साल बीतने पर भी देवलोक की आकाशवाणी श्राप और वरदान से विमुख नहीं हुई है। इसके विपरीत मृत्युलोक की आकाशवाणी अपने बहुविध रोचक कार्यक्रमों से सुरलोक पर छाई हुई है। यहाँ तक कि शंकर के त्रिशूल में भी ट्रांजिस्टर नामक वाद्ययंत्र लटका हुआ है, जिससे नि:सृत ता धिन-धिन ता की सुमधुर ध्वनि पर महादेव दाहिनी हथेली से जाँघ पर थाप देते हुए मुंडी हिलाते रहते हैं।

आकाशवाणी के कारण देवलोक में चहुँओर अवज्ञा और अनुशासनहीनता का वातावरण बन गया है। आदेश-पालन में क्रमशः ढिलाई आ रही है। अवज्ञा हर स्तर पर उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इससे देवगण बहुत परेशान हैं। देव-जीवन में व्यतिक्रम आ गया है। अब सास बुलाती रहती हैं, पर बहुएँ मटिया देती हैं। कुछ कहा तो चट जवाब पकड़ा देती हैं, 'तुम्हारी चटोरी रसना को परितृप्त करने के लिए हमें दोपहर की नींद खराब कर आकाशवाणी से व्यंजन बनाने की विधियाँ सीखनी होती हैं, जिसकी वजह से अन्य कामों के लिए समय

का टोटा बना रहता है।'

उस शाम पार्वती ने इंद्र-पत्नी शची के यहाँ आकर पानी माँगा और शिरोवेदना-हरण-वटी के बारे में पूछा तो कार्तिकेय की पत्नी ने चिढ़कर कहा, 'दिन भर नंदी पर बैठ देवलोक में डाँव-डाँव हाँड़ने से सिर नहीं दुखा। आज भोजन बनाने की बारी है तो सिरदर्द का बहाना परोस दिया। अवश्य ही आपकी इन्हीं हरकतों से तंग आ ससुरजी ने विषपान कर आत्महत्या की कोशिश की होगी।'

पार्वती रूठकर मायके चली गईं। दिशा-शूल का भी विचार न किया। उस रात महादेव को रबड़ी-मलाई मात्र से संतोष करना पड़ा। बहुओं ने कहा, 'जब सास को अपने पति की परवाह नहीं, तब हम क्यों चिंता में दुबली हों!' रसोई जल्दी समेट वे याज्ञवल्क्य के आश्रम में चली गईं, जहाँ 'सास को सताने के सौ तरीके' पर उन दिनों गार्गी का प्रवचन चल रहा था।

कपिल, कण्व, कणाद आदि ऋषि तो पहले से ही हाथ पसारे घूमते रहते थे। वसिष्ठ, गालव, जमदग्नि आदि ऋषियों के आश्रमों का भी आजकल यत्किंचित् गुरुदक्षिणा मिलने से निबाह नहीं हो पा रहा है। आकाशवाणी के कारण उनके गुरुकुलों में सन्नाटा छाया हुआ है। एकाधिक शृगाल धूप सेंकते दिखाई देते हैं। देवताओं के पुत्र शस्त्र और शास्त्र सीखने के बजाय काम-शर-संधान कला में निपुणता हासिल करने के लिए कामदेव के मन्मथपुर नामक आश्रम में पंक्तिबद्ध हो रहे हैं। शिष्यों की अभूतपूर्व रुचि तथा दिनानुदिन बढ़ती अपार संख्या को देख प्रमुदित कामदेव ने मृत्युलोक की तर्ज पर कतिपय घटाक-पटाक (त्वरित = शॉर्टकट) विधियों का भी आविष्कार किया है। उनके उपवन में रसाल व तमाल वृक्ष के

नीचे, मेहँदी की झाड़ियों के पीछे किशोर-किशोरियाँ भाँति-भाँति के भ्रू-भंग संचालन तथा हाव-भाव प्रदर्शन का अभ्यास कर रहे हैं। बालाएँ अशोक वृक्ष पर पदाघात कर रही हैं। एक ओर मौलसिरी के पुष्पों से जूड़ा बनाने की विधि सिखाई जा रही है। रति-आसनों की सिद्धि यहाँ वर्जित होने पर भी आकाशवाणी के सुमधुर गानों पर किया कटि-संचालन तथा देह-संचालन तृप्ति दे रहा है।

आकाशवाणी ने बहुतों का भला किया है। बढ़ती उम्र के कारण पद-संचालन में सफाई न होने से रंभा, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका एवं घृताची आदि को इंद्र के दरबार से नारियल-सुपारी मिलना प्रायः तय था। किंतु अब हर रोज मृत्युलोक की आकाशवाणी से नए-नए गाने सहज-सुलभ हैं। कटि-संचालन का अनुभव तो उनके पास है ही। यह भी ज्ञात है कि नृत्य के दौरान देह से आँचल सरकने पर देवराज इंद्र किन नृत्य मुद्राओं पर विशेष ध्यान देते हैं। अपने अनुभव और सामान्य ज्ञान का छौंक लगा वे प्रतिस्पर्धा में खड़ी नई नर्तकियों की छुट्टी कर देती हैं। इंद्र की नकेल अब तक इनके हाथ में है। दरबार में इनका सिक्का खड़ा है।

तिवारीजी के कारण ऊपर एक विवाद खड़ा हो गया है। चित्रगुप्त के बही-खातों के अनुसार तिवारीजी का उचित स्थान नरक में है। नरक के द्वारपाल तिवारीजी की प्रतीक्षा में द्वार खोलकर खड़े हैं। यमराज के दूतों ने तिवारीजी को चित्रगुप्त की कुटिया में पटका तो वहाँ पहले से ही नरक के भटों एवं प्रतिहारियों को मूँछ पर हाथ फेरते उपस्थित पाया। नरक से आए भृत्य तिवारीजी की टाँग और कान खींचते हुए उन्हें नरक में ले जाने के लिए उत्सुक थे। प्रसन्नतापूर्वक तिवारीजी के घुटे हुए सिर पर वे सब बारी-बारी से हाथ फेर रहे थे, उनकी लंबी चोटी से छेड़छाड़ कर रहे थे। कौतुकपूर्वक पूछ रहे थे कि 'अपनी वीणा कहाँ छोड़ आए?' भृत्य प्रसन्न थे कि मृत्युलोक से आए इस प्राणी पर उन्हें सवारी का मौका मिलेगा। वैसे तो प्रतिदिन हजारों व्यक्ति नरक में आते हैं; किंतु तिवारीजी काशी से आए थे जिसके निवासियों पर, शंकर के त्रिशूल पर टिके होने के कारण, नरक-सेवकों का बस नहीं चलता था। यदि कभी काशी-लाभ किए व्यक्ति को पकड़ना भी चाहा तो दुष्ट नंदी हुंकारकर हुरपेट देता था। सीधे स्वर्ग का टिकट कटानेवाले काशीवासियों से वे परेशान थे। आज सहस्रों वर्षों का यह नियम टूटता नजर आ रहा था। किसी काशीवासी से चरण दबवाने, देह पर तेल मालिश करवाने और सिर में चंपी करवाने की सहस्रों वर्ष पुरानी अदम्य लालसा प्रतिहारियों के मन में खुशी की लहर बन हिलोर ले रही थी। वे तिवारीजी के सुपुष्ट, सुचिक्कण गात्र को ठहोका लगा, अँगुलियों से कोंच-कोंचकर देख रहे थे। वे तिवारीजी की शक्ति का अनुमान लगा रहे थे कि मृत्युलोक से आया यह प्राणी बिना थके कितने कल्प वर्ष तक मालिश कर सकता है। तिवारीजी की तुंबाकार देह से प्रोत्साहित हो मालिश करवाने के लिए लालायित एक भृत्य ने तिवारीजी के कंधे पर धरे अँगोछे को अपना व्याघ्र-चर्म उतार कमर में बाँध भी लिया था।
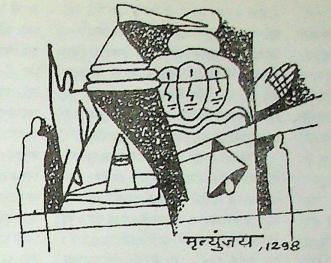
तिवारीजी को अपने ब्राह्मणत्व और अपने ब्रह्म ज्ञान के साथ-साथ खुद के बनारसी होने का पूरा भरोसा था। उन्हें विश्वास था कि बचपन में घोखे गए 'अमरकोश' तथा 'लघु-सिद्धांत कौमुदी' के सैद्धांतिक ज्ञान तथा युवावस्था से मृत्युपर्यंत बनारस की गलियों से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान के बूते वे चित्रगुप्त को शास्त्रार्थ में चित कर धूल चटा देंगे। फिलहाल तो उन्हें भूख लग रही थी। तिवारीजी भूख से अकुला रहे थे। शाम भाँग-बूटी छान, पार एक निछद्दम स्थान में हलके होने के बाद जैसे ही तिवारीजी ने नाक पकड़ गंगा में गोता लगाया, उनके प्राण निकल गए। उनके साथियों—झुन्नू गुरू, निक्कड़ ओस्ताद, बछ्छू मल्लाह और 'गरुडपुराण' के आधिकारिक विद्वान् रानी पंडित—में से किसीने उनपर ध्यान न दिया। तिवारीजी का शरीर एक बार पानी से बाहर आया और धीरे-धीरे बहने लगा। तब भी किसीने गंभीरता से न लिया। उलटा मजाक ही किया, 'कऽ हो तिवारीजी! कउनो जोग विद्या सीखत हउत का, हमहन के झाँसा देवे बदे?' निक्कड़ ओस्ताद ने पूछा।

पर तिवारीजी थे कहाँ जवाब देने के लिए। उनकी आत्मा जा चुकी थी और शरीर बहा चला जा रहा था नाक पकड़े। कुछ दूर एक मुरदा उतरा रहा था। तिवारीजी का शरीर भी बहते हुए उधर ही जा रहा था। रानी पंडित ने, जो उस समय अपनी देह पर मिट्टी पोत रहे थे, मिचमिचाई आँखों से तिवारीजी की ओर देखा और कहा, 'जाए दऽ। बहुतै दोखी हौ। आपन तैल कब्बौं नाहीं लियावलऽ। आज सरऊ के सूँघे बदे मिल जाय तऽ बहुत हौ।'

झुन्नू गुरू ने टिप्पणी की, 'दोखी हौ तब न जात हौ तोहार जजमान फोड़े।'

तब तक बछ्छू को कुछ खुटका हुआ; क्योंकि तिवारीजी का शरीर उस समय तक मुरदे को एक टक्कर दे चुका था और मुरदे के शरीर पर पड़ा कफन तिवारीजी के गले में कुछ इस तरह लिपट गया कि दोनों शरीर साथ-साथ सहोदर की तरह बहने लगे। मुरदे का कफन सहारा बन तिवारीजी के शरीर को पानी के अंदर जाने से बचाए हुए था। बछ्छू मल्लाह ने यह देखा तो तेल की कुप्पी, जिसमें अभी दस

पैसे का तेल था, रेती की तरफ उछाल लंबे हाथ मारता लपका तिवारीजी की ओर। उस समय बछू का दिमाग तेजी से सोच रहा था कि 'स्वारथ लागि करै सब प्रीती' में विश्वास करनेवाले तिवारीजी का मुरदे से क्या स्वार्थ हो सकता है कि प्रीति के आकांक्षी हों। तिवारीजी के सभी रिश्तेदारों को बछू पहचानता है। उनमें से किसीकी हाल-फिलहाल मृत्यु नहीं हुई है कि तिवारीजी मुरदे के पास हाल-चाल पूछने चले जाएँ। अवश्य ही कुछ-न-कुछ गड़बड़ है। जब तक बछू इस निष्कर्ष पर आते हुए मुरदे के पास पहुँचता, तिवारीजी का शरीर तो क्या, सिर भी पानी में डूब चुका था। सिर्फ खुली शिखा पानी में लहरा रही थी, जिसकी गाँठ अवश्य ही तिवारीजी ने गोता लगाने से पूर्व खोली होगी।

बछू ने हाथ बढ़ा तिवारीजी की चोटी पकड़ी। तिवारीजी जन्म भर लंबी चोटी के कारण मित्रों के बीच उपहास का कारण बनते आए थे। उसी चोटी ने आज तिवारीजी की देह-रक्षा की; प्राण तो कब के शरीर छोड़कर जा चुके थे। बछू को चोटी रखने का एक और फायदा मालूम हुआ, जिसके बारे में वह कल ही सबको बताएगा। फिलहाल उसके मन में एक अद्‌भुत विचार कौंध रहा था, 'क्या ऐसा नहीं हो सकता कि गंगा में नहानेवाले हर व्यक्ति के लिए लंबी चोटी अनिवार्य कर दी जाए?'

तिवारीजी की असामयिक परलोक यात्रा से मित्रों के बहरी अलंग कार्यक्रम में खलल पड़ गया। साथ लाई खाद्य सामग्री, यानी रबड़ी-मलाई एक कुत्ते को चटा देनी पड़ी। किंतु उनके मित्रों में कोई भी छोटे दिल का न था कि बुरा मानता। उलटा रानी पंडित ने टिप्पणी की, 'जाए दऽ; जातै-बिरादरी में गयल।'

'तिवारीजी बहुत पुण्यात्मा थे। तभी तो गंगास्नान करते समय उनकी मृत्यु हुई। ऐसा भाग्य आज तक किसे मिला है! वे अवश्य ही सीधे स्वर्ग गए होंगे।' निक्कड़ ओस्ताद ने मानो अन्य साथियों को भी गंगास्नान के दौरान देह छोड़ने के लिए प्रेरित किया हो।

उनके पंडित मित्र झुन्नू गुरू, जिनके बारे में सारा बनारस जानता है कि वे भाँग पीते नहीं बल्कि खाते हैं, ने कहा, 'योगश्चित्तनिवृत्ति—पतंजलि कह गए हैं। अवश्य ही तिवारीजी चित्त एकाग्र करने के लिए नाक पकड़ योग-साधना कर रहे थे।' भाँग के नशे में झुन्नू गुरू का रिकॉर्ड इस वाक्य पर अटक गया था, जिसे वे श्रद्धापूर्वक हर दस मिनट बाद दुहरा देते।

तिवारीजी की मृत्यु का समाचार मुहल्ले में अपने आप बिना किसी यत्न के फैल गया था। इससे उनकी अद्‌भुत लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। कुछ लोगों के अनुसार दो ही तरह के व्यक्ति प्रसिद्ध होते हैं। एक वे, जो दूसरों को धन देते हैं, यानी सूदखोर और दूसरे वे, जो लोगों से धन लेते हैं। तिवारीजी अवश्य ही दूसरी कोटि में आते थे। उनको दिवंगत हुआ जान कुछ मित्र उन्हें घाट तक ले जाने के लिए बहुत लालायित थे। इसलिए नहीं कि वे 'राजद्वारे श्मशाने च य तिष्ठति सबान्धव:' पर यकीन करते थे बल्कि इन मित्रों को चमत्कारों पर बहुत विश्वास था। मुरदे के पुनर्जीवित होने की कई घटनाएँ उन्होंने सुन रखी थीं। उन्हें तिवारीजी पर खासा भरोसा था। मृत्यु के बाद भी तिवारीजी अनेक तरह के चमत्कार में सक्षम हैं, ऐसा मित्रों का मानना था। किंतु मित्र ऐसे किसी चमत्कार का साक्षी नहीं बनना चाहते थे। इसलिए इन मित्रों ने अत्यंत उत्साहपूर्वक तिवारीजी के शरीर को मूँज की रस्सियों से बाँस की टिखटी में मजबूती से जकड़ा। इतना करने के बाद रात्रि भोजन की परवाह न कर 'राम नाम सत्य है' के सनातन उद्‌घोष के साथ बनारस की पतली गलियों से गुजार तिवारीजी के शरीर को मणिकर्णिका पहुँचा दिया। कुछ खास मित्र, जो तिवारीजी को नजदीक से जानते थे, न आए, 'जाए दऽ। पीछा छूटल। बहुतै खल रहल।'

तिवारीजी की आत्मा यह सब देख रही थी। अपने छोटे पुत्र को भी, जो उनके जनेऊ से ताली निकाल आलमारी में रखे माल-मता और उनकी पिछले तीस वर्षों की संचित कमाई—छोटी-छोटी पुड़ियों में लपेटकर रखी स्वर्ण अँगूठियों—पर काबिज हुआ और सब सामान अपनी सुमुखि को सौंप दिया। इतना करने के बाद गले से लिपट रोने के बहाने उसने एक बार फिर ताली सफाई से जनेऊ में डाल दी। बाद में जब बड़े पुत्र ने अपनी माँ के सामने आलमारी खोली तो उसमें कुछ विशेष न पा उसे अपनी माँ के इस कथन पर पूर्ण विश्वास हो गया कि पिता के रूप में तिवारीजी ने अपने कर्तव्य-पालन में कोताही की। पिता के निकम्मेपन से उत्पन्न बड़े पुत्र की बड़बड़ाहट कपाल क्रिया तक बनी रही। तिवारीजी की पत्नी सांसारिक यानी व्यावहारिक साबित हुई। उसने रोते हुए, आँख पर धोती का छोर रखते हुए, मानो शर्म से आँख न मिला पा रही हो, पड़ोसिनों को अलग-अलग एकांत में ले जा कुछ से नकद झटक लिया और कुछ से 'कुछ न होने' का रोना रो घर में राशन भरवा लिया।

इस आपाधापी में तिवारीजी के मित्र व पड़ोसी विस्मृति का शिकार बन चुके थे। तिवारीजी के प्रति उनका समस्त दुर्भाव तिरोहित हो चुका था। अपने सदय आचरण से वे मित्र-धर्म का यथोचित निर्वाह करते हुए तिवारीजी के तमाम दुर्गुण तथा उन्हें दिया उधार भूल चुके थे। संकट की वेला में वे लोग भी शोक की प्रतिमूर्ति बने तिवारीजी को शीघ्रातिशीघ्र चिता पर चढ़ाने के लिए व्याकुल थे, जो तिवारीजी के जीवन काल में उनसे बिदकते रहे और जिन्हें तिवारीजी अनेक-अनेक कारणों से अन्यथा सिद्ध मानते थे।

उस समय, यानी जब तिवारीजी के शरीर को एक ही दिन में तीसरी बार गंगास्नान का पुण्य प्राप्त हो रहा था, तिवारीजी के मित्रों को तिवारीजी सरीखे निस्पृही, वीतरागी और मित्रानुरागी की दूसरी मिसाल खोजे नहीं मिल रही थी। अपने स्वजन एवं मित्रों को मणिकर्णिका पहुँचाने में दक्ष व्यक्ति जानते हैं कि मुरदे के गंगास्नान और चिता-दाह के बीच का समय कितना महत्त्वपूर्ण होता है। शव-भार से दुखते कंधों को मलने का यही समय होता है। थके शरीर को विश्राम देने का, सूखे गले को पानी से तर करने का तथा मृतात्मा के विलुप्त गुणों की खोज का भी सही-सही समय होता है।

तिवारीजी की आत्मा यह सब देख रही थी, सुन रही थी। पहली बार तिवारीजी को ज्ञान हुआ कि शास्त्रों में लिखा यह कथन भ्रांत है कि देह त्यागने के बाद आत्मा तत्काल दूसरे चोले की खोज में निकल जाती है। मरने के बाद तिवारीजी को दिव्य ज्ञान हुआ कि जब तक कपालक्रिया नहीं हो जाती, आत्मा को देह की पहरेदारी करनी होती है। मित्रों की सारी बतकही, सारी लकड़घोंघों को तिवारीजी की आत्मा मँडराते हुए सुन रही थी। खुश हो रही थी कि मित्रों ने ऐसे-ऐसे गुणों की खोज कर ली है, जिनके बारे में स्वयं तिवारीजी को भी ज्ञान न था।

जिस समय तिवारीजी के मित्र उनके देह-भार से मुक्त हो यानी टिखटी को कंधे से उतार, चितास्थल पर रख तिवारीजी की स्वस्थ और सुपुष्ट काया के अंतिम दर्शन तथा उसे वैसी बनाए रखने के निमित्त तिवारीजी द्वारा किए गए यत्नों का पुनरावलोकन कर रहे थे, डोम तिवारीजी के उस सुंदर शरीर को भस्मीभूत करने के लिए चिता सजा रहा था।

'बहुतै पंडिताई छाँटत रहलन। अब देखऽ कैसन गती करीहलऽ।' डोम ने तिवारीजी के शरीर की ओर देख सोचा। 'जिन्नगी भर हमहने के दुरदुरावलैं बाकी मुअले पे आवेंलैं सब घाटे पर।' लकड़ियाँ चुनता, सरियाता डोम सोच रहा था।

तिवारीजी जीवन भर डोम से चार हाथ की दूरी रख सनातन धर्म का यथाशक्ति निर्वाह करते रहे। वे यह जानते थे कि 'एकोऽहं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।' ब्रह्म के बारे में उनकी स्थापना बहुत स्पष्ट थी—अहं ब्रह्मास्मि। इस कारण तिवारीजी न किसीसे डरते थे, न दबते थे। वे शिखा फटकार खरी-खोटी कहने में यकीन करते थे। इस मामले में उनका ब्रह्म-तेज दुर्वासा या परशुराम से कम न था। तिवारीजी का आदर्श था—'पद्मपत्रमिवांभसा'—जल में रहनेवाले कमल की तरह वे भी अपने मुहल्ले के उन व्यक्तियों से असंपृक्त तथा निर्लिप्त रहते थे जिन्हें वे अपनी कृपा के योग्य नहीं मानते थे। इसलिए यह जानते हुए भी कि सभी प्राणियों में एक ही आत्मा का वास है—'सर्वं ब्रह्ममयं जगत्', तिवारीजी इतने समदर्शी न हो सके थे कि मात्र एक मुहल्ले में रहने के कारण वे स्वयं को डोम के बराबर या उसे अपने समकक्ष मान लें। अपनी 'देहोच्छेदो मोक्षः'—चोला छूटा, मोक्ष मिला अवधारणा के कारण तिवारीजी गोस्वामी तुलसीदास के अनन्य भक्त थे, जो शूद्रों और स्त्रियों को ताड़ना का अधिकारी बता गए हैं।

अपनी इस भक्ति-भावना के कारण तिवारीजी को जब-तब दुष्ट मित्रों के मजाक का शिकार बनना पड़ता था। उनके मित्र तुलसीदास के आराध्य को ले उन्हें चिढ़ाया करते कि दो-दो पटरानियाँ होते हुए भी तीसरी शादी करनेवाले जरा-जर्जर दशरथ की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। घट में भरे जाते पानी और तृषा बुझाते हरिण में अंतर न कर सके। बेचारे श्रवणकुमार को अनायास ही बेध दिया। फिर नकली श्रवणकुमार बन अंधे पिता को फुसलाने पहुँचे। अंधे पिता के श्राप से भी बुद्धि ठिकाने न आई। वृद्धस्य तरुणी भार्या कैकेयी—को नियमों की अवहेलना कर—अपने साथ रथ पर बैठा युद्धक्षेत्र में ले गए। तरुणी पत्नी के प्रेम में पगे होने से इतनी बुद्धि भी शेष न थी कि युद्ध में जाने से पहले रथ का ठीक से निरीक्षण तो कर लें। अंततः वही हुआ जो नहीं होना चाहिए था। कैकेयी ने प्रलयंकरी स्त्री बुद्धि का परिचय दे टूटे रथ-चक्र में अँगुली लगाने के बदले बूढ़े पति को अँगूठा दिखा सौतेले पुत्र राम को वनवास भिजवा दिया। पत्नीभक्त स्त्रैण दशरथ 'हा-हा' कर रह गए।

जैसी भ्रष्ट बुद्धि पिता की थी वैसी ही पुत्र की भी। होती भी क्यों न! निषाद, केवट, भील, भालू, गिद्ध, किरात और कपि का साथ तथा असुरों का संसर्ग जो मिला राम को। स्वर्ण-मृग के लालच में दौड़ गए। यह भी न सोचा कि ऐसा मृग कहीं हुआ है आज तक! बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हुई कि गर्भवती पत्नी सीता को एक धोबी के कहने से त्याग दिया।

तिवारीजी मित्रों की बात का बुरा न मानते। 'जाकी रही भावना जैसी' कह वे मित्रों के मजाक की उपेक्षा कर देते। उन मूर्खों को क्षमा कर देते जिन्होंने शास्त्र नहीं पढ़े थे। तिवारीजी का कहना था कि जब तक जीवन है, देह को तुष्ट और प्रसन्न रखो। मृत्यु के बाद, यानी देह के भस्मीभूत होने के बाद क्या होता है, किसने देखा है—'भस्मीभूतस्य देहस्य कथं चैतन्य संस्थितिः?'

ऐसे तिवारीजी से बदला सधाने का आज डोम को मौका मिला है। वह प्रसन्नचित्त हो तिवारीजी से बदला सधा रहा था। उसने चुन-चुनकर ऐसी लकड़ियाँ निकाली थीं, जो गीली थीं, सीली थीं, खूब धुआँ करनेवाली और देर से आग पकड़नेवाली थीं। डोम उसी वंश परंपरा का था जिसके किसी पूर्वज ने शंकराचार्य को चित किया था। इसलिए जो बात तिवारीजी ने मृत्यु के बाद जानी, उसे वह पहले से जानता था। डोम का उद्देश्य बहुत स्पष्ट था। वह चाहता था कि तिवारीजी की चिता जलने में अधिक-से-अधिक समय लगे, कपालक्रिया में विलंब हो, ताकि तिवारीजी

वह प्रसन्नचित्त हो तिवारीजी से बदला सधा रहा था। उसने चुन-चुनकर ऐसी लकड़ियाँ निकाली थीं, जो गीली थीं, सीली थीं, खूब धुआँ करनेवाली और देर से आग पकड़नेवाली थीं। डोम उसी वंश परंपरा का था जिसके किसी पूर्वज ने शंकराचार्य को चित किया था। इसलिए जो बात तिवारीजी ने मृत्यु के बाद जानी, उसे वह पहले से जानता था।

की आत्मा देर तक भटकती रहे। वैसे कपालक्रिया हेतु डोम ने एक पतला, चिकना, मजबूत बाँस छाँटकर अलग रख छोड़ा था। डोम ने वह सबकुछ किया जो वह कर सकता था, जिससे वह तिवारीजी को अधिकाधिक कष्ट दे सकता था।

तिवारीजी के बड़े पुत्र ने रीती आलमारी का गुस्सा तिवारीजी की कपालक्रिया का अवसर आने पर निकाला। शोकार्त्त पुत्र ने बाँस पर मजबूती से हाथ जमा बहुत सफाई से दो बाँस आघातपूर्वक पूरी ताकत से तिवारीजी की खोपड़ी पर जमाए। वहाँ उपस्थित तिवारीजी के अनेक शुभचिंतकों ने पुत्र के इस कृत्य की मन-ही-मन सराहना की—जो काम वे तिवारीजी के जीवन काल में करना चाहते थे, किंतु न कर सकते थे, वह तिवारीजी के पुत्र के माध्यम से पूरा हुआ।

इतना होने पर ही तिवारीजी की आत्मा को मुक्ति मिल सकी और चित्रगुप्त के सामने उनकी पेशी हुई। इस समस्त खटराग में मृत्युलोक के अनुसार अर्धरात्रि बीत गई और तिवारीजी भूख से छटपटाने लगे। अँगोछा खींचनेवाले यम-किंकर से तिवारीजी ने पूछा, 'खाली अँगोछा कबजियाओगे या आगत अतिथि का कुछ स्वागत-सत्कार भी करोगे? कुछ जल-जलपान, कुछ फल-मिष्टान्न!'

उसने तो नहीं, किसी अन्य प्रतिहारी ने तमककर जवाब दिया, 'खा-खाकर इतना तो मुटाए हुए हो, फिर भी भूख-भूख चिल्ला रहे हो! यहाँ छेत्तर खुला हुआ है क्या? या तुम्हारे पिता मारवाड़ी बासा चला रहे हैं?'

तिवारीजी ने समझाया, 'देखो, हम विप्र हैं यानी उपसर्ग। इसे तो धातु से पहले लगना ही है। यही व्याकरण का नियम है। पाणिनी ऐसा ही कह गए हैं। नियम भंग न हो, इसलिए हमें हर काम में आगे रहना पड़ता है। अत: 'भुज्' धातु यानी भोजन में भी आगे रहें तो हर्ज क्या! फिर मेरा जन्म तो सिंह राशि में हुआ है, जिसके अनुसार आज उत्तम भोजन प्राप्त होना तय है।'

एक अन्य भट ने प्रश्न किया, 'तुम क्या कपिल, कणाद, कण्व और गौतम से श्रेष्ठ ब्राह्मण हो? उनकी तरह भूखे रह पूजा-पाठ और तपस्या क्यों नहीं करते?'

'हम तुम्हारे झाँसे में नहीं आनेवाले। इधर हम गौतम की तरह तपस्या करें, उधर तुम्हारे देवराज हमारी ब्राह्मणी को भ्रष्ट करने पहुँच जाएँ। वैसे भी जो मृत्युलोक में रह लिया, उसे अब किसी तरह की तपस्या की आवश्यकता नहीं।' तिवारीजी ने कहा।

अँगोछा पहने भृत्य ने तिवारीजी के पादत्राण (चप्पल) को कंदुक की तरह उछालते हुए प्रश्न किया, 'बताइए पंडितजी! क्या खाएँगे, चपत चमचम, मुष्टि का मोदक अथवा लकुटि तंदूल?'

तिवारीजी ने चिढ़ते हुए कहा, 'ब्राह्मण से मजाक! उन्मार्गगामी नास्तिको, दुष्टो! तुम सब नरक में जाओगे। तुम्हें कभी मुक्ति न मिलेगी।'

भृत्य ने अवज्ञापूर्वक जवाब दिया, 'हमें नरक का भय मत दिखाओ। हम तो सहस्रों वर्षों से नरक में रहते आए हैं। फिर भी सशरीर तुम्हारे सामने खड़े हैं। अपनी सोचो, तुम्हारा क्या होने वाला है। यमराज का एक हाथ पड़ा तो वामन बन जाओगे।'

एक अन्य प्रतिहारी ने कहा, 'चार दिन चक्की पीसनी पड़ी तो सारी चरबी गल जाएगी। तुंबा हुआ पेट ककड़ी की तरह पिचक जाएगा।'

प्रतिहारियों में जो सबसे चपल था, तिवारीजी के खल्वाट सिर पर अपने दाहिने हाथ की तर्जनी मोड़ ठुनी लगाते हुए बोला, 'भो अपंडित! तुझे मालूम नहीं क्या, नरक की व्यवस्था आजकल कुंभकर्ण के जिम्मे है! वह तो अभी पाँच कल्प वर्ष और नाक बजाएगा। तब तक तुम्हारे जैसों का भविष्य हमारी कृपा पर है।'

तिवारीजी को भटों की उद्दंडता से क्रोध आ रहा था। त्योरी चढ़ाकर उन्होंने पूछा, 'देवलोक में अन्याय की खुली छूट है क्या? न्यायाधीश नहीं हैं क्या यहाँ तुम जैसे दुष्टों को दंडित करने के लिए?'

सभी भट खिलखिलाकर हँस पड़े। तिवारीजी साश्चर्य उनका मुँह देख रहे थे। एक यम-किंकर ने तिवारीजी के गोल-मटोल पेट में अँगुली कोंचते हुए कहा, 'देवलोक के बारे में तुम्हारा ज्ञान हजारों वर्ष पुराना है। इधर व्यवस्था बदल गई है। नगर-न्यायाधीश के पद पर शंबूक बैठा है। उसे तो ब्राह्मण नाम से ही चिढ़ है। उसके पास शिकायत करने जाओगे तो 'वृहत्कथा मंजरी' में वर्णित न्यायाधीश से भी विचित्र न्याय पाओगे।'

तिवारीजी ने पूछा, 'कौन सी कथा? कैसा न्यायाधीश?'

प्रतिहारी ने कथा सुनाई, 'पांचाल देश में देवभूति नामक ब्राह्मण था। उसकी अत्यंत सुंदरी पत्नी एक दिन अपने बगीचे में गई तो उसने एक गधे को फूलों की क्यारी में मुँह मारते पाया। गुस्से से काँपते हुए वह एक डंडा उठा गधे की ओर लपकी। गधा डर के मारे भागा और गिर गया, जिससे उसके एक पैर की हड्डी टूट गई।

'इसी समय अपने गधे को खोजता एक धोबी आया, जिसका वह गधा था। उसने गधे की दुर्दशा देख ब्राह्मणी के हाथ से डंडा छीनकर क्रुद्ध हो ब्राह्मणी को इतना पीटा कि उसका गर्भपात हो गया।

'देवभूति ने अपने बगीचे और पत्नी की दुर्दशा से नाराज हो नगर न्यायाधीश के यहाँ वाद दायर किया। न्यायाधीश ने दोनों पक्षों की शिकायतें सुनकर गंभीर विचार किया और निर्णय दिया—ब्राह्मणी और धोबी दोनों ने अपराध किया है, अत: दोनों ही दंड के भागी हैं। चूँकि धोबी के गधे का पाँव टूटा है, जिससे उसका काम प्रभावित होगा, नुकसान होगा। अत: देवभूति गधे के अच्छा न होने तक धोबी के यहाँ गधे का सारा काम करे। चूँकि धोबी के लकुटि-प्रहार से ब्राह्मणी का गर्भपात हुआ है, अत: धोबी का दायित्व है कि वह यत्नपूर्वक ब्राह्मणी को गर्भवती करे।'

तिवारीजी का शरीर क्रोध से काँपने लगा। उधर चित्रगुप्त मयूरपंख से कान खोदते, मैल निकालते, मुसकराते हुए आनंद ले रहे थे। तिवारीजी ने सक्रोध कहा, 'अरे पापिष्ठो! अवश्य ही तुम सबकी मति भ्रष्ट हो गई है। इंद्र, ब्रह्मा,

विष्णु के रहते ऐसा अनर्थ! इन लोकपालक देवताओं की क्या अपने ही लोक में कुछ नहीं चलती?'

एक भट ने सहास्य उत्तर दिया, 'ठीक कहते हो; इंद्र को तो राग-रंग से ही फुरसत नहीं। उनकी तो सुबह ही रंभा के घुँघरुओं से होती है। दोपहर तक उर्वशी, मेनका, घृताची, तिलोत्तमा या मिश्रकेशी का नृत्य देखते हैं अलमस्त होकर। दो घड़ी विश्राम के बाद शाम होते ही किसी गुप्त स्थान की ओर निकल पड़ते हैं विहार हेतु। अब तुम अश्विनीकुमार तो हो नहीं कि इंद्र तुमसे शक्तिवर्धक या बलवर्धक जड़ी-बूटियों, आसवों के लिए तुम्हें समय दें, तुमसे मिले; तुम्हारी बात सुनें। आजकल कहीं कोई युद्ध भी नहीं हो रहा है कि उन्हें किसी ब्राह्मण की अस्थियों की आवश्यकता हो।'

तिवारीजी ने पूछा, 'ब्रह्मा? वे तो प्रजापति हैं, अवश्य ही मदद करेंगे।'

'इस भ्रम में न रहना कि बुढ़ऊ तुम्हारी कुछ मदद करेंगे। उन्होंने कब किसकी सहायता की है! जब भी कोई मदद के लिए गया, सारे भूखों से एक साथ कह दिया—विष्णु के पास जाओ, मुझे तंग मत करो।'''उनके बढ़े जटा-जूट और पाताल छूती दाढ़ी में पड़ी जूँओं के कारण अब तो कोई उनके पास भी नहीं फटकता। न उनको किसी सभा, गोष्ठी या सम्मेलन में बुलाया ही जाता है। लक्ष-लक्ष जूँओं को दोनों हाथों से बीन अँगूठों के नाखूनों पर पटापट मारने में ही उनका दिन निकल जाता है। जितनी आज मारते हैं, कल उतनी ही फिर तैयार। दग्धकूर्च (दाढ़ीबोंक) को जूँओं के कारण फुरसत ही कहाँ कि किसीकी सुनें। यहाँ तक कि उनके पुत्रों—बाल्यखिल्यों—ने भी पिता के पास जाना, उन्हें 'पिता' कहना बंद कर दिया है। बाल्यखिल्य मुनियों का कहना है कि महादेव के साथ होम करते पिता की दृष्टि गौरी पर पड़ी, जिससे काम-विमोहित ब्रह्मा ने हमें उत्पन्न किया था। हमारे जन्म के कारण ब्रह्मा को लज्जित होना पड़ा था। अतः उन्हें 'पिता' संबोधित कर अब और लज्जित न करेंगे।'

'क्या कहते हो, सृष्टिकर्ता प्रजापति की
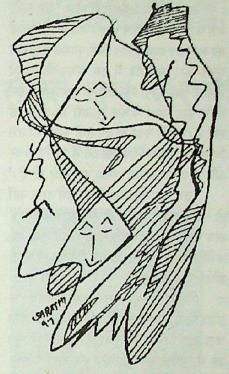
इतनी फजीहत, वह भी पुत्रों द्वारा! इतना पतन तो अभी मृत्युलोक में भी नहीं हुआ है।' यह कहते हुए ज्येष्ठ पुत्र द्वारा की गई कपालक्रिया का स्मरण कर तिवारीजी ने सिर पर हाथ फेरा और सोचा, ऐसा उसने उनकी मृत्यु के बाद किया था। जीवित रहते तो नित्य चरण छुआ करता था।

'ऐसा हुआ क्यों? इस दुरदुराहट का कारण?' तिवारीजी ने पूछा।

तिवारीजी के प्रश्न पर भट हँसे। चित्रगुप्त भी अपनी बत्तीसी पर नियंत्रण न रख सके। एक यम-किंकर ने कहा, 'यह न पूछते तो उचित था। पूछा है, सो बताना ही होगा। अनेक वर्ष पूर्व एक प्रमदा मोहिनी ब्रह्मा के जटाजूट और दाढ़ी पर मोहित हो गई। उसने प्रजापति को पकड़ लिया। जरा-जर्जर ब्रह्मा ने असमर्थता व्यक्त कर कहा—किसी रसिक युवा के पास जाओ। कहो तो दो-चार नाम बता दूँ। जाबालि की पत्नी हिंद्रलिन मायके गई है। उसीके आश्रम में चली जाओ।'''उस कुपित कामिनी ने ब्रह्मा की दाढ़ी हिलाते हुए नपुंसक, क्लीव, दढ़ियल और न जाने क्या-क्या कह अपूज्य होने का शाप दे डाला।

'ब्रह्मा खटर-पटर कर लड़खड़ाते हुए किसी तरह विष्णुलोक गए शाप छुड़वाने की प्रत्याशा में। वहाँ विष्णु से जो फटकार मिली सो अलग, क्रुद्धा लक्ष्मी ने शाप को पक्का कर दिया। बोलीं—जाओ, वेश्या के शाप से तुम अपूज्य हुए। कोई तुम्हारा मंत्र न लेगा।

'बस, उस दिन से ब्रह्मा का सामाजिक निष्कासन हो गया है। वे एकांत लाभ कर रहे हैं। आजकल अश्वगंधा, शिलाजीत, च्यवनप्राश और भी न जाने किन-किन जड़ी-बूटियों का सेवन कर रहे हैं, ताकि भविष्य में ऐसी स्थिति का डटकर सामना कर सकें। फिलहाल ब्रह्मा को कोई काम तो है नहीं, सो बैठे-बैठे मृत्युलोक की आबादी बढ़ाए जा रहे हैं; जिसके कारण वहाँ अराजकता बढ़ गई है।'

'दुष्टो, अराजकता तो यहाँ बढ़ी है। सर्वत्र भटों का तांडव।' तिवारीजी बहुत कुपित थे।

'तांडव से तुमने भली याद दिलाई शिव की। उनके आश्रम में तो अजीब घोरमाठा है। गणेश और कार्तिकेय की पत्नियों में ठनी हुई है। दोनों का सारा समय एक-दूसरे पर बरतन फेंकने में बीतता है, जिससे विश्वकर्मा का काम बढ़ गया है। बीच-बचाव करने गए कार्तिकेय का मयूर चुटैल हो गया है, इसलिए वे आजकल एक कोने में पड़े रहते हैं। गणेश का मूषक डर से बिल में दुबका हुआ है। पार्वती तो अपने मायके जाकर हँस आती हैं; पर महादेव को मिलते हैं भृत्यों, गणों द्वारा बीनकर लाए कच्चे-पक्के कंद-मूल, जिनको खा-खाकर भोले बाबा का स्वास्थ्य चौपट हो गया है। अश्विनीकुमारों की जड़ी-बूटियों से कोई विशेष लाभ नहीं है। उनकी तो पूरी दिनचर्या ही अस्त-व्यस्त हो गई है। आक-धतूरे का सेवन, भूत-प्रेत का संग-साथ, न शिखा, न सूत्र—सारा धर्म-कर्म मिट्टी कर दिया। इसी कारण उनपर कोई प्रसाद नहीं चढ़ाता। जो कुछ उनके पास था, सब देवी-देवता झींट ले गए। मात्र एक मृगछाला बची है देह पर। शरीर कृशकाय। ऐसे में क्या खाक तांडव करेंगे! तुमने सुना क्या कि इधर सहस्र वर्षों में शिवजी ने कभी तांडव किया हो? उनके गणों ने भी आजकल अवज्ञा शुरू कर दी है।

ऊँचा सुनने का बहाना कर देते हैं। अरे, जिसकी बात पुत्रवधुएँ नहीं सुनतीं, दूसरा कोई क्या आज्ञा मानेगा!'

'तब तो मुझे विष्णु के पास जाना होगा तुम सबकी शिकायत करने।' तिवारीजी ने हिम्मत न छोड़ी।

'जाने को तो तुम कहीं भी जा सकते हो—विष्णु के पास भी। किंतु वहाँ पाओगे क्या? चरणोदक के लिए एक चुल्लू दुग्ध भी न मिलेगा!' प्रतिहारी ने कहा।

'क्या बकते हो! इतना बड़ा क्षीरसागर अगस्त्य साफ कर गए क्या!' तिवारीजी ने व्यंग्य किया।

'मृत्युलोक से आए तुम सरीखे पेटू चुल्लू का सारा दूध पी गए। अब शेष है दुर्गंधित कीचड़, उसमें छटपटाते शेषनाग पर पड़े हैं विष्णु। अर्धांगिनी होने के कारण लक्ष्मी की बड़ी दुर्दशा है। न चाहते हुए भी बस किसी तरह वहाँ पड़ी पत्नी-धर्म का निर्वाह कर रही हैं। कीचड़ की भयानक दुर्गंध से बचने के लिए उनका एक हाथ अपनी नाक पर रहता है, दूसरे से दुर्गंध-निवारण के लिए पंखा झलती हैं। तीसरे और चौथे हाथ से शृंगार करती हैं। अब दो अतिरिक्त हाथ प्राप्त हों तो विष्णु के चरण दबाएँ। समझे, उलूक-प्रवर?' भट ने भी व्यंग्य किया।

'गाली मत दो!' तिवारीजी भड़के। उनका मन देवताओं की दुर्दशा से क्षुब्ध था।

'गाली कौन मूर्ख दे रहा है! तमाम पक्षी और पशु हमारे पूज्य हैं। जटायु, गरुड़, काक हमारे गुरु हैं। कुत्ता, गधा, बैल, सिंह, मोर आदि को देवताओं ने वाहन बना रखा है। उलूक तो विष्णुप्रिया का सर्वातिप्रिय वाहन ठहरा। उसके बिना लक्ष्मी दो कदम नहीं चल सकतीं। उलूक के गजब के ठाट हैं। ऐसा न होता तो भला वैशेषिक को औलूक्य दर्शन कहा जाता!'

तिवारीजी का क्रोध किंतु शांत न हुआ। अपना यज्ञोपवीत पकड़ वे शाप की मुद्रा में आ गए, 'सुनो! साक्षी हैं चंद्र, सूर्य, तारे; साक्षी हैं देवगण, ब्रह्मा, विष्णु और महेश; साक्षी हैं समस्त पितृगण, दिक्पाल और…'

यम-किंकर उपहास से बोले, 'बस करो, बस करो। तुम्हारा शाप खाली जाएगा। देवताओं का आवाहन व्यर्थ होगा। किसे फुरसत है तुम्हारी सुनने की! अर्धरात्रि में इस समय वे गुदगुदे बिस्तरों पर अपनी प्रियाओं के साथ मोहाविष्ट होंगे। इस समय केवल जुआरी ही जाग रहे होते हैं। यकीन न हो तो हम तुम्हें नरक की उस विशिष्ट वीथिका में पहुँचा देते हैं जहाँ दुर्योधन और युधिष्ठिर चौपड़ जमाए द्यूत खेल रहे हैं।'

'तुम लोग बहानेबाजी कर हमें नरक नहीं ले जा सकते।' तिवारीजी ने कहा। वैसे उन्हें अब भटों पर कुछ-कुछ यकीन होने लगा था; क्योंकि इतनी जोर से आवाज देने पर भी कोई, छोटा-मोटा देवता भी, प्रकट नहीं हुआ था।

चित्रगुप्त, जो अब तक यमराज के प्रतिहारियों, यम-भटों और तिवारीजी के बीच चल रहा विवाद कौतुकपूर्ण उत्साह से सुन रहे थे, पहली बार हस्तक्षेप कर बोले, 'वत्स, शांतं पापम्। पुत्र, बदली हुई परिस्थितियों में तुम स्वर्ग जाने का विचार मन से निकाल दो। वहाँ अब बचा ही क्या है! हजारों वर्ष बूढ़ी अप्सराएँ, उनके लिए लड़ते-झगड़ते प्रमादी देवतागण। अश्विनीकुमारों से पूछो, बेचारे कितने कष्ट में हैं! देवताओं को चिर युवा बनाए रखने के लिए दिन भर खरल घोटते रहते हैं। उन ओषधियों के लिए देवतागण आपस में छीन-झपट रहे हैं—इंद्र और कृष्ण, कृष्ण और महादेव। यही नहीं, महादेव और गणेश भी। तुम्हारे विघ्नेश कहे जानेवाले गणेश का मस्तक शनि ने काट गिराया, सो गजवदन रूप धारण करना पड़ा। महादेव को ससुर ने यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया तो जाकर ससुर की गरदन उतार दी। और…'

तिवारीजी इस गड़बड़झाला से ऊब चुके थे। उन्होंने अपने मन में आराध्य देवों की जो प्रतिमा बना रखी थी, वह खंडित हो चुकी थी। पूछा, 'किंतु महाराज, पुराण वचन 'काश्यां मरणां मुक्ति' का क्या होगा?'

चित्रगुप्त ने पुचकारते हुए कहा, 'वत्स! स्वर्ग में जाने से मुक्ति तो तुम्हें वैसे भी नहीं मिलनेवाली। तुम्हारी प्रथम पत्नी कंकावती स्वर्ग में ही बैठी है।'

तिवारीजी का समस्त ब्रह्म-तेज एक ही क्षण में गल गया, अभिमान बह गया। इतने वर्ष बीतने पर भी अपनी चंडी स्वरूपा प्रथम पत्नी को वे भूले नहीं हैं। जब तक जीवित रही, तिवारीजी के पितरों का नियमपूर्वक सुबह-शाम स्मरण करती थी। अर्धांगिनी होने के बावजूद तिवारीजी की पूरी देह का झाड़ू से मार्जन करती थी। तिवारीजी उस देवी के चरण दबा, चरणोदक ले प्रसन्न रखते थे। इस उम्र में फिर वही सब करना होगा। इस संभावना से तिवारीजी की स्वर्ग जाने की इच्छा अचानक समाप्त हो गई। किंतु एक शंका थी उनके मन में। उसे रख ही दिया चित्रगुप्त के सम्मुख, 'प्रभु! आपके पास तो समस्त चराचर के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा है। कृपया बताएँ कि किस पुण्य के कारण उसे स्वर्गलोक प्राप्त हुआ; क्योंकि उसका उचित स्थान तो कोई वाष्पकुंड होना चाहिए था?'

शंका-समाधान के लिए चित्रगुप्त को पन्ने न पलटने होंगे। उनके स्मृति-पटल पर सब अंकित है। बोले, 'एक बार भाँग के नशे में तुम्हें बेहोश देख तुम्हारी मृत्यु को सन्निकट मान उसने तुम्हारे मुख में गंगाजल की कुछ बूँदें टपका एक तुलसीदल रख दिया था, जिसके कारण उसके समस्त संचित पापों का नाश हो गया और वह स्वर्ग की अधिकारी हुई।'

तिवारीजी का मन चित्रगुप्त के इस स्पष्टीकरण से फट चुका था। देवताओं के न्याय से उनका विश्वास उठ चुका था। स्वर्गलोक के बारे में तो वे आवश्यकता से अधिक जान चुके थे। स्वर्गीय होने की उनकी इच्छा मर चुकी थी। बनारस उन्हें बेहद याद आ रहा था। बोले, 'भाड़ में जाय पुराण वचन—काश्यां मरणां मुक्ति। प्रभु, मुझे आप वापस मृत्युलोक भेज दीजिए। मेरा बनारस आपके देवलोक से लाख अच्छा।'

चित्रगुप्त ने आशीर्वाद दिया, 'तथास्तु।' □

रेड हार्ट एंड कंपनी,
कतरास रोड, धनबाद-८२६००१

आलेख

साधो जग बौराना

✍ संध्या सिंह

नई सदी का लगभग एक वर्ष बीत रहा है। लेकिन आज भी धर्म और जाति के नाम पर आएदिन होनेवाले अत्याचार, हत्याएँ यह सोचने पर बाध्य करते हैं कि आखिर कब तक कबीर इन्हीं अर्थों में प्रासंगिक बने रहेंगे? कब तक हम यह कहकर उन्हें सम्मानित करते रहेंगे कि उनकी कविता आज भी सार्थक है या समय की माँग है? अगर ऐसा है—और निश्चय ही है—तो यह दुःखद है, अत्यंत दुःखद है। दरअसल, आज जरूरत इस बात की है कि एक ऐसी दुनिया बनाई जाए जहाँ कबीर की कविता अप्रासंगिक हो जाए। सही मायने में तभी कबीर प्रासंगिक होंगे। क्या कभी कबीर ने यह सोचा होगा कि सैकड़ों वर्षों बाद भी मनुष्यता वैसे ही संकट में होगी जैसी उनके समय में थी। आज न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व में सांप्रदायिक ताकतें जिस तरह से एक बार फिर सिर उठा रही हैं, उससे उबरने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा है। मध्य युग की तरह आज भी चारों ओर युद्धों की गरज हो रही है। आज भी रक्त की वर्षा हो रही है, हिंसा और विध्वंस की बिजलियाँ कड़क रही हैं। इस अंधकारग्रस्त युद्धमय वातावरण का सामना करने के लिए कबीर फिर एक बार सूरज बन सकते हैं, उनकी वाणी औजार बन सकती है—बशर्ते उनकी परख बिना किसी भेदभाव, बिना किसी मत-मतांतर, बिना किसी धर्म-अधर्म, बिना किसी पाखंड, बिना किसी वाद के झगड़े में पड़े की जाय। जबकि कबीर अपने आपको विवेकशील आम मनुष्य की भूमिका में रहने देना चाहते हैं। इसीलिए वे संपूर्ण सांसारिक कर्म करते हुए भी उससे अलिप्त हैं—

'ना मैं धर्मी नाहि अधर्मी, ना मैं जती न कामी हो।
ना मैं कहता ना मैं सुनता, ना मैं सेवक स्वामी हो।
ना मैं बाँधा ना मैं मुक्ता, ना मैं विरत न रंगी हो।
ना काहू से न्यारा हुआ, ना काहू के संगी हो।
ना हम नरकलोक को जाते, ना हम सुर्ग सिधारे हो।
सब ही कर्म हमारा कीया, हम कर्मन ते न्यारे हो।
या मन को कोई बिरलै बूझै, सो अटर हो बैठे हो।
मत कबीर काहू को थापै, मत काहू को मेटे हो॥'

'सब कर्मन ते न्यारे' होने के लिए कबीर की तरह बीच बाजार में हाथ में लुकाठी लेकर खड़े होना होगा। वास्तव में वही कबीर के मत को बूझ सकता है।

कबीर के आलोचक कबीर के साथ, उनके शब्दों के साथ विवेक नहीं कर रहे हैं। सामान्यतः विद्वानों ने मूल कबीर को समझे बिना उनके भीतर रामानंदी कबीर को ही देखने का प्रयास किया है। अली सरदार जाफरी जैसा प्रगतिशील दृष्टिकोण का लेखक भी यह कह देता है—'चूँकि उन्होंने अपने आपको बार-बार जुलाहा कहा है, इसलिए यह यकीन के साथ कहा जा सकता है कि उन्होंने इसलाम का त्याग नहीं किया था और वे एक मुसलमान सूफी थे।'

इसी तरह कबीर के आलोचकों के आलोचक डॉ. धर्मवीर कहते हैं, 'कबीर ने दलित जातियों को मुसलमानों और हिंदुओं के दोहरे आक्रमणों से बचाया था—' या फिर 'इसलाम और इसाई धर्म उतने अहिंदू नहीं हैं जितना कबीर का धर्म अहिंदू है।' इसी तरह पंडित लोग उन्हें ब्राह्मणी का पुत्र सिद्ध करने पर तुले हुए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सारे विचार पूर्वग्रह से मुक्त नहीं हैं।

इसीलिए, हाँ, इसीलिए मेरे मन में यह सवाल छोटे से बड़ा हुआ है—कबीर क्या हैं? क्या सबके अपने-अपने राम की तरह अपने-अपने कबीर भी हैं?

कबीर की कविता से साक्षात्कार करते हुए लगता है कि उन्होंने मनुष्य को सांसारिक मार्गवाले धर्म की ओर ले जाना चाहा। कोई हिंदू या मुसलमान उस धर्म से बच नहीं सकता। यह कबीर के जीवन-ध्येय

का रचनात्मक पहलू था—और उनके ध्येय का विध्वंसात्मक पहलू था पाखंड और आडंबरों के झाड़-झंखाड़ को दूर कर नए मार्ग का निर्माण करना।

कबीर कर्मवीर संत थे। जुलाहे का काम करके अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण कर रहे थे। इसलिए उनको अपने जुलाहा होने पर गर्व था। अली सरदार जाफरी जिससे उनके मुसलमानत्व को सिद्ध करते हैं, वह कबीर के श्रमिक वर्ग में होने का गर्व और आत्म-परिचय था। इसीलिए लगता है कि जब वे बार-बार 'मैं जुलहा' कहते हैं तो वहाँ जाति विशेष जुलाहा नहीं, कर्म विशेष जुलाहा ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने लक्ष्य समाज को इसी कर्म के गौरव से परिचित कराना चाहा था। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि 'सबद-बार उर अंतर' में नहीं लग जाता। कबीर अपने समय के शिक्षित व्यक्ति थे। भले ही विद्वानों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि वे निरक्षर थे। कबीर बानी को पढ़ने से ऐसा कहीं से नहीं लगता। उनका लक्ष्य समाज, आम मानव था, इसीलिए उनसे उन्हींकी भाषा में संवाद किया है। जो समाज 'छापा तिलक लगाइ बाँस चढ़, हो रहा जग से न्यारा' के मायाजाल में उलझा हुआ है, उस 'भूले' को घर लानेवाला जन कबीर को प्रिय है। 'घर-घर दीपक जलानेवाला वह जन सांसारिक शिक्षा और प्रेम का ही रूप होगा। क्योंकि प्रेम के अभाव में जो शिक्षा विकसित होती है वह 'पत्थर' या 'ईंट' की तरह जड़ और अपरिवर्तनीय होती है। और उसमें दाग तथा छींटों की कमी नहीं होती—

'पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखि लिखि भया जु ईंट।
कहै कबीरा प्रेम की, लागी न एकौ छींट॥'

उन्हें यह विश्वास था कि कर्मकांडों और ढकोसलों में फँसी हुई जनता आत्मचेतस होकर ही पंडितों और मुल्लाओं से मुकाबला कर सकती है। इसीलिए वे कहते हैं—स्वयं की पहचान करो और अपनी भलाई चाहते हो तो अपनी जाँच-पड़ताल और परख करो। यह सारा कार्य बहुत सोच-विचार करके करना है। अपनी क्षमताओं और विशेषताओं को पहचानने के लिए आप ही गुरु बनना होगा। यही नहीं, चित्त को स्थिर भी करना होगा—

'कहै कबीर सुनो हो साधो, अमृत बचन हमार।
जो भल चाहो आपनो, परखो करो विचार॥
आप अपनवौ चीन्हहू, नख-शिख सहित कबीर।
आनँद मंगल गावहू, होहि अपनपौ थीर॥'

यहाँ 'अपनपौ थीर' ध्यान देने योग्य है। स्वयं को स्थिर करना, दृढ़ निश्चय करना, आत्म-परिचय करना सबसे आवश्यक है। क्योंकि आम आदमी की सहायता करनेवाला भगवान् भी नहीं है—

'दस अवतार निरंजन कीजै सो अपना नहीं कोई।'

कबीर के लक्ष्य समाज का दुःख तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक वह धर्मभीरु है। कबीर की कर्म पूजा धर्मभीरु जनता की ताकत थी और आज भी बन सकती है। लेकिन आज तो आदमी-आदमी के बीच एक ऐसी दूरी आ गई है, जो बौद्धिक और भावनात्मक दोनों मोरचों पर है। इसलिए आज से छह सौ साल पहले भी कबीर के सामने संवाद की जो समस्या थी वह आज भी है। कबीर के दुःख का सबसे अहम कारण यही है। आज जितने अधिक संचार माध्यमों का प्रादुर्भाव हुआ है, उतना ही संप्रेषण का संकट बढ़ा है। जो कहा जा रहा है, क्या वह ठीक-ठीक पहुँच रहा है? इस समस्या को बार-बार होनेवाले संवाद से ही दूर किया जा सकता है। इसीलिए कबीर बार-बार चेतावनी की भाषा में 'सुनो', 'देखो' कहकर जनता को चेता रहे थे। सबद की ताकत से वे भलीभाँति परिचित थे। उन्हें यह भी पता था कि इसे समझनेवाले बहुत कम हैं। सब अपनी-अपनी साधने की कोशिश में लगे हुए हैं। यही नहीं, कबीर की कविता के साथ भी न्याय नहीं हुआ है। इसीलिए लगता है, कबीर की कविता उन सबके लिए चुनौती है जो सबद विवेकी है—

'मैं रोऊ संसार को, मोको रोवै ना कोइ।
मोका रोवै सो जना जो सबद विवेकी होइ॥'

इनके शब्दों के साथ विवेक करनेवाले यह जानते हैं कि वे मानवीय भावों या संबंधों के चितेरे मात्र नहीं हैं, बल्कि वे मनुष्य की आत्मा के कवि हैं। संसार के भीतर रहकर ही मुक्ति की कामना करते हैं। 'उड़ जाएगा हंस अकेला' कहनेवाले कबीर ही काया में संपूर्ण रूप को देख सकते हैं—

'बाल बागो ना जा रे ना जा तेरी काया में गुलजार।
सहस कँवल पर बैठ के तू देखे रूप अपार॥'

जब इस अपार रूप का ज्ञान होता है तो मृत्यु, जीवन, माया सभी नाचते हैं। मृत्यु और माया पर विजय करके कबीर नाच उठते हैं—

'नाचु रे मेरे मन मत्त होय,
राहु केतु नवग्रह नाचै जन्म जन्म आनंद होइ।
गिरी समुंदर धरती नाचे, लोक नाचै हँस रोइ।
सरस कलाका मन मेरो नाचै, रीझै सिरजनहारा।'

जब मृत्यु और माया की बात उठती है तो कबीर की आध्यात्मिक व्याख्या करनेवाले यह भूल जाते हैं कि कबीर कभी भी संसार को भूलते नहीं। संसार से परे किसी आनंद की कल्पना वे नहीं करते। तभी तो 'गिरी'-समुंदर, धरती, लोक सभी एक साथ स्मरण आते हैं। इसलिए कबीर के दुःख को अध्यात्म के परदे से बाहर निकालकर देखना होगा—

'अब न बसूँ इहि गाउँ गोसाइँ
तेरे नेवगी खैरे सयाने हो राम

नगर एक तहँ जीव धर महताँ बसे जु पंच किसाताँ।
नैनू नकटू श्रवनू रसनू इंद्री कह्या न माने हो राम।
जोर जेवरी खेति पसारै सब मिलि मौकौ मोर हो राम।
गाउँ के ठाकुर खेत कु नापै काइथ खचत न पारै।
खोटो महतो विकट बलाही सिरकस दम का पारै
बुसौ दिवान दादि नहि लागै इकि बाँधै इक मारै हो राम।
ध्रम राइ जब लेखा माग्या, बाकी निकली भारी
पाँच किसाना भाजि गए हैं जीवधर बाँध्यौ पारी हो राम
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि भजि बाँधौ भेरा
अबकी बेर बकसि बंदे कुँ, सब खन करै निबेरा।'

इसकी भक्तिपरक व्याख्या की जाय तो यह एक सामान्य पद है, विशेष बनता है तो किसानों पर होनेवाले अत्याचार के रूपकों से। ध्यान देने की बात यह भी है कि शारीरिक क्रिया-कलापों की तुलना में वास्तविक जीवन के रूपक अधिक हैं। इसलिए इसके सामाजिक संदर्भ को अनदेखा नहीं किया जा सकता। उस समय का सच उभरकर सामने आता है कि लगान वसूल करनेवाले चालाक और क्रूर हैं। कायस्थ, पटवारी उजरत माँगते हैं; न देने पर खेत की गलत नाप करते हैं। दीवान भी नहीं सुनता। बलाही जुल्म करता है। ऐसी स्थिति में किसानों के पास गाँव छोड़कर भाग जाने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता।

गाँव का ऐसा व्यापक रूपक उस समय में कबीर के अलावा कहीं नहीं मिलता। किसान पर होनेवाले अत्याचार उन्हें गाँव छोड़ने को विवश करते हैं। फिर भी वे भागकर कहाँ जाएँगे। क्योंकि—

'घर में जोग भोग घर ही में, घर तज वन नहि जावै।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै॥'

ध्यान देने की बात है कि संसार में ही रहने का निश्चय करनेवाले कबीर संसार के हर नियम, पाखंड को अस्वीकार करते रहे और संसार उन्हें अस्वीकार करता रहा। इसलिए यह कहना उचित जान पड़ता है कि किसी गहरे स्वीकार के कारण ही यह अस्वीकार का गुरूर आया है। यह निश्चय ही कबीर का निर्गुण निराकार ही है। जो कोई रहस्य नहीं है, बल्कि एक क्रांतिदर्शी कवि की उदात्त कल्पना है। मुक्तिबोध के शब्दों में, एक 'नक्शा' है। इस नक्शे को दिमाग की जमीन से संसार की जमीन तक लाना बहुत कठिन था। यह कबीर की विवशता थी। दुःख की बात तो यह है कि आज भी हमारे हाथों में नक्शा है, लेकिन चेतावनी की भाषा नहीं है।

गोल शब्दकोश में अमोल बोल तुतला रहे हैं और चेतावनी देने की भाषा बेकार हो चुकी है। कबीर खुद नहीं जानते थे कि जब चेतावनी देने की हर भाषा बेकार हो चुकी होगी और एक नई भाषा दरकार होगी तो वे फिर याद आएँगे। उनका दिया सामाजिक नक्शा तथा निर्गुण निराकार हमारे समाज को आकार दे सकता है। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है, क्योंकि उनके बताए नक्शे का खौफ कुछ लोगों के दिलो-दिमाग को आज भी चुनौती बनकर बेचैन किए हुए है। जम्मू में कबीर बानी का जलाया जाना इस बात का प्रमाण है कि कबीर का सच आज भी धर्म के नाम पर बौराए लोगों के लिए देहहीन पुकार बन गया है।

□

निराला निवेश, रथयात्रा, वाराणसी

कविता

वसंतोत्सव की चिंता

वीरेंद्र सारंग

नववर्ष मनाने के आधुनिक तरीके में
और दिवसों के जाल में
अपना वसंतोत्सव
पीछे न छूट जाए
यही चिंता
अपने नाव की पाल खोल देनी होगी जो प्रतिपदा
से भी दूर अनवरत चलती रहे एक जनवरी
का सीना चीरकर डिस्को
को रौंदते हुए।

□

१०/४११, इंदिरा नगर, लखनऊ

संस्मरण

स्वाधीनता संग्राम की अमिट स्मृतियाँ-९

विष्णु प्रभाकर

दिसंबर के तीसरे सप्ताह में मैं दिल्ली लौटा। बीच में दो-तीन दिन जम्मू में रहा और वहाँ के कैंपों की हालत देखी। बड़े हृदय-विदारक दृश्य थे। उन सबका तो वर्णन करना संभव नहीं, पर एक दृश्य मैं नहीं भूल पाता। अचानक एक कैंप में पंजाब से एक लड़की आई। उसे अपने रिश्तेदारों की तलाश थी। अचानक उसने एक व्यक्ति को देखा, वह उसका चाचा था। तब वे दोनों जिस प्रकार एक-दूसरे से मिले, उस कारुणिक दृश्य को शब्दबद्ध करना बहुत कठिन काम है।

दिल्ली की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। जहाँ मैं रहता था उसके चारों ओर भयंकर हत्याकांड मचा हुआ था। गांधीजी प्रतिदिन प्रार्थना सभा में इसकी चर्चा करते। अंततः एक दिन उन्होंने आमरण अनशन की घोषणा कर दी। इसका बहुत गहरा असर हुआ। गांधीजी तब भी प्रार्थना सभा में आते थे। दो शब्द बोलने के बाद उनका लिखित संदेश पढ़ा जाता था।

३ जनवरी को गांधीजी ने कहा, 'फाँका टूटने की शर्त यह है कि दिल्ली बुलंद हो जाए। अगर दिल्ली बुलंद हो जाती है तो सारे हिंदुस्तान क्या, पाकिस्तान पर भी असर पड़ेगा।...अगर यहाँ कोई मुसलमान अकेला घूम सकता है तो मेरा फाँका टूट जाता है। इसका मतलब यह है कि दिल्ली पायातख्त है।...दिल्ली में सब ठीक नहीं होता तो सारे हिंदुस्तान और पाकिस्तान में ठीक नहीं हो सकता।...'

वे प्रतिदिन इसी तरह की बातें कहते थे। दूसरी ओर सब नेता लोग हिंदू, मुसलमान, सिक्ख—सब सलाह-मशविरा करते रहते थे। अंततः उन लोगों ने १८ जनवरी, १९४७ को एक दस्तावेज तैयार किया। उस दिन उनके पास आनेवालों में राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू थे, पाकिस्तान के हाई कमिश्नर, दिल्ली के हाई कमिश्नर, आजाद हिंद फौज के जनरल शाहनवाज शामिल थे। नेहरूजी एक मूर्ति की तरह चुपचाप बैठे थे, और ऐसे ही बैठे थे मौलाना आजाद। राजेंद्र बाबू ने वह दस्तावेज पढ़ा। उसमें पाँच बातें कही गई थीं—

१. गांधीजी को हम इत्मीनान दिलाना चाहते हैं कि जिस तरह ख्वाजा कुतुबुद्दीन उर्स का मेला पहले हुआ करता था, वैसे ही अब भी होगा।

२. जिस तरह मुसलमान दिल्ली के सभी मोहल्लों में और खासतौर पर सब्जी मंडी, करोलबाग, पहाड़गंज में आया-जाया करते थे, वैसे ही बेखटके और बेखतरे फिर से आ-जा सकेंगे।

३. उन मसजिदों को, जिनको मुसलमान छोड़कर चले गए हैं या जो हिंदुओं और सिखों के कब्जे में हैं, वापस दे देंगे। जिन जगहों को खास मुसलमानों के बसने के लिए गवर्नमेंट ने रख छोड़ा है, उनपर जोर-जबरदस्ती कब्जा करने की कोशिश नहीं की जाएगी।

४. जो मुसलमान दिल्ली के बाहर चले गए हैं, वे अगर वापस आना चाहें तो हमारी तरफ से कोई बाधा नहीं पहुँचाई जाएगी और मुसलमान अपना कारोबार जिस तरह से करते थे, कर पाएँगे। हम यह इत्मीनान दिलाना चाहते हैं कि सब चीजें अपनी कोशिश से पूरी करेंगे। सरकारी पुलिस या फौज की ताकत इसकी खातिर इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

५. महात्माजी से हमारा अनुरोध है कि वे हमारी बातों पर विश्वास करके अपना उपवास छोड़ दें, और जिस तरह आज तक देश के रहनुमा रहे, बने रहें।

इसके बाद उन्होंने अपना व्रत तोड़ दिया; लेकिन २० जनवरी को उनकी प्रार्थना सभा में किसीने बम फेंका, जिसकी चर्चा उन्होंने अगले दिन प्रार्थना सभा में की, 'लोग मेरी तारीफ करते हैं, पर मैंने कोई बहादुरी नहीं दिखाई। मैंने तो यही समझा कि फौजवाले प्रैक्टिस करते हैं।

'अगर मेरे सामने बम फटे और मैं न डरूँ, तो आप देखेंगे और कहेंगे कि वो बम से मर गया, तो भी हँसता रहा। आज तो मैं तारीफ के काबिल नहीं हूँ। जिस भाई ने यह काम किया उससे आपको या किसीको नफरत नहीं करनी चाहिए।...'

इसी तरह वे हिंदुओं और सिखों को समझाते रहते थे। लेकिन उनकी प्रार्थना सभा बंद नहीं हुई। वे सभी सामाजिक विषयों पर बोलते। जहाँ-जहाँ से उनके पास तार आते, उनका भी जिक्र करते थे। मैं अकसर

उन प्रार्थना सभाओं में मौजूद रहता था।

कश्मीर से लौटने के बाद मुझे आकाशवाणी के अधिकारियों ने बुलाया और कहा कि आपने कश्मीर में जो कुछ देखा है उसपर हमारे लिए रूपक लिखें। मेरे पास तो बहुत सामग्री थी। मैंने उसको लिखा तो लिखता ही रहा। वह लंबी कहानी है। २९ तारीख को मैं जब रेडियो स्टेशन पहुँचा तो सत्यार्थीजी दिखाई दिए। बोले, 'चलो, मेरे साथ प्रार्थना सभा में चलो। मुझे गांधीजी से कुछ बात करनी है।' वह बरबस मुझे गाड़ी में बिठाकर ले गए। उस दिन मैंने गांधीजी के व्यक्तित्व और भाषा का गहरा अध्ययन किया। बहुत परेशान थे, क्योंकि उस दिन उनके पास बहुत लोग आए थे और उन्होंने गांधीजी पर बहुत गुस्सा किया। कहा, 'तुमने बहुत खराबी तो कर ली है, क्या और करते जाओगे…बड़े हैं, महात्मा हैं तो क्या, हमारे काम तो बिगाड़ते ही हो। तुम हमको छोड़ दो, भूल जाओ, भागो।' मैंने पूछा, 'कहाँ जाऊँ?' उन्होंने कहा, 'तुम हिमालय जाओ।' तो मैंने हँसकर कहा, 'क्या मैं आपके कहने से जाऊँगा! किसकी बात मानूँ? कोई कहता है, यहीं रहो, कोई तारीफ करता है, कोई गाली देता है, तो मैं क्या करूँ?

'मैं हिमालय क्यों नहीं जाता? वहाँ रहना तो मुझको पसंद है। ऐसा नहीं कि मुझे वहाँ खाने-पीने और ओढ़ने को नहीं मिलेगा; वहाँ जाकर शांति मिलेगी; लेकिन मैं अशांति में से शांति चाहता हूँ।'

बोलते-बोलते वे कहाँ पहुँच जाते थे। मैं उनकी ओर देखता रह जाता था। प्रार्थना सभा में यह उनका अंतिम भाषण था, क्योंकि अगले दिन सायंकाल पाँच बजकर दस मिनट पर प्रार्थना के लिए आते समय प्रार्थना स्थल पर ही एक व्यक्ति ने उनके सीने में पिस्तौल से तीन गोलियाँ मारीं और वहीं उनका स्वर्गवास हो गया। गिरने से पहले उन्होंने नमस्कार करने के लिए हाथ उठाए और मुँह से निकला—'हे राम'।

२९ तारीख को मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि अब इस महामानव के इस रूप में दर्शन नहीं होंगे। प्रार्थना के अंत में सत्यार्थीजी बोले, 'आओ, गांधीजी से दो बातें करनी हैं।'

गांधीजी सदा की तरह दो व्यक्तियों (तब मनु और आभा) के कंधों पर हाथ रखे आगे बढ़ रहे थे। हम दोनों कुछ दूर तक उनके साथ चलते रहे। सत्यार्थीजी ने अपनी बात शुरू कर दी थी और वे हँस रहे थे। सत्यार्थीजी ने कहा था, 'आपने मेरी पुस्तक की भूमिका लिखने का वायदा किया था, लेकिन अभी तक नहीं लिखी; और अब सुना है कि आप वर्धा जा रहे हो।' गांधीजी ने उत्तर दिया, 'कौन सा गांधी वर्धा जा रहा है? मैंने तो नहीं सुना। फिर गया भी तो मर तो नहीं जाएगा, लौटकर यहीं आएगा। प्यारेलाल से कह देना, मैं लिख दूँगा।'

हम खूब हँसे। नियति भी हँस रही थी और सचमुच, ३० जनवरी को एक साधारण मानव ने अपने हाथों से उस महामानव की हत्या कर दी।

अगले दिन सायंकाल पाँच बजकर दस मिनट पर प्रार्थना के लिए आते समय प्रार्थना स्थल पर ही एक व्यक्ति ने उनके सीने में पिस्तौल से तीन गोलियाँ मारीं और वहीं उनका स्वर्गवास हो गया। गिरने से पहले उन्होंने नमस्कार करने के लिए हाथ उठाए और मुँह से निकला—'हे राम'।

वह और दिन की भाँति एक साधारण दिन था। सदा की तरह शिशिर को संध्या काँपती-सिहरती धरती पर उतर रही थी और मैं उस समय अपने कमरे में बैठा लिखने में तन्मय था। तभी मेरा भाई दफ्तर से लौटा और उसने रेडियो चला दिया। मैं नहीं जानता था कि रेडियो क्या बोल रहा है। तभी मेरे एक मित्र, जो मेरे पास ठहरे हुए थे, मेरे पास आकर बोले, 'मैं आज जा रहा हूँ।'

मैंने लेख का अंतिम वाक्य लिख लिया था। मैं मुसकराया, 'आज नहीं जा सकेंगे, गाड़ी नहीं मिलेगी।' और मैंने घड़ी की ओर देखा—छह बजने वाले थे। उसी क्षण मेरे मित्र ने भी काँपकर रेडियो की तरफ ध्यान दिया—'हिट इन दा चेस्ट एंड कोलेटस्ड।' मेरा भाई करुण स्वर में बोल उठा, 'ये क्या हुआ?'

'क्या, क्या हुआ?' मैंने कलम फेंक दी। मैं हड़बड़ा गया था, 'क्या…हुआ?'

'गांधीजी…' भाई का स्वर रुँध गया। रेडियो से वेदना का संगीत गूँज रहा था। क्षण भर में सब लोग और मेरी माँ कमरे में दौड़ती हुई आईं, 'क्या…क्या हुआ गांधीजी को?'

रेडियो फिर बोला, 'हमें बड़े खेद के साथ सूचित करना पड़ता है कि पाँच बजे के कुछ पश्चात् गांधीजी का स्वर्गवास हो गया। वह सदा की तरह प्रार्थना सभा में जा रहे थे कि एक व्यक्ति ने उनपर पिस्तौल से गोलियाँ चलाईं। गोलियाँ छाती में लगी, ईश्वर की इच्छा!'

जैसे शेषनाग ने पृथ्वी को पटक दिया, जैसे सागर मर्यादा छोड़कर उमड़ पड़े, जैसे विश्व के समस्त ज्वालामुखी एक साथ भभक उठे, जैसे

उनचास पवन एक साथ इंद्र के बंधन से मुक्त हो जाएँ। किसीको कुछ नहीं सूझा। मस्तिष्क की गति काल की गति से तीव्र हो उठी। अर्द्धविक्षिप्त-से सबने एक-दूसरे को देखा, देखते रह गए। यह क्या हुआ? गांधीजी मर गए? नहीं-नहीं। रेडियो कहता है, उनपर गोली चलाई गई। उनकी हत्या की गई। गांधीजी की हत्या···असंभव···नितांत असंभव! पर रेडियो फिर कह रहा था···

मित्र पागलों की तरह बाहर भागते चले गए। एक छोटी बच्ची सकपकाकर दीवार से चिपक गई। रसोई से पुकार उठी, 'बंद कर दो···गांधीजी···गांधीजी···'

कमरे में भीड़ बढ़ने लगी। सब विमूढ़ से रेडियो को देख रहे थे, और मैं रो रहा था। पर वे अभी रोने को तैयार नहीं थे। सहसा मैंने उत्तेजित होकर कहा, 'अब प्रलय होगी।'

'पर उन्हें किसने मारा?' एक रुँधा-रुँधा स्वर उठा।

किसीने कुछ जवाब नहीं दिया।

रेडियो फिर उसी समाचार को दोहरा रहा था। सहसा किसीने कहा, 'उन्हें मारनेवाला मुसलमान तो नहीं है।'

मैंने उस व्यक्ति को देखा। फिर दृढ़ता से उत्तर दिया, 'यह असंभव है।'

'तो वह पंजाबी है, अवश्य पंजाबी है। पर उसने गांधीजी को मारा क्यों? क्यों? आखिर क्यों?'

शायद मैं गलत हूँ। 'उन्हें कोई नहीं मार सकता। कोई नहीं।' लेकिन रेडियो···वह अंग्रेजी में बोलता है, हिंदी में बोलता है। ईश्वर की इच्छा, ईश्वर की इच्छा!'

बाहर से एक और भाई आए। और धम्म से कुरसी पर बैठकर उन्होंने एक साँस में कहा, 'गांधीजी को मारनेवाला कोई हिंदू था।'

हिंदू! जैसे समूचा विश्व घृणा से फुसफुसा उठा।

'हाँ, हिंदू और मराठा।' उन बंधु ने कहा और मौन हो गए। उनका कंठ रुँध गया। उन्होंने अपना सिर कुरसी की पीठ पर टिका दिया। वह रो रहे थे।

तभी एक और भाई आए और हाँफते-हाँफते बोले, 'उसका नाम नाथूराम है।'

'नाथूराम! तो वह मराठा नहीं है। पंजाबी लगता है।'

नवागंतुक पंजाबी थे। करुण स्वर में उन्होंने कहा, 'अब क्या होगा?'

'अब कत्लेआम होगा।' किसीने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया, 'रात भर में पंजाबियों का बीज मिटा दिया जाएगा।'

मेरा हृदय रो उठा—हाय! शांति के देवता का ऐसा अंत। नहीं-नहीं···तब तक सब रोने लगे थे। पर उस रुदन में स्वर नहीं था, पीड़ा थी। और वह पीड़ा बढ़ई के बरमे की तरह आत्मा को साल रही थी।

माँ ने भर्राए स्वर में फुसफुसाया, 'हाय! किसीने यह क्या किया?'

एक बच्चे ने पूछा, 'महात्माजी को क्या हुआ?'

मेरे मन में विचार उठा—मानो रेडियो कह रहा है—अब एक शुभ समाचार सुनिए। डॉक्टर गांधीजी की बेहोशी दूर करने में सफल हुए हैं। उनके प्राण लौट रहे हैं। उनके प्राण लौट रहे हैं—बोल रेडियो, बोल। भगवान्! तुम्हीं इसमें से बोल उठो—'गांधी जी रहा है, गांधी अमर है।'

तभी सहसा भाई उठा और उसने रेडियो की सुई बड़ौदा की ओर घुमा दी। वहाँ कोई आर्त्त स्वर में पुकार रहा था—'बापूजी! गांधीजी! बापूजी, महात्मा बापूजी! बापूजी अब नहीं रहे। प्रार्थना सभा में जाते समय···'

वही कहानी, वही स्वर, वही आकाश, वही धरती, वही संध्या, वही जगत्; पर बापू कहाँ हैं?

मैंने अपना सिर पलंग के तकिए पर टिका दिया। रेडियो लाहौर जा पहुँचा था। वहाँ शोक का गहरा गाना न जाने किस भाषा में रुदन कर रहा था। पर वह स्वर दिल के टुकड़े-टुकड़े किए दे रहा था।

ढाका—वही एक भीगा स्वर, वही एक मर्मस्पर्शी रुदन।

पटना—गायक बापू के गीत गाता है, रोता है।

बड़ौदा—अरे, बापू बोल रहे हैं। कमरे में एक मर्मर ध्वनि उठी। सबने एक-दूसरे को देखा, दृष्टि मिली और झुक गई। रिकॉर्ड बज रहा था। गांधीजी कह रहे थे, 'गांधी अमर पट्टा थोड़े ही लिखवाकर लाया है, वह भी मरेगा। एक दिन सब मरेंगे।'

हाय! उनके मुख से यह स्वर फिर नहीं निकलेगा।

क्यों नहीं निकलेगा? प्रार्थना सभा होगी। हम सब सदा की तरह वहाँ जाएँगे। छोटा बच्चा उन्हें देखकर कहेगा, 'बापू की जय!'

कल ही तो मैं उनकी प्रार्थना सभा में गया था। वहाँ मैंने देखा—वह कितने सुंदर, प्रिय और स्वस्थ लगते थे। लोग ठीक कहते हैं कि बुड्ढा आयु बढ़ाने के लिए व्रत रखता है। उपवास से ग्रंथियों को नष्ट करनेवाले तत्त्व का क्षय होता है। वह कह रहे थे—

'मैं तो इस अशांति में से शांति खोजना चाहता हूँ, नहीं तो इसी अशांति में मर जाना चाहता हूँ।'

और वह मर गए। हाँ, वह मर गए। मैंने जोर से सिर को झटका दिया। एक बार कमरे में दृष्टि डाली। पता लगा, बापू अब नहीं हैं। उन्हें आज पाँच बजे, जब वह प्रार्थना सभा में आ रहे थे तब, किसी हिंदू युवक ने गोली चलाकर मार डाला। बापू को मार डाला। मैं सिहर उठा। बापू को मार डाला। असंभव! बापू को कोई कैसे मार सकता है! कैसे भला! उनका वक्षस्थल तो सदा खुला रहा है। खुले वक्षस्थल पर कोई चोट नहीं कर सकता।

मैं चौंका। पंजाबी बंधु भागे-भागे आए और बोले, 'वह मराठा है। उसका नाम नाथूराम विनायक गोडसे है। वह पूना का रहनेवाला है।

मैंने अचकचाकर पूछा, 'क्या हुआ? क्या बिड़ला भवन गए थे?'

'हाँ।'

'तो गांधीजी…'

'गांधीजी उसी तरह निर्द्वंद्व लेटे हैं। उनके मुख पर पूर्णतः दया और क्षमा के भाव हैं।'

भावना ने एक बार सबको तड़पा दिया। आँसू बाँध तोड़कर बह चले। भर्राए स्वर में एक बंधु बोले, 'वे योगी थे। उन्होंने उसी क्षण समाधि लगा ली होगी।'

'जी हाँ।'

पंजाबी बच गए।' पंजाबी बंधु ने साँस खींची और पुनः कहा, 'पंजाबी इतना नीच नहीं है।'

'नीच, कमीना, घृणित!' एक और बंधु अंदर आए। उनकी आँखें लाल हो रही थीं। वह क्रोध से काँप रहे थे, 'वे पापी हैं।'

'कौन?'

'वे, जो मिठाई खा रहे हैं।'

जैसे वज्र टूटा हो।…

'चौक में दो व्यक्ति रसगुल्ले खा रहे हैं।'

'हाय! ऐसे आदमी भी हैं।' किसीने काँपते हुए करुण स्वर में कहा।

'उन्हें मारा किसने? वह तो किसीका बुरा नहीं चाहते थे।'

'इसीलिए तो मारा।'

'इसीलिए!' पूछनेवाले ने अचरज से कहा और चुप हो गया। वे सब इसी तरह बीच-बीच में बोल उठते थे और फिर रेडियो की ओर देखने लगते थे। वे शोक-विह्वल तो थे, उनकी वाणी उनके विचारों को वहन करने में असमर्थ थी। परंतु आँखें, उनकी मुद्रा…उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि गांधीजी को क्यों मारा गया।

आखिर क्यों?

लेकिन युग-युग से क्या मानव ने यही प्रश्न नहीं पूछा है? कृष्ण को अज्ञात नाम के शिकारी ने क्यों मारा था? क्यों तत्त्वज्ञानी सुकरात को विष का प्याला पिलाया गया? क्यों ईसा को सूली पर चढ़ना पड़ा? क्यों लिंकन को गोली से उड़ा दिया गया? क्यों? क्यों? क्योंकि वे किसीका बुरा नहीं चाहते थे।

यह कैसा अंत? यह कैसी कृतघ्नता? यह कैसा विधान? क्या है यह संसार-जाल? क्या है यह नियति-चक्र? क्या है स्वयं नियति? क्या जगत् ने अपने आरंभ से आज तक तनिक भी प्रगति नहीं की?

प्रगति और अंत एक ही चरण-बिंदु के नाम हैं, तो शोक वृथा है, मोह जाल है, ढोंग है, एक बीभत्स ढोंग।

मेरी करुणा उबल उठी। आँख का जल अंगार की तरह दहकने लगा। मैंने कहा, 'जिस संसार में गांधी की हत्या हो सकती है, उसके अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं। उसे नष्ट होना ही चाहिए।'

मैं फिर उत्तेजित होने लगा; लेकिन इस ओर किसीने ध्यान नहीं दिया। कमरे में गहरा सन्नाटा भर उठा था। और लाहौर रेडियो स्टेशन से एक गहन-गंभीर स्वर, जिसके कण-कण से वेदना उमड़ी पड़ती थी, धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगा—

ऐ कौम अब न छूटेगा, दामन से तेरे दाग,
गुल तूने अपने हाथ से अपना किया चिराग।
गांधी को कत्ल करके वह तोड़ा है तूने फूल,
तरसेगा लहलहाने को अब एशिया का बाग॥

मेरा दिल चीत्कार कर उठा। मैंने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया। पर मैं अकेला नहीं था। कमरे का प्रत्येक व्यक्ति रो रहा था। और बच्चे ठगे, सकपकाए देख रहे थे कि आखिर बात क्या है। शायद उसी प्रश्न के उत्तर में शायर ने तड़पकर कहा—

गला घोंटा गया जिस सरजमीं पर आदमीयत का,
वो तरसेगा हमेशा के लिए अब नामे इनसाँ का।

इनसान! मैंने आँसुओं को पीने का भीष्म यत्न किया। मुझे कुछ याद आ गया। कहते हैं, ईसा एक ही था, जिसे शूली पर चढ़ा दिया गया। मैंने कहा, 'मैं कहता हूँ कि इनसान एक ही था और उसे गोली मार दी गई।' जैसे मुझे ठीक करता हुआ गायक का दर्द भरा करुण स्वर फिर उठा—

किया कत्ल गांधी से मोहसिम को तुमने,
बताओ तो मोहसिम कुशी की भी हद है।

एक बंधु रोते-रोते बोले, 'इसमें शक नहीं कि गांधी का हमने कत्ल किया है।'

'हाँ, हमने किया है।' दूसरा स्वर उठा।

तीसरे ने कहा, 'हम चाहते तो उसे बचा सकते थे।'

माँ बोली, 'क्या वहाँ पुलिस नहीं थी? उस दिन किसी मेटगए ने बम भी तो फेंका था।'

एक पड़ोसी, जो अब तक चुप बैठे थे, दर्द भरे स्वर में बोले, 'माँ जी, वह अहिंसा के उपासक थे। वह पुलिस को कैसे अपनी रक्षा करने देते! और उन्हींको मार डाला। मारकर क्या लिया उन्होंने? कैसी अजीब बात है! जो जीवन भर अहिंसा की उपासना करता रहा, उसका अंत हिंसा से हुआ। लेकिन···' वह क्षण भर रुककर बोले, 'क्या यह अंत सिद्ध नहीं करता कि हिंसा एक बहुत बुरी चीज है?'

'बेशक, हिंसा पाप है। और मरते-मरते भी बापू उस पाप को प्रमाणित कर गए। बापू सचमुच महान् थे। उसी महान् को हमने गोली से उड़ा दिया।'

कमरे में फिर सन्नाटा छाने लगा। रेडियो अब निरंतर रामधुन गाता था—'ईश्वर, अल्लाह तेरे नाम, सबको सम्मति दे भगवान्।'

और मैं ध्यानावस्थित हो चला था। बापू जानते थे कि उनके प्राण संकट में हैं। पर उन्हें प्राणों का मोह नहीं था। उन्होंने बार-बार कहा था, 'प्रार्थना सभा में यदि कोई मारना चाहता है तो मार दे!' लिंकन को भी ऐसे ही चेतावनी दी गई थी। उसने कहा, 'शांति का युग आरंभ हो गया है। मुझे कोई क्यों मारेगा!' लेकिन बूथ ने उन्हें मार डाला। नहीं, बूथ ने उन्हें अमर कर दिया।

इन्हीं महापुरुषों की वंदना में कवि ठाकुर ने कहा—

'भगवान्! तुमने युग-युग में बार-बार अपने दूत भेजे। इस दयाहीन संसार में—वह कह गए सबको क्षमा करो। वह कह गए सबको प्यार करो—अंतर के विद्वेष का विष निकाल दो। वे वरण करने योग्य थे। वे स्मरण करने योग्य थे। परंतु हमने इस दुर्दिन में भी उन्हें घर के द्वार से ही कोरा नमस्कार करके लौटा दिया।'

यदि आज कवि ठाकुर होते तो अपने हृदय के रक्त में लेखनी डुबोकर गीत की अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार लिखते—'परंतु हमने इस दुर्दिन में भी अपने घर के द्वार पर उन्हें गोली से मारकर गिरा दिया।'

मस्तिष्क तेजी से भर्राया—गांधीजी को गोली मार दी। गांधीजी को। नहीं-नहीं, मैं क्या सोच गया। गांधीजी को भी कोई मार सकता है? उनके हृदय में तो भारत बसता है, सारी मानवता बसती है। क्या कोई मानवता को मार सकता है?

तभी देखा, मित्र लौट आए हैं। उनका चेहरा पीला पड़ गया है।

मैंने अचकचाकर पूछा, 'क्या हुआ? क्या बिड़ला भवन गए थे?'

'हाँ।'

'तो गांधीजी···'

'गांधीजी उसी तरह निर्द्वंद्व लेटे हैं। उनके मुख पर पूर्णतः दया और क्षमा के भाव हैं।'

भावना ने एक बार सबको तड़पा दिया। आँसू बाँध तोड़कर बह चले। भर्राए स्वर में एक बंधु बोले, 'वे योगी थे। उन्होंने उसी क्षण समाधि लगा ली होगी।'

'जी हाँ।'

मित्र बोले, 'वे समाधि में थे। गोली लगते ही उन्होंने 'हे राम' कहकर प्राण त्याग दिए।'

माँ बोली, 'तनिक भी नहीं तड़पे! कैसी मौत आई!'

और वह शांत हो गए। पास के कमरे में भी निस्तब्धता छा गई। रसोईघर उसी तरह अस्त-व्यस्त पड़ा रहा और वह लड़की उसी तरह दीवार से चिपकी खड़ी रही।

उसके बाप ने कहा, 'उसने खाना खाने से भी इनकार कर दिया।'

किसीने कुछ जवाब नहीं दिया। लाहौर से कोई व्यक्ति स्वर में गांधीजी के गुण गा रहा था, 'वे संसार के श्रेष्ठ मानव थे। वे अहिंसा और प्रेम के पुजारी थे।'

तभी बहुत देर से तन्मय, तल्लीन एक बंधु गंभीरता से बोले, 'मैं कहता हूँ, हम गांधीजी के लिए शोक क्यों करें! वे सैनिक थे और सैनिक की भाँति उन्होंने सीने पर गोली खाकर वीरगति प्राप्त की। उन्होंने अपने जीवन में अपने स्वप्नों को पलते देखा है। उन्होंने कोटि-कोटि मानव समुदाय को एक तराजू में गूँथा। वे अछूतों के त्राता थे और स्त्रियों के मार्ग-प्रदर्शक; वे किसानों के मित्र थे और मजदूरों के बंधु; वे गृहस्थों के सलाहकार थे, संन्यासियों के आदर्श। वे सबसे बड़े साम्यवादी थे। वे धर्म की मूर्ति थे। वे साहित्य को जीते थे। सत्य उनकी धमनियों का रक्त था और अहिंसा उनका प्राण। उनकी क्रांति शांत थी, उनका विद्रोह मधुर था। उन्होंने राजनीति के दूषित वातावरण में मानवता की प्राण-प्रतिष्ठा की थी। उनके अंतर में विरोधी तत्त्वों का अद्भुत सम्मिश्रण था। फिर भी वे महान् थे, क्योंकि वे मानव थे।'

मैंने प्रभावित होकर धीरे से कहा, 'वे महामानव थे।'

वे बोले, 'और उसी महामानव के लिए तुम रोते हो! वे महान् थे। उनका अंत भी इतना ही महान् है। क्या आज तक किसीने ऐसी मृत्यु पाई है? क्या कोई गांधी की तरह जीवन में सफल हुआ है? क्या कोई इनसान जीते-जी ईश्वर बना है? और क्या···' सहसा उनका गला रुँध गया। उन्होंने किसी तरह अपना वाक्य पूरा किया, 'और क्या, क्या किसी युग में इनसान ने ईश्वर को गोली मारी है?' और फिर आगे बोलने में असमर्थ हो उन्होंने आँखें भींच लीं। कमरे का गहन सन्नाटा एक बार फिर बह चला। एक बार फिर आँसुओं का बाँध टूट चला।

किसी देश के मुक्ति-यज्ञ में इससे पवित्र आहुति और क्या हो सकती है?

□

बी-१५१, महाराणा प्रताप एन्क्लेव,
पीतमपुरा, दिल्ली

नवांकुर

कविताएँ

सुषमा अग्रवाल

जन्म : ५ जनवरी, १९७९।
शिक्षा : बी.एस-सी. (गणित), एल-एल.बी. (प्रथम वर्ष) अध्ययनरत।
प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, गजल व गीतों का प्रकाशन।
कोटा आकाशवाणी से कविता व कहानी का प्रसारण।

नियति

नियति की बहती धारा को
बहने दो
करते रहो कर्म
फल की लालसा
रहने दो।

सुख के बाद दुःख
दुःख के बाद सुख
यही है जग की नियति
जीत सका न इसको कोई
संयोग-विरह यह ही करती
घाव स्वयं ही करती
समय-समय पर
हर जख्म भरती।

हाथ-पाँव फेंकता मनुष्य
कर बड़ा काम होता खुश
निष्फल हो जाने पर
हो जाता उदास
जान न पाता
नियति का राज
नियति के रहस्य को
जान न पाया कोई
अशुभ होता संकेत शुभकारी का
फकत एक सीमा-हरण से
नाश हुआ रावण दुराचारी का।

□

पथिक!

पथिक!
सँभलकर रखना पग
मंजिल की है अजब
डगर
पग-पग पर मिलेगा
छल-ही-छल यहाँ
कौन अपना, कौन पराया
किसको है पहचान यहाँ।

पथिक!
नेह-विश्वास है मरीचिका
नहीं इसका ठहराव यहाँ
भ्रमित है हर मन
बेकल सा, मतवाला
इठलाता है
नाहक भ्रमजाल में फँस
वो बावला हो जाता है।

पथिक!
अंतत:
पल ही में सपना सुनहरा
चूर-चूर हो जाता है
दिल के जर्रे-जर्रे में
इक कसक छोड़ जाता है।

□

१०८५, महावीर नगर-II,
कोटा-३२४००५

आवश्यक सूचना

प्रिय पाठको! 'नवांकुर' स्तंभ के अंतर्गत केवल पच्चीस वर्ष तक की आयु के लेखकों की ही रचनाएँ—कहानी, लघुकथा, कविता, आलेख, व्यंग्य आदि सभी विधाएँ—प्रकाशित की जाएँगी।

कृपया रचना के साथ अपनी जन्मतिथि का प्रमाणपत्र भी भेजें।

आपकी रचनाओं का स्वागत है।

व्यंग्य

फागुनी चिट्ठी

✍ रामनारायण सिंह 'मधुर'

फागुन भाई, तुम बिना बुलाए आ गए हो तो आओ, पर मुझे आतंकित तो मत करो, कष्ट तो मत पहुँचाओ। उनकी बात मैं कैसे कर सकता हूँ जो वर्ष भर तुम्हारे शुभागमन की प्रतीक्षा में पलक-पाँवड़े बिछाए रहते हैं और तुम्हारे आने पर 'ह्विस्की' में 'सोडावाटर' उड़ेल गटागट चढ़ा जाते हैं और लाल-लाल आँखें किए 'माल' को 'लाल' करने के चक्कर में पड़े रहते हैं और अवसर मिलते ही जरूरतमंदों की 'खाल' तक खींच लेते हैं। भंग-प्रेमी भी दिल खोलकर तुम्हारा स्वागत करते हैं। ये वो लोग हैं जो खुद तो मलाई खाते हैं, पर दूसरों की 'मलाई' निकाल लेते हैं और तरंग में आकर दूसरों की बीवी से छेड़छाड़ करते हुए फगुआ-कबीर गाते फिरते हैं—

फागुन के रंग में रँग दे रे।

भाई फागुन, उनके घर में तो बारहों मास 'वसंत' रहता है। ऊँचे अधिकारी, नेता भारी, नंबर दो के व्यापारी 'सोना' खाते हैं, चाँदी उगलते हैं। दीपावली भी उनकी, होली भी उनकी, दिलवाली भी उनकी। साथ छुटभैए बटमारों की, माफिया गिरोहों और पुलिसवालों की भी 'छन' जाती है; क्योंकि उन्हें न लाज है, न शरम है; न दया है, न धरम है; मुफ्त का माल है, दिल बेरहम है। जनता को सब्जबाग दिखलाते हैं और फूल-फल खुद चर जाते हैं, तो वे ही फागुन की मस्ती में मस्त हैं, बाकी सब पस्त हैं।

पर मेरी बात अलग है, फागुन भाई। मैं बेचारा दीन-हीन, सुख-विहीन जनता का एक हिस्सा हूँ, जिसे हर दिन सालता है और हर मौसम मारता है। हो सकता है, तुम्हारे आने के कारण 'बनन में, बागन में वसंत बगरता हो', मस्ती का आलम चढ़ता हो, रंग-अबीर-गुलाल का नशा चढ़ता हो और धनी आशिकों का मन बहलता हो; पर मैं पिस-पिसकर घिस गया हूँ। कृष्ण अभिरामा नहीं, सुदामा हो गया हूँ। न नौकरी, न चाकरी, जीना क्या खाक री। जो टूटी-फूटी चप्पल थी, अब वह भी फटाफट फूट-फूट मेरे बिवाई फटे श्रीचरणों के विरह में कोने में पड़ी-पड़ी आँसू बहा रही है। सारा परिवार मेरा विरोधी हो गया है। मेरे लिए बापश्री 'डेड' और अम्माश्री 'मम' हो गई हैं। हिंदी से एम.ए. करके मैंने शामत मोल ली। सर्वत्र अंग्रेजी की पूछ है हिंदुस्तान में, हिंदी को कोई नहीं पूछता। शासन से लेकर प्रशासन तक हिंदी के नाम पर घड़ों घड़ियाली आँसू अवश्य बहाते हैं, पर काम अंग्रेजी का करते हैं। किसी शुभचिंतक से सूचना मिलते ही मैं दैनिक 'हिंद भारत' के दफ्तर में पहुँचा। मालिक के हाथ में सिफारिशी पत्र थमाया।

उसने पत्र पढ़ा और मुझे देख बुरा सा मुँह बनाया, थोड़ा हँसा और थोड़ा गुर्राया—'अंग्रेजी आती है?'

'श्रीमान, मैं हिंदी में एम.ए. हूँ। मुझे अंग्रेजी नहीं आती।'

'अंग्रेजी नहीं आती तो यहाँ क्या लेने आए हो?'

'लेने नहीं, साहब, नौकरी करने आया हूँ। आपके समाचार-पत्र में संपादक की जगह रिक्त है। फिर हिंदी के अखबार में अंग्रेजी का क्या काम?'

'हिंदीवालों को अक्ल होती तो समझते। बिना अंग्रेजी के हिंदुस्तान कैसे चलेगा? चलो यहाँ से! अंग्रेजी आती नहीं और चले आए नौकरी करने।'

तुलसी बाबा से मुझे प्रेरणा मिली, 'विनयपत्रिका' पढ़कर—

कबहुँक अंब अवसर पाइ,
मेरी हू सुधि लायवो कुछ करुण कथा चलाइ।

साहब लोग अपनी बीवियों से डरते हैं और उनके कहने पर काम अवश्य करते हैं। तब माता सीता की बात भगवान् श्रीराम नहीं टाल पाते थे तो आज के श्री एस.एन.सी. साहब अपनी 'वाइफ' लूसी की बात कैसे टाल देंगे? सो लूसी की नौकरानी फूटी को पटाया। फूटी ने बताया कि मेम साहब के पास पिंकी नाम की एक खूबसूरत कुतिया है, जो उसे प्यार करता है, उसका काम अवश्य हो जाता है। उस दिन से मैं साहब के बँगले का चक्कर काटने लगा, पर बड़े फाटक पर एक बंदूकधारी मुँछक्कड़ संतरी को देख भीतर जाने का साहस जुटा नहीं पाता था। पर जिन खोजा तिन पाइयाँ के अनुसार एक अवसर हाथ लग ही गया। फाटक खुला था, संतरी भी नहीं था और पिंकी—अति सुंदर-सुघड़, शानदार कुतिया 'पिंकी' शान से लॉन में टहल रही थी। मैंने झपटकर उसे उठा लिया और वह भों-भों कर चीखने लगी।

मेम साहब बँगले के भीतर से दौड़ती आईं और चिल्लाने लगीं,

'हाय, कुतिया चोर, कुतिया चोर! डैमफूल-डैमफूल! हाय-हाय!'

न जाने कहाँ से संतरी चीखा, 'खबरदार।'

मैंने कुतिया को वहीं पटका और भाग खड़ा हुआ। पीछे से गोली छूटने की आवाज आई; पर मैं बाल-बाल बचा। यह बात अलग है कि उस हरामजादी कुतिया के काटने के कारण चौदह इंजेक्शन पेट में भोंकवाने पड़े।

पागलपन जब सवार हो, तो राजरानी भी भिखारिन बन जाती है। मीरा भी अजीब सनकी थी। महल छोड़, अटारी छोड़, पद और जागीरदारी छोड़ गिरधर नागर के प्रेम में दर-दर भटकी थी। मीरा की जगह मैं होता तो दो-चार और रियासतों को हथियाने की कोशिश करता।

पर फागुन भाई, मुझे एकदम मरा हुआ मत समझ लेना; काया जरूर जीर्ण हुई जा रही, किंतु साँसें चल रही हैं। तुम्हारे आते ही इस फटीचरी काया में भी कुछ यूँ-यूँ होता है, मन चंचल हो मचलता है और कुछ कर गुजरने के लिए लपकता है। जी चाहता है, किसीके गोरे न सही, काले ही सही, फूले गाल पर गुलाल लाल मल दूँ, छेड़छाड़ करूँ और चल दूँ। पर मैं बेचारा तुम्हारे रतनारे नयनों का मारा विवश हो जाता हूँ, करना चाहकर भी कुछ कर नहीं पाता हूँ। क्या करूँ भाई, ऐब है, पर जेब नहीं है। इसीलिए तो तुम्हें चिट्ठी लिखकर विनती कर रहा हूँ, आना है तो आओ, पर मुझे न सताओ।

चिट्ठी की बात पर मुझे दीवानी मीरा की याद आ गई। पागलपन जब सवार हो, तो राजरानी भी भिखारिन बन जाती है। मीरा भी अजीब सनकी थी। महल छोड़, अटारी छोड़, पद और जागीरदारी छोड़ गिरधर नागर के प्रेम में दर-दर भटकी थी। मीरा की जगह मैं होता तो दो-चार और रियासतों को हथियाने की कोशिश करता। खैर, इस मीरा ने अपने श्यामसुंदर को पत्र लिखना चाहा, पर लिखा नहीं जा सका—

पतिया मैं कैसे लिखूँ, लिखियो न जाय।
कलम गहे मोर कर काँपत है, नैन रहे झर लाय॥

मेरी स्थिति वैसी नहीं है, क्योंकि मैं इतना रो चुका हूँ कि आँखों में आँसू ही नहीं रहे। हाँ, कलम-भार उठाने की क्षमता हाथों में अवश्य है, जिससे तुम्हें पत्र लिखने में समर्थ हो पा रहा हूँ। चिट्ठी भी क्या प्यारी चीज होती है—किसी प्यारे ने किसी प्यारी को लिखी हो तो। बिहारी की नायिका किस अदा से पत्र बाँच रही है—

कर ले सूँघ चढ़ाय सिर उर लगाय भुज भेटि।
लहि पिय पाती प्रेम की बाँचति धरति समेटि॥

बड़ा मजा आया होगा नायिका को—'स्वीट सेंटेड', प्रेम की सुगंध से गमकती प्रेम-पाती पाकर। तभी तो वह उसे सूँघती है, सिर पर धारण करती है, भुजपाश में आबद्ध करती है, छाती से लगाती है, बार-बार पढ़ती है और समेटकर हिफाजत से रखती है। धन्य है नायिका और धन्य है प्रेम-पाती। सौभाग्यशालियों को ही ऐसी पत्रिका नसीब होती है।

मैं ठहरा निकम्मा, बेरोजगार, अभागा! मुझे कौन लिखेगा ऐसी चिट्ठी और क्यों लिखेगा?

फागुन भाई, मुझे तो सताते ही हो, किंतु दूसरे बेचारे विरही जन भी तुम्हारे गुलाबी आगमन से कम संतप्त नहीं होते। अब यही देखो न, फाल्गुनी मौसम की छेड़खानी से दुःखी एक विरही प्रेमी को बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है—

हुआ हूँ मैं एक बेजार तेरी जुदाई से,
कि चींटी खींच ले जाती है मुझे चारपाई से।

लगे हाथों एक विरहिणी की दुःखद-दयनीय हालत भी देख लो—

करी विरह ऐसी दशा तऊ गैल न छाड़त नीच।
दीन्हे हू चश्मा चखनि चाहे न मीच॥

हाय, बेचारी की कितनी दुर्दशा नीच विरह ने कर रखी है, फिर भी उसकी गली छोड़ने के लिए तैयार नहीं। वह मरणासन्न है, फिर भी आँखों पर चश्मा लगाकर खोजने पर भी मृत्यु उसे ढूँढ़ नहीं पा रही है।

मृत्यु विरहिणी को ढूँढ़ रही है और मैं मृत्यु को। ऐसा जीवन भी किस काम का? घट है, पनघट है, जमघट है, अलबेलों का रेला है, सुंदरियों का मेला है। एक-दूसरे को देख रहे हैं, हँस-हँसकर छेड़ रहे हैं और छेड़-छेड़कर हँस रहे हैं। अबीर-गुलाल मल रहे हैं। थिरक-थिरककर मटक रहे हैं और मटक-मटककर थिरक रहे हैं। मस्ती का प्याला ढल रहा है और यही मुझे खल रहा है।

एक कविजी चिल्ला-चिल्लाकर कविता पढ़ रहे हैं—

ऐ मेरे गुलाल उड़ वहाँ चला जा,
जहाँ कहीं भी हो कोई बेदाग चुनरी।

अब कोई उस अहमक कवि से पूछे कि वह बेदाग चूनर लेकर करेगा क्या? और इस जमाने में उसे बेदाग, निर्मल, स्वच्छ चूनर मिलेगी भी कहाँ? मान लो, कहीं हो भी तो इस मरियल कवि की प्रतीक्षा में क्या बैठी मिलेगी?

मुझे तो भाई, दागदार ही लोग अच्छे लगते हैं। जो कुछ करते ही नहीं, उन्हें दाग भला लग भी कैसे सकता है! बगुलाभगतों को दूर से ही प्रणाम। कोई दागदार चाहनेवाला मिले तो बताना। □

बारापत्थर, सिवनी-४८०६६१ (म.प्र.)

पाती

ये उपेक्षणीय नहीं

प्रस्तुति—ऋषभ प्रसाद जैन

सानपुर (बनारस)
६/१०/७१

प्रिय भाई श्रीनारायणजी, पालागन।

आपके ३ ता. के पत्र से कई ऐसी बातें मालूम हुईं कि जिनका मुझे पता तक न था!

श्री यशपाल जैन ने मुझसे कहा था कि श्री शंभुनाथ शुक्लजी ने मेरी फाइल को निकलवाकर उसपर पेंशन संबंधी आर्डर दिया था, जबकि श्रीमान मिश्राजी ने उसे यों ही डाल रखा था! पर श्री शंभुनाथजी की इस कृपा के पीछे आपका हाथ था, यह बात मुझे बिल्कुल मालूम न थी! और देश द्वारा प्रदत्त उस पेंशन से मुझे बहुत मदद मिली है और यावज्जीवन मिलती रहेगी।

श्री C.B. Gupt को भी आपने लिखा था, यह मुझे पहली बार ही मालूम हुआ। हाँ, स्व. हेमचंद्र जोशी ने मुझे आपकी उदारतापूर्ण सहायता का वृत्तांत बतलाया था। उन्होंने मजाक-मजाक में कहा था—'चौबे लोगों की मुझपर सदा से कृपा रही है!' जब मैं खंडवा में मरणासन्न था तब भाई माखनलालजी ने मेरी प्राणरक्षा की थी और अब भाई श्रीनारायणजी की कृपा से मैं रोटी खा रहा हूँ! और आप भी चतुर्वेदी ही हैं जो यहाँ मेरे घर पधारे हैं!'

जोशीजी को आतिथ्य की बीमारी थी, जो बहुत खर्चीली होती है! कॉफी के साथ स्वादिष्ट पदार्थ खिलाने का उन्हें शौक था। यदि उन्हें पेंशन न मिली होती तो सचमुच घोर संकट में पड़ जाते। श्री सुचेता कृपालानी को संपूर्णानंदजी ने लिखा था इसका पता हीरू चौबे से मुझे लग गया था जो मेरे भानजे होते हैं। और फिर स्वयं संपूर्णानंदजी ने भी पत्र में लिखा था कि मैं पेंशन अस्वीकृत न करूँ। साल भर वह मुझे मिली, फिर प्रश्नावली का उत्तर न भेजने के कारण वह बंद हो गई। वह प्रश्नावली अगौरवजनक थी और मैंने उसका उत्तर नहीं दिया था।

श्री वेडू टेरा नारायणजी तिवारी की अंतिम सहायता का मुझे पता नहीं था। हाँ, एक बार उन्होंने मुझे बतलाया था कि उनके जेल चले जाने पर उनकी किसी पुस्तक को खरीदवाकर उनकी मदद की थी। आपकी उदारतापूर्ण कार्रवाइयों का पता पूज्य दद्दा (मैथिलीशरण) को था और उन्होंने ही मुझसे कहा था—

'चौबेजी तो मध्ययुग के किसी महाराजा के आधुनिक अवतार हैं, जो न जाने कितनों को शरण देते रहते हैं।'

चि. रामगोपाल से भी आपकी उदारता की कथाएँ बराबर सुनता रहता हूँ।

इन तमाम गुणों के बावजूद मैं आपकी सद्नेकशीलता को अक्षम्य ही मानता हूँ। पूज्य पिताजी के साहित्यिक श्राद्ध की उपेक्षा इतने वर्ष तक नहीं होनी चाहिए थी। इसके सिवाय अपनी साहित्यिक प्रतिभा की भी उपेक्षा सर्वथा अक्षम्य ही मानी जाएगी।

प्रयत्न करके आत्मविज्ञापन कराना (जैसाकि अनेक साहित्यिक आज कर रहे हैं।) तो छोकरेपन की निशानी है, पर स्वाभाविक टङ्ग पर जो कीर्ति मिले उसका स्वागत ही होना चाहिए।

'विनोदशर्मा अभिनंदन ग्रंथ' को मैं वस्तुतः अपना अभिनंदन ग्रंथ ही मानता रहा था, क्योंकि ८००) अपने पास से खर्च करके आपने दरअसल मेरा ही अभिनंदन किया था। अप्रत्यक्ष रूप से मुझे वह कीर्ति प्रदान की गई थी!

इस प्रकार की कीर्ति हमारे उद्देश्यों में परम सहायक होती है, इतना तो मानना ही पड़ेगा। जिस किसीको अपना संदेश दूर-दूर तक भेजना हो वह उस कीर्ति या विज्ञापन को तिलांजलि नहीं दे सकता। मैं केवल इसी भाव से उन अत्युक्तिमय प्रशंसाओं को सहन कर लेता हूँ, यद्यपि अपनी त्रुटियों से भलीभाँति वाकिफ हूँ।

यद्यपि 'सरस्वती' को जीवित ही रखना है, पर आपका स्वास्थ्य उससे भी अधिक कीमती चीज है—अमूल्य पदार्थ है। मैंने सुना था कि आप कोई व्यायाम नहीं करते! टहलना तो सभी के लिए लाभप्रद है।

'हिंदी पत्रकारिता तब और अब' पर मेरा लेख आपको पसंद आया, यह जानकर हर्ष हुआ। अंक के छपने पर उसके बारे में अन्य लेखकों को लिखकर उनके विचार मँगाने का प्रयत्न करूँगा। स्व. हेमचंद्रजी पर तो शायद चिरंजीव बुद्धि प्रकाश कुछ लिख सके। कानपुर के श्री नरेश चतुर्वेदी ने किसी पुराने पत्रकार का चित्र मुझे भेजा था, जो संकट में थे। उन्हें लिख रहा हूँ।

पुनश्च 'स्वतंत्र भारत' के संपादक महोदय की मुझपर विशेष कृपा थी। वे मेरे डेरे पर मुझसे मिलने पधारे थे। जबकि नरेश के विवाह में

मुझे लखनऊ जाना पड़ा था। मैंने भी उनके कार्यालय पर हाजिरी दी थी। उनकी अकाल मृत्यु सचमुच बड़ी प्रद्यत्य है।

आपने निस्संदेह बड़ा पुण्य कार्य किया है।

श्री वचनेश त्रिपाठी को मैंने लिखा था कि उनके संतप्त परिवार तक मेरी सहानुभूति पहुँचाएँ।

फीरोजाबाद
२७/८/६८

प्रिय भाई श्रीनारायणजी, पालागन।

जाकौ परयौ सुभाव, जाइगौ जीतें।
नीम न मीठौ होइ सींचि गुर घी तैं॥

सो चिट्ठी लिखिवे की हमारी आदत अब छूटिवे से रई! जऊ एक बीमारी ऐ। बिधुरन कों जादा लगति ऐ! पैलें चालीस रुपैया महीना को खच्च हो सो अब साठ कौ हौ गयौ। पर अपनौ काम जिजमानन से कछु न कछु चल्त रहौ ऐ। ओरछा महाराज की ढाइ सौ की पेंसन से (जाकें लऐ आपने ऊ कोसिस करी—शंभुनाथ शुक्लजी से कहिकें) भौत मदद हौ जाति है।

उर्दू वारे लेखक कौं घंटा भर के तीन रुपया और हिंदी वारे को दो घंटा के ३०) देतैं। Typist तो अभैं ८०) पै रकवौ ऐ, सो एक प्रकाशक से advance लैकें, पर काम कछू होत नाँइ!

तौल में १४-१५ सेर घटि जाइवें सें फिकिर हौ गई, पर अब घटनौ बंद है गयौ ए और एक सेर बढ़ि गए हैं। भूकऊ लगन लगी ऐ। पैरन को लरखराइवौऊ अब कम ऐ। अभै कछू दिन और ऊ जिंदा रैनो ऐ।

ब्रजभाषा को अभ्यास बिल्कुल छूट गयौ। अब खड़ी बोली लिख्यते!

हाँ, मजदूरी लेने वालों की संख्या २५% से ज्याद: न होगी। पर जो भी पारिश्रमिक की आशा रखते हों, उन्हें पत्रं पुष्पं फलं तोयं से संतुष्ट करना ही चाहिए।

किसी तरह गुंताड़ा लगाकर अगर गांधी शताब्दी पर सोहनलालजी को रूस की यात्रा कराई जाय तो उन्हें पता लग जाय कि रूस में बच्चों के लिए कितना काम हो रहा है! श्रीमती कमला रत्नम अब रूस में ही हैं क्या? उनको लिखा जा सकता है।

भाई सोहनलालजी का वह रूप ही मुझे अच्छा लगता है, जब वे झंडा फहरानेवालों से जवाब तलब करते हैं।

वही उनकी सर्वोत्तम कविता है। 'विशाल भारत' के दिनों से मेरा उनका घनिष्ठ संबंध रहा है और निस्संदेह उन्होंने वि.भा. को लोकप्रिय बनाने में काफी मदद दी थी। उनकी ओजस्वी वाणी में विचित्र आकर्षण है। उनमें यदि कुछ त्रुटियाँ हों तो उनकी ओर मेरा ध्यान नहीं गया। कभी पूरे दिन भी साथ रहने का मौका नहीं मिला।

लखनऊ मुझे पहुँचना ही चाहिए, पर स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति में वह खतरनाक है। चार महीने की बीमारी ने (जो under nourishment तथा over-work के कारण थी) झकझोर दिया है। २ अक्तूबर के बाद कहीं जाने की सोचूँगा। हाँ, सितंबर में नैनीताल की सैर करने की इच्छा है।

पं. झाबर मल्लजी का पत्र इधर बहुत दिनों से नहीं आया। हम लोगों से ४ वर्ष बड़े हैं।

महाराज वीरसिंहदेव के पौत्र मधुकर शाह कुछ घंटों के लिए पधारे थे। वे किसान बन गए हैं। वैसे इतिहास में Ist Class से उत्तीर्ण हुए थे। बड़ी मीठी बुंदेलखंडी बोलते हैं। a boy with a sound commonsense. मैंने कहा था कि और देश की एक संक्षिप्त जीवनी छपनी ही चाहिए। आपने भी पहले लिखा था।

मैंने ७५वीं वर्ष २४ दिसंबर को ही समाप्त कर ली थी। अब ७६वीं चल रही है। जो उम्र में छोटे थे—नवीनजी, पालीवालजी प्रभृति—उनके चले जाने से सूना-सूना सा लगता है।

भाई हरिशंकरजी बड़े थे। जाना तो सभी को है, पर ठीक समय पर जाने में ही कल्याण है। सिवाय हँसी-मजाक के अब मुझे दूसरा काम नहीं करना।

१२/८/१९६२

प्रिय भाई साहब,

जहन्नुम और कुंभीपाक में कौन Preferable है, इसका फैसला अरबी तथा संस्कृत के घोर विद्वानों द्वारा ही कराया जा सकता है, बहरहाल श्री संपूर्णानंदजी ने नरक जाने से, इसलिए इनकार कर दिया है कि वहाँ उन्हें मेरा कुसंग प्राप्त होगा! वैसे वे अपने हुक्के के लिए नरक से अग्नि मँगाने के इच्छुक थे।

'भिन्न-भिन्न धर्मों के स्वर्ग और नरक' यह एक अच्छा विषय है, जिस पर शोधपूर्ण लेख लिखा जा सकता है।

'चाहैं वहै धाम जहाँ गणिका
सिधाई, जऊ पास में न
दाम कछू सुकृत कमाई है'

रत्नाकरजी की यह कविता आपने पढ़ी ही होगी।

और लाखों बरस की हूरों वाले स्वर्ग तथा अप्सराओं के क्रीड़ास्थल, क्या ये आप जैसे धार्मिक व्यक्ति के लिए कुछ भी आकर्षण नहीं रखते?

यह चिट्ठी मैंने प्रात:कालीन भ्रमण के समय ताल कटोरा-उपवन में लिख ली थी, फिर मुझे इलहाम हुआ कि जो लोग मालूम, ईमान, दूकान तथा किताब को इस्तैमाल करते हैं, उन्हें जहन्नुम ही भेजना होगा। 'नर्मदा' का विशेषांक पहुँचेगा। मेरा संपादकीय पढ़ लीजिए।

विनीत
बनारसीदास

कविताएँ

वसंत

✍ वंशी माहेश्वरी

वसंत अतिथि

अभी-अभी चला गया वसंत
कुछ कह पाता
निर्वाक् गुमसुम धूल उड़ाता चला गया वह

उसका जाना
पता नहीं की तरह
पता चला जब
तब उसका विन्यास इतना भर रहा
जैसे बंद दरवाजों, बंद खिड़कियों, बंद
रोशनदानों पर
सुबह-सुबह
अंतिम ओस की
अंतिम बूँदें
झिलमिलाती रहती हैं अंतिम बार

अंतिम बार
अंतिम आरंभ की शुरुआत होते-होते
चला गया वह
जैसे अतिथि अतीत की तमाम स्मृतियों को
झाड़-पोंछकर
उठकर चला जाता है आहत। □

सखि वसंत कहाँ

कवि निराला का वसंत
वसंत का निरालापन रहा कभी
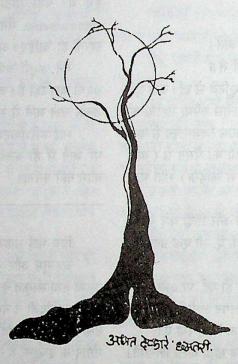
सखि!
कहाँ है वसंत
पूछती है खुद से सखि

ओ सखि!
अभी-अभी वसंत
आटा-दाल के खाली कनस्तरों की
पेंदी से चिपका
रसोईघर से
बिना बोले, बताए कहाँ चला गया?

झोला लटकाए
मोल-भाव करता
अपने को तौलता
बाजार की सबसे तंग गली के मुहाने पर
उकड़ूँ बैठा है
वसंत! □

वसंत समाधिस्थ

अर्वाचीन स्मृतियों की काया में
उथली चट्टान पर
पालथी मारे
असहाय निरीह परास्त सुस्ताता बैठा है वसंत

अपनी अनंत
उपमाओं प्रतीकों के रहस्य समेटे
संस्कृति के खंडहर में
भग्नावशेष शब्दों से
अर्थ खोजता
संवाद खोलता

कातर वसंत
समाधिस्थ है। □

वसंत शब्द

वसंत!
अब तुम शब्द भर हो
तुम्हें जानना
शब्दकोश में खोजना है

ये सच है
सच ये नहीं है तो
सच ये है कि वसंत
पीढ़ी-दर-पीढ़ी तुम्हारी
बहुविध महिमा गाई जाती रही है

अब पीढ़ी

जिस सीढ़ी से आ रही है

वसंत!
तुम शब्द भर होकर
जीवन के व्याकरण में
शास्त्र की तरह
उछलते रहोगे।

□

वसंत उलटबासी

वसंत!
आज भी तुम
वही भाव-प्रवणता में विभोर हुए
मनुष्यों की धरती पर
आह्लाद बीज लिये आते हो

तुम्हारी प्रतीक्षा
घड़ी के काँटों में बिंधकर
हताश हो चुकी है
तुम अभी भी
प्रकृति के रंगों का कलश छलका रहे हो
छल का यह असीम विश्वास
तुम्हारी गहरी पीड़ा का सुखद अवसाद है

जिस तरह तुम आए हो अभी
उस तरह
कुछ भी बचा नहीं है शेष
जो अवशेष है
उसका आस्वाद फिर भी बचा रहने दो

मेरे मर्मांत उलटबासी वसंत
तुम्हारा आना
जाने की तरह ही है। □

वसंत तिथि

वसंत
अब तुम सिर्फ तिथि हो
जन्म और पुण्य
दोनों तिथियों की मात्र जीती-जागती तसवीर

जिसे
एक साथ
सार्वजनिक रूप से
मनाई जाती है।

□

५७, मंगलवारा,
पिपरिया-४६१७७५ (म.प्र.)

कविताएँ

पाँच वासंती हाइकू

✍ नास्तिक

: १ :
आया वसंत
गुनगुनाने लगे
बैरागी भौंरे।

: २ :
वसंत हँस
रहा, लिये हाथ में
सुर्ख पलाश।

: ३ :
वसंत सोचे—
कैसे हुए सरसों
के हाथ पीले।

: ४ :
उड़ी वासंती
धूल, खिले अलसी
के सभी फूल।

: ५ :
सुन वसंत
की आहट, झूमने
लगी सेमल।

□

२४२५, गाड़ी अड्डा,
हाट मैदान, महू-४५३४४१
(म.प्र.)

॥ किला : एक कविता है ॥

✍ श्यामसुंदर दुबे

प्राचीन किलों में हम जाते हैं—उनके भीतर की अंतर्ध्वनियाँ सुनने के लिए। ये अंतर्ध्वनियाँ इतिहास के आहातों से प्रस्फुटित नहीं हो पातीं। किलों में इतिहास नहीं रहता; किलों में रहता है वह जर्रा-जर्रा थरथराता-दमकता समय-स्पंद जो किला को किला नहीं रहने देता। किला बदल जाता है—एक जीवित किंवदंती में। इतिहास समय की नदी में विशाल चट्टान-सा अड़ा रहता है; जबकि किंवदंती इस नदी जल में घुल-मिलकर बहनेवाली सोंधी मिट्टी की कटान की तरह निरंतर नदी के साथ रहती है। इतिहास की शिराओं में जो एक रक्त-स्रोत गतिशील रहता है, उस रक्त-स्रोत की गरमाहट को आप अनुभव कर सकते हैं किसी किले में घुसकर। किला, लगेगा कि इतिहास की बाईं बाजू में दिल जैसा कुछ धड़क रहा है, और उसकी धड़कनें आपके अपने हृदय से अपने इलेक्ट्रोड जोड़ चुकी हैं। इन इलेक्ट्रोडों में जो विद्युत् आवेश है, वही विद्युत् आवेश किले की प्रत्येक दीवार में, प्रत्येक ईंट में, प्रत्येक प्रस्तर में, खिलते-झड़ते पलस्तर में, रंगों भरी छतों-मेहरावों में, स्तंभों में और जालीदार झरोखों-दरवाजों में एक साथ प्रवाहित होता है। इसका एक ही झटका आपको झन्ना देता है और किला आपके सामने अपनी आलथी-पालथी खोलता हुआ, अँगड़ाई लेता हुआ खड़ा होता है और बतियाने लगता है। जब किला आपसे बतियाने लगता है तब आपके बाजू में खड़ा गाइड फेडअप होकर वर्तमान में घुल जाता है, और आप हैं कि वर्तमान से अतीत और अतीत से वर्तमान होने लगते हैं—किसी हलकी सी संवेदन-यंत्रणा के दबाव में।

दो रोज पहले मैं ओरछा में था, जहाँ ओरछा महोत्सव का आयोजन था। ओरछा किलों का केंद्र है। मधुकर शाह, रामसिंह, इंद्रजीत सिंह, कवि केशव, नर्तकी प्रवीणराय, रानी गणेश कुँवरि, जुझार सिंह, हरदौल और न जाने कितने नायक-नायिकाएँ—और महलों की एक लंबी श्रृंखला रानी महल, शीशमहल, जहाँगीर महल, पालकी महल, राजा महल, प्रवीणराय महल—अपनी स्मृतियों की आँच में दहक रहे थे। उस खिले वसंत की संध्या में जब ओरछा का जंगल पलाश की मशालों से प्रदीप्त होने की तैयारी कर रहा था, और बेतवा की काली चट्टानों को धोता-पछोरता जल गहरे हरेपन में बदल रहा था, और बेतवा के किनारों की चट्टानें कुछ-कुछ मूँगिया-सी हो उठी थीं। चौचीरु फैली जंगल की साँवली सघनता में ओरछा का इतिहास रहस्य ही रह जाता मेरे लिए, यदि यह शाम केवल पर्यटकों के लदे-फँदे एयरबैगों में ही कुछ हवा के बुलबुले भरती रहती और ठहरने-सोने के नाम पर कॉटेज-होटलों के चक्कर लगाती रहती; लेकिन मैं चला था घर से महाकवि केशव की काव्य भाषा का आतंक लेकर।

कैसी भाषा थी केशव की! जगमगाती सी भाषा! किसी भुतहा किले में लिखी अस्पष्ट चित्र वीथी-सी भाषा! किसी शास्त्रीय नर्तकी की गूढ़ पद-निक्षेप भंगिमा के साथ बजती, खम्माच से निकलती-फूटती आलाप में चढ़ती और चढ़ती राग-भाषा सी! किले के कँगूरों जैसी नक्काशीदार भाषा। संपूर्ण यात्रा में यह भाषा मेरे जेहन में किसी स्वर्ण शैल-सी दमकती रही थी और मेरे सामने जंगल पर जो वसंत उतर रहा था हौले-हौले, वह मैं नहीं देख पा रहा था। केशव भी इस जंगल को कहाँ देख पाए थे! उनकी भाषा में यह जंगल अगर थोड़ा भी लहक जाता, कुहक जाता, दहक जाता तो केशव किलों के भीतर कठिन काव्य के प्रेत बनकर अपने आचार्य प्रलापी स्वरों में आज आर्तनाद करते मुझे न मिलते। उनकी कविता भी शब्द-नदी के प्रवाह में इतिहास की तरह अटकी नहीं रह जाती। पंडितों, आचार्यों और समीक्षकों ने केशव को हृदयहीन कहा जरूर है, किंतु ओरछा में हृदयहीन होकर न तब रहा जा सकता था, न अब!

यह शाम इतिहास में सेंध लगाने को तैयार थी, और इतिहास की दीवार में मोखा बना कि एक लोकगाथा कि किंवदंती इस मोखे में से झाँकने लगी। मुझे लगा जैसे इतिहास के भीतर से लिखने लगी है कोई एक अजस्र धारा अपने वेग के साथ बुंदेलखंड के गाँव-गलियारों को डुबाती-बहलाती! पहले पलस्तर टूटा, फिर ईंट उखड़ी, फिर दीवार भरभराई और फिर एक दरवाजा सा खुला। सामने शीशमहल के आँगन में मंच पर ढफली बज रही थी और हरदौल के जीवन चरित्र को गाया जा रहा था। इतिहास जहाँ ठिठक गया था वहाँ से वह किंवदंती मानवीय भावनाओं का ज्वार सा उठाती प्रवेग से बह निकली थी। बुंदेली डाँगों, गाँवों, कस्बों और लोक-जीवन के भीतर से आस्था और विश्वास की तुंग तरंगावलि बनकर।

ऐन हरदौल की समाधि के पास हरदौल का जीवन चरित्र गाया जा रहा था, और मंत्रमुग्ध भीड़ हरदौल के चरित्र में डूबती-उतराती किलों में कैद इतिहास की गिरफ्त से छूटकर, शाश्वत समय की प्राण स्पंदित कथा में खोज रही थी—बुंदेलखंड की सांस्कृतिक परंपरा के अप्रतिहत क्षणों में ऊर्जस्वित् होते संबंधों की पवित्रता की प्रामाणिकता पर अपना सील-ठप्पा लगाती, अपना अँगूठा छापती मृत्यु कथा की कठिन त्रासदी को। हरदौल ने अपनी जिस भाभी को माँ माना उसी भाभी के चरित्र पर

संदेह की काली छाया डालनेवाली राजनीति ने हरदौल के बड़े भाई जुझारसिंह के मन में अपने छोटे भाई के प्रति आशंका के बीज बो दिए। पत्नी के पातिव्रत्य की सच्चाई को जाँचने के लिए जुझारसिंह ने अपनी पत्नी के सामने एक कठिन प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव था कि वह अपने देवर हरदौल के भोजन में विष मिलाकर उसके प्राण हर ले। स्त्री अपनी पवित्रता के प्रमाण हेतु अग्निस्नान कर सकती है, अपने आपको निर्माल्य की तरह गंगा में प्रवाहित कर सकती है; करती आई है और निर्वासित होती रही है। स्त्री के भीतर आत्मत्याग का जो निर्मोह संकल्प भाव जाग्रत् रहता है, वह उसके संपूर्ण आसक्ति-व्यापार के बीच समूचे सर्जन की हरी-भरी दूर्वा से ढका-मुँदा शीतल सुखद जीवन-तल्प को भी रचता रहता है। इस तल्प के भीतर पृथ्वी लावा भी पालती है। इस लावा में पृथ्वी रूपी स्त्री अपने को तो झुलसा सकती है, किंतु दूसरों को नहीं। दूसरे के प्राण लेने के क्षण में उसका मातृत्व भाव अपनी पूर्ण वत्सलता में जाग जाता है।

भाभी अपने देवर को कैसे जहर खिलाए! वह जहर मिली रसोई पका रही है। रो रही है, आँसुओं की धार आटा गीला कर रही है। वह हरदौल से कहती है, 'देवर, तुम भोजन मत करो। इस भोजन में मैंने विष मिला दिया है। तुम थाली एक तरफ सरकाकर भाग जाओ।' लेकिन हरदौल भी कहाँ माने। वे जीम गए भाभी के हाथ से पकाई गई विषमय रसोई। हृदय के गहनतम अंतर्द्वंद्व को कैसे सँभाला होगा भाभी ने? उनका मातृत्व कितना ससेवन सूखा होगा? हरदौल चरित गानेवाले की आँखों से आँसू बंद नहीं हो पा रहे थे। वह रोते-रोते गाता जाता था। पूरी जन मेदिनी डबडबाई आँखों से यह समूचा दृश्य अपने कल्पना-पट पर बुन रही थी। एक स्त्री की पवित्रता की प्रामाणिकता से अपने को जोड़ देनेवाले हरदौल का आत्मविसर्जन कितना सात्त्विक और कितना उदार है! शब्द की सीमा में यह भाव नहीं समा सकता है। संबंध व्यापार की ऊष्मा का यह पक्ष इतिहास के दुर्दांत पहिए की गति-भंगिमा में कहीं हिलगा तक नहीं मिलेगा। किले के भीतर से फूटती यह भावगाथा इतिहास की अदालत में जीवन की सुनवाई है।

इतिहास की सपाट धारा के ये गहरे विवर्त किलों में ही उठते रहते हैं। किलों में समाया जीवन-व्यापार किलों की रहस्यमयता नहीं है। वह किलों की अद्‌भुत सर्जन-संभवा दुनिया है। अपने निर्माणकाल में जो वस्तुएँ मात्र कलाकृतियाँ रहती हैं, कालांतर में वे इतिहास बनते-बनते प्रकृति बन जाती हैं और सर्जन-स्फुरण से भरकर जी उठती हैं। उनके गर्भ से नई-नई कथाओं के आलोक वलय फूटने लगते हैं। इस मायने में किले केवल पुरातत्त्वीय स्मारक नहीं हैं, वे जीवन के मिथकीय घटाटोप भी हैं; ऐसे घटाटोप, जिनमें अनेक संदर्भ अपने आप जनमते रहते हैं, इसीलिए वे किले रचनाकारों के लिए चुनौती बनते हैं। अपनी इसी क्षमता के कारण वे हर समय प्रासंगिक रहते हैं। जीवन की उत्प्रेरक अनुभूतियाँ जहाँ-जहाँ पुंजीभूत होती हैं वहाँ-वहाँ प्रासंगिकता असंदिग्ध भाव से उपस्थित रहती है। ये अनुभूतियाँ जीवन की पूँजी बनकर जीवन मूल्यों में बदल जाती हैं और चिरंतन हो उठती हैं।

ओरछा केवल बुंदेला राजाओं के राजसी वैभव को ही व्यक्त करता तो शायद वह इतिहास में सिमट जाता; किंतु वह आस्था, विश्वास और जीवन के आसक्ति-प्रवण क्षणों से दिपदिपाता अनायास हमें इतिहास से हटाकर हमारी अपनी ही अस्मिता की तलाश बन जाता है। रानी महल में राम राजा का डेरा पड़ गया, सो पड़ गया। वे टस से मस नहीं हुए। वे अयोध्या से इन्हीं शर्तों पर चले थे कि संतों के साथ चलेंगे—पुष्य नक्षत्र में ही चलेंगे, और जहाँ विराजमान हो जाएँगे वहाँ से फिर नहीं उठेंगे। रानी गणेश कुँवरि की अटूट आस्था ने उनके महल को ही अपने आराध्य का मंदिर बना दिया। क्या यह हमारा अपना विश्वास नहीं है कि राम का अयोध्या निर्वासन उनके जीवन संघर्षों का वह चरम पक्ष था, जहाँ से वे सामान्यजन के सगे-संबंधी भी बने और उसके रक्षक भी। अब भला उनका सगा क्यों चाहेगा कि वे फिर उसी तरह से निर्वासित हों; उनके ऊपर फिर विपत् पर विपत् पड़े। भक्त अब अपने भगवान् को दक्षिण पथ में वैसी यात्रा नहीं करने देगा। वह सत्संग और मुहूर्त का बल लगाकर अपने आराध्य को ले चलेगा। यह भावना भक्त की ही थी जो भगवान् की शर्त के रूप में प्रकट हुई। कितना अटूट अतर्क्य विश्वास है पुष्य की घटिकाओं में चलने का! गुरु वसिष्ठ के ज्योतिष को चुनौती देता गणेश कुँवरि का यह विश्वास कोरा ज्योतिष भाव नहीं है। यह राम के प्रति उसका अनन्य समर्पण भाव है। मैंने तुम्हें अपने हृदय में बैठा लिया है, तो फिर रानी महल रहा ही कहाँ? वह तो राम राजा का महल हो ही गया। गणेश कुँवरि के राम इकटेकी राम हैं। राम कुछ नहीं और राम सबकुछ हैं; जो उन्हें जाँच ले, परख ले वे हर कसौटी पर खरे उतरे हैं। वे स्वयं कसौटी पत्थर हैं। हम ही अपने आपको इस कसौटी पर जाँचते-परखते रहते हैं। राम राजा का कसौटी रंग हमारी अपनी आस्था और हमारे अपने विश्वास के जाँचने का रंग है।

यह किला है कि इसके भीतर से उमगती-झिरपती रसवती ये कथा-कुहेलिकाएँ मुझे केवल युग से नहीं जोड़तीं, युग के खप्पर घट में बोए गए जबारों की हरी-पीली उजास में, उनकी दूधिया लहलहान में जो अनंत उर्वरा संभावनाओं का ऋतु-पर्व है, उसकी ऋतंभरा चेतना से भी साक्षात्कार कराती हैं। यह आश्वासन भी दिलाती हैं कि हमारी नियति केवल इतिहास के उस चक्कर में नहीं बँधी है, जो लड़ाइयों और राजाओं के उत्थान-पतन, जय-पराजयों में आघूर्णित होती है, अपितु इस चक्र के भीतर जीवन की सूक्ष्म धड़कनों का जो एक प्रवेग बल है वही हमारे भीतर जीवन की नई-नई अर्थच्छटाएँ बिखेरता है। ओरछा केवल एक भग्न राजधानी का ऐतिहासिक स्मारक भर नहीं है। वह एक मुकम्मल कविता है, जिसमें हम अपने होने का अहसास करते हैं; जहाँ हम ठिठके नहीं रह जाते, सनातन समय के प्रवाहित बिंदु बन जाते हैं; वह बिंदु, जो अपने आपमें भरी-पूरी नदी-सा बह रहा है, हिलुर रहा है। □

श्री चंडीजी वार्ड, हटा, दमोह-४७०७७५
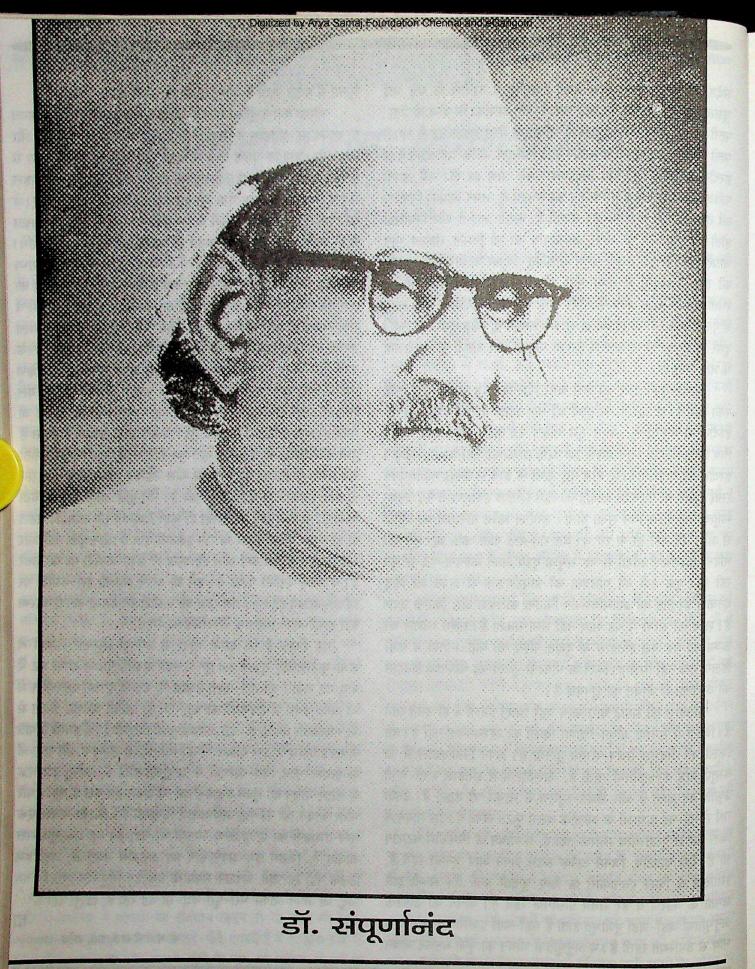
डॉ. संपूर्णानंद

डॉ. संपूर्णानंद : सरस्वती के आराधक

कुमुद शर्मा

लेखक, चिंतक, विचारक, दार्शनिक, समाजसेवक, शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार, पत्रकार, स्वाधीनता संग्राम के कर्मठ सेनानी—इन सभी रूपों से समन्वित होकर डॉ. संपूर्णानंदजी का जो व्यक्तित्व उभरा उसे देखकर उनके संदर्भ में की गई सरोजिनी नायडू की इस टिप्पणी से सबकी सहमति होगी कि वे 'विद्वानों के विद्वान्' थे। बाबूजी, प्रोफेसर साहब, मास्टर साहब, बाबू नंदन और मंत्रीजी कहलानेवाले सरस्वती के इस आराधक और साधक ने राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। जीवन के विविध क्षेत्रों में अपनी सत्यनिष्ठता, निर्भीकता, सिद्धांत की दृढ़ता, दार्शनिक अवधारणाओं, वैज्ञानिक सोच और अनोखे शौक के कारण वे निरंतर चर्चा तथा आलोचना के केंद्र बने। इतिहास, विज्ञान और दर्शन पर किया गया उनका चिंतन एवं अध्ययन आगामी पीढ़ी की धरोहर बना।

संपूर्णानंदजी का जन्म १ जनवरी, १८९१ को काशी में हुआ था। बचपन में ही 'विद्या-व्यसनी' संपूर्णानंद ने संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और बँगला साहित्य का अध्ययन कर लिया था। दस से चौदह वर्ष के बीच उन्होंने आर.सी. दत्त की 'राजपूत की जीवन संध्या' और 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात', बंकिम बाबू की 'दुर्गेशनंदिनी', राधाकृष्ण के उपन्यास तथा अनेक इतिहास ग्रंथ पढ़ लिये थे। विज्ञान के स्नातक होने के बावजूद साहित्यिक लेखन और अध्ययन में उनकी गति तीव्र थी।

जिस समय संपूर्णानंदजी का व्यक्तित्व आकार ग्रहण कर रहा था, वह अंग्रेजी साम्राज्य का दौर था। बंग-भंग जैसी घटनाएँ अंग्रेजों के विरुद्ध देशवासियों के मन में भड़की हुई विद्रोह की आग में घी का काम कर रही थीं। वंदे मातरम् का स्वर ऊँचा होता जा रहा था। नवयुवक भावी क्रांति की तैयारी में जुट रहे थे। इस परिवेश में संपूर्णानंदजी का किशोर मन-मस्तिष्क भी आंदोलित हो उठा। वे घर की कोठरी में तलवार चलाते हुए प्रारंभ में पढ़ी गई कहानियों को याद कर-करके बड़बड़ाते। बचपन की इन स्मृतियों को उकेरते हुए उन्होंने स्वयं लिखा, 'मेरा मस्तिष्क पागलखाना हो रहा था।...किंकर्तव्यविमूढ़ता और इच्छाभिघात ने मुझे पागल बना रखा था।' प्रथम महायुद्ध, जलियाँवाला बाग कांड और ब्रिटिश साम्राज्य के अत्याचारों से देश में स्वाधीनता का जो ज्वार उमड़ा उसमें बीकानेर की राजसेवा छोड़कर संपूर्णानंदजी भी देशसेवा की डगर पर गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन के साथ हो लिये।

जीवन की विपरीत परिस्थितियों में अपने व्यक्तिगत दुःख-दर्द को पीकर कठोर दिखनेवाले संपूर्णानंदजी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत कविता से की। गोखलेजी की मृत्यु पर लिखी सन् १९१५ में 'नवनीत' में प्रकाशित कविता संभवतः उनकी पहली कविता थी। उनकी प्रारंभिक कविताएँ देशभक्ति की भावना से सराबोर थीं। प्रारंभ में कविता की ओर झुका उनका लेखकीय मन शीघ्र ही गद्य की ओर मुड़ गया और उसने इस क्षेत्र में इतिहास, विज्ञान, साहित्य, कला, ज्योतिष, राजनीति, दर्शन आदि सबकुछ समेट लिया। उनकी प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं—'धर्मवीर गांधी', 'महाराज छत्रसाल', 'भौतिक विज्ञान', 'ज्योतिर्विनोद', 'भारतीय सृष्टि क्रम विचार', 'भारत के देशी राष्ट्र', 'चेतसिंह और काशी का विद्रोह', 'सम्राट् हर्षवर्धन', 'महादजी सिंधिया', 'चीन की राज्यक्रांति', 'मिस्र की स्वाधीनता', 'सम्राट् अशोक', 'अंताराष्ट्रीय विधान', 'समाजवाद', 'साम्यवाद का बिगुल', 'व्यक्ति और राज', 'आर्यों का आदि देश', 'दर्शन और जीवन', 'ब्राह्मण सावधान', 'चिद्विलास', 'गणेश', 'भाषा की शक्ति', 'पुरुष सूक्त', 'पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल', 'हिंदू विवाह में कन्यादान का स्थान', 'व्रात्यकांड', 'भारतीय बुद्धिजीवी', 'अंतरिक्ष यात्रा', 'स्फुट विचार', 'अलकनंदा मंदाकिनी के दो तीर्थ', 'चेतसिंह', 'देशबंधु चित्तरंजन दास', 'स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार', 'स्फुट निबंध'।

संपूर्णानंदजी के लेखन के मूल में कहीं-न-कहीं परोक्ष या अपरोक्ष उनका देश हित ही प्रमुख रहा। जीवन के इर्दगिर्द और व्याप्त हलचलों तथा क्षोभपरक स्थितियों को उनकी कलम ने पहले निशाना बनाया। राज्य के कोपभाजन का शिकार बनने से बचने के राजनीतिक विषयों पर लिखने के लिए उन्होंने 'कापालिक' और 'सुखाखिल' इन काल्पनिक नामों की आड़ ली।

तत्कालीन परिस्थितियों के चलते उन्होंने पत्रकारिता की ओर भी रुख किया। सन् १९३० में काशी से निकलनेवाले अंग्रेजी पत्र 'टुडे' के संपादक बने। पराड़कर के जेल जाने पर उन्होंने 'आज' का संपादकत्व सँभाला। काशी के 'जागरण' और 'मर्यादा' पत्रों का भी उन्होंने संपादन किया। उनकी पत्रकारिता ने सत्यता, निर्भीकता, स्पष्टता और विचारप्रधान लेखन का आदर्श सामने रखा।

संपूर्णानंदजी के साहित्यिक व्यक्तित्व के भीतर ही एक वैज्ञानिक अंतर्निहित था। उनका यह वैज्ञानिक व्यक्तित्व कभी आकाश-दर्शन और तारों की गतिविधि के अध्ययन में रुचि लेता और पूरा करते हुए बालू, कोयले व ईंट की बजरी में रासायनिक द्रव्य की मदद से सब्जियों और फूलों को पैदा करता।

संपूर्णानंदजी ने जीवन, धर्म और सौंदर्य का महत्त्व स्वीकारा। उनकी मान्यता थी कि धर्म की ओर से मुँह फेर लेने से व्यक्ति और समाज की स्थायी क्षति होगी। सभी मतावलंबियों को समानभाव से देखनेवाले संपूर्णानंदजी उस तत्त्व के प्रति श्रद्धाभाव रखते जो विश्व में ओतप्रोत है और विश्व के बाहर भी। जीवन और साहित्य दोनों में सौंदर्य की उपासना करते हुए आकाश के तारों में, चटकती हुई कलियों में, भ्रमर की गुंजार में, पक्षियों के कलरव में सर्वत्र सौंदर्य-ही-सौंदर्य देखा।

हिंदी के प्रबल समर्थक संपूर्णानंदजी का कहना था कि अंग्रेजी सिर पर ढोना डूब मरने के बराबर है। राष्ट्रभाषा के संदर्भ में हिंदी-हिंदुस्तानी के विवाद में जब उन्हें हिंदुस्तानी की आड़ में उर्दू के प्रचार-प्रसार के षड्यंत्र का आभास हुआ तब उन्होंने कुछ रेडियो स्टेशनों को 'गेहूँ को गंदुम' और सीधे-सादे पंच की जगह 'सालिस' कहते सुना, तो उन्होंने महात्मा गांधी के सचिव श्री महादेव देसाई को पत्र लिखकर राष्ट्रभाषा के स्वरूप-निर्धारण का प्रश्न उठाया और हिंदी के पक्ष में मंत्री पद त्यागने को तैयार हो गए।

संपूर्णानंदजी संस्कृत को प्राणवान् भाषा मानते थे। इसलिए उनका कहना था कि संस्कृत से हठात दूर जाकर हिंदी निष्काम हो जाएगी। उनकी मान्यता थी कि राजभाषा के मसले पर यदि संस्कृत को चुना होता तो हिंदी के प्रति अहिंदी भाषी क्षेत्रों का जो सौतेला व्यवहार है वह नहीं होता। शिक्षामंत्री की हैसियत से संस्कृत की शिक्षा में बदलाव और गुणवत्ता लाने के लिए उन्होंने डॉ. भगवानदास की अध्यक्षता में संस्कृत के विद्वानों की एक समिति नियुक्त की। काशी में संस्कृत विश्वविद्यालय की व्यवस्था की।

संपूर्णानंदजी के आदर्शों, सपनों, कार्यों और अनुभूतियों का हमेशा महत्त्व रहेगा। □

एफ-९ जी, डी.डी.ए. फ्लैट्स, मुनीरका, नई दिल्ली

संपूर्णानंदजी का हिंदी-प्रेम

यह कल्पना ही उपहासनीय है कि कभी हिंदी का स्थान अंग्रेजी ले सकती है। अंग्रेजी अभी तक प्रशासन की भाषा रही है, और राजनीतिक नीतियाँ कुछ और समय तक इसको आगे चालू रखें, किंतु यह किसी भी भारतीय की बौद्धिक एवं आत्मिक आस्था का अविभाज्य अंग नहीं बन सकती। शताब्दियों के व्यवहार के पश्चात् हिंदी आज की वर्तमान अवस्था पर पहुँच पाई है।
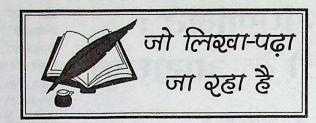
साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है—नासिरा शर्मा

आजकल आप क्या लिख रही हैं?

एक उपन्यास शुरू किया था, जो किन्हीं कारणों से बीच में रुक गया और उसको तलाश करते हुए दूसरे बहुत से कामों में व्यस्त हो गई, जैसे समकालीन लेखकों की रचनाओं को पढ़ना, उनपर कुछ लिखना या फिर अन्य विषयों पर कलम उठा लेना। यह कैफियत कुछ उस तरह की है जैसे बेचैनी किसी और के लिए हो तथा मिलना किसी और से हो रहा हो। दरअसल, इस उपन्यास के लिए मुझे कुछ सनदें चाहिए थीं, जिसके कारण लेखन रुक सा गया। बिना तथ्य जाने सोच का सही दिशा में सुलझना मुझे नामुमकिन सा लगा। मेरे साथ सबसे बड़ी परेशानी है कि मैं दिल व दिमाग को साथ लेकर चलती हूँ, इसलिए बिना तर्क की निष्ठा भी मुझे अर्थहीन लगती है। यह उपन्यास मेरे कहानी संग्रह 'खुदा की वापसी' का अगला पड़ाव है। इसमें 'मुताह' को मैंने नए संदर्भ में दोहराने की कोशिश की है। 'मुताह' या 'सीग़ा' एक ऐसा विवाह अनुबंध है, जो घंटे से लेकर सारे जीवन तक का हो सकता है। इसको समय की जरूरत के मुताबिक वर्षों पहले शिया समुदाय ने लागू किया था। समय के बदलते परिदृश्य में यह कानून धीरे-धीरे करके गैर कानूनी तरीके से अपनाया जाने लगा और एक निहायत गैर जिम्मेदाराना शोषण का हथियार बन गया। ऐसे विषय जहाँ दिलचस्प होते हैं वहीं पर उन्हें साफ-सुथरे तरीके से उठाना एक कठिन काम होता है। तो भी मुझे यकीन है कि 'खुदा की वापसी' संग्रह की कहानियों की तरह कानून अपनी दलीलें भी देगा, मगर इनसानी कहानी उसकी शर्तों पर न चलकर इनसानी जिंदगी के उतार-चढ़ाव से गुजरती अपना अंत खुद तलाश करेगी।

इसकी मूल प्रेरणा क्या है?

कोई खास नहीं; मगर एक जिज्ञासा जरूर उठती थी कि आखिर विश्व स्तर पर जो लोग इतनी तरह के बहस के कारण बने हुए हैं उनकी सियासी कठिनाइयों के अलावा सामाजिक एवं भावनात्मक कुंठाएँ क्या हैं? इनकी हर बात जुल्म व सितम से शुरू होती है और शोषण पर समाप्त होती है। भारत से लेकर अमेरिका तक इनकी चर्चा है। चाहे वे उनके नागरिक हों या न हों। मेरे लिए जरा आसान काम था कि मैं इन्हींके बीच की हूँ। मगर मुश्किल भी था कि कहीं थ्री डायमेंशन दृष्टिबोध न खो दूँ। फिर लगा कि मेरी हकीकत तो सरहद पर खड़े उस रचनाकार की है, जो उस समाज का है भी और नहीं भी है।

एक रचनाकार के नाते आपकी सामाजिक, मानवीय व राजनीतिक चिंता क्या है?

सर्जन से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति में तीसरी आँख का होना जरूरी है। यह उनकी बनावट का अनिवार्य अंग है। चूँकि साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है, वे उसीके दुःख-सुख की बात करते हैं; सो सामाजिक चेतना का ज्वार उनमें कुछ अधिक पैना होता है। मैं अपने वर्ग से अलग कैसे रह सकती हूँ। सो हर दिन, हर खबर दिमागी तौर से बेचैन रखती है। सुकून की छाया कहीं नजर नहीं आती, जहाँ बैठकर जलते दिमाग को ठंडक पहुँचाई जाए। धर्म-दर्शन, परोपकार, सद्भावना कहीं भी ईमानदारी नहीं; जो है वह केवल भौतिक दृष्टिकोण है। वही हमारे व्यवहार को संचालित कर रहा है। जहाँ पर इनसे लड़ने की कोशिश चल रही है वहाँ पर भी हजार रुकावटें हैं। और इतना बलिदान है, जिसकी निरसता को देखकर कोई भी उसको अपनाते डरता है। यह हाल केवल राजनीति में नहीं है बल्कि हर कार्यक्षेत्र में मौजूद है; क्योंकि इनसान अपनी सच्चाइयों के साथ जीना भूल चुका है। रहन-सहन, बोल-चाल, संबंध—सभी में बनावट और मुकाबला है कि ऐसा करने से हम वहाँ पहुँच सकते हैं। सुख की तलाश ठहराव में है, मगर जड़ता में नहीं। उसी तरह दुःख का वास भटकन में है, संतुलन में नहीं। हर चीज की अति बिखराव का कारण बनती है तथा वह बिखराव और भटकाव हमारे समय का मुहावरा बन चुका है। दिन-प्रतिदिन हम उसके

कैदी बनते जा रहे हैं।

महँगाई, बेकारी, भूख, छत—ये जरूरी चीजें न मिलने पर इनसान हालात के हाथों का खिलौना बन जाता है। जिस मजबूरी के चलते औरत अपने शरीर का और मर्द अपने ईमान का सौदा करता था। आज वह बाखुशी अपने को पेश करता है और बड़ी-से-बड़ी तथा छोटी-से-छोटी कीमत पाकर खुश होता है; जैसे उसने प्रतियोगिता में अपनी चालाकी से सबकुछ जीत लिया हो। इस बीमार मानसिकता के नागरिक देश को, परिवार को और इतिहास के बनते इस कालखंड को क्या दे पाएँगे? जो लोग ठहरे हुए हैं और बहाव की विपरीत दिशा में खड़े होकर मर्यादा को सँजोने में लगे हैं वे कहीं नजर नहीं आते हैं; क्योंकि उनके हाथ में सत्ता नहीं है। इसलिए वे टूटे दिलों का हौसला नहीं बन पाते हैं।

ऐसे दौर में लिखना—और वह भी कुछ ऐसा लिखना जो इनसानी भाग-दौड़ में शामिल न हो, जहाँ कठिन है वहीं चुनौतीपूर्ण भी है। इनसानी रिश्ते पहले संयुक्त परिवार के टूटने से बिखरे, फिर कंप्यूटर दौर ने पति-पत्नी और बच्चे के तिकोन को बिखेरा। अब हर इनसान अपनी उपलब्धियों के साथ अकेला होता जा रहा है। सबको सबसे शिकायत है; मगर कोई यह नहीं देखना चाह रहा है कि इस सबमें वह स्वयं भी शामिल है। मौखिक शब्दों ने लोगों को खूब छला है, क्योंकि वचन देना अर्थात् पत्थर की लकीर हुआ करती थी, जिसके लिए लोग कुरबान हो जाते थे। उस विश्वास को खूब भुनाया गया और जब माध्य फोन हो तो फिर कहना ही क्या! ऐसे समय में लिखित शब्द जो अपनी आस्था-पूर्णता तो नहीं गँवा बैठा है, मगर उसको पढ़ने की फुरसत कितने लोगों के पास है? जहाँ करनी और कहनी में फर्क बढ़ता जा रहा हो वहाँ पर लिखित शब्द भी झुठला दिए जाते हैं। उस समय इनसान करे क्या? एक सचेतन, संवेदनशील इनसान के लिए सिवाय खामोशी के बचता क्या है? यह घुटन वह कब तक सह पाएगा? इन सारे सवालों के बावजूद जिंदगी चल रही है, चलने पर मजबूर है।

भारत में लिखने, पढ़ने, बोलने, जीने की स्वतंत्रता है। जिसका बड़ा गलत इस्तेमाल किया जा रहा है। हर शहरी सिर्फ अपने लिए जीने लगा है। उसको दूसरों की फिक्र नहीं है। यदि चिंता है भी तो समय नहीं, सहूलियतें नहीं। पानी-बिजली की परेशानी में डूबा इनसान काम न कर सकने की चिड़चिड़ाहट को कहाँ उतारेगा? रोज की जिंदगी इतनी कठिन होती जा रही है कि आज इनसान हरदम भागता नजर आता है। असुरक्षा की भावना ने खुदगर्जी भी सिखा दी है। जाति-पाँत का भेदभाव, धर्म का अजदहा हरदम लोगों के सिर पर झूलता रहता है। ये सारी बातें गैर जरूरी हैं किसी भी देश की सुख-शांति के लिए, तो भी मामला रुक नहीं रहा है बल्कि रोज खाइयाँ चौड़ी होती जा रही हैं, जिसको देखकर दिल दहशत से भरने लगता है कि हम किधर जा रहे हैं।

आजकल आप क्या पढ़ रही हैं?

इधर कुछ ज्यादा ही पढ़ने का अवसर मिला। राजस्थान के बहुत से लेखकों की रचनाएँ पढ़ने को मिलीं, जिसमें से कई बँटवारे के बाद के संघर्ष पर थीं; जिससे पता चला कि सिंधियों ने इस त्रासदी को कितना सहा और सिंध से आकर ईंट-ईंट कैसे जोड़ी। काफी अच्छी रचनाएँ थीं। फिर कुछ महत्त्वपूर्ण कविता संग्रह, उपन्यास एवं कहानी संग्रह पढ़े और बेहद अच्छे लगे; मगर जिस उपन्यास ने मुझे बहुत प्रभावित किया वह है कमलाकांत त्रिपाठी का 'बेदखल' और नौटियालजी का 'सूरज सबका है'। इसी पंक्ति में सतीश दूबे का 'उखड़े पाँव' भी आता है। मगर 'बेदखल' एक बेहद महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जिसको कथाक्रम का पुरस्कार जरूर मिला, मगर उसकी चर्चा बहुत कम हो पाई है। जबकि यह उपन्यास किसान आंदोलन पर आधारित है और उस समय तो पाठक को गहरा झटका लगता है जब यह सच उपन्यास में उभरकर आता है कि रामचंद्र को इलाहाबाद में आनंद भवन में नजरबंद रखा गया, जो किसान आंदोलन की अगुआई कर रहे थे। इसका कारण था कि बड़े नेता उन पूँजीपतियों को नाराज नहीं करना चाह रहे थे, जो स्वतंत्रता संग्राम में हर तरह की मदद कर रहे थे। यह सच बाकायदा संद के साथ उपन्यास में दर्ज है। इस सच के आईने में हम आज देश की शक्ल बखूबी देख रहे हैं। पिछले कई वर्षों से उत्तर प्रदेश जाने का मौका मिलता रहा। यात्राएँ कभी बस, कभी कार से होतीं और यह देखकर मुझे ताज्जुब होता है कि बेहतरीन पक्की सड़कें बनी हुई हैं और यह बात बाद में समझ में आई कि चुनाव के चलते ये सहूलियतें गाँववालों को नहीं बल्कि नेताओं की कारों को मिली हैं, जो इन रास्तों से गुजरकर कोनों में पड़े पिछड़े-से-पिछड़े गाँव तक जा सकें; जहाँ के किसानों के धँसते पेट उनकी भूख की चेतना का इतिहास कहते नजर आते हैं। ये बातें उपन्यास के पढ़ते समय दिमाग पर हथौड़े लगाती हैं।

अकसर मुझे महसूस होता है कि गैर जरूरी मुद्दों और मामूली उपन्यासों, कहानी या कविता की चर्चा पर जितना समय नष्ट होता है उसका चौथाई हिस्सा भी गंभीर लेखन पर बातचीत में नहीं गुजरता; न उन मुद्दों को उठाया जाता है जो हमारी राष्ट्र स्तर की समस्याएँ हैं और उससे रचनाकार जूझ रहा है। 'बेदखल' की तरह जाने कितनी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं, जो बहस की तलबगार हैं। मगर उनको इस विश्वास से पीछे छोड़ दिया जाता है कि उनमें शक्ति है, वे देर-सबेर अपनी राह बना लेंगी। मगर जो विकलांग रचनाएँ हैं उनको सहारे की जरूरत है, उनको समर्थन देना बहुत जरूरी है। इस दयाभाव, जबरदस्ती पीठ थपथपाने, कमजोरों को आगे बढ़ाने के पुण्य कार्य ने साहित्यिक परिदृश्य को काफी मटमैला कर दिया है; जिसके कारण चर्चा, पुरस्कार, चहल-पहल—चाहे वह सतही हो, तो भी नए पाठकों को गुमराह ही नहीं करती है बल्कि उनका टेस्ट भी नहीं बनने देती है। इस हरकत ने साहित्य के पाठक वर्ग को विमुख किया है, उसका विश्वास तोड़ा है। □

८१८ कुंडेवालान चौक,
अजमेरी गेट, दिल्ली-६

कहानी

मकसद

✍ संतोष गोयल

'चलें' का फैसला हो जाने पर सिमरन अपने कमरे की ओर चल दी थी तैयार होने। तभी सुमिश ने कहा, ''सिमरन, वही साड़ी पहन लेना।''

''कौन सी?'' सिमरन के चेहरे पर आश्चर्य था और निगाह में प्रश्न।

''अरे भई, वही, नीलीवाली। वो, जो तुमने तब पहनी हुई थी जब हम पहली बार मिले थे। अजीब बात है। पहली मुलाकात की हर चीज मुझे याद है और तुम···शायद तुम भूल गईं।''

''नहीं, भूली तो नहीं। मुझे तुम्हारे मुँह से निकला एक-एक अल्फाज अच्छी तरह याद है।''

''और मैंने क्या पहना था, कैसा लग रहा था?'' सुमिश का कुल व्यक्तित्व सवाल बन आया था।

''इतना याद है कि अच्छे स्मार्ट, जँचते-फबते जवान लग रहे थे।'' केजुअल बनते हुए सिमरन ने कहा था।

''बस्स! देखा। मुझे तुम्हारी साड़ी का रंग, चेहरे का गुलाब, आँखों के गुलाल, लचक-चटक सब याद है।'' सुमिश ने रोब डाला था।

उसकी आँखों में झाँकते हुए जरा सी तिरछी निगाह डालकर सिमरन ने कहा, ''हाँ, ये तो सही है। तुम्हें सारी बाहरी चीजें प्रभावित करती हैं, इसलिए वही याद रहती हैं। मुझे तुम्हारी सारी वो बातें याद हैं, जो तुम्हारे भीतर का अक्स थीं।''

दिल्ली में जनमी डॉ. संतोष गोयल ने एम.ए. (हिंदी) प्रथम स्थान प्राप्त कर स्वर्ण पदक पाया एवं शिक्षा मंत्रालय का स्कॉलरशिप लेकर शोध कार्य किया।

प्रकाशित कृतियाँ : 'निराला का काव्य' (शोध प्रबंध), 'हिंदी उपन्यासकार कोश' (प्रथम खंड), 'धराशायी' (कोलाज उपन्यास), 'सुलगती नदी', 'सामनेवाला आदमी' (कहानी संग्रह), 'मेरी-तेरी जमीन', 'अपना-अपना विश्वास' (संपादित कहानी संग्रह), 'अभी कुछ नहीं बीता' (कविता संग्रह) लोक-साहित्य संस्थान द्वारा पुरस्कृत।

संप्रति : आजकल मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन के साथ-साथ 'हिंदी उपन्यासकार कोश' (द्वितीय खंड) के कार्य में संलग्न हैं।

''अच्छा···आ···तो अक्स में खुद को देख लिया?''

''तभी तो यहाँ हूँ।''

''ये तो एक मजबूरी के तहत था।'' सुमिश ने जैसे चिढ़ाने के लिए कहा।

सिमरन, जो कमरे की ओर जा रही थी, झटके से मुड़ गई। चेहरे पर सख्ती झलक आई। एक अच्छे अभिनेता की तरह उसने क्षण भर में ही चेहरा बदला, सख्ती को खोलकर उतार फेंका। बोली, ''जी नहीं, जनाब! इस गलतफहमी में न रहना। न चाहती तो कुछ न होता।''

सुमिश मुसकरा दिए।

''तो तुमने चाहा था! और क्या-क्या चाहा, जरा उसे भी कह डालो न! सुनने को तरस रहा हूँ। अब तो लोग भी टोकने लगे हैं।''

''ये···लोगों की परवाह कब से होने लगी तुम्हें? तुम तो आजादिएजंग का नारा लगाए चल रहे थे। फिर ये अचानक···परवाह का आलम कहाँ से आ गया?''

सिमरन ने अपने शब्दकोश में कुछेक शब्द उर्दू के जोड़ रखे थे, जिनका वह समय-असमय प्रयोग कर लेती थी। यह उसकी आदत थी। पुरानी चीजों को नए ढंग से इस्तेमाल करना, भाषा के नए मुहावरे गढ़ लेना—इस प्रकार वह अपनी बात को दमदार बना देती थी।

''अब तुमसे बहस थोड़े ही की जा सकती है। अरे यार! बंदा सिरफ तुम्हारी सूरत की खूबियों का शिकार नहीं है, वह तो तुम्हारी जहनियत···उसके प्रभाव से निकल सकना कोई आसान है!''

''तुम निकलना चाहते हो?''

सिमरन की निगाह भी सवाल बनी थी।

सुमिश सीने पर हाथ रखकर सलाम की मुद्रा में झुक आए।

''जी नहीं, जनाब! बंदा ऐसी हिमाकत कैसे कर सकता है!''

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। सिमरन तैयार होने के लिए कमरे में चली गई।

गहरी नीली, सफेद कढ़ाईवाले बॉर्डर की सिल्क की साड़ी, मैचिंग ब्लाउज, ब्लंटकट बालों को बीच से थोड़ा सा ऊपर की ओर ब्रश करके पतली सी क्लिप से समेटकर, हलकी सी पाउडर-लिपस्टिक की तह और पैरों में

एक साधारण सी कोल्हापुरी चप्पल। पाँच फीट पाँच इंच की लंबाई लेकर सिमरन हमेशा ही फ्लैट चप्पल पहनने को मजबूर थी। हील पहनी नहीं कि 'छड़ी लग रही हो, डंडा सी, खजूर का पेड़' जैसे कमेंट सुनने को मिल जाते। पर उससे क्या! पतली, लंबी, छरहरी सिमरन इस जरा सी तैयारी पर ही कयामत ढा रही थी, तिसपर वह जानती भी थी। सुमिश की निगाहें गलीचे और फूलों की तरह उसकी राहों में बिछी जा रही थीं। किस औरत को पुरुष की इस निगाह की तलब न होती होगी? पढ़-लिख लेने, ऊँचे पद पा लेने या जहीन अजीम हो जाने से औरत-मर्द का रिश्ता बदल नहीं जाता। पुरुष की एक निगाह, जिसमें उसके लिए प्रशंसा के ढेर से भाव हों, उसकी मानसिकता को बदल देते हैं। फिर सुमिश की निगाह में तो प्रशंसा भी थी और फख्र भी।

पर…इस समय उन्हें प्रोफेशनल काम से निकलना था। सुमिश की उस प्रशंसक निगाह को नकारती सी सिमरन दरवाजे की ओर बढ़ चली। सुमिश ने चाबी उठाई और बाहर निकलते हुए झटके से दरवाजा बंद कर दिया। ऑटोमैटिक लॉक सिस्टम में चाबी का भूल जाना कयामत ढा सकता है न।

कार में बैठते ही सिमरन धरातल पर उतर आई। कार में रखी फाइल हाथ में ले, खोलकर उसमें रखे पन्ने पढ़ने लगी। कुछ सोचा। पूछा, "अब बताओ, सुमिश, क्या करना होगा मुझे?"

"अरे! सुबह से सारी कथा कह डाली और अब पूछती हो, नायक कौन था!"

"नहीं-नहीं, सिर्फ ये बताओ कि तुम्हारी योजना क्या है? कार्यवाही उसीके अनुसार तय होगी न!"

"योजना…आ…आ। योजना-वोजना कुछ नहीं है। एक सामान्य सोच है। तुम्हें बताया था…सिद्धार्थ, जो एक मशीनी पुरजा मात्र बनता जा रहा है, उसे इनसान बनाना है, बस। और क्या!"

"बस! पर सुमि, जो आदमी माँ के आगोश में रहता है, वह इनसान तो होगा ही। यह तो मानी हुई बात है। माँ से कटकर ही इनसानियत दम तोड़ देती है। माँ ममता होती है न!"

सिमरन ने इतनी गंभीरता से बात कही थी कि सुमिश को स्टेयरिंग से निगाह हटाकर उसकी ओर देखना पड़ा।

"अच्छा! तुमने माँ का यह रूप कब देख लिया?"

"क्या मतलब! मेरी माँ हैं…अभी भी हैं। उनसे दूर होकर कट थोड़े ही गई हूँ उनसे। जानते हो, माँ से कट जाने का दुःख जानलेवा होता है। इसे एक बेटी से ज्यादा कौन समझ सकता है! यह बात दूसरी है कि आज रिश्ते भी अर्थ (धन) और स्वार्थ के तराजू में तौले जाने लगे हैं।"

कार झटके के साथ रुक गई। सामने एक मल्टी-स्टोरीड बिल्डिंग थी। दरवाजे पर कदम रखते हुए सिमरन का दिल एकबारगी धड़क गया। खुद पर संदेह होने लगा। पता नहीं वह ये काम कर भी पाएगी या नहीं, जो सुमिश उससे करवाना चाहता है। 'पता नहीं' शब्द सिमरन के शब्दकोश से कब का निकल गया था। शायद तब से जब से उसने उस नीम बेहोशी की हालत में गोट छोड़ा था और हॉस्टल में लैला, राहील, लैला के खूँखार से दीखनेवाले भाइयों से साबिका पड़ा था। 'कारी करके मार दिए जाने' की सुबह आने वाली थी, तभी से उसके भीतर का 'पता नहीं' शब्द गायब हो गया था। उसी रात वह जाने कैसे बिना दिशा, दशा और मंजिल के ज्ञान के गोट को छोड़कर तनहा, अँधेरी रात में तीन मील का रास्ता तय करके स्टेशन पहुँची थी, फिर वहीं खड़ी गाड़ी की दीवार से चिपककर बैठ रही थी! पता नहीं कैसे शहर पहुँच गई थी। बिना टिकट, बिना चेतना की वह यात्रा कैसे हुई थी, कैसे वह शुभा दी के घर पहुँच गई, यह सब उसे याद नहीं था, सिर्फ इतना याद है कि उस दिन से उसने 'पता नहीं' शब्द को याद न रखने की कसम खा ली थी। फिर सुबह की एम.ए., एम.बी.ए. की पढ़ाई, शाम की ढेर सी ट्यूशनें, हॉस्टल की बँधी-बँधाई दिनचर्या। पढ़ाई, पढ़ाई, पढ़ाई। एक रबड़ सी खिंचती लंबी परीकथा थी, जिसकी परी राक्षसी पंजों की कैद से निकलकर इस दुनिया की असीम लंबाई-चौड़ाई के बीच अपने लिए एक कोना ढूँढ़ लेने के लिए छटपटा रही थी। तब से लेकर आज तक वह उस रबड़ सी खिंचती परीकथा का हिस्सा बनी रही थी, जिसमें अब सुमिश भी शामिल हो गया था। हालाँकि वह उस परी को राक्षसी कैद से बचानेवाला राजकुमार बन पाया था या नहीं, इसपर अभी सिमरन के मन में प्रश्न लगे थे, ढेर से प्रश्न; पर यह सच है कि 'पता नहीं' शब्द उसके शब्दकोश से छिटककर कहीं दूर जा पड़ा था। यही 'पता नहीं' आज फिर उसके मन में कौंधा था, अपनी सभी लपलपाती जीह्वाओं के साथ भीतर रेंगने लगा था।

कार से उतरते हुए ही सिमरन ने उस 'पता नहीं' को छिटकाकर दरवाजे से दूर गिरा दिया। गरदन को झटका दिया। सीधा तनकर राजकुमारी की सी चाल से चलती हुई ऑफिस की बिल्डिंग में दाखिल हुई। प्लान के अनुसार सुमिश ने उसे 'रिसर्च ऑफिसर' के पद के लिए चुना था। यह अधिकार उसके पास था। वह भी 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्ज' का एक हिस्सा था। अब सुमिश का काम खत्म हो चुका था। अपनी समस्त शाइस्तगी का इस्तेमाल करते हुए अब तो सिमरन को 'सिद्धार्थ' नाम के उस इनसान से अपना परिचय करवाना था, उसका पाना था, जो इस कंपनी का चीफ डायरेक्टर था। दोस्ती और प्रोफेशन साथ-साथ कैसे चलते होंगे—यह एक प्रश्न सिमरन के दिमाग में बल्ब-सा जल-बुझ रहा हो, तो वह क्या करे? पर उसने सोचा जरूर। क्या 'प्रोफेशनल जेलेसी' जैसा कुछ भी आड़े न आता होगा? वह सोचते-सोचते लिफ्ट में दाखिल हो गई। लिफ्ट का दरवाजा बंद होते ही उसके द्वारा लगाए डीन्वार के परफ्यूम की खुशबू जोर से फैल गई थी। लिफ्ट चालक अनजाने में ही बार-बार सिमरन की ओर देख लेता था। ऐसी निगाहों की अब उसे आदत हो चली थी। वैसे भी वह समझने

लगी थी कि कुछ बनने या होने से पहले सभी पुरुष आदिम मानव तथा सभी स्त्रियाँ मात्र मादाएँ होती हैं। सभी पुरुष खूबसूरती की तारीफ करने की छूट तथा मादाएँ उन निगाहों से सहलाए जाने का अधिकार लिये होती हैं। इसमें न पद, न वर्ग, न संबंध—कुछ भी आड़े नहीं आता।

सिद्धार्थ अपने कमरे में ही थे। कुरसी पर बैठे थे, दो-तीन टेलीफोन और कुछ फाइलों से घिरे लग रहे थे कि कंपनी का कार्य-व्यापार जोर-शोर पर चल रहा है। सिमरन 'मे आई कम इन' कहती हुई कमरे में दाखिल हुई थी। सिद्धार्थ ने टेलीफोन पर बात करते-करते सिर हिलाकर उसे अंदर आने की इजाजत दे दी थी। टेलीफोन पर कोई बिजनेस वार्त्ता ही चल रही थी। बातचीत में 'दुबई' शब्द आया तो पता चल गया था कि दुबई के ऑफिस स्टाफ से बात हो रही है तथा बात भी बीस लाख रुपए के ड्राफ्ट बनवाए जाने या फिर किसी ड्राफ्ट को कैश कराए जाने की थी। सिद्धार्थ ऑफिशियल लहजे में हिदायत दे रहे थे। बोलने का ढंग खासा रोबीला था; इतना कि सुननेवाला मानने को मजबूर हो जाता होगा।

बात आनेवाले कल को किए जानेवाले बैंक के कार्य से जुड़ी थी, इसलिए सिमरन से न रहा गया। बोल उठी, ''कल जुम्मेरात है, बैंक का काम नहीं होगा।''

सिद्धार्थ ने उसकी बात सुन ली थी शायद, तभी तो कहा, ''अरे हाँ, कल जुम्मेरात है, परसों कर लेना।''

''परसों···जुम्मा है, नमाज का दिन।'' सिमरन ने फिर कहा था।

''हाँ; पर परसों तो जुम्मा है। अब दो दिन की देरी···नुकसान तो होगा। पर फिर कर भी क्या सकते हैं! अच्छा, तो ठीक है, नमस्कार।''

सिद्धार्थ ने फोन रख दिया। अब सिमरन उस व्यक्ति को परख रही थी। उसने समझ लिया था कि सामनेवाले इनसान ने कनखियों से उसका जायजा ले लिया है। उसने फोन रखकर निगाह उठाई तो सिमरन का दिल जोर से धड़का, रुका और फिर चलने लगा था। उसने जान लिया कि सामनेवाले की निगाह 'लेजर बीम' की तरह दूसरे के भीतर तक का अक्स बना लेती है। इस 'मल्टी डॉयमेंशनल' व्यक्ति के भीतर कुछ ऐसा है, जो व्यक्ति की लंबाई-चौड़ाई-ऊँचाई के अलावा गहराई भी माप लेता है, माप सकता है। उसे अपनी ओर देखता पाकर ही कहा, ''जी सर! मैं यहाँ रिसर्च ऑफिसर अप्वाइंट हुई हूँ। आज ड्यूटी ज्वाइन करने आई हूँ।''
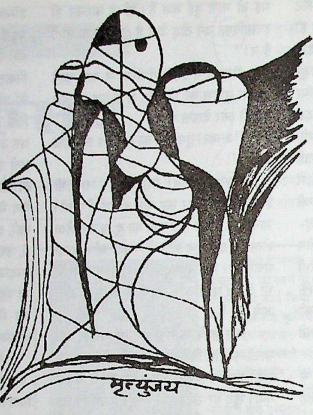
''हूँ···ऊँ···मि. सुमिश से आपका आमना-सामना हो चुका है?''

आमने-सामने का अर्थ शायद 'इंटरव्यू' से रहा होगा। शब्द के इस्तेमाल पर हलकी सी मुसकराते हुए सिमरन ने 'जी' कहा।

''ठीक है, तो काम शुरू कर दीजिए।''

सिमरन अपने शाहना अंदाज में कमरे के दरवाजे की ओर चलते हुए सोचने लगी, 'कैसा आदमी है! न खूबसूरती, न जहनियत—किसीका कायल नहीं, यह तो कोई शै है, तभी तो अभी तक माँ के दामन से बँधा है।'

सोचती जा रही थी कि सिमरन को आवाज आई, ''मिस, आपका नाम?''

''सिमरन।'' सिमरन ने अपने नाम के आगे से जातिसूचक शब्द हटा दिए थे। गोट से आने के बाद से वह सिर्फ 'सिमरन' होकर जीने की आदत डाल रही थी।

''मिस सिमरन, आपकी 'इन्फोर्मेशंस' के लिए शुक्रिया। कीप इट अप।''

''नो मेंशन, सर!''

बाहर की ओर जाते हुए अब वह सोच रही थी, 'तो शुरुआत अच्छी हुई है। निराश होने की जरूरत नहीं।'

☐

उस दिन घर लौटने पर सुमिश की सवालिया निगाह के जवाब में वह मुसकरा भी दी थी और जीत का अहसास कंधे उचकाकर, हाथ हिलाकर करवा दिया था। हाथों ने प्रश्नचिह्न बनाते हुए मानो कहा हो, 'इब्दताए इश्क है सोचता है क्या, आगे-आगे देखिए, होता है क्या!'

इस तरह से सिमरन कारपोरेट सेक्टर में दाखिल हो गई थी तथा व्यापारिक भेद नीतियों से दो-चार भी होने लगी थी।

'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्ज' की मीटिंग थी। एक नए प्रोजेक्ट की शुरुआत पर बात की जानी थी। सुझाव सुमिश की ओर रखा गया था। मजा लेने भर के लिए नहीं, अपितु एक अच्छी रिसर्च ऑफिसर की हैसियत से उसने खोजबीन की थी। सारे प्रोजेक्ट को बारीकी से पढ़ा ही न था अपितु उसकी प्रारंभिक दिक्कतें, मार्केटिंग, मार्केट वेल्यू आदि का भी अध्ययन किया था। डॉयरेक्टर्ज की मीटिंग हुई। सभी प्रायः सुमिश

के प्रोजेक्ट को स्वीकार करने के भाव से बैठे थे। रिसर्च ऑफिसर होने के नाते सिमरन से भी रिपोर्ट माँगी गई। उसने जो मुद्दे रखे, जिस तरह प्रोजेक्ट की कमियाँ-खामियाँ उद्घाटित की थीं, उसकी धज्जियाँ उड़ गईं। सुमिश की सीना चीरती निगाह से वह खुद को बचाती रही तथा उसने अपना सारा ध्यान सिद्धार्थ की ओर लगाए रखा था।

परिणाम, प्रोजेक्ट शुरू किए जाने से पहले 'और काम किया जाना चाहिए' का नोट देकर फाइल बंद कर दी गई। मीटिंग एडजर्न हो गई। सुमिश और सिद्धार्थ दोनों के चेहरों पर सुकून था, चमक थी; उनके कारण पता नहीं क्या-क्या थे। सिमरन घर पहुँची तो सुमिश ने उसके काम के प्रभावशाली ढंग पर अँगूठा चस्पाँ किया। सिमरन नहीं समझ पाई थी कि वह खुशी और सुकून दिखावा था या सच।

अगले दिन सिद्धार्थ ने सिमरन को अपने कमरे में बुलाया; उसके काम की तारीफ की, हिदायत भी दी।

"देखिए, मिस सिमरन! ये प्रोजेक्ट सुमिशजी का था।" फिर थोड़ा रुककर बोले, "वे मेरे ऑफिस के साथी ही नहीं, मेरे अजीज दोस्त भी हैं। उनके काम करने का अपना ढंग है। मैं अकसर उनके काम के बीच में खुद को नहीं डालता।" फिर थोड़ा सा रुककर कहा, "आपको यह भी बता दूँ कि उस प्रोजेक्ट की सभी खामियाँ जो आपने 'हाईलाइट' की थीं, उनसे मैं नावाकिफ नहीं था। यह भी कि तीन साल पहले ऐसे ही प्रोजेक्ट की शुरुआत जी.बी.आर. भल्ला एंड कंपनी ने की थी। उसमें उन्हें नुकसान हुआ था। फिर भी मैं मि. सुमिश के काम करने के तरीके का कायल हूँ। और यह भी कि उन्हें उनके काम के लिए जरूरी आजादी देना पसंद भी करता हूँ।"

जो कुछ सिद्धार्थ ने कहा, वह सिमरन ने सुना भी और नहीं भी। वह उस सामनेवाले आदमी की गहराई नाप रही थी। सोच रही थी, 'दुनिया में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं, सभी कुछ दूसरे की तुलना में अच्छा या बुरा है। वक्त, परिस्थितियाँ, इनसान, भाग्य जाने कितने अगर-मगर में फँसा इनसान जो कर चुकता है, वही कभी अच्छा हो जाता है, कभी बुरा।'

एक के ढेर से गुण स्पष्ट और रोशन होते ही दूसरे के मन का उथलापन उभरने लगता है। उस दिन की घटना का अंत यूँ हुआ कि सुमिश ने सिमरन को नौकरी से हटा दिए जाने का सुझाव देकर अपनी नाराजगी जाहिर कर दी। उधर सिमरन में अच्छे प्रबंधक के गुण देखकर सिद्धार्थ ने उसे अपने 'निजी सचिव' के पद पर यह कहते हुए नियुक्त कर दिया कि 'लड़की जहीन है। थोड़ा सा मँजेगी तो सौ कैरेट का हीरा साबित होगी।' इस प्रकार पता नहीं तो सुमिश के योजनानुसार या सिद्धार्थ की इच्छा के अनुसार सिमरन सिद्धार्थ की व्यक्तिगत देखरेख में पहुँच गई।

□

एक बिजनेस मीटिंग का बुलावा था। सिद्धार्थ इनमें 'रिचुअल' की तरह जाते, कुछ टूथपेस्ट के विज्ञापनों सी मुसकराहटें, कुछ कामकाज संबंधी बेमतलब, बेमुद्दों सी बातचीत, खाना-पीना—खाना कम, पीना ज्यादा—और बस। कॉरपोरेट वर्ल्ड की इन मीटिंगों का मकसद एक ही होता। एक तो बोरिंग दिनचर्या में बदलाव होता, फिर नशे के तहत दूसरों का भेद जानने की कोशिशें की जातीं, लेन-देन की कुछ बातें और उन्हीं 'कुछ' में थोड़ा सा काम भी उगलवा या निकलवा लिया जाता। इन वेवक्त, बेकार, बेमतलब, बेमुद्दोंवाली मीटिंगों में जाते हुए सिद्धार्थ हमेशा अपनी माँ को याद रखते।

'देखो बेटा! पैसा जरूरी तो है, पर ज्ञान यानी इल्म उससे ज्यादा अहम है। इल्म से भी ज्यादा महत्त्व इनसान का है। इनसान है तो रिश्ते हैं और रिश्ते बरकरार हैं तो दुनियावी चीजों का कुछ मतलब है।'

यह सब सिमरन को सिद्धार्थ ने ही बताया था। तभी तो सिद्धार्थ इस तरह की मीटिंगों में जाते और कीचड़ में कमल जैसे इनके भीतर भी धँसते; पर अलग-थलग भी रहते।

"एक बिजनेस मीटिंग है। आप साथ चलना चाहेंगी?"

यह सिद्धार्थ के बात करने का अंदाज था। वे पूछते तो दूसरे की मरजी ही थे, किंतु लोग जानते थे कि वास्तव में वह उनकी इच्छा या आज्ञा ही होती। सिमरन ने उनकी आँखों में गहरे तक झाँककर प्रश्न का असल मुद्दा समझना चाहा। फिर बोली, "आप कहेंगे तो।"

आखिर निजी सचिव थी। पर इस समय तो वह और भी मकसदों से जाना चाह रही है। गहरे जाकर मोती चुग लाने की इच्छा मन में कुलबुला रही थी। वह 'सिद्धार्थ' कहे जानेवाले इस व्यक्ति की असलियत जानना चाह रही थी। सिद्धार्थ के सिर हिलाकर हामी कर देने से ही उसका जाना निश्चित हो गया।

उस दिन सिद्धार्थ ने अपनी माँ की ढेर सी बातें कीं।

"माँएँ भी कभी थकती हैं, यह माँ ही कहती थीं। फिर भी माँ एक दिन इतना थक गईं कि मुझे अकेला छोड़कर जाने को मजबूर हो गईं। माँ कहती थीं कि हम जिसे ज्यादा चाहते हैं, उसीकी उम्र के हो जाते हैं। तभी तो 'बाबूजी' के इंतकाल के बाद मैं माँ की उम्र का हो आया था और वे मेरी उम्र जीने लगी थीं। यही शायद अपने चाहनेवाले के साथ जीना-मरना होता है।"

सिद्धार्थ ने थोड़ा रुक-रुककर उस दिन अपने भीतर जज्ब की ढेर सी बातों को सिमरन के सामने रख दी थीं।

"एक दिन माँ के हाथों में पड़ी ढेर सी लाइनें देखकर मैंने कहा था, 'माँ! देखो, आपके हाथ बूढ़े हो गए हैं।' तो माँ बोली थीं, 'हट पागल! बच्चों के बड़े होने के साथ-साथ माँएँ तो बड़ी और बूढ़ी हो ही जाती हैं। फिर बड़े होने का मतलब सिर्फ बूढ़ा होना नहीं होता। 'बढ़ना' होता है न। ईश्वर चाहता है कि अपनी बढ़ती समझ की डोर माँएँ अपने बच्चों के हाथ में थमा दें।' "

और भी जाने क्या-क्या! सिद्धार्थ एक

अजीब इनसान, एक अजीब दिमाग के मालिक थे। मेहनत करते हुए यहाँ तक पहुँचे थे। उनकी इन विशेषताओं के साथ-साथ उस दिन यह भी पता चला था कि वे एक संवेदनशील भावुक व्यक्ति भी थे।

उस दिन के बाद से सिमरन सुमिश और सिद्धार्थ को जाने-अनजाने दिल के तराजू पर रखने और तौलने लगी थी। आश्चर्य इस बात पर था कि इतने वर्षों के जाने-पहचाने सुमिश ऊपरवाले पलड़े में थे और कुछ दिनों पहले मिला, जिसका अभी इतिहास-भूगोल जानना बाकी था—वही सिद्धार्थ—उसीका पलड़ा भारी और नीचे की ओर था। सुमिश को लेकर अब उसके मन में सैकड़ों सवाल उठने लगे थे। मन सवालों-जवाबों की हल्दीघाटी बना था। पर लड़ाइयाँ भी कभी जवाब दे पाई हैं, उनसे भी कभी मसले हल हो पाए हैं! वे तो इनसानियत की दुश्मन बनकर ही आती हैं और समस्याओं को कई गुना बढ़ा देती हैं।

पार्टी से घर लौटने में देर हो गई थी। सिद्धार्थ ने उसे घर तो छोड़ दिया, पर न वे भीतर गए थे, न ही सुमिश बाहर आए थे। सुमिश ने खिड़की से देख लिया था। 'धन्यवाद' और 'गुड नाइट' जैसे शब्दों का आदान-प्रदान हुआ। वह भीतर आई तो सुमिश हाथ में 'ड्रिंक्स' लिये मुसकराते देखते खड़े थे। लाख ढूँढ़ा, पर मुसकान में कोई तंज न था; फिर वह कुछ देखने के मूड में भी न थी।

"तो! एक और जीत! सचमुच बदल गया है सिद्धार्थ। उसकी माँ की जगह तुमने ले ली है शायद।"

"तुम और क्या चाहते थे?" सिमरन ने 'काउंटर एटैक' किया।

"हाँ-हाँ, सचमुच मैं यही चाहता था। वह आदमी, उम्र के इस मोड़ पर पहुँचकर भी माँ के आगोश से बाहर आने को तैयार नहीं। अरे भई! जहीम-शहीम सी किसी औरत का हाथ थामे और एक आम आदमी की जिंदगी जीए—यही चाहता था मैं, बस।"

"पर, अगर वह आम आदमी न बनना चाहे तो?" सिमरन गिलास में ऑरेंज जूस भी डालती जा रही थी और बोल भी रही थी।

"खास यार तो वह है ही। लाखों में एक है। इतनी बड़ी कंपनी कोई यूँ ही नहीं खड़ी कर लेता। अगर खास लोगों का ग्राफ बनाओ तो वह ग्राफ के ऊपरी हिस्से में होगा; पर कुदरत की खुशनुमा देन से महरूम तो न रहना चाहिए न। खासियत की यह तो कोई शर्त न हुई। फिर मैं तो उसका भला सोच रहा था, जिसका हक है मुझे।"

जब-जब सिमरन सिद्धार्थ के साथ कार में बैठकर पहले मीटिंगनुमा पार्टियों में, बाद में किसी पाँच सितारा होटल में डिनर या अन्य कहीं तफरीह के लिए निकलती, सुमिश अपने ऑफिस की खिड़की पर लगी 'वेनेशियन ब्लाइंड्ज' का रुख बदलकर नीचे कार पार्क में झाँकते रहते और दर्द का अहसास करते। फिर उस दुखती रग पर बहुत तर्क रूपी मलहम का लेप भी करते चलते—बस, अब तो कुछ समय की बात है। मकसद पूरा ही होने वाला है।

"सो तो है, होना चाहिए। अब जैसे मुझे बकरी की तरह खूँटे से बाँधकर हाँका लगाओ और शेर का शिकार करो, उसका भी हक है तुम्हें।" जूस का घूँट लेते हुए सिमरन ने कैजुअल बनने की कोशिश तो बहुत की, पर व्यंग्य व तल्खी छिप न पाई।

"क्या...क्या? क्या कह रही हो? सिम, शायद तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा। छोड़ दो सब। और फिर मुझे कोई शेर का शिकार-विकार नहीं करना। वो तो बस दोस्ती की वजह से..."

"हाँ-हाँ, और ये कोई छोटी वजह भी तो नहीं है।" अचानक सिमरन झटके से सुमिश की ओर मुड़ी, आँखों में झाँका और बोली, "और कोई वजुहात तो नहीं?"

सिमरन की भेदती निगाह सुमिश की बरदाश्त से बाहर हो उठी थी। ड्रिंक का गिलास उठाया, म्यूजिक सिस्टम के पास आए और स्विच ऑन कर दिया। सभी रोशनियाँ बुझा दीं, सिर्फ एक टेबल लैंप शमा सा जलता छोड़ दिया। मेहँदी हसन की गजलें अपना रंग जमाने लगीं। वातावरण गजलों की धुन से महकने लगा। सिमरन के पास आकर बैठ गए और बोले, "सिम, अब और कितना इंतजार करना होगा? अब तो घरवालों का इसरार भी दबाव बनता जा रहा है।"

सिमरन के लंबे नाम को कभी-कभी सुमिश छोटा करके 'खुल जा सिम-सिम' कहते हुए 'सिम' बना देते थे। 'सिम' कहने का अर्थ ये भी था कि वे शराब के या प्यार के नशे में हैं।

सिमरन ने आँखें ऊपर उठाईं, जिसमें जवाब से ज्यादा सवाल थे।

"क्यों? इंतजार मुश्किल हो उठा है? तुमने तो हश्र तक का दावा भरा था!"

"हाँ, भई। इंतजार का दावा तो किया था, पर बार-बार इसरार नहीं करूँगा, यह वादा तो न किया था।" सुमिश की आवाज शराब और प्यार दोनों के नशे से लरज रही थी।

उसी अंदाज में सलाम बजाते हुए सिमरन बोली, "जी जनाब! आपके अंदाज-ए-बयाँ से बेहद मुंतजिर तो हुई हूँ, मन 'हाँ' कहने को कर उठा है; पर जरा आपके दिए इस मुश्किल काम को निबटा लूँ, जिसमें जोखिम भी है

और चैलेंज भी। जरा इस एडवेंचर का मजा उठा लेने दीजिए।''

सुमिश झटके से उठ खड़े हुए। सिमरन के सिर पर हाथ रखा और बोले, ''खुश रहो, खुश रहो। दिल को इतनी खुशी देने की एवज में ढेर सी दुआएँ कुबूल करो। ये दुआ भी कि इस जोखिम भरे काम में सफल होकर तुम अपना दुपट्टा उड़ाती वापस आओ। आई मीन इन फ्लाइंग कलर्ज में जीत का जश्न मनाओ।''

सिर पर रखा हाथ दबाव डालने लगा था। सिमरन सिर झुकाकर सट से बाहर निकल गई। दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। सुमिश ने बड़ा हलका महसूस किया। सीने पर रखा बड़ा सा पत्थर हट गया हो जैसे।

□

सिमरन और सिद्धार्थ—जाने कितने मुद्दों पर बहस करते; मीटिंगों में आने-जाने का सिलसिला चलता रहा था। अब दोनों को एक-दूसरे की आदत सी पड़ती जा रही थी। जब-जब सिमरन सिद्धार्थ के साथ कार में बैठकर पहले मीटिंगनुमा पार्टियों में, बाद में किसी पाँच सितारा होटल में डिनर या अन्य कहीं तफरीह के लिए निकलती, सुमिश अपने ऑफिस की खिड़की पर लगी 'वेनेशियन ब्लाइंड्ज' का रुख बदलकर नीचे कार पार्क में झाँकते रहते और दर्द का अहसास करते। फिर उस दुखती रग पर बहुत तर्क रूपी मलहम का लेप भी करते चलते—बस, अब तो कुछ समय की बात है। मकसद पूरा ही होने वाला है। वे मन-ही-मन हिसाब लगाते, योजनाएँ बनाते-बिगाड़ते, दिन गिनते और घर जाते; घर जाकर एक अदद ड्रिंक बनाते, गिलास थामते, गजलें सुनते, सिमरन का इंतजार करते और बस।

सुमिश और सिमरन एम.बी.ए. की ट्रेनिंग के दौरान मिले थे। तब तक सिमरन गाँव से 'कारी करके मार' दिए जानेवाले तथा गोट छोड़कर भाग आने के तनाव से मुक्ति भी पा चुकी थी तथा शहरी माहौल से परिचित भी। सुमिश के लिए तो नहीं, पर सिमरन के लिए ट्रेनिंग-अलाउंस का मिलना जीने का सामान मुहैया कर रहा था। तभी दोनों एक-दूसरे के इश्क में जकड़ गए थे, यह कहना गलत है। हाँ, सुमिश सिमरन की खूबसूरती व सादगी पर मर मिटे थे। कुछ इश्किया इजहारों के बाद सिमरन शायद किसी और को अपने रास्ते में न पाकर भी और उम्र के अलावा अकेलेपन से घबराकर उसके इश्किया इजहारों को नकार नहीं पाई थी। आज के लेन-देन के इस बाजार में खुद को बेहद असुरक्षित पाने लगी थी। अम्मा-बाबा को न ला पाने की भी मजबूरी थी। उनके लिए तो उसे जिंदा रहकर भी मर ही जाना था। गोट का यही नियम था। 'कारी कर दिए जाने' की आज्ञा का मतलब ही 'मार दिया' जाना होता था। जब भी कोई लड़की भगा ली जाती, भाग जाती (जो प्रायः सच न होता) किसी अमीरजादे या साँईं के बेटे-सगों की हवस का शिकार होती तो गोट के कानून के अनुसार उसे कारी करके मार दिया जाता। सिमरन का भी यही अंत होता, यदि उसी रात हिम्मत जुटाकर गोट से भाग न ली होती। उसे यह भी मालूम था कि उसके भागने की सारी सजा अम्मा-बाबा को भुगतनी पड़ी होगी। कितनी जिल्लत उठानी पड़ी होगी, कितना रुसवा किया गया होगा!···पर, फिर यह सोचकर जरा सा सेटल होकर, नौकरी पाते ही, पैरों पर खड़ा होते ही वह उन्हें रातोरात गोट से निकाल लाएगी, शांत हो लेती। उसी योजना को पूरा करने में जुटी थी, जब उसका सामना सुमिश से हो गया था।

जब सुमिश ने उसकी खूबसूरती और सादगी के लिए सौ-सौ कसीदे काढ़ते हुए अपनी भावनाओं का इजहार किया था, तब वह इस कदर बिखरी थी कि उसे किसीके सहारे की सख्त जरूरत थी। धीरे-धीरे परिस्थिति उन्हें करीब लाती रही। हॉस्टल में रहने के पाँच वर्ष पूरे हो चुके थे और विश्वविद्यालय के नियमानुसार अब वह वहाँ रह नहीं सकती थी। एम.बी.ए. की ट्रेनिंग खत्म होने के बाद सुमिश के माध्यम से नौकरी पाना आसान हो जाने की संभावना भी नहीं त्यागी जा सकती थी। आखिर अनेक तर्कों-वितर्कों से गुजरकर सिमरन ने माँ-बाबा को ले जाने तथा एक अच्छी नौकरी पा लेने तक यह सुझाव मान लिया था। तभी से वह सुमिश के साथ उसके 'टू-बेडरूम' के उस फ्लैट के एक 'बेडरूम' के दायरे में खुद को समेटे थी। धीरे-धीरे उसने अपनी सीमाएँ सुमिश को समझा दी थीं और सख्ती से उन्हें न तोड़ने का वायदा भी ले लिया था।

हुआ तो सब प्रबंध सिमरन के अनुसार ही था। उसकी मरजी भी शामिल थी; पर शायद मरजी से ज्यादा मजबूरी थी। यह संबंध उसे सदा बंधन लगता, दिलो-दिमाग पर एक भार सा महसूस करती। सुमिश के लिए कोई कोमल भाव उसके मन में फूल न खिलाता···पर अभी फैसला कर पाना मुश्किल था। वह ठहर-सबर कर उसी माकूल मौके का इंतजार कर रही थी। फिर अहम यह भी था कि शायद वक्त बीतते-न-बीतते उसके मन में सुमिश के लिए 'अहसान' के भाव से फर्क कोई और भाव तलब हो जाए। अगर ऐसा हो जाए तो जिंदगी के भयानक मोड़ फलाँगने आसान हो जाएँ। पर इश्क, प्यार कोई ऐसा भाव तो नहीं होता जो जबरन किसीके मन में लहरों सा हिलोरें मारने लगे। ज्यादातर लोग तो पहली नजर के प्यार की स्थिति से गुजरते ही नहीं हैं। सिर्फ जिस इनसान के साथ बँध जाते हैं, उसके प्रति प्रेम का भाव उपजने के इंतजार में जिंदगी गुजार देते हैं। सिमरन अकसर सोचती और खुद ऐसा न करने का अहद भी करती।

इस सब थोड़े-बहुत न खत्म होनेवाले तर्कों-वितर्कों के गलियारे में चलते रहने के सफर के बीच ही सुमिश ने अपने अजीज दोस्त (उन्होंने ही बताया था), इस समय कंपनी के प्रमुख डायरेक्टर सिद्धार्थ के अकेलेपन में झाँक लेने का काम सौंप दिया था, जो सिमरन के अनुसार मुश्किल नहीं होना चाहिए था। पर सुमिश ने ही उसमें आनेवाली ढेर सी मुश्किलों को रेखांकित किया था।

'तुम इनसानी फितरत को पहचानने-

जानने का दावा करती हो तो कबूल करो ये चैलेंज।' सुमिश के कहने के पीछे छिपा भाव यही था।

जहीन लोगों की यही तो नाजुक नर्व होती है। इस नर्व पर हाथ रख दो, सवालों को मुश्किल बनाकर सौंप दो, दिलो-दिमाग में हलचल होने लगेगी। चैलेंज कुबूल करने, में मजा मिलने लगेगा। सिमरन के साथ भी यही हुआ। बड़ी तल्लीनता और गंभीरता से वह इस काम में जुट गई। पर सुमिश के लिए सिमरन को दिए गए काम में इस गंभीरता से जुट जाना उनकी शादी के लिए 'हाँ' कहे जाने के लिए उठाया जानेवाला अहम कदम था शायद।

फरवरी खत्म हो चला था। हवा में ठंड की खुनक भर बच रही थी। पीले और कत्थई रंग की प्रिंटवाले कपड़े का सलवार-कुरता पहने, कत्थई रंग का प्लेन दुपट्टा ओढ़े उस दिन जब सिमरन सिद्धार्थ के कमरे में दाखिल हुई तो सिद्धार्थ को लगा कि बहार कमरे में झाँक उठी हो। ऐसी बहार तो उन्होंने पहले कभी देखी न थी। ढेर से कामों की ढेर सी हिदायतें देते हुए सिद्धार्थ अपने मन के भीतरी नए भाव को समझने की कोशिश करते रहे। कमरे की खिड़की के पास आ खड़े हुए। 'ब्लाइंड' को खींचा। नीचे सामने का लॉन दीख पड़ा—ढेर से फूलों से लदा-फदा, लहकता-मुसकराता, खिलता-बुलाता''जाने कितने-कितने इशारे करता। उस दिन बाहर झाँकते हुए सिद्धार्थ को माँ के बूढ़े होते हाथ याद नहीं आए, सामने जो दिखा वह था सिमरन का चमकता-दमकता अक्स।

'क्या ये सिमरन के सौंदर्य का प्रभाव है या फिर मेरा चीजों को देखने-सोचने का नजरिया बदल गया है?' सिद्धार्थ कुरसी पर बैठते-बैठते सोचते रहे थे। मन इतना बेचैन तो कभी न हुआ था। उनके दिल ने चाहा कि फाइलें, चिट्ठियाँ, टेलीफोन मैसेज्स सभी को उठाकर एक ओर रख दें और सिमरन को सामने बैठाकर गुफ्तगूँ करें''ढेर सी गुफ्तगूँ''बातें''बहुत सी बातें, बहार की, उसकी हॉबीज की, खुद की दिलचस्पियों की। बातें, बातें, और बातें।
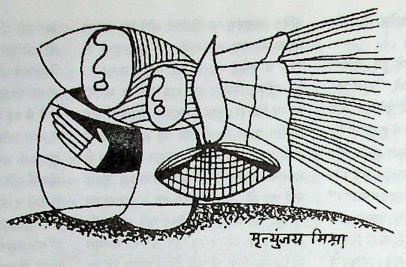
सिद्धार्थ ने उस दिन इतने वर्षों बाद पहली बार प्रोजेक्ट्स, शेयर्स, लाभ-हानि, हिसाब-किताब, चिट्ठियाँ, उनके जवाब, लाखों की संख्या के अलावा कुछ सोचा, कुछ सोचना चाहा, कुछ इच्छा की। उस दिन उन्होंने सिमरन से ढेर सी बातें कीं—इधर-उधर की, कुछ उसकी, कुछ अपनी। बेमतलब की बातें कीं, जिन्हें सिमरन चुपचाप सुनती रही और सोचती रही, सिद्धार्थ को समझने की कोशिश करती रही।

सुमिश ह्विस्की का गिलास थामे थे और सिमरन टोमेटो जूस का। हलकी-हलकी धुन सी दिलो-दिमाग को नशे में डुबो रही थी। गजल का मिसरा इस प्रकार था—

'आखिर कुछ तो होगा, जो तेरी याद आती है,
कुछ भी कहो मुझे तो, तेरी याद भाती है।'

माहौल गुम-सुन्न था। सिर्फ गजल के बोल सुनाई पड़ रहे थे। हालाँकि दोनों गजल के मिसरे में डूबे थे, पर सोच अलग-अलग रहे थे। सुमिश सोच रहे थे कि बस अब मंजिल करीब है, हाथ बढ़ाकर उसे छुआ जा सकता है। इतना सुकून और इत्मीनान था भीतर कि बस। सिमरन को अब उन्होंने अपने आगोश में पाने की कल्पना कर ली थी। इनसान को और चाहिए भी क्या? एक अदद ओहदा और सुंदर छोटा-खुशहाल सा परिवार। बस''सुमिश ने इतना भर चाहा था और इसपर तो उसका हक बनता था।

उधर सिमरन को आज अपनी निगाह के दायरे में कहीं सुमिश नहीं दीख रहे थे। वह खोई थी, न जानते हुए कि वह खोई है, पता नहीं कहाँ?

'जिंदगी कोई शतरंज का खेल नहीं है। रुक्ख और ऊँट की चालें चलकर वक्त बिताया जा सकता है, दूसरों से आगे निकल सकने का भ्रम पाला जा सकता है, बस। असल चढ़ाई तो सीधी-सरल गति से चलने पर ही होती है। सीधी-सरल रेखाओं पर चलकर जीवन में दुःख चाहे मिले, पर सुकून''मन की शांति, जिसके तलबगार होते हैं हम, वही मिल पाता है और यही असल मंजिल भी है।' और भी बहुत कुछ सोच रही सिमरन। सोच नहीं रही थी, याद कर रही थी। ये सभी बातें सिद्धार्थ ने कही थीं।

'पैदलों को वजीर बनाना कोई कला नहीं, खेल की चालाकियों को जानना हो सकता है। खेल का तरीका हो भी सकता है; पर जिंदगी का नहीं।' सिद्धार्थ की माँ के सभी कथन सिमरन को रट गए थे।

गजल का अंतरा यूँ था—

'आसमाँ को छूकर वापिस मेरे पास चले आना,
जाना कहीं, मिलना किसीसे, फिर मेरे पास चले आना।'

आज 'मेरे पास चले आना' मिसरे ने सिमरन के दिल को भीतर तक छू लिया था। उम्मीदों को बाँध लेने के पीछे कोई तर्क थोड़े

ही होता है। 'मेरे पास चले आनेवाले' अगर सिद्धार्थ बन आए तो सिमरन इसका कोई कारण तो नहीं बता सकती। बस, दिल ही तो है, जिसपर आ गया, आ गया।

सिमरन ने महसूस किया, इतने सालों से मार-मार की भी, जो भाव एक पल के लिए सुमिश के लिए पैदा न हुआ, वह खुद-ब-खुद अचानक उसके दिल के कोने-कोने में सिद्धार्थ के लिए जाने कहाँ से और कैसे रोशन हो गया।

सिद्धार्थ! अपनी माँ में खोया रहनेवाला, रूखा-सूखा, ठेठ व्यापारिक किस्म का व्यक्ति, जिसके लिए पिता की मृत्यु के पश्चात् घर में माँ जीवनाधार बनी थीं तथा बाहर जिसकी दुनिया काम, कंपनी, मुनाफा, शेयर्स, प्रोजेक्ट्स, नई योजनाओं तक सीमित थी—ऐसा सिद्धार्थ सिमरन के मन में कहाँ से घुस पड़ा? 'मेरे पास चले आना' के साथ कैसे जुड़ गया?

सिमरन यह सब सोचती गजल सुन रही थी। यूँ भी कहा जा सकता है कि गजल के शब्दों के धागों से बँधी सिद्धार्थ तक पहुँच गई थी। तभी सुमिश ने पूछा, "क्या सोच रही हो, सिम? कौन से खजाने की चाबियाँ ढूँढ़ रही हो?"

सिमरन चौंक गई एकबारगी। पर जल्दी सँभलते हुए बोली, "तुम क्या सोच रहे थे?"

यह सिमरन की खासियत थी। एक गियर से दूसरे में जल्दी और झटके से निकल जाती थी, इतनी जल्दी कि दूसरा उसे पकड़ नहीं पाता था।

"मैं···" सुमिश की जबान लड़खडा गई, "कुछ भी तो नहीं! मैं तो गजल में खोया था।" सुमिश को जैसे बहाना मिल गया।

"वैसा ही 'कुछ भी नहीं' मैं भी सोच रही थी। आँखों के सामने एक शून्य था।···कभी-कभी ऐसा भी होता है न!"

सिमरन थोड़ा रुकी। माथे पर गिर आई बालों की लटों को झटका दिया। सोफे से उठी। जमीन पर पसर आई। पाँव को मोड़ा, फिर फैलाया। जूस का गिलास मुँह के पास तक लाते-लाते कुछ सोचा, जैसे कहे न कहे का द्वंद्व झेल रही हो। आखिर बोल उठी, "आज सिद्धार्थ साहब (मन में चाहे 'सिद्धार्थ' कहती हो, पर जाहिरी तौर पर 'साहब' लग ही जाता था) ने अपने घर पर लंच के लिए बुलाया था।" सुमिश की ओर भेदती निगाह से देखते हुए सिमरन ने कहा।

"अच्छाऽऽआ।"

सुमिश का 'अच्छा' लंबा हो आया था।

"तो गोया, जो चैलेंज आपने कुबूल किया था, उसके पूरे होने का वक्त आ गया है।"

"शायद।"

"मतलब! हारने के भी चांसेज हैं?"

सुमिश जोश में भरे, उठकर बैठ गए। हाथ पास रखे गावतकिए पर जोर से बज उठा।

'तो अब मकसद पूरा होने ही वाला है। अब हार-जीत के चांसेज से फर्क क्या पड़ना है! अब तो हाथ बढ़ाकर मंजिल पकड़ लूँगा।' मन-ही-मन सोचते रहे सुमिश, कहा कुछ भी नहीं। अचानक बोले, "अच्छा सिमरन, क्या खयाल है?"

सिमरन प्रश्नसूचक मुद्रा लिये देखती रही।

"अपना काम तुमने लगभग पूरा कर लिया है। कंपनी का चीफ तुमसे इतना प्रभावित है कि नौकरी ढूँढ़ने के लिए तुम्हें भटकना नहीं पड़ेगा।"

सिमरन चुप बैठी थी। कुछ सुन रही थी, कुछ नहीं भी। कुछ सोच रही थी; पर क्या, जानती न थी। उसकी प्रश्न भरी निगाह का उत्तर देते हुए सुमिश बोले थे, "अब छुट्टी लेकर कुछ दिन के लिए घर चलें। शिद्दत से सेटल हो जाने का मन करने लगा है।"

सुमिश ने गहरी दृष्टि सिमरन पर डाली। उसके गहरे भीतर तक झाँकना चाहा, जो अभी भी आँख मूँदे गजल के मिसरे 'मेरे पास चले आना' में खोई इश्क की परिभाषा तय कर रही थी। उसने सुमिश का सुझाव सुनकर भी नहीं सुना।

"ऐ सिम! सुन रही हो! तुम्हारे नजरे-करम के दीवाने यहाँ बैठे हैं।"

सिमरन चौंक सी पड़ी। सुमिश की ओर देखा। बोली, "अच्छा सुमिश! तुम्हारा मकसद पूरा हो गया···" 'होगा' उसने बाद में जोड़ा था।

सुमिश चौंक पड़े। जवाब क्या दें, सोच नहीं पाए। लड़खड़ा गए।

"कौन सा मकसद, सिम? क्या तुम्हें इसके पीछे कोई राज···कोई मकसद दिख रहा है?"

सुमिश बोल तो रहे थे, पर मन के भीतर के सैकड़ों कीड़े डंक मारने लगे थे। सिमरन के भीतर झाँकना चाहा; पर खुद के भीतर के डर ने अँधेरा फैला रखा था, अतः कुछ रिफ्लेक्ट न हुआ।

'कुछ उसके दिल में लगावट जरूर थी वरना मेरा हाथ दबाकर गुजर गया कैसे' में फँसी सिमरन 'वरना उसने लंच पर बुलाया कैसे' का उत्तर ढूँढ़ रही थी। अचानक बोली, "अच्छा सुमिश! कल अचानक जो 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की मीटिंग हुई थी, उसमें क्या हुआ?"

प्रश्न बिलकुल नेचुरल बनकर पूछा गया था; पर सुमिश के दिल की धड़कन रुक सी गई। सिमरन की जहनियत उसके लिए खौफ का कारण भी रही थी और फख्र का भी; पर इस सवाल से वह चौंक उठे थे। दिल की धड़कन रुककर फिर सीटी बजाने लगी थी। लग उठा था कि सिमरन उनकी योजना जानती है। उसने सब भाँप लिया है। पर कैसे? उन्होंने अपनी योजना के बारीक-से-बारीक मुद्दे तक को खुद से भी छिपाए रखा था।

"यूँ ही। कुछ 'इमरजेंसी डिसीजन' लेने थे, जिनके लिए बोर्ड की सलाह जरूरी थी। तुम्हें और तुम्हारे सिद्धार्थ साहब को ('तुम्हारे' पर उन्होंने खास बल दिया था) ढूँढ़ा गया; पर तुम लोग कहाँ मिलते। फिर मैं यह भी जानता था कि तुम्हारी जुल्फों के पाश से किसीका भी छूटकर आना कौन सा आसान है!" सुमिश थोड़ा रुके। फिर बोले, "भई, तुम्हारी मुस्तैदी का कायल हूँ। तुम्हें अपना काम करने की

पूरी छूट और मौका भी देना चाहता था। चाहिए था न!''

सारी बातचीत बनावटी और बेहद सोच-विचारकर की जा रही थी। शब्दों के सही इस्तेमाल का ध्यान दोनों रख रहे थे। ऐसा लगता था कि शब्द सिर्फ अभिधेयार्थ स्पष्ट करने के लिए इस्तेमाल किए जा रहे हों—चेतन मन का भाव समझाने के लिए मात्र१ अवचेतन में छिपे मंतव्यों को छिपाने की कोशिश जारी थी। हालाँकि आँखें—शरीर के अंग-प्रत्यंग—उन्हें वश में कैसे लाया जाता? समझनेवाले इन्हींसे असलियत उगलवा लेते हैं। सुमिश और सिमरन इन्हींको भेद रहे थे। शब्दों पर कौन ध्यान दे? वे पूरा अर्थ कहाँ व्यक्त कर पाते हैं? दोनों की खोजबीन जारी थी। आँखों-आँखों में लुका-छिपी का खेल चल उठा था। देखें, कौन ज्यादा और जल्दी जान पाता है। चैलेंज भरा खेल था।

बौद्धिक लोगों की यही तो मुसीबत होती है। जितना बड़ा सवालिया निशान, उस निशान पर ऊपर तक चढ़ उसके मोड़ों-तोड़ों को सीधी-सरल रेखा बना देने की उतनी ही बड़ी कोशिश। फिर हल कर लेने के बाद मजा ही कुछ और। सामान्य-सीधी सड़कें उन्हें कहाँ भाती हैं!

सिमरन मुसकराकर चुप हो गई। सुमिश भी समझ गए कि उससे कुछ भी छिपा रखना बेहद मुश्किल है। अजब स्थिति थी। दोनों जानते थे, पर बातों को घुमा-फिराकर इधर-उधर करने की कोशिश कर रहे थे। आखिर सुमिश उठे। उनके मन-तन में थकावट उतर आई थी। थकान की गहराई में डूबते जा रहे थे। किचन की ओर चल दिए। 'कैंड फूड' के डिब्बे खोलकर माइक्रोवेव में रख दिए। हाथ काम कर रहे थे, पर मन में सनसनाती आँधियाँ चल रही थीं। अगर सिमरन ने विरोध किया तो? समझ गई है तो हो भी सकता है। पर नहीं, इसकी और मेरी तो शादी होने वाली है। वह मुझसे प्यार करती है···पर पता नहीं। इधर उसकी आँखों का रंग बदल गया है।

सुमिश को जल्दी थी। मंजिल कुछ कदम पर थी। कदम बढ़ाने की देर भर थी। पर अकेले तो नहीं पहुँच सकते थे। बहुत से लोगों की सलाह लेनी थी, ठप्पा लगाया जाना था।

□

सोमवार, नए हफ्ते का पहला दिन। तैयारी हो चुकी थी। सिमरन पहले ही ऑफिस जा चुकी थी। सुमिश उसे और सिद्धार्थ को अपना प्रोग्राम बनाने का समय देना चाहते थे। वैसे भी कल शाम की बातों से उभरी थकावट अभी तक बच रही थी। उनको शरीर टूटता सा लग रहा था। इसीलिए देर कर रहे थे। सुमिश ऑफिस पहुँचे। सिद्धार्थ के कमरे तक गए। न सिद्धार्थ, न सिमरन। ऑफिस में इधर-उधर देखा तो, पर किसीसे पूछा नहीं। सिद्धार्थ की खाली कुरसी की ओर उन्होंने ललचाई नजरों से देखा। कितना अधिकार भाव जुड़ा है इस कुरसी के साथ। कुछ निश्चय किया। जरूरी तैयारियाँ करने की दृष्टि से अपने कमरे तक चले। बोर्ड की मीटिंग बुला ली जाए, सोचा। मार्केट से कुछ और होल्डिंग्स खरीदकर उन्होंने अपनी स्थिति सुधार ली थी। कुछ अन्य साथी भी सिद्धार्थ के पिछले दिनों किए गए व्यवहार से नाखुश थे, यह बात भी उन्होंने धीरे-धीरे उनसे उगलवा ली थी। माहौल में खासी गरमी थी। बस अब सही समय पर गरम सलाखों पर चोट कर अपनी मरजी के मुताबिक मूर्ति गढ़ लेने की जरूरत थी। फिर, वोट ऑफ नॉनकॉन्फीडेंस—वो मुश्किल न था। पिछले बीते अनेक महीने इस तरह के अनेक मौके सिद्धार्थ की अनुपस्थिति ने मुहैया कर दिए थे।

पर, जिंदगी के नियमों के तहत, आखिरी चंद कदम ही मुश्किल हुआ करते हैं। तब सब साथ छूट जाते हैं। इनसान को यह सफर अकेले तय करना होता है। फिर यह भी सच है कि आखिरी ऊँचाई पर पहुँचकर अकेले खड़े और पड़े इनसान को वहाँ बना रहने के लिए भी बहुत सी ताकत जुटाए रखनी पड़ती है। नहीं तो नीचे खाई में गिर जाना ही उसकी नियति होती है। योजनाएँ बनाने और उनके पूरे किए जाने की जद्दोजहद करते हुए इनसान जिंदगी के इस सच को कब याद रखता है?

मीटिंग की योजना मन-ही-मन बनाते हुए सुमिश अपने कमरे तक पहुँचे तो सिमरन का लिखा पुरजा तथा सिद्धार्थ व सिमरन की यूरोप यात्रा की खबर—दोनों साथ-साथ मिलीं।

खबर···तरकश से निकला तीर था, जो सीधा सीने के बीचोबीच जा धँसा था। खून की धारा बह निकली थी। सुमिश लहूलुहान थे। एयरकंडीशंड कमरे में थे, पर पसीना-पसीना हो रहे थे। सोचने की ताकत खत्म थी। सिमरन को एक बार, सिर्फ एक बार, एक पल के लिए बुलाना चाह रहे थे।

ऊँचाइयाँ पाने की इच्छा को धिक्कार रहे थे। ऊँचाइयाँ और महत्त्वाकांक्षाओं की दीमक लगी इमारत से बाहर निकलकर खुले में साँस लेना चाह रहे थे। चाहते थे, एक मौका और मिल जाए···खुशियों की बेल को रोपकर उसीकी सेवा में डूब जाएँ। नहीं चाहिए वह कुछ जो उन्होंने चाहा था। गलती थी। अपनी कैफियत पेश करते तो···पर किसके सामने? मुरझाए, जख्म भरे मन, काँपते हाथों से उन्होंने सिमरन का लिखा पुरजा खोला, जिसमें लिखा था—

'सुमिश, इनसान मिल्कीयत नहीं होते, न ही चुग्गा। न ही उन्हें कठपुतली बनाया जा सकता है, जिसकी डोर किसी और के हाथ में हो। न ही वे रस्सी होते हैं, जिनके सहारे कोई ऊपर की मंजिल पर पहुँच सके। इतना वक्त तुम्हारे सहारे, तुम्हारे साथ बिताया। एहसानमंद हूँ।···उसे भुलाया तो नहीं जा सकता, पर याद रखने लायक एक लमहा भी ढूँढ़े से नहीं मिल रहा। अगर मेरी बात समझ रहे हो और नाराज नहीं हो, तो समझूँगी कि तुममें अभी भी इनसानियत बाकी है। पूरी तरह खूँखार शिकारी नहीं बने हो तुम। अलविदा!''

सुमिश कुरसी पर बैठे थे या आग की लपटों पर, खुद भी न जान पाए थे—कोई और क्या बताता और वे भी क्या बताते!

□

३, मिरांडा हाउस, टीचर्स फ्लैट्स,
छात्र मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय-११०००७

कविताएँ

✍ पुष्पिता

आस्था

आस्थाएँ
जनती हैं प्रेम
भरती हैं विश्वास
मनस-गर्भ में
भीतर-ही-भीतर
रचती रहती हैं
लोक-कला का
नूतन नमूना

आस्थाएँ
अनंतगभी और मौन होती हैं
नयन-नेह-गेह में साधनारत
अधरों पर गूँजती
आत्मा में विश्राम करती हुई
आस्थाएँ जनती हैं प्रेम
आस्थाएँ जानती हैं प्रेम

आस्थाएँ
स्पर्श चाहती हैं
निर्जला व्रत के बाद
आस्थाएँ
नतमस्तक होती हैं
शैल प्रतिमाओं के समक्ष
आस्थाएँ
हाथ बनकर
निकल आती हैं आत्मा से बाहर
और स्पर्श करती हैं
पाषाण-प्रतिमा
और अनुभव करती हैं
आराध्य की पिघली शक्ति
रक्त में घुली हुई

आस्थाएँ
स्पर्श करती हैं
पर्वत को पिता की तरह
सरिता को माँ समान

आस्थाएँ
सौंपती हैं अथाह प्रेम
शहद-सागर
आँखें
फिर-फिर दर्शनार्थ
दौड़ा ले जाती हैं पाँव

आस्था का
अनन्य प्रणय
स्पर्श करना चाहता है
आत्मा का असीम स्नेह
आस्था की आँखें
पाषाण में
बोती हैं ईश्वरीय छवि
जैसे देह
बोती है देह में प्रेम। □

खामोशी की आवाज

बहुत
खामोशी है
शब्द की तरह
आँखें
खुली हैं
किताब की तरह

हाथ की उँगलियों में
फँसी है पेंसिल
उतरती हैं उससे काँपती रेखाएँ
और सिहरते शब्द

मन
अब तक नहीं जान पाया
कैसे कहे अपनी बात
कि वही समझी जाए
जो वह कहना चाहता है
ईश्वर को ईश्वर
और जरूरत को जरूरत

आकाश
शब्द बन जाता है
जब बादल
बरसता है
हम आकाश को सुनते हैं
बूँदें
गोदती हैं गोदना
धरती की देह पर

मैना युगल
धोते हैं सूर्य की आग
अपने पंखों से
और अपनी चोंच खोल
पीते हैं मेघ-मल्हार

नेवला
धरती की नली से आँखें बाहर
काढ़
सिर्फ देखता है—
और सुनता है—मेढक शोर

बरसात
रुकने के साथ
आकाश चुप हो जाता है
चिड़ियाँ
बादलों के टुकड़ों को
स्कार्फ-सा बाँध
खेलती हैं जंगल के क्षितिज पर
धरती फड़फड़ाने लगती है
नहाई हुई बुलबुल की तरह

बादल के टुकड़े
निचोड़े गए कपड़ों की तरह
हवा की अरगनी में
टँग जाते हैं
जिन्हें
फिर से सुखाने
सूरज आ जाता है
अगली तारीखों की तरह
जिनसे बचा नहीं पाती है
कोरी मृत्यु भी। □

वसंत कन्या महाविद्यालय,
राजघाट, वाराणसी

आलेख

महाकुंभ के विविध आयाम

✍ जगदीश गुप्त

'शताध्यायी' का पुनः अनुशीलन करते हुए मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि उसमें 'कुंभकोणम्' का विशेष महत्त्व के साथ उल्लेख है और पापों के शमन में सर्वप्रथम उसका नाम लिया गया है। प्रयाग को उस क्रम में सबसे ऊपर स्थान दिया गया है—

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं कुम्भकोणे विनश्यति॥ ८॥
कुम्भकोणे कृतं पापं वाराणस्यांविनश्यति।
तत्रापि यत्कृतं पापं प्रयागे तद्विनश्यति॥ ९॥

—पूर्वार्ध, अध्याय ३

इस संदर्भ को देखकर यह सुनिश्चित हो जाता है कि पुराणाकार को दक्षिण भारत का संदर्भ पहले से ही ज्ञात था और उसने पाप-शमन की विशेष शक्ति कुंभकोणम् से ही आरंभ की है। वाराणसी को उससे ऊपर और प्रयाग स्थित संगमस्थल को सर्वोपरि महत्ता दी है। आगे के श्लोकों में प्रयाग से आगे यमुना, फिर सरस्वती, तब गंगा और अंततः 'संगम-तीर्थ नायके' का उद्घोष किया है। कौन जाने कुंभ की परंपरा में पाप-शमन का सूत्र दक्षिण से आया हो और उत्तर भारत में उसे विशेष गौरव मिला हो। अब यहाँ तक अलगाव हो गया है कि कुंभ-स्थलों में दक्षिण का ध्यान ही नहीं आता। मैंने उसे पुनः संबद्ध करने का विनम्र उपक्रम किया है। कुंभ-स्थलों में पाँचवाँ नाम कुंभकोण का होना ही चाहिए।

भरत के 'नाट्यशास्त्र' में कुंभ की सार्ववर्णिक भूमिका

भरत के 'नाट्यशास्त्र' में जिन नाटकों के मंचन का उल्लेख मिलता है उनमें 'अमृत-मंथन' सर्वप्रथम गिना जाता है। भारतीय नाटक देवासुर संग्राम की पृष्ठभूमि में जनमा, इसे जानने पर कुंभ का महत्त्व और बढ़ जाता है और प्राचीनता भी अधिक सिद्ध होती है। 'अमृत-मंथन' के अभिनय से पूर्व कुंभ-स्थापना का भी उल्लेख भरत ने किया है; पर वह पूजा के अंग के रूप में ग्रहण किया गया है। 'अमृत-कुंभ' से उसका सीधा संबंध नहीं है, किंतु कुंभ की कल्पना अवश्य उससे संबद्ध मानी जा सकती है।

कुम्भं सलिल-सम्पूर्णं पुष्पमालापुरस्कृतम्।
स्थापयेद्रंगमध्ये तु सुवर्णं चात्र दापयेत्॥ ७२॥

(तृतीय अध्याय)

'नाट्यवेद' की रचना जंबूद्वीप के भरतखंड में पंचम वेद के रूप में की गई, क्योंकि शूद्र जाति द्वारा वेद का व्यवहार उनके समय निषिद्ध माना जाता था। यह पाँचवाँ वेद सब वर्णों के लिए रचा गया, क्योंकि भरत शूद्र जाति को भी अधिकार-संपन्न बनाना चाहते थे, साथ ही अन्य वर्णों का भी उन्हें ध्यान था। 'सार्ववर्णिकम्' शब्द इसीलिए महत्त्वपूर्ण है। यथा—

न वेदव्यवहारो यं संश्रव्य शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्॥ २॥

(प्रथम अध्याय)

कुंभ का महत्त्व भी इसी प्रकार सभी वर्णों के समन्वित है। किसी वर्ण का गंगास्नान अथवा कुंभस्नान में निषेध नहीं है। वर्णेतर लोग भी स्नान करते रहे हैं। विष्णु के चरणों से चौथे वर्ण की उत्पत्ति मानी गई है और गंगा भी विष्णु के चरणों से निकली हैं, ऐसी पौराणिक मान्यता है। दोनों का विशेष संबंध सांस्कृतिक दृष्टि से उपकारक एवं प्रेरक सिद्ध होगा। इस प्रकार कुंभ हर प्रकार के भेदभाव का निषेध करता है।

कुंभ संबंधी तीन कथाएँ प्रचलित हैं—

१. महर्षि दुर्वासा की कथा
२. कद्रू-विनता की कथा
३. समुद्र-मंथन की कथा।

पहली कथा इंद्र से संबद्ध है, जिसमें दुर्वासा द्वारा दी गई दिव्य माला का असहनीय अपमान हुआ। इंद्र ने उस माला को ऐरावत के मस्तक पर रख दिया और ऐरावत ने उसे नीचे खींचकर पैरों से कुचल दिया। दुर्वासा ने फलतः भयंकर शाप दिया, जिसके कारण सारे संसार में हाहाकार मच गया। अनावृष्टि और दुर्भिक्ष से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। नारायण

की कृपा से समुद्र-मंथन की प्रक्रिया द्वारा लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ, जिससे वृष्टि होने लगी और कृषक वर्ग का कष्ट कट गया। अमृत-पान से वंचित असुरों ने कुंभ को नागलोक में छिपा दिया, जहाँ से गरुड़ ने उसका उद्धार किया और उसी संदर्भ में क्षीरसागर तक पहुँचने से पूर्व जिन स्थानों पर उन्होंने कलश को रखा, वह ही कुंभ-स्थलों के रूप में प्रसिद्ध हुए।

दूसरी कथा प्रजापति कश्यप की दो पत्नियों के सौतिया डाह से संबद्ध है। विवाद इस बात पर हुआ कि सूर्य के अश्व काले हैं या सफेद। जिसकी बात झूठी निकलेगी वही दासी बन जाएगी। कद्रू के पुत्र थे नागराज वासुकि और विनता के पुत्र थे वैनतेय गरुड़। कद्रू ने अपने नागवंश को प्रेरित करके उनके कालेपन से सूर्य के अश्वों को ढक दिया। फलतः विनता हार गई। दासी के रूप में अपने को असहाय संकट से छुड़ाने के लिए विनता ने अपने पुत्र गरुड़ से कहा तो उन्होंने पूछा कि ऐसा कैसे हो सकता है। कद्रू ने शर्त रखी कि नागलोक से वासुकि-रक्षित अमृत-कुंभ जब भी कोई ला देगा, मैं तुम्हें दासत्व से मुक्ति दे दूँगी। विनता ने अपने पुत्र को यह दायित्व सौंपा, जिसमें वे सफल हुए। गरुड़ उस अमृत-कलश को लेकर भूलोक होते हुए अपने पिता कश्यप मुनि के उत्तराखंड में गंधमादन पर्वत पर स्थित आश्रम के लिए चल पड़े। उधर वासुकि ने इंद्र को सूचना दे दी। इंद्र ने गरुड़ पर चार बार आक्रमण किया और चारों प्रसिद्ध स्थानों पर कुंभ का अमृत छलका, जिससे कुंभ पर्व की धारणा उत्पन्न हुई।

देवासुर संग्राम की जगह इस कथा में गरुड़-नाग संघर्ष प्रमुख हो गया। जयंत की जगह इंद्र स्वयं सामने आ गए। यह कहना कठिन है कि कौन सी कथा अधिक विश्वसनीय और लोकप्रिय है। पर व्यापक रूप से अमृत-मंथन की उस कथा को अधिक महत्त्व दिया जाता है, जिसमें स्वयं विष्णु मोहिनी रूप धारण करके असुरों को छल से पराजित करते हैं। सपत्नी भाव की लोकप्रियता भी कम नहीं कही जा सकती और गरुड़ का संदर्भ भी अनुपेक्षणीय है; परंतु कुल मिलाकर विशेष प्रसिद्धि समुद्र-मंथन की कथा को ही मिली। दुर्वासा की कथा में भी समुद्र-मंथन का प्रसंग समाहित है। इसलिए भी उसका महत्त्व बढ़ जाता है। कश्यप की संततियों का पारस्परिक युद्ध देवासुर संग्राम जैसा प्रभावी रूप ग्रहण नहीं कर सका; यद्यपि उसकी प्राचीनता संदिग्ध नहीं है। गरुड़ की महत्ता विष्णु से जुड़ गई और वासुकि रूप में नागों का संबंध शिव से अधिक माना गया। यहाँ भी शैव-वैष्णव भाव देखा जा सकता है, जो बड़े द्वंद्वात्मक संघर्ष के बाद अंततः हरिहरात्मक ऐक्य ग्रहण कर लेता है।

कुंभ मेला : संसार का सबसे बड़ा मेला

कुंभ मेलों के परिविस्तार और उत्तरोत्तर सघन होते हुए जनसमूह की कल्पना से यह स्पष्ट है कि कुंभ मेले संसार के सबसे बड़े मेले होते हैं और उनमें प्रयाग कुंभ का अपना विशिष्ट स्थान है। जिसने स्वयं देखा नहीं है वह उसका अनुमान नहीं लगा सकता। कितने संप्रदाय, कितने अखाड़े, कितने मठ-मठाधीश, विभिन्न वेशों और मुद्राओं में आए कितने साधु-संत और देश-विदेश से आए कितने स्नानार्थी एवं दर्शनार्थी सारे नगर को एक जीवंत लघु भारत बना देते हैं। जिसकी विराट्ता स्वयंसिद्ध दिखाई देती है। सारे तीर्थों, सारी नदियों और सारे जलाशयों का आशय कुंभ में सिमटकर उसे महाकुंभ बना देता है। जलधारा और जनधारा का इतना विशाल संगम किसे अंतस्स्नान नहीं कराता और मानसिक मुक्ति नहीं देता। जिसकी जन-भावना इसके साथ नहीं जुड़ी वह वस्तुतः देश के साथ एकात्म नहीं हो सकता। जिसे इसको देखकर प्रसन्नता नहीं होती वह सचमुच प्रसाद का अधिकारी नहीं है; क्योंकि प्रसाद की सार्थकता ही इसीमें है कि देनेवाले और लेनेवाले के बीच आस्था का समान सूत्र बना रहे। अन्य धर्मों में विश्वास रखनेवाले भी इस बात से अवश्य प्रसन्न होंगे कि भारतवर्ष मूलतः आस्थाशील लोगों का देश है। शिवत्व के प्रति आस्था ही हिंदुत्व की सबसे बड़ी पहचान है। उदारता, सहनशीलता तथा सौंदर्यप्रियता उसकी सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावना के अभिन्न अंग रहे हैं। नए मनुष्य की कल्पना और उसके प्रतिमूर्त होने की सारी संभावनाएँ इसी अहिंसक देश में दिखाई देती हैं। अन्य देश युद्धों की विभीषिका से इतने आक्रांत रहे हैं कि तटस्थ दृष्टि से जीवन को देखना उनके लिए दुष्कर हो गया है। वैसे मनुष्यता स्वयं खंडित नहीं हुई है। अतः कोई भी देश इसका श्रेय ले सकता है। धर्म का अर्थ भारतवर्ष में सदा मानव-धर्म माना गया है, इसलिए धर्मनिरपेक्षता उसे प्रेरक और आत्मीय नहीं लगती; परंतु जब तथाकथित 'धर्म' मानवता से विपथ होने लगते हैं तो धर्मनिरपेक्षता ही सच्चा धर्म बन जाती है।

'हरिहर क्षेत्र' की तरह कुंभ मेले में मीना बाजार, घोड़ा बाजार, हाथी बाजार, चिड़िया बाजार एवं काठ बाजार नहीं लगते और न संगीत-नृत्य के लिए वारांगनाएँ सुलभ होती हैं। लीलाओं का प्रदर्शन अवश्य होता है। गीता-भागवत की कथा का ललित रूप भी सुनने में आता है। भजन-कीर्तन के जीवंत वातावरण में स्त्री-पुरुष समान भाव से सहयोग देते हैं। कुंभ मेले की प्रकृति मूलतः दूसरे मेलों से भिन्न है। किसी पशु मेले से तो उसकी तुलना कदापि नहीं की जा सकती। देश में धार्मिक मेलों की एक बहुत बड़ी श्रृंखला है। यह मेला उसका सर्वोच्च शिखर कहा जा सकता है। आज की व्यापारिक मानसिकता ने उसे प्रभावित अवश्य किया है; परंतु मूल भावना अभी तक जीवंत-जाग्रत् है। कुश-काँस, तंबू-कनात, नौका-जहाज, गंगाजल-जनेऊ, मुंडन-तर्पण, हड्डी-पिंडा, स्नान-गोदान सब गंगा मैया के भरोसे होता रहा है। यहाँ के व्यापार में भी धर्मभाव कुछ-न-कुछ रहता ही है।

भागीरथी हम दोस भरे,
पै भरोस यहै हैं परोस तिहारे।
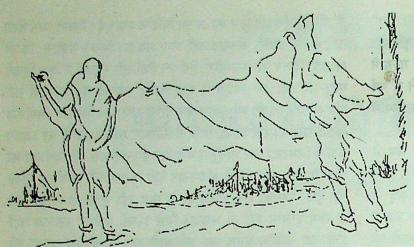
ऐसा न हो तो इतने लोग इतनी कठिनाइयों को सहते हुए भी बिना निमंत्रण एकत्र नहीं हो पाते। तर्क श्रद्धा और विश्वास को काटता नहीं, उन्हें दृढ़ भी करता है—यह बात अनुभव से ही जानी जाती है—

'यो यत् श्रद्धा स एव सः।'

कुंभ पर्व का ज्योतिषपरक पक्ष

नीचे चारों स्थलों के ज्योतिषमूलक संदर्भ दिए जा रहे हैं, जो द्वादशवर्षीय क्रम से आते रहते हैं। ग्यारह कुंभों के बाद आनेवाला कुंभ महाकुंभ माना जाता है। बृहस्पति ही ग्यारह वर्ष ग्यारह महीने और सत्ताईस दिन में अपना राशि चक्र पूरा कर पाता है, अत: उसीके कारण कुंभ का निश्चय ग्यारह से बारह वर्ष के भीतर किया जाता है।

१. प्रयाग : ग्रह योग—मेष राशि में बृहस्पति, चंद्रमा और सूर्य—दोनों मकर राशि में, संगम तट पर अक्षयवट के समीप विख्यात कुंभ-स्नान।

२. उज्जैन : ग्रह योग—सिंह राशि में बृहस्पति, मेष राशि में सूर्य, शिप्रा तट पर पर्व-स्नान, सिंहस्थ नाम से प्रसिद्ध।

३. हरिद्वार : ग्रह योग—कुंभ राशि में बृहस्पति, मेष राशि में सूर्य, गंगातट पर पर्व-स्नान, कुंभ नाम से विख्यात।

४. नासिक : ग्रह योग—सिंह राशि में बृहस्पति, सिंह राशि में ही सूर्य, गोदावरी तट पर पर्व-स्नान, सिंहस्थ नाम से प्रसिद्ध।

गंगोद्भेद, गंगासागर और समुद्रतलवर्ती गंगा-प्रवाह

गंगा और यमुना के मिलन की गाथा अनेक पुराणों में वर्णित है; परंतु दोनों के पुनर्विभेद की कल्पना 'शताध्यायी' में ही सामने आती है। यमुना गंगा से पुरानी नदी है, ऐसी प्राचीन मान्यता अब भूगोल और इतिहास के विशेषज्ञों का ध्यान भी आकृष्ट करने लगी है। गंगा-यमुना का मानवीकरण भवभूति, तुलसी तथा केशव ने ही नहीं, पुराणकारों ने भी किया है। 'शताध्यायी' भी पुराण शैली में लिखी गई है, वरन् वह पुराण का अंग ही मान ली गई है और सौ अध्यायों में प्रयाग एवं त्रिवेणी की महिमा वर्णित करती है। उसमें दक्षिण के कुंभकोणम् को आदितीर्थ के रूप में स्मरण किया गया है। कुंभ संबंधी सभी स्थानों से वह स्थान समुद्र के निकट सिद्ध होता है; यद्यपि एकदम पास नहीं है। वहाँ से वाराणसी और वाराणसी से प्रयाग की उत्तरोत्तर महिमा त्रिवेणी को सर्वोपरि सिद्ध करती है। त्रिवेणी में गंगा-यमुना तो प्रकट हैं, पर सरस्वती अलक्षित है। गंगा जब यमुना में मिलीं तो गंगा से पुरातन नदी होकर भी यमुना ने गंगा को अर्घ्य प्रदान किया। गंगा ने उसे स्वीकार नहीं किया, जिससे यमुना को संदेह हुआ। उसकी जिज्ञासा का उत्तर देते हुए गंगा ने कहा, 'तुम नदियों में बड़ी हो, इसलिए तुमसे मिलने से मेरा नाम नष्ट हो जाएगा। हे यमुने! तुम्हारे साथ मिलने पर भी मेरा नाम बना रहे, तभी मैं तुम्हारा अर्घ्य ग्रहण करूँगी।' यमुना बोली, 'सौ योजन तक तुम्हारा ही नाम रहेगा।' इसके बाद यमुना से पूछकर गंगा अलग हो गई और गंगासागर में सौ धाराओं में यमुना तथा हजार धाराओं में गंगा समुद्र में गिरती हैं, ऐसा माना जाता है। गंगोद्भेद तीर्थ इसीका द्योतक है। (द्रष्टव्य—'शताध्यायी', अध्याय २७२, श्लोक ४०-५०)

यस्मिन्तीर्थे पृथग्भूते ते उभे सरिदुत्तमे।
गंगोद्भेद इति ख्यातं तत्तीर्थं पुण्यपावनम्॥

गंगासागर का सचित्र विवरण 'गंगारहस्य' के बयालीसवें अध्याय में वर्णित है। गिरिया बोडाल, बजबज से लेकर प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल तलामलुक (ताम्रलिप्ति) तक इसी क्षेत्र में माने जाते हैं। दामोदर नदी तथा रूपनारायण नदी भी संगम की शृंखला का परिविस्तार करती हैं और हल्दी नदी भी। सुंदर वन हल्दी संगम से पच्चीस मील दूर गंगासागर संगम स्थित है। बंगाल की खाड़ी के चौबीस परगना आदि जनपदों तक व्याप्त इसका क्षेत्र लगभग दो सौ मील तक फैला हुआ है और चौड़ाई भी सौ मील के करीब है।

इधर मुझे रीडर्स डाइजेस्ट एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित 'ग्रेट वर्ल्ड एटलस' और उसी क्रम में प्राप्त 'इंडियन ओशन फ्लोर' शीर्षक नक्शा प्राप्त हुआ, जिसमें समुद्र के भीतर प्रवाहित गंगा की धाराओं का वैज्ञानिक रीति से अंकन किया गया है। यह बात अन्य विशाल नदियों के साथ भी है; पर गंगा का महत्त्व सबसे ऊपर है, अत: मेरा ध्यान उसपर विशेष रूप से गया। 'गंगा' शब्द कभी नदीवाची रहा होगा। इसका प्रमाण अफ्रीका की 'कागो' तथा चीन की 'ह्वांग हो' एवं 'ही क्याङ्' आदि नदियों के नामों से मिल जाता है। भारत में 'गंगा' पवित्र दैवी नाम हो गया, जिसकी समता कोई नहीं कर सकता।

विशाल मेले की छवि अवर्णनीय है। कितने पंडे, कितने झंडे, उनके छोटे-बड़े आकार, उनपर बने प्रतीक चिह्न, जिनमें पौराणिक भावना प्रकट होती है, और हरेक पंडे की वंशावली से जुड़ा रहता है। जिज्मानों

के बारह पीढ़ी पहले का विवरण पंडों के पास सुरक्षित रहता है। इसपर अलग से शोधकार्य हो सकता है, क्योंकि सांस्कृतिक दृष्टि से पूरा भारतवर्ष पंडों की बहियों में समाहित रहा है। पंडे, झंडे और मल्लाह के नावों के चिह्न भी दर्शनीय होते हैं। उनकी भाषा भी अलग होती है, जिसे पंडे और मल्लाह तो समझ लेते हैं, पर जिग्मान नहीं समझ पाता कि 'टाली और चौकड़' का क्या मतलब है। इधर त्रिवेणी क्षेत्र में कलकत्ता से चलकर एक जहाज आया था, जो इलाहाबाद के लिए अजूबा हो गया; किंतु यह सही है कि किसी काल में इलाहाबाद में भी जहाज रानी होती थी।

स्वर्ग की अदम्य कामना से भक्तगण वटवृक्ष की शाखाओं से कूदकर आत्महत्या करते थे। उन्हें ऐसा करने की प्रेरणा पंडे कूदकर दिखाते थे। वे तो तैरना जानते थे; किंतु जो भक्त थे वे तैरना नहीं जानते थे, अतः वे डूबकर मर जाते थे। और इसी मरने को ही भक्तगण स्वर्गवास समझ लेते थे। इसी तरह की एक परंपरा वाराणसी में भी प्रचलित थी, जिसके संदर्भ में मीरा कहती हैं—'लैहों करवट कासी', अर्थात् काशी में जहाँ आरा लगा रहता था और स्वर्ग-कामना से प्रेरित लोग आरे पर कूदकर दो खंड हो जाते थे। ऐसी परंपरा अंग्रेजों के आने तक चलती रही, ऐसा माना जाता है। वस्तुतः ये अंधविश्वास के ही रूप हैं, जिन्हें आधुनिक समाज स्वीकार नहीं कर सकता। इसके लिए धर्मांधता ही जिम्मेदार है। आज के युग में ऐसी प्रथाओं के पक्ष में कोई बुद्धिसंगत तर्क नहीं दिया जा सकता।

अंत में जन्मांतर की धारणा भी भारतीयता का अंग रही है। 'गीता' में भी इसका समर्थन मिलता है। किंतु किस परिस्थिति में और कैसे, यह कठोर प्रश्न आज भी विचारणीय है।

'वसु रन्ध्र वाण चन्द्रे तीर्थराजे प्रयागे,
तपसि बहल पक्षे द्वादशी पूर्व यामे।
नख-शिख तनु होमे सर्वभूमाधिपत्यै,
सकल दुरित हारी ब्रह्मचारी मुकुन्दः॥'

—*'इलाहाबाद री-ट्रासपेक्ट एंड प्रॉस्पेक्ट', पृष्ठ १६*

यह पुस्तक सन् १९५५ में इलाहाबाद म्यूनिसिपल प्रेस द्वारा प्रकाशित की गई और इसके ऊपर एक सील लगी हुई है, जिसमें 'म्यूनिसिपल बोर्ड सील' के भीतर गंगा-यमुना का संगम और दोनों के बीच किले की ऊँचाई प्रदर्शित है। 'पद्मपुराण' में प्रयाग के संदर्भ में जो श्लोक प्रारंभ में दिया गया है वह इस प्रकार है—

'सितासिते यत्र तरंग चामरे न द्यौ विभाते मुनिभानु कन्यके।
नीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥'

तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में इसीका आधार लेते हुए लिखा है—

'भरत सितासुत नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने॥'

सरस्वती ने भरत के पक्ष में अपना मत दिया और त्रिवेणी की सार्थकता सिद्ध हुई। जो सरस्वती मंथरा और कैकेयी की मति भ्रष्ट करने में शामिल थी वही भरत का पक्ष लेकर कहने लगी—

'तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥'

स्वयं सरस्वती ने त्रिवेणी की महिमा को सार्थक किया और प्रयाग सर्वोपरि पुण्यक्षेत्र सिद्ध हुआ। मैं अपने लेख की समाप्ति इस श्लोक से कर रहा हूँ, जो सुप्रसिद्ध है—

तीर्थे तीर्थे आगते साधु वृन्दः
वृन्दे वृन्दे तत्त्व चिन्तानुवादः।
वादे वादे जायते तत्त्वबोधः
बोधे बोधे भासते चन्द्रचूडः॥

□

१८१-ए/१, नागवासुकी, प्रयाग-६

कविता

शपथ

✍ रेणु भाटिया

उग्रवादी के हाथों आज
जन-जन है घबराया सा,
देखकर रक्त के छींटों को
मन में डर समाया सा।

असुरक्षा की आशंका से
मन रहता थर्राया सा,
प्यार-मोहब्बत के बोलों से
मन रहता भरमाया सा।

रात के हर पहर में हम
विचरते थे शान से,
आज दिन के उजाले में
हमला हो जाते आम से।

मासूमों की आत्मा ने
आज हमसे पूछा है,
करते क्यों नहीं इनका सामना
जिन्होंने हमको लूटा है।

मासूमों की जान लेकर
बचकर न वे जा पाएँगे,
दिन है अब वो नहीं दूर
हम इनको मार गिराएँगे।

शपथ है, इस धरती माँ की
हमें कुछ कर जाना है,
अपने प्यारे हिंदुस्थान को
उग्रवाद से बचाना है।

□

१४-सी, रामनगर एक्सटेंशन-II,
दिल्ली-११००५१

सौंदर्य प्रतियोगिता के लाभ

✍ गोपाल चतुर्वेदी

जो सुंदरता से घायल हैं वे सौंदर्य प्रतियोगिताओं के भी कायल हैं। अपन भी हैं। यदि किसीके पास सौंदर्य है तो उसका प्रदर्शन उसका अधिकार है। सुंदरता कोई धन-दौलत तो है नहीं कि उसे तिजोरी-ताले में बंद करके रखा जाए। अगर आयकर को पता लगा तो 'रेड' का खतरा है। सौंदर्य को समय के साथ सिर्फ क्षय का डर है। जरूरी है कि वक्त रहते अधिक-से-अधिक लोग उसे सराहें, उसकी तारीफ करें। गली-मोहल्ले में टहलने से सुंदरता की नुमाइश सिर्फ कुछ तक सीमित रहती है। अधिक-से-अधिक लोगों को नैन-सुख देना सुंदरता का दायित्व है। हमें तो यह सोच-सोचकर ताज्जुब होता है कि जब सौंदर्य प्रतियोगिताओं का आयोजन नहीं होता था तो जीवन का कारोबार कैसे चलता होगा। जाने क्यों, कुछ मूढ़ किस्म के व्यक्ति इनपर एतराज करते हैं। इस देश में मवेशी मेलों से लेकर फ्लावर शो तक होते हैं। उनसे इन्हें परहेज नहीं है, बस उन्हें शिकायत है तो सुंदरता के 'शो' से। जब उन्हें फूलों और जानवरों की प्रतियोगिता से उज्र नहीं है तो सुंदर औरतों की नुमाइश में क्या हर्ज है? आखिर आदमी और जानवर में भी तो आजकल केवल दो टाँगों का ही फर्क है। ज्यादातर पशु चार टाँगोंवाले हैं। आदमी विवश है, उसके पास दूसरों पर चलाने के लिए सिर्फ दो हैं। पहले गोरिल्ले होते थे। अब वे लुप्तप्राय हैं। यह साबित करना इनसान का कर्तव्य बनता है कि वह गोरिल्लों से बेहतर यानी सुंदर है। हमें खुशी है कि देश-दुनिया के लोग इस दिशा में समुचित तवज्जो दे रहे हैं। वरना इतिहासकार आदमी और गोरिल्लों में यही अंतर कर पाते कि गोरिल्ले शांतिप्रिय हैं और आदमी लड़ाकू। अब उन्हें सुविधा है। वह तथ्यों के आधार पर ताल ठोककर लिख सकते हैं कि आदमी का मादा सुंदर है, क्योंकि वहाँ सौंदर्य प्रतियोगिताएँ होती हैं। गोरिल्ले बदसूरत थे, क्योंकि उनमें ब्यूटी कंपटीशन का चलन नहीं था।

हमें उस महान् व्यक्ति की जानकारी नहीं है जिसने सौंदर्य प्रतियोगिताओं की शुरुआत की। अगर होती तो हम उसका माथा चूम लेते। क्या विलक्षण और कल्पनाशील दिमाग रहा होगा उसका। जरूर उसने सोनपुर के मेले में गाय-बैलों को सजा-सँवरा देखा होगा। सजे हुए पशुओं को देखकर उनसे आकर्षित होना लाजमी है। गौरतलब है कि जानवर कपड़े नहीं पहनते हैं। इसी कारण उसने भी सौंदर्य की जाँच-परख के लिए कम-से-कम कपड़े या यों कहें कि अमूमन वस्त्रहीनता का रिवाज रखा। खरीद के पूर्व ग्राहक पशुओं के दाँत से लेकर पूँछ और पैरों के नाखूनों तक का परीक्षण करते हैं। विश्व सौंदर्य प्रतियोगिताओं में भी निर्णायक सुंदरियों को हर कोण से जाँचते हैं। वह कभी स्विम सूट, कभी गाउन तो कभी डिजाइनर पोशाक में थिरकती हैं। उनके चलने-बोलने का अंदाज, मुसकराने की अदा, शरीर का नाप-जोख, दाँतों की बनावट, टाँगों की लंबाई, उँगलियों का गठन, त्वचा की कमनीयता, व्यक्तित्व का प्रभाव और आकर्षण आदि का ध्यान रखा जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में पशुओं के मुकाबले इनसानों की श्रेष्ठता भी झलकती हैं। मेले में खरीदार आया, उसने एक-दो बार अपने चहेते बैल या गाय को देखा। उनके सींग हिलाए। पीठ पर हाथ फेरा, दुम देखी। नाखून गिने। कीमत का मोल-तोल किया। सौदा पक्का हो गया।

सौंदर्य प्रतियोगिताओं में ऐसा नहीं है। उसमें बड़ी तैयारी की दरकार है। अगर किसी सुंदरी की बत्तीसी का एक दाँत भी आगे-पीछे हुआ तो पाँच-छह महीने तो उसे ठीक कराने में ही लग जाते हैं। अंग्रेजी का सही उच्चारण बहुत जरूरी है। दरअसल, अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा है। सुंदरियों से वार्त्तालाप आयोजक इसी भाषा में करते हैं। यह गर्व की बात है कि देशी सुंदरियों को अंग्रेजी में महारत हासिल करने में ज्यादा वक्त नहीं लगता है। समृद्ध भारतीय घरों में ऐसे भी माँ-बाप की आपसी बातचीत तक की भाषा अंग्रेजी है। इसमें कभी-कभार मातृभाषा का एकाध शब्द घुसपैठ कर जाता है। 'आई गा' अथवा 'अरे राम' जैसे तकिया-कलाम गलत संस्कारों के द्योतक हैं और वार्त्तालाप की धाराप्रवाह बहती अंग्रेजी की टेम्स में गंगा का प्रदूषण हैं। विश्व सुंदरी की मनोकामना रखनेवाली कन्या को समझदार माँ-बाप उसे ऐसे घटिया प्रभावों से बचाते हैं। उसकी शिक्षा ठेठ अंग्रेजी स्कूलों में होती है, चाहे वह बरेली की हो या विजयवाड़ा की। घर में जगने से लेकर सोने तक वह अंग्रेजी ही बोलती है। अंग्रेजी के अलावा भविष्य की संभावित सुंदरियों को अब और सुभीता है। आधुनिक चाल-ढाल, पोशाक और चलने-मटकने की ट्रेनिंग वे टी.वी. के फैशन चैनल को देखकर हासिल कर सकती हैं।

भारत सौंदर्य की असीमित संभावनाओं और सपनों को सच करनेवाला देश पहले कभी नहीं था, जैसा आज है।

इसके अलावा सुंदरियों की स्पर्धा में शामिल होनेवालों के लिए प्रशिक्षण के पेशेवर स्कूल भी हैं। यह अपना दुर्भाग्य है कि अपनी ताक-झाँक की हरचंद कोशिशों के बावजूद हम वहाँ के खिड़की-दरवाजों के मोटे परदों और गार्ड के पार नहीं पहुँच पाए हैं। सुनते हैं कि वहाँ की ट्रेनिंग काफी 'टफ' है। क्यों न हो। जब हिंद केसरी के दंगल में भाग लेनेवाले पहलवान तक वर्जिश और दाँव-पेच के अभ्यास में रात-दिन एक करते हैं, फिर यह तो 'इंटरनेशनल' मामला है। ज्ञानी बताते हैं कि आत्मानुशासन प्रगति का मूल है। हमें यकीन है कि हमारी सुंदरियाँ इसमें जरूर दक्ष हैं। सींकिया पहलवान दिखना आसान नहीं है। वह भी इस शर्त के साथ कि शरीर के कुछ हिस्से वजनदार हों। हमने खुद तो नहीं देखा है, सिर्फ अखबारों में पढ़ा है कि सुंदरियाँ खान-पान का बहुत ध्यान रखती हैं। सुबह जूस पी लिया, दिन में फल फाँक लिये, रात सूप से काट दी। अपना तो यह आलम है कि अगर दिन में फाँका करना पड़े तो रात भर तारे गिनते हैं। जाने किन अपच के शिकारों को इश्क-मुहब्बत और तारे गिनने में साम्य नजर आता है। हो सकता है कि यह भूखों को बहलाने का कोई बहाना है, 'तुम्हें प्रेम जैसे नायाब रोग से नींद नहीं आ रही है। यह मत सोचो कि तुम भूखे हो।' सूक्ष्म आहार के साथ भावी विश्व सुंदरियाँ 'एरोबिक्स' जैसी लोकप्रिय पश्चिमी कसरतें भी करती हैं। जब से योग 'फैशनेबल' हुआ है, कुछ गाहे-बगाहे 'योगा' के आसन भी जमाने लगी हैं। हमारे मोहल्ले के एक नामी-गिरामी पहलवान अखाड़े की वर्जिश के बाद दो-तीन लीटर दूध, पंद्रह-बीस अंडे, पाव-आध पाव घी और तीस-चालीस चपाती यों ही उड़ा जाते हैं। अतीत में हम मुल्क की खाद्य समस्या के लिए उन जैसों को ही जिम्मेदार मानते थे। अब हमें लगता है कि भारत को खाद्यान्न में आत्मनिर्भर और सरप्लस बनाने में किसानों का तो महत्त्वपूर्ण योगदान है ही, सुंदरता की दौड़ में लगी हजारों लड़कियों का भी है। पिछले तीन वर्षों से हमारे गोदाम अनाज से भरे हैं। पिछले तीन सालों से भारतीय सुंदरियों ने संसार में धूम मचा रखी है। जाहिर है कि जब हजारों की देखा-देखी लाखों खाना चुगेंगी तो आटे-दाल की बचत होना-ही-होना है। जूस, फल, पेस्ट्री, केक, सूफले, आइसक्रीम की खपत बढ़ने से मुल्क की अधिकतर दाल-रोटी पर निर्भर आबादी को कोई फर्क नहीं पड़ता है।

प्रसाधन के साधन बनानेवाली कंपनियों का दावा है कि राम के युग में अगर शूर्पणखा भी उनके मेकअप के सामान का इस्तेमाल करती तो उसके नाक-कान न कटते। इन कंपनियों का बेहद कल्याणकारी लक्ष्य हिंदुस्तान की हर लड़की को सुंदर बनाना है। अध्यात्म, अहिंसा, धर्म, नैतिकता के बाद भारतीय इतिहास में अब सुंदरता के अध्याय का समय है।

पहलवान और अखाड़े की बात से हमें खयाल आया कि कुश्ती और सौंदर्य प्रतियोगिता की तैयारी में खासा अंतर है। दंगल सिर्फ पहलवान की शारीरिक शक्ति और दाँव-पेच में कुशलता की पहचान है। सौंदर्य प्रतियोगिता में भाग लेनेवाली अप्सरा को तन, मन, वचन, कर्म से सुंदर होना पड़ता है। हमारे बुद्धू पहलवान ताकत के धनी हैं। उनकी जानकारी का यह आलम है कि एक बार उन्होंने किसी मल्ल के साथ राजीव गांधी की तसवीर देख ली थी। वह उनको आज भी प्रधानमंत्री मानते हैं। सौंदर्य प्रतियोगिता में शामिल होनेवाली कन्याएँ ज्ञान की प्रतिभाएँ होती हैं। उनको देश और दुनिया का पता है। वह जानती और बताती हैं कि बस्तर ग्वालियर की सीमा से लगा उत्तर प्रदेश का एक मशहूर शहर है। वह संसार की जीवित आदर्श महिलाओं में मदर टेरेसा को सबसे अनुकरणीय मानती हैं। कोई उन्हें सूचित करता है कि वह तो कब की चल बसीं तो वह उसे चुप करवाती हैं कि मदर उनकी स्मृति में अमर हैं। मुल्क की इन खूबसूरत लड़कियों में बला की हाजिर-जवाबी और आत्मविश्वास है। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य से आयोजक परिचित हैं कि जीवन में सिर्फ शक्ल से काम नहीं चलता है। उसके लिए अक्ल की भी दरकार है। इसी कारण ऐसी प्रतियोगिताओं में आजकल अक्ल पर जोर है।

पहलवान अखाड़े की माटी को अपनी शोभा समझते हैं। जब उन्हें ज्यादा जोश आया तो अखाड़े की मिट्टी अपने बदन पर मल ली। तेल चुपड़े ताँबे-से शरीर में मिट्टी उबटन का मजा देती है। आज ब्यूटी क्वीन भी सुंदर दिखने को अपने शरीर पर न जाने कौन-कौन से लेप, लोशन, क्रीम, पाउडर, रूज आदि पोतती हैं। प्रसाधन के साधन बनानेवाली कंपनियों का दावा है कि राम के युग में अगर शूर्पणखा भी उनके मेकअप के सामान का इस्तेमाल करती तो उसके नाक-कान न कटते। इन कंपनियों का बेहद कल्याणकारी लक्ष्य हिंदुस्तान की हर लड़की को सुंदर बनाना है। अध्यात्म, अहिंसा, धर्म, नैतिकता के बाद भारतीय इतिहास में अब सुंदरता के अध्याय का समय है। हम बहूद्देशीय संस्थानों के आभारी हैं कि वह विकसित यूरोप-अमेरिका के बाद पिछड़े भारत की लड़कियों को सौंदर्य-सजावट की सामग्री का चलता-फिरता इश्तहार बनाने की पहल कर रहे हैं। आज दुनिया में भारत के सौंदर्य का नगाड़ा

बज रहा है। सम्राट् अशोक महान् के पश्चात् पहली बार संसार में भारत की सुंदरियों ने मुल्क का नाम रोशन किया है। वह वाकई दुनिया में देश की असली अनौपचारिक प्रतिनिधि हैं। वक्त आ गया है कि सरकार भी इस तथ्य को स्वीकार कर उन्हें दूतावासों में राजदूत नियुक्त कर देश की साख में चार चाँद लगाए। सुंदरता, ज्ञान, मेकअप के साथ भारतीय विश्व सुंदरियाँ जन-कल्याण और परोपकार की भावना से प्रेरित रही हैं। एक सुंदरी संसार से पीड़ित, कुपोषित बच्चों के मुख पर मुसकान लाना चाहती है तो दूसरी गरीबों, असहायों का दुःख-दर्द मिटाना चाहती है। हमें उनके नेताओं के ऐसे इन नेक इरादों की कद्र करनी चाहिए। इसमें कोई शक नहीं है कि उनकी नेक कहनी और कथनी में अंतर नहीं है। अपने लाखों प्रशंसकों का दिल बहलाने के लिए हर विश्व सुंदरी का इकलौता अरमान बॉलीवुड में नायिका बनने का होता है। हमें अंतर में ऐसी गलतफहमी नहीं पालनी चाहिए कि नायिका या मॉडल बनकर वह पैसा कमाने की इच्छुक हैं। यह केवल भ्रामक प्रचार है। उनकी हसरत सिर्फ गरीबों के आँसू पोंछना है। फिल्मी हस्तियों से बेहतर यह काम सिर्फ नेता ही अंजाम दे सकते हैं। हमें आशा है कि हमारे राजनीतिक दल विश्व सुंदरियों को संसद् में भेजने का इंतजाम फौरन से पेश्तर करने में नहीं चूकेंगे।

अपनी निराशा और शिकायत विश्व सौंदर्य प्रतियोगिताओं के आयोजकों से है। अपने शहर की गली, स्कूल, कॉलेज, मोहल्ले की हर छोटी-बड़ी सौंदर्य स्पर्धा में हमने बतौर दर्शक बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। अपनी सीटी बजाने की कला से शहर की हर लड़की प्रभावित है। सीटी बजाते-बजाते अपना यह हाल हुआ है कि ओठ गोल के गोल रह गए हैं। सुंदरता की प्रशंसा में ताली बजाते-बजाते अपने हाथ अब बिना बात खुलते-बंद होते रहते हैं। सुंदरता की शान में हर तरह के कसीदे पढ़ने के बावजूद हमें एक भी विश्व सौंदर्य प्रतियोगिता रू-ब-रू देखने का मौका नहीं मिला है। दूरदर्शन पर यह तमाशा हमने कई बार देखा है। पर वह तो दूर का दर्शन है, पास का दर्शन हो तो कुछ बात बने। हम सुंदरी पर आँख गड़ाएँ, उसे घूरें। भीड़भाड़ की धक्का-मुक्की और धींगामस्ती में हमें उसका स्पर्श-सुख भी मिल सकता है। फिर तो अपनी पौ-बारह है। पर यह सब खयाली पुलाव है। गंजे को भगवान् नाखून नहीं देता है। विदेशी आयोजक विदेशी हैं। वह हमारी छोटी सी हसरत और उसे पूरा करने का भला क्यों सोचें! हैरत की बात है कि खाँटी भारतीय सुंदरियाँ भी हमारा नहीं सोचती हैं।

ऊपर से बेकारी में आटा गीला करने कुछ और विघ्न संतोषी आ धमके हैं। वह सौंदर्य प्रतियोगिताओं के आयोजन के ही खिलाफ हैं। अपने पल्ले नहीं पड़ता है कि न लेना एक, न देना दो और भाई लोग हल्ला मचा रहे हैं। उन्हें यह भी मंजूर नहीं है कि उनके भाई-बंद कुछ देर दुःख-दर्द भुलाकर आँखें सेंकें। गाँव-गाँव तक मेकअप का सामान पहुँचे। गाँव की छोरी शहर की गोरी ऐसी लगे। बिजली-पानी हो न हो, पर क्रीम-पाउडर जरूर हो। लोगों को खुश होना चाहिए। सुंदरता के मामले में भारत एक विकसित देश बनने वाला है। धीरे-धीरे रोजगार के मामले में भी होगा। बस थोड़े इंतजार की दरकार है, सब्र की जरूरत है। दाल-रोटी भी कभी-न-कभी लोगों को मिलने ही लगेगी। तब तक सुंदरता के विकास में तो लोग फिजूल के अड़ंगे न लगाएँ। यह बदसूरती को बढ़ावा देने के बराबर है। हमारे ऐसे सुंदरता के उपासक और सीटी बजाने के शौकीन इन राष्ट्र-विरोधी तत्त्वों को कभी माफ नहीं करेंगे। ऐतिहासिक मौर्यकाल से चुनी हुई नगर-वधू शहर की शान रही है। हमें कभी-कभी शक होता है कि विश्व भर में आयोजित सौंदर्य प्रतियोगिताएँ कहीं हमारी परंपरा की ही नकल तो नहीं हैं। इक्कीसवीं सदी का आगमन भारतीय सौंदर्य का स्वर्ण युग है। हमें शक होता है कि कहीं हम अपना इतिहास ही तो नहीं दोहरा रहे हैं। □

डी-II/२९८, विनय मार्ग,
चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-११००२१

जुलाब की गोली बेचता हूँ

बेढबजी को एक बार कलकत्ता में निरुत्तर होना पड़ा। एक बार एक कैमिस्ट की दुकान से सिगार खरीदे। आधे दर्जन सिगार लिये। पाँच सिगार तो जेब में रख लिये और एक को लेकर सुलगाने लगे। दुकानदार ने कहा, 'कृपया दुकान के अंदर सिगार न जलाइए।'

बेढबजी बोले, 'आप सिगार बेचते तो हैं, किंतु ग्राहकों को उन्हें अपनी दुकान में पीने पर क्यों आपत्ति करते हैं?'

दुकानदार ने धीरे से उत्तर दिया, 'महाशय! बेचता तो मैं जुलाब की गोलियाँ भी हूँ, किंतु यदि ग्राहक उन्हें यहीं इस्तेमाल…'

बेढबजी आगे सुनने को न ठहर सके, चुपचाप बाहर चले आए। उनका समाधान हो गया था। □

जन्म : १९ मई, १९६३ को ग्राम लाहा, जिला अंबाला में।
शिक्षा : बी.एस-सी., एम.ए. (हिंदी), बी.एड.।
प्रकाशन : 'अनजान डगर' (कहानी संग्रह)।
अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ व कविताएँ प्रकाशित।
संप्रति : हिंदी प्रवक्ता, प्रियदर्शिनी महिला महाविद्यालय, ज़लदा, राउरकेला।

'अरी शशि, तुम अपनी बेटी को शहर के जिस सबसे अच्छे 'ज्योति सिलाई सेंटर' में दाखिल कराने जा रही हो, जानती हो, वह ज्योति कौन है? अरे, ये वही अपने उस पड़ोसी बुढ़ऊ श्रीवास्तव की दूसरी बीवी है।' क्रांति कहे जा रही थी। उसकी आँखों में खुशी झलक रही थी।

शशि को पहले तो उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ, पर बाद में क्रांति से और भी बातें सुनने के बाद उसे विश्वास हो चला था। वह भी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न थी।

आज से तीन साल पहले शशि और क्रांति के घर के समीप ही रहनेवाले श्रीवास्तवजी ज्योति को दूसरी बीवी बनाकर लाए थे। उनकी पहली बीवी मर चुकी थी। सारा मोहल्ला जानता था कि पहली पत्नी से भी उनके संबंध अच्छे न थे। और एक लंबी बीमारी के बाद उसका निधन हो गया था। ज्योति अकसर क्रांति के पास आया करती थी। धीरे-धीरे मोहल्लेवालों को भनक लग गई थी कि श्रीवास्तवजी की अपनी दूसरी पत्नी से भी नहीं पटती। मोहल्ले में जितने मुँह उतनी ही बातें। कोई कहता, 'ज्योति खुद पच्चीस साल की है और यदि अपने साठ साल के पति को पच्चीस साल का बनाना चाहेगी तो कैसे चलेगा! बेचारे श्रीवास्तवजी क्या करें! वह तो खुद देखभाल कर ही ब्याह कर आई थी न। अब माथा पीटने से क्या लाभ!' कोई कहता, 'अरे, आजकल की लड़कियाँ बड़ी चालाक होती हैं। उनकी नजर अपने पति से ज्यादा पति की दौलत पर होती है। जरूर ज्योति रिटायर्ड श्रीवास्तवजी की दौलत पर निगाह डालकर ही आई होगी। पर वे बेवकूफ तो नहीं हैं। क्या वे अपने बेटे-बहुओं को नहीं देखेंगे? अरे, दो-दो बहुएँ और बेटे उनके साथ ही रहते हैं। नाती-पोतोंवाले आदमी हैं। यह उन्हें अपनी मुट्ठी में करना चाहती होगी, तो दुःख तो पाएगी ही न।' कोई कहता, 'अजी, श्रीवास्तवजी को मिट्टी का माधो मत समझो, बड़ी चालू चीज है वो। अरे, पहली पत्नी के हाथ पर भी एक धेला नहीं धरता था। बेचारी अभावों में मरी। इसे क्या देता होगा! अरे, लोभी है, लोभी; वो भी पूरे एक नंबर का। उसकी पहली बीवी ने मुझे सब बताया था। न जाने कैसे किस्मत की मारी बेचारी फँस गई यहाँ।' कोई कहता, 'इसका बाप, न भाई और न ही कोई रिश्तेदार इसे ब्याह के बाद छोड़ने आया था। इसके किसी भी रिश्तेदार को मैंने आज तक नहीं देखा। लगता है, भागकर आई है, या फिर इसके माँ-बाप नहीं होंगे तो किसी रिश्तेदार नें इसे इस बूढ़े के गले बाँधकर अपना बोझ उतार लिया होगा।' सारा मोहल्ला इसी प्रकार की अटकलें लगाता रहता।

क्रांति के घर शशि ने कई बार ज्योति को देखा था। एकदम दुबली-पतली, बड़ी-बड़ी आँखें, गोरी सी, माथे पर लाल बिंदी और माँग में ढेर सारा सिंदूर। क्रांति की पक्की सहेली जानकर उसने शशि से हिचक करनी छोड़ दी थी। वह मैट्रिक पास थी। एक दिन शशि ने उसे कहते हुए सुना था, 'दीदी, बात-बात पर मेरी गलती निकालते रहते हैं। बेटे-बहुओं के सामने गाली-गलौज और यहाँ तक कि मारपीट पर उतारू हो जाते हैं। 'तुझमें औरत सा है ही क्या?' कहकर रात को अपने कमरे से बाहर निकाल देते हैं। दीदी, बताओ, मेरी क्या गलती है? रात भर दीवारों को घूरती और सिसकती रहती हूँ। मुझे समझ में नहीं आता, वे ऐसा क्यों करते हैं।' तभी उसने दरवाजे की ओर झाँककर देखा था और कहा था, 'दीदी, सहा नहीं जाता कभी-कभी।' उसकी आँखों से आँसू चूने लगे थे। क्रांति उसे समझाने लगी थी। शशि को कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। उसका मन बार-बार होता था कि उससे पूछ बैठे कि क्या जरूरत थी उसे इस बेमेल विवाह की? कहाँ पच्चीस साल और कहाँ साठ साल! पर न जाने क्यों, वह उससे पूछने की हिम्मत ही न

जुटा पाती थी। उसे डर था कि कहीं उसकी किसी कोमल भावना को इससे ठेस न लग जाए।

एक दिन शशि अचानक क्रांति के घर सुबह-सुबह पहुँची तो उसने देखा, ज्योति अपनी पीठ की उधड़ी हुई चमड़ी को दिखाकर सिसक रही थी, और उस समय उसने जो बताया, वह उससे भी दर्दीला था। वह कह रही थी, 'दीदी, कल देर रात वे नशे में धुत हो आकर पीछे आँगन में पड़े तख्त पर ही पड़ गए थे। मैं उन्हें चादर ओढ़ाने गई तो उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया था। मैं स्तब्ध रह गई थी। आकाश के लाखों टिमटिमाते तारों की छाया में ब्याह के बाद पहली बार मैंने तृप्ति जानी थी। पर आनेवाली सुबह इतनी काली होगी, यह मैं नहीं जानती थी। रात में न जाने कब मेरी भी आँख लग गई थी। सुबह मुझे लगा कि मैं जोर से जमीन पर गिर गई हूँ। अभी उठ भी नहीं पाई थी कि लात-घूँसों की बौछार से कराहती रह गई। वे चीख रहे थे, 'तुझे मेरे पास आने की हिम्मत कैसे हुई बदजात? क्या तू नहीं जानती कि यह बेटे-बहुओंवाला घर है? वे देखेंगे तो क्या सोचेंगे! हया तो इसने बेचकर खा ली है।' दीदी, खिड़कियों से अनेक आँखें ये नजारा देखती रहीं, पर कोई भी हाथ मेरी मदद को बाहर नहीं आया। दीदी, किसीको भी मुझसे हमदर्दी नहीं है। बेटे-बहुएँ भी घृणा से मुँह फेर लेते हैं। ताने देते हैं कि मेरी नजर संपत्ति पर है।'

एक दिन वह कह रही थी, 'दीदी, मुझे उस घर में बहुत डर लगता है। मुझे लगता है जैसे उनकी पहली पत्नी कभी गुसलखाने से निकलकर आ रही हो, कभी इस कमरे से और कभी उस कमरे से। और दीदी, कल रात तो मैंने सपने में देखा कि वह मेरी छाती पर चढ़कर मेरा गला दबा रही है। मैं भय से चीखकर उठ बैठी थी। पति को सपना बताने पर उन्होंने मुझे अपनी पहली पत्नी का दिया एकमात्र सोने का हार भी उतरवा लिया था। उन्होंने उसे ही सपने का कारण बताया और अपनी बहू को दे दिया। दीदी, सारा दिन उन सबको खुश रखने की कोशिश करती हूँ; पर सब बेकार है। अब सहन नहीं होता। कभी-कभी मर जाने को जी चाहता है।'

एक दिन उसने अपनी कथनी सच कर दी थी। ढेर सारी नींद की गोलियाँ उसने खा ली थीं। पर छटपटाहट के कारण घरवालों ने जान लिया था और उसे बचा लिया था। उसीके दूसरे दिन वह फिर क्रांति के घर अपनी पीठ के घाव दिखाते हुए शशि को मिली थी। उसके पति व बेटे-बहुओं ने उसे लाठियों से पीट-पीटकर कोरे कागज पर यह लिखवा लिया था कि 'वह पागलपन की शिकार है और उसे कभी-कभी आत्महत्या करने का मन होता है।' अब तो क्रांति दीदी के गुस्से का पारावार न था। मोहल्ले की कुछ तेज-तर्रार महिलाओं को लेकर वे श्रीवास्तवजी के घर जा धमकी थीं। वहाँ जाकर उन सबने उन्हें अनेक प्रकार की धमकियाँ दी थीं। श्रीवास्तवजी ने उन सबको आइंदा ऐसा व्यवहार न करने का आश्वासन दिया था; पर उसके लगभग चार-पाँच दिन के बाद 'ज्योति घर छोड़कर भाग गई' की अफवाह सारे मोहल्ले में फैल गई थी। दो-चार दिन पुलिसवालों ने भी श्रीवास्तवजी के घर के चक्कर लगाए थे। फिर उनके चक्कर भी बंद हो गए थे। कुछ दिनों के बाद श्रीवास्तवजी के घरवालों ने मोहल्ले में यह अफवाह उड़ा दी थी कि वह अपने घर पहुँच गई है।

आज अपनी बेटी को 'ज्योति सिलाई सेंटर' में दाखिला दिलवाने जाते समय शशि ने मन-ही-मन ज्योति से वह बात पूछने का निश्चय कर लिया था, जो वह कभी उससे पूछ न सकी थी।

'अरे हाँ, यह तो वही ज्योति है; थोड़ी सी मोटी हो गई है। कितनी अच्छी लग रही है!' शशि ज्योति को देखकर मन-ही-मन मुग्ध हुई जा रही थी। ज्योति अनेक छात्राओं से घिरी उन्हें समझाने का प्रयास कर रही थी। धीरे-धीरे भीड़ छँटने लगी थी। तभी ज्योति की नजर शशि पर पड़ी थी। कुछ समय स्तब्ध रहने के बाद वह 'दीदी' कहती हुई खुशी से आकर शशि से लिपट गई थी। वह कहने लगी थी, 'दीदी! आप...यहाँ?'

उसकी बेटी के दाखिले की बात जानकर वह बहुत खुश हुई थी। वह बोलती चली जा रही थी, 'दीदी, उस मोहल्ले में यदि आप और क्रांति दीदी न होतीं तो उतने दिन काटना भी मेरे लिए वहाँ पर असंभव हो जाता। आप दोनों के पास बैठकर मैं अपने मन का बोझ हलका कर लेती थी।' उसने क्रांति व मोहल्ले के अनेक लोगों के बारे में एक साँस में पूछ डाला था।

उसकी बातों का जवाब देते-देते शशि स्वयं को उससे प्रश्न पूछने के लिए तैयार कर रही थी और आखिर वह पूछ ही बैठी थी, 'ज्योति, मैंने कई बार सोचा था कि तुमसे पूछूँ, पर न जाने क्यों, हिम्मत ही नहीं हुई। दुनिया के तो हजार मुँह और हजार बातें। पर आज मैं तुमसे पूछती हूँ, तुमने अपने पिता की उम्रवाले व्यक्ति से ब्याह क्यों किया?'

ज्योति जैसे किसी गहरी सोच में पड़ गई थी। उसके माथे पर बल पड़ गए थे। कुछ क्षणों के पश्चात् वह शून्य में देखती हुई बोल पड़ी थी, 'दीदी, हमारा बहुत बड़ा परिवार था। मेरे ताऊजी की मृत्यु के बाद उनके बच्चों का पूरा दायित्व मेरे पिता ने ले लिया था। उनके दो बच्चे थे—बड़ा लड़का और छोटी लड़की। हम खुद तीन भाई-बहन थे। मेरे ऊपर एक बड़ा भाई और एक मुझसे छोटा। ताऊजी के वे दोनों बच्चे हमसे पाँच-छह साल बड़े थे। पिताजी और माँ हमसे ज्यादा उनका ध्यान रखते थे। पहले भोजन की थाली उनके लिए लगती तब हमारे लिए; पहले उनके लिए नए कपड़े आते तब हमारे लिए; इसी तरह खिलौने, कॉपी, किताबों—सभी में उनका हक पहले था। धीरे-धीरे समय गुजरने लगा था। इस बीच ताऊजी के बड़े बेटे का चयन मेडिकल की प्रवेश परीक्षा में हो गया था। उनके दाखिले के लिए पिताजी ने अपने हिस्से की जमीन बेच दी थी। पाँच-पाँच बच्चों का बोझ उठाना उनके लिए भारी था। पर फिर भी वे प्रसन्नतापूर्वक उसे ढो रहे थे। उनकी दयालुता का फायदा गाँववाले भी उठाने से न चूकते थे। वे भी बीच-बीच में अपना दुखड़ा रोकर पिताजी से कर्ज ले जाते थे। न जाने क्यों, पिताजी किसीको 'न' नहीं कह पाते थे। दूसरे का दुःख देख-सुनकर वे तुरंत पिघल जाते थे। माँ इसपर कभी-कभी उनसे नाराज हो जाती थी; पर पिताजी जो निश्चय कर लेते थे, उसे कोई नहीं टाल सकता था। दीदी, पिताजी ने हम घरवालों से छिपकर भी न जाने कितने लोगों को कर्ज दिया था। फिर एक दिन अचानक हृदयाघात से पिताजी चल बसे। पीछे रह गया हमारा बेबस परिवार। इस बीच ताऊजी के बड़े बेटे डॉक्टर और बड़ी बेटी कॉलेज में प्रवक्ता बन चुकी थी। उनकी पोस्टिंग दूसरे शहरों में थी। अच्छे पदों पर पहुँचने के बाद उन्होंने हमारी ओर से मुँह फेर लिया था। दुर्भाग्य लगातार हमारा पीछा कर रहा था। इस बीच मेरे बड़े भाई को कैंसर हो गया। हमने घर का कीमती सामान और अंत में पूरा घर ही उनके इलाज के लिए बेच दिया; पर भगवान् को तो कुछ और ही मंजूर था। वे भी हमें रोता-बिलखता छोड़ चल बसे। ताईजी से हमने कुछ आर्थिक सहायता माँगी; पर उन्होंने साफ इनकार कर दिया। अब तो घर में फाके पड़ने लगे थे, दीदी। बी.ए. पढ़ा छोटा भाई दर-दर नौकरी के लिए भटक रहा था। मेरी पढ़ाई बंद हो गई थी। पड़ोस में रहनेवाली एक भली महिला से मैंने कुछ-कुछ सिलाई सीखनी शुरू कर दी थी। मेरी माँ अब लोगों के घर छोटे-मोटे काम करने जाने लगी थी।' कहते-कहते वह सुबकने लगी थी। फिर बोली, 'दुर्भाग्य को इतने पर भी हमपर तरस न आया। कष्ट के इन दिनों ही श्रीवास्तवजी अपने एक मित्र के साथ अपने लिए दूसरी पत्नी ढूँढ़ने हमारे गाँव आए थे। उनके मित्र हमारे ही गाँव के रहनेवाले थे। वे हमारी बेबसी की दास्तान श्रीवास्तवजी को सुना चुके थे। श्रीवास्तवजी ने मुझे एक नजर में ही पसंद कर लिया था; क्योंकि उस मध्यस्थ व्यक्ति ने उन्हें बता दिया था कि मैं गृहकार्य में पूरी तरह दक्ष हूँ—और उन्हें शायद इसीकी आवश्यकता थी। उस दिन अकेले में उन्होंने मुझसे कई सवाल पूछे थे—और अंत में मुझसे कहा था, 'मैं तुम्हारे घर के हालातों से वाकिफ हूँ। मैं तुम्हारे परिवार की मदद अवश्य करूँगा। तुम्हारे छोटे भाई को अपने शहर की फैक्टरी में नौकरी लगवा दूँगा। पर मेरी भी एक शर्त है। मेरा बेटे-बहुओंवाला घर है, इसलिए तुम्हें हर परिस्थिति में समझौता कर रहना होगा।' '

बोलते-बोलते ज्योति की आँखों में हलकी सी चमक आ गई थी। वह बोली थी, 'दीदी, अंधे को क्या चाहिए, दो आँखें! वे मेरे छोटे भाई को फैक्टरी में नौकरी दिलवा देंगे। मेरे बाद मेरी माँ और भाई सुख की दो रोटी खा सकेंगे। बस, इसी कारण मैंने उनकी हर शर्त मंजूर कर ली थी। भाई और माँ ने मुझे इस बेमेल विवाह के लिए बार-बार मना किया था; पर मैं न मानी थी। माँ और भाई की खुशी के लिए मैंने विवाह को मंजूरी दे दी थी। पर दीदी, विवाह के बाद वे अपने वायदे से पूरी तरह मुकर गए। मेरे भाई को उन्होंने गाँव से बुलवाया तक नहीं। एक बार माँ और भाई मुझसे मिलने चले आए थे। उन्होंने उन्हें बड़ा बेइज्जत कर घर से बाहर निकाल दिया था। बाकी तो आप सब जानती हैं, दीदी। इनके अत्याचारों से तंग आकर उस दिन जो मैंने जहर खाया था, वह वास्तव में मैंने मरने के लिए नहीं खाया था। मैं मरना नहीं चाहती थी; मैं तो वैसा कर उन दरिंदों के मन में अपने प्रति कुछ दया जगाना चाहती थी। पर हो गया उलटा। उन लोगों ने तो उसके बाद मुझसे और भी मारपीट की। बस, वही दिन मेरी जिंदगी में परिवर्तन का दिन था। मैंने उसी दिन संकल्प किया था कि मैं मौत से पहले कभी नहीं मरूँगी। जिंदगी से लड़कर जिंदा रहूँगी। यदि मरना भी पड़ा तो किसी महान् कार्य को करते हुए मौत को गले लगाऊँगी, इन दरिंदों के कारण नहीं। बस दीदी! और एक दिन चुपचाप मैं अपने गाँव चली गई थी। वहाँ अपनी उसी पड़ोसिन से बाकी बची सिलाई मैंने मनोयोग से सीखी और यहाँ आकर एक छोटी सी दुकान किराए पर लेकर काम शुरू कर दिया था। साथ ही लड़कियों को सिलाई सिखाना भी शुरू कर दिया था। भाग्य को शायद हमपर दया आ गई थी, सो खुशबू की तरह मेरे सिलाई सेंटर की तारीफ फैलती गई। गाँव से मेरी माँ और भाई भी यहीं आ गए हैं। भाई को यहाँ फैक्टरी में नौकरी मिल गई है और माँ मेरी मदद कर देती है। अब सबकुछ ठीक है, दीदी।' कहते हुए उसने एक गहरी चैन की साँस ली थी।

अपने परिश्रम से अपना भाग्य सँवारनेवाली जुझारू लड़की को देखकर शशि का मन भी गर्वित और पुलकित हो उठा था। ज्योति अब शशि की बेटी से बात करने में मशगूल हो गई थी।

□

ए-१८ (३ बी.आर.),
फर्टिलाइजर टाउनशिप,
राउरकेला-७
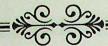
आओ! मनाएं भारतीय गणतंत्र का 51वां वर्ष

हमें अपनी उन लोकतांत्रिक परम्पराओं पर गर्व है जिन्हें दूरदर्शितापूर्ण संविधान से मजबूती मिली और जिसे आज के दिन अपनाया गया था।

आइए, हम भारत को वैभवशाली गणतंत्र बनाने में अपना योगदान दें।

26 जनवरी, 2001

davp 2000/

ई दुःख जिन कहे मइया के अगवाँ

शीला मिश्र

करुणा से मानव मन का शाश्वत संबंध है। करुणा की रागिनी जब विगलित होकर बजती है तो यह चर-अचर संसार उसमें निमग्न हो जाता है, सुधबुध खो बैठता है। मानव को करुणा अपनी ओर आकृष्ट करती है—उसमें उसे एक विशेष प्रकार के आनंद की अनुभूति होती है। कदाचित् इसीलिए कवि ने कहा था कि सबसे मधुर करुणा के गीत होते हैं, जो करुणा के स्वरों में गाए जाते हैं। कविता की प्रथम अनुभूति भी आदि कवि को क्रौंच पक्षी के शोक को देखकर ही हुई थी।

करुण रस ने भारतीय लोकमानस को भी अपने अद्‌भुत रंग में रँगा है। कितने ही लोकगीत हैं, जो हमारे नेत्रों को बरसने पर मजबूर कर देते हैं। माटी से उपजे ये मार्मिक लोकगीत व्याकुल हृदय की पुकार हैं। मार्मिकता लोकगीतों की पहली शर्त है। अधिकतर लोकगीत नारी कंठ से निकले हैं। अतः नारी हृदय की व्यथा, करुणा, शोक, मार्मिकता, वियोग आदि पक्ष इन लोकगीतों में मुखर होकर आए हैं। करुणाप्रधान लोकगीतों में मुख्यतः बारहमासा, जाँता गीत, निरवाही, सावन, चौमासा आदि आते हैं। अन्य लोकगीतों में भी कहीं-कहीं करुण रस उभरकर सामने आता है। जो गीत समवेत स्वरों में गाए जाते हैं उनमें हर्ष के स्वर मुखर होते हैं; जैसे देवी गीत, विवाह गीत, सोहर आदि; तथा जो गीत अकेले बैठकर गाए जाते हैं उनमें करुणा के स्वर ही अधिक लगते हैं। इन लोकगीतों में मार्मिकता के स्वर ऐसे ढंग से लगाए जाते हैं कि बात मन को छू जाती है। उनके लिए अलग-अलग उपमानों का भी प्रयोग किया जाता है; जैसे एक गीत है, जिसमें कन्या, आम, पुत्र और हंस—ये चार प्रतीक लिये गए हैं। कन्या पूछती है—

काहे बिनु सून अँगनवा ये बाबा काहे बिनु सून लखराउ।

पिता उत्तर देता है—

पूता बिनु सून दुअरवा ये बेटी हंस बिनु पोखरा हमार।

कन्या के बिना आँगन सूना है, पुत्र के बिना द्वार और हंस का अर्थ दामाद से है—जिसके बिना पोखरा सूना है।

इस सूनेपन का परिपाक अधिकतर लोकगीतों में हुआ है। एक मर्मस्पर्शी लोकगीत में बहू सास से पूछती है—तुम्हारा बेटा कब विदेश गया था? सास कहती है—बचपन में नीम का पेड़ लगाया था, उसमें भीगते ही पुत्र विदेश चला गया। बहू की व्यथा इन शब्दों में फूट पड़ती है—

खेलत कूदत बहु अरि निबिया लगाइन
रेखिया भिनत गए बिदेसवा रे ना
फटि गई निबिया लहसि गई डरिया
तबहू न लौटे मोर बिदेसिया रे ना।

इन गीतों में नारी अपने मन की व्यथा, कथा कहती चलती है। सुख-दुःख, धूप-छाँव को वाणी प्रदान करती भारतीय नारी की मनः-स्थिति इन गीतों में उजागर हुई है। लोकगीतों की इस थाती को आज तक जनमानस ने मंजूषा की भाँति सहेजकर रखा है। एक ओर नवविवाहिता गोरी पति के परदेश जाने पर नयनों के खामोश आँसुओं को चुपचाप पीती है तो दूसरी ओर सास, ननदों के तानों को भी बरदाश्त करती है।

उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में गाया जानेवाला एक बड़ा मार्मिक गीत है तितिरा—अर्थात् जाँत पीसने का गीत। यों भी भिनसार में अकेले जाँत पीसते समय वेदनाएँ उमड़कर बाहर आ ही जाती हैं। गीत में सास अपने मायके जाने के समय बहू को सींक की बेनिया दे जाती है। बारह बरस पर लौटने पर वह अपनी बेनिया वापस माँगती है। बारह बरस में बेनिया कभी की टूट चुकी है। सास नाराज होकर छत पर चली जाती है। इतने में सास का बेटा खेत से लौटता है। कहता है—

रनिया मैं देख्यों बहिनियाँ मैं देख्यों
कहाँ गई माई हमारी हो राम।

उसे माँ की नाराजगी का पता लगता है। पुत्र माँ का कोप शांत करने का उपाय पूछता है। माँ कहती है—

लावउ न मोरे बेटा धना का करेजवा
तबै करब दतुअन नहान हो राम।

बेटा नीचे उतरता है। पत्नी ने उसके लिए राम रसोई रची है। लेकिन उसका मन बहुत उदास है—

हँसि-हँसि प्यारी धना जेउना बनावैं
रोय-रोय जेंवई सिपहिया हो राम।

पत्नी को आश्चर्य होता है—

रोज तो मोरे राजा हँसि-हँसि जेवउ
आज कस जेवना बे रोयो मोरे राम।

पति उसे कारण बताता है—

रोज तो मोरी रानी घरहिनि रहतू
काल्ह चलि जइहों नइहरवा हो राम।

साथ ही वह मायके जाने का यथेष्ट कारण भी बता देता है—

काहे का जाबै राजा काल्ह नइहरवा
रानी, तोरे भैया का रचा बियहवा हो राम।

पत्नी मायके जाने के उत्साह में पहन-ओढ़कर डोले में बैठती है। पति घोड़े पर सवार है—

हँसि-हँसि प्यारी धना डोलवा पे बैठे,
रोय-रोय छोड़वा सिपहिया हो राम।

रास्ते में छाँह देखकर डोला उतारा जाता है और

यक छूरी मारैं दूसरि छूरी मारैं
तिसरी माँ रोवै होरिलवा हो राम।
यक हाथे लिअई धना के करेजवा
यक हाथे आपन होरिलवा हो राम।

पत्नी का कलेजा लाकर वह माँ के सामने रखता है। परंतु माँ तो उसकी माँ है—बहू के लिए तो वह सास ही है। पुत्र पर वह यकीन नहीं करती। कहती है—

अपनी धना बेटा नइहर पठायो
हमैं लायो खसी के करेजवा हो राम।

पुत्र को इसपर बड़ा दुःख होता है। उसने पत्नी की हत्या की माँ के कारण और माँ उसपर एतबार नहीं करती। वह पश्चात्ताप के स्वरों में कहता है—

लावौ न मोरी मइया सतुआ चबैना
जोगिया फकीर होइ जाइब हो राम।

इस तरह के मर्मस्पर्शी गीत भारतीय लोक वाङ्मय से भरे पड़े हैं। कहीं पति परदेश चला जाता है, पत्नी वियोगिन बन जाती है; कहीं पत्नी के परिहास से वह उसको छोड़ जाता है। कहीं बहन ससुराल में दुःखी है, भाई उसकी विपत्ति की गठरी गंगा में बहा देता है, तो कहीं बेटी की व्यथा में माँ की आँखों से निकले आँसुओं से सागर भर जाता है और पिता के आँसुओं से नदियाँ, तालाब भर जाते हैं। वहीं पुत्र न उत्पन्न कर सकने के कारण बहू सास द्वारा प्रताड़ित होकर गंगा में डूबने जाती है तो कहीं वह निराशा के स्वरों में शेर, बाघ, नाग, नागिन आदि से प्रार्थना करती है कि तुम्हीं मुझे खा लो। मैं तो बाँझ हूँ। मेरी सास ने मुझे निकाल दिया। और बाघिन भी उसकी प्रार्थना सुनकर कहती है कि मैं तुम्हें नहीं खाऊँगी, नहीं तो मैं भी तुम्हारी तरह बाँझ हो जाऊँगी—

जहँवा से आई तू रानी लौटि उहीं जातिउ हो
रानी तुहुँकै जो हम खाबै हमहुँ बाँझिनि होइ जाबै हो।

इन कारुणिक गीतों की शैली मुख्यतः प्रश्न और उत्तर में होती है। नायिका स्वयं सभी से प्रश्न करती है और वे उत्तर देते हैं। कहीं वह कोयल से संवाद स्थापित करती है तो कहीं पेड़ अथवा पक्षियों से। कहीं वह कोयल को अपनी सौत समझती है तो बरगद को बाबा, नदी उसकी बहन है तो तालाब भाई। इन्हींको वह अपनी व्यथा-कथा सुनाती चलती है। सुग्गे से तो उसका शाश्वत रिश्ता है—कौआ के मिस वह अपने मायके संदेश पठाती है तो इंद्रधनुष को देख उसे अपने प्रियतम की सतरंगी पगड़ी का ध्यान आता है। बरसात में हरे-हरे बागों को देख उसे अपने उस जीवन की याद आती है जिसकी हर शाख हरी-भरी थी। चूड़ीवाला मनिहार चूड़ी पहनाने आता है तो वह कहती है कि मैं लाल रंग की चूड़ी नहीं पहनूँगी—लाल तो मेरे प्रियतम के होंठ हैं; नीले रंग की चूड़ी नहीं पहनूँगी—नीले तो मरे प्रियतम के नेत्र हैं—

काले जंगाली रे मनरे ना पहनूँ
मनरे, काले मेरे राजाजी के केश महाराजाजी के केश
चूड़ा तो हाथी दाँत का।

सावन की ऋतु आ गई है, पति परदेश में है। गोरी के नयन भी सावन-भादों बन गए हैं। कदाचित् ऐसे ही अवसर पर महाकवि जायसी के 'पद्मावत' की नायिका कह उठती है—

चित्रामित्र मीन पर आवा।
हौं बिनु नाह मदिर को छावा॥

नदी-पोखर, ताल-तलैया सब भर गए हैं। पेड़ों पर झूले पड़ गए हैं। सखियों ने कजरी खेलनी आरंभ कर दी है—प्रियतम गौना तो ले आया है, लेकिन स्वयं परदेश में बैठा है—

पिया नहीं आए भवनवा मेरे सावनवाँ
गौना लै आए पिया घर बैठाए,
अपुना छवावैं मधुबनवाँ हरे सावनवाँ।

भादों मास की अँधियारी रात, प्रिय के बिना गोरी रह-रहकर काँप उठती है। बैरिन बिजली बार-बार उसे डरा जाती है। आसमान पर काले

बादल उमड़-घुमड़कर शोर मचाते हैं। प्रिय के बिना वर्षा की बूँदें कटारी के समान लगती हैं—

कैसे बितिहैं भदौंवा की रात घटा घेरे कारी
बरसत घन घहरात गगन बिच
चपला चमकैं न्यारी,
मैं अति डरति भवन के भीतर
प्रियतम बिन बुंद कटारी, घटा घेरे कारी।

इन कारुणिक गीतों में बारहमासा का विशेष स्थान है। प्रत्येक माह का दु:ख-दर्द इन गीतों में उभरकर आया है—

कौन हरै मोरी पीरा सजन बिन,
मास असाढ़ बदरा घन गरजै, सावन धरत न धीरा
सजन बिन।
भादों मास में बिजुरी चमकै, चौदसि भरि आए नीरा
सजन बिन।

भारतीय लोकगीतों की विशेषता है उनकी समानता। यहाँ कौसल्या रानी नहीं, एक साधारण नारी हैं, जो पुत्र वियोग में व्यथित होती हैं। राम का पटुका साधारण मनुष्यों के समान भीगता है। सीता गोबर से घर लीपती हैं, शिव-पार्वती उपला बटोरते हैं। इसी संदर्भ में कौसल्या एक साधारण माता की भाँति वनवास गए हुए राम-सीता की याद करती हैं—

राम के भीगै मुकुटवा लखन सिर पटुका हो राम,
मोरी सीता के भीगै सेनुरवा लवटि घर आवौ हो राम।

कौसल्या के नेत्रों में अश्रु हैं। वे कहती हैं—

माघ मास रितु लागै बसंत,
कब होइहै बनवास कै अंत।
हमरी अयोध्या में अउतिउँ राम,
बिप्र खवउतिउँ देतिउँ दान।

उधर सीता वनवास में सीता की विपत्तियाँ भी कम नहीं। गर्भ-भार से शिथिल सीता वन में अकेली चिंतातुर हैं—

को मोरे आगे-पीछे बैठइ को लट छोरे
को मोरी जागइ रयनिया त नरवा छि नावइ।
बन से निकरी बन तपसिन सितै समुझावहि हो
सीता हम तोरे आगे-पीछे बइठब हम लट छोरब हो।

राम भारतीय मानस की रग-रग में व्याप्त हैं। राम विषयक लोकगीतों से लोक-संसार भरा पड़ा है। करुणप्रधान गीतों के अंतर्गत एक अत्यंत मार्मिक लोकप्रिय गीत है, जिसमें हिरण और हिरणी की जीवन-कथा का बड़ा कारुणिक चित्रण है। लोकगीत एक कथा के रूप में बढ़ता है—

छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबरि हो
रामा तेहि तर ठाढ़ी हिरनियाँ त मन अति अनमन हो
चरतइ चरत हरिनवाँ तौ हरिनी से पूछहि हो
हरिनि की तोरा चरहा झुरान कि चारा थोर भये हो।

हिरणी की व्यथा तो दूसरी ही है। उसे मालूम है कि राजा दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में राम का जन्म हुआ है और राम की छठी के दिन हिरण मार दिया जाएगा और उसका मांस पकाकर ज्योनार की जाएगी। हिरण की नियति—वह मार दिया जाता है। हिरणी उसकी खाल लेने हेतु कौसल्याजी से आग्रह करती है—

मचियहि बइठि कौसल्या हरिनिया अरजु करै हो,
रानी मचिया त सिकिहैं रसोइयाँ खलरिया हमें देतिउ हो।

किंतु कौसल्या उत्तर देती हैं—

जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाहि देबइ हो
हरिनी खलरी क खँजड़ी मढ़ाउब राम मोरे खेलिहैं हों।
जब जब बाजइ खँजड़िया सबद सुनि अनकहु हो
हरिनी ठाढ़ि ढे कुलिया के नीचे हरिन के बिसूरइ हो।

वहीं रानी कौसल्या—अयोध्या की स्वामिनी, जिन्होंने दर्प में हरिण की खाल तक वापस नहीं की थी, राम वनवास के बाद बिलकुल साधारण माता के समान अश्रुपात करती हैं—

भितराँ से निसरी हैं रानी कौसल्या, नैनन चुवइ में अँसुइया हो राम,
राम-लखन अस मोर दुलरुवा, कौने बनवा माँ परा होइहैं हो राम,
राम बिना मोरी सूनी अजोध्या, लछमन बिन चौपटिया हो राम,
सीता बिना मोरी सूनी रसोइया, कइसे क जियरा मैं बोधौं हो राम।

इन करुणप्रधान गीतों की विशेषता यह है कि ये मानव मन को छूते चलते हैं। एक की व्यथा सबकी व्यथा बन जाती है। एक का दर्द सबका दर्द है। एक बेटी की वेदना सभी बेटियों की वेदना है। इस प्रकार का एक लोकगीत सभी माताओं की आँखों से अश्रु उड़ेल देने को पर्याप्त है। सावन के एक लोकगीत में बेटी ससुराल में है। वह सोचती है कि 'कैसे मेरी माँ ईंट की और पिता पत्थर के बन गए। सावन आ गया, लेकिन उन्होंने अभी तक मुझे ससुराल से विदा नहीं कराया। उसकी व्यथा इन शब्दों में फूट पड़ती है—

अम्मा मेरे बाबा को भेजो री
कि सावन आया¨
माँ की अपनी मजबूरियाँ हैं—
बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा है रे
कि सावन आया¨

बेटी बार-बार छत पर चढ़कर देखती है, शायद उसका भाई लेने के लिए आ रहा हो। सास-ननद सभी ताने देती हैं—कोई उसे लेने नहीं आया। इधर सास की बुहारी भी बहू से टूट गई है—सास कुपित है। बहू बेचारी चिड़िया को दूध-भात देकर उससे अपने मायके संदेश भेजती है—

झिनवा बहारत टूट गै बढ़निया रे ना
बहिनी सासू गरियावैं दीख भइया रे ना।
खाउन चिरई मोरे दुधवा औ भतवा
जाइ नइहरवा माँ बोलेउ ना।

परंतु इस प्रकार के सभी गीतों का अंत मंगलमय होता है। बहन के भाई आते हैं—सोने की झाड़ू सास के सामने रखते हैं और बहन को विदा कराकर ले जाते हैं।

उत्तर प्रदेश में गाया जानेवाला एक अन्य सोहर है, जिसमें पति गर्भिणी पत्नी से पूछता है कि उसका क्या खाने का मन है। पत्नी उत्तर देती है कि उसे गजनी के पान बहुत पसंद हैं। पति कहता है—गजनी नगर की नारियाँ बड़ी सयानी हैं; हो सकता है कि वह पान लेने जाए और वहीं भ्रमित होकर रह जाए। इसपर पत्नी उसके साथ चलने को तैयार होती है—

अपने का साजौ रामा छोड़वा ललन बछेड़वा हो ना
राजा हमहूँ का डोला सजायो तिनहूँ जन चलबै हो।

सब लोग गजनपुर पहुँचते हैं। पति पान लेने गया है। पत्नी कदंब के पेड़ तले बैठी है। दोपहर होती है, शाम होती है—रात हो जाती है; परंतु पति नहीं लौटता। पत्नी बेचारी गजनी की गलियों में बिसूरती फिरती है। अंत में कहती है—

आगि लागै वही पनवा बजुरि परै गजन्यी रे
चंदा सूरज जैसे बालम मैं गजनी गँवायो रे।

एक अन्य मर्मस्पर्शी गीत है, जिसमें गोरी का भाई उसे लेने ससुराल आया है। बहन कहती है कि ससुराल में अत्याचार सहते-सहते मैं इस प्रकार वेदना से जल रही हूँ जैसे सोनार की दुकान में सोना या लोहार की दुकान में लोहा जलता रहता है। मेरे लंबे घने केश झड़कर कुतिया की पूँछ सरीखे हो गए हैं। ससुराल में मुझे खाने के लिए सबसे बाद में बची हुई रोटी मिलती है, उसमें भी कुत्ते-बिल्लियों का हिस्सा रहता है। फिर भी हे मेरे भाई! मेरी इस विपत्ति को तुम माँ या पिता के आगे मत कहना, नहीं तो वे रो-रोकर मर जाएँगे। इस करुण कथा को तुम छोटी बहन के आगे भी मत कहना, नहीं तो वह विवाह ही नहीं करेगी—मेरी इस विपत्ति की गठरी को तुम गंगा-यमुना के बीच बहा देना—

ई दुःख जिन कहे मइया के अगवाँ
मइया छतिया पीटि मरि जइहैं रे ना
ई दुःख जिन कहे बपई के अगवाँ
भइया, समवा बीच पछतइहैं रे ना
हमरी बिपती गठरिया रे ना
भइया गंगा-जमुना बिच छोरया रे ना।

चक्की गीत या जाँतसार गीतों में अधिकतर नारी मन की वेदनाएँ उमड़कर आई हैं—इस प्रकार के गीत अनगिनत हैं। ससुराल पक्ष से मिली यातनाएँ, पति द्वारा परदेश जाना, मायके से बुलावा न आना, कभी-कभी ससुर या जेठ द्वारा कुदृष्टि डालना भी इन गीतों के भाव होते हैं। एक जाँतसार गीत में जेठ अपने छोटे भाई की पत्नी पर कुदृष्टि डालता है। बहू अपने पति से शिकायत करती है। पति अपने बड़े भाई के साथ शिकार खेलने जाता है और वहीं बड़े भाई द्वारा मार दिया जाता है। गीत की पंक्तियाँ हैं—

झझकि कै चढ़ि हैं पिया की अटरिया
गोड़वा भीजत चुवै अँसुइवा हो राम।

पति कारण पूछता है तो पत्नी बताती है—

जौनी सेजरिया रामा तुम्हें हम दीहेन
उहै सेजरिया भसुर चाहैं हो राम।
लावौ न मोरी धनि ढोल तरवरिया हम जाबै खेलै सिकरवा हो राम।
एक वन गए दूसर वन गए तिसरी में छिड़ गई लड़इया हो राम।
भुसरूँ के घोड़वा आवै उछलत-कूदत, हरिजी के घोड़ा बिसमाइल हो राम।

पति की मृत्यु का समाचार सुनकर पत्नी स्वयं सती हो जाने को उद्यत होती है और जेठ अपने भाई को मार डालने पर पश्चात्ताप करता है—

अँचरे से धधकी है तुरतै अगिनियाँ हरि साथै भई है सतियवा हो राम।
जो मैं जनत्यों भयहू ऐसन करबू, काहे के कारित दाहिन बहियाँ हो राम।

अश्रुकणों के मोतियों से गूँथे गए इन गीतों से लोकगीतों का संसार अत्यंत समृद्ध हुआ है। ये गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, मानव भावनाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम हैं। हमारी परंपरा, हमारी आस्था, हमारे संस्कारों की अभिव्यक्ति इन गीतों में हुई है। और इन्हीं कारणों से हमारा जनमानस इतना समृद्ध है, जिसके समक्ष कुबेर का कोष कुछ भी नहीं। □

८ ए, फैजाबाद रोड, लखनऊ

हिंदी के कुछ शब्द : वर्तनी, व्याकरण और अर्थ

रमेश चंद्र महरोत्रा

'से' और '-से'

'जैसा' का अर्थ केवल 'जैसा' है, 'समान' है, जबकि '-जैसा' का अर्थ 'के जैसा' है, 'के समान' है (समास-चिह्न का अर्थ 'के' लगाइए)। उदाहरण—

१. मालिक 'जैसा' चाहें (वैसा ही करें)/जैसा मालिक चाहें।

२. आप मालिक '-जैसा' करें (मालिक से भिन्न न करें)/ मालिक के जैसा करें।

'से' परसर्गीय अव्यय है, जबकि '-से' विशेषणात्मक '-सा, -सी, -से' में से एक है। उदाहरण—

१. तुम नेता से लड़ते हो। (से = के साथ)

२. तुम नेता-से दीखते हो। (से = के समान)

१. बच्चे माँ से बहुत लगते (चिपकते) हैं।

२. बच्चे माँ-से (माँ-जैसे) लगते हैं।

'से' तुलना दिखाने के लिए 'की अपेक्षा' का अर्थ देता है (अधिक या कम), जबकि '-से' समानता दिखाता है। उदाहरण—

१. विष्णु ब्रह्मा से बड़े हैं, शिव से नहीं।

२. विष्णु ब्रह्मा-से बड़े हैं, शिव-से नहीं।

पहले उदाहरण में ब्रह्मा विष्णु से छोटे हैं, जबकि दूसरे उदाहरण में वे और विष्णु बराबर बड़े हैं।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार की 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' पुस्तिका के पृष्ठ १२ पर कंडिका (४), उपकंडिका (ख) में ये संबंधित उदाहरण दिए गए हैं—

तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे।

इनका एक-एक प्रयोग देखें—

१. यों तो हमने लाख हसीं देखे हैं, 'तुम-सा' नहीं देखा।

२. 'राम-जैसा' आदमी दुनिया में नहीं होता।

३. आपके नाखून 'चाकू-से तीखे' हैं। (यदि 'चाकू-से' में से समास-चिह्न हटा दिया जाए, तो नाखून चाकू से अधिक तीखे हो जाएँगे।)

'अँगरेज' और 'रँगरेज'

'इँगलैंड' (अन्यों के लिए 'इंगलैंड, इँग्लैंड, इंग्लैंड'—'लैण्ड' के साथ अलग चारों) यूनाइटेड किंगडम का हिस्सा है, जिसमें ग्रेट ब्रिटेन के दक्षिण का अधिकतर भाग सम्मिलित है।

विशेषण के रूप में 'इँगलिश' (अन्यों के लिए 'इंगलिश, इँग्लिश, इंग्लिश') का अर्थ 'इँगलैंड का' (निवासी, भाषा आदि) है। यह ओल्ड इँगलिश के हिसाब से Englisc (= Angles का) है। Angles वे जर्मनिक लोग थे, जो पूर्वी इँगलैंड में पाँचवीं शताब्दी में बसे।

'ऐंग्लो-' 'इँगलिश'-अर्थवाची संयोजी रूप है (उदाहरण—ऐंग्लो-इंडियन)। 'ऐंग्लो-' और हिंदी-'आंग्ल' का अर्थ 'अँगरेज' (अन्यों के लिए 'अंगरेज, अँग्रेज, अंग्रेज') का' है। ('ज़' की जगह 'ज' का भी चलन कोने-कोने में मिलेगा।)

'इँगलिश' का एक मतलब है 'अँगरेज़' (इँगलैंड का निवासी) और दूसरा मतलब है 'अँगरेजी' (दूसरों के लिए 'अँगरेजी, अँग्रेजी, अंग्रेजी') (इँगलैंड के व्यक्तियों की भाषा, या कुछ अन्य, जैसे हुकूमत)।

'हिंदी शब्द-सागर' के आधार पर 'अँगरेज' और 'अँगरेजी' का संबंध फ्रांसीसी और पुर्तगाली के 'आँग्लेज़' और 'इंग्लेज़' से है। 'मानक हिंदी कोश' में 'अँगरेज़' को पुर्तगाली के 'इंग्लेज़' से विकसित बताया गया है। आपने एकाध व्यक्ति को 'अँगरेज़' और 'अँगरेज़ी' को 'इँगरेज़' और 'इँगरेज़ी' बोलते सुना होगा। (आपने 'अँगरेजी' के लिए 'इँगलिस्तानी' और 'इँगलैंड' के लिए 'इँगलिस्तान' भी सुना होगा।) बसु के 'हिंदी विश्वकोश' में 'अँगरेज' फारसी के Anglais से जोड़ा गया है। मद्दाह के 'उर्दू-हिंदी शब्दकोश' में 'अँगरेज' और 'अँगरेजी' शब्द नहीं हैं।

अब कुछ वर्तनी के बारे में। इस लेख में ऊपर 'इँगलैंड, इँगलिश, अँगरेज, अँगरेजी' के लिए चंद्रबिंदु (ँ) की जगह अनुस्वार (ं) -वाले और पूर्ण 'ग' की जगह अर्ध 'ग्'-वाले वर्तनी विकल्प कोष्ठकों में दिए गए हैं। इन शब्दों में चंद्रबिंदु वाली वर्तनी को इसलिए प्राथमिकता दी गई है कि अनुस्वार वाले विकल्पों से इन शब्दों का अनुस्वार 'ङ्' से परिवर्तनीय हो जाएगा (यथा 'इङ्लैंड, अङ्गरेज़' आदि) तथा पूर्ण 'ग'-वाली वर्तनी को इसलिए प्राथमिकता दी गई है कि हिंदी के लिए देवनागरी के ऐसे संयुक्त व्यंजनों (व्यंजन-गुच्छों) को बदलकर वियुक्तीकृत रूप में लिखने की नीति अधिकाधिक मान्य होती जा रही है (शब्दकोशों में भी), जिनका लेखन वियुक्त कर देने पर भी उच्चारण यथावत् (अर्थात् प्रथम पूर्ण व्यंजन के 'अ' के लुप्त उच्चारण के साथ) रहता है। (उदाहरण—'अक्सर' के बदले 'अकसर', 'गर्दन' के बदले 'गरदन', 'बिल्कुल' के बदले 'बिलकुल', 'तस्वीर' के बदले 'तसवीर'।

आगे की कुछ पंक्तियाँ 'रँगरेज़' अथवा 'रंगरेज़' पर। 'कपड़े रँगने का काम करनेवाला'—अर्थवाची यह शब्द फ़ारसी का है। इसमें '-रेज़'

कर्तृवाचक संज्ञा बनानेवाला प्रत्यय है, जो 'खूँरेज़' (खून बहानेवाला, हत्यारा), 'गुलरेज़' (जिससे फूल झड़ते हों; फुलझड़ी), आदि में भी द्रष्टव्य है। यदि आप 'रँगरेज़/रंगरेज़' को 'रँग (ना)'-क्रिया से जोड़ते हैं, तब इसमें चंद्रबिंदु लिखेंगे, और यदि 'रंग'-संज्ञा से जोड़ते हैं, तब अनुस्वार लिखेंगे। यदि आपका निर्णय अनुस्वार लिखने का रहता है, तब आपको उसका (अनुस्वार का) उच्चारण 'ङ्' करने के लिए अपनी कमर कसकर रखनी पड़ेगी (अर्थात् 'रंगरेज़' बराबर 'रङ्गरेज़' होगा।)

'अँगरेज़' और 'रँगरेज़' में परस्पर संबंध खोजने के चक्कर में एक पुराने भोजपुरी-लोकगीत की नीचे लिखी पंक्ति देखें, जिसमें 'अँगरेज़' शब्द से अपरिचित और 'रँगरेज़' से परिचित होने के कारण लोकगीतकार ने 'अँगरेज़' के स्थान पर 'रँगरेज़' का प्रयोग किया है—

देसवा के कइलस बरबाद रँगरेज बेइमनवा।
(बेईमान अँगरेज़ ने देश को बरबाद किया।)

'पहले' और 'पहले'

एक 'पहले' विशेषण है और एक क्रियाविशेषण। विशेषण—'पहले' लिंग-वचन की दृष्टि की दृष्टि से 'पहला' और 'पहली' का साथी है, जबकि क्रियाविशेषण-'पहले' का लिंग-वचन से कोई संबंध नहीं रहता। वह 'अव्यय' है—सदा एकरूप। उसका अर्थ 'प्रथम स्थान पर, पूर्व में, शुरू में' है। दूसरी ओर, विशेषण-रूपी 'पहले, पहला, पहली' का अर्थ 'प्रथम' है।

पहले (यह क्रियाविशेषण है) हम विशेषण-'पहले' और उसके साथियों के उदाहरण देखेंगे—

पहला पत्ता	देखो।	('पहला' पुल्लिंग एकवचन मूल रूप है।)
पहले पत्ते को	देखो।	('पहले' पुल्लिंग एकवचन विकारी रूप है, जो 'पहला' का संरूप मात्र है।)
पहले पत्ते/पत्तों को	देखो।	('पहले' पुल्लिंग बहुवचन रूप है—आदरार्थ एकवचन भी यही है—यह अपने द्वारा विशेषित संज्ञा के मूल और विकारी रूपों के साथ एक सा रहता है।
पहली पत्ती/पत्ती को/ पत्तियाँ/पत्तियों को	देखो।	('पहली' स्त्रीलिंग रूप है। यह अपने द्वारा विशेषित संज्ञा के कुल रूपों के साथ एक सा रहता है।)

अब हम क्रियाविशेषण-'पहले' के उदाहरण देखेंगे—

पहले	पत्ता/पत्ते को	देखो,
पहले	पत्ते/पत्तों को	देखो,
पहले	पत्ती/पत्ती को	देखो,
पहले	पत्तियाँ/पत्तियों को	देखो।

(बाद में कुछ और देखना।)

इसी प्रकार,

लड़का	पहले	देखेगा,
लड़के	पहले (ही)	देखेंगे,
लड़की	पहले (से)	देखेगी,
लड़कियाँ	पहले (नहीं)	देखेंगी।

व्यतिरेक—

दूसरे लड़के को नहीं, पहले लड़के को देखो। ('पहले' विशेषण)

लड़की को बाद में देखना, पहले लड़के को देखो। ('पहले' क्रियाविशेषण)

निम्नलिखित वाक्य में पहला 'पहले' विशेषण है, दूसरा 'पहले' क्रियाविशेषण है—

आप मेरी जिंदगी में आनेवाले 'पहले' आदमी हैं, जो आदमी 'पहले' हैं, शेष सबकुछ बाद में।

'बैठते-बैठते' और 'बैठे-बैठे'

मुन्नी बैठते-बैठते गिर पड़ी।
मुन्नी बैठे-बैठे गिर पड़ी।

'बैठते' और 'बैठे' दोनों रीति-समयवाचक क्रियाविशेषणार्थक कृदंत हैं। 'बैठते' अपूर्ण क्रियाद्योतक है; 'बैठे' पूर्ण क्रियाद्योतक है। 'बैठते' वर्तमानपक्षीय है; 'बैठे' भूतपक्षीय है।

'बैठते' में '-त्' वर्तमानपक्षवाची 'कृत्'-प्रत्यय है; 'बैठे' में लुप्त '-य्' भूतपक्षवाची 'कृत्'-प्रत्यय है (जो 'सोया'—जैसे शब्दों में प्रत्यक्षतः विद्यमान है)।

'बैठते' और 'बैठे' दोनों में '-ए' क्रियाविशेषणार्थक है, जो न तो लिंगद्योतक है और न वचनद्योतक है। (मुन्ना, मुन्ने, मुन्नी, मुन्नियाँ) सब के साथ एकरूप 'बैठते-बैठते' और 'बैठे-बैठे' ही प्रयुक्त होते हैं। ये 'बैठते' और 'बैठे' 'बैठता-बैठती-बैठते' और 'बैठा-बैठी-बैठे' रूपायित वर्गोंवाले, क्रिया का भी काम करनेवाले, 'बैठते' और 'बैठे' न होकर उनसे भिन्न व्युत्पादित वर्गोंवाले, केवल क्रियाविशेषण का काम करनेवाले, सदा एकरूप शब्द हैं।)

'बैठते-बैठते' के अर्थ में दुहरा वर्तमानत्व है; 'बैठे-बैठे' के अर्थ में दुहरा भूतत्त्व है। दोनों में पुनरुक्ति के कारण निरंतरता का भाव है।

'मुन्नी बैठते-बैठते गिर पड़ी' में मुन्नी गिरने से ठीक से 'बैठी नहीं थी' (वर्तमानत्व), जबकि 'मुन्नी बैठे-बैठे गिर पड़ी' में वह 'बैठ चुकी थी' (भूतत्त्व)।

'बैठते-बैठते' का अर्थ 'बैठते वक्त'-जैसा है (वर्तमान ही वर्तमान); 'बैठे-बैठे' का अर्थ 'बैठे हुए'-जैसा है (भूत ही भूत)। □

डगनिया, रायपुर-४९२०१३

प्रश्नोत्तरी-४३

अगस्त १९९७ से हमने पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु प्रश्नोत्तरी प्रारंभ की थी, जिसमें पाठक निरंतर बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। हमें विश्वास है, पाठकों को आगे भी यह रुचिकर लगेगी तथा पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे और पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा–

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ मार्च, २००१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध जवाबवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो पत्र छाँटे जाएँगे तथा उन्हें एक सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कृत होनेवाले उत्तरदाताओं के नाम-पते मई २००१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने पत्र **'प्रश्नोत्तरी', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

प्रश्नोत्तरी-४० का शुद्ध उत्तर

१. कानों में कँगना
२. सुजान भगत, ठाकुर का कुआँ
३. संकेत
४. प्रेमचंद
५. हंस, माधुरी
६. आकाशदीप
७. भगवतीचरण वर्मा
८. ग्रामांचल
९. कहानी
१०. माधवराव सप्रे

★ पुरस्कार विजेता ★

पूर्णत: शुद्ध उत्तर न मिलने के कारण इस बार का पुरस्कार हम किसीको नहीं दे पा रहे हैं।

प्रश्नोत्तरी-४३

१. हिंदी साहित्य की दीर्घकालीन परंपरा को समेटनेवाले इतिहास ग्रंथ 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' का लेखक कौन है?

२. धीरेंद्र वर्मा द्वारा लिखे गए हिंदी भाषा के प्रथम वैज्ञानिक इतिहास ग्रंथ का नाम बताइए।

३. आधुनिक काल तक के कवियों का वृत्त संग्रह करते हुए मिश्र बंधुओं ने किस ग्रंथ की रचना की?

४. 'साहित्य का इतिहास दर्शन' पुस्तक का लेखक कौन है?

५. 'भाषा, साहित्य और संस्कृति' तथा 'भाषा और समय' पुस्तकों का लेखक कौन है?

६. 'दक्खिनी हिंदी काव्यधारा' पुस्तक के लेखक का नाम बताइए।

७. 'हिंदी को मराठी संतों की देन' पुस्तक के लेखक का नाम बताइए।

८. 'हिंदी साहित्य का अतीत' पुस्तक का लेखक कौन है?

९. 'हिंदी भाषा का विकास' तथा 'साहित्यालोचन' पुस्तकों का लेखक कौन है?

१०. हिंदी साहित्य के इतिहास पर केंद्रित आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित दो पुस्तकों के नाम बताइए।

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' के जनवरी २००१ अंक में नवंबर २००० अंक के 'भाषा-प्रयोग' में छपे लेख के दो बिंदुओं पर श्री सदानंद पाल की विपरीत प्रतिक्रिया पढ़ी। समाधान इस प्रकार है—

'निम्न' के अर्थ 'संस्कृत-हिंदी कोश' में 'नीच, अवसन्न (उदास, शिथिल, समाप्त, वंचित)'; 'लघु हिंदी शब्दसागर' और 'बृहत् हिंदी कोश' में 'नीचा'; 'मीनाक्षी हिंदी-अंग्रेजी कोश' में 'low' तथा 'मानक हिंदी कोश' में 'नीचा, धरातल या स्तर से नीचा' दिए गए हैं। क्रिया विशेषणात्मक 'नीचे' (बल्कि विशेषणात्मक 'निम्नलिखित' तक) कहीं नहीं है। 'निम्न उदाहरण' का अर्थ 'नीचा उदाहरण' ही होगा। 'निम्न देखिए' का अर्थ 'नीचे देखिए' कैसे होगा! दूसरा बिंदु। 'भाषा-प्रयोग' में स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि 'तुम से' और 'तुम-से' दोनों सही हैं, लेकिन इनके अर्थ बहुत भिन्न हैं। बात हाइफन के अप्रयोग और प्रयोग की है। इस संबंध में निम्नांकित संदर्भ द्रष्टव्य हैं—सेंट्रल हिंदी डायरेक्टोरेट की 'ए बेसिक ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिंदी' के ५९-६१ पृष्ठों पर दिया गया हाइफन-मुक्त और हाइफन-युक्त 'से' से संबंधित विश्लेषण। वहाँ से नमूनार्थ उदाहरण—कंडिका १३२ में 'राम से छोटा'; कंडिका १३५ में 'फूल से अधिक कोमल'। स्पष्ट है कि ''सारे 'जहाँ से अच्छा' हिंदोस्ताँ हमारा'' का अर्थ ''सारे 'जहाँ में अच्छा' हिंदोस्ताँ हमारा'' बिलकुल नहीं है, अर्थ है ''सारे 'जहाँ से अधिक अच्छा' हिंदोस्ताँ हमारा''। दूसरी ओर, कंडिका १२८ के ('तुम से' से व्यतिरेक दिखाते हुए 'तुम-से' वर्ग के) उदाहरण—'गाय-सा, 'गोरे-से'। एक संदर्भ और देखिए। केंद्रीय हिंदी निदेशालय (भारत सरकार) की ही 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' के पृष्ठ १२ पर कंडिका '(४) हाइफन' की उपकंडिका (ख) में प्रदत्त उदाहरण 'तुम-सा, चाकू-से तीखे'।

सरल शब्दों में 'से' के अर्थ इस प्रकार बताए जाएँगे—'द्वारा' (उदाहरण—पैर से मारना); 'सीमा का आरंभ' (उदाहरण—वहाँ से); 'आपेक्षिक मान में अधिक या कम' (उदाहरण—भैंसे से मोटे अर्थात् भैंसे की अपेक्षा अधिक मोटे) [इन अर्थों के लिए देखिए 'मानक हिंदी कोश']। इसके विपरीत, '-से' की '-जैसे,-सरीखे' से वैकल्पिकता रहती है (उदाहरण—भैंसे-से मोटे अर्थात् भैंसे जैसे मोटे या भैंसे के समान मोटे) [इसके लिए 'ए बेसिक ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिंदी' की कंडिका १३० देखिए]।

—रमेश चंद्र महरोत्रा, रायपुर

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक मिला। संपादकीय 'विश्व संस्कृति या संस्कृति संवाद' मन को उद्वेलित कर गया। सचमुच, संस्कृति प्रवाहमान है। उसकी गतिशीलता बाधाओं के बावजूद सदैव विद्यमान रहेगी। काका कालेलकर पर सुगठित व सारगर्भित निबंध पठनीय एवं संग्रहणीय है। कविताएँ अच्छी लगीं। 'पाती' स्तंभ अतीत में विचरण कराता है।

—प्रभा शर्मा, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय प्रभावशाली है। रश्मि कुमार की कहानी 'दूसरा द्वार' नारी मन की अनेक संवेदनाओं को अपने अंदर समेटे है। बलदेव वंशी की कविताओं ने प्रभावित किया। लगभग सभी रचनाएँ अच्छी हैं।

—सुरेंद्र विक्रम, लखनऊ

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक एक साँस में पढ़ डाला। मुझे अनुराग वाजपेयी के 'एक नजर आलोक सिनेमा पर' के संबंध में पाठकों से यह पूछना है कि अब वे ही निर्णय करें कि यह रचना किस कोण से व्यंग्य है। वाजपेयीजी स्वयं मंथन करें कि इसे व्यंग्य के अलावा किस विधा के अंतर्गत रखा जा सकता है। लिहाजा पत्रिका 'नवांकुर', 'लोक-साहित्य', 'हिंदी के निर्माता' आदि के कारण लोकप्रिय होती जा रही है। इस अंक में शिवानीजी व गोविंद मिश्र से बेहतर सबक मिलता है।

—मनोज श्रीवास्तव, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक पढ़ा। सभी रचनाएँ पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। इस समय साहित्यिक पत्रिकाओं की संख्या बहुत कम है। ऐसी चिंतनीय स्थिति में 'साहित्य अमृत' से काफी अपेक्षाएँ हैं। आशा है कि इक्कीसवीं सदी में यह पत्रिका साहित्य-रसिकों को स्वस्थ साहित्य से तृप्त करती रहेगी।

—राजकुमार धर द्विवेदी, जबलपुर

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक मिला। शिवानीजी का आलेख 'रे-रे ग्राम कुविंद कंदल लता' वर्तमान सामाजिक एवं साहित्यिक परिवेश का एक नग्न चित्र प्रस्तुत करता है। गोविंद मिश्र का लेख बिलकुल सही है कि लेखन विभाजन पर विभाजन पैदा किए जा रहा है। अरुणा मुखोपाध्याय की कविताएँ पसंद आईं। कहानी 'एक और सुदामा' वास्तव में आधुनिक कृष्ण का प्रतिरूप है। रश्मि कुमार की कहानी 'दूसरा द्वार' पसंद आई।

—उमेश पंडित 'उत्पल', धनबाद

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक पढ़ा। अंक का संपादकीय व सभी रचनाएँ ज्ञानवर्धक व सारगर्भित रहीं। 'नवांकुर' स्तंभ बहुत अच्छा है। कविताएँ भी संग्रहणीय हैं। कामना है, अपनी भाषा-शैली व साहित्यिकता के कारण 'साहित्य अमृत' साहित्याकाश में आगे बढ़े।

—विश्वप्रताप भारती, अलीगढ़

दिसंबर का 'साहित्य अमृत' पढ़ा। इसकी कहानियाँ, लेख व कविताएँ बेहद अच्छी लगीं। 'कबीर : समग्रता का संधान', 'दोहरी मानसिकता', 'पं. मदनमोहन मालवीय : कुछ प्रेरक प्रसंग' आदि आलेख मन को उद्वेलित कर गए। साहित्य अमृत परिवार एवं सभी रचनाकारों को साधुवाद और बधाई।

—महेश प्रसाद, हुगली

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक मनोहारी लगा। सदा की भाँति संपादकीय 'राजनीति भी मूल्य है' चिंतनपूर्ण एवं विचारोत्तेजक है। कहानी 'तीसरा सिंघोरा' अत्यंत मर्मस्पर्शी है। नीरजा माधव की कहानी 'फेंट' आधुनिक समाज के आभिजात्य वर्ग द्वारा किए जा रहे सोशल वर्क का खोखलापन सिद्ध करती है। लोक-साहित्य 'तुलसी-शालिग्राम' प्रशंसनीय है।

—आशा कपूर, रुड़की

हर अंक की भाँति दिसंबर का भी 'साहित्य अमृत' पढ़ा। प्रश्नोत्तरी-३८ के पुरस्कार विजेताओं में अपना नाम छपा देखकर मुझे इतनी खुशी हुई कि मित्रों के बीच इसे दिखाकर इसकी निष्पक्षता का गुणगान करता रहा। हिंदी साहित्य में प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करनेवाले विद्यार्थी के लिए 'हिंदी के निर्माता' काफी सहायक है। इसी तरह हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास के महत्त्वपूर्ण अंश भी छापें तो ज्ञानवर्धक रहेगा।

—सीताराम राय, वाराणसी

साहित्य अकादमी पुरस्कार घोषित

गत दिनों साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा वर्ष २००० के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं की पुस्तकों के लिए पुरस्कारों की घोषणा की गई, जो इस प्रकार है—

'भागे तापुर राति अरु अनन्य काहिनी' (कहानी संग्रह)—अपूर्वा शर्मा, असमिया; 'पागली तोमार संघे' (काव्य संग्रह)—जय गोस्वामी, बँगला; 'मील पत्थर' (कहानी संग्रह)—स्व. बंधु शर्मा, डोगरी; 'कुकोल्ड' (उपन्यास)—किरण नागरकर, अंग्रेजी; 'धुंधभरी खिन' (उपन्यास)—विनेश अंतानी, गुजराती; 'हम जो देखते हैं' (काव्य संग्रह)—मंगलेश डबराल, हिंदी; 'ओम नमो' (उपन्यास)—स्व. शांतिनाथ देसाई, कन्नड़; 'यात राज दान्य' (कहानी संग्रह)—हरिकृष्ण कौल, कश्मीरी; 'चंफेल ली साँझ' (काव्य संग्रह)—पांडुरंग भांगुई, कोंकणी; 'कतेक रास वात' (काव्य संग्रह)—रामानंद रेणु, मैथिली; 'आर रामचंद्रनते कवितागळ' (काव्य संग्रह)—आर. रामचंद्रन, मलयालम; 'ईमागी फनेक मचेट' (कहानी संग्रह)—एल. प्रेमचंद, मणिपुरी; 'पनजाड' (काव्य संग्रह)—एन.डी. महानोर, मराठी; 'निसानस्मरण' (निबंध)—रामलाल अधिकारी, नेपाली; 'उल्लंघन' (कहानी संग्रह)—प्रतिभा राय, उड़िया; 'चौथी कूट' (कहानी संग्रह)—वरयाम सिंह संधू, पंजाबी; 'कंकू कबंध' (नाटक)—ज्योतिपुंज, राजस्थानी; 'टाक तोरा' (समालोचना)—परम अबीचंदाणी, सिंधी; 'विमर्शनांगल माथी प्पुरक्कल पेट्टिगळ' (समालोचना)—टी. जी. शिवशंकरन, तमिल; 'कलान्नी निद्रा पुन्निवन्नु' (काव्य संग्रह)—एन. गोपी, तेलुगु तथा 'सूखी टहनी पर हरियल' (काव्य संग्रह)—अंबर बहरायची, उर्दू। संस्कृत में पुरस्कार बाद में घोषित किया जाएगा।

☐

राष्ट्रीय कवि सम्मेलन संपन्न

२२ जनवरी को लालकिला, दिल्ली में भाषा, कला एवं संस्कृति विभाग, दिल्ली सरकार तथा हिंदी अकादमी, दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में भारतीय गणतंत्र की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन की अध्यक्षता दिल्ली के शिक्षा मंत्री डॉ. नरेंद्र नाथ ने की। लोकसभा के उपाध्यक्ष श्री पी.एम. सईद ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित तथा विकास एवं खाद्य आपूर्ति मंत्री डॉ. योगानंद शास्त्री क्रमशः मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथि थे। समायोजनकर्ता थे अकादमी के उपाध्यक्ष श्री जनार्दन द्विवेदी।

जाने-माने कवि श्री अशोक चक्रधर ने कवि सम्मेलन का संचालन किया। इस राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में देश के कोने-कोने से भाग लेनेवाले प्रसिद्ध कवि थे—श्री उदयभानु हंस, श्री ओम व्यास, श्री कन्हैयालाल नंदन, श्री कुँअर बेचैन, श्री गोपालदास नीरज, श्री गोविंद व्यास, श्री दिनेश रघुवंशी, श्री धनंजय सिंह, श्री पवन दीक्षित, प्रभा ठाकुर, डॉ. (श्रीमती) प्रेम सिंह, श्री बेकल उत्साही, मधु मोहिनी उपाध्याय, सरदार मनजीत सिंह, श्री महेंद्र अजनबी, श्री महेंद्र शर्मा, श्री माणिक वर्मा, माया गोविंद, श्री रमानाथ अवस्थी, श्री राकेश मधुकर, श्री राजेंद्र 'राजन', श्री राजेश रेड्डी, श्री विमल विभाकर, श्री विश्वामित्र दाधीच, श्री विष्णु सक्सेना, श्री वीनू महेंद्र, श्री वेद प्रकाश, श्री शैल चतुर्वेदी, सरोजिनी प्रीतम, श्री सागर पंडित, सीता सागर, श्री सुरेंद्र शर्मा, श्री सुरेश नीरव, श्री सोम ठाकुर, श्री हुल्लड़ मुरादाबादी।

☐

गोपाल चतुर्वेदी सम्मानित

प्रख्यात हास्य-व्यंग्यकार पं. गोपाल प्रसाद व्यास के जन्म-दिवस १३ फरवरी को इस वर्ष का 'गोपाल प्रसाद व्यास व्यंग्यश्री सम्मान' उत्कृष्ट व्यंग्यकार श्री गोपाल चतुर्वेदी को प्रदान किया जाएगा। यह पुरस्कार पिछले पाँच वर्षों से उत्कृष्ट व्यंग्य लेखन के लिए दिया जा रहा है।

☐

अश्विनी कुमार 'आलोक' सम्मानित

कला विकास मंच, समस्तीपुर के एक समारोह में दैनिक 'आज' के प्रखर पत्रकार, साहित्य समीक्षक एवं कवि अश्विनी कुमार 'आलोक' को उनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के लिए 'पत्रकार रत्न' सम्मान से अलंकृत किया गया। समारोह में प्रो. हरिनारायण सिंह 'हरि', श्री रामावतार अनुरागी, श्री सूर्यनारायण प्रसाद, डॉ. रवींद्र राकेश, श्री एस.जेड. हसन, प्रो. अर्जुन प्रभात एवं डॉ. इसलाम समर आदि उपस्थित थे।

☐

गणेश प्रसाद 'गंभीर' को 'धूमिल सम्मान'

गत दिनों साहित्यकार संसद् द्वारा वाराणसी में आयोजित धूमिल जयंती के अवसर पर प्रथम 'धूमिल सम्मान' कवि गणेश प्रसाद 'गंभीर' को प्रख्यात गीतकार डॉ. श्रीपाल सिंह 'क्षेम' के कर-कमलों से प्रदान किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें प्रशस्ति पत्र, शॉल व ग्यारह सौ रुपए की नकद राशि भेंट की गई।

उपस्थित साहित्यकारों में श्री राजेंद्र आहुति, श्री अजित श्रीवास्तव, श्री आत्रि भारद्वाज, श्री रामदास 'अकेला', श्री प्रकाश श्रीवास्तव, श्री व्रजेंद्र गर्ग इत्यादि थे।

☐

लेखक सम्मेलन आयोजित

गत दिनों राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर तथा साहित्य संगम, अलवर के संयुक्त तत्त्वावधान में अलवर में कविता विधा पर १६-१७-१८ दिसंबर को तीन दिवसीय लेखक सम्मेलन संपन्न हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन कवि श्री नंद चतुर्वेदी ने किया। समारोह के विशिष्ट अतिथि प्रो. ऋतुराज थे।

इस अवसर पर प्रो. विजेंद्र, डॉ. भागीरथ भार्गव, श्री राजाराम भादू, डॉ. शंभू गुप्त, प्रो. नईम, श्री विजय लक्ष्मी, जुगमंदिर तायल, श्री हरि राम मीणा, श्री सुमन बिस्सा, श्री रेवतीरमण शर्मा, श्री प्रेम बहादुर सक्सेना, श्री शिव योगी, अंजना अनिल, श्री प्रेमचंद गांधी आदि ने अपने विचार व्यक्त किए।

☐

'पंत' शताब्दी समारोह

गत दिनों दुमका (झारखंड) में अखिल भारतीय साहित्य परिषद् द्वारा पंत शताब्दी एवं राजभाषा स्वर्ण जयंती समापन समारोह आयोजित हुआ। समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता थे। समारोह की अध्यक्षता कविवर श्री बलभद्र नारायण 'बालेंदु' ने, पर्यावरणविद् डॉ. राजेंद्र पांडेय ने तथा संचालन शेष नारायण झा ने किया।

☐

रचनाएँ आमंत्रित

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मैमोरियल ट्रस्ट, दिल्ली द्वारा राष्ट्रकवि की स्मृति में 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' (वर्ष २०००) पिछले पाँच

वर्षों (१९९६-२०००) की अवधि में प्रकाशित हिंदी काव्य संग्रह/काव्य ग्रंथ पर देने की घोषणा की गई है। पुरस्कार के अंतर्गत रचनाकार को इक्कीस हजार रुपए की नकद धनराशि एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान कर सम्मानित किया जाएगा। लेखकों/प्रकाशकों से निवेदन है कि अपनी पुस्तकें (तीन प्रतियाँ) २८ फरवरी, २००१ तक राममोहन गुप्ता, अध्यक्ष : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मैमोरियल ट्रस्ट, ए-६५, चंद्रनगर, गाजियाबाद-२०१०११ के पते पर भेजें। □

काव्य संध्या संपन्न

गत दिनों जनसंचार सभागार, कलकत्ता में डॉ. दिवाकर गोयल के सम्मान में एक काव्य संध्या का आयोजन हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री नरेंद्र प्रसाद चौरसिया ने की।

गोष्ठी में सर्वश्री नवल किशोर, तापिश, वनिता झारखंडी, नंद किशोर प्रसाद, कुसुम जैन, प्रफुल्ल 'कोलाख्यान', गीतेश शर्मा तथा महेश प्रसाद आदि उपस्थित थे। संचालन श्री प्रेम कपूर ने किया। □

लोकार्पण

गत दिनों सुप्रसिद्ध संविधानविद् एवं सांसद् डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने दिविक रमेश की पुस्तक 'कोरियाई लोककथाएँ' का विमोचन किया। समारोह के मुख्य अतिथि भारत में कोरिया के राजदूत श्री चोंग मू ली थे। इस अवसर पर भारत और कोरिया के अनेक साहित्यकार, पत्रकार एवं विद्वान् उपस्थित थे।

★★

१६ दिसंबर को गुजरात रिफाइनरी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में डॉ. माणिक मृगेश की पुस्तक 'हास्य-व्यंग्य के रंग' का लोकार्पण रिफाइनरी के कार्यकारी निदेशक श्री पी.एस. राव द्वारा किया गया। सम्मेलन की अध्यक्षता प्रख्यात शायर श्री बशीर बद्र ने की।

सम्मेलन में अनेक कवियों ने काव्य-पाठ किया।

★★

गत दिनों प्रधानमंत्री निवास में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने वेद प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित 'भारतीयता के प्रबुद्ध प्रहरी' तथा स्व. यशपाल जैन के संपादन में प्रकाशित 'कर्मयोगी : प्रकाशवीर शास्त्री' नामक दो ग्रंथों का लोकार्पण किया। समारोह की अध्यक्षता श्री ज्ञान प्रकाश चोपड़ा ने की।

समारोह में वेद प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, ब्रिगेडियर कपिल मोहन, श्री शांतिलाल सूरी के अलावा सैकड़ों आर्यसमाजी, साहित्यकार, पत्रकार तथा साहित्य-प्रेमी उपस्थित थे। □

संगोष्ठी

गत दिनों अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, झाँसी की मासिक गोष्ठी 'रचना' डॉ. जीवनलाल पांडेय की अध्यक्षता तथा श्री शाम ढमढेरे के संचालन में संपन्न हुई।

गोष्ठी में श्री काशीराम सेन 'मधुप', श्री जमुना प्रसाद सरगैया, श्री राजेंद्र अरोरा, श्री अखिलेश नारायण त्रिपाठी 'विशेष', श्री साकेत सुमन चतुर्वेदी, श्री अजय दुबे आदि ने अपनी नवकाव्य रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

★★

राष्ट्रीय बाल भवन, नई दिल्ली में 'बीसवीं सदी का भारतीय बाल साहित्य' विषय पर १ दिसंबर से ३ दिसंबर तक तीन दिवसीय बाल साहित्य संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस विषय पर विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रतिष्ठित लेखकों से चौबीस आलेख आमंत्रित किए गए, जिनमें सौ वर्षों के भारतीय बाल साहित्य पर शोधपरक दृष्टि से विचार किया गया।

संगोष्ठी में 'नंदन' के संपादक श्री जयप्रकाश भारती, 'अमर चित्रकथा' व 'टिंकल' के संपादक श्री अनंत पै, डॉ. श्यामसिंह शशि, डॉ. रामशरण गौड़, बाल भवन के अध्यक्ष श्री अजय सिंह, श्री विभांशु जोशी, श्री रमेश आजाद, श्री सुरंजन, श्री शमशेर अहमद खान, 'चकमक' के श्री सुशील शुक्ल सहित अनेक साहित्यकार, पत्रकार, प्रकाशक व बाल पाठक उपस्थित थे।

★★

गत दिनों बहुआयामी रचनाकार श्री धर्मवीर भारती की चौहत्तरवीं जयंती पर वाराणसी स्थित 'धर्मवीर भारती सृजन पीठ' में 'धर्मवीर भारती : सृजन के विविध आयाम' विषयक संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रो. उषा वर्मा ने की, संचालन सीमा रानी तथा धन्यवाद ज्ञापन 'धर्मवीर भारती सृजन पीठ' के अध्यक्ष डॉ. धूपनाथ प्रसाद ने किया। श्री धर्मवीर भारती के सृजन के विषय पर साहित्यकार आचार्य सायल, डॉ. अवधेश नारायण मिश्र, श्री बृजेंद्र कुमार गौतम, डॉ. श्रद्धानंद, डॉ. कमालुद्दीन शेख, प्रो. राजेंद्र किशोर, डॉ. उषाकर गोस्वामी आदि ने अपने विचार व्यक्त किए।

★★

गत दिनों राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के पाठक मंच के तत्त्वावधान में बंशीलाल 'पारस' की अध्यक्षता में एक गोष्ठी संपन्न हुई। इसमें डॉ. विमला सिंहल व डॉ. भैरूँलाल गर्ग ने अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'वर्तमान भारत में बुद्धिजीवियों की भूमिका' पर समीक्षात्मक पत्र-वाचन किया।

डॉ. जीवन मेहता, श्री फतहसिंह लोढ़ा, श्री इंद्रजीत सिंह जौहर, श्री राजेंद्र शर्मा, श्री श्यामसुंदर तिवारी 'मधुप', श्री भवानी शंकर दुःखित व श्री रतन कुमार चटुल आदि ने पुस्तक पर चर्चा में भाग लिया। गोष्ठी का संचालन श्री ओम उज्ज्वल ने किया।

★★

२५ जनवरी को नई दिल्ली में एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के प्रथम स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में एकात्म मानवदर्शन के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के साहित्यिक व्यक्तित्व को रेखांकित करने हेतु एक बृहद् संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. नरेंद्र कोहली ने की।

इस अवसर पर प्रसिद्ध संविधानविद् डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध रचनाकार डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय, प्रख्यात कहानीकार-उपन्यासकार श्रीमती मृदुला सिन्हा तथा प्रसिद्ध इतिहासविद् एवं ऐतिहासिक नाटककार श्री दयाप्रकाश सिन्हा ने अपने वक्तव्य से पं. दीनदयाल के व्यक्तित्व का साहित्यिक पक्ष उद्घाटित किया।

संगोष्ठी का संचालन चर्चित कथाकार-कवि श्री सीतेश आलोक ने किया। संस्थान के अध्यक्ष श्री महेश चंद्र शर्मा ने पं. दीनदयाल के एकात्म मानवदर्शन एवं उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों को रेखांकित करते हुए संस्थान की गतिविधियों एवं योगदान की चर्चा की। संगोष्ठी में बड़ी संख्या में पत्रकार, साहित्यकार, साहित्य-प्रेमी एवं प्रतिष्ठित हस्तियाँ उपस्थित थीं। □

यो वै भूमा तद् अमृतम्

साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-६ अंक-८ | फाल्गुन-चैत्र, संवत्-२०५७ | मार्च २००१

संपादक
विद्यानिवास मिश्र

❖

प्रबंध संपादक
श्यामसुंदर

❖

सहायक संपादक
कुमुद शर्मा

❖

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन-फैक्स : ३२५३२३३
ई-मेल : sahityaamrit@indianabooks.com
वेब ठिकाना : indianabooks.com/sahityaamrit

❖

शुल्क
एक अंक—१२ रुपए
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—१२५ रुपए
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—१५० रुपए
विदेश में
एक अंक—दो यू.एस. डॉलर (US$2)
वार्षिक—बीस यू.एस. डॉलर (US$20)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

आवरण चित्र : डॉ. मंजुला चतुर्वेदी

इस अंक में

त्रासद वसंत आगम

पिछले महीने के संपादकीय को आगे बढ़ाने की बात स्थगित करनी पड़ रही है। नए संवत्सर में अभिनंदन की बात भी स्थगित करनी पड़ रही है, क्योंकि चतुर्दिक् विनाश के समय नए जन्म में कोई उत्साह नहीं होता। जिस समय भूकंप आया, एक माँ ने बच्चे को जन्म दिया। उसका नाम रखा 'भूकंप'। प्रधानमंत्री ने टिप्पणी की थी कि 'गणतंत्र' क्यों नहीं ? मैं उन्हें विनम्रतापूर्वक उत्तर देना चाहता हूँ कि जिस देश का गणतंत्र २६ जनवरी को मनाया जाता है वह देश किसी व्यामोह में अपना परार्थ चिंतक स्वरूप खो चुका है। भूकंप नाम देना सहज प्रतिक्रिया है। वस्तुतः इस घटना से और इसके बाद की मानवीय त्रासदी से केवल धरती नहीं काँपी है, सार्थक मनुष्य होने की संभावना काँप उठी है। इसी त्रासदी के बारे में कुछ शब्द देना चाहता हूँ।

इस वर्ष २९ जनवरी को वसंत पंचमी थी और २६ जनवरी के दिन ही गुजरात में एक भयंकर भूकंप आया, जिसने कई नगरों को मटियामेट कर दिया और लाखों व्यक्ति बेघरबार हुए। लगभग लाख की संख्या में आदमी ही मरे। जिस परिवार में कोई बचा, वह सबकुछ खोकर बचा। जाने कितने बच्चे बेसहारा हुए, कितनी माताएँ निपूती हुईं, कितनी स्त्रियों का सौभाग्य छिना। महाकाल की करवट ने यह विध्वंस लीला तो की ही, इसके बाद मनुष्य ने जो किया है वह कहीं अधिक त्रासद है। प्राकृतिक आपदा आती है, दूर देशांतर से लोग सहायता देने के लिए आतुर हो जाते हैं। इतना वैमनस्य रखनेवाला पाकिस्तान भी सहायता लेकर प्रस्तुत हुआ। त्रासद पक्ष यह था कि ऐसी सहायता की पवित्र राशि को भी लूटनेवाले वहाँ आ गए। यह लूट दो स्तरों पर थी। एक तो सीधे थी डकैती डालकर, दूसरी थी उन सरकारी कर्मचारियों की जो सहायता बाँटने के लिए आदेश की प्रतीक्षा करते रहे और सहायता के रूप में सामान पटा पड़ा रहा। कोई-न-कोई बहाना बनाकर सहायता पूरी बाँटी भी नहीं जाती रही। बाँटी भी जाती रही तो समय से नहीं बाँटी जाती। यह भी दुःखद है कि विशिष्टजनों की अवाई की व्यवस्था में प्रबंध-तंत्र अधिक तत्पर रहा, निरवलंब बच्चों, स्त्रियों, वृद्धों को भोजन-पानी देने में कम। स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका भी जैसी होनी चाहिए थी वैसी नहीं रही। कुछ संगठन तो चंदा उगाहने के लिए ही बने और चंदा उगाहने में भी जोर-जबरदस्ती की गई। चंदा उगाहना एक तरह से व्यवसाय बन गया। यह सब चिता पर रोटी सेंकने जैसा काम हुआ। करुणा के देश भारत का यह रूप इतना घिनौना है कि चिंता होने लगती है। उदारता का प्रदर्शन, मृत व्यक्तियों के लिए श्रद्धांजलि तथा कुछ उत्सवों को स्थगित करने का नाटक और चंदा इकट्ठा करने के लिए उत्सव—ये सारी विडंबनाएँ अपने आपमें भूकंप की दुर्घटना से कम त्रासद नहीं हैं। क्या बिना अखबारों में प्रचार कराए सेवा नहीं की जा सकती ? क्या उद्योग और परिश्रम से संपन्न रहे राज्य गुजरात के भूकंपग्रस्त भूभाग के नगरवासियों का दुःख-दर्द पूरे विश्व का दुःख-दर्द नहीं है ?

पहले विदेशी सरकार थी। अकाल, भुखमरी, भूकंप, बाढ़ में सहायता देने लोग अपने आप बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। यह भी कहा जाता था कि यह सब पराधीनता का अभिशाप है। आज क्या ऐसा ही दोषारोपण कर सकते हैं—यह सब स्वाधीनता की पिछली अर्द्धशती—स्वर्ण जयंती—का अभिशाप है ? पहले विपद् में देश-सेवा स्वाधीनता का आवाहन थी, अब स्वाधीन होने पर किसी देश-मूल्य का आवाहन नहीं है। स्वाधीनता संग्राम में भाग लेनेवाले लोग सबसे आगे रहते थे। उनके मन में देश का दर्द था। देश के आदमी के लिए दर्द था। आज वह संवेदना कहाँ गई ? वे स्वयंसेवी युवक कहाँ गए जो बाढ़ में डूबते हुए लोगों को बचाने के लिए जान का जोखिम उठाकर कूद पड़ते थे ? कैसा पुनर्निर्माण हुआ है भारत का, जिसमें आदमी घरौंदे की सुरक्षा में संतुष्ट है और अपनी छोटी सी पूँजी की रक्षा के लिए ही चिंतित है। अपनी सुख-सुविधा में बिना कुछ कमी किए कुछ दिया जा सकता है, उसके लिए समाज में प्रतिष्ठा बनती है और उस प्रतिष्ठा से व्यवसाय में लाभ होता है, तो उतनी दूर तक ही त्याग संभव है, नहीं तो त्याग छूँछी पोंगापंथी है। क्या इस कृपण भाव का इतना छा जाना और इतने बड़े पैमाने पर देश-सेवा और मनुष्य-सेवा के पाखंड का पलना बहुत बड़ी मानवीय त्रासदी नहीं है ? क्या जमीन के दोहन का आसुरी व्यापार, जो धरती की क्षमता की चिंता न करते हुए कम-से-कम जगह में अधिक-से-अधिक मंजिलें खड़ा करने का

मकान निर्माण समितियों का जोश अब भी नियंत्रित होगा? कानून बन भी जाए तो उस कानून का पालन अमलाशाही ही करती रहेगी। क्या महानगर मोइन जोदड़ो, हड़प्पा की सभ्यताओं की नियति की ही ओर नहीं जा रहे हैं। इस घटना के बाद भी टिहरी बाँध बँधेगा ही, गंगा सूखेगी ही, गंगा करोड़ों जनों को तारने महासागर नहीं पहुँच पाएगी। वह पुरानी सरस्वती नदी की तरह आकाशचुंबी अट्टालिकाओं में रहनेवाले लोगों की प्यास बुझाएगी, प्यास बुझाने के लिए विपरीत दिशा की ओर ले जाई जाएगी, उसी तरह रेगिस्तान में, नए रेगिस्तान में, खो जाएगी और पुरातत्त्व के ही प्रमाणों पर जाएँ तो लगभग आठ हजार वर्ष से जो निरंतर खेती गंगा के मैदान में हो रही है, उसका मूल कारण गंगा का पानी है, यह पहचान खो जाएगी। जिस भूभाग में अहिंसा और सत्य के प्रतिष्ठापक महात्मा गांधी का जन्म हुआ उस भूभाग की ऐसी दुर्दशा हो, यह कितनी बड़ी विडंबना की बात है। भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वारिका के बारे में यही भविष्यवाणी की थी—'इतने जंगल काटे गए, इतने तपोवन उजाड़कर इतनी अट्टालिकाएँ बनीं, धन के संचय के साथ-साथ मद का संचय हुआ—महाविनाश तो होना ही है। और समुद्र सात दिनों के बाद इस महानगर को लील जाएगा।' आज भी भगवान् श्रीकृष्ण की भविष्यवाणी का फलितार्थ एक चेतावनी के रूप में हमारे सामने है। भूख-प्यास की समस्या का हल होना, रिहाइश की समस्या का हल होना आवश्यक है। पर ऐसी संपन्नता की आकांक्षा, जो दारुण विपदा बनकर आए, मानवीय नहीं है। देश में इतने पढ़े-लिखे लोग हैं कि सारे विश्व की ज्ञान-विज्ञान की अपेक्षाओं की पूर्ति कर सकते हैं—और वे भी इस मूलभूत बात को जान करके भी भीतर से नहीं समझ पा रहे हैं—

जो पुच्छइ बड्डाह घर, सो बड्डा घर ओइ।
बिब्भलजण-अब्युद्धरण कंत कुडीरइ जोइ॥

अर्थात् यदि पूछते हो कि बड़ा घर कौन है, तो बड़ा घर वही है जहाँ दुःखी लोगों के उद्धार के लिए छोटी सी कुटिया में सभी जनों का प्रिय व्यक्ति बसता है और जिधर दुःख देखता है उधर दौड़ पड़ता है। बड़प्पन की इस पहचान के आगे कोई संपन्नता माने नहीं रखती और इस पहचान के होते हुए भी आदमी सुख-सुविधाओं के घरौंदे से न निकल सके, सोचता रहे कि संपत्ति रहेगी तो सबकुछ रहेगा, संपत्ति रहेगी तभी हम सहायता भी कर सकते हैं, यह त्रासदी बनी रहेगी। वे यह नहीं सोचते कि मन जब तक संपन्न नहीं होगा तब तक संपत्ति का कोई अर्थ नहीं। त्रासदी यही है कि भारत जितना संपन्न नहीं हुआ उससे अधिक मन से विपन्न हुआ है। इस विपन्नता की ओर मैं इशारा करते समय भीतर से बेचैन होता हूँ कि क्या कुछ किया जाय कि संपन्नता की आकांक्षा का यह ज्वर उतरे, साझेदारी की भावना को जगानेवाले देश में दुःख-सुख दोनों बँटाने की बात लौटे।

इस वर्ष का उजाड़ वसंत जातीय मन में सोए करुणा के सोते को जगाए, जैसे भूकंप ने कच्छ में भूगर्भ जल को ऊपर कर दिया है। यह आशा दुराशाओं के बीच पाल सके, इतनी शक्ति जातीय संस्कृति की ऊर्जा से काश, मिल सके!

शोकांजलि

अभी पिछले महीने ही खंडवा के यशस्वी कवि-आलोचक श्रीकांत जोशी नहीं रहे। उनकी रचनाएँ 'साहित्य अमृत' को मिलती रहीं। कविता, संस्मरण, आलोचना—हर विधा को उन्होंने दिया। बड़े समर्पित भाव से वे साहित्य-सेवा में लगे रहे। स्व. माखनलाल चतुर्वेदी की 'भारतीय आत्मा' की रचनावली का उन्होंने बड़े मनोयोग से संपादन किया और उसके साथ-साथ उनके युग की स्मृति का किसी-न-किसी तरह जीवंत प्रेरणा का आकार देते रहे। मुझे स्मरण है कि सन् १९५९-६० में मैं अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए कुछ कविताओं का चयन कर रहा था। उस समय मुझे मध्य प्रदेश के दो श्रीकांतों की कविताएँ मिलीं—श्रीकांत वर्मा और श्रीकांत जोशी। दोनों उस समय युवा थे। श्रीकांत वर्मा ने कविता में आधुनिकता के नाम पर एकरसता का जाल बिछानेवाली अपसंस्कृति पर आक्रोश व्यक्त किया था। श्रीकांत जोशी की कविता मेलों के माहौल पर उत्साह और उमंग पर थी और आदमी के लिए इस प्रकार संदेश देती कि तुम क्यों नहीं इस उमंग में शामिल होते? क्यों अलग-थलग बैठे हो? उन्हीं कविताओं के माध्यम से मैं इन दोनों व्यक्तियों के निकट हुआ और इनके आजीवन निकट रहा। श्रीकांत वर्मा का जीवन एक अलग प्रकार की करुणांत गाथा थी। श्रीकांत जोशी का अकेलेपन की एक अलग गाथा थी। उसके बारे में अभी कुछ कहना ठीक न होगा। पर इतना जानता हूँ कि एक छोटे से नगर में रहते हुए विचार का और भावना का इतना बड़ा क्षितिज आलोकित करनेवाले कवि का स्मरण करते हुए मन में बड़ी विह्वलता होती है। अपने से छोटे क्यों पहले चले जाते हैं? उनके उदासी भरे पत्र बार-बार आते थे और मैं यही लिखता था कि तुमने तो उदासी के खिलाफ आवाज दी थी, तुम क्यों उदास होते हो? और वे स्नेह से भींगकर पत्र देते थे। अचानक समाचार मिला कि वे नहीं रहे। 'साहित्य अमृत' के इसी अंक में उनकी रचना दे रहे हैं। इस समय हम केवल इस रचना को प्रकाशित करके अपनी शोकांजलि दे रहे हैं। □
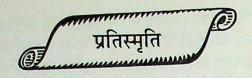
प्यासी हूँ

उषादेवी मित्रा

'वचन का मोल', 'नष्ट नीड़', 'सोहनी', 'संध्या', 'रात की रानी' जैसी कथाकृतियों की लेखिका उषादेवी मित्रा कहानी के क्षेत्र में चर्चित रही हैं। जीवन के भावनापूर्ण कथा बिंबों को उतारकर, नारी मन की कोमल संवेदनाओं को उकेरकर उनकी कहानियों ने अनुभूतियों का एक विशिष्ट संसार रचा है। मानवीय अंतर्मन में उठनेवाले छोटे-छोटे भावों, विचारों और अंतर्द्वंद्वों को उन्होंने अपनी कहानियों में सार्थक आयाम दिया। प्रस्तुत है, उषादेवी मित्रा की एक प्रसिद्ध कहानी।

कोई बारह बज चुके थे। दुनिया के परदे में स्वप्न की रानी झाँक रही थी—विजेता की भाँति। उसके नूपुर की मिलन गति से पृथ्वी मूर्च्छित-सी होती जाती थी।

वकील केशव के उस बड़े मकान के सभी कमरों की बत्तियाँ बुझ चुकी थीं, केवल सहाना का कमरा तब भी बिजली की शिखा से उज्ज्वल हो रहा था। मखमल के कोच पर कुत्ते के बच्चे को लिये वह बैठी थी। पलंग पर के सफेद रेशम के बिस्तर को किसीने छुआ तक नहीं था। गुलदस्तों के फूलों की मीठी सुगंध से कमरे की हवा व्याकुल हो रही थी। गुलाब जल से बसे पान के बीड़े अनादर से रकाबी पर ही सूख रहे थे। दीवाल पर के ऑयल पेंटिंग चित्रों के नीचे की दीपशिखाएँ उस गहरी रात में कुछ म्लान सी हो रही थीं—शायद नींद से उनकी आँखें भी अलसा रही थीं; किंतु उसकी पलकों में नींद की एक हलकी सी छाया भी न थी। वह उस बच्चे को सुला रही थी—परम आदर के साथ। कभी उसे आदर, स्नेह, प्यार से बेचैन कर देती तो कभी हृदय से लगा लेती—मुँह चूमने लगती। वह भूल बैठी थी पति के अस्तित्व को—जो कि कुछ ही दूर आरामकुरसी पर अधलेटे हुए नारी-हृदय की, माता की प्यास को, मातृत्व की बुभुक्षा को अपलक नेत्रों से देख रहा था। उसकी दृष्टि जीवंत विस्मय से विमूढ़ हो रही थी। मुकदमे के कागज वैसे ही इधर-उधर पड़े थे, उस समय उसकी मन:स्थिति उस ओर ध्यान देने यो नहीं थी।

आज अचानक नहीं, परंतु कई दिनों से केशव शायद अपनी भू कुछ-कुछ समझ रहा था। एक अनजान दर्द, एक अपरिचित अभाव वह कभी बेचैन हो जाता; चेष्टा करने पर भी उसकी समझ में नहीं आ कि वह व्यथा, वह अभाव किसलिए और क्या है? वह अनजान सा ब रहा।

पत्नी की दीर्घ श्वास, कुत्ते के प्रति उसकी वह लालायित दृ केशव के अंतर के किसी गोपनीय अंश में आघात कर बैठी। जुही व झाड़ी आँखों के सामने से हट गई। मोती जैसे फूल बिखर गए। दिवस के वे रँगीले दृश्य चलचित्र के समान सामने अड़ गए, जहाँ एक नारी रूप, रूप-गंधपूर्ण अपने सुगठित यौवन की मदिरा भरे कल को लेकर उसीके पैर तले वर्षों विनिद्र रजनी बिता दिया करती नारी-रूप उपासक के पैरों में बैठी अपने श्रेष्ठ मातृत्व तक को न्योछा करने में जिसने विचार तक नहीं किया था। पति की तुष्टि के लि जिसके नयन, प्रत्येक रोम सदा खुशी की वर्षा किया करते थे, नूतनत विहीन, संपूर्ण लुटी हुई वह नारी यही है। बाहरी जगत् के तीव्र आकर्ष करोड़ों कामों में पिसकर—जिसे कि आपको बासी माला की तरह

फेंक देना पड़ा है, वह दूसरी नहीं—यही है—यही, जिसे कि आज तक विलासिता के अंदर तपस्विनी गौरी की तरह जागते ही रात बितानी पड़ रही है, कुत्ते और बिल्ली के बच्चों को लेकर माँ की प्यास—केशव जबरन ही हँस पड़ा, अपने आपको डाँटने लगा—यह सब वह क्या सोच रहा था? आश्चर्य में था कि ऐसे विचार उसके मन में उठे ही क्यों?

उस हँसी से सहाना चौंकी, "अभी सोओगे, बत्ती बुझा दूँ?"

"नहीं, अभी कागज देखना है।"

"क्या रात भर काम ही करते रहोगे? दो बज रहे हैं।"

"पर अभी तक तो तुम्हारे खेल को ही देख रहा था। बुढ़ापे में कुत्ते के पिल्ले से खेलते तुम्हें शर्म नहीं आती? लोग क्या कहेंगे?"

सहाना ने सहमी हुई आँखें उठाईं, "उसकी माँ मर गई है। बच्चा दिन-रात रोता रहता है।" आँसू छिपाने के लिए उसने मुँह फेर लिया।

"एक दिन मरना सभी को है; फिर कुत्ते-बिल्ली के लिए यदि सभी आँसू बहा दोगी तो मेरे लिए बचेगा ही क्या?"

"साईस का लड़का रोए या मरे, अपने को क्या? बड़े घर में आई हो, जात-पाँत का भी तो कुछ विचार किया करो। कहाँ वह जैसवारा और कहाँ हम ब्राह्मण! कुत्ते-बिल्ली दिन भर लिये रहती हो, मेरे हजार सिर पीटने पर भी मानतीं नहीं। दिन-पर-दिन तुम हठी होती जा रही हो; ऐसा अनाचार मैं सह नहीं सकती।"

उत्तर देने के लिए सहाना के कंठ में शब्दों की भीड़ सी लग गई; किंतु फिर भी उसका उत्तर संक्षिप्त ही हुआ, "वह छह महीने का अबोध शिशु है, माँ; मरते समय दुखिया उस बच्चे को मुझे सौंप गई थी।"

"आज जैसवारा तो कल मेहतर के लड़के को उठा लाना। मेरे रहते इस घर में तेरा अधिकार ही कौन सा है? मेरे मत के विरुद्ध यहाँ कोई काम नहीं हो सकता। उसे अभी दूर कर दे।" गृहिणी झुँझला पड़ी।

"नहीं!"

"क्या कहा?"

"नहीं!"

नर्मदा के चिल्लाने से केशव भीतर आ गया, "क्या है?"

"भैया, मुझे तू काशी पहुँचा दे।"

"तुम फिर वही बातें करते हो!" उसने अभिमान के साथ मुँह फेर लिया। बहुत दिनों के बाद पति के मुँह से उसी भूले से परिहास को सुनकर वह विस्मित हो रही थी। प्रेम के गत दिनों का जीवन ही कितना था! बूँद भर ओस, जुगनू की दीवट, फूल की एक पंखुड़ी की तरह छोटे—बहुत ही छोटे दिन; किंतु उन छोटे दिनों की वह प्रेम-स्मृति सहाना के निकट अमर और अविनाशी थी।

"बहुत दिनों के बाद।" उसने धीरे से कहा।

"मैं उन बातों को भूला नहीं हूँ, सहाना; पर कभी आश्चर्य करता हूँ, सोचता रहता हूँ कि जिस अंतर में कभी दिन-रात प्रेम-प्यार की पुकार उठा करती थी, आज चेष्टा करने पर भी क्यों नहीं उठती? शायद मेरा यौवन मर चुका है।" केशव का स्वर दर्द से भरा हुआ था।

सहाना हँसी—उस हँसी की जाति ही निराली थी।

□

"मेरे पूजा के कमरे में आज से तुम मत जाना, दुलहिन।" सहाना की सास नर्मदा ने कहा।

फूल चुनते-चुनते वह रुकी, "क्यों, अम्माजी?"

"सबेरे हलकू को दूध नहीं पिला रही थी!"

"वह रो रहा था।"

"क्यों, माँ?"

"क्योंकि मैं नौकरानी होकर नहीं रह सकती। तुम्हीं से पूछती हूँ कि घर की मालकिन बहू है या मैं?"

केशव को चुप रहते देखकर माता जल उठीं, "कहो, मैं तुमसे सुनना चाहती हूँ।" उसने अपना प्रश्न दोहराया।

"तुम्हारे रहते हुए तो दूसरी कोई मालकिन बन नहीं सकती; पर उसे भी तुम्हीं लाई हो और अधिकार भी दिया है।"

केशव की पूरी बातें सुनने का धीरज उस समय उसमें था ही नहीं। नर्मदा ने कहा, "तुम्हारे राज में आज क्या चमार-भंगी के साथ बैठकर खाना पड़ेगा?"

"ऐसा करने को तुमसे किसने कहा?"

"तुम्हारी स्त्री ने। सबेरे से दुखिया के लड़के को उठा लाई है; कहती है, उसे रखूँगी।"

"क्या यह सच है?"

"हाँ! उसकी माँ मुझे सौंप गई है।"

"वह जैसवारा का लड़का है। इस घर में उसकी जगह कैसे हो सकती है, सहाना?"

''जैसवारा के घर में जन्म लेना क्या अपराध है?''

उत्तर दिया नर्मदा ने, ''ऊपर से लगी सवाल-जवाब करने, तेरी हिम्मत देख-देखकर मैं आवाक् होती हूँ; दूसरी सास होती तो तुझ जैसी बाँझ का मुँह भी न देखती।''

व्यथा से उसका चेहरा पीला पड़ गया। अपने को सँभालकर उसने कहा, ''मैं आपसे नहीं, उनसे पूछती हूँ कि यदि आत्मा अमर है, ईश्वर का अंश है और सभी में उसी एक पावन आत्मा का प्रकाश है, तो यह छुआछूत का प्रश्न उठा ही क्यों और कैसे?''

''लोकाचार है, समाज का नियम है। जबकि उसी समाज में हमें रहना है तब उसके नियमों को मानना भी जरूरी बात है।''

''मैं कब कहती हूँ कि तुम निराले समाज में चले जाओ; पर पुराने की महिमा में मुग्ध होकर उसके कीचड़ को संदूक में भरकर रखने में कोई पौरुष, कोई श्लाघा नहीं है। प्रकृति के नियम से नित नई वस्तुएँ बनती और मिटती हैं। पुराने में जो भी भली वस्तुएँ हैं, उसका सम्मान और रक्षा हम अवश्य ही करेंगे; परंतु बुरे को सदा त्यागने के साहस की कमी हममें कभी न हो—यह प्रार्थना मैं सदा ईश्वर से करती हूँ।''

''तो तुम इस नियम को खराब कहती हो?''

''हजार बार आदमी आदमी को घृणा करेगा, यह निरी पहेली ही नहीं, अपराध भी है।''

''मैं घृणा की बात नहीं कहता, केवल माँ के सम्मान के लिए तुम बच्चे को हटा दो, सहाना।'' वह डर रहा था; क्योंकि स्वाधीन स्वभाव की पत्नी को वह भलीभाँति पहचानता था।

''नहीं।'' कुछ देर सोचने के बाद उसने कहा, ''नहीं, यह असंभव है। तुम्हारे और माँ के संतोष-सम्मान के लिए अपने प्राण न्योछावर कर सकती हूँ, पर दूसरे के नहीं—और न उस वचन को तोड़ सकती हूँ, जो कि उसकी मरण-सेज पर दे चुकी हूँ।''

''सहाना, आज इस जीवन के अंत में तुम मुझसे क्या कहना, क्या सुनाना चाहती हो?''

''कुछ भी नहीं।'' उसने बालक को छाती से लगा लिया। जाते समय कहती गई, ''यह भूखा है, दूध पिला दूँ, फिर तुम्हारी बातें सुनूँगी।''

माता-पुत्र स्तंभित से खड़े रह गए।

☐

''सहाना, आलमारी की चाभी देना, कागज निकालना है।'' मंदिर के द्वार पर केशव ने पुकारा।

कटोरे में चंदन पोंछकर शीला लौटी। दोनों एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उन दृष्टियों में प्रश्न था—तुम कौन हो, कहाँ से आए?

उसी दिन से सहाना का मंदिर तथा रसोई आदि में जाना नर्मदा देवी ने बंद कर दिया था। ये बातें केशव नहीं जानता था—ऐसा नहीं; फिर भी अभ्यासवश वह मंदिर द्वार पर खड़ा हो गया। उसे स्मरण आया कि रात में इसी शीला की बात सहाना कह रही थी। वह नर्मदा की ज्ञाती कन्या थी, अविवाहिता थी। नर्मदा ने उसे बुला लिया था।

''चाभी तो मेरे पास नहीं है···मैं शीला हूँ, कल ही यहाँ आई हूँ।''

इस तरुणी की संकोचहीन बातों से केशव कम विस्मित न हुआ। वह उन आयत नयनों के सामने संकुचित हो रहा था।

''अच्छा, तो मैं जाता हूँ।'' किसी तरह इन शब्दों को कहकर वह वहाँ से भागा।

भोजन के आसन पर बैठकर केशव विरक्ति से इधर-उधर निहारने लगा। शीला थाली और कटोरों को उसके आगे रखकर पंखे से मक्खी भगाने लगी।

रसोई ब्राह्मण बनाता था; परंतु भोजन के समय सहाना सामने बैठती थी। दो-चार तरकारी भी पति के लिए वह अपने हाथ से बनाया करती थी; पर हलकू के आने के बाद से गृहिणी उसे दूर रखकर स्वयं उन कामों को कर लिया करती थी। और आज उन्होंने अपना स्थान शीला को सौंप दिया था।

''भैया, करेले कैसे बने हैं?'' माता सामने आकर खड़ी हो गई।

''अच्छे।''

''शीला ने बनाए हैं, बड़े काम की लड़की है और वैसी ही नम्र शांत भी। मैं जिस काम को कह देती हूँ उसे जी-जान से करती है। आलू के बड़े भी उसीने बनाए हैं, अच्छे बने हैं न?''

''हाँ।''

''क्यों झूठ बोलते हैं? आपने तो छुआ तक नहीं।'' शीला हँस पड़ी।

अप्रस्तुत होने के साथ-साथ शीला के सरल व्यवहार से भी केशव संतुष्ट हुआ।

''शीला सच कह रही है। भैया, तुमने तो आज कुछ भी नहीं खाया।''

''खराब बना होगा।''

''नहीं-नहीं, सभी चीजें अच्छी बनी हैं। मुझे भूख नहीं है।''

''फिर आप झूठ कहते हैं। मैं कहती हूँ मौसी, कि भौजी को बुला दीजिए, तभी ये पेट भर भोजन कर लेंगे।''

इस तरुणी की मुँह पर सच कहने की शक्ति को देखकर केशव मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगा।

''ऐसा नहीं हो सकता, शीला, कि मेरे जीते-जी इस घर में भंगी-बसोरों का निवास हो जाए। बहू घर की लक्ष्मी कहलाती है; वही यदि अनाचार करने लगे तो उस घर की भलाई कब तक हो सकती है? एक तो इस वंश का ही नाश होने बैठा है, एक बच्चा तक नहीं हुआ। वंश-रक्षा करना भी एक जरूरी बात है, पर कोई सुनता नहीं! मुझे ऐसा लगता है कि अपने हाथों अपना सिर पीट लूँ।''

एक अनजान के सामने इन बातों की अवतारणा से केशव चिढ़ रहा था; फिर भी उसने हँसकर कहा, ''तो अपना सिर पीटकर ही देख लो।''

"क्या दाँत निकालते हो, भैया! मेरा तो जी जला जाता है। उसीकी बात सबकुछ हो गई और मेरी बात कोई पूछता तक नहीं।"

"ऐसा तो नहीं, माँ।"

"फिर तू ब्याह क्यों नहीं करता?"

"मैं विवाहित हूँ।"

"इससे क्या हुआ! वंश-रक्षा के लिए लोग न जाने कितने ब्याह करते हैं; पर इधर तो उसने सौगंध रख दी है, माँ की सौगंध को कौन मानता है!"

"उसने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा, यह तुम्हारा गलत विचार है। उसका मन छोटा नहीं है, माँ। वह तुम्हारे विरुद्ध कभी कुछ कहती ही नहीं।"

"अरे, मैं सबकुछ जानती हूँ। आज वह तेरी सबकुछ है। एक दिन वह था, जब इसी बुढ़िया के बिना तेरा दिन कटना मुश्किल था। तेरी आँखों के सामने वह तेरी माँ का अपमान करे, जैसवारे के लड़के को घर में रखे, दिन भर गोद में लिये रहे और तू औरतों जैसा देखता रहे; धिक्कार है ऐसी जिंदगी पर!"

केशव आसन पर से उठ पड़ा।

"तुमने ऐसा क्यों कहा, मौसी? उन्होंने खाया तक नहीं।"

"क्या मैं चुपचाप यह सब सह लूँ?"

"किंतु तुमने मेरे सामने क्यों कहा? यही बात उन्हें खराब लगी।"

"तुमसे सच कहती हूँ, शीला, केशव ऐसा नहीं था; बहू ने उसपर जादू किया है।"

इस बार शीला अपनी हँसी को रोक न सकी। वह हँसते-हँसते लोटने लगी।

"तू हँसती क्यों है? इसमें हँसने की कौन सी बात है?"

"तुम अंधेर करती हो, मौसी। भला जादू भी कोई चीज है! फिर भौजी के लिए तो ऐसे विचार उठ ही नहीं सकते। उनकी बातचीत की रीति, उनकी शिक्षा ही निराले ढंग की है। वे हजारों में एक स्त्री हैं।"

"तू भी ऐसा कहती है, शीला! मैं तुझे अपना समझती थी; पर मेरा भाग्य ही ऐसा है।"

वह नर्मदा के गले से लिपट गई, "नाराज हो गई, मौसी?"

"नहीं, बेटी, मैं अपने भाग्य पर रोती हूँ।"

उसके जीवन के वे लंबे अनमोल दिन क्या यों ही दीर्घ श्वास की नाईं छोटे से पुल में उड़ जाएँगे? जिसके अणु-परमाणु माता होने के लिए सृजे गए थे, उसे व्यर्थ करने का अधिकार क्या दुनिया में किसीको भी था? शायद जीवन के आरंभ में ही वह पावन दीप जलाए संतान की प्रतीक्षा में बैठी थी। उसकी उस प्रतीक्षा को निष्फल किसने किया? पति के अभिमान से अंधे बनकर उसके शुद्ध-सुंदर मातृत्व को छीन लेनेवाला राक्षस वह कौन था?

□

मल्लार रागिनी का आलाप लिये वर्षा तब पृथ्वी के सिरहाने उतर आई थी। घर-द्वार और तरु-पल्लवों में उसके पैर की हरियाली की छाप पड़ने लग गई थी। उस हरियाली ने बूढ़े वट के नीरस हृदय तक को सजीवता के साथ-ही-साथ रसपूर्ण भी कर दिया था। वर्षा की उस अलसाई हुई संध्या ने केशव के निद्रालु चित्त में नवीनता का मोहिनी मंत्र फूँक दिया। वह धीरे-धीरे सहाना के कमरे की ओर बढ़ा—बहुत दिनों के बाद।

द्वार की ओर पीठ किए आईने के सामने खड़ी वह बालों को सँभाल रही थी। बालों के गुच्छे कमर पर लहरा रहे थे; ओठों पर हलकी सी मुसकान थिरक रही थी—वही रूप-यौवन की गर्वीली मुसकान।

"सहाना!" उसकी पीठ पर हाथ रखकर प्यार के साथ केशव ने पुकारा।

"आप!" चंचल हरिणी की तरह वह सामने खड़ी हो गई।

"तुम तो शीला हो, सहाना—मेरी सहाना को तुम लोगों ने कहाँ भगा दिया?"

"मैंने?" पर दूसरे ही क्षण शीला सहमकर बोली, "वे घर ही में हैं, नीचे कुछ कर रही हैं।"

"फिर तुम उसके कमरे में उसीकी तरह इस आईने के सामने क्यों खड़ी थीं?"

शीला के लिए यह एक अद्भुत प्रश्न तो था ही—और जो कुछ था, वह था अपमान का रूखा तिरस्कार। फिर भी उसकी शिक्षा ने उसे आपे से बाहर होने से रोका। कौन सी भयानक स्थिति ने केशव जैसे गंभीर प्रकृति के आदमी को इस तरह विचलित कर दिया है? इस बात को सोचकर शीला सिहर उठी। शीला हट गई।

केशव पत्नी के आगे जाकर खड़ा हो गया—एक दीर्घ श्वास की तरह, "कहाँ थीं तुम?"

हलकू के उन प्यारे-छोटे हाथों को छोड़कर सहाना जरा हट आई। वह जानती थी कि उसी दुःखी असहाय शिशु को लेकर उसकी गृहस्थी में कैसा तूफान उठा हुआ है।

"तुम मेरे साथ-साथ रहा करो, सहाना।" पति के उन व्याकुल बाहुओं में अपने को सौंपकर वह उसका मुँह निहारने लगी। समुद्र-सा अथाह विस्मय उसके सामने था।

बच्चा रोने लगा। इतनी देर के बाद केशव की दृष्टि हलकू पर पड़ी, "इसीलिए तुम आज मुझे भूल रही हो, मेरी यह दशा हो रही है; सब अनिष्ट की जड़ यही है! अच्छा, ठहरो।"

उसने बालक को उठा लिया, शायद उसे फेंकना चाहता हो। उन्मादिनी की भाँति सहाना ने बालक को छीन लिया। अपनी छाती से लगाकर वह हाँफने लगी।

"उसे दे दो, सहाना, वरना आज मुझे कठोर बरताव करना पड़ेगा।"

"नहीं-नहीं, मेरे बच्चे का खून मत करो; पहले मुझे मार डालो।" वह उसे गोद में लेकर जमीन में बैठ गई।

केशव को जिद सी हो गई, "मैं उसे लेकर ही छोड़ूँगा।" वह उसे छीनना चाहता था; परंतु सहाना की उस दृष्टि को सह न सका—यह कैसी रिक्त सर्वशांत दृष्टि है! वह सिहर उठा; उसके हाथ अपने आप रुक गए; हृदय में प्रश्नों की झड़ी सी लग गई—वह जो गत यौवना रूपवती नारी, मर्द के रूप की प्यास को बुझाने के लिए आज सबकुछ खो बैठी है। उसके जीवन के वे लंबे अनमोल दिन क्या यों ही दीर्घ श्वास की नाईं छोटे से पुल में उड़ जाएँगे? जिसके अणु-परमाणु माता होने के लिए सृजे गए थे, उसे व्यर्थ करने का अधिकार क्या दुनिया में किसीको भी था? शायद जीवन के आरंभ में ही वह पावन दीप जलाए संतान की प्रतीक्षा में बैठी थी। उसकी उस प्रतीक्षा को निष्फल किसने किया? पति के अभिमान से अंधे बनकर उसके शुद्ध-सुंदर मातृत्व को छीन लेनेवाला राक्षस वह कौन था? कठोर तपस्या शेष कर जीवन की संध्या में जो रमणी भिखारिन की तरह संतान की भीख माँग रही है, उसकी भिक्षा की झोली आज वह किस चीज से भरेगा? माता की मरुभूमि की-सी तृष्णा को वह किस तरह तृप्त करेगा? उसके उस जरा से शांति-संतोष से उस अभागे बच्चे को छीनकर पति-पूजा का पुरस्कार क्या वह इसी तरह देगा?

केशव की चिंता में बाधा पड़ी। सहाना ने बच्चे को उसके पैर तले लिटा दिया, "लो, लेते जाओ। आज इसे तुम्हींको सौंपती हूँ।" दोनों हाथों से सहाना ने अपना मुँह ढाँक लिया।

केशव ने एक बार पत्नी की ओर और दूसरी बार बच्चे को देखा, फिर हलकू को धीरे से उठाकर सहाना की गोद में डाल दिया।

□

जिस दिन उस बालक का अंत हो गया उस दिन सहाना की आँखों में पानी की एक छोटी सी बूँद तक नहीं थी। दिन एक-सा कटने लगा। सहाना के अंतर का परिवर्तन बाहरी जगत् से छिपा ही रह गया—शायद जीवन भर के लिए। वह सब कामों में योग देती और पति से हँसकर बात भी करती, केवल दिन में एक बार उस नन्हे बच्चे के चित्र को आँखों से लगा लेती।

जिस दिन उसकी वह चोरी पकड़ी गई उस दिन केशव ने विरक्त होकर कहा, "बुढ़ापे में क्या तुम पागल हो जाओगी? धूमकेतु यदि मरा भी तो निशानी छोड़ गया।"

"छिह! मरे हुए का जरा सा सम्मान करना सीखो, उसकी भी आत्मा थी।" उसके कंठ में तिरस्कार था।

"ऐसा! तो उस कमीने के लिए आँसू भी बहाना पड़ेगा और सम्मान भी दिखाना पड़ेगा?"

"फिर इससे तुम छोटे न हो जाओगे!"

"और कुत्ते-बिल्लियों के लिए किस दिन आँसू बहाना होगा, सो भी कह देना।"

सहाना ने उत्तर नहीं दिया। उन बातों का वह जवाब ही क्या देती?

"अब जवाब क्यों नहीं देतीं?"

"क्या इन बातों का उत्तर भी देना है, और मुझी को?"

उन शब्दों में कौन सी सम्मोहनी भरी थी, सो तो केशव ही जाने; परंतु इसके बाद मारे लज्जा के उसकी आँखें झुक गईं। पिछली बातों के स्मरण से उसके मन में शायद कुछ अनुपात की छाया सी पड़ी; किंतु दूसरे ही क्षण वह जबरन अस्वीकार करने लगा। मन-ही-मन कहने लगा—होनहार था।

झूठ से समझौता करते-करते लोग अपने जीवन की न जाने कितनी अनमोल वस्तुओं को खो बैठते हैं; शायद इसीलिए वह फिर उसी मिथ्या से समझौता करने में लग गया।

"तुम बैठी फोटो देखती रहो और मैं भूखा-प्यासा तुम्हारा मुँह निहारता रहूँ, यही कहना चाहती हो न?"

"मैं तुमसे कुछ कहना नहीं चाहती, तुम भोजन कर लो।"

"धन्यवाद, इतनी देर के बाद तुम्हें याद आया!"

वह कह सकती थी कि आजकल भोजन छूने का अधिकार उसे नहीं है। कह सकती थी, अब उसके बदले शीला उन कामों को किया करती है; पर नहीं, वह चुपचाप बाहर निकल गई।

"आइए।" शीला ने पुकारा।

केशव के कानों में अमृत की वर्षा हो गई। कैसी दर्दीली पुकार है—उसने अपने आप कहा।

आसन के आगे मिठाई की रकाबी रखे शीला बैठी थी—उसीकी प्रतीक्षा में।

केशव का अंतर-बाहर आनंद, संतोष से भर उठा। सारे दिन परिश्रम के बाद घर में शांति नहीं मिलती थी; किंतु उस तरुणी की सेवा, सहानुभूति से केशव बिछुड़े हुए दिनों की उसी खुशी के समुद्र में लहराने लगता था—थोड़ी देर के लिए।

गरम-गरम कचौरियाँ रकाबी में डालकर शीला ने कहा, "इनमें से एक भी न बचे, वरना दंड भुगतना पड़ेगा।"

उसने शीला की ओर देखा, उस तरुणी के सारे अंगों से खुशी का झरना झर रहा था।

"कौन सी सजा मिलेगी, शीला?" कौतुक के साथ केशव ने पूछा।

"फिर इतनी ही कचौरियाँ और खानी पड़ेंगी।"

"यदि न खा सकूँ?"

"तो रात भर इसी तरह बैठे रहना पड़ेगा।"

"तुम मेरे सामने रहोगी न?"

"जाइए!" ये मीठे शब्द बहुत ही मीठे स्वर में कह गए।

केशव चौंक पड़ा; वह भागा—चोरों की तरह। आकुल विस्मय से शीला उसे निहारती ही रह गई।

सहाना ने धीरे से पति के सिर पर हाथ फेरकर पूछा, "इस समय तुम सोए क्यों, कहीं तबीयत तो खराब नहीं है?"

"सहाना, तुम्हीं मेरी स्त्री हो और तुम्हीं होगी।" दोनों हाथों से सहाना का हाथ पकड़कर वह बार-बार कहने लगा।

सहाना धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

"क्या वे पुराने दिन नहीं लौट सकते, सहाना?"

सहाना का हृदय व्यथा से विकल हो उठा।

"कहो सहाना, जवाब दो।"

"तुम्हारे दर्द को मैं और बढ़ाना नहीं चाहती।"

"समझा नहीं।"

"जरा चुपचाप सो रहो, तबीयत ठीक हो जाएगी।"

"नहीं-नहीं, मुझे कहने दो; सहाना, सहाना!"

"मैं जानती हूँ।"

"तुम···तुम जानती हो! क्या जानती हो?" विराट् विस्मय से आँखें विस्फारित हो रही थीं।

"सभी बातें। किंतु तुम्हारे मुँह से सुनना नहीं चाहती।" वह हँसी। केशव का सिर अपने आप झुक गया।

"कब से जानती हो?" बहुत देर के बाद उसने पूछा।

"बहुत दिनों से।"

"तुमने मुझे सावधान क्यों न किया? मुझे अपने बाहुओं में खींच क्यों न लिया?"

"जबरन ही? किंतु नहीं···मैं ऐसा नहीं कर सकती थी; वैसी भीख की झोली से घृणा करती हूँ, आंतरिक घृणा। प्रेम, प्यार आदर की वस्तु जरूर है, पर माँगने-जाँचने की नहीं; उसके लिए दूसरे से झगड़ना—छिह, छिह!" वह घृणा से सिहर उठी।

"तुम पत्थर की बनी हो, सहाना।"
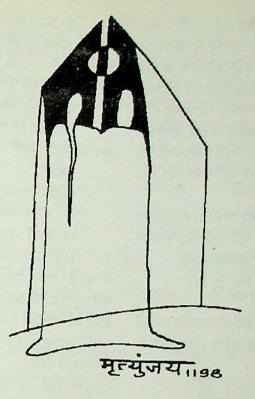
"होगा भी।" उदास स्वर से उसने कहा।

"पर मैं अपना अधिकार इस अवहेलना के साथ नहीं छोड़ सकता था।"

"अवहेलना? नहीं, घृणा कह सकते हो। किंतु मैं कहती हूँ, ये सब बातें तभी उठ सकती थीं, जबकि अधिकार को कोई छोड़ देता।"

"तो यह क्या है?"

"जो प्रेम एक बार किसीके द्वार पर लुट चुका था वही प्रेम आज यदि प्रतारक की तरह दूसरे के द्वार पर झाँकने लगे, तो उसके लिए सिर पीटने की जरूरत नहीं है। अधिकार मन की चीज है, वह अमर है; प्रेम के उस अधिकार को छीन लेने की शक्ति विधाता को भी नहीं है, फिर हम तो आदमी ही हैं।" सहाना उठी, "अब मैं जाती हूँ, काम पड़ा है।"

□

काम करते-करते शिशु-कंठ के मधुर गीत से अनमनी सी सहाना द्वार पर आकर खड़ी हो गई।

गीत गा-गाकर नन्हे-नन्हे बच्चे देश के लिए भीख माँग रहे थे। वह अपलक नेत्रों से उन्हें देखने लगी।

"माताजी!" एक ने पुकारा।

"इन झोलियों में कुछ डाल दो, माताजी!" दूसरे ने कहा।

उसने एक सुंदर शिशु को गले से लगा लिया, "क्या कहा भैया, फिर कहना?"

"इन झोलियों में कुछ डाल दीजिए।"

"उसी तरह फिर पुकारो।"

"माताजी!"

"और छोटे शब्द में।"

"माँ!"

"फिर पुकारो।"

"माँ, माँ!"

वह कान लगाकर सुनने लगी उस पुकार को। एक स्वप्न-सा आँखों में छा गया। जैसेकि उसने अपने हृदय का खून, वह उस स्वप्न में देखने लगी—हाँ, हृदय का खून—प्यारे बच्चे को देश के काम में सौंप दिया हो, उसकी उस देश-सेवा के श्रेष्ठ दान से, उस दृष्टांत से—प्रत्येक माता ने अपनी गोद खाली कर दी। वह विस्मय के साथ देखने लगी—जल, वायु, आकाश शिशुओं से छा रहा है; तिल बराबर भी कहीं स्थान नहीं है। यह कैसा विराट् रूप है! उसने अपने आप कहा।

"सहाना!"

पति की पुकार से वह स्वप्नलोक से लौट आई। "हाँ।" उसने उत्तर दिया। उस दृष्टि को केशव सह न सका। यहाँ वह किसी उद्देश्य से किसके पास आया है! उसकी चिंता विकल हो पड़ी—माँ से आज वही प्रेयसी को माँग रहा था। गृहिणी के नयनों में वह तरुणी की प्यास को देखना चाहता था, सेविका से प्रेम-प्यार-सोहाग माँगता था—हाँ, इतने दिनों के बाद। वह समझ ही न सका कि उसीके अनादर, अवहेलना से उसकी प्रेयसी नारी मर चुकी थी—बहुत दिन पहले। और उसी नारी के भीतर अब जो कुछ था, वह था केवल माँ का गंभीर स्नेह और समुद्र-सी प्यास।

कुछ विचारता हुआ केशव शीला के निकट जाकर खड़ा हो गया।

"आइए, भूख लगी है क्या?" नदी की भाँति तरल कंठ से उसने पूछा। केशव की उस मुग्ध दृष्टि के आगे वह खिलखिला पड़ी।

"मैं तुम्हींको ढूँढ़ रहा था।" केशव का स्वर मृदु था।

नर्मदा ने पुकारा, "भैया, जरा सुन जाना।"

रात में सहाना ने केशव के कागजों को हटाकर किसी प्रकार की भूमिका के बिना ही कहा, "शादी के लिए तैयारियाँ तो मैंने कर ली हैं, केवल गहने तुम बनवा देना।"

"किसकी शादी?"

"शीला की।"

"वर कहाँ मिला?" उसका कंठ काँप रहा था।

कुछ देर तक पति के मुँह की ओर देखकर सहाना ने उत्तर दिया, "वर घर ही में है।"

"और मैंने उसे नहीं देखा?"

"मैंने जब देखा है, तब तुम भी देख चुके हो।"

"याने?"

"तुम हो।"

"मैं···मैं!" वह पीछे हटा।

"हाँ, तुम।"

"यह दिल्लगी अच्छी नहीं लगती, सहाना।"

"दिल्लगी नहीं, सच ही कहती हूँ; इसी पंद्रह तारीख को शादी होगी।"

"असंभव है।"

"ऐसा मत कहो, सभी तैयारियाँ हो चुकी हैं।"

"ऐसा तुमने क्यों किया, सहाना?"

"क्योंकि इसकी जरूरत थी।"

"फिर भी यह नहीं हो सकता। इसमें न तो मेरी भलाई है और न तुम्हारी। किसीके लिए कभी भी मैं तुम्हें दुःख नहीं दे सकता।"

"तुम भूल कर रहे हो। तुम्हारे सुख के लिए मैं सबकुछ सह सकती हूँ। विशेषतः मेरे उस गत आनंद की स्मृति को दुःख की शिखा जला नहीं सकती है, तुम विश्वास करो।"

"तुम कठोर हो—बहुत हो। सहाना, मैं ऐसा नहीं कर सकता था! जिसे मैं चाहता हूँ, उसे अपने ही हाथों से किसी और को लुटा नहीं दे सकता था।"

"मैं लुटा रही हूँ या···"

"कहो-कहो, क्या कहना चाहती हो?"

"निर्लज्जता की भी सीमा रहती है, हाँ···मैं कहती थी—तुम उस बात को सह न सकोगे।"

"क्यों?"

"क्योंकि सत्य कभी सुखद नहीं होता।"

"फिर भी मैं सुनना चाहता हूँ।"

"जिनको मैं चाहती हूँ, अपने उस देवता को मैं नहीं लुटा रही हूँ—वे मेरे हैं, मेरे ही रहेंगे। उन्हें छीनने की शक्ति दुनिया की किसी स्त्री में नहीं है। आज अपने आप जो लुट रहे हैं, वह है लालसा की जीवंत मूर्ति, नूतनता की अनंत प्यास, प्रातारण का अनोखा रूप और जीवन संध्या की स्वार्थी व असीम स्पर्धा।"

"सहाना, सहाना! चुप रहो। मैं और सुनना नहीं चाहता। क्या तुम वही सहाना हो?"

वह हँसी, "परिवर्तन प्रकृति का नियम, आदमी का स्वभाव है।"

"आज क्या तुम अपने उस देवता की पहले की तरह पूजा नहीं कर सकती हो, सहाना?"

"मैं तो आजीवन उसकी पूजा करती हूँ और करती ही रहूँगी।" उसके नेत्रों में विस्मय था।

"नहीं, मैं कहता था···" वह संकोच के साथ बोला, "कहता था—अब क्या तुम मुझसे घृणा करती हो?"

"मैं तो कह चुकी—परिवर्तन आदमी का स्वभाव है, और नूतनत्व का आकर्षण है उसका मज्जागत रोग; फिर इसके लिए हाहाकार करना या मानाभिमान करना व्यर्थ है। आओ, यहाँ बैठ जाओ; उदास क्यों हो?"

"मैं और कुछ न तो सुनना चाहता हूँ और न कुछ पूछना; पर यह विवाह हो नहीं सकता। वर के लिए सोचने की आवश्यकता नहीं है, उसी दिन वर तुम्हें मिल जाएगा।"

शीला ने द्वार पर से पुकारा, "भौजी, मौसी तुम्हें बुला रही है।"

केशव ने सिर नीचा कर लिया। आज वह शीला की ओर देख तक नहीं सकता था।

☐

उस धनी परिवार के नौकरों से लेकर मालिक तक उस दिन व्यस्त थे। बाहर से शहनाई मधुर स्वर में मिलन-संगीत आलाप रही थी। गलीचों पर चादरें बिछ रही थीं। पानी के मटकों में गुलाब जल मिलाया जा रहा था। बड़ी-बड़ी कड़ाहियों पर शाक-भाजी बन रही थी। हलवाई मिठाई बना-बनाकर बूढ़े-पुरानों को चखा रहे थे। सहाना और केशव घूम-

घूमकर सब व्यवस्था कर रहे थे।

शीला की शादी थी—धनी वर के साथ। बच्चे आँगन में शोर मचा रहे थे। चहुँओर के उस आनंद के भीतर लहराती हुई नदी की भाँति शीला हँस-हँसकर अपनी सखी-सहेलियों से मिला रही थी। स्त्रियों के बीच में उसकी समालोचना चल रही थी, ''कैसी बेहया है!''

''बहन, आजकल की लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं।''

''ठीक है, बूढ़ी हो जाती हैं तब कहीं वर मिलता है, इसलिए वे अपने आनंद को छिपा भी नहीं सकतीं।''

शीला ने एक स्त्री को चिकोटी काटी।

''जाकर दूल्हे को चिकोटी काट, मुझे नहीं।'' उस स्त्री ने कहा।

''उन्हें तो रात में काटूँगी।''

''कैसी बेहया है तू शीला! तुझे लज्जा-हया कुछ भी नहीं।'' स्त्री की भौंहें चढ़ गईं, जिन्हें देखकर शीला खिलखिलाकर हँसने लगी।

चलते-चलते केशव लौटा। पल भर के लिए उस खुशी की दिवाली की ओर उसने देखा, फिर काम के अंदर डूब गया। केवल सहाना उस हँसी को देखकर सिहर उठी।

संध्या समय बनाव-शृंगार शेष कर शीला दबे पाँवों उस द्वार के बाहर जाकर खड़ी हो गई, जहाँ कि केशव द्वार की ओर पीठ किए चुपचाप खड़ा कुछ विचार रहा था। वह कुछ देर तक खड़ी उसे देखती रही; इसके बाद उसने वहीं से केशव को प्रणाम किया। केशव लौटा। उसने देखा कि एक छाया सामने हट रही है।

व्यथा के साथ केशव ने पुकारा, ''शीला!''

परंतु उत्तर न मिला।

''भ्रम था!'' दीर्घ श्वास के साथ ये शब्द उसके कंठ से निकले।

बड़ी धूम से बारात आई। कन्यादान के समय शीला को लोग ढूँढ़ने लगे; किंतु उसका पता कहीं भी न था। घर, द्वार, हर एक संदूक देखी गई, शीला न मिली।

दो बूँद आँसू पोंछकर सहाना ने अखबारों में विज्ञापन दिया—'शीला बहन, तुम लौट आओ। इस घर में तुम्हारा निरादर न होगा।'

□

कल्लू के भी बड़े अजीब-अजीब शौक हैं। इस बार वह मेला गया तो वहाँ से एक बँदरिया खरीदकर ले आया। बँदरिया के गले में एक पतली सी रस्सी बँधी थी, जिसे कल्लू ने अपने दाहिने हाथ में थाम रखा था। बँदरिया कल्लू के कंधे पर निश्‍चिंत होकर बैठी थी।

घर में घुसते ही बच्चों ने शोर मचाना शुरू कर दिया, ''चाचा बँदरिया लेकर आए हैं!...''

शोर सुनते ही अम्माजी अपनी कोठरी से निकलकर आँगन में आ गईं। बँदरिया को देखते ही वह बड़बड़ाने लगीं, ''अरे कल्लू! तू फिर एक मुसीबत लेकर आ गया है! आखिर कब समझेगा तू? कब अकल आएगी तुझे? हे राम! इस कल्लू को मैं कैसे समझाऊँ?''

कल्लू अम्माजी की बातें सुनकर मुसकराता हुआ खड़ा रहा। बच्चे बँदरिया को तंग करने लग गए। सभी मिलकर अपने-अपने मुँह से 'खों-खों' की आवाज निकालने लग गए। बँदरिया खिसियाकर इधर-उधर उछल-कूद करने लग गई। कभी-कभी कल्लू जानबूझकर बँदरिया की रस्सी को ढील दे देता और बँदरिया तेजी से बच्चों की तरफ लपकती। जैसे ही वह बच्चों के समीप पहुँचने को होती, कल्लू झट से रस्सी अपनी तरफ खींच लेता। अपनी तरफ बँदरिया को बढ़ता देख बच्चे गिरते-पड़ते भागने लग जाते। यह तमाशा काफी देर तक चलता रहा। बच्चों को इस नए खेल में बड़ा मजा आ रहा था।

''क्यों रे कल्लू! क्या तू जिंदगी भर यही सब करता रहेगा? जा, निकल जा इस घर से इसी समय और इस बँदरिया को वहीं छोड़ आ जहाँ से इसे लेकर आया है।'' अम्माजी बड़बड़ाने लग गईं।

''अम्मा, क्यों नाराज होती हो? इसे भी यहीं रहने दो न! इसके यहाँ रहने से क्या फर्क पड़ जाएगा? जहाँ इतने सारे बंदर-बँदरिया हैं वहाँ एक और सही।'' कल्लू ने अपने भतीजे-भतीजियों की ओर देखते हुए कहा।

''कलमुँहा! तू मेरे पोते-पोतियों को बंदर-बँदरिया कहता है! इनकी बराबरी तू इस जानवर से करता है! ठहर, मैं तुम दोनों को अभी बताती हूँ।'' अम्माजी दनदनाती हुई अपनी कोठरी में घुस गईं। वह कोठरी से निकलीं तो उनके हाथ में एक कैंची थी।

खच्! एक आवाज हुई। अम्माजी ने

जन्म : राँची (बिहार) में।
पूर्व आचार्य, हिंदी विभाग, राँची विश्वविद्यालय।
प्रकाशन : ग्यारह उपन्यास, दो नाटक, एक एकांकी, दो प्रहसन, एक जेल संस्मरण, एक कहानी संग्रह, चार शोध ग्रंथ तथा दो संपादित ग्रंथ।
संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

बँदरिया की रस्सी काट डाली। उन्होंने य[illegible] सोचा था कि रस्सी के कटते ही बँदरिया ज[illegible] भाग जाएगी। लेकिन वह भागी नहीं। रस्सी [illegible] कटते ही वह उछलकर कल्लू के कंधे पर [illegible] बैठी। शायद अब तक उसे आभास हो गया [illegible] कि इस घर में केवल कल्लू ही उसका अप[illegible] है।

अम्माजी खिसियाकर अपनी कोठरी [illegible] तरफ चली गईं। जाते-जाते वह कल्लू [illegible] धमका भी गईं, ''जब तक तू इसे यहाँ से भ[illegible] नहीं देता, तेरा दाना-पानी बंद रहेगा इस [illegible] में।''

यह सुनते ही बँदरिया एक बा[illegible] खोंखियाकर अम्माजी की तरफ लपकी। कल[illegible] ने उसे तुरंत पकड़ लिया। बँदरिया के [illegible] व्यवहार से अम्माजी और बड़बड़ाने लग [illegible] और बच्चे ताली बजा-बजाकर अपनी दा[illegible] को लुलुवाने लग गए।

कल्लू के ऊपर अम्माजी की बात [illegible] कोई असर नहीं पड़ा। वह अपनी बँदरिया [illegible] साथ बीच आँगन में बैठा रहा। उसने अप[illegible] भतीजी कंतो से कहा, ''कंतो, इस बँदरिया [illegible] नाम भी 'कंतो' ही है। अब इस घर में आज [illegible] दो-दो बँदरिया रहेंगी।''

कंतो मचल उठी। उसने अपनी दादी [illegible] डंडा उठाकर अपने चाचा को धमकाना चाह[illegible] यह देखते ही बँदरिया खोंखियाने लग गई। कं[illegible] डर के मारे पीछे हट गई।

कल्लू 'हो-हो' कर हँसने लग गया।

''कंतो, अच्छा, तू ही बता कि इस[illegible] क्या नाम रखना चाहिए?'' कल्लू ने पूछा।

कंतो ने कुछ सोचकर कहा, ''चाच[illegible] इसका नाम 'कल्लो' रख दो, 'कल्लो रानी'।

कल्लू को लगा कि कंतो ने जानबूझक[illegible] शैतानी की है और उसके नाम से मिलते-जुल[illegible] नाम का ही प्रस्ताव कर दिया है। इसलिए व[illegible] कंतो को पकड़ने के लिए लपका। कंतो [illegible] वहाँ से फुर्र हो गई, मगर बाकी बचे ब[illegible] नाच-नाचकर तालियाँ बजाते हुए गाने ल[illegible] गए—

'इस घर में आई एक बँदरिया
बनकर कल्लू चाचा की दुलहनिया!'

यह सुनते ही अम्माजी फिर अपनी कोठरी से बाहर निकल आईं। उन्होंने बच्चों को डाँटकर भगा देना चाहा। पर बच्चों की यह तुकबंदी सुनकर वह भी रस लेने लग गईं। परिवार के अन्य सदस्य भी आँगन में जमा हो गए और बच्चों के इस सामूहिक गान का आनंद उठाने लग गए। कल्लू खुद भी इस गीत को सुनकर जोर-जोर से हँसने लगा था।

इस प्रकार एक घंटे के भीतर ही बँदरिया का नामकरण संस्कार भी संपन्न हो गया। अब वह 'कल्लो रानी' के नाम से ही पुकारी जाने लग गई। धीरे-धीरे बँदरिया भी समझने लग गई कि लोग उसीको 'कल्लो रानी' कह रहे हैं।

सबको खुश देखकर अब अम्माजी का गुस्सा भी शांत हो चला था। वह भीतर गईं और दो केले लेकर निकलीं। बँदरिया का ध्यान कहीं और था। अम्माजी ने पुकारा, "कल्लो रानी, इधर आओ।"

कल्लो ने मुड़कर अम्माजी की तरफ देखा। अम्माजी केले देने के लिए उसे अपनी ओर बुला रही थीं। कल्लो ने एक बार कल्लू की तरफ देखा, मानो वह उससे केले लेने की अनुमति माँग रही हो।

कल्लू ने हँसते हुए कहा, "जा, ले आ केले। डर मत। वह मेरी अम्मा है।"

ऐसा लगा कि कल्लू की बात कल्लो ने समझ ली है। वह अम्माजी के पास निर्भय होकर पहुँच गई और दोनों केले लेकर उनके पास ही खाने लग गई।

इस प्रकार पहले ही दिन इस घर में कल्लो रानी का जैसा तगड़ा विरोध हुआ वैसा ही उसका भव्य स्वागत भी हो गया। दूसरे दिन से धीरे-धीरे उसे सबने स्वीकार करना शुरू कर दिया।

कल्लू प्रतिदिन तड़के ही जग ज़ाता और घूमने के लिए गुलाब बाग की तरफ निकल जाता। अब कल्लो भी उसके साथ घूमने के
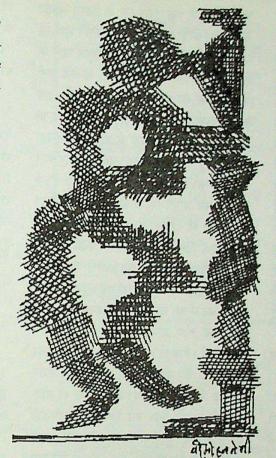
लिए जाने लग गई। कल्लो रानी मजे में कल्लू के कंधे पर अपना आसन जमा लेती। गुलाब बाग पहुँचकर वह पेड़ों पर चढ़ जाती और खूब उछल-कूद करती। फलदार पेड़ों पर बैठकर मजे में वह कच्चे-पक्के फलों को तोड़ती। पहले वह उन्हें चखती। जो फल पसंद आता उसे वह खाती और बाकी को चखकर फेंक देती। जब पेट भर जाता तब वह कलाबाजियाँ दिखाना शुरू कर देती। गुलाब बाग में उसका खूब मन लगता था।

कभी-कभी कल्लू साइकिल लेकर भी निकलता था। तब साइकिल की हैंडिल पर कल्लो बहुत आराम से बैठ जाया करती थी। अब उसके गले में रस्सी नहीं रहा करती थी। इसके बावजूद उसने कभी भागने की कोशिश नहीं की थी। वह बराबर कल्लू के आसपास ही बनी रहती। छेड़नेवालों पर वह खोंखियाती थी और प्यार करनेवालों के साथ प्यार से ही पेश आती थी।

धीरे-धीरे कल्लो का बाहर आना-जाना बहुत कम हो गया। वह घर के भीतर ही घूमती फिरती। अब न उससे कोई डरता था और न उसे ही किसीसे कोई भय मालूम होता था। वह किसीके भी कमरे में घुस सकती थी! उसपर किसी तरह की कोई रोक-टोक नहीं थी। मगर, वह रसोईघर तथा पूजाघर में स्वयं कभी नहीं जाती थी। अम्माजी जब पूजा कर रही होतीं तो कल्लो रानी पूजाघर के दरवाजे के सामने चुपचाप बैठ जाती।

एक दिन हँसी-हँसी में अम्माजी ने कल्लो से पूछा, "कल्लो रानी, तुम ऐसे घंटी बजा सकती हो?"

कल्लो रानी ने स्वीकृति में अपना माथा हिला दिया। अम्माजी ने कल्लो को घंटी थमा दी। सबको यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि उस दिन से कल्लो रानी ने हर दिन पूजा में यथासमय घंटी बजाना शुरू कर दिया। इस घटना के बाद कल्लो रानी घर की एक अनिवार्य सदस्या बन गई।

अब कल्लो रानी ने घर के कामों में भी हाथ बँटाना शुरू कर दिया। कोई बोलता, 'कल्लो, जरा कंघी तो ले आओ।' कल्लो उछलती हुई जाती और कंघी लाकर दे देती। किसीने कहा, 'कल्लो, जरा आईना तो ले आओ।' कल्लो आईना लेकर आ जाती। यह एक दूसरी बात थी कि आईना लाने के पहले वह अपनी सूरत आईने में देखना कभी नहीं भूलती। किसी बच्चे ने कहा, 'कल्लो, मेरी गंजी लाकर दे दो।' कल्लो कपड़ों के बीच से गंजी छाँटकर ले आती। किसी बहू ने कहा, 'कल्लो, जरा अम्माजी को बुला दो।' कल्लो अम्माजी की साड़ी पकड़कर खींचना शुरू कर देती और अम्माजी समझ जातीं कि किसीने उन्हें बुलाया है। इस प्रकार कल्लो रानी घर के छोटे-मोटे काम भी करने लग गई। धीरे-धीरे उसे यह मालूम होता चला गया कि किस चीज

को क्या कहते हैं और कौन सी चीज कहाँ रखी जाती है।

घर के सभी लोग अब कल्लो से प्रसन्न रहने लग गए। अम्माजी तो उसपर बिलकुल अवलंबित हो गई थीं।

दोपहर को जब सबका खाना-पीना हो जाता तब कल्लो रानी की माँग अचानक बढ़ जाया करती थी। घर की बहुएँ उसे पुकारने लगतीं, 'कल्लो रानी, कल्लो रानी! जरा इधर तो आना। मेरे बालों में जूँ बहुत हैं। जरा इन्हें निकालकर मार तो।' कल्लो रानी इस मामले में एक नियम का बड़ी कट्टरता से पालन करती। वह उस बहू की सेवा में पहले हाजिर होती जिसकी आवाज उसे पहले सुनाई पड़ती। एक बहू से मुक्त होने के बाद वह दूसरी बहू की सेवा में जुट जाती।

एक दिन अकेले में कल्लो रानी मुनिया का फ्रॉक पहनने की कोशिश करने लग गई। अम्माजी ने देखा तो हँसते-हँसते उनका बुरा हाल हो गया। उन्होंने अपनी बहुओं को अपने पास बुला लिया और कल्लो का तमाशा दिखाते हुए कहा, ''जरा कल्लो का नाटक तो देख लो, अब यह भी फ्रॉक पहनेगी। अब यह नंगी नहीं रहेगी।''

सबको हँसते देखकर कल्लो रानी कुछ लजा सी गई। वह फ्रॉक को फेंककर छत पर जा बैठी। अम्माजी के बहुत समझाने-बुझाने पर ही वह ऊपर से नीचे उतरी।

उस दिन अम्माजी ने कल्लो रानी के लिए शाम तक एक जोड़ा फ्रॉक तैयार कर दिया। अगले दिन से कल्लो रानी का फ्रॉक अम्माजी खुद अपने हाथ से हर दिन सुबह बदलने लग गईं।

घर के सब लोगों की तरह अब कल्लो रानी भी कपड़ों का महत्त्व समझने लग गई थी। कल्लो रानी को सबका सम्मान और प्यार भी मिलने लग गया। अब वह बच्चों के लिए तमाशा न होकर उनकी हमजोली बन गई थी। स्कूल से लौटते ही बच्चे सबसे पहले कल्लो की ही खोज-खबर लेते। बँदरिया होने के बावजूद आज तक उसने घर के किसी सामान को तोड़ा-फोड़ा नहीं था। इधर उसने एक नई आदत डाल ली थी। बच्चे जब स्कूल जाने के लिए घर से निकलने लगते तो कल्लो रानी उनके साथ घर के दरवाजे तक जाती। जब बच्चे स्कूल से लौट आते तो वह उनके स्वागत के लिए दरवाजे पर पहले से ही उपस्थित रहा करती। वह कभी किसीका हलका बस्ता सँभाल लेती तो कभी किसीकी पानी की बोतल। उस समय ऐसा लगता कि बच्चों का घर से बाहर रहना उसे भी अखर जाया करता था।

एक दिन एक विचित्र घटना हो गई।

दोपहर का समय था। छोटी बहू किसी काम से छत पर चली गई थी। उसका तीन महीने का बच्चा चारपाई पर अकेला लेटा हुआ था। सभी लोग अपने-अपने कमरों में आराम कर रहे थे। कल्लो रानी तेल की मलिया लेकर बच्चे की चारपाई के पास पहुँच गई। उसने मलिया से तेल लेकर बच्चे के शरीर पर ठीक वैसे ही लगाना शुरू कर दिया जैसे अम्माजी अपने पोते को लगाया करती थीं। तेल लगाने से बच्चा जग गया और जोर-जोर से रोने लग गया।

बच्चे के रोने की आवाज सुनते ही छोटी बहू दौड़ी-दौड़ी छत से नीचे आ गई। चारपाई पर अपने मुन्ने के पास कल्लो को देखते ही वह चीखने-चिल्लाने लग गई, ''हाय मेरा बच्चा! अरे कोई बचाओ उसे, नहीं तो यह बँदरिया उसे मार डालेगी!''

छोटी बहू का इस तरह चीखना-चिल्लाना कल्लो को बहुत बुरा लगा। वह बैठी-बैठी छोटी बहू पर खोंखियाने लग गई। उसने मुन्ने को उठाकर अपनी छाती से लगा लेना चाहा। यह देखते ही छोटी बहू को यह संदेह हो गया कि कल्लो उसके बच्चे को दबाकर मार डालेगी। इधर कल्लो को यह लगा कि छोटी बहू उसके काम में बाधा डाल रही है, इसलिए उसने बच्चे को चारपाई पर लिटा दिया और फिर वह अपने दाँत चिहारती हुई छोटी बहू की ओर दौड़ पड़ी। डर के मारे छोटी बहू चिल्लाती हुई अम्माजी की कोठरी की तरफ भाग खड़ी हुई। वह दरवा[जे] पर पहुँचकर चिल्ला-चिल्लाकर रोने लग [गई], ''अम्माजी, अम्माजी! देखिए, यह बँदरिया [मेरे] बच्चे को मारे डाल रही है।''

अम्माजी ने अपने कमरे से बा[हर] निकलकर देखा। कल्लो रानी बच्चे को ठी[क] वैसे ही तेल लगा रही थी जैसे वह स्वयं अ[पने] पोते को लगाया करती थीं। बच्चा भी वैसे [ही] रो रहा था जैसे वह तेल लगवाते समय बरा[बर] रोता था। यह देखकर तो अम्माजी हँसने ल[गीं] गईं। पर अपनी छोटी बहू की हालत को देख[ते] हुए उन्होंने अपनी हँसी दबा ली।

उन्होंने कल्लो से कहा, ''कल्लो, [तू] क्या कर रही हो? अब तू वहाँ से हट जा।''

कल्लो रानी चुपचाप वहाँ से मलि[या] उठाकर हट गई।

इसके बाद तो छोटी बहू ने घर में [एक] तूफान ही खड़ा कर दिया। उसका पति [राजू] शाम को छह बजे के आसपास अपने दफ्त[र से] लौटा। छोटी बहू ने अपने पति के कान अ[च्छी] तरह भर दिए। उसने न तो अपनी अम्मा[जी से] कुछ पूछा और न किसीसे। बस वह बीच आँ[गन] में आकर जोर-जोर से गरजने लग गया, ''[अब] मैं इस घर में नहीं रह सकता। इस घर में य[ा तो] यह बँदरिया रहेगी या मैं रहूँगा। यह स[ाली] बँदरिया तो आज मेरे बेटे को मार ही डाल[ती]। भगवान् की दया से मुन्ने की माँ ने उसे [ऐन] वक्त पर देख लिया, नहीं तो अब तक उ[सकी] गोद सूनी ही हो गई होती।''

अम्माजी ने राजू को सही जानकारी दे[कर] उसे समझाने का प्रयास किया; मगर राजू [पर] तो मानो भूत ही सवार हो गया था। वह अ[नाप-शनाप] ही बके चला जा रहा था। इसी बीच कल्लू [भी] आ गया। अब राजू ने कल्लू को ही गालि[याँ देना] शुरू कर दिया। एक बार राजू अपने छोटे [भाई] कल्लू को मारने के लिए भी लपका। यह दे[खते] ही कल्लो ने उछलकर राजू की धोती ही प[कड़] ली। इसके बाद तो राजू का पारा सातवें आस[मान] पर ही जा पहुँचा।

कल्लू ने अब तक अपनी ओर से

भी नहीं कहा था। अब कल्लो उसके पास ही जमीन पर मोरचा सँभालकर बैठ गई। वह हर तरह के आक्रमण के मुकाबले के लिए तैयार नजर आ रही थी। उसने भी संभवतः यह समझ लिया था कि उसके ही कारण राजू ने यह वितंडा मचा रखा था।

अम्माजी ने कल्लू से कहा, ''बेटा, अब तू ही गम खा ले, नहीं तो इस घर में बड़ी तबाही मच जाएगी।''

कल्लू ने झुँझलाकर पूछा, ''तुम ही बताओ, अम्मा, कि मैं क्या करूँ? क्या इस बेजुबान को जहर दे दूँ?''

''नहीं, बेटा, नहीं। तू ऐसा पाप क्यों करेगा? तू इसे किसी ऐसी जगह में छोड़ आ, जहाँ से यह लौट नहीं सके। इसकी आँखों पर तू पट्टी बाँध देगा तो यह नहीं लौट पाएगी। जानवरों को अपने घर की पहचान आदमी से कहीं ज्यादा होती है, इसलिए कुछ ऐसा ही करना पड़ेगा।''

दूसरे दिन तड़के ही कल्लू कल्लो रानी को लेकर घर से कब निकल गया, यह अम्माजी को भी पता नहीं चल सका।

कल्लू ने अपनी साइकिल निकाली। उसने कल्लो को खूब पुचकारा और सहलाया। कल्लो साइकिल की हैंडिल पर आकर बैठ गई। कल्लू साइकिल चलाता हुआ एक निर्जन बगीचे में पहुँच गया। उसने कल्लो रानी के माथे पर एक थैलीनुमा टोपी डाल दी और उसकी डोरी उसके गले से बाँध दी। कल्लो छटपटाने लग गई; क्योंकि उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

कल्लो की छटपटाहट और उसकी उछल-कूद देखकर कल्लू की आँखों में आँसू छलछला आए। आँसुओं को अपनी कमीज की बाँह से पोंछते हुए कल्लो रानी को अकेले बगीचे में छोड़कर कल्लू अपनी साइकिल पर सवार हो गया।

कल्लो अपने मालिक को खोंखिया-खोंखियाकर खोजने लग गई।

उस रोज पूरे दिन सबको कल्लो की कमी घर में खटकती रही। खासकर अम्माजी को

उन्होंने कल्लो को बच्चे की तरह आज पहली बार अपनी गोद में उठा लिया और उसे पुचकारना तथा सहलाना शुरू कर दिया। बंदर रोते हैं कि नहीं, यह तो अम्माजी को पता नहीं था, पर न जाने क्यों उन्हें ऐसा लगा कि कल्लो के नेत्र पनीले हो चले थे। कल्लो के पनीले नेत्रों को देखते ही अम्माजी द्रवित हो उठीं और उनकी भी दोनों आँखें बहने लग गईं।

कल्लो की बहुत याद आ रही थी। स्कूल जाते वक्त बच्चे भी पूछ रहे थे कि कल्लो कहाँ गई है? स्कूल से लौटने पर जब उन्हें कल्लो कहीं नजर नहीं आई तब सभी बच्चों ने अपनी दादी को घेर लिया। अम्माजी उन्हें कुछ-कुछ जवाब देकर टालने की कोशिश करती रह गईं। कल्लू तो बिलकुल मौनी बाबा ही बन गया था। उसने बच्चों के किसी भी सवाल का कोई जवाब नहीं दिया।

अगले दिन सुबह को अम्माजी जब पूजा करने पूजाघर में पहुँचीं, उन्हें कल्लो की याद आ गई। उन्हें लगा कि कल्लो यहीं कहीं आसपास होगी और अभी तुरंत प्रकट हो जाएगी। मगर कल्लो को तो उन्होंने स्वयं घरनिकाला दे दिया था, यह याद करते ही उनका मन दुःखी हो गया। बहुत मुश्किल से उन्होंने अपनी पूजा समाप्त की। जब घंटी बजाने की बारी आई तो उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लग गए।

उस दिन अम्माजी ने न दिन को कुछ खाया और न रात को ही कुछ लिया। बहुओं ने जब-जब खाने के लिए पूछा तो झूठ कह दिया, ''आज मेरा पेट ठीक नहीं है।''

कल्लो रानी के अभाव में पूरे घर में एक अजीब सी उदासी छा गई। लगता था कि घर में किसीकी मौत हो गई है। रात को सोते समय अम्माजी सोचनी लग गईं, 'पता नहीं बेचारी कल्लो कहाँ होगी?...वह किस हाल में होगी?...वह इस समय क्या कर रही होगी?...उसने अपनी टोपी कैसे खोली होगी?...उसकी टोपी खुली भी होगी कि नहीं?...यह मैंने अच्छा नहीं किया। यह मुझसे कैसा पाप हो गया!...' यही सब सोचते-सोचते कब नींद आ गई, उन्हें यह भी मालूम नहीं हो सका।

अम्माजी घर में सबसे पहले चारपाई छोड़ देती थीं। जगते ही वह सामनेवाले दरवाजे का ताला खोलने पहुँच जाती थीं। उस दिन भी रोज की तरह अम्माजी ताला खोलने के लिए दरवाजे के पास पहुँचीं। उन्होंने ताले में चाबी डाली तो उन्हें लगा कि बाहर दरवाजे से सटकर कोई खड़ा है और वह दरवाजे को खुरचने का प्रयास कर रहा है। उन्होंने सोचा कि कोई कुत्ता होगा।

अम्माजी ने ताला खोलकर दरवाजे के दोनों पल्लों को जोर से झटक दिया। पल्लों के खुलते ही कल्लो रानी भीतर आ घुसी और वह अम्माजी की साड़ी पकड़कर जमीन पर बैठ गई। उसने अम्माजी के पैरों पर अपना माथा ठीक उसी प्रकार टेक दिया जिस प्रकार अम्माजी हर दिन पूजा के अंत में हनुमानजी के चरणों पर अपना माथा टेक दिया करती हैं। अम्माजी को ऐसी प्रतीति हुई कि कल्लो अपने अपराध के लिए उनसे माफी माँग रही है।

अम्माजी पिघल पड़ीं। उन्होंने कल्लो को बच्चे की तरह आज पहली बार अपनी गोद में उठा लिया और उसे पुचकारना तथा सहलाना शुरू कर दिया। बंदर रोते हैं कि नहीं, यह तो अम्माजी को पता नहीं था, पर न जाने क्यों उन्हें ऐसा लगा कि कल्लो के नेत्र पनीले हो चले थे। कल्लो के पनीले नेत्रों को देखते ही अम्माजी द्रवित हो उठीं और उनकी भी दोनों आँखें बहने लग गईं।

□

'आश्रय', नई नगड़ा टोली,
चौथी गली (पूरब), राँची-८३४००१

कविताएँ

मुझे मेरे विचार की परीक्षा देनी है!

(स्व.) श्रीकांत जोशी

सुबह की चाय रोज की तरह है पर वह बात नहीं
सुबह की किरण में भरपूर रोशनी है पर वह बात नहीं
कुछ जादा ही ताप लिये हैं विगत महीनों के[1] आघातों से दौड़ती हवाएँ
परिवार और परिवेश के सुंदर मासूम और खेलते बच्चे
मुमकिन नहीं, इन दिनों मुझे हँसाएँ, गुदगुदाएँ।
सुबह से दुपहर
दुपहर से शाम
और शाम से देर रात तक मिलनेवाली खबरें
जाने कितनों की वीरगति की उत्तर दिशा में जानकारी दे जाएँ!
अपने-अपने मुकामों पर
अपने-अपने काम करते हुए भी
अपने-अपने मुकामों और कामों से विमन
लाखों करोड़ों जन किससे क्या कहें
क्या करें
कहाँ जाएँ!
वक्त ने अचानक ही मुल्क के मैदानी और समुद्री हलकों को—
हिमालय के संकटों से दबोचा है,
एक जलजले ने, एक उथल-पुथल ने
और हमारी भयंकर दायित्वहीनता ने
उसके अभ्र-भेदी मस्तक को उस जगह खरोंचा है—
जहाँ से वह पश्चिमांत और पूर्वांत तक फैली भुजाओं से, हमें—
सुरक्षा और अस्तित्व देता रहा।

□

मेरे लिए यह वारदात वह चुनौती है
जो शताब्दी के दौर में समय-सचेत करने की खातिर
गाहे-बगाहे मिलती ही है।
स्वाधीन देश शाश्वत जागरण होते हैं।
गलत और क्रूर निगाहों को दुरुस्त और नम्र रखते हैं।

□

मुझमें कुछ है कि मुझे मेरी जरूरत
गंभीर अस्वस्थता के बावजूद
उत्तर सीमांत पर महसूस होती है।
मुझे उन बाशिंदों की शर्मनाक जानकारी है
जिनकी पेशानियों पर इन दिनों भी कोई सलवट नहीं,
जिनकी नींदें बे-खलल हैं,
जिनमें अंशतः भी करवट नहीं।
जिनके पास धन-दौलत शराब औरत
और गुप्तांगों की स्वभावज गालियाँ हैं—
शेरो-शायरी है, गजल है, कविता है—
एक दायित्वहीन जिंदगी के सिलसिले हैं—
जिनके पास मुझ जैसों की वैचारिकता को जलील करनेवाले कुतर्क हैं—
खरीदे हुए लोगों के जखीरे हैं—
जिनके पास सुरक्षा है, छाया है और एक खुदगर्ज राह है—
—प्रगतिशून्य प्रगति की परंपरा की।
मुझे शत्रु से उतना भय नहीं
जितनी आशंका है—
इन गृह-भंजकों से
इन राष्ट्र और राष्ट्र-जन हंताओं से।

इस वक्त वक्त नहीं मेरे पास
मुझे इन लोगों से नहीं खुद से बात करनी है,
मुझे अंतश्चेतनाहीन कुतर्कियों की नहीं
सुदर्शन चक्रों की राह चुननी है।
मैं न चल सकता हूँ, न ठहर सकता हूँ
न समझ पा रहा हूँ कि क्या कुछ कहूँ?
जिन ऊँचाइयों पर मेरे देश के
हिंदू मुसलमान सिख ईसाई और तमाम जन
—कुरबान हो रहे हैं
उन जगहों पर मैं क्या करूँ?

□

बेशक एक विचार एक सच्चे मित्र की तरह
—घूमता-घामता मेरे पास आया है
मुझे खुशी है मेरी अंतर्यातना को समझने में
उसने समय नहीं गँवाया है।
यह कि मैं यदि किसी भी तरह
युद्धाक्रांत क्षेत्रों की ऊँचाइयों पर जा सकूँ
तो शत्रु की कम अज कम एक गोली बरबाद कर सकता हूँ
और किसी जादा जरूरतमंद सेनानी की जिंदगी की वजह बन सकता हूँ।
कहते हैं विचार यदि किसी सच से जागता है
तो गहन गंभीर गुफाओं से भी—
बाहर निकल जाता है
समय को झकोरता है
ब्रह्मांड को जगाता है
वह कर्तुम-अकर्तुम सामर्थ्य बनकर आता है।
मुझे मेरे विचार की परीक्षा देनी है।
मुझे उत्तर के शिखरों के—
हिमाच्छादित भू-भागों पर, नए युग के—
पांडवों की तरह शरण लेनी है।[2]

---

१. कारगिल युद्धकाल।
२. विगत पाकिस्तानी आक्रमण-क्षणों में रचित—जून १९९९।

□

जवाहरगंज, खंडवा-४५०००१

सुनीता शर्मा

जिन हाथों से

जिन हाथों से संहार किया
उन हाथों से
दे सकता था सहारा भी
किंतु
अपनी ही इच्छाओं के
जंगल में उलझे
आदमी को
रास्ता कौन दिखाए।

□

प्रतीक्षा की सीमा

प्रतीक्षा की सीमा
लाँघकर
चिर प्रतीक्षित
मिलने भला
क्यों आता
मिलना तो
इति है
प्रेम की।

□

द्वार

कैसा नासमझ है
ये द्वार
बाट जोहता है
उन कदमों की
जो इसे लाँघने
कभी नहीं आएँगे।

□
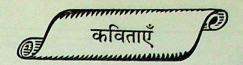
बर्फ की मूर्ति

मूर्ति थी
बर्फ की थी
स्वयं पिघल गई लेकिन
बही नहीं भावना में।

□

सवालात

कुछ ठहरे हुए सवालात
यूँ अड़े हैं
जैसे तूफाँ के बाद
टूटे दरख्तों के बीच
खड़ा हो
पुराना विशालकाय
वटवृक्ष कोई कोई।

□

पत्नी हलधर की

हल चलाते हुए
गरम पसीना अचानक
बदल गया
शीतल ओस में
नहीं
यह कमाल मौसम का
नहीं था
पत्नी की एक
झलक का था।

□

२३०, पॉकेट सी ७, सेक्टर-७,
रोहिणी, दिल्ली-११००८५

तृष्णा

रत्न रायचंदानी

कभी-कभी,
मैं आम आदमी बन जाता हूँ
किस्मत टटोल सोचता हूँ,
ईश्वर इतना निर्दयी नहीं।
मेरा अंत शायद नहीं होगा
लेकिन यह तो खुशफहमी है।
सांसारिक 'वस्तु' शाश्वत नहीं,
सृष्टि तो नाशवान् है
यह जानते हुए भी
मैं आम आदमी बन जाता हूँ।

फुसलाकर मन को मनाता हूँ,
पहाड़ जैसी यह उधार जिंदगी
काश एक चिरकाल दुःस्वप्न हो।
मैं जागूँ परिस्तान का राजकुमार बनकर।
'सचेतन' ऐसा कहाँ?
केवल मानस मन की अनंत लालसा है
एक बार फिर
मैं आम आदमी बन जाता हूँ।

सर्वगुण-संपन्न इच्छा धारे
या जादुई चिराग के जिन्न पर आश्रित
कर गुजरूँ जो चाहूँ,
पागल मन, यह तो किस्से-कहानी तक ही
सीमित;
या फिर अहं की तुष्टि मात्र।
जानता हूँ, सभी व्यर्थ तृष्णाएँ हैं।

लेकिन क्या करूँ,
कभी-कभी मैं आम आदमी बन जाता हूँ।

□

३-के, सी.पी.डब्ल्यू.डी. कॉम्पलेक्स,
वसंत विहार, नई दिल्ली-११००५७

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF PUBLICATION
CIVIL LINES, DELHI-110054

OCTOBER, 2000 INCLUSIONS FOR YOUR SHELF OF GOVT. OF INDIA PUBLICATIONS & PERIODICALS

S.NO.	YEAR OF PTG. & TITLE	SYMBOL	PRICE Rs. P.
1.	**Statistical Abstract India 1999** (Printing 2000)	PCSO.1.99	Rs.400/-
2.	**National Accounts Statistics 2000** (Printing 2000)	PDOS.13.2000	Rs.180/-
3.	**Combined Finance & Revenue Accounts of Union & State Govt. in India for the year 1987-88** (Printing 2000)	PAG.13.2000	Rs.253/-
4.	**Consumer Price Index Numbers (For Industrial Workers) 1982=100 ANNUAL REPORT 1999** (Printing 2000)	PDL.532	Rs.150/-
5.	**Statistics of Mines in India.** Vol.II-Non-coal 1993	PCIM.25.93.II	Rs.940/-
6.	**The Supreme Court Reports (1996) Supp.3 S.C.R.**	PSC.4.1996 Supp. (III)	Rs.150/-
7.	**Monthly Abstract of Statistics Vol.53 No.6 June 2000.**	PCSO.26.6.2000	Rs.300/-
8.	**Census of India 1991. Series-7Gujrat. Part III B-B Series. Economic Tables.** (Printing 2000)	PRG.1006 Vol.5 Part IIIB (Guj.)	Rs.107/-
9.	**Census of India 1991. Series 25 - Uttar Pradesh. Part III B-B Series. Economic Table B-14 (F)**	PRG.1011 Vol.5 (U.P.)	Rs.135/-
10.	**Census of India 1991. Series 11 - Karnataka. Part III B-B Series. Economic Tables. Vol. - 4** (Printing 2000)	PRG.1008 Vol.4 (Karnataka)	Rs.92/-

Postage as per following details should be added while placing the order by post :-

Cost of Books	Postage
Upto Rs. 20/-	30% of cost (to the nearest rupee)
Rs. 21/- to Rs. 40/-	Rs. 10/-
Rs. 41/- to Rs. 50/-	Rs. 12/-
Registration fees (optional)	Rs. 17/-
Above Rs. 50/- (Books sent by Regd. Post)	Total postage borne by the Department

Books upto Rs. 200/- may also be sent by V.P.P. If specifically so ordered.

Latest Volumes of the following are easily accessible :-

(i) Indian Trade Journal, Index Number of Whole-sale Prices in India, Supreme Court Report, Indian Labour Journal, Agricultural Situation in India, Monthly Statistics of Foreign Trade of India Vol. I & II, Monthly Abstract of statistics, Indian Law Reports (Delhi Series), Krishi Sameeksha (Hindi), Laghu Udyog Samachar (Bilingual), Sharkara, Indian Minerals, Bhasha (Hindi), Social Defence Journal, Indian Journal of Criminology and Criminalistics & Bulletin of Agriculture Prices
(ii) Student's Career Guides
(iii) Project Profiles 8 Vols. (Eng. & Hindi)
(iv) Civil List Indian Administrative Services, 2000
(v) India Police Service Civil List, 2000
(vi) Census of India.
(vii) Export-Import Policy.
(viii) Gazette of India (All Parts) & Delhi Gazette (available only at Delhi & Calcutta Office)
(ix) शब्दकोष

NOTE : This Department also deals in Advts. related to change of Name, Change of Religion and Adoption etc. in Gazette of India.

Orders for procuring publications & periodicals by post. and queries relating thereto, may be sent to :-

CONTROLLER
DEPARTMENT OF PUBLICATION
CIVIL LINES, DELHI-110054.
TEL : NO. : 3962527 (Direct)
Fax No.: 011-3967846
PBX No.: 3967640, 3967823, 3963302, 3967689

Some of our sale counters : (i) Kitab Mahal, Baba Kharag Singh Marg, State Emporia, New Delhi Ph : 3363708 (ii) New C.G.O. Building, C.G.O. Complex, New Marine Lines, Mumbai-400 020 (iii) K.S. Roy Road. Calcutta-700 001 Ph : 2483813

davp 2000/ 414
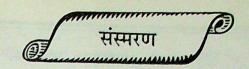
काव्यालोचक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

✍ पुष्पिता

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने, साहित्य के क्षेत्र में जिनकी ख्याति कवि 'अज्ञेय' के नाम से है, ज्यादातर आलोचनाएँ स.ही. वात्स्यायन के नाम से लिखी हैं। अज्ञेय प्रगतिवादोत्तर साहित्य संसार में नई काव्य-प्रवृत्ति के पक्ष-पोषक और—यह कहते हुए भी कि 'प्रयोग का कोई वाद नहीं होता'—'प्रयोगवाद' के प्रवर्तक के रूप में उभरते हैं। अज्ञेय के काव्य ने और काव्य संबंधी उनकी मान्यताओं ने साहित्यकारों की नई पीढ़ी को अत्यधिक प्रभावित किया है।

अज्ञेय का काव्यालोचक रूप मुख्यतः एक चिंतक का है। व्यावहारिक समीक्षा उन्होंने बहुत कम की है और जो की है उसमें उनकी मान्यताओं का ही विनियोग मिलता है।

उनकी प्रथम आलोचना पुस्तक 'त्रिशंकु' में संकलित लेख 'रूढ़ि और मौलिकता' टी.एस. इलियट के 'ट्रेडिशन एंड इंडुविजुअल टैलेंट' का छायानुवाद है। वस्तुतः अज्ञेय के आलोचक मानस को निर्मित करने में टी.एस. इलियट के प्रभाव की भूमिका अहम है।

अज्ञेय की चिंताओं के केंद्र में है 'व्यक्ति'। प्रगतिवाद का समाजाग्रह उन्हें रास नहीं आता। व्यक्ति-केंद्रित होने के कारण अज्ञेय अनुभूति को महत्त्व देते हैं। 'अनुभूति की प्रामाणिकता' ही उनके लिए रचना की कसौटी है। 'परिस्थिति और साहित्यकार' में एक स्थल पर वे कहते हैं—'ज्यों-ज्यों व्यक्ति अपनी अनुभूति को समाज की अनुभूति पर घटित करता चलता है, अपनी अनुभूति को उसके प्रकाशों में देखता चलता है, त्यों-त्यों उसका वह अंश, जिसे वह अभिन्नतम अपना, मौलिक, विशिष्ट, अभूतपूर्व समझता है, छोटा होता चलता है। छोटा होने के साथ-साथ वह अधिक महत्त्वपूर्ण भी होता चलता है, क्योंकि वह व्यक्ति की मौलिकता का घनीभूत रस है, व्यक्तित्व का प्राणवायु है। यही अंश है जो परंपरा को गढ़ता है, उसे विकसित और विवर्धित करता है। अभिन्नतम व्यक्तिगत अनुभूति से समूह का अनुभूति-पुंज अधिक समृद्ध और गहरा होता है। वही व्यक्ति की देन है।' इसीलिए अज्ञेय मानते हैं कि 'सामाजिक यथार्थ व्यक्तित्व में से छनकर संप्रेषित होता है, तभी वह वृत्ति का अंग है, सर्जनात्मक संप्रेषण है।'
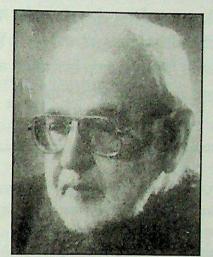
अज्ञेय 'अनुभव की अद्वितीयता' को महत्त्व देते हैं। उनके लेखे, 'अनुभव की अद्वितीयता और अर्थ की साधारणता प्रतिभा के ये दो इष्ट हैं; या कहा जाए, इन दो ध्येयों का योग ही उसका इष्ट है। जिस प्रक्रिया से यह योग सिद्ध होता है वही रचना प्रक्रिया है।' अज्ञेय इलियट की ही तर्ज पर अनुभव करनेवाले भोक्ता और वर्णन करनेवाले रचयिता के पार्थक्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अज्ञेय के ही शब्द हैं, 'कलाकार जितना ही बड़ा होगा उतना ही व्यक्ति जीवन और रचनाशील मन का यह अलगाव भी आत्यंतिक होगा, उतना ही रचना करनेवाला कवि-मानस अनुभव करनेवाले मानव से दूर और पृथक् होगा, उतना ही चमत्कारपूर्ण उन अनुभूतियों और भावों का संगम होगा जो कविता रूपी प्रतिमा की मिट्टी है—फिर चाहे ये अनुभूतियाँ और भाव कवि के निजी अनुभव के, व्यक्तिगत जीवन के पल क्यों न हों। यों कहें कि जितना ही महान् कलाकार होगा उतनी ही उसकी माध्यमिकता परिष्कृत होगी।' अज्ञेय की यह धारणा टी.एस. इलियट के निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत के समतुल्य है।

अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिका में 'राही नहीं, राहों के अन्वेषी' के एकत्र होने का आधार बताया था और 'प्रयोग का कोई वाद नहीं होता' कहते हुए प्रयोगशीलता में आस्था जताई थी। ('तीसरा सप्तक' की भूमिका में नई कविता की प्रयोगशीलता के दो आयामों को उन्होंने गहराई से रेखांकित किया।) 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में उन्होंने नई कविता की मनोभूमि को स्पष्ट किया। 'सत्य' और 'तथ्य' में अंतर करते हुए अज्ञेय ने कहा, ''सत्य' वह 'तथ्य' है, जिसके साथ हमारा रागात्मक संबंध है।' और 'राग वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि-कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है।' इसी

भूमिका में अज्ञेय कविता की भाषा में निरंतर गद्य की भाषा होते जाने के कारण कवि के सामने 'चमत्कार की सृष्टि' की समस्या बनी देखते हैं। नए कवि की रचनात्मक भूमिका को अज्ञेय इन शब्दों में रखते हैं, 'कवि नए तथ्यों को उनके साथ नए रागात्मक संबंध जोड़कर, नए सत्यों का रूप दे, उन नए सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे, यही नई रचना है। इसे नई कविता का कवि नहीं भूलता।'

'तीसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय नई कविता की प्रयोगशीलता के दो आयामों—भाषा और वस्तु—को रेखांकित करते हैं। शब्द के प्रति 'नई, और कह लीजिए, मानववादी दृष्टि' को रेखांकित करते हुए अज्ञेय कहते हैं, 'प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ उपभोक्ता उसे नया संस्कार देता है। इसीके द्वारा पुराना शब्द नया होता है—यही उसका कल्प है। इसी प्रकार शब्द 'वैयक्तिक प्रयोग' भी होता है और प्रेषण का माध्यम भी बना रहता है, दुरूह भी होता है और बोधगम्य भी, पुराना परिचित भी रहता है और स्फूर्तिप्रद अप्रत्याशित भी।' अज्ञेय घोषित करते हैं, 'जिन्होंने शब्द को नया कुछ नहीं दिया है, वे लीक पीटनेवाले से अधिक कुछ नहीं हैं।' अज्ञेय अन्यत्र भी कहते हैं, 'कवि भाषा नहीं, शब्द लिखता है।' कवि की शब्द संपदा की जाँच की कसौटी अज्ञेय के लेखे यह है, 'शब्द से शब्द का संबंध शिथिल है या कसा हुआ, ध्वनि पर आग्रह करता है या रूप पर, मृदु है या धारदार, रंगीन या फीका—इन प्रश्नों का उत्तर पाकर ही हम कुछ निश्चय कर सकते हैं कि कवि कहाँ तक शब्द का धनी है।'

इसीलिए अज्ञेय कवि के उद्देश्य को इन शब्दों में परिभाषित करते हैं, 'केवल शब्द की निहित सत्ता का पूरा उपयोग करना नहीं, बल्कि उसकी जानी हुई संभावनाओं के परे तक उसका विस्तार है।'

कविता की वस्तु पर विचार करते हुए अज्ञेय सबसे पहले विषय और वस्तु को छिनगाते हैं। उनके शब्द हैं, 'यह बिलकुल संभव है कि हम काव्य के लिए नया-से-नया विषय चुनें, पर वस्तु उसकी पुरानी ही रहे, जैसे यह भी संभव है कि विषय पुराना रहे, पर वस्तु नई हो।' अज्ञेय के लेखे मौलिकता का संबंध वस्तु से ही है और इसलिए मौलिकता की कसौटी का क्षेत्र भी यही है। अज्ञेय के शब्द हैं, '…पर विषय केवल 'नए' हो सकते हैं, 'मौलिक' नहीं—मौलिकता वस्तु से ही संबंध रखती है। विषय संप्रेष्य नहीं हैं, वस्तु संप्रेष्य है। नए या (पुराने भी) विषय

अज्ञेय की आलोचना भाषा में संस्कारशीलता का आग्रह है। हालाँकि वे कहते हैं कि वे 'भाषा के क्षेत्र में शुद्धतावादी नहीं', लेकिन स्मरणीय है कि धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' की समीक्षा करते हुए अज्ञेय जिस चीज को सख्त नापसंद करते हैं वह है, 'भारती की भाषा का मिस्त्र संस्कार।' अज्ञेय की भाषा सदैव बौद्धिक भी बनी रहती है, उन्हींके 'निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत' की तरह। इसमें 'देखने' का एक

की, कवि की संवेदना पर प्रतिक्रिया और उससे उत्पन्न सारे प्रभाव जो पाठक-श्रोता-ग्राहक पर पड़ते हैं, और उन प्रभावों को संप्रेष्य बनाने में अवचेतन भी—मौलिकता की कसौटी का यही क्षेत्र है। यही कवि की शक्ति और प्रतिभा का भी क्षेत्र है—क्योंकि यही कवि मानस की पहुँच और उसके सामर्थ्य का क्षेत्र है।'

अज्ञेय ने महसूस किया कि 'नई कविता' को 'शास्त्रीय' आलोचकों से सहानुभूतिपूर्ण तो क्या, पूर्वग्रह रहित अध्ययन भी नहीं मिला है।' अज्ञेय ने महसूस किया कि इसका कारण कसौटियों का झूठा होना है। सखेद लिखा—

'हमारी समझ में रचना का गुण-दोष विवेचन ही आलोचना का अंत नहीं है। जो आलोचना इस गुण-दोष विवेचन से आगे नहीं बढ़ती, उसको लाँघकर रचयिता के मन को नहीं परखती, वह आलोचना नि:सार है, वंध्या है।'

एक काव्यालोचक के रूप में अज्ञेय द्विवेदी युग से अब तक की कविता को इस रूप में विभाजित करके देखना चाहते हैं। यदि युग विभाजन जरूरी ही हो, '…भाषा की खोज, फिर शब्द की खोज और फिर अर्थ की खोज। भाषा की खोज सन् १९२० तक। शब्द की खोज सन् १९३५ तक। अर्थ की खोज सन् १९५० तक।' अज्ञेय का यह दृष्टिकोण भी उनकी भाषा-चेतना का प्रमाण है।

अज्ञेय लय को काव्य का आवश्यक गुण मानते हैं। लय का यह निरूपण उनकी काव्य-मर्मज्ञता का श्रेष्ठ प्रमाण है—

'लय का श्रेष्ठ रूप हृदय की धड़कन के समान होता है, सहजावस्था में वह अलक्षित ही रहती है। तनाव की अवस्थाओं में ही हम अपने हृदय की धड़कन सुनते हैं—उसका सुन पड़ना ही तनाव के होने का सूचक है। काव्य में भी तनाव की अवस्था में लय मुखर हो उठती है, नाटकीय गति या अवरोध की सूचना देती है, ऐसी स्थिति में उसका बदलना, अवरुद्ध होना या टूटता सा जान पड़ना उसका त्याग नहीं, उसकी अतिरिक्त शक्ति का उपयोग है।…लय को छोड़ने पर कविता नहीं होगी। लय को सहज या ओट में रखना उचित है, जितनी वह सहज और सूक्ष्म होगी उतनी ही अंतस्थ और अलक्षित रहेगी। पर अलक्षित होना, न होना नहीं है।'

अज्ञेय की काव्य-मर्मज्ञता का एक कोण 'ह्' 'अर्थ-गर्भ मौन'

उनकी धारणा में भी प्रकट होता है। शब्दांतराल के मौन द्वारा 'अर्थवत्ता का पूरा ऐश्वर्य संप्रेषित' कर सकने को कवि की सामर्थ्य का भरपूर उपयोग मानते हुए अज्ञेय कहते हैं, '...कविता भाषा में नहीं होती, वह शब्दों में भी नहीं होती, कविता शब्दों के बीच नीरवताओं में होती है। और कवि सहजबोध से जानता है कि उससे दूसरे तक पहुँचा जा सकता है, उसके संलाप की स्थिति पाई जा सकती है; क्योंकि वह जानता है कि मौन के द्वारा भी संप्रेषण हो सकता है।'

अज्ञेय के काव्यालोचक स्वरूप का एक सर्वथा अभिनव और मौलिक स्वरूप से साक्षात्कार होता है 'आत्मनेपद' और 'भवंती' सरीखी उनकी कृतियों में, जो एक 'कवि की कार्यशाला' की अंतरंग खबर देती हैं। स्वयं अज्ञेय उसे 'लॉग-बुक' कहते हैं। कवि की रचना प्रक्रिया का यह अंतरंग विश्लेषण कविता की सही समझ विकसित करने में सहायक प्रमाणित होता है।

अज्ञेय ने 'हिंदी साहित्य : एक परिदृश्य' में कतिपय प्राचीन कवियों पर भी सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से विचार किया है। 'संवाद-शैली' में लिखी 'केशव की कविताई' शीर्षक निबंध में अज्ञेय केशव की तुलना अंग्रेजी के कवि बेन जॉनसन से करते हैं और केशव को 'व्यंग्य के सफल कवि' के रूप में देखते हैं।

एक व्यावहारिक काव्य समीक्षक के रूप में अज्ञेय 'रचयिता के मन' को समझने की कोशिश करते हैं। रघुवीर सहाय के प्रथम कविता संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप में' की भूमिका लिखते हुए अज्ञेय रघुवीर सहाय के कवि व्यक्तित्व को इस तरह पहचानते हैं—

'...अपने छायावादी समवयस्कों के बीच 'बच्चन' की भाषा जैसे एक अलग आस्वाद रखती थी और शिखरों की ओर न ताककर शहर के चौक की ओर उन्मुख थी, उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानों पर चढ़ नाटकीय मुद्रा में बैठने का मोह छोड़ साधारण घरों की सीढ़ियों पर धूप में बैठकर प्रसन्न हैं। यह स्वस्थ भाव उनकी कविता को एक स्निग्ध मर्मस्पर्शिता देता है—जाड़ों के घाम की तरह उसमें तात्क्षणिक गरमाई भी है और एक उदार खुलापन भी, जिसमें और जिसको हम 'दे दिए जाते हैं।' '

अज्ञेय का काव्यालोचक व्यक्तित्व बहुकलाविद् है। इसलिए ही निराला की 'राम की शक्तिपूजा' को, प्रसंगवश, अज्ञेय एक भिन्न दृष्टि से देख सकने में समर्थ हुए हैं। 'संवत्सर' में एक स्थल पर उनका अवलोकन है—

' 'राम की शक्तिपूजा' में 'लांग शॉट', 'मीडियम शॉट', 'क्लोज-अप' आदि दृश्य को निकट लाने की और उसके सहारे तनाव पैदा करने की सभी सिनेमाई युक्तियाँ मिल जाएँगी और काल की गति को नियंत्रित करने के 'स्लो-मोशन' और 'फ्रीज' तक के उदाहरण मिल जाएँगे।'

अज्ञेय की आलोचना भाषा में संस्कारशीलता का आग्रह है। हालाँकि वे कहते हैं कि वे 'भाषा के क्षेत्र में शुद्धतावादी नहीं', लेकिन स्मरणीय है कि धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' की समीक्षा करते हुए अज्ञेय जिस चीज को सख्त नापसंद करते हैं वह है, 'भारती की भाषा का मिश्र संस्कार।' अज्ञेय की भाषा सदैव बौद्धिक भी बनी रहती है, उन्हीं के 'निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत' की तरह। इसमें 'देखने' का एक भाव है जो कभी 'बहने' नहीं देता। लेकिन इसके बावजूद, अज्ञेय की आलोचना-भाषा बुद्धि से दीप्त ही नहीं, रस से सिक्त भी है। पौर्वात्य और पाश्चात्य साहित्य के गहन अध्येता अज्ञेय अपने अध्ययन-अनुशीलन का सार-तत्त्व अपनी आलोचना में अपनी तरह से ले आते हैं; लेकिन उनकी भाषा कहीं भी पांडित्य-पीड़ित नहीं प्रतीत होती, उससे चकाचौंध नहीं होती। उसकी प्रभविष्णुता प्रीतिकर लगती है। एक काव्यालोचक के रूप में अज्ञेय हिंदी आलोचना का एक पठनीय पृष्ठ हैं, मननीय भी; उनके लिए भी अनुपेक्षणीय जो उनसे असहमत हैं।

□

हिंदी विभागाध्यक्ष
वसंत महिला महाविद्यालय, राजघाट
वाराणसी-२२१००

साहित्य अमृत परिवार की ओर से
समस्त लेखकों, साहित्यकारों, पाठकों व
हिंदी-प्रेमियों को होली की भीनी-भीनी तथा
गुलाल युक्त शुभकामनाएँ।
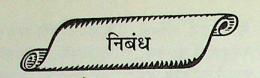
रामकृष्ण परमहंस का महाप्रयाण

कृष्ण बिहारी मिश्र

अरे लेटो, माल है, माल! बड़े भाग से मोहनभोग मिलता है। खा लाज छोड़कर, नहीं पछताता रह जाएगा बिहारी बउड़म। और सुन, रहस्य की बात तुझको बता देता हूँ। साधु का अन्न नुकसान नहीं करता। बलराम साधु है। कितने भाव से मुझे बुलाकर खिलाता है! गरीब बाभन को मोहनभोग! ठाकुर का कौतुक देखकर दुलरुआ नरेन ठठाकर हँसा। देख, हँसता है। स्साला, अब हँसता है। मेरी देहाती बोली से इसे गुदगुदी होती है। वकील का बेटा है। दाने-दाने के लिए मारा-मारा फिर रहा था। कलप-कलपकर दरिद्रता-मोचन का मंत्र पूछ रहा था। माँ ने साले को मोहनभोग मयस्सर करा दिया तो हँसता है। समझता ही नहीं, हुज्जत करता है और ज्ञान छाँटता है। बड़े-बड़ों का गुमान छँट गया माँ के सामने। माँ की महिमा पटवारी बुद्धि की समझ से परे है। मेरी तो देह जलने लगती है पटवारी बुद्धि देखकर। मगर विलायती रंग में रँगे ये छोकरे मेरी देहाती बोली सुनकर हँसते हुए विद्रूप करते हैं। मूरख, माँ की भाषा समझ ही नहीं पाते। केवल तर्क और लड़ाई, यही है इनकी कमाई। और सुन रे मास्टर, तू गंभीर प्रकृतिवाला है। रस का आस्वाद लेना सीख, नहीं तो राख में मिल जाएगी जिंदगी। देख नरेन की शरारत, अपन तो पराया माल कैसे भकोस रहा है, जैसे जीवन में पहली बार मोहनभोग मिला है। और हँसकर मेरे लाटू को लजवा दिया। बेचारा बिना खाए रह जाएगा। कायस्थ का बेटा है, नस-नस में चालाकी भरी है। यही है पटवारी बुद्धि कि कूट-कौशल से गाँव भर की जमीन अपने नाम हो जाय। मैं तो ठहरा गरीब बाभन। सच कहता हूँ तुमसे, मोहनभोग, पायस, संदेश, चड़बड़ी जब सामने देखता हूँ, माँ का अनुग्रह मानकर पत्तल पर टूट पड़ता हूँ। तू ही सोच जरा, मूढ़ी-गुड़ और चिउड़ा चबानेवाले दरिद्र को मोहनभोग क्या माँ की कृपा के बिना मिल जावेगा। दाने-दाने के लिए तड़पनेवाले तुलसीदास को रामजी ने गोपाल मंदिर में जगह दिलाई कि नहीं? गाय चरानेवाली और घास काट-काटकर जीविका कमानेवाली लड़की को माँ ने रानी बनाया कि नहीं? रासमणि रानी न बनती तो वह माँ का मंदिर, वह बगीचा बनता कैसे? और फिर मेरे और लाटू जैसे गरीब को कैसे सहारा मिलता। रोता-रोता आया था उस दिन बगीचे में कि मेरी माँ और भाई-बहन अन्न के लिए तड़प रहे हैं। माँ से कहकर कुछ समाधान निकालो, ठाकुर। माँ ने जब मोहनभोग परस दिया है तो हँस रहा है। स्साला! विलायती बोली में फिस्-फिस् करनेवालों की माया से बचकर रहना मास्टर! हमारा निपढ़ लाटू ही ठीक है। बिहारी बउड़म है। इसका मन प्रपंच में नहीं, माँ के चरणों में बसा रहता है। देख, रामचंद्र दत्त के आँगन से छीनकर माँ ने इसे अपने आँगन में बैठा दिया। कामारपुकुर के बाभन को अपने बगीचे में खींच लाई। रानी के बगीचे का माली बना दिया।

नरेन, खेल नहीं है माँ की महिमा को समझना। तेरी तर्क-बुद्धि से वह नहीं समझ में आएगी। पानी पीटता रह जाएगा। आस्था चाहिए।

आस्था की बात मेरी माँ मुझे बताती थी। कहती थी कि तेरा जन्म हुआ तो पूरे गाँव में हल्ला हो गया कि चाटुर्ज्या बाड़ी में सोने का बेटा जनमा है। देख भला, घर में भूजी भाँग नहीं और आस्था यह कि सोना जनमा है। आज भी गाँव की गरीबी याद आती है तो रोएँ खड़े हो जाते हैं। गमछे में लेकर मूढ़ी-चिउड़ा चबाता रहता था। माँ की लीला देख, बलराम मोहनभोग खिला रहा है। वकील का बेटा क्या समझे गरीबी की आँच! मौज में कटी है लड़काई। दरवाजे पर अंग्रेजी पढ़ने की, गाने की, तैरने की, खेलने की सुविधा और राजकुमार का सुख। बाप मरा और आँगन से दमड़ी-दाना गायब। तब आया बच्चू की समझ में कि अभाव की ज्वाला कितनी तीखी होती है। अब जरा सँभला है तो ऐसी वाचा जागी है कि तर्क और ताना बंद ही नहीं होता। जरा हरिअरी दिखी कि आदमी अपना दुःख भूल जाता है। मेरी माँ अपना अभाव भूल गई थी और गाँव की औरतों के कहने से भ्रम में पड़ गई थी कि सचमुच सोना ही उसकी कोख से जनमा है। तीन ठगों ने जैसे गरीब बाभन की दक्षिणा की बछिया ले ली थी वैसे ही भ्रम रचकर मेरी माँ को गाँववालों ने भरमा दिया था और अपने सोने की रखवाली में उसका खाना-सोना हराम हो गया था। वत्सलता सदा उफनती रहती थी। दुलराकर मुझसे अकसर कहती, 'गाँववाले ठीक ही कहते हैं रे गदाधर! तू विष्णुपद की धूलि है।' माँ की बात सुनकर मैं तो चौंक पड़ा था, 'माँ, कहती क्या है!' बाद में अपनी प्रकृति पढ़ने की जब मेरी उम्र हुई तो कभी-कभी लगता कि माँ शायद ठीक ही कहती है। रस की ऐसी तृषा बिना विष्णुपद

की धूलि हुए नहीं होती। कभी-कभी सोचता, केवल माँ ही क्यों आकृष्ट करती है? पुरुषों की संगति जरा भी नहीं सुहाती थी। स्त्रियों के बीच रहना, उन्हींके साथ कीर्तन करते रहने में रस मिलता था। यहाँ तक कि चाल-चलन भी महिलाओं जैसा; पुरुषता का नाम नहीं। मेरे कंठ से गान सुनकर महिलाओं को भी विस्मय होता था। किसी लड़के की ऐसी कोमल आवाज नहीं सुनी। गदाधर तो अपने माधुर्य से हम लोगों को लजवा देता है। पूर्वजन्म में स्त्री रहा होगा। आपस में मुग्धकंठ से बतियाती रहती थीं। मजा यह कि माँ को अपने सोना के बारे में गाँववालों की टिप्पणी बहुत रुचती थी। बाद में मथुर के साथ जब वृंदावन गया था, एक गोपी मुझे 'राधा' कहकर संबोधित करती थी। मुझे अपने बाल्यकाल की बातें याद आई थीं। सच कहता हूँ रे नरेन, मेरे कीर्तन-राग से लोहाबाड़ी की बहुएँ पगला जाती थीं; जैसे तेरा कंठ मुझे पागल बना देता है। देख तो बलराम का भाव, कितना सत्कार करता है हम सबका। मोहनभोग खिलाता है कितनी श्रद्धा से! हम लोग भी इसे कुछ देकर विदा हों। सुना दे एक गान। बलराम तो भाव की अतल गहराई में डूब जाता है तेरा राग सुनकर।

ठाकुर, आप में पटवारी बुद्धि कम नहीं है। खूब! अभी तो कायस्थ के बेटे की फजीहत करके रख दी और अब अपनी चातुरी से लगे फुसलाने। वकील का बेटा गाँव का गँवार बाभन नहीं है, जो जरा से में पिघल जाए। मोहनभोग, मोहनभोग! जैसे पहली बार मोहनभोग का चेहरा देख रहा हूँ। लोक-व्यवहार की यह कला आप जैसे बाभन को ही सुहाती है। नरेन के दुलार ने ठाकुर को मुग्ध कर दिया। लगा जैसे कान्हा अपनी माई जसुमती के सामने दुलराकर अपना अमनख प्रकट कर रहा है। नरेन के माथे पर छोह का स्पर्श देते ठाकुर ने आग्रह किया, 'स्वाद बिगाड़ मत, नरेन! मेरे लिए नहीं, बलराम उदास हो जाएगा। तेरे गान के बिना कोई छंद पूरा नहीं होता रे नरेन! तू इतनी सी बात नहीं समझता! और नरेन पसीज गए—

मन, चलो निज निकेतने।
संसार विदेशे विदेशीर वेशे भ्रम केनो अकारने?
विषय पंचक आर भूतकन, सब तोर पर, केहो नय आपन,
पर प्रेमे केनो हये अचेतन भुलिछ अपन जने?
सत्य पथे मने करो आरोहन, प्रेमेर आलो ज्वाली चलो अनुखन,
संगे ते संबल राखो पुन्य धन गोपने अति जतने।
लोभ, मोह आदि पथ दस्युगन, पथिकेर करे सर्वस्व शोषन,
परम जतने राखो रे प्रहरी, सम दम दुई जने।
साधु संगे नाम आछे पांथधाम, श्रांत होले तथाय करिबे विश्राम,
पथ भ्रांत होले सुधाइबे पथ से पांथनिवासी गने;
यदि देखो पथ भयेर आकार, प्रान पने दियो दोहाई राजार,
से पथे राजार प्रबल प्रताप, समन डरे जाँर शासने॥

नरेन के राग-स्पर्श से ठाकुर क्षण भर में महाभाव में प्रवेश कर जाते हैं। अंतरंग लीला-सहचर उस दशा के प्रति सचेत रहते हैं।

दूसरे दिन रविवार को ठाकुर की कुटिया में सदा की तरह भागवतजन की महफिल जमी। ठाकुर की आँखें तो अपने लाड़ले नरेन के लिए व्याकुल थीं। क्यों मास्टर, नरेन नहीं आया। मेरी दिल्लगी ने कहीं उसे घायल तो नहीं कर दिया? आया क्यों नहीं? मगर कल आखिर में मेरा मन तो रखा उसने। रूठ गया होता तो लाख अनुनय करने पर भी वह बाजे को हाथ नहीं लगाता। क्यों, तुम्हारा क्या खयाल है? मगर आया क्यों नहीं, मास्टर?

नहीं ठाकुर, ऐसा कुछ नहीं है। आपका नरेन आपके बिना जी नहीं सकता, ठाकुर। दुलार के अधिकार से आपसे जब-तब तर्क कर लेता है। और इतनी छूट आपके लाड़ ने उसे दी है। आपके उच्छल छोह ने ही उसे मुँहलगा बनाया है।

मगर आया तो नहीं, मास्टर! तुझे कुछ बताया था?

बस यों ही कह रहा था, 'एक दिन लाहा लोगों की बागानबाड़ी में गान का कार्यक्रम है।' हो सकता है, उधर ही चला गया हो। हाँ, भाई, गरीब आदमी को कौन पूछता है! लाहा लोगों का ऐश्वर्य छोड़कर बउड़म की कुटिया में क्यों आने लगा! जानते हो मास्टर, एक दिन लाटू को झिड़कते हुए कहने लगा, 'तेरा परमहंस जाहिल-जबाट, उजबक है। माताल की तरह काँपते हुए चलता है। तुतला-तुतलाकर देहाती बोली बोलता है।' बेचारा लाटू तो नरेन की मुद्रा से रोने-रोने को हो आया था। मगर मैं तो मास्टर, उस नारायण तत्त्व के लिए तड़पता रहता हूँ जो लेकर नरेन धरती पर आया है। मुझे माताल कहता है। उस छोकरे को कौन समझाए मास्टर, उसे देखते ही मुझे हजार बोतल का नशा चढ़ जाता है और उसका राग सुनते ही मैं उस नशे में डूब जाता हूँ, जो उतरने का नाम ही नहीं लेता।

मेरी काँपती चाल और बोली नैसर्गिक है। तू बता, क्या उपचार है इसका? माँ को कितना तपना पड़ा मेरी सुरक्षा के लिए! अपने आँचल में छिपाए रखना चाहती थी। पहली बार बेटे का मुँह देखा हो, ऐसा नहीं था; पर गाँववालों ने सारी सरला जननी को समझा दिया था कि तेरी कोख से सोने का बेटा पैदा हुआ है। पिताजी और अपने सपने की सुधि उसपर चढ़ी रहती थी। मुझसे जब-तब कहती थी, 'तू विष्णुपद की धूलि है।' गया में पुरखों का पिंडदान करने मेरे पिता गए थे। सपने में रामजी ने कहा था तेरे बाप से कि तेरे पुत्र के रूप में मैं पैदा होऊँगा। वे काँपते-डरते गया से गाँव भाग आए थे। और अपने सपने की बात मैं क्या बताऊँ तुझे। मैं तो तेरी जननी बनकर कृतार्थ हो गई रे गदाधर। इतनी भोली माँ का बेटा उजबक नहीं तो और क्या होगा। साधारण सी बात नरेन समझ नहीं पाता और अपने परिहास से मुझे और मेरे लाटू को छेड़ता रहता है। इस कुरोग की क्या दवा, तू ही बता, मास्टर?

लाख चिढ़ाए, आपकी सारी तकलीफ की एक ही दवा है, ठाकुर,

नरेन की संगति।

क्या खूब मास्टर! तूने तो निहाल कर दिया। वैद्य हो तो तेरे जैसा। तभी तो तेरे लिए तड़पता रहता हूँ। और तू है कि नरेन की तरह रह-रहकर गायब हो जाता है। उस दिन केशव से पूछ रहा था कि मास्टर का मन बगीचे से कट तो नहीं रहा है। और केशव ने मुसकराकर तेरी ओर देखा था। बाजी तो लाटू के ही हाथ है। मेरी छाया बनकर बगीचे में पड़ा रहता है। पर मेरी ही तरह है उजबक। एक दिन उसे अपने लड़कपन की बात, गाँववालों की आस्था की बात बताई तो शुद्ध गँवई मुद्रा में उछल पड़ा। कहने लगा, कामारपुकुर के लोग धन्य हैं कि अपने आँगन के सोना को जनमते ही पहचान लिया।

जब अपने तीखे तानों से मेरे हृदय को बेधता था, कामारपुकुर के वात्सल्य की उफनती नदी याद आती थी, जिसमें डुबकी लगा-लगाकर मेरा आस्वाद समृद्ध होता था, भाव की भूमि उपजाऊ बनती थी। हृदय की कटूक्ति से तो बुरी तरह घायल होकर एक बार गंगाजी में डूबने का मन हो गया था। मगर बगीचेवाली मेरी माँ ने राह काटकर मुझे बरज दिया।

अब बोल भला! तब भी सोना और माटी में मुझे अंतर समझ में नहीं आता था, आज भी दोनों में कोई फर्क नहीं दिखता। मगर यह बिहारी बुद्धू पागल हुए जा रहा है कि ठाकुर सोना है। अब बोल भला, कौन सा तर्क हिला सकता है इस आस्था को? मगर आस्था के बिना कुछ हाथ भी तो नहीं लगता, मास्टर! क्यों? अपनी जननी के विश्वास को मैं बदल ही नहीं पाया। इस तरह छापे रहती थी और कड़ी पहरेदारी करती रहती थी कि कोई उसके सोना को चुरा न ले। गाँव की एक पक्व महिला ने अपनी लोक-बुद्धि से माँ को समझाया था एक दिन, 'बाभुनी माँ, बेटे पर इतनी निगरानी रखना ठीक नहीं है। बालक्रीड़ा का रस सूख जाता है।' मगर उस भोली गँवई महिला को क्या पता था कि बालखिल्य ही बाभुनी के बेटे के जीवन का सनातन राग है। मेरी जननी भी मेरी भावदशा कहाँ समझ पाती थी और महिलाओं के घाट पर जाने-नहाने का मेरा हठ गँवार महिलाओं की मर्यादा-ग्रंथि सह नहीं पाती थी। अपनी भोली माँ और संसारी स्त्रियों को कैसे समझाता कि मैं उस रूप के लिए व्याकुल हूँ, जो एक दिन खेत में कृपा करके माँ ने दिखाया था और मैं मुग्ध हो दूसरे धरातल पर पहुँच गया था। बचपन के उत्पात की बात याद आती है तो अचरज होता है कि गाँव-घर के लोग कैसे झेलते थे मेरे नखरे और हठ को। नरेन अपने को बड़ा शूर और उत्पाती मानता है। जानता नहीं कि गरीब बाभन का बेटा कम उत्पाती नहीं था। एक दिन तो गँवई मर्यादा को लात मार दिया था। गाँव के पोखरे पर स्त्री-पुरुष के अलग-अलग घाट थे। बाल-बंधुओं ने महिलाओं के घाट पर नहाने का फैसला किया; मगर गाँव की अधेड़ महिलाओं की डाँट से वे एक ही दिन में भाग खड़े हुए। मैं जिद छोड़ने से रहा। हारकर महिलाओं ने माँ से शिकायत की, 'बाभुनी माँ, तेरा बेटा गाँव के बदमाश छोकरों के साथ बिगड़ता जा रहा है; तू इसे सँभाल। पोखरे पर स्नान करती, वस्त्र पहनती स्त्रियों पर नजर गड़ाए रहता है।' माँ के स्वाभिमान को जैसे किसीने थप्पड़ मार दिया हो। पुचकारकर बुलाया मुझे और बड़े लाड़ से गाँव का व्यवहार सिखाते हुए कहा, 'निर्वस्त्र महिलाओं को देखते तेरे मन में विकार न जगे, यह तो तेरी बात है। किंतु गाँव की मर्यादा तेरे इस ढीठ आचरण को कैसे स्वीकार कर लेगी। माताओं की मर्यादा और स्वाभिमान को आघात देकर क्या सुख पाएगा रे गदाधर? तेरा यह आचरण मुझे कितना कष्ट देता है, कभी तूने सोचा है!' माँ ने मेरे मर्म पर अँगुली रख दी थी। फिर तो महिलाओं के घाट की ओर झाँका भी नहीं। मगर हृदय की बात तुमसे कहता हूँ, मुझे तो स्त्री-पुरुष में कुछ भेद ही नहीं दिखता था। लइकाई की बात कभी याद आती है तो ऐसा भाव मन में जागता है कि मेरे बालखिल्य के साथ ही इस बगीचेवाली माँ की लीला क्रियाशील हो गई थी। जनमते ही इसने मुझे अपना चाकर बना लिया हो जैसे और चाकरी का शऊर सिखाने लग गई थी। क्या कौतुक था! माटी की मूरत बनाता तो यही माँ खड़ी हो जाती, चित्र बनाता तो इसीका चेहरा उग आता। अब तो पक्का विश्वास हो चला है रे लाटू, कि जनमते ही इस बगीचेवाली के जाल में फँस गया था और नाचता रहता था। अपने वश में थोड़े था!

और गाँव-घर के लोग मेरे उत्पात से चिढ़ते भी थे और मुझे आँख की पुतली पर लिये मेरे लिए व्याकुल भी रहते थे। हृदय जब अपने तीखे तानों से मेरे हृदय को बेधता था, कामारपुकुर के वात्सल्य की उफनती नदी याद आती थी, जिसमें डुबकी लगा-लगाकर मेरा आस्वाद समृद्ध होता था, भाव की भूमि उपजाऊ बनती थी। हृदय की कटूक्ति से तो बुरी तरह घायल होकर एक बार गंगाजी में डूबने का मन हो गया था। मगर बगीचेवाली मेरी माँ ने राह काटकर मुझे बरज दिया। माँ तो बाल्यकाल से ही मेरी पहरेदारी में लगी हुई थी। वह तो दक्षिणेश्वर पहुँचने पर जब पहली बार माँ का रूप-दर्शन किया तो चकित हो गया। यह रूप तो कई बार अपने गाँव के परिसर में देखकर उस दिव्य सौंदर्य राशि से बेहोश होता रहा हूँ। किसीके सामने हल्ला मत करना, लाटू! तुम्हारे बउड़म स्वभाव से बड़ा डर लगता है। भाव की तरंग में जहाँ-

तहाँ अपने ठाकुर का ढोल पीटने लगते हो। निपट गँवई-गँवार की तरह उस दिन गिरीश जैसे आदमी पर तुमने अपने ठाकुर के पक्ष में लाठी उठा ली थी। ऐसे नहीं होता ठाकुर का काम। शहरी पढ़वइयों के बीच आना-जाना, रहना पड़ता है। गँवई ठसक इनके बीच काम नहीं आती। मगर यह नैसर्गिक भाव माँ की कृपा से जाते-जाते जाता है। मेरा ही देखो, अभी तक शऊर नहीं आया। विद्यासागर और केशव जैसे पंडित से बतियाते उनकी पंडिताई का ध्यान ही नहीं रहता; गाँव के पड़ोसी आदमी से जैसे बतियाता था गँवई शैली में, वैसे ही शिष्टाचार छोड़कर उनसे बोलने-बतियाने लगता हूँ। नरेन, राखाल और दूसरे दुलरुआ बच्चे तो अपने घर के हैं। उनके साथ छोह के आवेग में गाली-गलौज, डाँट-फटकार, दुलार का ही गहरा रंग है। पर चतुर सुजान और सभ्य-सयानों से सावधानी से व्यवहार करना चाहिए, जो मुझे आता ही नहीं और बाद में पछताता हूँ कि गलती हो गई। मगर करूँ क्या रे लाटू, मेरा मन अपने वश में थोड़े ही है। वह तो माँ के चरणों के अलावा किसीको चीन्हता ही नहीं। वह जैसे नचाती है, नाचता रहता हूँ।

गाँव में हल्ला हुआ था कि बाभन के घर सोने का बेटा हुआ है। मगर माँ की लीला देखो, मेरा सारा आचरण लड़कियों जैसा। उन्हींके बीच उठना-बैठना, उन्हींसे बोलना-बतियाना, उन्हींकी तरह साड़ी पहनकर, पानी की कलशी कंधे पर रखकर महिलाओं की चाल में धीरे-धीरे सौंदर्य का छंद रचते चलना। माँ का ही सारा कौतुक था। उसीके लिए शायद मुझे रचा था। वही रचना रानी के इस बगीचे में फुदकती, गिरती, गाती और बेहोश होती रहती है और केशव जैसा पंडित समझ नहीं पाता। कहता है, 'ठाकुर जैसा मनुष्य इस समय पूरे भूमंडल में नहीं है।' ब्राह्म आचार्य है। विलायती भाषा में भाषण देता है तो बड़े-बड़ों का पानी उतर जाता है। मगर साधारण सी बात नहीं समझ पाता कि इस गरीब बाभन की, जो रानी के अन्न से जी-पल रहा है, कुछ भी बिसात नहीं है। माँ की विभूति को मेरी मानता है। उसकी मूढ़ता पर बड़ी हँसी आती है, लाटू; पर संकोचवश कह नहीं पाता कि तू प्रचंड मूर्ख है—मानती रहे सारी दुनिया तुझे पंडित। जैसे तुम ठाकुर के नाम पर चहकने-चिल्लाने लगते हो, केशव ने भी सारी दुनिया में मेरे नाम का ढोल पीट दिया है और उसके हल्ला ने बगीचे में जो भीड़ खड़ी कर दी पंडितों की, सच कहता हूँ तुझसे लाटू, माँ ने इज्जत बचाई, अन्यथा इस मूर्ख बाभन की तो कलई खुलने ही वाली थी। फिर तो केशव भी मुँह दिखाने लायक न रहता। संसारी लोगों के भ्रम बड़े जटिल होते हैं। माया की महिमा इतनी सघन है कि बड़े-बड़े ज्ञानियों को सत्य नहीं सूझता। कृष्ण-सखा उद्धव की कथा एक दिन तुमको सुनाई थी। गँवार गोपियाँ जिस सत्य के साथ दिन-रात लीलारत थीं, वह उद्धव को सूझ ही नहीं रहा था, हाजरा की तरह। मगर तुझे और तेरी आस्था को देखकर अपने गाँव के स्त्री-पुरुष बरबस याद आ जाते हैं। कितनी निश्छलता और कितना मोहक भोलापन! मैं तो मुग्ध हो जाता था।

मेरी राशि महिलाओं से ही मिलती थी। उन्हींसे मिलना-जुलना-बतियाना, उन्हींके बीच कीर्तन-कौतुक करते रहना। और वे भी खूब थीं, मुझे राधा और राधा-बांधवी वृंदा की भूमिका में सजा-बजाकर उतारती थीं और मेरी अभिनय-लीला से मुग्ध हो जाती थीं। लाहाबाड़ी की लड़की प्रसन्नमयी को तो मेरे भीतर बालगोपाल के दर्शन होते थे। भागती-दौड़ती मेरे आँगन में पहुँच जाती थी। मगर कितनी भोली थी धर्मदास लाहा की वह बेटी! माँ से कहने लगी एक दिन, 'बाभुनी माँ, तेरी कोख से कामारपुकुर के रूप में बालगोपाल जनमा है।' माँ तो प्रसन्नमयी की बात सुनकर अगराकर खिल उठी थी; मगर मैं मन-ही-मन उसकी सरलता की बात सोचकर हँस पड़ा था और अपनी माँ की सरलता की बात तुमको क्या बताऊँ रे लाटू! मेरे उत्पात और बाल-चापल्य को चड़ (चपत) मारकर संयमित कर आदमी बनाने की उसे कभी चिंता ही नहीं हुई। एकाध बार केवल मेरे लिए माँ गहरी चिंता में डूबी थी। यहाँ जो मेरी माँ है न, जो कामारपुकुर से मुझे अपने आँगन में खींच लाई है, उसको पहली बार अपने गाँव में देखा था और तब मेरा होश गायब हो गया था।

वही कथा तुमको सुनाने जा रहा था। बउराया मन दूसरी ओर बहक गया। गमछे में मूढ़ी, गुड़ बाँध फाँकते हुए खेत की ओर घूमने निकला था एक दिन। ऊपर आसमान की ओर देखा, काले बादलों के पास उड़ते बगुला की एक मोहक श्वेत धारा। ऐसा सौंदर्य कि दृष्टि वहीं गड़ गई और माँ के अपरूप रूप पर एकाएक दृष्टि पड़ी, जिसकी नजर अपने बालक पर गड़ी थी। उस अपूर्व सौंदर्य-राशि को देखते ही जगत् की चेतना से टूटकर वहीं गिर पड़ा। ग्वालों-किसानों से खबर पाकर दौड़े-दौड़े लोग आए। उठाकर घर ले गए। गँवई टोटका-टोटरम और धार्मिक पूजा-अनुष्ठान भीत माता-पिता ने तत्काल शुरू कर दिया था। माँ के प्रभाव से उत्तीर्ण होने पर देखा—लाहाबाड़ी ही नहीं, पूरे गाँव की महिलाओं से आँगन भर गया है। उसके बाद तो माँ की पहरेदारी इतनी कड़ी हो गई कि न पूछो। मगर माँ तो अब प्रायः अपना रूप दिखाकर मुझे अपने निकट खींचने लग गई थी। मगर कितने गहरे अज्ञान में डूबा है संसार, लाटू! जब-जब संस्कार-बोध का तार टूटता, गाँव में हल्ला हो जाता कि गदाधर फिर बेहोश हो गया है। और गाँव के छोह-व्याकुल लोगों से मेरा आँगन भर जाता। अब मुझे जगत् की दशा देखकर गुदगुदी होने लगी थी। 'होश' का अर्थ दुनिया की नजर में क्या है, यह सोचकर जब मैं खिलखिलाकर हँसने लगता तो विस्मय से आँखें फाड़कर लोग मेरी ओर ताकते। माँ की व्याकुलता की बात तुमको क्या बताऊँ। वह तो अपने सोना की रक्षा के लिए पगला गई थी। बगीचे में पहुँचने पर माँ को जब देखा तो माँ खिलखिलाकर हँसी थी, लाटू; जैसे कह रही हो कि कामारपुकुर से तुझे घेरती रही हूँ, आज असली ठिकाने पर—मेरे आँगन में पहुँचे हो। मेरी भोली जननी माँ के संविधान को कैसे समझती, वह तो मेरी कल्याण-कामना से बउरा उठी थी।

> किस-किस भूमिका में उतारती थी—कभी जोलहिन बनाती थी, कभी पानी भरनेवाली औरत की चाल-ढाल में सजाकर उसीके हाव-भाव में दौड़ाती-चलती थी। और उसके कौतुक का रहस्य कोई समझ ही नहीं पाता था। पोखरे से भरी कलशी कमर पर रखकर कान्ह में दबाए जब औरत वेश में आता था तो कोई चीन्ह नहीं पाता था कि बाभुनी माँ का सोना का बेटा है। जिसे प्रसन्नमयी कामारपुकुर का सौभाग्य...

एक बार और उसकी वत्सलता बेचैन हो उठी थी, जब उसने पुरी धाम के यात्री साधुओं की सेवा में मुझे गाँव की धर्मशाला में पड़े रहते देखा था। डर गई थी कि बेटा गया हाथ से। एक बाबाजी ने बहुत समझाया-बुझाया, तब उसकी जान में जान आई। क्या बताऊँ रे लाटू! मेरे कौतुकी स्वभाव के चलते एक बार तो बहुत बड़ा अनर्थ होते-होते बचा। वैरागी साधु के वेश में सजकर, पूरी देह में भभूत पोते जब माँ के पास पहुँचा, वह तो देखते ही सूख गई, जैसे निष्प्राण हो गई हो। सहज रूप धरकर जब उसे अपने कौतुक की बात समझाई तब सँभली। मातृ-हत्या का पाप लगते-लगते बचा रे लाटू! माँ को कुछ हो जाता तो तालाब में डूब मरने के सिवा कोई दूसरा रास्ता न बचता मेरे लिए। मगर रहस्य की बात केवल तुमको बताता हूँ—इस बगीचेवाली जो माँ है न, उसने अपनी लीला के लिए मेरी रचना की थी। सो बाल्यकाल से ही नाना रूपों में नचाती रहती थी। मरने नहीं देती। उसे तो अपने लीला-छंद को रूपायित करने की चिंता थी। मेरी भोली जननी मेरी पहरेदारी में पागल बनी रहती थी कि कहीं कुछ अमंगल न हो जाए, कहीं उसके कलेजे के टुकड़े को, उसके सोना को, विष्णुपद की धूलि को कोई चुरा न ले। इतनी स्पर्श-कातर और चिंता-व्याकुल कि गाँव की ठाकुरबाड़ी से कीर्तन-कथा के लिए जब किसी साधु के आने पर मुझे बुलाया जाता तो घबड़ाकर मुझे मुक्त करने में आगा-पीछा करने लगती थी। उसे कहाँ पता था कि इस बगीचेवाली माँ ने उसके बेटे को अपना लाड़ला बेटा बना लिया है और अब हाथ से निकलने नहीं देगी।

मगर मेरी दशा तो माँ की रूप-राशि को देखते ही कुछ-की-कुछ हो जाती थी; जैसे पहली बार माँ को खेत में घूमते बगुलों के लहराते श्वेत-सौंदर्य के बीच एकाएक देखा था और संसार से मेरे मन का तार टूट गया था। कई बार अपने अलौकिक सौंदर्य से मोहित कर माँ ने मेरे संसार मोह को झटका दिया था और मेरी बेहोशी का गाँव-जवार में शोर मच जाता था। अब तो लाटू, जब पुरानी बातें याद आती हैं तो बड़ी हँसी आती है। माँ की माया के कैसे-कैसे रूप हैं! कैसी मोह की माड़ी चढ़ा दी है दुनिया की नजर पर! देख भला, होश को यह दुनिया बेहोशी कहती है। मगर पिता की मृत्यु ने तो मेरी आँखें खोल दीं, लाटू। लाहा लोगों की पाठशाला में बस यों ही अपनी जननी को तुष्ट करने भर के लिए जाता था। मन तो कुछ और हो गया था। उचटे मन को तो पुराण की कथा पढ़ना, धार्मिक यात्रा (नाटक), कीर्तन-भजन में डूबे रहना रुचता था। सच कहता हूँ रे! तू भाग्यशाली है लाटू, जो पाठशालावाली पढ़ाई में रुचि नहीं हुई। एक बार संसार के अक्षरों से बँध जाने पर बड़ा मुश्किल होता है उसके बंधन से मुक्त होना। तुमको बाँधने की मैंने एक बार कोशिश की थी; पर एकाएक तुम्हारा भाव मेरी समझ में आ गया। तब वर्णमाला की पुस्तक मैंने दूर फेंक दी और तभी मैंने समझा था कि जयरामबाटी की बेटी की सेवा की पात्रता केवल तुममें ही है। भवतारिणी और शारदा में कोई फर्क नहीं है तुम्हारी दृष्टि में। असली पढ़ाई यही है जो मुझे पढ़ाने के लिए न्यांगटा (तोतापुरी) दूर देश से चलकर इस बगीचे में आया था। आया क्या था, माँ विशेष मुहूर्त में उसे खींच लाई थी यहाँ। उसके वश का थोड़े था! बड़ा ज्ञानी बनता था! आँव की पीड़ा से क्लांत होकर गंगाजी में डूब मरने जा रहा था। माँ ने बचाया। मेरा राग सुनकर रोने लगता था। कहता था, 'यही उपलब्धि है, वत्स! तेरा माटी-मन पहले से तैयार था रे; नहीं हृदय की तरह तू भी जगदंबा से हुज्जत करते जिंदगी राख में मिल जाती।' सचेत किया था उसे कि शारदा साक्षात् जगदंबा है। उसको छेड़ना आग से खेलना है। पर वह तो अपने मामा पर हुकूमत चलाते, झिड़कते इतना बढ़ गया था कि कहीं कोई मर्यादा नहीं। मारा-मारा फिर रहा है। हारकर आया था एक दिन रोता-गिड़गिड़ाता। घिघियाकर कहने लगा, 'मामा, अपनी सेवा में मुझे रख लो।' जैसे उसका मामा रानी का दामाद-नाती है! देख भला, मामा की एक न सुनी। मनमानी का दंड मिला तो अब गिड़गिड़ा रहा है। अपने साथ मामा को भी ले डूबने वाला था। मथुर के बेटे की त्योरी देखकर मैंने भी बगीचा छोड़ने का मन बना लिया था। गमछा-बटुआ उठाकर जब चला तो माँ ने बाँह पकड़कर कोठरी में बैठा दिया, अन्यथा उसीकी तरह गाँव लौटकर जहाँ-तहाँ डोलता फिरता। तब भला जीने का अर्थ क्या रह जाता, लाटू! माँ के अनुग्रह से रिक्त होकर तो ऐसा दरिद्र हो जाता कि कुकुर-सियार भी मेरी ओर न ताकते। सोच भला, मथुर की नातिन को पकड़कर कुमारी-पूजा कर दी; ऐसा ढीठ! कर्म का भोग तो भोगना ही पड़ेगा। मामा किस खेत की मूली है, जो तेरा दुर्भाग्य-मोचन कर देगा। जगदंबा के विधा-

से लड़ाई और सुख की आशा है! न मूढ़ता की पराकाष्ठा? अब भोग किए का फल। माँ प्रीत होगी, तभी दुर्भाग्य-मोचन संभव है। ऐसा लोभी कि पूछो मत। मेरी पूरी कमाई खा जाने के लिए जाल बिछा दिया था। लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी के दस हजार रुपए मैं स्वीकार कर लूँ, इसके लिए कभी मुझसे बतियाता, कभी शारदा को फुसलाने की कोशिश करता। ऐसी हीन मति का आदमी है। वह तो माँ सजग थी पहरेदारी पर, सो बच्चू की दाल नहीं गली; अन्यथा वह तो मामा को गंगा में डुबोकर ही मानता। उसके ताने से तंग आकर एक बार गंगा में डूबने जा रहा था। माँ ने बाँह पकड़ ली। ऐसे ही हीन संस्कारवालों की लोक-बुद्धि को दुनिया होश कहती है। और मैं जब माँ को हाँक लगाते उसके रूप-सागर में डूब जाता हूँ, संसारी बुद्धि शोर मचा देती है—बेहोशी का दौरा पड़ा है! बता भला, कैसा अज्ञान है।

मेरे भाव को मेरा बालसखा गया विष्णु समझता था। अभिन्न हृदय था लाहा महाशय का बेटा। खाना, खेलना, बतियाना उसीके साथ जमता था। मेरी पीड़ा और मेरा भाव केवल वही समझता था। उसकी बहन प्रसन्नमयी तो मेरी जननी की तरह मेरे लिए चिंता-व्याकुल रहती थी कि कामारपुकुर का सौभाग्य माटी में न मिल जाए—ऐसा ही वह मानती थी। गाँववाले जिसे सोना समझ-कह रहे थे, गया विष्णु की बहन प्रसन्नमयी उसे कामारपुकुर का सौभाग्य मानती थी। विचित्र व्यवहार है जगत् का रे लाटू! माँ ने इस मादक मोह से बचाया तुझे, नहीं तो तेरा यह मानुष जीवन हृदय की तरह राख में मिल जाता। मुझे माँ ने गाँव में रहते ही अपना अपरूप रूप दिखाकर जगत् से वितृष्ण होने का संकेत दिया था—बड़ा महीन संकेत। मगर मोहभंग हुआ पिताजी की मृत्यु के आघात से। पढ़ाई से मन उचट गया था। पिता के अभाव का दंश माँ के हृदय में किसी कारण से तीखा न हो, यह चिंता मन में सदा बनी रहती थी; पर मेरे जैसे बउड़म का क्रीड़ा-कौतुक ही माँ के दुःख का कारण बन जाता था। उसके घरेलू काम में भी हाथ बँटाता था। वैसे ही जैसे तू शारदा की सेवा में लगा रहता है। मगर मेरा हर कौतुक माँ को तकलीफ देता था। मैं निरुपाय था रे लाटू! मन अपने वश में थोड़े ही था! माँ जैसे नचाती थी, नाचता रहता था। और उसने तो जैसे मुझे चुन लिया था अपनी लीला के रूपायन के लिए। किस-किस भूमिका में उतारती थी—कभी जोलहिन बनाती थी, कभी पानी भरनेवाली औरत की चाल-ढाल में सजाकर उसीके हाव-भाव में दौड़ाती-चलती थी। और उसके कौतुक का रहस्य कोई समझ ही नहीं पाता था। पोखरे से भरी कलशी कमर पर रखकर कान्ह में दबाए जब औरत वेश में आता था तो कोई चीन्ह नहीं पाता था कि बाभुनी माँ का सोना का बेटा है। जिसे प्रसन्नमयी कामारपुकुर का सौभाग्य और बाल गोपाल मानती थी, वह गरीब मुसलमान औरत का वेश धर के बनिक पल्ली के अंतःपुर में सीतानाथ पाई के घर की रमणियों के बीच पहुँचा तो कोई पहचान न पाया और अहंकारी बनिया दुर्गादास का अभिभावक-गुमान धूल में मिल गया। माँ की लीला के सामने बनिया का अहंकार टिकता है भला! बड़ा दंभ था दुर्गादास को अपनी कुलीनता का। घर की स्त्रियों को परदे में कैद कर उनके शील-सतीत्व की रक्षा के लिए व्याकुल था। ऐसे कहीं होता है! मूर्ख की समझ में इतनी सी बात नहीं आ रही थी कि माँ जिसकी रक्षा करे वही सुरक्षित है। माँ ने अपने बालक के माध्यम से ऐसा कौतुक दिखाया कि उसकी सारी चतुराई पर पानी फिर गया। फिर तो उसके अंतःपुर में मेरा ऐसा प्रवेश हुआ कि मेरी एक दिन की अनुपस्थिति भी पाइन-परिवार की रमणियों के लिए असह्य हो जाती। दूत भेजकर बुलवातीं; मेरी चिंता में व्याकुल होकर बाभुनी माँ के आँगन में पहुँच जातीं। सीतानाथ पाइन की बेटी रुक्मिणी तो मेरी कौतुक-लीला के लिए पागल बनी रहती थी। लाहा परिवार और पाइन परिवार की बात छोड़ो, मेरे गाँव की जो निपढ़, गँवार और गरीब महिलाएँ थीं उनमें भी विद्या-तत्त्व की मात्रा बहुत ऊँची थी। मेरी जननी अकेली भोली नहीं थी; भोली सरलाओं से मेरा गाँव भरा था। आज तो विचित्र दशा है। देखते नहीं, यहाँ बगीचे में अपने विक्षेप का उपचार खोजते रोज ही लोग दौड़ते ही रहते हैं। जब पूछता हूँ, 'तेरी स्त्री विद्या-तत्त्व वाली है या अविद्या तत्त्ववाली?' अब तक एक भी नहीं मिला जो अपनी स्त्री को अविद्या तत्त्ववाली माने। महामाया की लीला देखकर बड़ी हँसी आती है। पूछता हूँ हतभागों से कि जब तेरे आँगन में ही विद्या-तत्त्व है तो टोना-टोटरम के चक्कर में मारा-मारा क्यों फिर रहा है? बउराए कुकुर की तरह हाँफते हुए बगीचे में मेरे पास किस रोग की दवा खोजते आए हो? साले मेरी बात से चिढ़ जाते हैं। जटिल जाल बुनकर उसीमें उलझकर मर रहे हैं। उबरने की राह खोज रहे हैं। पर कुटिलता ऐसी कि साँच से आँच लगती है। रोग दबा-छिपाकर व्याधि-मुक्त होकर भोग की सुविधा कमाने यहाँ दौड़े-दौड़े आते हैं अभागे। सोच लाटू, माँ के सामने चालाकी चल सकती है! क्या छिपा है माँ से! और तू तो जानता ही है, लाटू, कि माँ का यह चाकर जादू-टोना तो जानता नहीं। भागते हैं साले मुँह लटकाकर। और माँ की लीला का हाल न पूछो। बाल्यकाल से ही कितनी मुद्राओं में नचा रही है मुझे। और यह गरीब बाभन उसके इशारे पर नाचते रहने को निरुपाय है। मगर मेरी जननी और बड़े भाई दुःखी रहते थे मेरे बउड़म आचरण से। चिंता थी कि गदाधर केवल कीर्तन-कौतुक में डूबा रहता है, पढ़ता-लिखता नहीं; किस घाट लगेगा इसका जीवन! उन्हें पता नहीं था कि माँ ने बाभन के लड़के को अपना चाकर बनाकर अपने घाट बाँध लिया है। अब दूसरा घाट क्या खोजना है। और जिस पढ़ाई-लिखाई के लिए मेरे माई-भाई चिंतित-व्याकुल थे, उसका अर्थ और उसकी व्यर्थता मैं तभी समझ गया था रे लाटू! विलास-वासना का पोषण ही जिस पढ़ाई का लक्ष्य हो, उसका क्या मूल्य! मगर दुनिया को देखो, उसीको विद्या कहती है और इस विद्या के मालिक को ज्ञानी-गुनी। एक ऐसा ही नामी ज्ञानी-गुनी बंकिम एक दिन बगीचे में आया था। विलायती सरकार की चाकरी करता है, ऊँचे ओहदे पर है। मैंने अपने गँवई अंदाज में

पूछा, 'क्या लक्ष्य है तेरे जीवन का?' बड़ी ढिठाई से बोला, 'आहार, निद्रा, मैथुन।' अब बोल भला, बिना पढ़े कुकुर भी इतना जानता है। वह तो कभी गया नहीं पाठशाला। मगर उतना तो जानता ही है जितना बंकिम, यानी जीवन का उद्देश्य दोनों का एक ही है। फिर पाठशाला जाने की क्या दरकार। मैं तो तभी समझ गया था, लाटू; पर अपनी जननी की चिंता का कैसे समाधान करता! भोली इतनी कि कोई बरगला दे; पर माँ को मैं कैसे चकमा देता। वह तो दुर्गादास का अहंकार चूर्ण करने के लिए मुझे जुलाहिन के वेश में माँ ने उतारा था। आज जब अपनी जननी के तप और तकलीफ की बात याद आती है, मन रोने-रोने को हो जाता है। हाजरा को अपनी माता को डाहते (तड़पाते) देखता हूँ तो, तुमसे हृदय की बात कहता हूँ, देह जलने लगती है। पर जब अपनी करनी को याद करता हूँ, गहरी पीड़ा होती है कि न चाहते हुए भी मेरे चलते मेरी माँ को कितना कष्ट उठाना पड़ा। किए का फल अब भोग रहा हूँ। नहीं देखते, नरेन के लिए, राखाल के लिए, केशव के लिए, मास्टर और गिरीश के लिए तथा और दूसरे बालों को देखने-बतियाने के लिए तड़पता रहता हूँ। साधु गृहस्थों से मिलने घर-घर दौड़ता रहता हूँ। कैसी व्याकुलता रच दी है माँ ने मन में! कर्म का भोग भोगना ही पड़ता है रे लाटू! अपनी जननी को तकलीफ देकर कैसे रह सकता है कोई सुखी!

सो मैंने ठान लिया कि पहली भीख धनी देगी तभी उपनयन संस्कार के लिए बैठूँगा। सोच, मेरी जननी की कैसी मनोदशा रही होगी! मगर मैं लाचार था रे लाटू! मैंने तो बगीचेवाली माँ को एक दिन धनी के भीतर देखा था और सुधबुध खो बैठा था। बोल भला, माँ की भीख ठुकराकर क्या संस्कार कमाता! द्विजत्व की बात कितनी निरर्थक होती तब!

एक बार तो मेरे हठ के चलते बड़ा अनर्थ होते-होते बचा। मेरे गाँव के लोहार की बेटी थी, धनी। बड़ा निर्मल आधार था उसका। मेरा कीर्तन-गान सुनने के लिए पागल बनी रहती थी। उसके निर्मल भाव को मेरा बालसखा गया विष्णु समझता था। और यह जो बगीचेवाली मेरी माँ है न, उसने लड़काई में ही मेरी आँखें खोल दी थीं, अन्यथा उसकी रूप-राशि को देख-पहचान कैसे पाता। मेरे उपनयन-संस्कार में पहली भीख धनी देगी, उसकी जिद थी। माँ और बड़े भाई इसे कुल-रीति के विपरीत मानकर धनी की भावना का कुछ भी मूल्य देने को तैयार नहीं थे। बाभन बटुक को पहली भीख लोहार की बेटी दे, यह कहाँ संभव था। मगर मेरी तो इस बगीचेवाली माँ ने आँखें खोल दी थीं। जुलाह-मुसलमान और बाभन में तथा बाभन और लोहार में मुझे कुछ भेद ही नहीं दिखता था। हलधारी की बुद्धि बड़ी तेज है। कहता फिरता है— कलिकाल का और क्या प्रमाण चाहिए! रामकृष्ण को अमावस्या और पूर्णिमा में कोई भेद ही नहीं दिखता। अ[illegible] बोल भला! न्यांगटा पलट सकता है उस[illegible] बुद्धि, जब तक माँ न चाहे? न्यांग[illegible] (तोतापुरी) को माँ के बगीचे में दूर दे[illegible] से बुलाया था—महज अपनी लीला पू[illegible] करने के लिए, जैसे मुझे कामारपुकुर [illegible] और तुझे रामचंद्र दत्त के आँगन से अप[illegible] आँगन में खींच लाई थी। सो मैंने ठान लि[illegible] कि पहली भीख धनी देगी तभी उपनय[illegible] संस्कार के लिए बैठूँगा। सोच, मेरी जन[illegible] की कैसी मनोदशा रही होगी! मगर [illegible] लाचार था रे लाटू! मैंने तो बगीचेवाली [illegible] को एक दिन धनी के भीतर देखा था अ[illegible] सुधबुध खो बैठा था। बोल भला, माँ [illegible] भीख ठुकराकर क्या संस्कार कमात[illegible] द्विजत्व की बात कितनी निरर्थक होती त[illegible] मेरा हठ मेरा पागलपन नहीं था। सं[illegible] दूर किया लाहा महाशय (धर्मदास लाह[illegible] की शुभ चिंता और उपस्थित बुद्धि [illegible] पिताजी के बंधु थे धर्मदास लाहा। बड़ा सहारा था उनका मेरे अभ[illegible] परिवार को। संकट की घड़ी में लाहा परिवार ने ही हम लोगों की र[illegible] की। लाहा महाशय की व्यवस्था ने समाधान रचा। माई-भाई उन[illegible] बात अस्वीकार नहीं कर सकते थे। मेरा तो हृदय जुड़ा गया धनी [illegible] भीख ग्रहण कर; जैसे पूरे जीवन के लिए माँ ने पाथेय डाल दिया [illegible] मेरी झोली में। कृतार्थता का वह अद्वितीय आस्वाद था। धनी का भा[illegible] उसकी आस्था, क्या बताऊँ तुम्हें! जब मेरे कंठ से माँ का गुणगान गूँज[illegible] वह दूसरे लोक में पहुँच जाती।

सकल तोमार इच्छा इच्छामयी तारा तुमी
तोमार कर्म तूमी करो माँ, लोके बोले करी आमी।
पंकेबद्ध करो करी पंगुरे लंघाव गिरि,
कारे दाव माँ ब्रह्म पद कारे करो अधोगामी।
आमी यंत्रो तुमी यंत्री आमी घर तुमी घरनी।
आमी रथ तुमी रथी जेमनी चालाव तेमनी चली।

राग पूरा होते-होते ठाकुर महाभाव में लीन हो गए। लाटू [illegible] सहारा देते माँ का नामोच्चार करने लगे।

७-बी, हरिमोहन राय [illegible]
कलकत्ता-७००[illegible]

नवांकुर

कविताएँ

योगेश अय्यर मूर्ति

जन्म : १ मार्च, १९८०।
शिक्षा : बी.ई. (सिविल तृतीय वर्ष)।
प्रकाशन : प्रस्तुत कविताएँ प्रथम बार प्रकाशित।
चित्रकला, संगीत एवं साहित्य में विशेष रुचि। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत एवं शिक्षा में कई पुरस्कार प्राप्त।

उजड़ते मछलीघर

काँच के चार टुकड़ों से
बना यह उसका घर
सावन, पतझड़,
शरत्, वसंत—
सबकुछ यही
दो झाड़ी, चार शंख
चार कोने, चार पत्थर
यही है इस 'संसार' के नगर
उम्मीदों के पहाड़ लिये
जीवन से भरे
जीवन में रंग भरते
समुद्र में नौका से तिरते
इंद्रधनुषी रंग बिखेरते
वे—इस नगर के नागरिक
क्या हिंदू, क्या मुसलिम
मिलकर रहते—विभिन्न रंग
लाल, हरे, नीले, पीले
वे कह रहे हैं—
हे हमारे जीवनदाता
ये काँच के टुकड़े हैं
सँभालो इन्हें
ये फूट न जाएँ।
किंतु प्रश्रयदाता है
कि खोया है
भ्रष्ट माया सागर में
श्री अप्सराओं में
छूट जाए अगर यह घर
फूट जाए यदि ये काँच
बिखर जाए यदि ये 'संसार'
तो, मछली मछली नहीं—
दुर्गंध फैलाती वस्तु मात्र रह जाएगी।

□

आज की विवशता

शांत मोहक यह वसुंधरा
वृक्ष सुमन मंडित यह धरा
उमड़ते कवि-मन की यह अवस्था
क्या तब मैं यह लिख पाता?
कलम-कागज ने मुझे पुकारा
कवि-मन मेरा यह सोचता
किसपर लिखूँ मैं कविता
किस वस्तु को चित्रित करूँ?
अपने शब्दों के द्वारा?
क्या विहग—क्या उसकी चहक
उस ईश की हर रचना है
निर्मल, निश्छल, मोहक
वह नैसर्गिक स्थान,
वह शांत वातावरण
पुकार रहा मुझे,
मेरा अंत:करण
मैं चाहता एक ऐसा स्थान
एक ऐसा प्राण
जो समर्पित हो
पूर्णरूप से ज्ञान को
किंतु मेरे इस कवि-मन की
है एक ऐसी विवशता
बोझ है पढ़ाई-लिखाई का
जो बढ़ता जाता है प्रतिपल
क्या इस संसार में,
है कोई, समझे जो यह व्यथा?

□

१९९, महादेश्वरा टेंट रोड,
काडिरेनाहाल्लि, बानशंकरी II,
बंगलौर-५६००७०

आवश्यक सूचना

प्रिय पाठको! 'नवांकुर' स्तंभ के अंतर्गत केवल पच्चीस वर्ष तक की आयु के लेखकों की ही रचनाएँ—कहानी, लघुकथा, कविता, आलेख, व्यंग्य आदि सभी विधाएँ—प्रकाशित की जाएँगी।

कृपया रचना के साथ अपनी जन्मतिथि का प्रमाणपत्र भी भेजें।

आपकी रचनाओं का स्वागत है।
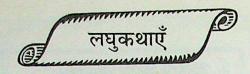
✍ जी. गोपीनाथन

निधि का बरतन

टीले के ऊपरवाले परिवार के मुखिया मामा को निधि मिल गई, यह अफवाह गाँव भर में फैल गई। लेकिन मामला तब उलझ गया जब मुखिया के भानजे कुंजन ने सत्याग्रह शुरू किया। वह टीलेवालों के घर के सामने फाटक की सीढ़ी पर बैठ गया था। लोग इकट्ठे हुए और कुंजन से पूछताछ करने लगे। कुंजन उन्हें समझा रहा था। पहले कभी परिवार में डकैती होने के डर से ताँबे के घड़े में भरकर सोना, चाँदी, जवाहरात वगैरह जमीन के नीचे छिपाकर गाड़ देते थे। इसीको 'निधि' कहते हैं। यह किसी भाग्यशाली को कभी मिल जाता है। मुखिया मामा जब पारिवारिक जमीन पर खेती के लिए जमीन खोद रहे थे, तभी उनको निधि मिली। सबूत के लिए उसने जमीन पर बना गड्ढा भी दिखाया, जहाँ से निधि का बरतन मिला था। यह सब जानकर लोगों को भी यकीन हो गया कि वाकई निधि मिल गई है। सबने सुन रखा था कि जिसके भाग्य में लिखा होता है, उसे इस तरह की निधियाँ पात्रों में मिल जाया करती हैं। यह सब शायद उस पुराने जमाने की याद हो जिस समय बैंक की कोई व्यवस्था नहीं थी और लोग डाकुओं के डर से जमीन खोदकर सोना-चाँदी वगैरह को पात्रों में बंद कर सुरक्षित रखते थे। वैसे कुछ लोग आजकल भी काला धन ऐसे ही कहीं छिपाकर रखते हैं। कुंजन उस निधि में इसलिए हिस्सा चाहता था, क्योंकि उसके अनुसार वह परिवार की संपत्ति है। लोगों ने भी कुंजन का पक्ष लेना शुरू किया। कुंजन के साथ जाकर लोगों ने मुखिया मामा से पूछा तो उन्होंने निधि मिलने के समाचार को सरासर झूठ बताया। उनका कहना था कि 'वह गड्ढा जमीन खोदकर जमीनकंद निकालने का है। जहाँ निधि होती है वहाँ अकसर साँप और किसी निधि संरक्षक भूत की उपस्थिति होती है। लेकिन यहाँ तो ऐसा कुछ नहीं है।' कुंजन ने कहा कि 'यह सब बकवास है। असल बात यह है कि मामा निधि बाँटना नहीं चाहते।' यह सब सुनकर कुछ लोग ऊबकर चले गए और कुछ लोग कहने लगे कि कुंजन शायद पागल हो गया है।

इन सबके बावजूद लोगों को शक तब हुआ जब कुंजन और मामा के बीच कुछ गुप्त साठ-गाँठ हो गई। लोगों को पक्का विश्वास हो गया कि जब कुंजन देर रात तक वहाँ सत्याग्रह की धमकी लेकर बैठा रहा मामा ने कुछ ले-देकर मामला सुलझाया। स्थानीय समाचार यह फैल रहा था कि लोगों के डर से मुखिया और कुंजन ने मिलकर निधि को रातोरात और कहीं पहुँचा दिया है। काफी समय तक इसीको लेकर लोग अटकलें लगा रहे थे। लेकिन मुखिया और कुंजन अपने-अपने घरों में कुछ मरम्मत कराने और बेटियों की शादी का इंतजाम करने लगे, तो लोगों का विश्वास पक्का हो गया। चंदे के चक्कर में स्थानीय राजनीतिक नेता तथा उधार माँगनेवाले दोस्त और रिश्तेदार भी उध चक्कर काटने लगे।

□

पांचालियाँ

बालरामपुरम शहर से होकर जो पक्की सड़क कन्याकुमारी की ओर जाती है उसमें 'कल्लंबलं' नामक जगह से दाईं ओर जो कच्ची सड़क जाती है, उसके आरंभ में ही लंबे पत्थरों से बना एक राहगीरखाना है, जिसे पुराने जमाने में कभी किसी स्थानीय दानी सज्जन ने बनवाया था। उन दिनों कन्याकुमारी की ओर जानेवाले तीर्थयात्री वगैरह वाहन के अभाव में रात को इसमें विश्राम करते थे। इसको 'कल्लंबलं' कहते हैं, जिसका मतलब है—पत्थर का बना मंदिर। लेकिन वह मंदिर है नहीं वह तो सिर्फ राहगीरों के विश्राम का मंडप है। कच्ची सड़क को लोग 'पत्थर का मंदिरवाली सड़क' कहते हैं।

कच्ची सड़क से थोड़ी दूर चलने पर मध्यम वर्ग के लोगों के कई घर मिलेंगे। हथकरघे के बुनकर व्यापारियों ने तो भव्य भवन बनवाए हैं इनमें से एक में रहती थी, पांचाली की परंपरा में आनेवाली वह महिला जिसका नाम था तुलसी। कुछ समय पहले गुजर गई थी। उसके दो पति थे, पाँच नहीं थे। पर पारिवारिक जीवन पांचाली की तरह शांति से बीतता था। कच्ची सड़क जहाँ समाप्त होती है वहाँ के 'बड़े घर' में पांचाली की परंपरावाली औरत है—काफी बुजुर्ग महिला, जिनका नाम है दाक्षायणी। उनके भी दो पति थे। दोनों गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति और अध्यापक।

मणि ने याद किया कि उसके बचपन में गाँव में ऐसे कितने ही

परिवार थे जहाँ पत्नी एक होती थी, लेकिन पति होते थे एक से अधिक भाई। हालाँकि कुछ ही परिवारों में यह प्रथा प्रचलित थी, फिर भी गाँववालों के लिए यह सब सहज था। हो सकता है कि कभी दो से अधिक भाई मिलकर भी एक पत्नी के साथ रहे हों। लेकिन जब इस गाँव में दूर उत्तर के गाँव से मणि की पत्नी बेबी आई, तभी कुछ समस्याएँ पैदा हुईं। बेबी के गाँव में प्रथाएँ और परंपराएँ कुछ भिन्न थीं। वह स्वयं नए युग की नई शिक्षा प्राप्त औरत है। उसको अपने पति के गाँव की प्रथाएँ बहुत कुछ अजीब सी लग रही थीं। उदाहरण के लिए—मणि के चाचा, पिता, माँ के संबंधों को लेकर वह आएदिन व्यंग्य कसती। उसके तर्कों से मणि भी विचलित होता और सोचता कि जमाना कितना बदल गया है! उसे भी आजकल के माहौल में यह पांचाली परंपरा हास्यास्पद लगती; यद्यपि अब तक वह स्वयं इस परंपरा में कोई दोष नहीं देख पाया था। आखिर महाभारत की पांचाली का कौन आदर नहीं करता!

□

बुरी नजर

नारायणन की आँखें बुरी हैं। उसके देखने पर बुरा असर होता है। यह गाँव के सब लोग जानते थे; कई प्रमाण भी थे। एक बार पड़ोसी वासुदेव के नारियल के पेड़ पर भरे नारियल को देखकर नारायणन ने कहा, 'अरे, बहुत नारियल लगे हैं इस बार!' कहते हैं, तभी नारियल एक-एक करके झड़ने लगे। अपने दोस्त कुंजन के बेटे को देखकर नारायणन ने कहा, 'अरे, तुम तो बहुत बड़े हो गए! सेहत कितनी अच्छी बन गई है!' कहते हैं, लड़का उसी दिन से बीमार पड़ गया। काफी झाड़-फूँक करने के बाद बच गया। इन सब घटनाओं के कारण गाँववाले नारायणन से बहुत डरते हैं और कोशिश करते हैं कि उसकी नजर के सामने न पड़ें। कई लड़के तो उसको देखकर या तो कहीं छिप जाते हैं अथवा भाग जाते हैं। खेत में धान या सब्जी खूब उगे या कोई नया घर बन जाय तो लोग बुरी नजर से बचने के लिए बदसूरत पुतले बनाकर खड़ा करते हैं, या पुरानी हाँड़ी पर चूने के निशान बनाकर टाँगते हैं। कुछ लोग नारायणन को पीछे से गाली भी देते हैं; क्योंकि लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से बुरी नजर का असर कुछ कम हो जाता है।

तभी वह महान् घटना घटी। नारायणन का बेटा शेखरन गाय पालने का शौकीन था। मगर गायों को अपने पिताजी की नजर से बचाने के लिए आले में नारियल के पत्ते की टट्टी टाँक रखता था। उसकी चहेती गाय इस बार बछड़ा देने वाली थी। शेखरन का अपने पिताजी को सख्त आदेश था कि उस ओर न जाएँ और गाय को न देखें। लेकिन नारायणन गाय को देखना चाहता था और आखिर टट्टी हटाकर गाय को देख ही लिया। तभी उसके मुँह से निकला, 'अरे, गाय कितनी मोटी हो गई है! दूध भी इस बार खूब निकलेगा।' फिर देखते क्या हैं कि गाय चित पड़ी है। घर के लोग नमक-मिर्च लेकर झाड़-फूँक कर रहे हैं और नारायणन को गालियों से भुना रहे हैं।

लेकिन इस घटना के बाद लोगों ने देखा कि नारायणन की नजर या वाणी में अकस्मात् वह पुराना असर नहीं रह गया। इस बात से नारायणन बड़ा कुंठित रहने लगा और उसे लग रहा था जैसे उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया हो।

□

भैरव का ताड़

ताड़ का वह पेड़ देखने में बड़ा भयानक लगता था। कई कारणों से वह पेड़ गाँव में चर्चा का विषय था। पहली बात यह थी कि उसपर कोई चढ़ता नहीं था। चढ़ना आसान भी नहीं था, क्योंकि पीपल और अन्य कुछ पेड़ भी उससे लगे हुए थे और वे सब पेड़ मिलकर ताड़ को भयावना आकार देते थे। शायद कई पीढ़ियों से वह पेड़ वहाँ खड़ा था। उसे लोग दैवी मानते थे और इसलिए उसे काटने की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। लोगों में यह धारणा फैली हुई थी कि भैरव तथा अन्य भूतात्माएँ उसपर निवास करती हैं। हर शुक्रवार को ताड़ के पेड़ से कोई ज्योति निकलकर कुछ दूर स्थित सर्प देवता के झुरमुट की ओर जाती है, ऐसी किंवदंतियाँ प्रचलित थीं। शंक जैसे बुजुर्ग का कहना है कि किसी भूतात्मा को हाथ में जलता मशाल लिये उसने निकट से देखा था। जो भी हो, परंपरा से लोगों की यह धारणा थी कि ऐसे पेड़ों को नहीं काटना चाहिए। स्थानीय लोगों के लिए वह पेड़ श्रद्धा का विषय था और किसी-किसी दिन वे वहाँ दीप जलाते और पूजा करते थे।

तभी नटराजन नामक कपड़े के एक धनी व्यापारी ने गाँव में आकर जंगलनुमा पूरी जमीन को खरीद लिया। असल में नटराजन पक्का व्यापारी था। उसकी पहली ही नजर कई पेड़ों पर पड़ी। उनमें वह ताड़ का पेड़ भी था। इस समाचार से गाँव में सनसनी फैल गई। कुछ लोगों ने साहस करके शहर में स्थित नटराजन के घर जाकर बताया कि कम-से-कम उस पवित्र ताड़ के पेड़ को नहीं काटें। बल्कि यह भी सुझाव दिया कि उसकी आराधना करें तो उसकी भलाई होगी। लेकिन कुछ खास तरह का सोफा बनाने के लिए नटराजन को उस ताड़ के पेड़ की लकड़ी चाहिए थी। ताड़ की इतनी अच्छी लकड़ी कहीं नहीं मिलेगी, यही उसका विचार था। उसने साफ मना कर दिया। कहते हैं, जब वह ताड़ का पेड़ काटा गया तो लकड़ी एक भयानक आवाज के साथ गिर पड़ी, जैसे कोई चिल्ला रहा हो। लकड़ी से बढ़ई सोफा भी बनाने लगे। पर लोगों को अचंभा तब हुआ जब उसपर बैठने के लिए नटराजन नहीं रहे। लोग एक-दूसरे से पूछते थे, 'क्या सचमुच वह भैरव का ताड़ था? क्या सचमुच पेड़ों पर देवता बसते हैं?'

□

हिंदी विभाग, कालीकट विश्वविद्यालय,
केरल-६७३६३५

पं. मुकुटधर पांडेय

पं. मुकुटधर पांडेय : छायावाद के अग्रदूत

कुमुद शर्मा

निबंधकार पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने दावा किया था कि हिंदी में छायावाद की पहली कविता मुकुटधर पांडेय ने लिखी। स्वयं जयशंकर प्रसाद ने मुकुटधर पांडेय को छायावाद के प्रथम प्रवर्तक कवि की संज्ञा दी थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता के लिए सहज, स्वाभाविक, स्वच्छंद मार्ग खोजने के कारण उन्हें नई धारा का प्रवर्तक कहा। तो ये हैं छायावाद की अंतर्धारा में बहनेवाले मुकुटधर पांडेय, जिन्हें हिंदी कविता की विकास यात्रा में अकसर विस्मृत कर दिया जाता है। दरअसल उन्होंने स्वच्छंदतावाद के विभिन्न आयामों द्वारा खड़ी बोली में सूक्ष्म आनुभूतिक संवेदना के भाव-प्रकाशन का नया मार्ग तलाशा। उन्होंने द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता को भेदा और परंपरागत काव्य रूढ़ियों को चीरा। इस तरह एक पूर्व प्रचलित धारा के विरुद्ध बहकर उन्होंने नई धारा का सृजन किया। आज साहित्य के मूल्यांकन में यह बात सहजता से कही जा सकती है कि छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तन, सृजन और विश्लेषण में पांडेयजी का अवदान ऐतिहासिक महत्त्व का है।

अपने सृजन और मनन में नए युग, नए भाव, नए प्रतिमान के साथ चलनेवाले मुकुटधर पांडेय का जन्म ३० सितंबर, १८९५ को छत्तीसगढ़ के बालपुर गाँव में हुआ था। विपरीत परिस्थितियों के कारण कॉलेज की प्रारंभिक शिक्षा अधूरी छोड़कर पांडेयजी अध्यापन कार्य से जुड़ गए। साहित्य सृजन की प्रेरणा उन्हें अपने अग्रज स्व. लोचनप्रसाद पांडेय से मिली। सन् १९०९ में मात्र चौदह वर्ष की आयु में ही उन्होंने लेख और कविताएँ लिखना प्रारंभ कर दिया था। उनकी प्रथम रचना सन् १९०९ में आगरा के 'स्वदेश बांधव' में छपी। नए भावलोक और नए शिल्प की चमक से दीप्त, छायावाद का पूर्वाभास लिये उनकी कविताएँ 'सरस्वती', 'इंदु' और 'माधुरी' जैसी प्रसिद्ध पत्रिकाओं के मुख्य पृष्ठों में प्रकाशित होकर सम्मान पाने लगीं। द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता और नीरसता से उबरकर उन्होंने कविता का नया स्वरूप गढ़ा। 'पूजा के फूल' और 'विश्व बोध' नाम से उनके दो काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुए।

समय-समय पर आलोचकों द्वारा पांडेयजी को छायावाद का 'अग्रणी कवि' या 'प्रवर्तक कवि' कहा जाना भले ही विवाद का विषय बना हो, लेकिन इससे कौन इनकार कर सकता है कि द्विवेदी युगीन काव्यधारा के विरुद्ध फूटी नई काव्यधारा का नामकरण उन्होंने ही किया। जिस नूतन काव्यधारा को आचार्य शुक्ल ने 'स्वच्छंदतावाद' कहा, मुकुटधर पांडेय ने उसे 'छायावाद' कहा। छायावाद के उपादानों को लेकर 'श्रीशारदा' पत्रिका में सन् १९२० में एक लेखमाला में लिखे उनके लेख कविता के इतिहास का ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। 'छायावाद क्या है' लेख में उन्होंने लिखा, 'हिंदी में यह एक बिलकुल नया शब्द है, अतः पाठक पूछ सकते हैं कि वह क्या है ? अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखनेवाले तो सुनते ही समझ जाएँगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिए आया है। पर सिर्फ हिंदी जाननेवालों की जिज्ञासा इससे और भी बढ़ जाएगी कि यह कौन सा हौआ है।'

पांडेयजी ने संवेदनशील भावचित्रों तथा सशक्त शब्द-विन्यास से उद्भूत काव्यबिंबों को रूपायित कर खड़ीबोली हिंदी कविता को ही समृद्ध नहीं किया बल्कि उनकी सृजन प्रतिभा ने हिंदी गद्य में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'शैलबाला', 'लच्छमा', 'समाज कंटक' और 'मामा' उनके अनूदित उपन्यास हैं। 'परिश्रम' तथा 'छायावाद एवं अन्य निबंध' नाम से उनके दो निबंध संग्रह भी प्रकाशित हुए। 'हृदय दान' उनकी गल्प रचना है। कालिदास से पांडेयजी अत्यंत प्रभावित थे। भारतीयता की रक्षा के लिए वे कालिदास के ग्रंथों की रक्षा को आवश्यक मानते थे। उन्होंने 'मेघदूत' का छत्तीसगढ़ी में अनुवाद भी किया। 'कालिदास तथा मनोविज्ञान', 'कालिदासकालीन भारत का भौगोलिक चित्र', 'रघुवंश महाकाव्य में आदर्श स्थापन' जैसे उनके निबंध कालिदास के प्रति उनकी आस्था का दिग्दर्शन कराते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी की अर्थ संपदा पर भी उन्होंने गहरा चिंतन किया। मिश्रबंधुओं ने उनकी 'कार्तिक माहात्म्य' तथा 'इटालीय युवक' नामक पुस्तकों का भी उल्लेख किया है।

हिंदी की स्वच्छंद काव्यधारा के सहज, स्वाभाविक विकास पथ पर चलनेवाले पांडेयजी ने छायावाद को 'भावराज्य की वस्तु' माना। आध्यात्मिकता और धर्म-भावुकता को इस भावराज्य के दो प्रमुख अवलंब समझा। इसलिए उनके सृजन संसार में युगानुरूपी जीवन-मूल्यों और नई भाव-कांति के साथ-साथ दार्शनिक और सांस्कृतिक भूमि भी समन्वित है।

मुकुटधर पांडेय का काव्य-स्वातंत्र्य

एक ओर कविता अपने जन्म-कुटीर से निकलकर बाहर पैर रखती है, दूसरी ओर उसे नियमों और रीतियों द्वारा चारों ओर से घेरे रखने का यत्न आरंभ हो जाता है।" कविता के लिए एक रीति अथवा नियम आवश्यक अवश्य है; पर यह नहीं कि वह साहित्य में हिमालय-सा अचल बना रहे, उसमें कोई परिवर्तन न किया जा सके और न कोई नवीनता ही लाई जा सके।

छायावाद के मर्म को समझाने के साथ-साथ पांडेयजी ने अपने चिंतन में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न भी उठाया। वे कवि प्रतिभा के स्वतंत्र उठान के पक्षधर हैं। इसलिए मौलिक सृजन का महत्त्व स्वीकार करते हुए उन्होंने स्वतंत्रता को रचनाकर्म की बुनियाद समझा। पांडेयजी के काव्यलोक की विभिन्न भावसरणियाँ हैं—इनमें प्रकृति की विभिन्न छवियाँ हैं। गाँव के प्रकृत सौंदर्य के ताजे टटके बिंब हैं, कालिदास की चेतना का प्रसार है, लौकिक प्रेम की मार्मिक व्यंजना है, आध्यात्मिक प्रेम का गहरा रंग है।

छायावादी काव्य को खड़ीबोली में 'जागृति की शंखध्वनि' कहा गया। जागरण की यह ध्वनि पांडेयजी की कविताओं में भी महत्त्वपूर्ण फलक बनकर आई। उन्होंने भी प्रकृति प्रेम, मानवीय प्रेम और देश प्रेम के सामंजस्य में नैसर्गिक सौंदर्य के साथ वीरता, एकता और जागृति के भावों को महत्त्व दिया। राष्ट्रीय चेतना के प्रचार-प्रसार और जातीय अस्मिता की रक्षा को कवि का उद्देश्य घोषित किया। उन्हें चेताते हुए कहा कि देश और जाति को जगाना उनके हाथ में है। कविता को उच्च गुणों और मानवीय मूल्यों का खजाना बनाते हुए मनुष्य की आंतरिक संवेदना को कुरेदकर मानवीय मूल्यों की लौ जगाना उन्होंने कवि का कर्म समझा।

मौलिक रचनात्मक चिंतन और सृजन करनेवाले, नवीन रचनाकर्म की बुनियाद रखनेवाले मुकुटधर पांडेय संभवतः अपनी रचनाओं के स्वल्प परिमाण की दृष्टि से भले ही प्रमुख छायावादी कवियों की पहली कतार में शामिल न किए जाते हों, लेकिन छायावाद के उद्भव और विकास में उनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। बीसवीं सदी में उभरी रोमांटिक अथवा स्वच्छंद काव्यधारा को विकसित करने में इन्हीं जैसे कवियों का योगदान है। सच कहा जाए तो इन्हींसे छायावाद का विस्तार निर्मित हुआ। सुमित्रानंदन पंत ने ठीक ही लिखा है, 'श्री मुकुटधर पांडेय की रचनाओं में छायावाद की सूक्ष्म भाव व्यंजना तथा रंगीन कल्पना धीरे-धीरे प्रकट होने लगी थी, जो आगे चलकर प्रसादजी के युग में पुष्पित, पल्लवित होकर एक नूतन चमत्कार एवं चेतना का संस्कार धारण कर हिंदी काव्य के प्रांगण में नवीन युग के अरुणोदय की तरह मूर्तिमान् हो उठी।'

□

एफ-९ जी, डी.डी.ए. फ्लैट्स, मुनीरका, नई दिल्ली

जन्म : १२ दिसंबर, १९४४, बर्तलाई (हटा), दमोह (म.प्र.)।
शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.।
प्रकाशन : बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन (समीक्षा), तीन उपन्यास, दो ललित निबंध, एक कहानी संग्रह। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में नवगीत, कविता, ललित निबंध, कहानी, समीक्षात्मक निबंधों का सतत प्रकाशन। आकाशवाणी से अनेक नाटकों एवं संगीत रूपकों का प्रसारण।
पुरस्कार : 'दाखिल-खारिज' उपन्यास को म.प्र. साहित्य सम्मेलन का 'वागीश्वरी पुरस्कार'।

॥ जा धरती काहू की न भई ॥

✍ श्यामसुंदर दुबे

वह घबराया सा था। साँस फूल रही थी। उसके ऊबड़-खाबड़ चेहरे में अँधेरा भरा हुआ था। वह अपने दरवाजे के पास खड़ा था। मुझे देखते ही पाँव छूने को झुक गया। न बोला, न चाला, सीधे हाथ पकड़कर अंदर ले गया—एकदम अँधेरे कोने में। आजू-बाजू से अंगड़-खंगड़ बगरा हुआ था। चौखट के पास अनमना सा झीमता हुआ बच्चा बैठा था। उसकी आँखों के कोयों में इतना कीचल छपा हुआ था कि पपोटे ही नहीं खुल रहे थे। नाक ओठों तक बह आई थी। कभी वह उसे जीभ से चाट लेता था और कभी ऊपर सुड़क लेता था; कभी झटके से नीचे छोड़ता तो पहले सफेद-सफेद सा फुग्गा बनता, फिर फूटकर बहने लगता। लड़का इस क्रिया में इतना लवलीन था कि वह एकदम भोंदू दिखता हुआ भी कुछ-कुछ आसपास से असंलग्न निजानंद में डूबा था। उसकी कमर में एक काला डोरा लिपटा था और गले में एक तावीज लटक रहा था। मैंने अँधेरे को चीरने की कोशिश की, जबकि अँधेरा मेरे आसपास और शिद्दत से लिपटता जा रहा था। सूरज थोड़ा सा ऊपर चढ़ आया था। मुझे इस समय अपने स्कूल में घंटा बजाना चाहिए था; किंतु बट्टू ने मुझे बिलमा लिया। उसका घर मेरे स्कूल के रास्ते में ही पड़ता था और अकसर वह मुझे गाहे-बगाहे अपनी दुःख-कथना सुनाने को रोक लेता था। खपरैल से रोशनी रिसने लगी थी और अब मैं आँगन तक पसरे परिवेश को टटोलने लगा था। बट्टू की औरत सत्ती उपले पाथ रही थी। पहले वह गोबर के लोंदे बनाती, फिर उन लोंदों को दीवार पर चिपकाकर जोर से दुहत्थड़ मारती। 'थपाक' की आवाज आती और उपला दीवार पर चिपक जाता।
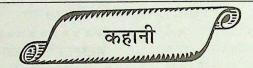
बट्टू ने एक खाली बोरा बिछा दिया। मैं बैठना नहीं चाहता था, किंतु अनमनेपन से उसपर बैठ गया। सोचने लगा कि अब बट्टू मुझसे कोई आवेदन-पत्र लिखाएगा। अकसर वह मुझे तभी बैठाता है, जब उसे कुछ लिखाना पड़ता है। मैंने उसके चेहरे की ओर गौर से देखा तो उसकी आँखों में ललाई झलक रही थी। ऐसा लगा जैसे उसे महीनों से नींद नहीं आई हो।

मैंने सहजतापूर्वक पूछा, ''बाल-बच्चों को छोड़कर कहीं ऐसे भागा जाता है! बेचारों की कितनी दुर्गत हो गई है! एक महीना से ऊपर हो गया है। कहीं तीरथ-पिराग करने निकल गए थे?''

''पंडिज्जी, जोर से नहीं, कोऊ सुन लैहें! दीवारों के भी कान होत हैं। कुछ मत कहिए, अबेरा आन पड़ी थी। ऐसी अबेरा भगवान् बैरी को भी न दे।'' उसने धीरे से कहा।

मैं बीच-बीच में 'हूँ-हाँ' करता जा रहा था और वह अपनी कहानी बिना रुके आगे बढ़ाता रहा।

''भादों की अँधियारी रात थी। बादलों से आकाश पटा पड़ा था। तुम्हारी भौजाई ढिबरी बुझाकर सो गई थी। मुझे नींद नहीं आ रही थी। काला-काला डामर-सा चारों ओर लढ़का पड़ा था। आधी रात का सनाका मेढकों की टर्र-टर्र से टूट रहा था। तभी दरवाजे पर कुछ खुसुर-फुसुर सी हुई। मैंने सोचा, होंगे कोई राहगीर। यह भी लगा कि चोर-उचक्के भी हो सकते हैं। ऐसे में उठना ठीक नहीं। तभी किवाड़ पर किसीने जोर से लात मारी और उधर से ही गर्जना सी हुई, 'बट्टू, अगर अपनी खैर चाहते हो तो फौरन बाहर आ जाओ।'

''आवाज अनपहचानी थी। सुनकर मैं सहम गया। पड़े-पड़े ही भगवान् का नाम लिया। तभी दोबारा आवाज आई, 'निकलता है स्साले कि नहीं! लुगाई से चिपटा पड़ा है हरामजादा!'

''मुन्ने की महतारी ने करवट बदली। मुन्ना कुनमुनाया। मैंने सोचा, मैं नहीं निकला तो अनर्थ हो जाएगा। सो मन को धीरज बँधाया। हिम्मत जुटाकर खटिया पर से उठा। दबे पाँव

दरवाजे तक आया। कान चौकन्ने तो थे ही। बाहर की आवाजों से अंदाज लग रहा था कि चार-पाँच आदमी हैं। सोचा, डकैत होंगे। मालिक की बाखर को चलने के लिए कहेंगे। मैं मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था कि हे भगवान्, इस विपत्ति से बचाओ मेरे भोलानाथ! हाथ काँप रहे थे, फिर भी दरवाजा खोला। टॉर्च की रोशनी मेरे चेहरे पर पड़ी।

''आनन-फानन में उन्होंने मेरा पूरा सिर एक धोती से लपेट दिया, रस्सी से पीछे की ओर दोनों हाथ बाँध दिए। मैं बहुत गिड़गिड़ाया, 'हुजूर, मैं गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मुझे छोड़ दीजिए।' मेरा इतना कहना था कि एक आदमी ने पीछे से कसकर धौल जमाई और बोला, 'बनता है स्साला! ले चलो इसे!' मैंने सोचा, जरूर धोखा हुआ है। मैं अनुमान लगा रहा था कि एक आदमी मेरे आगे है और तीन आदमी मेरे पीछे हैं। मैं बीच में हूँ।

''गाँव की सीमा पार करते ही घुटनों तक पाँव खचना में डूबने लगे। काबर मिट्टी इतनी जीवटवाली होती है कि पाँव से छूटती ही नहीं। पाँव मिट्टी के भार से भारी-भारी हो रहे थे। आगेवाला आदमी तेजी से कदम बढ़ा रहा था। पीछेवाले मुझे ठेलते से बढ़ रहे थे। ज्वार के खेत आ चुके थे। इस साल इतनी अच्छी फसल थी कि ज्वार के पेड़ पुरुषा-पुरुषा बड़े हो गए थे। ज्वार के धारदार पत्ते मेरे शरीर से रगड़ते तो फुरहरी सी जाग जाती थी।

''मेरी मुश्कें खोली गईं। वे लोग एक जगह रुक गए थे। सिर पर बाँधा गया कपड़ा मैंने अपने हाथ से हटाया, आँखें मिचमिचाईं। चारों ओर घुप्प अँधेरा था। एक आदमी ने बीड़ी सुलगाने के लिए माचिस जलाई। तीली के उजाले में मैंने साफ तौर पर देखा कि चारों पचहत्था जवान हैं, डीलडौल से तगड़े। उसने पाँच बीड़ियाँ सुलगाईं—चार अपने साथियों के लिए और एक मेरे लिए। बीड़ी पीते ही मेरे शरीर में कुछ गरमी आई।

''जिसने बीड़ी सुलगाई थी उसने ढेर सा धुआँ उगला और एक तरफ थूककर बोला,
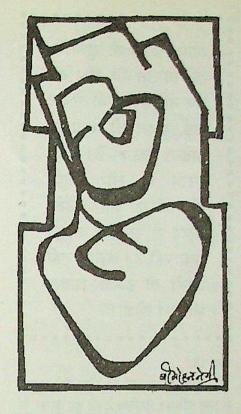
'बट्टू, हम लोग चोर-डाकू नहीं हैं, भैया सा'ब के आदमी हैं। तुम्हें भैया सा'ब ने याद किया है।' भैया सा'ब का नाम तो पंडिज्जी, तुमने सुना ही है। बड़ा करकट आदमी है। बीड़ी पीने के बाद हम फिर चल पड़े।

''पौ फटते ही हम लोग कुम्हारी के ग्वेंड़े में थे। इसी गाँव के हैं भैया सा'ब! भैया सा'ब के नाम से असपेर काँपती है। दिन-दहाड़े आदमी को कटवाकर फेंकवा देते हैं, पता नहीं चलता। थानेदार से लेकर कप्तान तक पैठ है। सूरज निकलते-निकलते हम भैया सा'ब की बैठक में पहुँच गए। उस समय भैया सा'ब पूजाघर में बैठे थे। एक आदमी को छोड़कर शेष तीनों बैठक के बाहर चले गए थे। मैं बीच-बीच में थोड़ा झपक जाता था। फर्श पर एक कोने में उकड़ूँ बैठा था। कमर में सुई-सी चुभ रही थी। सामने दीवार पर शेर का मुँह टँगा था। लगा जैसे गुर्राकर मेरे ऊपर झपटने वाला है। कुछ आहट सी हुई। खड़ाऊँ की 'चट-पट' सुनाई दी। पासवाला आदमी खड़ा हो गया। मैं भी हाथ जोड़कर निहुर सा गया। परदा हटा और सफेद धोती-कुरता पहने, माथे पर त्रिपुंड्र लगाए भैया सा'ब अंदर आए। आकर एक कुरसी पर बैठ गए। साथवाले आदमी से बाहर जाने को कहा। अब मैं और भैया सा'ब थे।

''मैंने भैया सा'ब के पाँव पकड़ लिये, 'हुजूर ने बुलौआ किसलिए किया है?'

'' 'तुम बट्टू हो?' भैया सा'ब ने छोटी-छोटी किंतु झबरैली मूँछों पर हाथ फेरते हुए पूछा।

'' 'जी हुजूर।' मैंने हाथ जोड़ लिये।

'' 'कादीपुर में रहते हो?' उनकी आँखों में लाल डोरे से खिंचने लगे।

''मैंने हामी भर दी। अगला प्रश्न था, 'क्या करते हो?'

'' 'हलवाही, हुजूर!' मैं भीतर-ही-भीतर काँप गया। इतने सारे प्रश्न ये मुझसे क्यों पूछ रहे हैं? हे भगवान्! मैं कहाँ फँस गया? मैं सोंठ-सा सिकुड़ गया। फिर वे ही बोलने लगे, 'कुंदन लंबरदार के यहाँ हलवाहे हो। कुंदन की जमीन तुम्हारे नाम पर लिखी है। तुम उसपर अपना कब्जा जमाना चाहते हो। कल तुम्हें कचहरी चलकर उनकी पूरी जमीन वापस करनी है। इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है। समझे!' वे शांत हो गए।

'' 'मेरे नाम पर कितनी जमीन है, मुझे कुछ पता नहीं। जमीन संबंधी कागजात भी मेरे पास नहीं हैं। यदि मेरे नाम पर जमीन है तो आप मेरा फैसला कर दीजिए, जिससे मेरे बाल-बच्चे भी पल-पुस सकें।' मैंने साहस बटोरकर भैया सा'ब से निवेदन किया।

'' 'नहीं, फैसला-वैसला कुछ नहीं। तुम्हें कल कचहरी चलना है।'

''मैं गिड़गिड़ाया, 'मैं जमीन नहीं लिखूँगा। मैं जमीन नहीं लिखूँगा।'

''वे गरजे, 'खंभन सिंह, इसे ले जाओ। यह सलूक चाहता है।'

''फिर कुछ मत पूछिए, पंडिज्जी। एक खंभे से मेरे हाथ बाँध दिए गए। पीठ पर कोड़े पड़ने लगे—सटाक्-सटाक्! देखिए।'' उसने बंडी ऊपर चढ़ाई। पीठ पर अभी भी नीले निशान

थे। ''बहुत रोया, पंडिज्जी। लेकिन कौन सुनता है! बेहोश हो गया। जब बेहोशी टूटी तब मैं एक अँधेरी कोठरी में पड़ा था। पीठ में आग-सी लग गई थी। भूख के मारे तमारा आ रहा था। आँखों के सामने लहरीला काला चक्र-सा घूमता, फिर लाल-लाल तिलगियाँ-सी उचटतीं। फिर सिर चटखा और मैं झीम सा गया। शाम को दो रोटियाँ और पानी मिला। रात भर घर की याद आती रही। पड़ा-पड़ा रोता रहा। मैंने निश्चय कर लिया—चाहे मार डालें, लेकिन मैं जमीन नहीं लिखूँगा। मुझे राजी करने की हरचंद कोशिश की जा रही थी। महीना भर नरक भोगा, पंडिज्जी! फिर एक दिन भैया सा'ब आए। बोले, 'तुम्हारी घरवाली ने पुलिस में रपट लिखा दी है। तुम्हें छोड़ा जा रहा है। इस घटना का किसीको कानोकान पता न चले। अगर थोड़ा सा भी जिक्र हुआ तो तुम्हारा नाम-निशान नहीं बचेगा। जाओ, जमीन तुम्हें वापस करनी पड़ेगी।' पहले तो मैंने बिचारा कि घर लौटूँ ही नहीं, साधु बनकर जीवन काट दूँ; फिर माया ने घेर लिया, पंडिज्जी। सो चला आया। मेरी हाथ जोड़कर विनती है, आप किसीको बताना नहीं।''

□

देश स्वतंत्र हुआ। मालगुजारी समाप्त हुई। अंग्रेजों के जमाने में मालगुजारों ने अमानुषिक ढंग से खूब जमीनें जोड़ ली थीं। किसीकी जमीन रेहन रखकर तो किसीकी लगान न चुकाने पर अपने अधिकार में कर ली थी। अनेक तरह की हेरा-फेरी से इनके पास सैकड़ों एकड़ का रकबा हो गया था। इस बीच अनेक किसान मजदूर बन गए थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भूमि सीमाबंदी कानून ने जोर पकड़ा। भूतपूर्व मालगुजार रंगलाल का माथा ठनका। वे और उनका एकमात्र लड़का ही उनका परिवार था। छोटा सा परिवार और बेशुमार जमीन। कैसे बच पाएगी यह जमीन? सीलिंग एक्ट से वे परेशान थे। पटवारी से लेकर तहसीलदार तक से सलाह लेने घूमते रहे। किसीने कोई उपाय नहीं सुझाया। गाँव भर में सीलिंग एक्ट की चर्चा थी।

> **आपने ठीक ही सुना है। हमें तो रात नींद और दिन चैन नहीं है। अपनी तो कट गई, कुंदन की चिंता है। अकेला लड़का है। गाँव-बस्ती के लोग नोच-नोचकर खा जाएँगे उसे। ऊपर से सरकार कानून बना रही है। जमीन नहीं रहेगी तो इज्जत-आबरू भी नहीं रहेगी।**

पुत्तन पंडित पूनौं का सीधा लेने बकचा में पत्रा बाँधकर गुटनिया टेकते हुए बाखर के करीब से गुजरे तो रंगलाल ने पुत्तन को बैठा लिया, ''पाय लागी, महाराज!''

''असीस राजन्! आज कैसे फुरसत से बैठे हैं? बोहनी शुरू हो गई?'' पुत्तन पंडित ने बैठते हुए कहा।

''आज ही बखरनी समाप्त हुई है। नटवारे खेत में दुसेंल्ली चल रही है। बोहनी बस शुरू होने ही वाली है। कुंदन बोहनी की तैयारी में जुटे हैं। मेरा मन कुछ दिनों से उचाट-उचाट हो रहा है। गिरटा-गौतम का चक्कर लग रहा है।'' रंगलाल ने तनिक चिंतित होते हुए कहा।

पुत्तन पंडित ने पत्रा खोला, ''राजन्, साढ़े सातिया चल रहा है। मन चक्रित रहेगा। पाँव नहीं थमेगा। जो सोचेगा, पूरा नहीं पड़ेगा। महाहानि! महामृत्युंजय का जाप सवा लाख हो तो ग्रह कटेगा।''

पुत्तन पंडित ने पत्रा लपेटा। उसे बकचा में बाँधा। गुटनिया की मूठ पकड़ी और उठने-उठने को हुए। रंगलाल ने हाथ पकड़ लिया।

''ग्रह तो पूरा जमदूत है। यह दूसरा साढ़े सातिया है। पता नहीं, बच पाता हूँ कि नहीं।''

उन्होंने भीतर ताककर आवाज लगाई, ''बट्टू, बाहर तक तो आ।''

बट्टू दही बिलो रहा था। पूरा घर उसीने सँभाल रखा है। बट्टू और उसकी विधवा माँ फूलन ही पूरी बखरी की देखभाल करती है। भोजन-छाजन से लेकर धरा-सेंती तक। बट्टू आवाज सुनकर बाहर आया।

''कक्का, कैसे बुलाया?''

''जा, भीतर से पान-सुपाड़ी और गंगाजली ले आ।''

बट्टू दौड़कर सामग्री ले आया। रंगलाल ने जेब में से सवा रुपया निकाला। पान-सुपाड़ी, सवा रुपया और गंगाजली रंगलाल ने अपनी हथेलियों में समा लिये।

''पढ़िए पुत्तनजी, संकल्प।''

पुत्तन की आँखों में चमक आ गई। वे हुलफुलाते हुए बोले, ''राजन्, कहो विष्णु!... हरि ओम् विष्णु।''

रंगलाल ने झुककर पुत्तन के चरण छुए।

पुत्तन ने दायाँ हाथ रंगलाल के सिर पर रखा।

''जहाँ धर्म-कर्म है वहाँ लक्ष्मी का निवास है, राजन्! भगवान् सब अच्छा करेगा।''

वातावरण कुछ हलका हुआ तो पुत्तन ने विषय बदला।

''राजन्, शंका है, निवारण चाहता हूँ।''

रंगलाल ने उत्सुकता से पूछा, ''महाराजजी! आप और शंका?''

''ऐसा मत सोचें, राजन्! पशोपेश में हूँ। लोग दबे-छिपे कहते हैं कि सरकार ने कानून बनाया है। मालगुजारों की जमीन छीनी जाएगी और गरीबों में बाँटी जाएगी। क्या जमाना आ गया है! पराए धन को चोर रोए।''

''महाराज, आपने ठीक ही सुना है। हमें तो रात नींद और दिन चैन नहीं है। अपनी तो कट गई, कुंदन की चिंता है। अकेला लड़का है। गाँव-बस्ती के लोग नोच-नोचकर खा जाएँगे उसे। ऊपर से सरकार कानून बना रही है। जमीन नहीं रहेगी तो इज्जत-आबरू भी नहीं रहेगी।''

''नहीं, राजन्! कैसी बातें कर रहे हैं!

होइहैं वही जो राम रचि राखा; जमीन तुम्हारे पास ही रहेगी।''

रंगलाल ने पुत्तन महाराज के पाँव पकड़ लिये, ''बस, आपका आशीर्वाद चाहिए। लेकिन महाराज, यदि कानून लागू हो गया तो कैसे बचा पाऊँगा मैं इतनी जमीन? मेरा एक लड़का और होता तो मैं सरकार को देख लेता, उसके कानून को देख लेता।''

पुत्तन ने तनिक सोचा, फिर बोले, ''बट्टू तो तुम्हारे लड़के जैसा ही है। बाखर में पला-बढ़ा है, ईमानदार है। इसीके नाम से क्यों नहीं लिख देते बची हुई जमीन? अरे राजन्! घी गिरा और थाली में।'' कहते-कहते पंडित पुत्तन उठ खड़े हुए। बकचा बगल में दबाया, गुटनिया की टेक ली और चल पड़े।

रंगलाल बाखर में अंदर गए। उनके मन में बार-बार पुत्तन की बात उठ रही थी। 'बट्टू के नाम शेष जमीन क्यों नहीं लिख देते?' भीतर जैसे गले में कौर अड़ गया था। न गुटका जा रहा था और न उगला।

''साँसत में जी है। क्या करें, क्या न करें?'' वे बुदबुदाए।

तभी फूलन गंगाजली लिये बाहर से अंदर आई। फूलन पर दृष्टि पड़ते ही रंगलाल अपने अतीत में खो गए।

□

आवागच्च के कारण दरवाजे पर एक अजीब सा दृश्य था। लंबे-लंबे घूँघट, अठगजी साड़ियों में लिपटी स्त्रियाँ अंदर-बाहर हो रही थीं। मुरासा बाँधे, घुटन्ना धोती पहने पुरुष बाखर के बाहर चबूतरे पर विचार-विमर्श में डूबे थे। धूप अटारी की लाल ईंटों को और सुर्ख करती हुई कनेर के फूलों पर बिखर रही थी। कोने में बैलगाड़ी खड़ी थी। खरेलुओं में ठेकी फँसी थी। ऊपर से चटाई तान दी गई थी। बैलगाड़ी में ऐसा इंतजाम कर दिया गया था कि बैठनेवाले को धूप न लगे। जुआँ पर गेरू पोता गया था। रंग-बिरंगे जोत जुआँ के दोनों ओर लटक रहे थे। एक तरफ मिर्जापुरी बैल बँधे सानी खा रहे थे। मुकुट-सा बनाते लंबे सींग, ऊँचा-पूरा डीलडौल, गले में घुँघरुओं और कौड़ियों की माला। सजे-बजे बैल सुंदर लग रहे थे। उनकी सफेद रोमावली पर जैसे ही कोई मक्खी बैठती, वे अपनी गरदन टेढ़ी करते और घुँघरू बज उठते। धामन गौंड उसार-पात में लगा था। उसने बैलगाड़ी की पीठ पर हाथ फेरा तो उसके एक कान में पहनी सोने की बाली झकर-मकर कर उठी।

रंगलाल अथाई पर गमगीन से बैठे थे। काली टोपी सिर पर से उतारकर उन्होंने घुटने पर रख ली। नंगे सिर पर हाथ फेरते हुए वे गहरी सोच में डूबे दिख रहे थे। लगता था, रात भर के जागे हुए हैं। उन्हें जम्हाई आई। उनके हाथ की चुटकी अनायास बजी और अनायास ही मुँह से 'हे राम' निकल गया। तीन-चार बूढ़े और बैठे थे। सुबह का वक्त था, इसलिए कउड़े की आग परच गई थी। लकड़ी को परची आग पर धूल हटाने के लिए हिलाते-डुलाते बंदी बड़ेदा ने चुप्पी तोड़ी, 'भीतर से खबर आई है, बहूरानी की तकलीफ बढ़ती जा रही है। फतेहपुर से आई नर्स बाई का भी बस नहीं चल पा रहा है।'

रंगलाल ने धीरे से कहा, 'मेरा बोलना ठीक नहीं, आप सब बुजुर्ग हैं। मेरी राय में तो दमोह ले चलना ज्यादा अच्छा है। अस्पताल में देखरेख भी अच्छी हो जाएगी। धामन से मैंने बैलगाड़ी तैयार रखने को कह दिया। अभी से चलेंगे तो चार घंटे लग ही जाएँगे। फिर जैसा बड़ेदा कहें।'

बड़ेदा ने रंगलाल की बात गौर से सुनी। बोले, 'आप ठीक ही कह रहे हैं। जान है तो जहान है। दमोह ले चलना ही ठीक है।'

सभी ने इस बात पर सहमति प्रकट की।

तभी भीतर से फूलन आई, 'हुजूर, पीर कम नहीं हो रही है। भुमिया को बुला दें। कुछ पता तो चले, कहीं आसमानी हवा परेशान तो नहीं कर रही है।'

भुमिया कादीपुर क्या, सारे इलाके का भुमिया है। मंत्र जानता है। भूत-परेत उसके वश में हैं। किसीको ज्वर आया, सिरदर्द हुआ—भुमिया ने दीया जलाया, गेहूँ फेंके और आसमानी फेरी बतला दी। नारियल फूटे, मुरगा चढ़ा और रोग ठीक हुआ। बड़ी मान्यता है भुमिया की।

रंगलाल ने धामन को बुलाया, 'बेटा, जल्दी भुमिया को ले आ।'

धामन लैयन-पैयन दौड़ा। भुमिया बीच रास्ते में मिल गया।

'चल भइया, लंबरदार ने बुलाया है।' धामन ने हाँफते हुए कहा।

भुमिया बोला, 'भैया, साँची कहूँ, आज रात सपने में ही सब पता चल गया है। बहूरानी कष्ट में हैं।'

धामन का मुँह खुल गया। उसने भुमिया की तरफ ऐसे देखा जैसे वह बहुत बड़ा सिद्ध हो।

बाखर के भीतर दीया जल रहा है। भुमिया दीया की ओर टकटकी लगाए देख रहा है। बीच-बीच में हँकारी भरता है, मंत्र उचारता है—'जै काली कलकत्तेवाली, मेरा बचन परे न खाली।' गेहूँ फेंकता है। फिर गिनता है, 'ऊने के पूरे। पूरे! मसान की फेरी है। कचिया मसान!' वह मन-ही-मन बड़बड़ाता है। 'छोड़ता है, ससुर, कि नहीं? तेरे बाप-दादों को खा जाऊँगा। मेरा नाम भुमिया बसोर है। पारछे के प्रेत मेरे नाम से काँपते हैं। चल, मुरगा लेगा! बस एक घड़ी में असर होना चाहिए।' दीया बुझाया। उठा। फूलन से भुमिया बोला, 'मसान की फेरी थी। सब ठीक हो जाएगा। मालिक से मुरगा की माँग है।' स्त्रियों के झुंड में खलबली मच गई।

'ऐ री, मैं तो पहले ही कै रई ती, ऊपर की फेरी है।'

'का बताएँ, गुनिया दद्दा गाँव में हैं तो सबकी रच्छा है।'

'भभूती ले आओ और हाँ, ताबीज भी।'

'आ गओ, ताबीज गले में बाँध दे।'

'भभूती खिला दे।'

'अरे बहूरानी, मुँह खोल दो।'

'का बताऊँ, पैलऊँ पैल तो तकलीफ होतई

है। मोय तो दो दिन तक पीर रही। सभी घबड़ा गए। ऐसई ऊपर की फेरी ती।'

बहूरानी ने आँखें खोलीं। पीड़ा से उनका चेहरा जर्द पड़ गया था। बीच-बीच में वे कराह उठती थीं।

'बऊ री बड़ी तकलीफ है। अब नहीं बचूँगी।'

'कैसी बात बोल रही हो, बहूरानी! ऐसी पीर तो सबई को होत है।'

बहूरानी ने भभूती जीभ पर रखी और एकदम बेहोश सी हो गईं। माथे पर पसीना झलका। आँखों के नीचे के गड्ढे और काले हो गए। आँगन में चूल्हा धुँधुआ रहा था। हड़िया में देशी ओषधियाँ खदबदा रही थीं।

भुमिया बाहर आया तो रंगलाल ने पूछा, 'दाऊ, कैसा क्या है?'

'हुजूर, सब ठीक है। मसान था। बड़ी मशक्कत से छूटा है।'

भीतर हल्ला-गुल्ला बढ़ गया। नाईन दरवाजे पर आई। थाली बजाते हुए बोली, 'हुजूर, बधाई हो! रामजी जनमे हैं।'

ढोलक पर थाप पड़ी। सोहर गूँजने लगे, 'सीता के वन में लाल हुए, अब लाल कहैया कोई नहीं।'

□

कुंदन यही एक महीने का रहा होगा कि बहूरानी चल बसीं। बहूरानी की पूर्ण सुहागिन काया को चिता को सौंपते हुए रंगलाल रो उठे थे। वे पागलों जैसे चिल्ला रहे थे। श्मशान दहल उठा था उस रुदन से। काली-काली पींडवाले कैथ के वृक्षों से चिता का धुआँ उलझ-पुलझ रहा था। लकड़ी ने आग पकड़ी और बहूरानी की कुंदन काया जलकर छार हो गई। रंगलाल के भीतर सुलगती चिता बुझ नहीं पा रही थी, सुलग-सुलग उठती थी। बाखर में एक माह का बच्चा और पैंतालीस की अधेड़ उम्रवाले रंगलाल। कौन है, जो उनकी धुँधुआती जिंदगी को छार होने से बचाए? धामन गौंड और फूलन ही बाखर की देखरेख करते थे। फूलन धामन गौंड की नव ब्याहता थी। उसने देखा कि
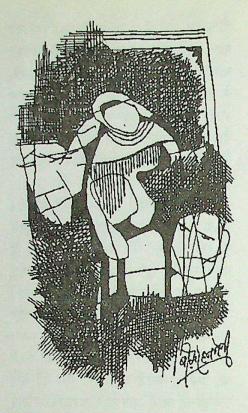
मालिक रंगलाल का रंग उड़ रहा है। वे सूखते जा रहे हैं। उनका विषाद उनके भीतर जम गया है। फूलन हर क्षण अपने मालिक का ध्यान रखने लगी। फूलन जवानी की उजास से नहाई हुई, गठीले, शोख बदनवाली, चंचल हिरणी-सी एकदम निसर्ग नारी सी थी। रंगलाल का एकांत फूलन की उपस्थिति से भरता गया। कुंदन की देखरेख, उसे खिलाना-पिलाना, मनाना, सुलाना सब फूलन के जिम्मे था। रंगलाल बाखर में घुसते तो बहूरानी की याद से घायल हो छटपटाने लगते थे। फूलन ही उन्हें इन कठिन क्षणों में धैर्य बँधाती थी। रंगलाल फूलन की ओर देखते और देखते ही रह जाते। फूलन अपनी आँखें झुका लेती।

रंगलाल कहते, 'फूलन, तू न होती तो ये घुन मुझे कब का खा चुका होता।'

वे रोने लगते तो फूलन उनके आँसू पोंछ देती। बहूरानी की पूर्ति फूलन अपने शरीर से करने लगी। धामन जिस दिन इस प्रेम-रहस्य से परिचित हुआ उस दिन से ही आगबबूला हो उठा। उसने पहले फूलन को पीटा, बाखर से बाहर निकाला; फिर टाँगी लेकर रात के अँधेरे में निकल पड़ा, 'घुटकी का खून पी जाऊँगा। मेरी इज्जत से खेलता है। बड़ा आदमी अपने घर का होगा। मैं हलवाहा हूँ। मेहनत की रोटी खाता हूँ, लुगाई बेचकर नहीं।' धामन का स्वर बाखर से टकरा रहा था।

रंगलाल ने किवाड़ों में लंगर दे दिया। रात भर न सो सके। मुँहअँधेरे एक आदमी भैया सा'ब के पास दौड़ाया। भैया सा'ब ने चिट्ठी में लिखा था—'दो-तीन दिन में सब ठीक हो जाएगा।' और तीसरे दिन सब ठीक हो गया। धामन गौंड का पता नहीं था, कहाँ चला गया। कोई कहता, 'पागल होकर नदी में कूद गया।' कोई कहता, 'साधु बनकर तीर्थयात्रा पर निकल गया है।' इस घटना के नौ महीना बीतते-बीतते फूलन भी माँ बन गई। फूलन के लड़के का नाम रखा गया—बट्टू।

□

रंगलाल ने गंगाजली लिये फूलन को देखा तो उन्हें लगा कि समय ने उनके चेहरे पर ही अपने चरणचिह्न नहीं छोड़े हैं, फूलन के चेहरे पर भी झुर्रियाँ उतर आई हैं। पुत्तन महाराज की बात उनके भीतर फिर गूँजी, 'बट्टू के नाम क्यों नहीं कर देते अपनी शेष जमीन?' उन्होंने दूसरे दिन ही बट्टू के नाम तीस एकड़ जमीन का बेचनामा कर दिया। सीलिंग एक्ट ने पटवारी से लेकर ऊँचे ओहदेदारों के घर भर दिए। जमींदारों ने जमीन बचाने के लिए दोनों हाथों से रुपया उलीचा। रंगलाल की जमीन सीलिंग में नहीं निकल पाई। मरते दम तक उन्हें यह संतोष रहा कि उनकी जमीन बच गई। कुंदन ने घर-गृहस्थी का भार सँभाल लिया था। रंगलाल निश्चिंत होकर मरे। कुंदन से वे कह गए थे कि फूलन को कष्ट न हो। और बट्टू को अपने छोटे भाई के समान मानता रहे। उसके नाम पर लिखी तीस एकड़ जमीन को वह कभी वापस न कराए।

कुंदन ने पिता की मृत्यु के दो साल तक बट्टू को छोटा भाई ही माना। दूसरा साल बीतते कुंदन को आभास होने लगा कि बट्टू जमीन पर कब्जा चाहता है। उसे सुनने को मिला कि

बट्टू ने कलक्टर को दरख्वास्त दी है कि उसकी जमीन पर कुंदन का गैर कानूनी दखल है। बट्टू शहर के गुंडों से मेलजोल बढ़ा रहा है। बट्टू की घरवाली उसे जमीन बेचने को कह रही है। कुंदन पर इन सभी बातों का असर हुआ। बट्टू के प्रति उसके मन में क्रूरतापूर्ण घृणा पनपने लगी। एक दिन कुंदन ने बट्टू का मन टटोला। लेकिन बट्टू ने जमीन वापस करने से साफ इनकार कर दिया। फिर तो बट्टू का जीना हराम हो गया। गाहे-बगाहे कुंदन उसे भयभीत करता रहता था। इतने पर भी बट्टू के रुख में परिवर्तन नहीं आया। बात आई-गई हो गई। फिर भादों द्वादशी की एक अँधियारी रात बीतने पर गाँव के लोगों को पता चला कि बट्टू गाँव से भाग गया।

बट्टू महीना भर बाद घर लौटा। उसके जेहन में एक स्थायी भाव समाया हुआ था। यदाकदा मैं उसके घर के सामने से निकलता तो मुझे पकड़कर घर में अंदर के कोने में ले जाता, अपनी व्यथा-कथा सुना देता और कुछ हलका हो लेता।

एक दिन पुलिस के कुछ आदमी आए और उसे पकड़कर ले गए। उसको थाने में थानेदार के आग्नेय नेत्र घूर रहे थे। उसका सारा शरीर काँप रहा था।

"क्यों बे, कहाँ रहा महीने भर? तेरी औरत ने रपट लिखाई है। डाकुओं के गिरोह में शामिल हो गया था। सिपाही, लगाओ इसे रगड़ा, अभी उगल देगा।"

सिपाही ने पीछे से भारी बूट उसकी कमर पर दे मारा। बट्टू हाँफता-हाँफता मुँह के बल गिर पड़ा। सामने का एक दाँत टूट गया। मुँह रक्त से भर गया।

थानेदार हँसा, "अभी नहीं बताएगा यह। इसे डंडा करो।"

बट्टू का बक नहीं फूट रहा था। हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया, "हुजूर, मत मारिए। मिट्टी को रौंदने से कोई फायदा नहीं है। अपनी जान बचाता मारा-मारा फिरता रहा।"

थानेदार चीखा, "नहीं बताएगा!" गाल पर एक जोरदार थप्पड़ पड़ा।

> **इस अधम शरीर को सभी रौंद-खौंद रहे हैं, कूट-पीट रहे हैं। भैया सा'ब के आदमियों ने पीटा, थाने में सिपाहियों ने लतियाया। आप ही बताएँ, पंडिज्जी! अब जब इस मिट्टी को रौंदा ही जाना है तो जो मेरी लुगाई रत्ती कहती है उसीको क्यों न मानूँ?**

बट्टू का सिर चकरा गया। उसे लगा जैसे उसके सिर के भीतर ततैयों का छत्ता बिखर गया हो।

"हुजूर, मैं डाकुओं के साथ नहीं था। गंगाजली उठाकर कह दूँ!"

थानेदार कुछ शांत पड़ा। बोला, "भैया सा'ब के यहाँ था?"

"जी, हुजूर!"

"उनका कहना माना?"

"अभी नहीं, हुजूर।"

"जाओ, उनका कहना न टालना। उनकी बात न मानी तो काल कोठरी में सड़ जाओगे।"

बट्टू घर लौटा तो पत्नी फूट-फूटकर रोई थी। खाने के लिए अनाज का दाना नहीं था। मुन्ना भूखा सो गया था। बट्टू का मुँह फूल गया था। पीठ में दर्द हो रहा था। रात भर काँखता रहा था। मुझे उसने रोक लिया था। सवेरा कुनमुना रहा था। मैंने उसकी हालत देखी तो उसके पास बैठ गया।

वह धीरे-धीरे बोलने लगा, "पंडिज्जी, ईमानदारी की बात तो ये है कि मैं कुंदन की जमीन जस-की-तस वापस कर दूँ। आखिरकार है तो उसके बाप की जमीन। भगवान् को धोखा तो दिया नहीं जा सकता। अगर मैं गलत करूँगा तो ऊपरवाला सब देखता है। मैं अगले जन्म में कुंदन का बैल बनूँगा।" वह इतनी दूर की कल्पना से सिहर सा उठा। उसने जम्हाई ली। उसका शरीर टूट सा रहा था।

"इस जन्म में कौन बड़े भारी सुख पा रहा हूँ! इस अधम शरीर को सभी रौंद-खौंद रहे हैं, कूट-पीट रहे हैं। भैया सा'ब के आदमियों ने पीटा, थाने में सिपाहियों ने लतियाया। आप ही बताएँ, पंडिज्जी! अब जब इस मिट्टी को रौंदा ही जाना है तो जो मेरी लुगाई रत्ती कहती है उसीको क्यों न मानूँ? वह कहती है—मालगुजार रंगलाल ने कोई दुराभाती नहीं की है। वे मानते थे—जैसा उनका बेटा कुंदन वैसा उनका बेटा बट्टू। सो जमीन देनेवाला दे गया। मेरी तकदीर में थी, सो मेरे नाम हो गई। यदि मैं जमीन वापस करूँगा तो रत्ती जान दे देगी। मुझे इतनी जमीन की दरकार भी नहीं है। किंतु पंडिज्जी, यह कहाँ का न्याय है कि मैंने इतनी जमीन बचाई है और बदले में मुझे केवल बदनामी मिले? मुझे कुंदन एक खेत दे दे। मुझे उसी तरह रखे जैसे उसके पिता रंगलाल रखते थे। उलटे मेरे ऊपर जुल्म ढाए जा रहे हैं। फिर जमीन मेरे नाम पर है, किंतु फसल तो कुंदन ही खाता है। मेरी नीयत खराब होती तो मैं जमीन पर कब्जा न कर लेता!"

वह उकड़ूँ बैठ गया। बोला, "बहुत ससोपंज में हूँ। न खाते बनता है, न उगलते। आज मैंने रत्ती से कह दिया है कि मेरे ऊपर ग्रहों का चक्कर चल रहा है। तू कहीं पर अँगूठा निशानी नहीं लगा देना। शरीर जमीन में मिल जाए तब भी कागज को काला नहीं करना!" वह रुआँसा हो गया।

मैंने ढाढ़स बँधाया। अपनी निरीहता को अपने कंधों पर लाश के समान लादे मैं उठा और स्कूल की ओर चल पड़ा। दूसरे दिन मुझे पता चला कि बट्टू फिर से गायब हो गया है। मेरे कंधों पर लदी लाश अब इतनी भारी हो गई थी कि जमीन पर से पाँव उठाना दूभर हो रहा था। □

श्री चंडीजी वार्ड,
हटा (दमोह)-४७०७७५
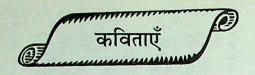
दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

होली

: १ :

ऋतु-पर्व है होली
सिंह द्वार है
ग्रीष्म निलयम का
नियतिप्रद
करता है
शीत-भय दूर
तापार्थ रखी काष्ठ जला
नख-शिख भिगो
कड़ाहों में डाल।

: २ :

कृषि-पर्व है होली
गेहूँ की बालें
चने के बूँटे
अग्नि में सेंक
प्रसाद रूप में बाँट
होले
सार्थक करता है
होली का नाम।

: ३ :

मधु-पर्व है होली
चतुष्पथों पर
मास पूर्व
ऊँचे डाँड़ गाड़
देता है
अनंग सखा वसंत के
आगमन की
शुभ सूचना
करती हैं आम्र मंजरियाँ
फाल्गुनी बयार सुगंधित
पलाश कुसुम
वनांतर सुसज्जित
नव खिली कोंपलें
अँगड़ाइयाँ लेती
होती हैं
अनंग-पूजा को व्यग्र
भृंग गुन-गुन करते
मदनोत्सव की शहनाइयाँ बजाते
करते हैं
काम की संप्रभुता प्रतिष्ठित।

: ४ :

वर्ष-पर्व है होली,
पूर्णता पर
किसे नहीं होती प्रसन्नता
मन लिखने लगता है
आमोद-प्रमोद के आलेख
चंग पर थिरक उठती हैं
आनंद की अंगुलियाँ
उल्लास अंकित करने लगता है
कोरे गालों पर गुलाल-चित्र
देने लगते हैं हास-परिहास
व्यंग्य कटाक्षवती अनूठी उपाधियाँ
अकथनीय कथन करने लगते हैं
अभिव्यक्ति की
स्वतंत्रता का जयघोष
शुभ्र प्रकाश से राजपथ सजा।

: ५ :

सम-पर्व है होली
जाति-वर्ण की चट्टानें तोड़
ऊँच-नीच की, छुआछूत की
भेदभावी सीमाएँ फोड़
सामाजिक समरसता का करता है
अनूठा उदाहरण उपस्थित
एक रंग में रँगा देख
द्वैत स्वयं बोलने लगता है
अद्वैत अद्वैत।

: ६ :

जय-पर्व है होली
असत पर सत की
अशिव पर शिव की
असुंदर पर सुंदर की
अंततः होती है जीत
होलिका की भाँति
अपनी ही जलाई आग से जल
हो जाते हैं नष्ट
असत अशिव असुंदर
'यतो धर्मः ततो जयः'
का उद्घोष करते
अग्नि-ज्वाल के बीच
प्रह्लाद की भाँति मुसकराते
सत शिव सुंदर
गाने लगते हैं अमृत गीत।

: ७ :

इसी आस्थित विश्वास को
हृदयंगम करते
आओ होली खेलें
नई
चैत्रीय चेतना के साथ करें
विगत को सादर प्रणाम
नवागत का
सहर्ष स्वागत। □

हम सुन नहीं रहे

: १ :

त्रिभुवन में ही नहीं
हमारे अभ्यंतर में भी
सतत अनुगुंजित है
सनातन वंशी-धुन
हम सुन नहीं रहे
प्राचीर की भाँति
घेरे खड़ा है हृदयों को
जगत् का, कुटुंब का
अपना स्वयं का
तुमुल कोलाहल कलह।

: २ :

उदारचेता
चतुराई से
माया के माथे डाल
खड़े हैं अपना पल्ला झाड़
मनुष्य तो वे भी हैं
जानकर, न जाने क्यों हुए हैं अजाने
शायद माने हैं अपने को कुछ विशिष्ट
ऋषि, मुनि, देव
किंतु इतिहास पुराण साक्षी हैं
कहाँ जीत पाए हैं वे
उद्दीपक आकर्षणों
ऐंद्रजालिक वशीकरणों के आगे
प्रमाथी चंचल मन।

: ३ :

माया
अनंत असीम चेतन सत्ता में नहीं
अव्यक्त प्रकृति में ही है निहित
वह तो
निर्लिप्त, साक्षी रूप, द्रष्टा भर है
उत्ताल तरंगों बीच
वट-पत्र पर लेटा
वेणु-वादन में लीन।

: ४ :

आहों
उच्छ्वासों से ही नहीं
न होने दें
भक-भक निकलते
चिमनियों के धुएँ से धूमिल प्रकाश
कुम्हलाने न दें, खिला सहस्रदल कमल
आने दें मंद-मंद मलयज समीर
होने दें स्निग्ध स्पर्शों से रोम-रोम हर्षित
भीजने दें अमृती फुहारों से अंग-अंग
डोलने दें इंद्रधनुषी तितलियों को
सुमनों के आसपास
पीने दें गुनगुनाते भ्रमरों को मकरंद अमंद
आनंद ही सृष्टि है, सुगंध ही पुष्टि
नष्ट न होने दें वृक्षों पौधों
वनस्पतियों ओषधियों को कहीं
कोठों में, कोषागारों में नहीं
अवस्थित है प्रकृति की गोद में ही
प्राणवायु।

: ५ :

कूल से लिपट
लहर लहर, नहीं गा रही है समुद्र गीत
धरती से चिपट
चाँदनी, नहीं गुनगुना रही है आकाश गीत
सनन् सन् बहता पवन
नहीं सुना रहा है
कुंजों, कछारों, कदंबों को भागवत संगीत!
संसार और स्वयं के बीच
जिन्होंने रक्खी है खींच
विवेक की सम्यक् भींत
वे ही सुन रहे हैं अहर्निश
ध्वनित अनहद नाद, सनातन वंशी-धुन
हम नहीं, हम नहीं।

□

सिविल लाइंस,
कोटा-३२४००१
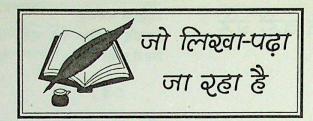
इन दिनों कागज पर कम, जमीन पर अधिक लिखा जा रहा है—मृदुला सिन्हा

इन दिनों आप क्या लिख रही हैं?

इन दिनों लिखना अपनी सोच और नियोजन के अनुसार ही नहीं हो रहा। पिछले दो वर्षों से मेरे ऊपर केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड के अध्यक्ष पद की जिम्मेदारी है। यह पद अपने आपमें संपूर्ण समाज की विविधताओं और विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाता है। समाज की विद्रूपताएँ और कमजोरियाँ देखना तो हमारी प्राथमिकताएँ हैं ही। साल के तीन सौ पैंसठ दिनों में दो सौ दिनों की यात्रा, सैकड़ों संस्थाओं को नजदीक से देखना, साहित्य के लिए सामग्री बटोरना ही है। समाज को विविध रूपों में बहुत नजदीक से देख पा रही हूँ।

मेरा यह सौभाग्य है कि माह में पंद्रह दिनों की यात्राओं में समाज के विभिन्न रूप-रंगों को नजदीक से देखते-समझते हुए संस्था की पत्रिका 'समाज कल्याण' में हर माह 'इसी बहाने' शीर्षक से विशेषकर महिलाओं की विविध समस्याओं पर चंद पंक्तियाँ लिख पा रही हूँ। ये पंक्तियाँ स्वयं मेरे मन की उपज नहीं होती हैं। सुदूर गाँव-देहातों में जाकर हर उम्र की ललनाओं के मुख पर लिखे भावों को पढ़ना और समय मिलने पर उन्हें कागज पर उतारना सुखद लगता है। वे महिलाएँ चाहे अंडमान-निकोबार की हैं या मणिपुर की, कच्छ की अथवा कामरूप की, उनमें एक साम्यता है। परंतु विविधताएँ भी हैं। उनमें आत्मविश्वास भी जगा है और अज्ञान भी। अनुराग भी है और विराग भी। उनके भावों को चुराती हूँ। जब भी अवसर मिलता है, उनके बारे में लिख रही हूँ—चाहे वह माध्यम गीत, कविता, कहानी, लेख अथवा 'इसी बहाने' हो। परंतु इन दिनों कागज पर कम, जमीन पर अधिक लिखा जा रहा है। प्रतिदिन सुबह दो से दस पृष्ठ कागज पर लिखने का सिलसिला जारी है; परंतु इन दिनों प्रतिदिन कहीं दो सौ तो कहीं दो हजार महिलाओं से सीधा संपर्क हो रहा है। उनके हृदय पर चंद शब्द लिखने का प्रयास कर रही हूँ। सुखद लगता है उन हृदयों पर अपने द्वारा लिखित अक्षरों को अंकित होते देखना। मेरे कथन को वे आत्मसात् करती हैं, सिर हिला-हिलाकर सहमति देती हैं। मेरा साहित्यकार मन धन्य-धन्य हो जाता है। एक साहित्यकार को अपनी उपलब्धि का आनंद मिलता है। समाज की समस्याओं का सार्थक निदान ढूँढ़ती मेरी लेखनी भी कृतकृत्य होती है। और इसीलिए प्रतिदिन कुछ-न-कुछ लिखने की प्रेरणा जीवंत रहती है।

एक उपन्यास 'पुनरपि' की पांडुलिपि मेरे पास लिखित है। इस रचना के माध्यम से मैंने अपनी अनुभूतियों को जीवंत किया है कि भारत को पुनः विश्व गुरु बनना है। भोगवाद के बढ़ते चरण के रुकने का समय आ गया है। भारतीय दर्शन की आत्मा 'संयम' का विजयी होना निश्चित है। विश्व के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक रुग्ण जीवन में पुनः एक बार भारतीय जीवन-दर्शन ओषधि का कार्य करेगा। इस पुस्तक को अपनी पूर्णता के लिए मेरे अधिक समय की आवश्यकता है। आशा है, निकट भविष्य में अपने दायित्वों के निर्वहण में से थोड़ा सा समय चुरा पाऊँगी। इस उपन्यास को पूरा करूँगी। इधर समय के अभाव में अपने भावों को प्रकट करने के लिए मेरी लेखनी से चंद पंक्तियाँ निःसरित हुईं, जिन्हें सुधी श्रोताओं ने 'कविता' का नाम दे दिया है। फिर तो मेरी लेखनी को बल मिला है। कुछ कविताएँ लिखी हैं। व्यक्ति और समाज-जीवन में समरसता के भाव भरने का अथक प्रयास कर रही हूँ।

एक रचनाकार के नाते आपकी सामाजिक, मानवीय व राजनीतिक चिंता क्या है?

किसी भी रचनाकार में मानवीय चिंता है तो फिर सामाजिक और राजनीतिक चिंता की आवश्यकता नहीं होती। रचनाकार मानवीय पक्ष पर चिंतन करता है; उसकी रचनाएँ मानव के शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठापना करती हैं। राजनीति इसके आगे बहुत छोटी चीज है, मात्र माध्यम है, लक्ष्य तो मानव है। चिंता कम, चिंतन अधिक करने में विश्वास करती हूँ। चारों ओर भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार और संवेदनहीनता के

वातावरण में भी चंद आस्था और संवेदना के बिंदु ढूँढ़ती फिरती हूँ। इन्हीं पतली गंगोत्रियों को गंगा बनाने का अदना सा प्रयत्न करती रहती हूँ। उदाहरणार्थ, नारी जीवन को अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण से आभूषित करनेवालों को मैं आगाह करती हूँ कि नारी जीवन की दोनों साधनाएँ—संतति को जन्म देना और परिवार का लालन-पालन उसे आनंद देती रही हैं। इन कठिन साधनाओं से जो आनंद उसे मिलता है वह परमानंद से कम नहीं। इसलिए स्त्री के जीवन को समाज के लिए सार्थक बनाने के लिए आवश्यक है उसकी सही पहचान करना। मात्र प्रतिक्रियाओं में समाज का सार्थक विकास नहीं हो सकता।

मेरी चिंता है कि हम अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक समस्याएँ उठा देते हैं, परंतु उनके निदान के प्रति इशारा नहीं करते। मेरी समझ में हमारी समस्त रचनाएँ छोटी-बड़ी समस्याओं का निदान भी ढूँढ़ें। हमारे समाज में भी अब बुजुर्गों की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। उन्हें उपयुक्त सम्मान नहीं मिलता। वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ रही है। अब ऐसी सामाजिक समस्याओं का निदान भी ढूँढ़ना रचनाकारों का दायित्व है। हाल ही में 'खेल-खेल में' शीर्षक से एक दूरदर्शन फिल्म की कथावस्तु लिखी, जिसके माध्यम से बच्चों में विशेष संस्कार डालने का प्रयास किया है। इन दिनों मेरी चिंता का विषय है—समाज में नारी का स्थान। जाने-अनजाने हमने समाज में अनेक अखाड़े खोल लिये। विभिन्न धर्मों, जातियों, मालिक-मजदूर, धनी-गरीब, शहर-गाँव, सरकारी-गैर सरकारी, राजनीतिज्ञ-सरकार, न जाने कितने अखाड़े। स्त्री के विकास के बहाने हमने स्त्री और पुरुष के बीच भी अखाड़ा बनाया है। आवश्यकता है इन अखाड़ों को ध्वस्त करने की। वे एक-दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वंद्वी नहीं हो सकते। सहभाग के भाव भरने की आवश्यकता है। दोनों के बीच बराबरी की बात टकराव उत्पन्न करती है। इसलिए आवश्यकता है नारी के विशेष दायित्व को समाज, पुरुष और स्वयं नारी द्वारा सम्मान दिलाने की।

दूसरी चिंता का विषय है समस्याओं के निदान ढूँढ़ने में अपनी जड़ से जीवन लेने की जगह इतर समाज और जमीन से दवा ढूँढ़ना और इसलिए सारे प्रयासों का असफल होना। अपने समाज की रुग्णताओं के लिए ओषधियाँ भी वहीं हैं। किसी बीमारी के लिए अपनी जड़ में कम, किसीके लिए अधिक गहराई तक प्रवेश करना होगा; परंतु ओषधि वहीं मिलेगी।

अपनी रचनाओं के माध्यम से यह दायित्व भी निर्वहण करती रहती हूँ। सागर में बूँद भर प्रयास। समाज में आज भी सत्य, शिव और सुंदर का वास है। इसलिए रचनाओं के माध्यम से जीने के लिए संघर्ष कर रहे जीवंतों को मैं मात्र जीवन की भयावहता ही नहीं दिखाना चाहती। दुनिया सुंदर, सुखद और सुहानी भी है। कहीं-कहीं दर्द के छींटे हैं तो क्या, उनका भी एक आनंद है। मात्र सुख से जीवन बोझिल हो जाएगा।

मेरी चिंता का विषय यह है कि हम ख्वाहमख्वाह जीवन और व्यवस्था के प्रति भय उत्पन्न कर रहे हैं। समाज-जीवन में एक-दूसरे के लिए बने संगठन आपस में प्रतिद्वंद्वी हो रहे हैं। साहित्यकार का दायित्व है इन्हें अपनी पूरकता का स्मरण दिलाते रहना।

आजकल आप क्या पढ़ रही हैं?

मैंने पहले ही स्वीकारा कि कागज पर कम, दूसरों के मन पर लिखी अपनी लिखावट ज्यादा पढ़ रही हूँ। पाठकों से सीधा संवाद हो रहा है। स्त्री-पुरुषों को विभिन्न रूपों, विभिन्न परिवेशों से मिल रही हूँ। उनसे सीधा संवाद हो रहा है। उनके चेहरे पर लिखे भावों को पढ़ रही हूँ। इसलिए पूरे वर्ष में चित्रा मुद्‍गलजी की कृति 'अरबा' और 'अर्द्धनारीश्वर' दूसरी बार पढ़ पाई। विक्रम सेठ की 'ए शूटेबल थीम' पढ़ी। 'रामचरितमानस' की चौपाइयाँ पढ़ती रहती हूँ, उसमें डूबती-उतराती हूँ। स्वीकार करना चाहती हूँ कि पढ़ना कम हो रहा है। परंतु अपने सामाजिक और शासकीय दायित्व के निर्वहण में मधुमक्खी की भूमिका निभाती हुई विभिन्न क्यारियों से पराग इकट्‍ठा कर रही हूँ—समय मिलने पर साहित्य सर्जन के लिए।

□

१०-ए, राजाजी मार्ग, नई दिल्ली

देवनागरी लिपि में रूढ़ संयुक्ताक्षरों की संरचना

✍ वंशीधर त्रिपाठी

देवनागरी लिपि का उदय ईसा की दसवीं शताब्दी के आसपास ब्राह्मी लिपि से हुआ। देवनागरी लिपि में दो प्रकार के संयुक्ताक्षरों का प्रचलन है—सामान्य तथा रूढ़। सामान्य संयुक्ताक्षर वर्णों के ऐसे संयोग को कहते हैं, जिसमें पूर्व-वर्ण मूल स्वर (अ) के अभाव में परवर्ती अजंत व्यंजनाक्षर से मिल जाता है। उदाहरणार्थ—स्व, क्य, ल्प संयुक्ताक्षरों में पूर्व व्यंजन (स्, क्, ल्) निस्वर हैं, हलंत हैं और उत्तर-व्यंजन (व, य, प) अजंत हैं, सस्वर हैं। सामान्य संयुक्ताक्षरों में संयोज्य वर्णों के आकार अपने मूल रूप में बने रहते हैं। रूढ़ संयुक्ताक्षरों की स्थिति इससे भिन्न होती है। इसमें संयोज्य अक्षर नया आकार ग्रहण कर लेते हैं। यद्यपि नए स्वरूप में इनका मूलाकार किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहता है, पर विरूपण एवं स्थानांतरण के कारण इनकी पहचान सरलता से नहीं हो पाती। माहेश्वर सूत्रों में रूढ़ संयुक्ताक्षरों का अस्तित्व नहीं है। लगता है, इनका उदय परवर्ती काल में हुआ और क्रमशः इन्हें वर्णमाला में जोड़ लिया गया। ब्राह्मी लिपि में क्ष एवं ज्ञ इन दो संयुक्ताक्षरों के रूढ़ आकार मिलते हैं। पर त्र के बारे में ऐसा नहीं है। लगता है, ब्राह्मी लिपि में त्र का प्रयोग सामान्य संयुक्ताक्षर के रूप में होता था।

देवनागरी में रूढ़ संयुक्ताक्षरों की कुल संख्या छह है। इनमें से तीन (क्ष, त्र, ज्ञ) पंक्तिबद्ध हैं और तीन क्त, श्र एवं ॐ पंक्तिबाह्य हैं। अब प्रश्न है कि नागरी लिपि में इन रूढ़ संयुक्ताक्षरों की संरचना यादृच्छिक है अथवा किसी सिद्धांत के प्रकाश में इन्हें ऐसा आकार दिया गया है? मेरी ऐसी स्थापना है कि देवनागरी लिपि में पंक्तिबद्ध एवं पंक्तिबाह्य दोनों कोटियों के रूढ़ संयुक्ताक्षरों के आकार के मूल में कुछ सिद्धांत हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. **स्थानांतरण सिद्धांत :** इसके अंतर्गत संयोज्य अक्षरों के किसी भाग विशेष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है।

२. **विरूपण सिद्धांत :** इसके अंतर्गत संयोज्य अक्षरों में ऐसा परिवर्तन कर दिया जाता है, जिसमें वे अपने मूल रूप से भिन्न दिखने लगते हैं।

३. **समानाधिकरण सिद्धांत :** इसके अंतर्गत संयोज्य अक्षरों के एक भाग को समान आधार मानकर दोनों का गठबंधन कर दिया जाता है।

४. **अभिरक्षा सिद्धांत :** इस सिद्धांत के अंतर्गत यह प्रयास कि जाता है कि सारे परिवर्तनों के होते हुए भी संयोज्य अक्षरों के मूलाक पूर्णतः विनष्ट न हों। उनकी मौलिक विशेषताएँ इतनी शेष रह ज जिसमें लिपिशास्त्रियों की उद्भेदक दृष्टि उन्हें अलग-अलग पह सकें। अब हम इन सिद्धांतों के प्रकाश में देवनागरी लिपि के संयुक्ताक्षरों की संरचना का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

क्ष

'क्ष' प्रथम पंक्तिबद्ध रूढ़ संयुक्ताक्षर है। क्ष में क् और श दोनों वर्णों को आपस में जोड़ा गया है। ब्राह्मी लिपि में क्ष का आ ऐसा था, जिसमें क् और श दोनों वर्णों को उनके मूल स्वरूप में स रूप से देखा जा सकता था। ईसा की दसवीं शताब्दी में जब देवन लिपि का उदय हुआ तो क्ष क्रमशः अपने वर्तमान स्वरूप में आने ल कालक्रम में इसका आकार रूढ़ होता गया। अंततः इसे वर्णमाल स्थान दे दिया गया।

क्ष के आकार-निर्माण के लिए सबसे पहले स्थानांतरण सि के अंतर्गत क के गोलाकार भाग को उसके मध्य क्षेत्र से हटाकर शिर से मिला दिया गया। फिर समानाधिकरण सिद्धांत के अनुसार श मुठिया को भी इसीसे जोड़ दिया गया। श की मुठिया के अधोभा पूर्ववत् रहने दिया गया। परंतु इसके पुच्छ भाग में विरूपण सिद्धां आधार पर थोड़ा परिवर्तन किया गया। इसे बाईं ओर से घुमाकर ओर कर दिया गया और श की पूँछ उसीसे जोड़ दी गई। कुछ ऐस विरूपण क् के आकार में भी किया गया। क् के गोलाकार भा छोटी पाई निकाली तो गई, पर उसे नीचे न लटकाकर सामनेवाली पाई से जोड़ दिया गया। इस प्रकार क् और श दोनों के आका परिवर्तन करके उन्हें एक नया स्वरूप दे दिया गया। नवाकार-नि में यह बात द्रष्टव्य है कि इसमें क् के आकार में ज्यादा छेड़छा गई है। उसके गोलाकार को स्थानांतरित किया गया। उसके आगे टोंटी को नीचे न लटकाकर सामनेवाली खड़ी पाई से जोड़ दिया इसके विपरीत श की मुठिया पूर्ववत् अपने स्थान पर बनी रही।

सामनेवाली खड़ी पाई को नवाकार में स्थान देकर क्ष को वरीयता दी गई और क् की उपेक्षा की गई। मुझे ऐसा लगता है कि क् के साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार इसलिए हुआ, क्योंकि वह स्वरविहीन है, निर्बल है। क् की तुलना में श का पलड़ा भारी है, क्योंकि वह स्वरयुक्त है। ऐसा लगता है जैसे क्-श के संयोजन-चक्रव्यूह में क् खो सा गया और श वर्चस्व की स्थिति में आ गया है। श को यदि अग्रभूमि के रूप में उछाल मिल गया है तो क् को पृष्ठभूमि में ढकेल दिया गया है।

इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार को तर्क-सम्मत बनाने के लिए यही कहा जा सकता है कि क् और श के बीच संयोजन और कुछ नहीं, दोनों के विवाह की स्थिति है। इस युग्म में श वर है और क् कन्या। भारतीय परंपरा में गौण स्थिति होती है, वही क् की है और श प्रधानता की स्थिति में है। श के संपर्क में आने के बाद क् के स्वरूप में जो परिवर्तन होता है, वह कुछ ऐसा है जैसे ससुराल में कन्या के स्वरूप में होनेवाला बदलाव। विवाह के बाद ससुराल में आकर कन्या घूँघट काढ़ती है, माँग में सिंदूर लगाती है, चूड़ी पहनती है। जिस प्रकार पितृगृह की तुलना में श्वसुरगृह में कन्या का स्वरूप बदल जाता है, क् की स्थिति कुछ वैसी ही है। क्ष की संरचना में अभिरक्षा सिद्धांत भी लागू होता है। सारे परिवर्तनों के बाद भी क् और श दोनों के मूल स्वरूपों को उनके नए आकार में देखा जा सकता है। हाँ, ऐसा करने के लिए विशेष दृष्टि की आवश्यकता होती है।

अब क्ष के उच्चारण के विषय में। क्ष का उच्चारण 'क्श' होना चाहिए। किन परिस्थितियों में इसका उच्चारण 'क्छ' हो गया, यह एक विचारणीय प्रश्न है। यदि विवाहवाली उपमा को आगे बढ़ाया जाए तो कहा जा सकता है कि विवाहोपरांत पुरुष स्त्रैणता की स्थिति में आ सकता है, पत्नी के संकेत पर अपने ध्वनि-स्वरूप में परिवर्तन कर सकता है। क् को छ की ध्वनि अति प्रिय है, अतः श ध्वनि-दृष्टि से छ हो जाता है—अपनी पत्नी (क्) के आग्रह पर। मुझे एक ऐसे दंपती के विषय में ज्ञात है जिसके ससुराल में पैर रखते ही पत्नी ने पति का नाम बदल दिया। पति 'शशिकांत' से 'सत्यम्' हो गया। एक दूसरी दृष्टि। क् के साथ श के उच्चारण के लिए छ की तुलना में जिह्वा को अधिक कवायद करनी पड़ती है, इसलिए वह बार-बार श से उतरकर छ पर अटक जाती है। जिह्वा के इस आग्रह को मानकर क्ष के 'क्छ' के उच्चारण को ही मान्यता दे दी गई और 'क्श' जैसा उच्चारण पृष्ठभूमि में तिरोहित हो गया।

त्र

'त्र' दूसरा पंक्तिबद्ध रूढ़ संयुक्ताक्षर है। यह त् और र के संयोग से बना है। इसमें प्रथम संयोज्य अक्षर (त्) निस्वर है और द्वितीय अक्षर (र) सस्वर है। त्र का आकार ऐसा है, जिसमें स्थानांतरण और समानाधिकरण के सिद्धांत निष्क्रिय रहते हैं। इसमें केवल विरूपण एवं अभिरक्षा सिद्धांत क्रियाशील होते हैं। विरूपण सिद्धांत के अनुसार त् का नीचे की ओर लटका भाग हटा दिया जाता है और खड़ी पाई से लगी बेड़ी पाई ही त् का प्रतिनिधित्व करती है। र को अधोरेफ के रूप में त की बेड़ी और खड़ी पाई के कोण से जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार त्र का नवाकार बन जाता है। त्र के दोनों संयोज्य अक्षर (त् और र) स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। त्र के संबंध में अभिरक्षा के सिद्धांत अति ही प्रबल हैं। संयोज्य अक्षरों में विरूपण इतना न्यून होता है कि इसे रूढ़ कोटि में क्यों रखा गया, ऐसा प्रश्न उठता है। त्र के आकार में कोई रूढ़ता नहीं दिखती। यह तो लगभग सामान्य संयुक्ताक्षरों की भाँति है। यदि त् का नीचेवाला भाग कटा न होता तो इसकी संरचना में रूढ़ता का पूर्णाभाव होता। वैसे आजकल पूर्ण त और अधोरेफ के योग से त्र लिखने की परंपरा चल पड़ी है। त्र के उच्चारण में भी कोई अंतर नहीं है। त्र से दोनों वर्णों का वर्णाधारित उच्चारण होता है।

जो भी हो, यदि त् और र के संयोजन को विवाह-उपमा की दृष्टि से देखा जाए तो मानना पड़ेगा कि त् से विवाह करके र घरजमाई की स्थिति में आ गया है। विवाह के बाद यद्यपि त् (कन्या) के आकार में अंतर आता है, पर र (वर) को भी अधोगत होना पड़ता है। र को अपने मूलाकार के उच्चासन से उतरकर रेफ जैसी निम्नस्थिति में आना पड़ता है। घरजमाई के रूप में र अपनी पत्नी की धौंस में आ जाता है और उसके दबाव में अपने अधोरेफ के आकार में भी परिवर्तन लाता है। वह अपना स्वाभाविक 'तिरछापन' छोड़कर ऋजुता धारण कर लेता है और अपनी शीर्षस्थ क्षैतिज रेखा (यह रेखा त् अर्थात् र की पत्नी का प्रतिनिधित्व करती है) से समानांतरता में आकर उससे समायोजित होता है। घर-जमाई होने के कारण समायोजनक्रम में र को ही दबना पड़ता है। त् को केंद्र मानकर र को सारा व्यवहार करना पड़ता है। पारिवारिक समीकरण में त् की स्थिति यदि सूर्य है तो र की ग्रह की। खड़ी पाई भी त् की है, ऊपर की पड़ी पाई भी त् की है। सबकुछ त् का है, र तो बस उसकी कमर में लटका-लटका घूम रहा है।

ज्ञ

ब्राह्मी लिपि की वर्णमाला में 'ज्ञ' को अंतिम अक्षर के रूप में मान्यता प्राप्त है। देवनागरी वर्णमाला में भी ज्ञ तृतीय रूढ़ संयुक्ताक्षर एवं अंतिम वर्ण है। ज्ञ ज् एवं ञ का संयुक्त रूप है। अब ज्ञ की संरचना के विषय में। ज्ञ में स्थानांतरण ञ की दृष्टि से है, ज् की दृष्टि से नहीं। ञ के दो मुख्य भाग हैं—वाममुखी अर्द्धवृत्त एवं खड़ी पाई। वाममुखी अर्द्धवृत्त के दक्षिणी मध्य भाग को एक पड़ी पाई द्वारा खड़ी पाई से जोड़ दिया जाता है। ञ की इसी योजक पड़ी पाई को उठाकर ज्ञ के शीर्ष पर लगाकर इसे खड़ी पाई से जोड़ दिया जाता है। चूँकि ज् में यह पाई उसके शीर्ष भाग से जुड़ी रहती है, अतः ज् की दृष्टि से इसे स्थानांतरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। ञ का अर्द्धवृत्त ही ज्ञ की संरचना का

समानाधिकरण है। इसे समानाधिकरण का रूप देने के लिए ज् के बढ़े हुए भाग को मठकर छोटा कर दिया जाता है। ऐसा विरूपण सिद्धांत के अंतर्गत किया जाता है। विरूपण सिद्धांत के अंतर्गत ही अर्द्धवृत्त के अधोभाग में पूँछ जोड़कर ज्ञ को उसका वर्तमान आकार दिया जाता है। यदि अर्द्धवृत्त को समानाधिकरण न माना जाए तो ज् और ञ से जुड़ी पड़ी पाई को दोनों का समानाधिकरण माना जा सकता है। मुझे ऐसा लगता है कि ज्ञ का आकार त्र से कम पर क्ष से अधिक अभिरक्षित है।

अब ज्ञ के उच्चारण के विषय में। ज्ञ का वास्तविक उच्चारण 'ज्ञ' है, पर लोक में इसे 'ग्य' के रूप में उच्चारित किया जाता है। ऐसा क्यों है? वस्तुत: लोक में ङ एवं ञ के अशुद्ध उच्चारण की परंपरा बहुत पुरानी है। ङ को लोग प्राय: 'अङ्ङह' और ञ को 'ईयँ' कहते हैं। ङ के शुद्ध उच्चारण में 'अङ्' तथा 'ह' तीनों अनपेक्षित वर्ण हैं। मात्र ङ ही अपेक्षित वर्ण है। इसी प्रकार 'ईयँ' में भी 'ई' अनपेक्षित है और अपेक्षित उच्चारण मात्र 'यँ' है। लोक में ज् के साथ ञ का उच्चारण क्लिष्ट माना जाता है। ऐसी स्थिति में ज् के स्थान पर ग का उच्चारण होने लगता है। ज्ञातव्य है कि कंठ-स्थानीय। संभव है, दोनों वर्णों के बीच इन्हीं समानताओं के कारण ज् के स्थान पर ग् का उच्चारण होने लगा हो। इसी क्रम में जिह्वा की सुविधा के कारण ञ की अनुस्वार ध्वनि भी लुप्त हो जाती है और मात्र 'य' शेष रह जाता है। इस प्रकार 'ज्ञ' का उच्चारण 'ग्य' के रूप में होने लगता है।

अब पंक्तिबाह्य रूढ़ संयुक्ताक्षरों के विषय में। पंक्तिबाह्य रूढ़ संयुक्ताक्षरों की संख्या तीन है—क्त, श्र तथा ॐ। इनका विवरण इस प्रकार है—

क्त

'क्त' पंक्तिबाह्य रूढ़ संयुक्ताक्षर है। इसमें क् एवं त का संयोग है। क्त की संपूर्ण संरचना विरूपण सिद्धांत के आधार पर की गई है। क्त के आकार में निम्नलिखित तीन बिंदुओं पर विरूपण किया गया है।

१. क्त में उच्चारण पहले क् का होता है, बाद में त का, पर आकार में तो त पहले आता है और क् बाद में।

२. क्त का गोलवाला भाग हटा दिया गया है, जबकि क् को हलंत करने के लिए इसका नीचे लटकनेवाला भाग हटाया जाता है।

३. क्त में त के उच्चारण में द्वित्व नहीं है, पर त के कंधे पर 'गमछा' रखकर इसे आकारत: द्वित्वयुक्त बना दिया गया है।

श्र

'श्र' पंक्तिबाह्य रूढ़ संयुक्ताक्षर है। ब्राह्मी लिपि में रूढ़ संयुक्ताक्षर के रूप में इसका प्रयोग नहीं मिलता। श्र का प्रयोग सामान्य संयुक्ताक्षर के रूप में तो बहुत प्राचीन है, पर इसकी रूढ़ संरचना परवर्ती काल की घटना है। श्र में श् और र का संयोग है। यदि श् में र का प्रयोग अधोरेफ के रूप में हो तो उसका आकार श्र होगा। ऐसा करने में कोई असुवि[धा] नहीं थी; पर पता नहीं क्यों, श् की मुठिया को प के अधोभाग के [रूप] में खड़ी पाई से मिला दिया गया और अधोरेफ को प के अधोभाग [और] खड़ी पाई के मिलन बिंदु-जनित कोण से जोड़ दिया गया। इस प्र[कार] श्र की वर्तमान रूढ़ संरचना का निर्माण हुआ। श्र की रूढ़ संरचना [के] लिए विरूपण क्रम में पहले श् की पूँछ काट दी जाती है और उस[के] मूठ से प के अधोभाग जैसी एक रेखा खड़ी पाई से मिला दी जाती [है।] श्र का आकार भी सामान्य अधिक और रूढ़ कम है। यह लगभग त्र [के] समान है। कदाचित् अपनी आकारगत सामान्यता के कारण ही [इसे] पंक्तिबद्ध नहीं किया गया। इसके उच्चारण में भी कोई नवीनता नहीं [है।] संयोज्य वर्णों के अलग-अलग जो उच्चारण हैं, रूढ़ होने की स्थिति [में] उनमें कोई अंतर नहीं आया है।

ॐ

ॐ पंक्तिबाह्य रूढ़ संयुक्ताक्षर है। इसमें तीन वर्णों की युति है—अ, उ तथा म। ॐ को ब्रह्माक्षर अथवा प्रणव का पर्याय माना जाता [है।] कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि यदि विश्व की सभी ध्वनियों को मि[ला] दिया जाए तो उससे जो तुमुल ध्वनि पैदा होगी वह ॐ की ही ध्व[नि] होगी। ॐ की रचना में अ को आधार माना गया है। अ के उ-भाग [का] प्रयोग समानाधिकरण के रूप में हुआ है और उसी पर खड़ी पाई [से] अ को स्थापित कर दिया गया है। अ और उ के संयोग से गुण [की] स्थिति बनती है। इस प्रकार आदेश के रूप में इससे 'ओ' की ध्व[नि] निकलती है। इस ध्वनि (ओ) को प्रदर्शित करने के लिए उ के [साथ] 'शेप' या 'लांगूल' जोड़ दिया गया है। उ का लांगूल ही 'ओ' [की] ध्वनि को पूर्णता प्रदान करता है। अंत में म के प्रतीक के रूप में उ[सके] शीर्ष पर चंद्रबिंदु रख दिया जाता है।

रूढ़ संयुक्ताक्षरों का काल-निर्णय

अब प्रश्न यह है कि पंक्तिबद्ध और पंक्तिबाह्य रूढ़ संयुक्ता[क्षरों] का प्रयोग कब से हो रहा है? इस प्रश्न का उत्तर देना सरल कार्य न[हीं] है, क्योंकि इन संयुक्ताक्षरों का प्रयोग किसी एक लिपि में न हो[कर] विभिन्न लिपियों में हुआ है। देवनागरी लिपि में इन रूढ़ संयुक्ता[क्षरों] का प्रचलन ईसा की दसवीं शताब्दी से हुआ। देवनागरी लिपि [की] समकालीन अथवा इससे दो-एक शताब्दी पूर्व कश्मीर की शारदा लि[पि] में भी इन रूढ़ाक्षरों का प्रचलन था। संभवत: त्र का अस्तित्व शा[रदा] लिपि में नहीं था। इसी प्रकार दक्षिण भारत की कन्नड़ और ग्रंथ लि[पि] में भी क्ष और ज्ञ का प्रयोग रूढ़ाक्षर के रूप में होता है। संपूर्ण भा[रत] और आसपास के देशों यथा तिब्बत, थाइलैंड, इंडोनेशिया, कंबोडि[या,] बर्मा, श्रीलंका आदि देशों में प्रचलित लिपियों की जननी ब्राह्मी लिपि

भी रूढ़ संयुक्ताक्षर के रूप में क्ष और ज्ञ विद्यमान थे। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति वैसे तो ब्रह्मा से मानी जाती है, पर अशोक के समय इस लिपि का प्रयोग होता था। यह बात अशोक के शिलालेखों से प्रमाणित है। इस प्रकार हम ब्राह्मी लिपि को कम-से-कम ढाई हजार वर्ष प्राचीन मान सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि ये संयुक्ताक्षर देवनागरी और शारदा लिपियों में लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन हैं और ब्राह्मी लिपि में इनकी आयु ढाई वर्ष है। परंतु इन संयुक्ताक्षरों की आयु मात्र लिपि तक सीमित नहीं है। लिपि के पूर्व जब श्रुति परंपरा थी तब भी इन अक्षरों का अस्तित्व था। उदाहरण के लिए, महाभारत काल में क्ष, त्र, ज्ञ संयुक्ताक्षरों का अस्तित्व था। इसके लिए 'भगवद्गीता' प्रमाण है। इस संबंध में 'गीता' का निम्नलिखित श्लोक यहाँ उद्धृत है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्ति रार्जवमेव च
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्।
(—१८/४२)

गीता-प्रणयन काल क्या है, इस प्रश्न का उत्तर युगाब्द के आधार पर दिया जा सकता है। इस समय युगाब्द ५१०२ चल रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि क्ष, त्र और ज्ञ रूढ़ संयुक्ताक्षरों का अस्तित्व ध्वनि अथवा तत्कालीन लिपि-रूप में लगभग पाँच हजार वर्ष प्राचीन है।

इतना ही नहीं, इन तीनों वर्णों (क्ष, त्र, ज्ञ) का अस्तित्व ऋग्वैदिक काल में भी था। श्र का प्रयोग भी वैदिक मंत्रों में मिलता है। इस संबंध में 'ऋग्वेद' के तीन मंत्र यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि/स इद्देवेषु गच्छति।
(—१-१-४)

कवीनो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया/दक्षं दधाते अपसम्।
(—१-२-९)

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः/तेषां पाहि श्रुधी हवम्।
(—१-२-१)

ज्ञातव्य है कि 'ऋग्वेद' विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है। वेदों की रचना तो निश्चित रूप से 'महाभारत' के पहले की है। यदि यह माना जाए कि ऋग्वेद की रचना महाभारत से पाँच हजार वर्ष पूर्व हुई है तो इन रूढ़ संयुक्ताक्षरों की आयु-ध्वनि अथवा तत्कालीन लिपि रूप में लगभग दस हजार वर्ष हो रही है। क्ष, त्र, ज्ञ एवं श्र की भाँति ॐ भी वैदिक संयुक्ताक्षर है। अतः इसकी आयु भी इतनी ही है।

□

एन-४/१८, ए-५, हनुमानधाम, करौंदी,
सुसुवाही, वाराणसी-२२१००५

सुपारी का माहात्म्य

संस्कृत के पंडित हों, चाहे हिंदी के विद्वान् (हमारा तात्पर्य हिंदी के 'स्कॉलर' या 'प्रोफेसर' से नहीं है), पान-सुपारी के बिना उनका काम नहीं चल सकता—और घोर पांडित्य के लिए तो तमाखू भी अनिवार्य है। आत्मसंयम या 'स्कॉलरों' और 'प्रोफेसरों' के संसर्ग-दोष से वे उसका सेवन कम भले ही कर दें, किंतु उसका सर्वथा त्याग और तमाखू की विस्मृति उनके लिए संभव नहीं है। और जब संस्कृत एवं हिंदी दोनों का पांडित्य हो तथा साथ में काव्य-रसिकता भी हो, तब कहना ही क्या! साहित्याचार्य पं. बाबूलाल शास्त्री संस्कृत के प्राध्यापक और हिंदी के विद्वान् थे, साथ ही दोनों भाषाओं को समान दृष्टि से देखते थे। वे यह निश्चय नहीं कर सके कि सुपारी का गुणगान संस्कृत में करें या हिंदी में। बहुत तर्क-वितर्क में न पड़कर उन्होंने माहात्म्य-वर्णन में दोनों ही भाषाओं का प्रयोग कर डाला, क्योंकि 'भाव अनूठो चाहिए, भाषा कोई होय।' यहाँ तो बात 'अनूठी' कहनी थी। अतएव उन्होंने सुपारी और तमाखू के संबंध में यह व्यावहारिक और अनुभूत बात कही—

यदा पानकार्ये जलं नास्ति काले,
सुपारी तभी काम में लाइ जाती।
भलीभाँति वह प्यास को शांति देती,
यतो भक्ष्यते मानवैर्योग्यकाले॥
मुहुर्भक्षणात् रक्तशोषो भवेद् यत्,
सदा के लिए त्यागना भी बुरा है।
भजो पान के साथ ही बार एक,
तमालेनयुक्तं सदा सेवनीयम्॥

जिस प्रकार बर्र का दंश उसके अंतिम भाग (डंक) में रहता है उसी प्रकार इस माहात्म्य का बैसवाड़ी, बुंदेलखंडी और बघेलखंडी सार अंतिम अर्थात् आठवीं पंक्ति में है—तमालेनयुक्तं सदा सेवनीयम्! □

किस्सा छबीलदास का

✍ गोपाल चतुर्वेदी

छबीलदासजी को अब तक विश्वास नहीं हो रहा है। यह अचानक क्या हुआ कि वह गुदगुदे गद्दे, मुलायम तकिए और डबल बेड पर लेटे थे और इस बदबूदार टीले पर आ बैठे। उनके आसपास मलबे-ईंटों और गंदगी का ढेर है। वह एक टूटे दरवाजे के पल्ले पर बैठे हैं। उन्हें वक्त का अहसास नहीं हो पा रहा है। उन्होंने घड़ी देखने की कोशिश की। उनकी महँगी रोलेक्स घड़ी नदारद थी। क्या किसी गिरोह ने उनका अपहरण कर लिया? अब वह करोड़ों की फिरौती माँगेगा। हर मंत्री उनका दोस्त है। पुलिस के डी.जी. से उनकी दाँत-काटी रोटी है। हर त्योहार-उत्सव पर वे उसको हजारों के गिफ्ट देते हैं। अभी नए साल पर उन्होंने अपने बहुमंजिले डीलक्स कॉम्पलेक्स का एक फ्लैट तकरीबन मुफ्त में उनके दामाद को भेंट दिया है। उनके अपने सिक्योरिटी गार्ड भी हैं। सबके सब नाकारा हैं। उन्होंने डी.जी. से लेकर गार्ड तक को गाली दी। कोई किसीका सगा नहीं है। सब इसी चक्कर में हैं कि किससे कितना हींच लें। रिश्ते-संबंध तो बचे ही नहीं हैं। उनका एक बिल्डिंग प्लान पास करने में उनके सगे भतीजे के साले तक ने 'अंकल' कह-कहकर उनसे चार-पाँच लाख रुपए ऐंठ लिये। यह दीगर है कि छबीलदास ने इस इमारत को बनाते वक्त हर नियम-कानून की धज्जियाँ उड़ा दीं और किसी अधिकारी ने चूँ तक नहीं की।

नियम-कानून का छबीलदास का अपना दर्शन है। जब तक कोई शिकायत न हो, हर इमारत नियम-संगत है। नक्शे की अवहेलना कर बनाई उनकी बिल्डिंग की शिकायत विकास निगम का निरीक्षक-सुपरवाइजर ही कर सकता है। चीफ इंजीनियर से उनका वार्षिक करार है। करोड़ों के काम से वह उसे ईमानदारी से डेढ़-दो परसेंट का चढ़ावा चढ़ाते हैं। निरीक्षक-सुपरवाइजर की आँख पर उनका उसूल पैसे की पट्टी बाँधने का है। यह पट्टी बड़े काम की चीज है। आँख पर चढ़ी नहीं कि आदमी को पैसे के अलावा कुछ नहीं सूझता है। 'बेसमेंट', 'सैट-ऑफ' और अस्वीकृत फ्लोर जब दिखते ही नहीं हैं तो कानून के उल्लंघन का सवाल ही कहाँ उठता है! कोई-न-कोई मंत्री पूजा-पाठ के साथ उनके भवन का शिलान्यास करता है और उसके पूरे होने पर यज्ञ-हवन के बाद उसका उद्घाटन भी कोई मंत्री ही करता है। जिस बहुमंजिली इमारत के 'पैंट-हाउस' में वह रहते हैं, उसका हर फ्लैट उन्होंने एक करोड़ में बेचा था। इस वास्तु-आधारित महँगी बिल्डिंग का उद्घाटन छबीलदास ने मुख्यमंत्री से करवाया था।

पर यह सब तो अतीत है। अभी तो चारों ओर अँधेरा है। उनके अपहरणकर्ता भी अजीब हैं। उन्हें दरवाजे के टूटे पल्ले पर स्थापित कर नदारद हैं। उन्होंने उठने का प्रयास किया, वह असफल रहे। उनका इरादा अपहरणकर्ताओं को चकमा देने का था। उन्हें लगा कि शायद रात की ह्विस्की-शैंपेन ने शरीर को पंगु कर दिया है और वह चेतन से जड़ हो गए हैं। देश २६ जनवरी को गणतंत्र दिवस मनाता है, वह २५ को अपना जन्मदिवस। उनकी बर्थ-डे पार्टी में अब तक हर चीफ मिनिस्टर आया है। हर सफल बिल्डर दलनिरपेक्ष होता है। वह तो राष्ट्र-निर्माता हैं। छबीलदास को याद तक नहीं है कि उन्होंने कितने पुल, सड़क और भवन बनवाए हैं। यह उनके राजनीतिक प्रभाव और सूझबूझ का ही नतीजा है कि उनमें से कई तो सिर्फ कागज पर बने और किसी-न-किसी प्राकृतिक आपदा की भेंट चढ़ गए। उन्होंने तय किया कि बढ़ती उम्र के साथ वह पीना कम करेंगे। अपनी दृष्टि में वह सिर्फ राष्ट्र-निर्माता ही नहीं, समाज सेवक भी हैं।

उन्होंने शहर में आधा दर्जन मंदिर भी बनवाए हैं। उनके बनाए पुलों और सड़कों से ये कुछ जुदा हैं। जहाँ उनके पुल गाहे-बगाहे टपकते रहते हैं और सड़कों पर बनते ही भ्रष्टाचार के गड्ढे-दरारें उजागर होते हैं, मंदिर अभी भी टिके हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने भगवान् से ईमानदारी बरती है। वह अपनी सार्थक छवि के बारे में सतर्क हैं। इसीलिए वह मंत्री, अफसर, पत्रकार, अनाथालय आदि सबको दान-पुण्य करते हैं। उनकी नजर में पत्रकारों-अफसरों का समान महत्त्व है। एक खबर बनाता है, दूसरा ठेके दिलाता है। दोनों उनके अस्तित्व के लिए उतने ही आवश्यक हैं जितने नेता-मंत्री और भगवान्। उनके मंदिर हवन-यज्ञ और भंडारे से आम आदमी पर उनके सज्जन पुरुष होने की धाक जमती है। यह जरूरी है। उनके मन के किसी कोने में एक कुलबुलाती हसरत है। इतने गिरे-पड़े लोग नेता, विधायक, मंत्री, सांसद हैं। वह किसीसे कम तो हैं नहीं। वह क्यों नहीं चुनाव लड़कर मंत्री बन सकते हैं। कोई भी दल उनके जैसे

जाने-माने राष्ट्र-निर्माता को अपनी पार्टी से चुनाव का टिकट देकर गौरवान्वित महसूस करेगा।

मलबे के टीले पर सुबह की किरणें कहीं से छनकर आने लगीं। उनकी 'बेड-टी' अभी तक क्यों नहीं आई। उन्हें नौकरों पर क्रोध आया। रात की पार्टी भोर तक चलने का यह मतलब तो नहीं है कि सुबह कोई उनको एक कप चाय भी वक्त से न दे। इसके साथ ही उन्हें अपनी पटरा-स्थिति का भी फिर से अहसास जगा। यह कैसे अपहरणकर्ता हैं! जाने किस खंडहर में उन्हें लाकर दरवाजे के टूटे पल्ले पर बैठा छोड़कर गुम हो गए हैं। कोई और होता तो उनके हाथ-पाँव तो बाँध जाता। कौन जाने, किडनैपर्स को भरोसा है कि वह चाहकर भी भागने में असमर्थ हैं। न उनके हाथ-पैर हिल रहे हैं, न उनके मुँह से बोल फूट रहे हैं। क्या इन बदमाशों की गैंग ने शरीर को सुन्न करनेवाला कोई इंजेक्शन उनको लगा दिया है और खुद वह फिरौती वसूलने के चक्कर में पड़े हैं।

उन्होंने पूरा जोर लगाकर चीखने की कोशिश की। उनकी आवाज नहीं निकली, जैसे गले के साउंड बॉक्स की बैटरी किसीने निकाल ली हो। बैटरी के महत्त्व से वह भलीभाँति परिचित हैं। एक बार उनके सैल फोन को नौकर 'चार्जर' पर रखना भूल गया था। दिन भर सैल फोन उनके गले की तरह चुप रहा। उन्हें याद आया कि उन्होंने एक बार धार्मिक सम्मेलन में एक पेशेवर प्रवचनकर्ता स्वामीजी को निमंत्रित किया था। आठ-दस हजार की भीड़ स्वामीजी को सुनने आई थी। तब उन्हें प्रवचन का धंधा फायदेमंद लगा था। इसका मुनाफा किसी भी बिल्डर से ज्यादा है। सोने में सुहागा यह है कि किसी पर निर्भरता नहीं है। न अफसर-मंत्री की खुशामद-घूस, न इधर-उधर की दौड़-भाग, न फालतू का टेंशन। स्वामीजी को सब शीश नवाते हैं। समाज में उनकी इज्जत है। अपना चार-पाँच एकड़ का आश्रम है, कारें हैं, रुतबा है। उसी समारोह में स्वामीजी ने प्रवचन के दौरान कहा था, 'मानव का शरीर भी मशीन है। उसमें और सामान्य मशीन में सिर्फ इतना फर्क है कि ऊपरवाले ने इनसान के अंदर आत्मा की बैटरी फिट की हुई है। मामूली मरम्मत-रिपेयर तो डॉक्टर-वैद्य कर लेते हैं, पर शरीर की बैटरी सिर्फ प्रभु के स्मरण से ही 'चार्ज' होती है। जरूरी है कि हम बैटरी को नियमित रूप से चार्ज करते रहें, वरना माटी को माटी में मिलने में वक्त नहीं लगता है।'

उन्होंने शहर में आधा दर्जन मंदिर भी बनवाए हैं। उनके बनाए पुलों और सड़कों से ये कुछ जुदा हैं। जहाँ उनके पुल गाहे-बगाहे टपकते रहते हैं और सड़कों पर बनते ही भ्रष्टाचार के गड्ढे-दरारें उजागर होते हैं, मंदिर अभी भी टिके हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने भगवान् से ईमानदारी बरती है। वह अपनी सार्थक छवि के बारे में सतर्क हैं। इसीलिए वह मंत्री, अफसर, पत्रकार, अनाथालय आदि सबको दान-पुण्य करते हैं।

स्वामीजी ने एक घंटे जनता की बैटरी 'चार्ज' करवाई। जनता ने उनके गुण गाए। छबीलदास ने नए धर्मभीरु मुख्यमंत्री से संपर्क बनाया। भगवान् की बड़ी कृपा रही। धार्मिक सम्मेलन में जो भी आया, उसने कुछ-कुछ पाया। जनता की किस्मत है। उसे नेता, अफसर, स्वामी सब सिर्फ नसीहत देते हैं। कभी-कभी तो लगता है कि श्रेष्ठ वर्ग को नसीहत की अपच हो गई है। उनके अपनों तक को सीख के वमन से परहेज है। जहाँ उन्होंने नसीहत की उबकाई ली, सब दफा हो जाते हैं। जनता की हालत थाने में फँसे बेगुनाह नागरिक जैसी है। हर अधिकार का सिपाही उसे टीप मारकर मुसकराता चला जाता है।

छबीलदास का ध्यान बैटरी से हटा तो अपने परिवार में जा अटका। अब तक अपहरणकर्ता उनके घर में फोन से अपने कारनामे की सूचना दे चुके होंगे। उन्होंने फिरौती की चार-पाँच करोड़ की रकम की माँग भी कर ली होगी। उनके मन को अचानक शंका ने घेर लिया। उनका बेटा उनसे लड़कर आयात-निर्यात का धंधा करने लगा है। उनकी पत्नी पार्वती बैन भी उनसे प्रसन्न नहीं हैं। वह तो कुछ पारिवारिक संस्कार और परंपरा के माने वह उनके साथ घर में रहती हैं, जैसे कोई भूला-भटका ईमानदार सरकार में नौकरी करे। वरना उनका छबीलदास से कोई नाता नहीं है। जैसे हर बड़े आदमी का चलन है, छबीलदासजी की एक अदद प्रेमिका है। वह मॉडलिंग भी करती है और फिल्मों में छोटे-मोटे रोल भी। वह जब छबीलदास को 'छबीले' कहकर बुलाती है तो उनका रोम-रोम झूम उठता है। उन्हें इस संबोधन से इतनी खुशी होती है जितनी अपनी बिल्डिंग को सीमेंट में बालू मिलवाकर बनवाने में। उसे भी उन्होंने अपने दफ्तर के पास की इमारत में फ्लैट दे रखा है। कई बार वह दफ्तर के बजाय उसके फ्लैट में पहुँच जाते हैं। दफ्तर के चुगलखोरों ने उनकी सारी हरकतें पार्वती बैन को बता दी हैं। तब से न सिर्फ उनका भजन-कीर्तन बढ़ गया है, छबीलदास से बातचीत भी उसी मात्रा में कम हो गई है। पार्वती बैन के तीन उद्योगपति भाई हैं। एक मुंबई में है और दो इसी शहर के बाहर फॉर्म हाउस बनाकर रहते हैं। वह उनके पास ज्यादा जाने लगी हैं। छबीलदास का छोटा बेटा उनका चहेता है। उन्हें उम्मीद है कि वही धंधे में उनका हाथ बँटाएगा। कहीं इन परिस्थितियों में उनके परिवारवाले अपहरणकर्ताओं की माँग न मानें तो क्या होगा? पार्वती बैन को तो 'धर्म' हो गया है। छबीलदास को

लगता है कि धर्म एक खतरनाक रोग है। इससे पैसे का मोह छूटता है। बस सबकुछ भगवान् पर छोड़ने की आदत हो जाती है। अगर कहीं उन्होंने छबीलदास की जिंदगी को बिना फिरौती अदा किए, भगवान् भरोसे छोड़ दिया तो उनके प्राण कैसे बचेंगे। उनका बड़ा लड़का ऐसे भी उनसे खफा है और अभी तो व्यापार के चक्कर में अमेरिका गया हुआ है। शायद छोटा ही माँ को अक्ल दे।

वह इन्हीं दुश्चिंताओं में डूब-उतरा रहे थे कि उनके कानों में सामूहिक विलाप की आवाज गूँजने लगी। अब तक और रोशनी आने लगी थी। उन्होंने इधर-उधर देखा। उन्हें कई मृत और क्षत-विक्षत शव नजर आए। उन्होंने एक बार फिर भागने की कोशिश की। इस बार उन्हें अपनी कटी हुई टाँगें दिखीं। बहते-बहते खून जम गया था। उन्हें ताज्जुब हुआ। उनकी टाँगें कट चुकी हैं और उनके दर्द नहीं हो रहा है। यह सच है कि बिल्डर ही क्यों, हर बड़े आदमी के दिल में दूसरों के लिए दर्द नहीं होता है; पर अपना तो होता ही है। छबीलदास का तो यह आलम था कि उनके शरीर पर चींटी भी रेंग जाए तो वह आसमान सिर पर उठा लेते थे। आज टाँग कट गई और उन्हें अहसास तक नहीं है। चील-कौए आसपास मँडराने लगे। वे भी उनसे बचकर निगलते। छबीलदास को पल्ले नहीं पड़ा कि माजरा क्या है। इतने में उन्हें खुद का बाकी शरीर दिखा। यह क्या हो गया, जो उनकी दशा सड़क के भिखारी से भी बदतर है। उनकी लाश तो म्यूनिसपैलिटीवाले दाह-संस्कार के लिए उठा ले जाते हैं। यहाँ वह करोड़पति लावारिस की तरह किवाड़ के पल्ले पर पड़े हैं। न कोई डॉक्टर, न कोई देखने-सुननेवाला, न कोई रोने-धोनेवाला। वह मच्छर-मक्खी की तरह मजबूर अपने स्वयं के शरीर को ऐसे ताक रहे हैं जैसे वह किसी पराए की लाश है।

बाहर के क्रंदन के साथ क्रोध का शोर भी शामिल हो गया है, 'छबीलदास की बनाई सब इमारतें ढह गईं।' 'छबीलदास खूनी है। मिले तो चौराहे पर उसे फाँसी लगा दें।' छबीलदास एकबारगी काँप उठे। फिर उन्हें राहत का अनुभव हुआ। अब कोई उनका क्या बिगाड़ सकता है? उन्हें यकायक पार्वती बैन की परिचित आवाज सुनाई पड़ी। उन्हें ताज्जुब हुआ। यह कैसे बच गईं। उन्हें याद आया कि रात की पार्टी में उनके भाई भी आए थे। वह उनके साथ चली गई थीं। उन्होंने देखा कि पार्वती बैन उनकी लाश के पास बुत बनी खड़ी हैं। उनके हृदय-विदारक रुदन का स्वर वातावरण में गूँज उठा। वह पागलों की तरह अपनी चूड़ियाँ तोड़ने लगीं। उनके भाई आए और उन्हें खींचकर ले गए। कुछ समय बाद स्ट्रेचर लेकर कुछ लोग छबीलदास के शरीर के बिखरे हिस्सों को बटोरने लगे। वह विवश होकर अपने शारीरिक अवशेष मलबे से बाहर जाते देखते रहे।

उन्हें माहौल में तैरती अपनी प्रेमिका नजर आई। उसने उन्हें देखते ही मुँह फेर लिया। इसी इनसान के कारण वह अकाल मृत्यु पाकर भूतनी बनी है। उसके छबीले उदास हो गए। इनसानों की एहसान-फरामोशी का उनको पता था। पर कैसा जमाना आ गया है। इनसानों के भूत भी एहसान-फरामोश होने लगे हैं। इतने में उन्हें स्वामीजी नजर आए। वे भी प्रवचन करके छबीलदास के बनाए होटल में डेरा डाले थे और छबीलदास की दशा को प्राप्त हुए थे। उन्होंने इशारे से छबीलदास को अपने पास बुलाया। भूत की आवाज भूत को ही सुनाई पड़ती है। स्वामीजी के निर्देश पर दोनों मिलकर अपने बसेरे के लिए पीपल का पेड़ ढूँढ़ने लगे। स्वामीजी ने छबीलदास को आश्वस्त किया, 'तुम्हें और तुम्हारे ऐसों को दुनिया हमेशा याद रखेगी। तुमने पता नहीं कितने शहरों को भूतों की बस्ती बना दिया है।'

बड़ी मुश्किल से दोनों को एक साबुत पेड़ मिला। छबीलदास की ख्याति भूतों तक में पहुँच चुकी थी। पुराने भूत उस पेड़ को छोड़कर भाग निकले। नयों ने उसके पास आने का दुस्साहस नहीं किया। सिर्फ बड़े लोग अपनी महानता में अकेले नहीं होते हैं, उनके भूत भी अपनी दुष्टता में अकेले ही रहते हैं।

अब छबीलदास पेड़ पर उलटे टँगे दुनिया का नजारा ले रहे हैं। लोग भूकंप को सह सकते हैं, पर छबीलदास के भूत को नहीं। छबीलदास के अतीत का इतना प्रभाव है कि एक आदमी पीपल के पेड़ के नीचे से गुजरा तो एक डाल गिरने से उसका सिर फूट गया। जीवित हों या भूत, छबीलदास ऐसों से लोग खौफ ही नहीं खाते, नफरत भी करते हैं। पर छबीलदास को संतोष है। अपनी विध्वंसक इमारतों से, लोगों की स्मृति में वह अमर हो गए हैं। उनके भूत की इतनी इज्जत है कि लोग पीपल के पेड़ों के नीचे से निकलने से कतराते हैं, 'कहीं अगर इस पेड़ पर छबीले का भूत हुआ तो सिर की खैर नहीं है।' छबीलदास को विश्वास है कि उनके सहयोगी बिल्डर, मंत्री, नेता और अफसर उनकी परंपरा को आगे बढ़ाते रहेंगे।

☐

डी-II/२९८, विनय मार्ग, चाणक्य पुरी
नई दिल्ली-११००२१

भूल सुधार

'साहित्य अमृत' के फरवरी २००१ अंक में 'जो लिखा-पढ़ा जा रहा है' स्तंभ के अंतर्गत भूलवश श्रीमती नासिरा शर्मा के पते के स्थान पर अन्य पता छप गया है। इसके लिए हमें हार्दिक खेद है। उनका पता है—सी ११८, सरिता विहार, नई दिल्ली-११००४४। इसी अंक में 'हिंदी के निर्माता' स्तंभ के अंतर्गत डॉ. संपूर्णानंदजी की जन्मतिथि भूलवश १८१९ छप गई। पाठक कृपया इसे १८८९ पढ़ें। जनवरी २००१ अंक में श्री नरेश मेहता के निधन की तिथि भूलवश गलत छप गई थी। सही तिथि है—२२ नवंबर, २०००।
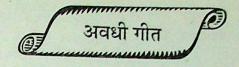
ठग बिद्या

भारतेंदु मिश्र

जोसी भाट पीर पैगंबर
सबै लगावैं फेरा,
आय रही है धीरे-धीरे
फसल कटै कै बेरा।
सब ठग बनिया
अउरु बिसाती
होय लाग अटकउरी,
म्वाँछ अँइठि कै
खाँय खवावैं
दुइ दिन गरम कचउरी।
दस-बारह दिन
रोटी खइहैं
तीकै होई लंघनु,
जानि-बूझि
सब करैं किसनऊ,
महिनन भूखे मरैं किसनऊ।
रोय-गाय कै
माँगि-जाँचि कै
ह्याँवत मा दिन काटैं,
सालु बादि जब दाना आवै
गाँव भरे मा नाचैं।

चलै किहानी ट्वाला-ट्वाला
रसिया भजनु सुनावैं,
बइठ पंडितऊनू परती मा
कथा भागवति गावैं।
संकर आवैं इंदर आवैं
आवैं कुंता दाई,
घूँघुट कहड़े आय रही हैं
नंदन सँग भौजाई।

माँगि-जाँचि कै
दुइ-दुइ आना
पोथी पर धरि आवैं,
झूठी-साँची देर रात तक
पंडित कथा सुनावैं।

ढोला रहसु अउरु नौटंकिउ
आजु काल्हि होती हैं।

दुइ पइसा की चीज
बिसाती दुइ रुपया मा ब्याँचै,
पलझावै बेपढ़े-लिखेन का
समुझावै फूफुनि ककियनि का
बिनु कमरी डारे लूटति है
सब रद्दी चीजै ब्याँचति है।

नुइया भरि-भरि लहिला गोंहूँ
लँउडे घर ते लावैं,
कबहुँ पिपिहरी खातिर र्वावैं
कबहूँ गुब्बारा लइ गावैं।
बिद्दति रोजु मचावैं
लरिकन ते हारे घरवाले
रोकि न उनका पावैं।

सदा सनीचर के दिन अइहैं
भोरहे जोसी देउता,
घोड़ी की पीठी पर बाँधे
छोटका एकु कठौता।
बीड़ी पियैं चिलम सुलगावैं,
सनि देउता की कथा सुनावैं।

गेरू मइहाँ तेलु मिलाए
सबके तिलकु लगावति जाँय,
पइसा नाजु पिसानु सबै कुछु
झोरिन मा सरकावति जाँय।

नट-कंजर-गुजकढ़िया आवैं
डेरा हियैं बनावैं
कला देखावैं, करैं तमासा
कबहूँ खूँटु निकारैं।

भँइसिन पर बोरियन मा लादे
यहे गाँव का दाना,
हम तौ लुटै बदे बइठे हन
लूटि लेव मनमाना।

मँगता बदलि-बदलि कै बाना
माँगि रहे हैं भिच्छा,
इच्छाधारी नेता बोले
फिरि वाटन की बेरिया
या ठग बिद्या दूरि न होई
जब तक रही असिच्छा।

एल-१८७/सी, दिलशाद गार्डन
दिल्ली-११००९

कहानी

बोलो बुआ, बोलो!

शरद सिंह

कमरे के वातावरण में सन्नाटा था; लेकिन इस सन्नाटे के अंतस में उपस्थित तीखेपन को कोई भी सहजता से भाँप सकता था। लग तो ऐसा रहा था कि दोनों में से कोई भी इस मौन को भंग नहीं करना चाहती हैं।

"तो आप तलाक नहीं देंगी?" मौन तोड़ते हुए अदिति ने निर्णायक स्वर में पूछा।

"नहीं।" वह दृढ़तापूर्वक बोली।

"आप क्यों कर रही हैं ऐसा? क्या मिलेगा आपको ऐसा करके? आप समझतीं क्यों नहीं, आपकी इस जिद के कारण तीन-तीन जिंदगियाँ बरबाद हो जाएँगी।" अदिति हताशा से भरकर प्रलाप कर उठी।

वह मौन रही। सच तो यह था कि उसका बोलने को मन भी नहीं कर रहा था। वह तो इस पल यही चाह रही थी कि अब अदिति जाए और उसे इन नारकीय क्षणों से मुक्ति मिले।

"निखिल सही कहता है, आप औरत नहीं, जल्लाद हैं, जल्लाद!" अदिति का गला भर आया।

"जल्लाद भी इनसान होता है, अदिति। उसकी अपराधी से कोई जाती दुश्मनी नहीं होती है। वह तो अपराधी को उसके अपराध के लिए निर्धारित की गई सजा देता है। खैर, अब तुम्हें जाना चाहिए। जाओ, और जाकर ठंडे दिमाग से उन बातों पर विचार करो, जो मैंने तुम्हें बताई हैं; तब तुम अपना भला-बुरा समझ जाओगी।" उसने धैर्यपूर्वक अदिति को समझाने का प्रयास किया।

"ठीक है, जा रही हूँ; लेकिन मैं निखिल को तुम्हारे चंगुल से आजाद कराकर रहूँगी।" तेवर बदलकर फुफकारती हुई अदिति उठ खड़ी हुई। दरवाजे से बाहर निकलते समय अपने पीछे दरवाजे के पल्लों को भड़ाक से उढ़काती गई।

अदिति की इस हरकत पर उसे क्रोध नहीं आया। उसने खुद भी तो किया था ठीक ऐसा ही, जब बुआ ने उसे समझाना चाहा था।

'देख मुकु, निखिल तेरे लायक नहीं है। उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता है। उससे नहीं निभेगी तेरी।' बुआ बोली थीं।

'चुप रहो, बुआ। ये क्यों नहीं कहतीं कि निखिल से तुम चिढ़ती हो!' उसने भड़ककर कहा था।

'मैं? भला मैं क्यों चिढ़ूँगी निखिल से?' हकबकाई थीं बुआ।

'क्योंकि...क्योंकि तुम्हें निखिल जैसा पति नहीं मिला। बुआ, सच कड़वा होता है। और सच यही है कि तुम खुद तो अपने पति से निभा नहीं सकीं, अब सोचती हो कि कोई भी निभा नहीं सकेगी। तुम्हारे पति और निखिल में जितना अंतर है उतना ही तुममें और मुझमें भी है, बुआ।' पता नहीं किस रौ में वह कह गई थी इतनी कटु और आग उगलनेवाली बात।

उसके द्वारा इस विष-वमन के ठीक बाद से ही बुआ ने समेट लिया था अपने आपको। इसके उलट वह निरंकुश हो गई थी और शीघ्र ही उसने आर्यसमाज मंदिर में निखिल से विवाह कर लिया था। बुआ भी शामिल हुई थीं उसके विवाह में; रात्रिभोज में भी। उसने बुआ से क्षमा माँगी थी।

'मैंने क्रोध में न जाने क्या-क्या कह दिया था उस दिन। प्लीज, माफ करना, बुआ।' उसने बुआ का दायाँ हाथ अपने हाथों में लेकर धीरे से दबाते हुए निवेदन किया था, वह भी विदा के समय।

'भगवान् करे, तू सच निकले, मुकु।' बुआ ने अपना बायाँ हाथ उसके सिर पर फेरते हुए कहा था।

भगवान् ने ऐसा नहीं किया। वह झूठी साबित हुई और बुआ सच। कोई पुरुष इतना छद्माचारी भी हो सकता है, उसने कभी नहीं सोचा था। विवाह के पहले निखिल जैसा था, विवाह के बाद वैसा नहीं रहा। उसे ऐसा महसूस होने लगा जैसे वह धोखे से किसी अपरिचित पुरुष के साथ गाँठ जोड़ बैठी है। उसे तो यह भी भ्रम होने लगता था कि यह कहीं निखिल का हमशक्ल बहुरूपिया तो नहीं? गहरी रातों में जाग-जागकर चेहरा ताकती। निखिल का नींद में डूबा चेहरा बिलकुल निखिल जैसा लगता। हाथ-पाँव, उँगलियाँ सबकुछ निखिल की। फिर नींद टूटते ही निखिल के जिस्म में कोई और आ समाता। चेहरे पर अपरिचित भाव-भंगिमाएँ उभर आतीं। हाथ-पैर प्रहार करने के लिए तत्पर मिलते। उँगलियाँ पोर-पोर मसल देने, रौंद देने को उतारू मिलतीं।

वह अंधविश्वासी नहीं थी; लेकिन निखिल के बदले हुए रूप ने उसे अंधविश्वासी बना दिया। वह अपनी पीड़ा किसीसे कह नहीं सकती थी—बुआ से तो हरगिज नहीं। यह विवाह उसका खुद का निर्णय था। दुनिया की भाषा में 'प्रेम विवाह' किया था उसने। वह भला किसको बताती कि साथ फेरों के बाद सिर्फ विवाह हाथ लगा, प्रेम नहीं। क्या विवाह

जन्म : २९ नवंबर, १९६३।

शिक्षा : एम.ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व), एम.ए. (मध्यकालीन भारतीय इतिहास), बी.एड.। शोध—'खजुराहो की मूर्तिकला का सौंदर्यात्मक अध्ययन'।

प्रकाशन : एक कहानी संग्रह, एक नवगीत संग्रह, एक खंडकाव्य, नवसाक्षरों हेतु दो कहानी संग्रह।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा सिटी चैनल्स से रचनाओं का प्रसारण।

सम्मान : वर्ष १९९९-२००० का 'पं. गोविंद बल्लभ पंत पुरस्कार' तथा जैमिनी अकादमी, हरियाणा द्वारा 'आचार्य' की उपाधि।

नहीं करना चाहता था निखिल? नहीं, वह तो तुरंत राजी हो गया था। लोग कहते हैं कि त्रिया-चरित्र और त्रिया-मन को समझना कठिन है; लेकिन कोई उससे पूछे तो वह यही कहेगी कि पुरुष-मन और उसकी इच्छाओं को समझना असंभव है।

उसे विवाह से पहले का निखिल प्रिय था। वह निखिल, जो उसकी जरा सी 'उफ' पर उदास हो जाता और उसके मुसकराने पर खिलखिला पड़ता। उसे याद है, वे लोग बटुकेश्वर गए थे। उसकी तीव्र इच्छा थी भगवान् बटुकेश्वर के दर्शन करने की। उस पूरी यात्रा में एयरबैग या अटैची तो क्या, प्रसाद का पूड़ा भी उसे नहीं उठाने दिया था निखिल ने; मानो पलकों पर बिठाकर घुमाया था बटुकेश्वर।

वह निहाल हो उठी थी निखिल का यह समर्पित प्यार देखकर। वहीं शादी के कोई आठ महीने बाद इंदौर जाते समय उनका सामान था—दो अटैची और एक झोला। इंटरसिटी एक्सप्रेस में निखिल ने उससे कहा था, 'स्टेशन से होटल नजदीक ही है, पैदल निकल चलेंगे।'

'पैदल! लेकिन इतना नजदीक भी नहीं है। मैं तो सिर्फ झोला ही उठा पाऊँगी। दोनों अटैचियाँ तुम्हें उठानी पड़ेंगी।' उसने कहा था।

'नहीं, एक अटैची तुम उठाओगी।' निखिल ने निर्णायक भाव से कहा था।

'मगर तुम जानते हो, मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं अभी भारी सामान नहीं उठा पाऊँगी।' उसने अपनी लाचारी याद दिलाई थी।

'कुछ नहीं। ये सब बहाना है। आलसी हो गई हो तुम। पैदल चलने की आदत छूट गई है तुम्हारी।' निखिल उसे ताना मारते हुए बोला।

'हाऊ क्रुएल यू आर।' वह भी दबी जबान से बोल उठी थी।

'क्रुएल मैं नहीं, तुम हो। तुम्हारा बस चले तो मेरे साथ न जाने क्या कर डालो! अगर मेरे दोनों हाथों में अटैचियाँ हों, सिर पर होलडाल हो, तब भी तुम एक और अटैची मेरे सिर पर लादकर इठलाती हुई चल सकती हो।' निखिल बोला था।

निश्चित रूप से मजाक नहीं कर रहा था वह। गंभीरतापूर्वक किया गया यह दंश असह्य पीड़ा दे गया उसे। उसकी आँखें डबडबा आई थीं। वह खिड़की के बाहर देखती हुई सोचने लगी थी कि आखिर कहाँ गलती हुई उससे? क्या वह सचमुच 'क्रुएल' है? 'आरामतलब' हो गई है? क्या एक पत्नी के अधिकार की चाह करना निर्ममता है?

इंटरसिटी एक्सप्रेस से उतरते समय दोनों अटैचियाँ निखिल ने ही उठाईं। होटल भी ऑटो-रिक्शा से गए। तो फिर ये दंश क्यों किया था निखिल ने? उत्तर नहीं था उसके पास। इसी तरह अठारह महीने व्यतीत हो गए, मगर स्थितियाँ नहीं बदलीं। वही अजीब रवैया निखिल का। निखिल उसकी उपेक्षा करता, उसे अपमानित करता—और यदि वह कुछ कहने को होती तो इसके पहले वह शिकायत कर उठता, 'तुम्हें भला मेरी क्यों परवाह होने लगी? अब तो मैं तुम्हारा पति हूँ। तुम्हारे नाज-नखरे नहीं उठाऊँगा तो भला कहाँ जाऊँगा? मुझे तो अपनी भावनाएँ प्रकट करने का भी अधिकार नहीं है। मेरा तो बोलना ही अपराध हो जाता है।'

इसपर भी मन नहीं भरता तो इतना और जोड़ देता, 'मैं मर जाऊँगा, तब तुम आजाद हो जाओगी। तब तुम चैन की साँस ले सकोगी।'

आँसुओं के सिवा कोई प्रत्युत्तर नहीं रहता उसके पास। वह कहती भी तो क्या? उसे समझ में नहीं आता था कि वह निखिल को कैसे यकीन दिलाए कि निखिल उसका प्यार है, उसका पति है। वह अपने प्यार, अपने पति को कैसे प्रताड़ित कर सकती है? ऐसा तो वह सपने में भी नहीं कर सकती।

धीरे-धीरे उसे अहसास होने लगा कि निखिल उससे दूर, बहुत दूर होता जा रहा है। इसी दौर में वह इतनी विचलित हो उठी कि एक मूर्खतापूर्ण काम कर बैठी। उसने एक फिल्मी पत्रिका के पिछले पन्ने पर वशीकरण मंत्र का एक विज्ञापन देखा। विज्ञापन में दावा किया गया था कि चाहे प्रेमी हो या प्रेमिका, पति हो या पत्नी, किसीको भी वश में करनेवाला अचूक मंत्रवाला तावीज मँगाएँ और आजमाकर देखें। उसने तत्काल चिट्ठी लिख डाली और ऑर्डर दे दिया। यही कोई पंद्रह-बीस दिन बाद सौ रुपए के वी.पी.पी. के जरिए आया वह तावीज।

रात के समय उसने चुपचाप निखिल के तकिए के नीचे रख दिया वह तावीज। एक रात, दो रात, तीन रात, न जाने कितनी रातें गुजर गईं; न कुछ होना था और न कुछ हुआ। गुस्से से तोड़-फोड़कर फेंक दिया था उसने तावीज को। जितनी मूर्ख उसे बनना था, बन चुकी थी।

उसे आशा थी कि उसके माँ बनने पर स्थितियों में परिवर्तन होगा। मगर डॉक्टर ने बताया कि वह जब तक अपने 'डिप्रेशन' से बाहर नहीं निकलेगी, उसका माँ बनना मुश्किल है। डॉक्टर ने गलत नहीं कहा था। दो बार गर्भपात हुआ उसका। एक बार तीन माह में तो दूसरी बार लगभग पाँच माह में। दूसरे गर्भपात के बाद वह मनोचिकित्सक से भी मिली। मनोचिकित्सक ने विस्तारपूर्वक उसकी बातें सुनने के बाद कहा था, 'आपका केस एक कॉमन केस है। आपके पति आम भारतीय पुरुषों के समान हैं। वे अपने पतित्व के अधिकार भाव से ग्रस्त हैं। सीधी सी बात है, पहले यानी शादी के पहले वे एक प्रेमी के रूप में अपने आपको पाते थे और आपके लिए सबकुछ करने को तत्पर रहते थे; लेकिन शादी के बाद उनमें यह भावना घर कर गई कि वे पुरुष हैं, पति हैं और अपनी पत्नी से सेवा करवाना उनका अधिकार है, न कि सेवा करना। अब वे चाहते हैं कि आप उनकी हाँ में हाँ मिलाएँ। और ठीक यही बात आपके भीतर भी है। आप भी यही चाहती हैं कि आप पत्नी हैं तो आपको अपने पति से सेवा करवाने का अधिकार है। आप चाहती हैं कि आप पत्नी हैं, इसलिए आपके पति आपको हाथोहाथ लिये रहा करें।'

'ऐसा नहीं है।' उसने प्रतिवाद करना चाहा था।

'ऐसा ही है। आप दोनों में से किसी-न-किसीको तो अपने अहं से बाहर आना ही होगा, किसी एक को अपना समर्पण करना ही होगा। यदि आपके पति नहीं करते तो आप यह पहल करिए।' मनोचिकित्सक ने कहा था।

'अहं' का तो उसे पता नहीं, लेकिन इतना अवश्य है कि वह यह चाहती है, जितना खयाल वह निखिल का रखती है उतना खयाल वह उसका भी रखे। मनोचिकित्सक से मिलने के बाद उसने अपने आपको निखिल की इच्छाओं के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। किंतु एक झटका लगना अभी शेष था।

अदिति आई उसके पास।

'मुकुजी, मैं और निखिल···प्यार करते हैं हम एक-दूसरे को। हम शादी भी करना चाहते हैं। देखिए, निखिल आपके साथ खुश नहीं हैं। आप मेरी बात समझ रही हैं न?' अदिति ने एक साँस में कह डाला था यह सब।

'निखिल ने तुम्हें भेजा है मेरे पास?' वह हतप्रभ थी। निखिल उससे खुद अपनी बात कहने का भी साहस नहीं जुटा पाया?

'नहीं, उनका मानना है कि आप उनकी बातें समझ नहीं पाएँगी। इसलिए मैंने सोचा कि···' जानबूझकर चुप रह गई अदिति।

'तुमने सोचा! क्या सोचा तुमने कि तुम आओगी, मुझसे कहोगी कि मैं निखिल को तुम्हारी झोली में डाल दूँ? और तुम्हारे ऐसा कहने भर से मैं अमल करूँगी तुम्हारी बात पर? नादान हो तुम।' वह तड़पकर बोली थी।

'लेकिन मुकुजी, आप समझने की कोशिश क्यों नहीं करतीं? मरे हुए इनसान की यादों के साथ जिया जा सकता है, लेकिन मरे रिश्तों के साथ नहीं। आप दोनों के बीच का रिश्ता मर चुका है। निखिल का दम घुट रहा है आपके साथ।' अदिति ने सीधे-सीधे आरोप ठोंक दिया था उसपर।

'और मैं? क्या मैं नहीं घुट रही हूँ?' वह लगभग चीख उठी थी।

'इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि आप राजी हो जाएँ तलाक के लिए।' अदिति ने मूल बात पर आते हुए कहा था।

'नहीं, यह संभव नहीं है।' वह दृढ़तापूर्वक बोली थी।

'अभी यह सब अप्रत्याशित है आपके लिए। मैं फिर मिलूँगी।' इतना कहकर चली गई थी अदिति।

अदिति की जिद में उसे अपना प्रतिबिंब दिखाई पड़ा था। मानो वह स्वयं वह नहीं, बुआ थी और अदिति अदिति नहीं बल्कि वह थी। उसे क्रोध नहीं आया अदिति पर। उसका हाथ माँगने भी तो आगे नहीं आया था निखिल। उसने ही बुआ से अपने मन की और निखिल की बात की थी। अब अदिति आगे आई है, निखिल अभी भी पीछे है। आँख खुलेगी अदिति की, मगर शादी करने के बाद। तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। एक पत्नी से उसका पति छीनकर बनी हुई पत्नी किसीसे नहीं कह सकेगी अपनी पीड़ा। घुटती रहेगी अदिति।

उसने तय किया कि अब जब भी अदिति से मुलाकात होगी, वह उससे निखिल के बारे में सबकुछ बताएगी। वह बताएगी निखिल के व्यवहार के बारे में, उसकी मानसिक अवस्था के बारे में। यही किया भी उसने। आज जब अदिति आई तो उसने सबकुछ बता डाला। निखिल से मुलाकात, प्यार, फिर विवाह और फिर निखिल में आया परिवर्तन। उसने मनोचिकित्सक की बात भी नहीं छिपाई। उसने तो यहाँ तक समझाने का प्रयास किया कि जो पुरुष अपनी बात स्वयं अपनी पत्नी से न कह पाए, वह उसे भला क्या सुख दे पाएगा? मगर अदिति के मुख पर वही भाव थे, जो कभी उसके स्वयं के मुख पर रहे होंगे। जब उसने बुआ से कहा था, 'चुप रहो, बुआ।'

चुप रह गई थीं बुआ। मगर वह बुआ के समान चुप नहीं रहेगी। नहीं देगी वह तलाक। कहीं वह गलती तो नहीं करेगी ऐसा करके? वह अपने अंतर्द्वंद्व से जूझने लगी। किससे पूछे? क्या बुआ से? पति के द्वारा, समाज के द्वारा, स्वयं उसके द्वारा चुप कराई गई बुआ से? पर, बुआ ने तो इससे अधिक भुगता है इस त्रासदी को। वे जानती हैं छोड़ने के बाद का दुःख। उन्होंने पूरी तरह पाया भी और खोया भी। वे ही निर्णय कर सकती हैं उसके सही और गलत का।

वह उद्यत हो उठी बुआ से मिलने को। उसे लगने लगा कि वह दौड़कर बुआ के पास पहुँचे और उनके दोनों कंधे पकड़कर उन्हें झकझोरते हुए पूछे, 'बोलो बुआ, बोलो! मैं क्या करूँ, बोलो?' □

एम-१११, शांति विहार,
रजाखेड़ी, सागर-४७०००४

मेरा नब्बेवाँ जन्मदिन मनाना

नीलम ऋषिकल्प

सन् १९८६ में ७ मार्च को अज्ञेयजी का पचहत्तरवाँ जन्मदिन बड़ी धूमधाम से कैवेंटर्स में आयोजित किया गया था, जो कि अपने आपमें बड़ा समारोह था; जिसमें कुमार गंधर्व का कार्यक्रम होना था। उसके बाद विशिष्ट भोज का कार्यक्रम था। हम उस समारोह में उपस्थित नहीं हो सकते थे।

एक रोज मैंने अनायास कह ही डाला, 'हम आपका जन्मदिन अलग से मनाएँगे।'

आदत के अनुसार धीमे से मुसकराते हुए वात्स्यायनजी बोले, 'तुम मेरा नब्बेवाँ जन्मदिन मनाना।'

मैंने उत्सुकतावश पूछा, 'क्यों?' तो कहने लगे, 'विदेश में मेरे एक मित्र हैं। लोग अस्सी वर्ष तक तो उनका जन्मदिन लगातार मनाते रहे; फिर अस्सीवें जन्मदिन पर घोषणा की कि अब आपका नब्बेवाँ जन्मदिन मनाएँगे। शायद लोगों को उनकी इतनी लंबी उम्र की अपेक्षा न थी।'

हर वर्ष ७ मार्च को पत्र-पत्रिकाओं में उनके सब स्नेही और पाठक उनके जन्मदिन को मनाते रहे हैं। सबकी स्मृति में वह अपने-अपने ढंग से छाए हैं। उनके विषय में बहुत सी व्यक्तिगत, साहित्यिक चर्चाएँ पुस्तकों के रूप में सामने आईं। कई बार चाहने पर, लोगों के समझाने पर भी मैं अज्ञेयजी के बारे में कुछ नहीं लिख सकी। कारण, स्मृतियों के घटाटोप कभी उनसे दूर नहीं होने देते। कभी सोचा भी तो सामने स्मृति की कुरसी पर आकर बैठ जाते हैं और कहने लगते हैं, 'आपकी कलम तैयार है? मैं बोलना शुरू करूँ?' घंटों वे बोलते जाते हैं। पर मैं अब कुछ लिख नहीं पाती; क्योंकि मुझे अज्ञेय का बोला हुआ लिखना था। मुझे स्वयं तो अज्ञेय के बारे में लिखना मेरी स्मृति के तारों को यों छेड़ जाता है कि स्वर को पकड़ना मेरे बूते से बाहर हो जाता है। हाँ, जब वो लिखाते थे, चाहे छाया का जंगल हो, सदानीरा की भूमिका, असमाप्त उपन्यास 'छाया मेखल', 'शेषा' या मैंने 'सदानीरा' की अनुक्रमणिका तैयारी की हो, तो मुझसे घंटों काम कराते। न कभी वे थकते थे, न मुझे कभी थकान का अनुभव होता था।

'साहित्य अमृत' में लेख लिखने का अवसर मेरे लिए सही अवसर था वात्स्यायनजी का नब्बेवाँ जन्मदिन मनाकर उऋण होने का।

वात्सल्य की प्रतिमा वात्स्यायनजी के व्यक्तित्व की असाधारणता पाठकों, स्नेहियों ने अपने-अपने ढंग से देखी; पर वह असाधारणता अकारण नहीं थी। वह प्रतिबद्धता के चौखटे में, स्मृतियों के झरोखों के बीच स्वयं से दूरी बनाए कितने अपने थे। जिनको उन्होंने अपनाया वे आज भी उस अपनेपन से सराबोर हैं। अपनेपन की ज्योतिर्मय शलाका को इस जन्मदिन पर सहस्र जय नमन!

जहाँ तक अज्ञेयजी के साथ बिताए क्षणों की स्मृति की बात है, उन्होंने कभी भी अपने न होने का आभास होने ही नहीं दिया। कहते हैं, समय के साथ व्यक्ति के घाव सूख जाया करते हैं; किंतु मधुर स्मृतियों के घाव हरे होकर गहराते रहते हैं। वे कभी पीड़ा नहीं देते, अपितु जीने की राह को निर्भीक और पारदर्शी बनाते हैं।

□

वरिष्ठ प्रवक्ता, रामलाल आनंद कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सिर्फ पिकनिक मनाने आते हैं

अजित कुमार राय

ओ कालिदास!
कहाँ गए?
कहाँ गईं वे बड़ी साँस की
'प्राणायामी' कविताएँ?
सृजन का वह स्वर्ण युग,
जब तुमने मोरपंखी कलम से
भोजपत्र पर नहीं,
'हृत्पत्र' पर लिखी थीं कविताएँ।
तुम अगले युगों में
कस्तूरी मृग-सा
'गंधयात्रा' करते हुए
पहुँचे हो हम तक,
बिना 'इंटरनेट' के
हुआ है तुम्हारा 'लोकार्पण'।
जब 'रस आखेटक'
आदिम किरात मन
नहीं कर सका
'ग्रीवाभंगाभिराम'
स्निग्ध स्वर्ण मृग का आखेट;
तब उसके दृष्टि-शर से
आबिद्ध हुई थी
विश्वोत्तीर्ण सुंदरी (रम्यांगना) शकुंतला
हुआ था 'मृग नैनी' का आखेट।
जिसके भीतर का
उमड़ता हुआ अंत: सौंदर्य
शरीर की सतह तक
छलक आया था,
(मदिर नेत्रों की पुकार से)
जिसके अंतस्तल के रस से,
सिंच गया था
तुम्हारा 'कंठ'।
जिसकी देहयष्टि की आभा
परावर्तित होती है आज भी
विश्व-आँख में।
उसके नेह की निशानी,
'प्रणय-चिह्न' को
कौन सी मछली निगल गई?
कहाँ गया हरित सरोवरों की
सरोज-शय्या पर
बिछ जानेवाला
तुम्हारा 'निषाद-मन'।
पोखर की जल-आँख
में प्रतिबिंबित तटस्थ छायाद्रुम।
तपोवन के निर्बाध यज्ञ धूम से
श्यामलित किसलयों के
नीड़ में निवास करता
मेरा मन वनपाँखी...।
(जमीन पर गिरे)
तरु-कोटरों में अवस्थित
शुक-शावकों के मुखभ्रष्ट
'नीवार' को
अपनी आँख से बीननेवाले
तुम हमेशा मुझे
निसर्ग सिद्ध उस
अतीत के कोटर में
डाल देते हो...।
बार-बार पीछे की ओर
उड़ता है अग्रगामी 'ध्वज' की भाँति
मेरा 'प्रगतिशील' मन।
जहाँ (सरोवर से) सद्य: स्नान कर निकले
वनसेवी ऋषियों के
वल्कल वस्त्रों से
टपकती जल बूँदों से
रेखांकित है कविता की जमीन।
जहाँ भागीरथी
के जलकणों का वहन करती
वायु-प्रताड़ित
कंपित देवदारु की छाया
आसेवित होती है किरातों के द्वारा...।
आज तो कविता की ताजा हवा
पाने के लिए
बीनते हैं हम 'नीमकौड़ियाँ',
फूलने लगे हैं अब
'नीम के पेड़'।
(उस) समूचे आरण्यक एकांत को
आत्मसात् कर
मेरा मन उड़ता है
वनपाँखी की तरह 'संदेश' लाने—
जहाँ...
जहाँ लिखती हैं किन्नरियाँ
गैरिक सिंदूर से
अपना प्रेमपत्र...।
रँगती हैं मेरे मन के पन्ने...
पढ़ता हूँ उनमें मैं खुद को आज भी,
ओ शब्द-संस्कृति के अग्रदूत!
तुम्हारा 'मेघदूत' खड़े करता है—
अनेक 'यक्ष प्रश्न',

'विषाद-योग' के माध्यम से
कराता हुआ
उज्जयिनी का सांस्कृतिक सर्वेक्षण
यक्ष से लेकर
यक्षिणी तक के
भाव जगत् की
'अंतर्यात्रा' तय करता है।
ओ कालिदास!
'बाजारवाद' के इस युग में,
जहाँ साहित्य जगत् में भी
हो चुका है पदार्पण
बहुराष्ट्रीय कंपनियों का;
तुम्हें कौन खरीदेगा?
कौन तुम्हारा पेटेंट कराएगा?
तुम्हारे 'आत्मदान' को
लोग फोकट का
सस्ता माल समझकर
या 'एक्सपायर्ड' डेट की दवाएँ
कहकर कूड़ेदान में फेंक देंगे।
नाक-भौंह सिकोड़ेंगे
तुम्हारे सामंती संस्कार की गंध पर।
यदि तुम 'वर्ग-संघर्ष'
नहीं करा सकते,
तो ओ सात्त्विक शील 'मृदुभाषी'!
काव्याकाश के भास्वर
देदीप्यमान नक्षत्र!
'बाजार' की बाँहों से ऊपर ही रहना।
मैं आऊँगा तुमसे मिलने 'सपने' में
शब्दों के पंख लगाकर,
या तुम्हारे 'प्रभामंडल' की
किरण-रज्जुओं के सहारे।
तुम्हारी कविता की 'जन्मभूमि'
भले ही राजदरबार रही हो,
किंतु 'लीलाभूमि' तो
सदा वन ही रही है।
प्राय: तुम्हारी कविता
निकलती रही है 'आत्म-प्रसार' के लिए
हस्तिनापुर और अवध से
(महर्षि) कण्व के तपोवन
और दंडकारण्य तक।

ओ सूक्ष्मदर्शी!
तुम्हारी पारदर्शी कविता
दरी गृह-द्वार-विलंबित
मेघों के परदे को भेदकर
'सुरत प्रदीप' के आलोक में
किन्नरियों की दैहिक छवि की
फोटोग्रैफी ही नहीं,
उनके भाव-गर्भ (मनोरोग)
हृदय का 'एक्स-रे'
भी उपस्थित करती है।
तुम्हारे ऊर्वशी का 'विक्रम' सार्वभौम है,
ऊर्वशी कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं,
चिरंतन 'भाव-सत्य' है;
कोई विशिष्ट रमणी नहीं,
शाश्वत 'शृंगार-भावना' है।
तुम 'दीपशिखा' बन (जिधर से गुजरते हो)
कविता-काव्यांगना के 'स्वयंवर' में
सगर्व बैठे अनेक महिपालों—
'साहित्यिक सामंतों' के चेहरों पर
अटारी की कालिमा
छोड़ जाते हो।
ओ 'उपमा सम्राट्'!
(हमारी) कानी उँगली कट गई।
'कनिष्ठिका' पर अधिष्ठित करनेवाले
अब तुम्हें अँगूठा दिखाते हैं;
शेक्सपीयर को ओढ़ते-बिछाते हैं।
और तुम्हारे तपोवन में वे सिर्फ
'पिकनिक' मनाने आते हैं।
ओ सूर्य-दीप्त रघुवंश के प्रशस्ति-गायक!
इंदुमती के मृत्यु-शोक में
पीले पत्तों के रूप में
अपने आँसू झाड़नेवाले
संवेदनशील 'छायाद्रुम' कहाँ गए?
अब तो किसीके निधन पर
वृक्ष तो क्या,
व्यक्ति भी आँसू नहीं झाड़ते;
बस, जैसे जिंदगी की पुस्तक से
एक पन्ना फाड़ते।
अब तो महाविनाश पर भी
व्यक्ति नहीं,
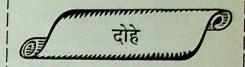
होली आ गई, पर···

राजकुमार धर द्विवेदी

कड़वाहट संबंध में, गायब हुई मिठास।
फीका-फीका रंग है, फागुन खड़ा उदास॥

सीधे मुँह करते नहीं, देवर-भाभी आज।
हँसी-ठिठोली की जगह, कर्कश है आवाज॥

गोली-सी बोली लगे, कैसे गाऊँ फाग।
खून-खराबा देखकर, भूल गया सब राग॥

नहीं बरसता रंग है, उड़ता नहीं गुलाल।
महँगाई की मार से, लाल हुआ नहिं गाल॥

गोप गोपिका कृष्ण की, यादें मन में शेष।
होली केवल नाम की, 'राज' बढ़ा है द्वेष॥

☐

दैनिक 'भास्कर',
दक्षिण सिविल लाइंस,
जबलपुर

हाँ, कुछ अखबार 'झनझना' जाते हैं।
संवेदना 'अखबारी' हो गई है।
सूख गई है वह
सांस्कृतिक भावधारा,
काश! मेरी आँखों का
समूचा पानी लेकर भी
वह 'स ज ल' हो उठती।

☐

राम-रहीम महाविद्यालय,
गहमर, गाजीपुर

होली पर विशेष

ब्रज में हरि होरी मचाई

रामनारायण सिंह 'मधुर'

होली मौज का त्योहार है, मिलन का त्योहार है, दुःख भूल जाने का त्योहार है। लोग भंग छानते हैं, एक-दूसरे पर प्रेम से अबीर उड़ाते हैं, गुलाल मलते हैं, रंग डालते हैं और पुरानी शत्रुता को भूल जाते हैं। ढोल-मजीरा-झाँझ बजाते हैं और होली गाते हैं। निम्न फाग में रसिकता फूट पड़ती है। ब्रजचंद साँवलिया गोपियों के साथ जी भर होली खेल रहे हैं—

मथुरा में साँवरिया खेले होरी,
अरे खेले होरी, भरे झोरी।
अरी इतते आई सबही ग्वालिन,
उतते साँवरिया केसर घोरी।
अरे पिचकारी सबई पे मारी,
अरे कोई गोरी, कोई है भोरी।
नंद बाबा ने रस घुरवाए,
अरे कुंड एक मन केसर चोरी॥

एक अन्य गीत में गोपियों ने कृष्ण की खूब खबर ली है। कृष्ण गोपियों को किसी न-किसी बहाने तंग किया करते थे। एक दिन गोपियों ने मिलकर एक योजना बना डाली और कृष्ण को पकड़, उनका स्त्री वेश बनाकर खूब खिल्ली उड़ाई—

छीन लई वनमाल मुरलिया,
सिर मैं चुनरि उढ़ाई।
बेंदी भाल नैन बिच काजर,
नथ बेसरि पहराई।
लला नई नारि बनाई,
ब्रज में हरि होरी मचाई॥

होली गाते समय शृंगार की नन्ही फुहारें नीरस हृदय में भी सरसता का संचार करती हैं। एक गोपिका कृष्ण से होली खेलने की मनाही नहीं करती; परंतु वे जरा बचाकर रंग डालें, बस यह ध्यान रखें—

साँवरिया रंग डारो बचाई,
फुँदना बिगरैं न चोली के
फुँदना बिगरैं बिगरि जान दें,
जोबना देउ बचाय।
जोबना बिगरै बिगरि जान दें,
चोली देउ बचाय।
फुँदना न बिगरैं चोली के॥

चाहे संपूर्ण अंग-प्रत्यंग रंग से सराबोर हो जाए, चिंता नहीं, पर यौवन (स्तन) और उनकी संरक्षिका कंचुकी को पति की अमानत के रूप में अक्षत रखना चाहती हैं। गीत में बड़ी गहन प्रेम-व्यंजना परिलक्षित होती है।

गोपियों से छेड़छाड़ करने में कृष्ण को बड़ा मजा आता है। गोपियाँ पिटवाने की धमकी देती हैं। पर कृष्ण तनिक बाज नहीं आते—

फटि जैहैं चुनरिया जिन तानो,
हमरी बात मोहन मानो।
जो सुन पावै कंस औ राजा,
अरे बरसाने में है धानो।
एक बार तुम गम खाओ मोहन,
अरे पैरें सुनहरी हम गहनो।
मुसकैं बाँध तुमकों पैड दें,
जसुदाजी को है जैसे बहानो॥

फागुन के मस्त महीने में होली खेलने में लज्जा-शर्म का त्याग बुरा नहीं—

मनमानी छैल करो होरी,
सब लाज शरम डारों तोरी।
महिना मस्त लगें फागुन को,
अब न कोउ दैहें खोरी।
अब डर नाहिं पुरा पालै को,
लड़ै न सास ननद मोरी॥

एक नायिका नायक से रंग न डालने का अनुनय करती है। उसे भय है कि रंग में डूबी घर पहुँचने पर घर के लोग उसका बहिष्कार कर देंगे; क्योंकि पर पुरुष के साथ होली खेलने से पारिवारिक मर्यादा का उल्लंघन होता है—

मो पै रंग न डारौ साँवरिया,
मैं तो ऊसई अतर में डूबी लला।
जो सुनि पाएँ ससुरा हमारे,
आउन न दैहें बखरिया लला।
जो सुनि पाए जेठा हमारे,
छियन न दैहें रसइया लला।
जो सुनि पाएँ सइयाँ हमारे,
आउन न दैहें सेजरिया लला॥

प्राचीन काल में राजघरानों में सोने की पिचकारी में केसर का रंग भरकर होली खेली जाती थी। आनंदाधिक्य में लोग दस मन केसर घोलकर रंग बनाते हैं और गुलाल इतना अधिक उड़ाते हैं कि संपूर्ण नभमंडल रक्तवर्ण हो जाता है—

उड़त गुलाल लाल भए बादर,
कै मन प्यारे रंग बनाए
कै मन केसरि घोरी।
नौ मन प्यारे रंग बनाए,
दस मन केसरि घोरी।
काहे की रे रंग बनाए
काहे की पिचकारी,
केसर की रे रंग बनाए
सोने की पिचकारी।
भरि पिचकारी सन्मुख मारी,
भीजि गई सब सारी॥

'उड़त गुलाल लाल भए बादर' में अतिशयोक्ति अलंकार निखर पड़ा है। बुंदेलखंड की रसीली होली की मादकता में राम और लक्ष्मण भी प्रसन्न हो उठे हैं—

राजा बलि के द्वारे मची होरी।
कौन के हाथ ढोलकिया सोहे,
कौन के हाथ मजीरा,
राम के हाथ ढोलकिया सोहे,
लछमन के हाथ मजीरा।
कौन के हाथ रंग की गगरिया,
कौन के हाथ अबीर झोली,
राम के हाथ रंग की गगरिया,
लछमन के हाथ अबीर झोली।
राजा बलि के द्वारे मची होली॥

यहाँ राम और लक्ष्मण को सामान्य जन की तरह चित्रित कर लोक-भाव की प्रतिष्ठा की गई है।

□

बारापत्थर, सिवनी-४८०६६१ (म.प्र.)
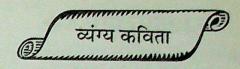
विधवा पेंशन योजना

घनश्याम अग्रवाल

माँग में सिंदूर, माथे पर बिंदिया
और हाथ में हरी चूड़ियाँ पहने
एक सुहागन ने जब
विधवा पेंशन योजना का फॉर्म भरा
तो चौंकते हुए अधिकारी ने डाँटा—
'सुहागन होकर भी तुम
विधवा का फॉर्म भरती हो
कानून से नहीं डरती हो?'
उसने कहा, 'कानून-वानून नहीं जानती हूँ
सिर्फ अनुभव को पहचानती हूँ।
मेरे बेटे ने दस साल पहले
एंप्लॉयमेंट एक्सचेंज में नाम लिखाया था
सर्विस के लिए ओवर-एज हो गया
तब जाकर उसका नंबर आया था।
और मेरे बूढ़े पति को
वृद्धावस्था पेंशन योजना का
फॉर्म भरे पाँच साल हो गए
पेंशन अब तक नहीं मिली
दफ्तर के चक्कर काट-काटकर
उनके बुरे हाल हो गए।
इसलिए अब मैं एडवांस में फॉर्म भरकर
'विधवा पेंशन योजना' का
सही वक्त पर पूरा लाभ उठाऊँगी,
कानून मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता
मुझे पूरा विश्वास है
पेंशन स्वीकृत होने के पहले
मैं विधवा हो जाऊँगी।'

□

अलसी प्लॉट,
अकोला-४४४००४

प्रश्नोत्तरी-४४

अगस्त १९९७ से हमने पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु प्रश्नोत्तरी प्रारंभ की थी, जिसमें पाठक निरंतर बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। हमें विश्वास है, पाठकों को आगे भी यह रुचिकर लगेगी तथा पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे और पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा–

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० अप्रैल, २००१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध जवाबवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो पत्र छाँटे जाएँगे तथा उन्हें एक सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कृत होनेवाले उत्तरदाताओं के नाम-पते जून २००१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने पत्र **'प्रश्नोत्तरी', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

प्रश्नोत्तरी-४१ का शुद्ध उत्तर

१. उदंत मार्तंड
२. भारतेंदु हरिश्चंद्र
३. संवाद कौमुदी
४. यंग इंडिया
५. इंडियन ओपिनियन
६. यंग इंडिया, हिंदी जनजीवन
७. हिंदू पंच
८. कर्मवीर
९. नेशनल हैरल्ड
१०. लीड, फिलर

★ पुरस्कार विजेता ★

पूर्णतः शुद्ध उत्तर न मिलने के कारण इस बार का पुरस्कार हम किसीको नहीं दे पा रहे हैं।

प्रश्नोत्तरी-४४

१. 'काव्यप्रकाश' के रचनाकार का नाम बताइए।
२. भारतीय काव्यशास्त्र के अंतर्गत वर्णित प्रतिभा के दो भेद कौन से हैं?
३. 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'—यह पंक्ति किस आचार्य की है?
४. विष्णु प्रभाकर की कृति 'आवारा मसीहा' किस विधा में लिखी गई है?
५. हिंदी साहित्य में 'कलम का सिपाही' नाम से विख्यात लेखक का नाम बताइए।
६. 'लहरों के राजहंस' नाटक के रचयिता का नाम बताइए।
७. 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास का लेखक कौन है?
८. 'लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहे तो मेरे कवित्त बनावत' पंक्ति किस रचनाकार की है?
९. 'हाड़ौती' तथा 'मेवाती' हिंदी के किस वर्ग की बोलियाँ हैं?
१०. संविधान के किस अनुच्छेद के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है?

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

'साहित्य अमृत' के फरवरी अंक में 'फागुनी चिट्ठी' व्यंग्य ने बहुत आनंद दिया। इतना कसा हुआ और माधुर्यपूर्ण लहजे में कहा हुआ व्यंग्य, जो अपने निशाने तक पहुँचने में अमोघ है, अचूक है, बहुत दुर्लभ है। मीरा और बिहारी के उद्धरणों ने तो इस व्यंग्य में करुणा-मिश्रित प्रेम की कसक भी भर दी है।

—गोविंद कुमार 'गुंजन', खंडवा

'साहित्य अमृत' के फरवरी अंक में प्रकाशित व्यंग्य रचना 'फागुनी चिट्ठी' अनिर्वचनीय सुख दे रही है।

—यश मालवीय, इलाहाबाद

'साहित्य अमृत' का फरवरी अंक का संपादकीय पढ़ते समय विद्यार्थी मन उल्लसित हुआ। कविताएँ एवं पाती विशेष आकर्षक रहे। प्रश्नोत्तरी भी ज्ञानवर्धक है। जगदीश गुप्त का महाकुंभ पर लिखित आलेख अच्छा रहा।

—के.पी. माधवन, कोच्चि

'साहित्य अमृत' का फरवरी २००१ अंक प्राप्त हुआ। आवरण पृष्ठ बहुत ही सुंदर और आकर्षक रहा। हमेशा की तरह हर सामग्री रुचिपूर्ण रही। फिर भी एक कमी खटक रही है—कविता, निबंध और कहानी को जितनी प्राथमिकता या प्रधानता दी जा रही है उतनी गद्य की अन्य विधाओं को नहीं। आशा है, एकांकी, नाटक आदि प्रकाशित करके इस कमी को दूर करेंगे।

—पी. नटराजन, तिरुचिरापल्लि

'साहित्य अमृत' के जनवरी अंक में प्रकाशित रश्मि कुमार की कहानी 'दूसरा द्वार' अंतर्मन को भिगो गई। स्त्री के लिए दूसरा द्वार का होना उसमें शक्ति एवं विश्वास का सृजन करता है। इसकी सार्थकता एवं अपरिहार्यता लेखिका ने इस कथा के द्वारा अभिव्यक्त की है।

—आशा कपूर, रुड़की

फरवरी २००१ का 'साहित्य अमृत' का आवरण पृष्ठ मोहित कर गया। कुमुद शर्मा का 'हिंदी के निर्माता' बहुत ही जानकारीपरक होता है।

—एन.बी. स्वामीनाथन, कोडईकनाल

पत्रिका का जनवरी २००१ का अंक पढ़ा। प्रतिस्मृति में आज के ब्राह्मण समाज पर ठगने के विविध नए-नए तरीके ढूँढ़ती बलदेवप्रसाद मिश्रजी की 'आकाश वृत्ति' ज्ञानवर्द्धक एवं मार्मिक लगी। प्रमोद त्रिवेदी रचित नरेश मेहता के जीवन की अंतरंग झाँकी, कुमुद शर्मा की 'काका कालेलकर : मानवता के उद्घोषक' ज्ञानवर्धक और चेतना जाग्रत् करनेवाले लगे। साथ ही रश्मि कुमार की कहानी 'दूसरा द्वार' ने अंतर्मन तक प्रभावित किया।

—संतोष माटा, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। 'भोजपुरी काव्य बरखा' ने हृदय को रससिक्त कर दिया। नरेश मेहता पर प्रमोद त्रिवेदी का संस्मरणात्मक आलेख इस अंक की उपलब्धि है। शिवानीजी अगर परिवेश के बदलाव से आक्रांत होकर नहीं लिखना चाहतीं तो दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि बदलाव कब रुका है? बलदेव वंशी की कविताएँ संभावनापूर्ण हैं। 'खेती-२' कविता प्रभावयुक्त है।

—विजय कुमार सिंह, सारण

'साहित्य अमृत' का फरवरी अंक प्राप्त हुआ। हर अंक की भाँति यह अंक भी अद्वितीय है। महाकुंभ पर जगदीश गुप्त का आलेख सुंदर बन पड़ा है। वंशी माहेश्वरी की कविताएँ अपना अलग ही प्रभाव छोड़ती हैं। अजय मिश्र की कहानी 'रहे बनारस, बना बनारस' बेजोड़ है। उन्हें हमारा कोटि-कोटि साधुवाद। इस बार संपादकीय कुछ हटकर है और संस्कृतियों के बीच संवाद की चर्चा की यह अच्छी शुरुआत है। आशा है, इस चर्चा से तमाम धुंध छँटेगी।

—श्रीरंग, इलाहाबाद

फरवरी २००१ का 'साहित्य अमृत' मिला। संपादकीय पढ़कर मन बहुत प्रसन्न हुआ। 'ज्योति' कहानी, गोपाल चतुर्वेदीजी की 'सौंदर्य प्रतियोगिता', ज्ञानवर्धन के लिए हिंदी के निर्माता, भाषा-प्रयोग, लोक-साहित्य, संस्मरण, व्यंग्य, निबंध, पाती आदि साहित्य की विविध विधाओं को पढ़ने के लिए यह बहुत ही अच्छी पत्रिका है।

—गणेश पवार, धारवाड़

'साहित्य अमृत' का फरवरी अंक देखकर सचमुच ही हार्दिक खुशी हुई। साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाओं से अलंकृत पत्रिका स्पृहणीय है। संपादकीय ज्ञानवर्धक है। 'साधो जग बौराना' तथा समसामयिक आलेख 'महाकुंभ के विविध आयाम' पठनीय हैं। 'फागुनी चिट्ठी' तो गजब की मजेदार, सटीक, रसमय व्यंग्य रचना है। कहानियाँ, कविताएँ तथा अन्य सामग्री भी महत्त्वपूर्ण हैं।

—हरिहर प्रसाद, कानपुर

'साहित्य अमृत' का फरवरी २००१ अंक प्राप्त हुआ। 'महाकुंभ के विविध आयाम' जैसे खोजपूर्ण तथा प्रासंगिक आलेख के लिए लेखक बधाई का पात्र है। कहानी 'रहे बनारस, बना बनारस' बिलकुल नए ढंग की प्रस्तुति है। इसे अगर पुराण गाथा कहें तो ज्यादा उपयुक्त होगा। कहानी 'ज्योति' नारी जीवन की त्रासदी है। रामनारायण सिंह 'मधुर' का व्यंग्य हलका है। नासिरा शर्मा का साक्षात्कार पठनीय है।

—सुरेंद्र विक्रम, लखनऊ

साहित्यिक गतिविधियाँ
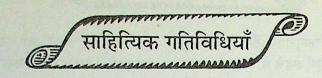
गोपाल चतुर्वेदी को 'व्यंग्यश्री' सम्मान

१३ फरवरी को श्री पुरुषोत्तम हिंदी भवन न्यास समिति, नई दिल्ली द्वारा पं. गोपालप्रसाद व्यास के जन्मदिन पर आयोजित समारोह में व्यंग्यकार श्री गोपाल चतुर्वेदी को 'व्यंग्यश्री' सम्मान से सम्मानित किया गया।

समारोह में श्री वसंत साठे, पं. गोपालप्रसाद व्यास, डॉ. कन्हैयालाल नंदन, दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित आदि की विशेष उपस्थिति रही। इस अवसर पर श्री ओमप्रकाश आदित्य, अशोक चक्रधर एवं प्रभाकिरण जैन ने काव्य-पाठ किया। समारोह में काफी संख्या में दिल्ली के साहित्यकार, पत्रकार एवं हिंदी-प्रेमी उपस्थित थे।

☐

श्री मनोज दास को 'सरस्वती सम्मान'

प्रसिद्ध उड़िया साहित्यकार श्री मनोज दास को उनके उपन्यास 'अमृत फल' के लिए सन् २००० के 'सरस्वती सम्मान' के लिए चुना गया है। सन् १९३४ में जनमे श्री मनोज दास की अब तक अड़तीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यह सम्मान के.के. बिड़ला फाउंडेशन की ओर से दिया जाता है।

पुरस्कारस्वरूप श्री दास को पाँच लाख रुपए की नकद राशि, एक शॉल व प्रशस्ति पत्र दिया जाएगा।

☐

साहित्य अकादमी का साहित्योत्सव

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली का 'साहित्योत्सव-२००१' १९ फरवरी से २४ फरवरी तक मनाया गया। इस अवसर पर अकादमी की ओर से साहित्य अकादमी पुरस्कार-२००० से सम्मानित लेखकों को पुरस्कार दिए गए तथा 'युग संधि पर भारतीय महिला लेखन' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का भी आयोजन किया गया।

साहित्योत्सव के पहले दिन 'अकादमी-२००० प्रदर्शनी' का उद्घाटन सुनील गंगोपाध्याय ने किया। साहित्य अकादमी पुरस्कार-२००० से सम्मानित विभिन्न भाषाओं के बाईस लेखकों को २० फरवरी को पुरस्कार प्रदान किया गया। इस अवसर पर श्री केकी एन. दारूवाला मुख्य अतिथि थे। पुरस्कार अर्पण समारोह के बाद 'ध्वनि' द्वारा धर्मवीर भारती कृत 'कनुप्रिया' की प्रस्तुति हुई।

२१ फरवरी को रवींद्र भवन सभागार में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित लेखकों ने अपनी कृतियों और अपने रचनात्मक अनुभवों पर प्रकाश डाला। उसी दिन निरंजन भगत द्वारा संवत्सर व्याख्यान हुआ। व्याख्यान का विषय था—'चित्रांगदा भ्रम और यथार्थ का रवींद्रनाथ का मिथक'।

'युग संधि पर भारतीय महिला लेखन' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी २२ फरवरी से शुरू हुई। तीन दिनों की यह संगोष्ठी इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में हुई। इस संगोष्ठी का उद्घाटन व्याख्यान प्रसिद्ध बँगला उपन्यासकार श्रीमती महाश्वेता देवी ने दिया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के ग्यारह सत्रों की अध्यक्षता क्रमशः सुगत कुमारी, श्रीमती पद्मा सचदेव, श्री नामवर सिंह, मीनासी मुखर्जी, कुर्रतुल एन. हैदर, श्री निर्मल वर्मा, मल्लिका अमर शेख, श्री हरीश त्रिवेदी, श्री गोपीचंद नारंग, जीलानी बानो तथा श्री केदारनाथ सिंह ने की।

☐

डॉ. श्रीराम परिहार को वरिष्ठ फेलोशिप

भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने वर्ष २०००-२००२ के लिए खंडवा के प्रख्यात ललित निबंधकार डॉ. श्रीराम परिहार को हिंदी क्षेत्र में 'ललित निबंध : अवधारणा और स्वरूप' विषय पर शोधकार्य के लिए वरिष्ठ फेलोशिप प्रदान की है।

☐

अरुण कुमार भगत, अशोक कुमार ज्योति, डॉ. अवनिजेश अवस्थी एवं दर्शन सिंह आशट को जूनियर फेलोशिप

भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने वर्ष २०००-२००२ के लिए विभिन्न क्षेत्रों में शोधकार्य हेतु बिहार के युवा रचनाकार-पत्रकार एवं अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य श्री अरुण कुमार भगत को 'आपातकाल और हिंदी कविता', बिहार के ही युवा रचनाकार-साहित्यसेवी श्री अशोक कुमार 'ज्योति' को 'हिंदी काव्य-परंपरा में भारत के हिमकिरीट हिमालय का सौंदर्य और ऐश्वर्य', दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रवक्ता एवं लेखक-आलोचक डॉ. अवनिजेश अवस्थी को 'भक्ति काव्य में साक्ष्य' एवं पंजाब के बाल साहित्य के पुरस्कृत लेखक श्री दर्शन सिंह आशट को 'बाल साहित्य : सीमा और संभावनाएँ' विषय पर जूनियर फेलोशिप प्रदान की है। इसके अंतर्गत प्रत्येक शोधार्थी को प्रतिमाह तीन हजार रुपए दिए जाएँगे। विभाग द्वारा अन्य शोधार्थियों को भी यह फेलोशिप प्रदान की गई है।

☐

डॉ. हरीश नवल को 'मीरा-मौर' सम्मान

दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन के 'मीरा मंडल' ने वर्ष २००० के 'मीरा-मौर' साहित्यिक सम्मान से व्यंग्यकार व समीक्षक डॉ. हरीश नवल को सम्मानित किया है। श्री जयनारायण खंडेलवाल ने उन्हें यह सम्मान प्रदान किया। समारोह के विशिष्ट अतिथि थे श्री महेश चंद्र शर्मा।

☐

गगन गिल को 'केदार सम्मान'

समकालीन हिंदी कविता के बहुचर्चित 'केदार सम्मान' २००० से कवयित्री गगन गिल को सम्मानित किया जाएगा। यह सम्मान उनके कविता संकलन 'यह आकांक्षा समय नहीं' के लिए बाबू केदारनाथ अग्रवाल सम्मान आयोजन समिति, बाँदा द्वारा अप्रैल माह में प्रदान किया जाएगा।

☐

विशिष्ट साहित्यकार सम्मान तथा सोलह पांडुलिपियों एवं पाँच ग्रंथों पर सहयोग

राजस्थान साहित्य अकादमी वर्तमान सत्र में प्रांत के पाँच मूर्धन्य साहित्यकारों—डॉ. आलमशाह खान, उदयपुर; श्री मरूधर मृदुल, जोधपुर; श्री कमर मेवाड़ी, काँकरोली; प्रो. मोहनकृष्ण बोहरा, जोधपुर; श्री निर्मोही व्यास, बीकानेर को 'विशिष्ट साहित्यकार सम्मान' से अलंकृत करेगी।

अकादमी द्वारा इस सत्र में पांडुलिपि प्रकाशन सहयोग योजनांतर्गत श्री अनिल गंगल की पांडुलिपि 'एक टिटहरी की चीख' पर सात हजार, श्री छीतरलाल साँखला की 'भोर अब तो हो जाए', श्री इकराम राजस्थानी की 'अक्षरों के इर्द-गिर्द', डॉ. रति सक्सेना की 'अजन्मी कविता की कोख से जन्मी कविताएँ', श्रीमती नलिनी कुंभट की 'रोशनी की चाह में', श्री नरेश मेहन की 'पेड़ का दुःख', श्री मदन सैनी की 'किताब और बच्चा', मधु खंडेलवाल 'मधुर' की 'सुगंध का रहस्य', श्री कुसुम अग्रवाल की 'गीत गुलशन', डॉ. बलवीर सिंह भटनागर की 'हम असंतोषी जन्म-जन्म के', श्री राकेश शर्मा की 'सच ढूँढ़ते रह जाओगे', श्री निर्मोही व्यास की 'समय के साए', श्री शिवदत्त कविया की 'आलोचक नामवर सिंह' और श्री रामानंद राठी की 'काठ के काँपते घर' पर पाँच हजार पाँच सौ रुपए (प्रत्येक) का प्रकाशन सहयोग स्वीकृत किया गया है। इसी प्रकार श्री हरीश देवनानी की 'चार लघु नाटक' और श्री तरुण कुमार दाधीच की 'सूर के सरोकार' पांडुलिपि पर चार हजार पाँच सौ रुपए (प्रत्येक) को प्रकाशन सहयोग स्वीकृत किया गया है। अकादमी ने 'लेखकों के निजी व्यय से प्रकाशित ग्रंथों पर सहयोग' योजना में डॉ. जीवन सिंह की पुस्तक 'कविता और कवि कर्म', श्री महेंद्र रंगा की 'स्मृति में शहर', श्री सुशील पुरोहित की 'शेष जो भी बचा है', श्री मणि बावरा की 'अँधेरे के खिलाफ' और श्री चाँद शेरी की पुस्तक 'जर्द पत्ते हरे हो गए' पर पाँच हजार रुपए (प्रत्येक) का सहयोग स्वीकृत किया है।

☐

धर्मवीर भारती जयंती समारोह

२५ दिसंबर को मुजफ्फरपुर की सांस्कृतिक संस्था 'सांस्कृतिक मंच' के तत्त्वावधान में धर्मवीर भारती जयंती मनाई गई। समारोह की अध्यक्षता सुकंठ कवयित्री डॉ. शांति सुमन ने की। आई.पी.एस. अधिकारी श्री रामचंद्र खान कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। इस अवसर पर श्री अशोक भारत, डॉ. ताराशंकर सिंह, पूर्व विधायक श्री केदार प्रसाद, श्री लक्ष्मीनारायण ठाकुर, डॉ. फूलगेन पूर्वे, श्री शबीर अहमद पप्पू तथा सुश्री प्रीति ने भी अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. शांति सुमन, डॉ. रश्मि रेखा, श्री रामनाथ सुमन, प्रो. शेखर शंकर तथा प्रो. शांति तिवारी ने अपनी कविताएँ सुनाईं। प्रसिद्ध रंगकर्मी श्री संजीत किशोर ने 'अंधा युग' के एक प्रसंग की एकल नाट्य प्रस्तुति कर अश्वत्थामा का जीवंत चरित्र प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम का संचालन संस्था के संयोजक श्री शशिकांत झा तथा श्री मोहन मिश्र ने संयुक्त रूप से किया।

☐

'मणिरत्नम् सम्मान' प्रदत्त

खंडवा की सुरभि साहित्य एवं संस्कृति अकादमी ने पिछले दिनों पद्मश्री डॉ. लक्ष्मी नारायण दुबे की स्मृति में आयोजित एक समारोह में टीकमगढ़ के व्यंग्य लेखक श्री रामस्वरूप दीक्षित को 'मणिरत्नम् सम्मान' प्रदान किया। सम्मानस्वरूप उन्हें शॉल, श्रीफल और प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया।

☐

हिंदी कहानी कार्यशाला

दिसंबर माह में 'कथा' संस्था द्वारा मिलेनियम कमीशन के सहयोग से मध्य लंदन स्थित नेहरू केंद्र में हिंदी कहानी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें इंग्लैंड में बसे विद्यार्थियों ने भाग लिया। मुख्य अतिथि थे भारतीय उच्चायोग के मंत्री-समन्वय श्री पी.सी. हलदर। जबकि विद्यार्थियों को संबोधित करनेवालों में डॉ. रुपर्ट स्नैल (सोआस), कथाकार श्री तेजेंद्र शर्मा, श्री कैलाश बुधवार, श्री वेद मोहला एवं श्री रवि शर्मा शामिल थे। दीप्ति शर्मा ने एक लोककथा 'ठाकुर की मूँछ' का सुरुचिपूर्ण पाठ किया। प्रतिभागियों, वक्ताओं एवं अतिथियों का स्वागत किया 'कथा' की अध्यक्षा दिव्या माथुर ने।

कार्यशाला द्वारा आयोजित कहानी लेखन प्रतियोगिता में प्रथम रहीं कुमारी आशा वालिया; द्वितीय स्थान मिला श्री नीरज पाल को, जबकि श्री मयंक शर्मा तृतीय स्थान पर रहे। डिंपल भाटिया एवं अमिता जुठानी को सांत्वना पुरस्कार मिले। बाकी सभी विद्यार्थियों को भारतीय उच्चायोग एवं श्री वेद मोहला द्वारा उपलब्ध कराई गईं पुस्तकें उपहारस्वरूप भेंट की गईं।

कार्यशाला में अन्य लोगों के अतिरिक्त भारतीय उच्चायोग के हिंदी व संस्कृति अधिकारी श्री अनिल शर्मा, भारतीय ज्ञानदीप के अध्यक्ष श्री नवकेश पाल, मंच से जुड़ी हस्ती सुश्री चाँद शर्मा, रीना भारद्वाज एवं नैना शर्मा उपस्थित थीं।

☐

काव्य संध्या व परिचर्चा

११ फरवरी को हुगली में चाँपदानी साहित्य मंच की ओर से कबीर

जयंती के उपलक्ष्य में काव्य संध्या तथा परिचर्चा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री रवींद्र प्रसाद 'रवि', श्री अशोक वर्मा, श्री प्रेमनाथ गुप्ता, श्री महेश प्रसाद, अनुराधा वर्मा (बेबी), श्री राजेंद्र सिंह, श्री सुरेंद्र मिश्रा एवं पं. कमलापति दूबे आदि कवियों ने काव्य-पाठ किए। समारोह के अध्यक्ष श्री कमलेश कुमार एवं श्री रवींद्र प्रसाद 'रवि' ने संत कबीर के जीवन-दर्शन पर अपने विचार व्यक्त किए।

कार्यक्रम में अनेक लेखक, पत्रकार एवं समाज-सेवी उपस्थित थे। □

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

'राष्ट्रकवि पं. सोहनलाल द्विवेदी बाल साहित्य पुरस्कार-२०००' हेतु हिंदी बाल साहित्य की मौलिक/प्रकाशित कृतियाँ आमंत्रित हैं। बाल कहानी/कविता विधाओं की जनवरी १९९७ से दिसंबर १९९९ के मध्य प्रकाशित कृतियाँ ही विचाराधीन होंगी। सम्मानित लेखक को सात हजार एक सौ रुपए की धनराशि और आकर्षक प्रशस्ति-पत्र तथा स्मृति चिह्न प्रदान किए जाएँगे।

प्रविष्टि भेजने के इच्छुक लेखक/प्रकाशक जवाबी लिफाफा भेजकर पुरस्कार विवरण व आवेदन पत्र ३० अप्रैल, २००१ तक निम्न पते से मँगवा सकते हैं—राजकुमार जैन 'राजन', चित्रा प्रकाशन, आकोला, चित्तौड़गढ़-३१२२०५ (राज.)। □

लोकार्पण

७ फरवरी को दिल्ली के राजेंद्र प्रसाद सभागार में आयोजित समारोह में श्री अनिल कुमार सिन्हा के कहानी संग्रह 'दोपहर की धूप' का लोकार्पण वरिष्ठ कथाकार-आलोचक डॉ. विजय मोहन सिंह ने किया। समारोह की अध्यक्षता श्री राजेंद्र यादव ने किया।

इस अवसर पर कथाकार श्री महेश दर्पण, पत्रकार श्री प्रियदर्शन एवं श्री पंकज बिष्ट ने अपने विचार व्यक्त किए। समारोह के मुख्य अतिथि श्री वीरेंद्र नारायण सिंह थे। गोष्ठी का संचालन कवि श्री पंकज सिंह और आभार ज्ञापन श्री महेश भारद्वाज ने किया। समारोह में दिल्ली और बाहर से आए अनेक कथाकार, पत्रकार, आलोचक और हिंदी-प्रेमी उपस्थित थे।

★★

राँची की साहित्यिक संस्था 'तीसरा रविवार' की एक बैठक २६ जनवरी को संपन्न हुई। इसमें डॉ. वासुदेव के दूसरे कहानी संग्रह 'नई बहू की आँखें' का लोकार्पण डॉ. सिद्धनाथ कुमार के हाथों संपन्न हुआ।

डॉ. विद्याभूषण, डॉ. अरुण कुमार, डॉ. अशोक प्रियदर्शी, डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी आदि ने इस पुस्तक पर अपने विचार व्यक्त किए। समारोह का संचालन डॉ. माया प्रसाद तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ. रामकुमार तिवारी ने किया। इस अवसर पर अनेक साहित्यकार उपस्थित थे।

★★

लंदन के नेहरू केंद्र में १४ दिसंबर, २००० को श्री पद्मेश गुप्त के कविता संग्रह 'सागर का पंछी', दिव्या माथुर के कहानी संग्रह 'आक्रोश' और श्री गौतम सचदेव के कविता संग्रह 'एक और आत्मसमर्पण' का सामूहिक लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम के आरंभ में ज्ञानपीठ सम्मान प्राप्त श्री गिरीश कर्नाड ने सभी उपस्थित साहित्यकारों, वक्ताओं एवं श्रोताओं का स्वागत किया। मुख्य अतिथि थे कैंब्रिज विश्वविद्यालय से जुड़े डॉ. स्टुअर्ट मैक्ग्रेगर। कार्यक्रम का संचालन किया बी.बी.सी. विश्व सेवा रेडियो से जुड़े श्री भारतेंदु विमल ने।

इस कार्यक्रम में कवि श्री मोहन राणा, भारतीय उच्चायोग के हिंदी एवं संस्कृति अधिकारी श्री अनिल शर्मा, अंजुमन टेलीविजन के श्री सलमान आसिफ, रेमिनिसेंट के श्री जावेद हुसैन, बी.बी.सी. रेडियो की ममता गुप्ता व श्री अरुण अस्थाना, पंजाबी के कवि श्री अमरजीत चंदन, श्री चमनलाल चमन, श्री धीरेंद्र रायचूरा, श्री संजीव लूंबा, श्री प्रियदर्शी अशोक, बर्मिंघम से पधारे डॉ. कृष्ण कुमार, तितिक्षा शाह, अनुराधा शर्मा, डॉ. के.के. श्रीवास्तव आदि उपस्थित थे। □

मराठी ग्रामीण लेखक सम्मेलन

महाराष्ट्र के स्वातंत्र्यवीर दादा साहब दंदालकर की पुण्यतिथि पर १८ फरवरी को आयोजित दसवें मराठी ग्रामीण लेखक सम्मेलन का उद्घाटन गाँव अंडाले (सतारा), महाराष्ट्र में प्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल ने किया। व्यंग्य कवि महेश किर्लोस्कर की अध्यक्षता में हुए कवि सम्मेलन में छब्बीस कवि-कवयित्रियों ने काव्य-पाठ किया। हिंदी की एकमात्र कवयित्री स्नेह सुधा ने भी कविताएँ सुनाईं।

उल्लेखनीय है कि इस सम्मेलन का उद्घाटन प्रथम बार किसी गैर मराठी साहित्यकार द्वारा किया गया। □

गोष्ठी

२८ जनवरी को अखिल भारतीय साहित्य परिषद् की चंडीगढ़ इकाई की ओर से पंजाब विश्वविद्यालय परिसर में साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

'राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का योगदान' विषय पर आयोजित इस गोष्ठी की अध्यक्षता हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष प्रो. धर्मपाल मैनी ने की। इस अवसर पर डॉ. पंकज अनेजा ने अपने वक्तव्य दिए। साथ ही युवा कवि श्री हरेंद्र नेगी व श्री बल्लवेंद्र भूषण की कविताओं का वाचन हुआ। गोष्ठी में अनेक साहित्यकार, पत्रकार एवं समाज-सेवी उपस्थित थे। □
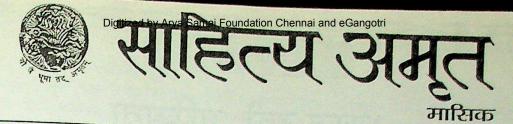
वर्ष-६ अंक-९

चैत्र-वैशाख, संवत्-२०५८

अप्रैल २००१

संपादक
विद्यानिवास मिश्र

❖

प्रबंध संपादक
श्यामसुंदर

❖

सहायक संपादक
कुमुद शर्मा

❖

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन-फैक्स : ३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@indianabooks.com
वेब ठिकाना : indianabooks.com/sahityaamrit

❖

शुल्क
एक अंक—१२ रुपए
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—१२५ रुपए
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—१५० रुपए
विदेश में
एक अंक—दो यू.एस. डॉलर (US$2)
वार्षिक—बीस यू.एस. डॉलर (US$20)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

आवरण चित्र : राम-जन्म का चित्र, भारत कला भवन के सौजन्य से।

इस अंक में

भारत की अस्मिता

अस्मिता की जब बात की जाती है तो आइडेंटिटी (identity) के रूप में की जाती है, पहचान के रूप में की जाती है। आपकी कैसे पहचान है कि आप भारतीय हैं? नाक, नक्शे पहचानें तो पहचान अधूरी है। तब कैसे पूरी पहचान हो? एक पहचान होती है आपके पद-क्षेप से। कैसे आप चलते हैं तो आप जितनी जल्दी अपने परिचित मित्रों को चाल से पहचानते हैं, जितना आवाज से पहचानते हैं उतना रूप से नहीं पहचानते। भटक जाते हैं। शायद देखा हो, या न देखा हो; परंतु आदमी बोलता है तो एकदम स्मृति उद्‌भूत हो जाती है कि अरे, यह तो वही है जिसे बीस वर्ष पहले देखा था। यह आदमी जा रहा है तो याद आता है कि आगे जो आदमी जा रहा है उसकी चाल पहचानी हुई है, पद-निक्षेप पहचाना हुआ है। ये सभी अस्मिताएँ हैं स्थूल। सूक्ष्म जाने कितने स्तरों पर होती हैं। एक सूक्ष्म पहचान है—हम अपने भारत को देखते कैसे हैं। क्या-क्या रूप भारत के हमारे यहाँ वर्णित हैं। लगता है, यह तना हुआ धनुष है। जैसा उसका आकार होगा वैसा भारत का आकार है। धनुर्धर प्रत्यंचा चढ़ाए हुए है। एक दूसरा वर्णन आता है कि यह साक्षात् देवी का रूप है हिमालय मुकुट है और इसकी दो बाँहें समुद्र को थहा रही हैं, जिसकी माला है गंगा, करधनी है नर्मदा। एक दूसरी पहचान है, जो सागर को हिमालय से जोड़ती है। जाने कितने युगों से यह कन्या भारत के अंतिम छोर पर तपस्या कर रही है शिव के लिए। कितने उत्तर में शिव और कितने दक्षिण में कन्या तपस्या कर रही है। यह स्मरण मात्र एक विचित्र संयोजन-सूत्र बनता है, कन्याकुमारी को कैलास से जोड़नेवाला सूत्र। हमारे चारों धाम में, चारों दिशाओं में एक पहचान बनाते हैं कि ये खूँटे हैं जिसको जोड़ने से भारत का नक्शा बनता है। एक पहचान कालिदास ने दी है 'रघुवंश' में। वह पहचान बड़ी विचित्र पहचान है। एक रथ चल रहा है। समुद्र के किनारे-किनारे रथ चल रहा है तो कीचड़ छँट रही है। एक ओर समुद्र का फेन उभर आता है और उसी तट पर तमाल और ताड़ के वृक्ष पंक्तिबद्ध रूप में खड़े हैं और चक्र आगे बढ़ता चला जा रहा है; जैसे दोनों से जुड़ा, दोनों से अलग। जैसे यह भारत देश नहीं है, एक गतिशील चक्र है, जो समुद्र को भूमि से पृथक् करता है। उज्ज्वल धारा, फेनिल धारा अलग हो जाती है और तमाल ताली के वृक्षों के माध्यम से श्यामलिमा अलग हो जाती है। भारत का रूप एक यह है। यह कुछ अधिक सूक्ष्म है। इसमें हम अपने में एक गतिशील चक्र भी देखते हैं। जो चक्र रुकता नहीं उसका पहिया कभी विराम नहीं लेता है और आगे बढ़ता चला जाता है। एक पहचान भारत की कुछ और सूक्ष्मतर है। और एक उससे भी गहरी पहचान है। कैसा है यह देश और कैसे हैं इस देश के लोग कि देवता तरसते हैं—भारत के आँगन में, जिन्होंने जन्म लिया, कौन सा पुण्य इन्होंने किया कि इनको यह शरीर मिला, जो मुकुंद की सेवा का साक्षात् साधन बनता है। हम लोगों के भाग्य में यह नहीं कि हम श्रीकृष्ण की सेवा का साधन बनें। अपने इस शरीर से ही साधन बनें, यह हम लोगों के भाग्य में नहीं, यह इनके भाग्य में है। और हम देवता लोग इंद्रियों के उत्सव में ही फँस जाते हैं और उस भोग-वृत्ति के कारण हमारे हाथ से छिटक जाता है नारायण के चरण-कमल का स्मरण। क्या हुआ हमारे तप से। सौ वर्ष तप किया, यज्ञ किया, दान दिया, देव योनि मिली जबकि देव योनि पाकर हम भोग में लिप्त हो गए और नारायण के चरणों की स्मृति कहीं खिसक गई।

> किं दुष्करैर्नः क्रतुभिः तपोव्रतैर्दानादिना वा द्युजयेन फल्गुना।
> न यत्र नारायण पादपङ्कजस्मृतिः प्रयुष्टेतिशयेन्द्रियोत्ववात्॥

इस श्लोक के पाँचों एक-से-एक सटीक श्लोक हैं। यह कल्प की आयु लेकर क्या होगा, यदि क्षण भर आयु मिले और स्मरण का जहाँ सुयोग मिले, उनके स्मरण में सारे कर्मों को अर्पित करने का जहाँ सुयोग मिले, वहाँ जन्म नहीं हुआ तो क्या हुआ। तो यह देवताओं के लिए स्पृहणीय लीलाकुंज है, ऐसे लीलाकुंज के रूप में जिसमें लीलामय परब्रह्म की नित्य उपस्थिति रहती है, नित्य उसमें सहभागी रहते हैं। भारत का तादात्म्य विश्वमोहन के सौंदर्य से स्थापित किया गया है। यह बहुत सूक्ष्म भाषा है। पढ़े-लिखे लोगों को इसकी सहज पहचान होती नहीं। कहाँ और कैसे थे श्रीकृष्ण, कौन हैं। पर अबोध लोगों को पहचान हो जाती है। वृंदावन में बहुत साल पहले एक बार एक फूल बाबा रहते थे। लंबी आयु पाकर गए। उस समय उनकी अवस्था नब्बे वर्ष की थी। बड़ी स्फूर्ति थी उनमें। उनका एक व्रत था कि बगीचों से फूल चुराएँगे, उसकी माला बनाएँगे। बड़ी सुंदर माला बनाते थे और बाँके बिहारी को चढ़ाने आते। मैंने कहा, 'बाबा, फूल तो ऐसे ही मिल जाएँगे, चुराते क्यों हो?' तो कहा कि सबका सर्वस्व चुरानेवाला है, तो उसकी पूजा हम चोरी करके ही करेंगे और रोज फूल की माला ले जाते थे। फकीर आदमी थे। उनके सोने का पता नहीं, कहाँ सो जाते हैं—पेड़ के नीचे, बालू में और कहाँ भोग प्रसाद लगाते, कुछ पता नहीं। परमहंस थे, पर अद्‌भुत मस्ती उनके चेहरे पर रहती थी। एक अनिर्वचनीय आनंद की आभा में रहते हैं। स्वामी अखंडानंद की कथा सुनते थे बैठकर। चलने लगते थे तो जाने कहाँ से लौंग या इलायची निकालते थे। स्वामीजी कहते थे, 'बाबा, कुछ और।' बोलते, 'अधिक के लिए गुंजाइश नहीं।' ऐसी फुरती थी, कोई देख नहीं पाता था। तो श्रीकृष्ण ऐसी मस्ती में प्रत्यक्ष में आते हैं। सारे संबंधों को फूँक चुका, सब विसर्जित कर चुका और उसी मस्ती में जुड़ा हुआ है, वही उस मोहन की उपस्थिति का बोधक है। उसीसे पता चलता है कि श्रीकृष्ण यहाँ हैं, जिनको प्रतिदिन कई माला बाबा चढ़ाता है। उसने

प्रतीति होती थी। स्थूल दृष्टिवालों को यह प्रतीति नहीं होती।

मेरे कुछ मित्र थे। मैं उनको वृंदावन ले गया। मैंने कहा—कुंज में चलिए और देखिए, यहाँ रोशनी नहीं आई, यहाँ टोंटी का जल नहीं आया। यहाँ कुआँ है, जी भर पानी पी लीजिए। मीठा जल है। यमुना किनारे है। चारों ओर से घिरा हुआ है। कदंब के वृक्ष हैं और बेशुमार मोर हैं और ऊँचे धरातल पर राधाकृष्ण का एक मंदिर है, जिसमें कोई साज-सज्जा नहीं है। जब बड़े भोर में मंगल आरती होती है, उस समय ध्रुपद होता है। कभी-कभी ध्रुपद के लिए सारे देश के लोग एकत्र हो जाते हैं। वहाँ की सेवा है बालू को साफ रखना। पत्तियाँ गिरी हों, पत्तियों को उठाना। बिलकुल साफ रखना—यही सेवा है। और जब संगीत होता है तो कैसा भी नास्तिक व्यक्ति हो, एक ओर संगीत सुनेगा, दूसरी ओर संगीत गानेवालों की लीला देखेगा। हर घड़ी लोग आते रहते हैं। कोई आदमी थकता नहीं, कोई आदमी बैठता नहीं। सुननेवाला, देखनेवाला भी वैसे ही जड़ खड़ा रहता है। और क्या प्रमाण चाहिए कि भगवत् उपस्थिति है? प्राण तत्त्व की उपस्थिति यहाँ है, जो संगीत से आकार में खड़ा हो रहा है, उस लीला के सिवा और अधिक प्रमाण क्या है? तो यह भी एक अस्मिता की पहचान है। कहीं और नहीं, यहीं हैं, विरल है सही। एक-आध ही सही, लेकिन कहीं भी दूर किसी गाँव में, नदी के किनारे, किसी पहाड़ की चोटी पर, कहीं भी ऐसा विरला प्राणी मिल जाएगा जो आत्मकाम है, जिसकी कोई इच्छाएँ नहीं हैं। लेकिन उसकी एकमात्र इच्छा है कि भगवान् की स्मृति बनी रहे। ऐसे लोग इस देश में मिलते हैं। इस देश की असली पहचान वही है।

पहले जो भी ऋषि तपोवन में रहता था और जो लोग वहाँ से शिक्षा पाते थे वे भारत की पहचान थे। राजा के ऊपर उसका स्थान था। राजा उनसे कर नहीं लेता था और राजा अपने को धन्य मानता था कि इनके तपस्या का छठा हिस्सा हमें अपने आप मिल रहा है और वह ऋषि ही नियंत्रक हैं। वही निर्धारक हैं। भारत का विधान बनानेवाले राज्य संस्थान के लोग नहीं थे। राज्य संस्थान ही उन विधानों से बनता था। ऐसा विचित्र देश यह रहा है। राज्य का संचालन कोई करता है, लेकिन उसके नियम कौन बनाते थे—बिना किसी स्पृहा के रहनेवाले, बिना किसीसे आकांक्षा रखनेवाले लोग। भवभूति में वनवासी ने कहा कि हमारे पास कुछ है नहीं। केवल फल-मूल है, अच्छी स्निग्ध छाया है, स्वच्छ जल है। लेकिन हम किसीके पराधीन नहीं हैं। हमारे पास सुख यही है कि हम किसी पर अवलंबित नहीं हैं। किसीके दरवाजे भीख नहीं माँगेंगे—हमें भोजन दो। हमारे यहाँ जो आएगा उसे देना है। किसीसे नहीं लेना है। पशु-पक्षी कोई भी आएगा, हम उसे देंगे। हम माँगेंगे नहीं। ऐसे निरपेक्ष लोग रहे। वे ही संविधान के नियमों के विधायक थे। हमारे देश की सुंदरता भी जिनसे मिली है, उनको हम ताख पर सजाकर रखते हैं। जितनी न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है उतने से इनका काम चलता था। और हमारे देश के इन साधारण हुए आदमियों को मिलता क्या है, बस देश के साथ ऐकात्म्य, यही एक पहचान व्यक्ति विशेष होते हुए भी साधारण बनना, साधारण के रूप में दिखना—यह वृत्ति ऊँची वृत्ति है और शान-शौकत, ठाट-बाट इसीसे पहचान अगर हो तो पहचान एक बाँझ पहचान है। उसमें कुछ रखा ही नहीं। जो पशु परस्पर विरोधी माने जाते हैं, आक्रामक माने जाते हैं एक-दूसरे के, वे भी यहाँ प्रेमपूर्वक रहते हैं, सहज विश्वासपूर्वक रहते हैं। विश्वास उनके अंदर रहता है। सहज विश्वास ही है एक पहचान। वह पहचान तपोवन में पलती है। जब दुष्यंत ने शकुंतला को नहीं पहचाना, उसको सिर्फ अँगूठी से पहचान होती है। आँख उसकी खुली होती तो शकुंतला याद दिलाती है—वह दिन याद है जब एक पेड़ के पास हरिण आया और तुमने पत्ते के दोने में पानी पिलाना चाहा तो उसने पानी नहीं पिया तुम्हारे हाथ; मैंने जब पानी पिलाया तो पी लिया। तुम्हारे मुँह से निकला कि यह वनवासी है, तुम वनवासी। वनवासी वनवासी पर विश्वास कर रहा है, इससे तुरंत पहचान हो जाती। दुष्यंत को लगा, 'बड़ा अच्छा जाल बुना'। दुष्यंत यह कहकर अपरिचय को दुगुना दुस्सह बना देता है। विश्वास से विश्वास जैसे पैदा होता है, वह जानता नहीं था। दिलीप आश्रम में आते हैं, कैसे पहचानते हैं। आश्रम में ऋषि कन्याएँ हैं। पानी दे रही हैं क्यारियों में, लबालब भर देती हैं क्यारियों को, हट जाती हैं। 'विश्वासाय विहंगानाम्'। उनको विश्वास हो जाय कि हमारे साथ छेड़खानी नहीं करेगा। शाम को लौटती हैं चिड़ियाँ, भरपेट पानी पिएँगी उन्हीं क्यारियों में। आदमी जीता है विश्वास में, अविश्वास में जी नहीं सकता। एक-दूसरे के ऊपर संदेह करके, एक-दूसरे पर अविश्वास करके आदमी नहीं जी सकता। कुछ दिन तक जी लेगा, आखिर तक नहीं जी सकता। उसे साथ जीने के लिए परस्पर विश्वास चाहिए-ही-चाहिए। वह विश्वास वहाँ सहज रूप में मिलता है। आश्रम में राजा आखेट खेलने आ रहा है। कोई आकर कहता है कि यहाँ शिकार खेलना मना है। यह तपोवन की स्वाधीनता में हस्तक्षेप है। यह तो आश्रमियों के लिए बना है। यहाँ सहज अभयदान है, जहाँ किसीको किसीसे भय नहीं है; क्योंकि हर किसीको दूसरे के ऊपर विश्वास है। पशु हो, पक्षी हो, मनुष्य हो—सबको एक-दूसरे पर विश्वास है।

यह विश्वास एक सूक्ष्मतर पहचान है। माने, विश्वास नहीं रहता तो जाने कितने लोग बाहर से आए, क्या-क्या अत्याचार उन्होंने किए, सबको भूल करके लोग एक-दूसरे के उत्सव में शरीक हुए। सन् १८५७ तक ऐसी दशा आ गई थी कि मुसलमान बादशाहों की छत्रच्छाया में भारतीय संगीत पड़ा। ऐसी चित्रकला बनी जिसमें श्रीकृष्ण लीला, राम लीला का पूरा वर्णन था। चितेरे हिंदू भी थे, मुसलमान भी थे। मुसलमान कवियों ने ब्रजभाषा के रूप में व्यापक पहचान पाई। उसी समय ऐसा हुआ कि सबसे अधिक फारसी लिखनेवालों में हिंदू थे। अगर विश्वास न होता तो नहीं हुआ होता। विश्वास और द्वेष ऐसे छूत की तरह से बढ़ते हैं। एक आदमी के विश्वास का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। अविश्वास का भी प्रभाव पड़ता है।

एक और सूक्ष्म अस्मिता बता दें। 'मृच्छकटिक' नाटक बहुतों ने पढ़ा होगा। उसमें एक नन्हा सा बालक आता है रोहसेन। अपने घर की श्री चली गई है और पड़ोसी का लड़का संपन्न है। वह सोने की गाड़ी लेकर आया है खेलने के लिए। रोहसेन के हाथ में मिट्टी की बनी एक गाड़ी है। 'मैं मिट्टी की गाड़ी से नहीं खेलूँगा। पड़ोसी का लड़का सोने की गाड़ी से खेलता है, मैं मिट्टी की गाड़ी से नहीं खेलूँगा।' दाई ने कहा कि 'देखो, संपत्ति लौटेगी तो बना देंगे। अभी तुम खेलो इससे।' इतने में वसंतसेना का प्रवेश होता है। वह कहती है कि 'बेटा, लो यह सारा सोना। तुम इससे गाड़ी बनवा दो।' तो उन्हीं आँखों

में आँसू छलक आया कि संपन्न परिवार का लड़का है। बच्चे का स्वाभिमान जागता है। कहता है, 'तुम रो रही हो, मैं तुमसे नहीं लूँगा। इस सोने से मैं नहीं बनवाऊँगा।' तो उसकी दाई बोलती है, 'यह तुम्हारी माँ होती है।' है नहीं, होती है। तो तुरंत बोलता है, 'यह मेरी माँ है। इतने सोने के दाने से आए। मेरी माँ के शरीर में एक भी सोने का गहना नहीं।' वसंतसेना फूट-फूटकर रोने लगती है कि क्या कलेजा हिलानेवाली बात बोल रहा है और भोले मुँह से जीवन का सत्य उखाड़ रहा है। विपन्नता का गर्व, विपन्नता का अभिमान कैसे छलक रहा है। स्वाभिमान की यह पहचान बड़ी कीमत पर हुई है। हिंदुस्तान का सहज स्वभाव लेना नहीं है। उसका सहज स्वभाव है कि किसीसे लेना नहीं है, सबको देना है। एक आस्था पर टिके रहना है। हमें फिक्र पड़ी है कि हमारे ऊपर कोई ध्यान देनेवाला नहीं है। तो यह स्वल्प से परितोष स्वभाव में है और दुःख की ग्लानि नहीं है। उसमें सुख भी है। वेदांतदेशिक थे। बहुत अच्छे कवि भी थे, आचार्य भी। रामानुज संप्रदाय के बड़े प्रसिद्ध आचार्य हुए। उन्होंने दरिद्रता और दरिद्रता से चली हुई निराशा को संबोधित करते हुए कहा कि हे दुराशा, तुमको मैं नमस्कार कर रहा हूँ। तुमको श्रद्धांजलि दे रहा हूँ, जो तुम इधर-उधर लोगों के दरवाजे पर खड़ी रहती हो। दरवाजे के बाहर तुम्हें स्थान मिलता है। मेरे पास अपना धन है। इंद्रनील के पर्वत के समान कांतिवाला, अर्जुन के रथ की शोभा बढ़ानेवाला उज्ज्वल नीलमणि हमारा धन है। हमें क्या जरूरत है ऐसे दुरीश्वरों के पास जाने की। बड़े-से-बड़ा प्रलोभन छोड़ सकना और किसी विशेष आस्था के बल पर संभव नहीं है। 'भागवत' का एक बड़ा प्रसिद्ध श्लोक है। भागवत कथा का आरंभ करते हैं श्री शुकदेव। फक्कड़पन के कालजयी श्लोक सुनाते हैं। पहला है—

'चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्। रुद्धा गुहाः किमजितोवलि नोपसन्नान् कस्मात् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान्॥' रास्ते में चिथड़े तो पड़े होंगे, वृक्ष फूल दे रहे होंगे, फल दे रहे होंगे; नदियाँ सूखी नहीं हैं, गुफाओं के द्वार बंद नहीं हुए, क्या सो गए हो। यह सब न मिले, कभी अर्जित ने विपन्न शरणागत को ठुकराया नहीं, क्यों लोगों के पास जाते हो। कम-से-कम आवश्यकता रखना और दूसरों की आवश्यकता की चिंता करना, उन्हींकी आवश्यकताओं की चिंता करके अपनी आवश्यकताएँ कम कर लेना—यह संयम वृत्ति भारत के स्वभाव में है। माँ अपना पेट काटती है, बच्चे को भोजन कराती है। कुछ नहीं बचता है, पर उसके चेहरे पर मुसकान आती है—बच्चा भोजन करके गया है, भूखा नहीं गया है।

इन अस्मिताओं के अलावा दूसरी अस्मिताओं की कल्पना और भी की जा सकती है। हमारा यह स्वभाव, हमारा यह स्वभाव, हमारा यह स्वभाव, ये देव दुर्लभ स्वभाव हैं। इनके ऐसे स्वभाव हैं, जो संपन्नता में नहीं होते, जो विकसित देशों में नहीं मिलेंगे। ये जितने ही लोक के सहायक हैं उतने ही लोकोत्तर के भी हैं। लोक से पलायन करने का हमारा स्वभाव नहीं है। लोक में रहने का, रमने का स्वभाव है; लेकिन अपने लिए रमने का नहीं, लोक के लिए रमने का स्वभाव है। इस प्रकार भारतीय अस्मिता, भारत की पहचान जिन बिंदुओं से होती है, जिन प्रतीकों से होती है, जिन विचारों से होती है, वे विचार भारत देश तक ही सीमित नहीं हैं। उन विचारों के हिस्सेदार दूसरे लोग भी हैं। दूर दिगंत तक हैं।

मैंने एक विश्वविद्यालय में पढ़ाया था। वहाँ जो विभाग की सेक्रेटरी, कार्यालय सहायक होता है उसकी भूमिका हमारे यहाँ ऐसी नहीं है। उनकी स्थिति बड़ी सम्मानित होती है। आप उनसे बड़े आदरपूर्वक बात करते हैं। मधुर वचन बोलने पड़ते हैं। तब वे प्रेम से काम करते हैं। कार्यालय में एक बुढ़िया थी। उसने कभी संस्कृत पढ़ी थी। संक्षेप में तो मैंने ऐसे ही कह दिया, काफी बुढ़िया थी। मैंने कहा, तुम्हारा चेहरा ऐसा दिखता है जैसे मेरी माँ का हो। बहुत प्रसन्न होती थी कि मेरी माँ का चेहरा है। उसकी आँखों से आँसू आ गए कि (nobody has told like that) कोई माँ के रूप में देखता ही नहीं। यहाँ पुरुष केवल स्त्री के रूप में नहीं देखता। वह चाहे कितनी भी बुढ़िया क्यों न हो, उसको सुंदर कहना जरूरी है, उसको जवान कहना जरूरी है। लेकिन उसको इस रूप में देखना अपने देश में उसने कभी सुना ही नहीं। इस बार सुना। वह इतनी करुणार्द्र हो गई कि चाहे जो कठिनाई हो, मेरा सारा काम कर देगी। झुर्रियों भरा चेहरा, गोरा चेहरा, मेरी माँ का चेहरा। उसके भीतर``को तलाश लेना हमारा स्वभाव है। दूसरी जगह ऐसी बात नहीं। जरा में भी सौंदर्य है। ग्रीष्म में एकदम सिमटी हुई नदी का सौंदर्य है। पात झरे वृक्ष में सौंदर्य है, यह हम सहज पहचान लेते हैं। भवभूति ने कहा है कि समय बीत जाता है। तो साहचर्य पति-पत्नी का हो तो जो स्नेह तलछट में बचा रहता है, यह स्थायी हो जाता है। उसके तलछट में जो बचता है वही है स्थायी प्रेम। ऊपर का रहता। उस प्रेम का एक अलग आस्वाद है। उसका स्वाद न लें, केवल एक ज्वार का आस्वाद लें, भाटे का आस्वाद न लें कि भाटे में कैसे उतर जाता है, कैसे तट उजला हो जाता है, अवस्था आने पर बहुत सारी चीजें धुल जाती हैं तो आस्वाद अधूरा रहता है। एक स्वच्छ स्मृति रहती है बीते दिनों की। द्वेष की स्मृति नहीं रहती है, राग की स्मृति रहती है। मित्रों के, सहयोगियों के, साथ में खेलनेवालों की स्मृति रहती है। उस स्मृति में परिपक्वता आती है। उसका अलग आस्वाद है। चढ़ती जवानी का अलग आस्वाद है। इनकी अलग-अलग स्वादों की परख आदमी न जाने, इनकी अलग-अलग विशेषता न पहचाने और एक उम्र में ही जीने की कोशिश करे तो सिवाय उपहासास्पद के और कुछ नहीं होता।

मैंने जिन चीजों की ओर संकेत किया, किसी पोथी में नहीं गिनाई मिलेगी। पोथियों और आदमियों के चेहरों की पोथियों को पढ़ने से मुझे जो ऐसा मिला, मैंने नए संवत्सर के स्वागत में सामने रख दिया। और इसलिए रख दिया कि आप भी इन पोथियों को फिर से पढ़ें, यदि पढ़ सकते हों उन चेहरों को, सामान्य पर अपने में विशेष कुछ समोए हुए चेहरों को पढ़ें, यदि पढ़ सकते हों और ये सोई पहचानें सब साथ जगाएँ तो भारत की पहचान, भारत की अस्मिता अपने आप जागेगी। राम ने, जिनका जन्मोत्सव हम अभी-अभी मनाने जा रहे हैं, ऐसी पहचान, ऐसी ही अस्मिता के प्रतिमान थे। उन्हींकी पहचान से हमारी पहचान बनती है—ऐसा विशेष, जो निर्विशेष दिखता है।

प्रतिस्मृति

नगर-वधू

अमृत राय

यथार्थवादी लेखक के रूप में अमृत राय की कहानियाँ उत्कृष्ट सर्जनशीलता का साक्ष्य हैं। इनकी कहानियाँ आजादी के बाद जीवन के हर क्षेत्र में उभरनेवाली विसंगतियों, तनावों और जटिलताओं का यथार्थ अंकन करती हैं। वस्तु-सत्य को उद्घाटित करतीं अमृत राय की कहानियाँ मानवीय अनुभूति के गहरे प्रश्नों से टकराती हैं और अमानवीय होते जा रहे समाज के विरुद्ध संघर्ष करने की चेतना भी पैदा करती हैं। यही उनकी सार्थकता है। यहाँ हम उनकी एक सशक्त कहानी प्रस्तुत कर रहे हैं।

नहीं, मैं पुरानी वैशाली या नई दिल्ली की किसी नगर-वधू की बात नहीं कर रहा हूँ; मेरा मतलब अपने इस छोटे से नगर से है, जिसे आजकल वधू के समान सजाया जा रहा है। सुना है, अपनी नगरपालिका को, जिसे कुछ लोग भूल से 'नगर-बालिका' कह जाते हैं, कहीं से नगर-सज्जा के लिए तीन करोड़ रुपया मिला है। मैंने तो भाई, तीन करोड़ रुपया आँख से देखा भी नहीं; लेकिन जरूर काफी बड़ी रकम होती होगी। खनकौआ रुपए की तो बात ही छोड़ दो, पचासों खच्चर लगते तीन करोड़ रुपया ढोने को। मगर अच्छा है कि वह अब मिलता ही नहीं—बहुत कहे-सुने, शादी-ब्याह, पूजा-पार्वण के लिए सौ-पचास मिल गया तो बड़ी बात। अब तो कागद के रुपए का चलन है, कोरे कागद पर जो मन चाहे, छाप दो। ऐसे सौ-सौ के एक हजार नोट की गड्डी बनाओ तो वह एक लाख रुपया हुआ। ऐसे लाख-लाख की तीन सौ गड्डी बनाओ तो वह तीन करोड़ रुपया हुआ। इतना रुपया मिला है अपनी नगरपालिका को—नगर-वधू अब नहीं तो कब सजेगी। और मजा ये कि इतना सब रुपया इसी ३१ मार्च तक खर्च भी कर डालना है, वरना बाकी सब रकम तो डूब ही जाएगी, नगरपालिका के मुँह पर कालिख पुतेगी सो अलग—ये लो, और तो कभी कुछ करते-धरते बना नहीं, फोकट का रुपया खर्च करना तक नहीं आया; सरासर नाकारा लोग हैं।

तो फिर बताइए, कैसे कोई इतना बड़ा कलंक का टीका अपने सर लग जाने दे? तुम ३१ मार्च कहते हो, हम उसके पाँच दिन पहले ही सब लेई-पूँजी साफ न कर दें, तब कहना। पैसा तो हाथ का मैल है, अँगूठे से मलने भर की देर है।

लेकिन साहब, इसमें शक नहीं कि ये ३१ मार्च भी अपने ढंग की एक ही चीज है, एक जादुई तारीख। क्या कहना! औरों को तो जाने ही दीजिए। तमाम सरकारी महकमे भी, जो साल भर कान में तेल डाले सोए पड़े रहते हैं, ३१ मार्च पास आते ही ऐसे भड़भड़ाकर जागते हैं कि जैसे अरथी पर का मुरदा एकाएक जाग उठे। फाइलें सहेजी जाने लगती हैं, बही खाते ठीक किए जाने लगते हैं, जहाँ जिस मद में जो रकम बची हो उसको किनारे लगाने की तदवीरें की जाने लगती हैं। बच न जाय कहीं कोई रकम, वरना हिसाब के दिन जब हमसे जवाब तलब होगा तब हम क्या कहेंगे, कहाँ मुँह छिपाएँगे, कैसे यह बात हमारी जबान पर आएगी या किसीके दिमाग में धँसेगी कि हम ऐसे बला के घामड़ आदमी हैं कि अपना पैसा तो अपना पैसा, सरकारी पैसा खर्च करने में भी हमारी छाती फटती है।

क्यों नहीं कहेगा। जरूर कहेगा। डंके की चोट पर कहेगा। जो सुनेगा वो कहेगा। कोई माने या न माने, मैं समझता हूँ, यह बहुत अच्छा

उसूल है कि ३१ मार्च तक सब पैसा खर्च हो जाना चाहिए—हमारे पास कोई तो कसौटी हो अपने आदमियों को परखने की। फिर इससे अच्छी कसौटी और क्या हो सकती है कि रुपया खर्च हो रहा है। रुपया खर्च हो रहा है यानी अफसर जिंदा भी है और सो भी रहा है। काहे में खर्च कर रहा है, यह तो बाद की बात है। जब खर्च कर रहा है तब ठीक ही खर्च कर रहा होगा—और ठीक-बेठीक समझने को तो अभी साल भर पड़ा है। ३१ मार्च को हम सब रुपया खर्च करके खलास हो गए, अब हमारे पास कानी कौड़ी भी नहीं, यह क्या कम कारगुजारी है? रुपया नलकूप बनवाने में लगा या सड़क की मरम्मत में, या किसी अधिकारी का मकान बनाने या उनकी बीवी के गहने गढ़वाने में, इससे क्या फर्क पड़ता है! आखिर किसीके तो काम आया, पड़ा-पड़ा मिट्टी तो नहीं हो गया! इसीका नाम विकास है—और नहीं क्या विकास के कोई सींग-पूँछ लगी होती है! रुपया देश के विकास के लिए है और सब लोग, जो इस देश में रहते हैं, का ही विकास देश का विकास है। इतना ही नहीं, मैं तो समझता हूँ कि बुद्धि की इसी तरह की निरर्थक आपत्तियों से बचने के लिए देश का हर विकास अधिकारी अपने एक-न-एक लड़के का नाम 'विकास' जरूर रखता है—और अगर नहीं रखता तो उसे रखना चाहिए; क्योंकि तब उसका रिकॉर्ड और भी साफ रहेगा और कभी पूछताछ होने पर वह सीना ठोककर कह सकेगा कि उसने जो कुछ जहाँ भी जमा किया है या खर्च किया है, विकास के लिए किया है और हमेशा विधिवत् किया—सब विभागीय नियमों का पालन करते हुए और निर्दिष्ट अवधि के भीतर।

निर्दिष्ट अवधि अर्थात् ३१ मार्च। उस दिन रकम चाहे एक रुपए की हो या तीन करोड़ या तीन अरब की, सबका जमा-खर्च हो जाना ही चाहिए—इसीलिए दोनों शब्दों के अंत्य अक्षरों को लेकर इस महीने को 'मार्च' कहा जाने लगा। (कोश को भूल जाइए, जो ये कहता है कि 'मार्च' नाम 'मार्स' यानी मंगल ग्रह पर पड़ा—अपना जमा-खर्च ठीक है तो सब ग्रह मंगल ही समझिए!)

लिहाजा यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि ३१ मार्च आते-आते सब सरकारी और नीम-सरकारी अधिकारियों के अंदर पैसा खर्च करने का जोश पागलपन की हद तक पहुँच जाता है। होली में लोग जैसे अपने घर का दलिद्दर निकालते हैं वैसे ही अधिकारी ३१ मार्च को अपने हाथ का सरकारी पैसा निकालते हैं। कहीं फेंको, पर अपने पास से हटाओ। ३१ मार्च के बाद अफसर के पास सरकारी रकम का पकड़ा जाना गाँजा-भाँग पकड़े जाने से कम भयानक नहीं।

अब आप समझ लीजिए, क्या कुछ नहीं हो रहा होगा आजकल हमारे यहाँ—तीन करोड़ रुपया इसी ३१ मार्च के पहले किनारे लगाना है। माना कि इस काम के लिए पूरा महकमा है, मगर सूझबूझ तो किन्हीं दो-एक लोगों को ही होगी, पकड़ा तो कोई बड़ा अफसर ही जाएगा—शहर की खूबसूरती में तुमने कहाँ क्या जोड़ा, लाओ, उस तीन करोड़ का हिसाब दो…

लेकिन साहब, मानना होगा कि हमारी नगरपालिका भी कोई ऐसी वैसी नहीं है। सबकुछ अपने यहाँ तैयार है। भवन-निर्माण कला के विशारदों का एक पूरा विभाग डिजाइन पर डिजाइन बनाकर ब्लू प्रिंट विभाग को देता चला जा रहा है। उधर ब्लू प्रिंट विभाग है कि उसे ... उठाने की मुहलत नहीं है। सबसे पहले तो नगरपालिका का नया भवन बनेगा (पुराने में वैसे कोई खराबी नहीं है, अभी दस बरस पहले तो ब... था। खूब मजबूत है। ऊँची-ऊँची दीवारें हैं, लंबे-चौड़े हवादार कम... हैं। आराम में कोई कमी नहीं। पर कुछ लोगों का कहना है कि स्टाइल पुराना पड़ गया है।), फिर नगरपालिका के सभासदों के भवन बनें। ठीक भी है, मंदिर में दीया जलाने से पहले आदमी अपने घर में दीया जलाता है। ये दो काम हो जाएँ तो फिर आगे की बात सोची जाए—और आगे की बात सोचते ही पहला ध्यान अपने शॉपिंग सेंटर पर जाता है, कितना फटीचर है, बाबा आदम के वक्त का। जमाना बड़े-बड़े शीशों की लकदक शो-विंडो का है—अंदर कुछ हो न हो, शो-विंडो तो खूब भड़कीली होनी ही चाहिए; और अपने यहाँ देखिए तो वह सबकुछ ... नहीं, दुकानें सब अपने नाम को रोती-सी नजर आती हैं—मनहूस शक्ल, चेहरे पर मक्खियाँ सी भिनकती हुईं। आधुनिक साज-सज्जा का यहाँ ... क्या जिक्र, रोशनी तक तो ठीक है नहीं—न दुकानों की और न सड़कों-चौराहों की। बड़ी जगहँसाई होती है। दुनिया कब की प्लास्टिक और ... जाने काहे-काहे पर पहुँच गई, हम अब तक अपना वही ईंट-गारा लिए बैठे हैं। जबकि शॉपिंग सेंटर ही खास चीज है, जिससे किसी देश की उन्नति का पता चलता है। नहीं-नहीं, इस कबाड़खाने से काम नहीं चलेगा, फौरन से पेशतर यह शॉपिंग सेंटर ठीक होना चाहिए। और काम चालू हो गया है। सड़कों पर सब तरफ बड़ी-बड़ी नियॉन लाइट्स लग रही हैं। दो महीने बाद आकर देखिएगा कि शहर कैसा जगमग-जगमग नजर आता है। बड़ी-बड़ी सड़कों पर जितने सब मकान हैं, उनके मालिकों को नोटिस चला गया है कि जल्द अपने-अपने घरों का रंग-रोगन दुरुस्त करवा लें, मकानों की ये रोती-पीटती वीरान सूरतें अब नहीं चलेंगी। मकानवाले नहीं करवाएँगे तो नगरपालिका खुद करवा के बिल उनके पास भेज देगी और वक्त पर बिल का भुगतान नहीं हुआ तो सबसे पहले उनका पानी काट दिया जाएगा। (और अगर उतने से काम न चला तो शायद आगे चलकर मकान मालिकों के सर भी काट दिए जाएँ; लेकिन इसके बारे में नोटिस फिलहाल खामोश है।) जो हो, नगरपालिका ने सर्व-सम्मति से प्रस्ताव पास कर दिया है और हम लोग अब अपनी नगर-वधू को नख-शिख दुलहन की तरह सजाकर ही दम लेंगे। और उसके माथे की बिंदिया तो है वह गंगा मैया की पनघट से लौटती हुई गाँव की अल्हड़ गोरी; जैसे फिल्मी हिरोइनवाली मूर्ति लचकती, बल खाती, कमर पर गगरी टिकाए ठुमुक-ठुमुक चलने की मुद्रा में, जो सिविल लाइंस के बीचोबीच चौराहे पर प्रतिष्ठित की गई है। वाह, क्या

कहना! देखकर ही आँखें जुड़ा जाती हैं; और जो कहीं चुल्लू भर पानी मिल जाए उस गोरी के हाथों से तो हम खड़े-खड़े डूब मरें। निश्चय ही वह माइकेल एंजेलो के समान किसी बड़े शिल्पी की कृति है, भले आज कोई उसे न जानता हो। और खर्च की तो बात ही मत पूछो, चालीस-पचास हजार से क्या कम लगा होगा उस मूर्ति का, और लगने को तो लाख-दो लाख भी लग सकता है। कलाकृति जैसी अनमोल चीज, कौन उसका मूल्य आँके और कैसे आँके—और फिर जहाँ···मतलब ये है कि···तू मैं सबको देखना पड़ता है···आप तो जानते हैं···आपसे तो कुछ छिपा नहीं···

कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि गंगा मैया ने आकर इस नगर के सुंदर परिदृश्य को और भी सुंदर बना दिया है। कोई भी फूहड़-बदसूरत चीज अब कहीं रहने नहीं पाएगी। सब चाटवाले, छोलेवाले, लैया करारी और चिनिया बदामवाले तथा इसी तरह के दूसरे घुरहू-घसीटे लोग खदेड़े जा रहे हैं। गुमटियाँ भी सब तोड़ दी गईं। उनकी जगह अब बहुत मॉडर्न, हलकी-फुलकी दुकानें बन रही हैं, जिनका नाम भी वैसा ही है—कियॉस्क। उनमें अब किसीमें टी हाउस खुल रहा है, किसीमें कॉफी सेंटर, किसीमें सॉफ्टी कॉर्नर; एक में तली-भुनी मछली और कबाबवाला बैठेगा। दो लंबे-चौड़े बार होंगे और कपड़ेवालों की तो कोई गिनती ही नहीं, क्योंकि कपड़े से ही आदमी पहचाना जाता है; बल्कि यों कहें कि आदमी आदमी बनता है—जानवर से तो आदमी बनता ही है (इसके सिवा फर्क भी क्या है दोनों में!), भिखमंगे से भी आदमी बन जाता है और धीरे-धीरे वही कपड़े की

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए बड़ा आदमी बन जाता है—अंदर कुछ हो या न हो; क्योंकि कपड़ों के भीतर झाँकना एक तो यों ही बदतमीजी में दाखिल है और फिर दुनिया को इसकी फुरसत भी नहीं; कपड़ा ठीक है तो सब ठीक है। बिलकुल ठीक, शो-विंडो की सजावट दुकानों के लिए ही नहीं, खुद आदमी के लिए भी उतनी ही जरूरी चीज है। क्योंकि आखिर वह भी तो अपने ढंग का एक माल है, जो बाजार में बिकने के लिए खड़ा है। जभी तो देखिए, सड़कों पर सब तरफ अच्छे-से-अच्छे और रंग-बिरंगे कपड़ों में सजे-धजे काठ के से पुतले डोलते नजर आते हैं। ताहम बेचारों को काम नहीं मिलता और बेकारी है कि गरीब आदमी की लड़की की तरह दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है। इसका एक इलाज कपड़े के कुछ बड़े दुकानदारों ने, जिन्हें इस नए शॉपिंग सेंटर में जगह दी जा रही है, यह सोचा है कि वो अपनी इन नई दुकानों की कदे आदम, बल्कि उससे भी ज्यादा लंबी-चौड़ी शो-विंडो में उन पुराने सूटेड-बूटेड काठ के पुतलों की जगह इन नए काठ के पुतलों को खड़ा करेंगे। बड़ा अच्छा खयाल है, सबको बहुत पसंद आएगा और फायदा तो जैसे पहुँचेगा ही। सबसे पहले तो ये लड़के खुश होंगे कि उन्हें एक ढंग की, इज्जतदार नौकरी मिलेगी। दिन में चार-छह दफे अच्छे-से-अच्छे और नए-से-नए कपड़े पहनने को मिलेंगे। घूम-घूमकर अपने को दिखाना भी नहीं पड़ेगा। ठाठ से अपनी जगह पर बुत बने खड़े रहो, लोग आप आ-आकर तुम्हें देखेंगे। उधर वो दुकानदार खुश—एक तो लकड़ी आजकल आदमी से ज्यादा महँगी हो गई है, दूसरे काठ का पुतला फिर भी काठ का ही पुतला है—खड़ा है तो बस खड़ा है; न कभी हँसता है, न मुसकराता है और न किसीको सलाम करता है। जबकि ट्रेनिंग मिलने पर ये नए पुतले सभी कुछ बड़ी बाँकी अदा से करेंगे और ग्राहक को झख मारकर दुकान के अंदर आना पड़ेगा। उधर सरकार की खुशी का क्या ठिकाना। बैठे-बिठाए देश की बेकारी की समस्या हल हो गई, जहाँ अक्ल कुछ काम ही न करती थी कि करें तो क्या करें? क्या अजब कि सरकार खुश होकर इन दुकानदारों को अच्छा सा कुछ इनाम ही दे डाले। रही नगरपालिका, तो उसकी तो अभी से बाँछें खिली जा रही हैं। नगर-वधू की सुंदरता में जब चार चाँद लगेंगे तब लगेंगे, अभी कुछ महीनों की देर है; पर हमारे मेयर साहब की छटा तो अभी से ही 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' हो रही है—आँखों में एक चमक आ गई है, जो इस दुनिया की लगती ही नहीं। बत्तीसी हरदम ऐसी खुली रहती है कि लगता है, मुँह में ज्यादा नहीं तो चौंसठ दाँत तो होंगे ही, काफी तनकर चलने लगे हैं कि जैसे बूढ़े मेरुदंड को खपाची लगाकर सीधा कर दिया गया हो, यानी कि बस देखते ही बनती है—शोभा बरनि न जाइ। बात ये है कि उनके पास प्राइम मिनिस्टर की चिट्ठी आ गई है। शो-विंडो में काठ के पुतलों की जगह जीते-जागते लड़कों-लड़कियों को खड़ा करने की स्कीम उन्हें बहुत पसंद आई है और उन्होंने मेयर साहब को बुलाया है, इसीके बारे में बात करने को। उनका इरादा शायद देश भर में इसे लागू करने का है। मतलब यह है कि मेयर साहब की इस वक्त पाँचों अँगुली घी में हैं—रॉ सिल्क के कुरते और ऊनी जवाहर जैकेट तैयार किए जा रहे हैं। दुकानदारों को जब से इस बात का पता लगा है, सब बहुत बिफरे हुए हैं कि स्कीम उनकी और श्रेय लूट ले गए मेयर साहब! जो हो, अपने को इससे क्या! यह सब
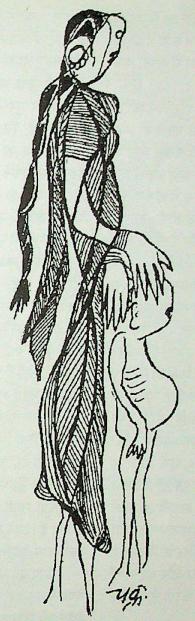
तो लगा ही रहता है। मगर इसमें शक नहीं कि ये अपने ढंग की बिलकुल पॉयनियर स्कीम है। दुनिया के परदे पर आज तक ये चीज कहीं देखी या सुनी नहीं गई। नगर की सुंदरता तो बढ़ेगी ही, सारी दुनिया में अपना नाम हो जाएगा।

इसके बाद फिर करने को ही क्या रह जाता है, और तीन करोड़ रुपए की बिसात ही कितनी! मैं क्या जानूँ, मैं तो जैसा पहले ही कह चुका हूँ—तीन करोड़ रुपया आँख से देखा भी नहीं और न इस जन्म में देखने की उम्मीद ही है; लेकिन जो लोग ऐसी बड़ी-बड़ी रकमों को हाथ लगाते रहे हैं, उनका कहना है कि देश के कामकाज में तीन करोड़ रुपया तीन पैसे के बराबर होता है। जरूर ऐसी ही बात होगी, जब तो देखते-देखते अरबों-खरबों रुपया हवा हो जाता है और पता भी नहीं चलता कि कहाँ गया।

इसलिए अभी तो नगर-वधू को सजाने-सँवारने की इतनी ही योजना है—अलावा सत्रह नए सिनेमाघरों को लाइसेंस देने के, जिनसे नगरपालिका ने, नगर की सुंदरता का खयाल रखते हुए, लाइसेंस देते समय ही लिखवा लिया है कि उन सबका स्थापत्य अलग-अलग ढंग का होगा—किसीका मौर्यकालीन तो किसीका गुप्तकालीन, किसीका मुगल तो किसीका राजपूत, यानी कि कोई दो सिनेमाघर एक जैसे न होंगे—और इस तरह सिनेमाघर सब मिलकर एक मतलब में विभिन्न भारतीय शैलियों के स्थापत्य का जीता-जागता ही नहीं, फिल्मी गीत बजाता हुआ एक अजायबघर होंगे। विदेशी सैलानियों को अब दर-दर भटकना नहीं पड़ेगा, एक ही जगह पर उन्हें सबकुछ मिल जाएगा। बात फैलते कितनी देर लगती है। फिर देखना, कैसी भीड़ टूटती है अपने यहाँ! दो-चार सौ आदमी हर वक्त डला ही रहेगा। यहाँ—प्रेम से संगम नहाएगा, भारतीय स्थापत्य का गंभीर अध्ययन करेगा और विदेशी मुद्रा की अपनी थैली, जिसके बिना देश व्याकुल है, हमारे पास छोड़कर अपने घर लौट जाएगा और नए लोगों को भेजेगा। देखना तो। अपनी नगरपालिका जो कुछ करती है, सोच-समझकर करती है।

चार महीने बाद आइएगा तब देखिएगा, आँखें फटी-की-फटी रह जाएँ तो बात नहीं। वही हाल होगा आपका जो सुदामाजी का द्वारका पहुँचकर हुआ था—शहर पहचान में ही न आएगा, कहाँ आ गया मैं!

हाँ, कुछ जानी-पहचानी चीजें आपको मिलेंगी—सड़कें ऊबड़-खाबड़ और घुप-अँधेरी, बिजली की कटौती से (रोज जाने कितनों के दाँत टूटते हैं, जिसकी सबसे ज्यादा शिकायत डेंटिस्टों को है, जिनका बिजनेस मारा जा रहा है। उधर नगरपालिका, सुना है, दाँत तोड़ने की कुछ फीस लगाने जा रही है।) सड़क किनारे जगह-जगह कूड़े के ढेर और गंदे पानी के चहबच्चे; लेकिन वह एक अलग बात है। मेरी शामत कि एक रोज मैं एक सभासद से इसकी बात निकाल बैठा। मेरा खयाल था कि नगर की सफाई भी नगर-सज्जा का अंग है। लेकिन साहब, उन सभासद ने इसका ऐसा दंदाँशिकन जवाब दिया कि मेरे दाँत खैर टूटे तो नहीं, मगर खट्टे जरूर हो गए। सभासद बोले—सुंदरता को सफाई से क्या मतलब? लगता है, आपने धूल-मिट्टी में सनी हुई गाँव की छोरियाँ नहीं देखीं, जिनके आगे हूरें भी मात हैं, और न शायद चिकनी-चिकनी धुली-पुँछी, यहाँ तक कि इस्तिरी की हुई बदसूरती की भी लाजवाब मछरियाँ देखी हैं जिन्हें जितना ही माँजा, बदसूरती की उतनी ही नई तहें निकलती चली आती हैं।'''बिलकुल फिजूल बात है; सुंदरता और सफाई बिलकुल अलग चीजें हैं। हमको ये जो रुपया मिला है, नगर की सुंदरता बढ़ाने के लिए मिला है; इसका एक छदाम भी अगर हम सफाई पर खर्च कर देंगे तो ऑडिट ऑब्जेक्शन लग जाएगा। कोई खेल थोड़े ही है, सब काम जाप्ते से करना पड़ता है। आप लोग समझते नहीं, बहुत तरह की मजबूरियाँ रहती हैं। इसलिए अभी तो तीन करोड़ रुपए में—होता ही कितना है! इतने से ही संतोष करना पड़ेगा। आगे फिर जब कोई ऐसी ही रकम हाथ आएगी तब अच्छी तरह, डटकर सफाई की जाएगी'''

रुपए की या शहर की? यह छोटा सा सवाल मेरे मुँह तक आया, मगर मैं तब तक सभासदजी की बातों से इतना आतंकित हो चुका था कि पूछने की हिम्मत नहीं पड़ी। □

सदस्यता का नवीनीकरण

साहित्य अमृत के पाठक सदस्यों से अनुरोध है कि अपनी सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवाने की कृपा करें।

सदस्यता शुल्क

★ व्यक्तियों के लिए : १२५.०० रु.

★ संस्थाओं के लिए : १५०.०० रु.

वार्षिक शुल्क की राशि साहित्य अमृत के नाम मनीऑर्डर, बैंक ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजी जा सकती है। दिल्ली से बाहर के चैकों के लिए कृपया २०.०० रु. बैंक कमीशन जोड़कर भेजने का कष्ट करें।

नोट—पत्र व्यवहार के समय अपना सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। सदस्यता क्रमांक हमारे यहाँ से भेजी जानेवाली पत्रिका में आपके नाम से पूर्व लिखा रहता है।

कविताएँ

✍ जगदीश गुप्त

टूटकर गिरा आसमान

गुजरात की धरती
चिथड़ा हो गई
जब टूटकर गिरा आसमान
टूट गई भुज की भुजा
पाषाण परतों में समाया
पृथ्वी के भीतर आक्रोश का पुरातन
गड़गड़ाकर फूट पड़ा
जहाँ समुद्री खारा पानी बहता था
धरती से उपजा मीठा
बहने लगा!
अघटित घटना पटीयसी सृष्टि
अपना रूप दिखाती है
अनजाने कभी-कभी
चकित हो जाता है
स्रष्टा स्वयं
इतनी विराटता समाई है
अपने ही सर्जन में,
कभी-कभी तीसरा नेत्र
खुल जाता है प्रज्वलित
होकर आग्नेय रूप में
करने को भस्मात्
पुष्प-धन्वा काम की
कोमल काया को
देखता रह जाता है कुत्सित
वसंत! बुद्धू वसंत!!
'पंडित सकल सत्य बक्खानहिं।
कायहि बुद्धू वसंत न जानहि॥'

□
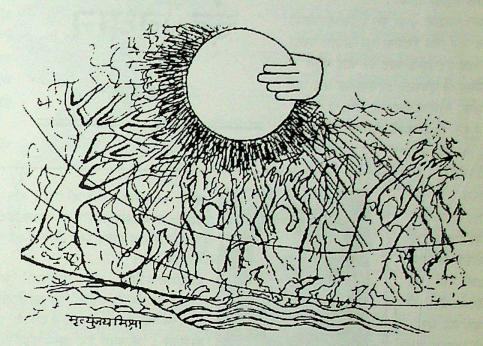
बेंट द्वारका, ध्वंसावशेष

जलयान से जाना
लघु द्वीप में
भूलेगा कैसे?
कृष्ण-सुदामा की
मिलन स्थली
आज भी आँखों में सजीव है
उनकी मयूरांकित छवि
स्तंभित रह गया था मैं
सीढ़ियाँ शृंखलाबद्ध
आज ध्वस्त हो गए हैं
द्वारका के स्वर्णिम भवन
दीठि चकचौंधि गई
देखत सुवर्णमयी···
द्वार खड़े द्विज दुर्बल एक
नरोत्तम के छंद
धारा-प्रवाह प्रेमानंद का वर्णन सजीव
उसीकी दुर्दशा देखी
देखते ही आस्थामयी
आँखें पथरा गईं
चाँदी के विशाल द्वार
ध्वंस के साक्षी हैं
काँपकर स्थिर हो गईं
प्रतिमाएँ राधा-कृष्ण की
भूल गया था मैं
इस दिव्य यात्रा की बात
त्रिमूर्ति ही याद रही
पश्चिम तट में
अंडमान पूर्वी तट की छाया में
अभी तक जीवित है
काला पानी बहता देखा
पर काले कृष्ण और
गोरी राधिका की
छवि ही अद्वितीय है आज तक।

□

१८१-ए/१, नागवासुकी,
प्रयाग-६

कहानी

दंड-विधान

✍ ऋता शुक्ल

जन्म : १४ नवंबर, १९४९ को डिहरी ऑन सोन में।
शिक्षा : मगध विश्वविद्यालय की स्नातक हिंदी 'प्रतिष्ठा' परीक्षा में विशिष्टता सहित प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान एवं स्वर्ण पदक प्राप्त।
प्रकाशित कृतियाँ : 'दंश', 'अग्निपर्व', 'समाधान', 'बाँधो न नाव इस ठाँव', 'शेषगाथा', 'कनिष्ठा उँगली का पाप', 'कितने जनम वैदेही', 'कासों कहों मैं दरदिया' तथा 'मानुस तन'।
पुरस्कार : 'क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ' वर्ष १९८४ में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा देश भर से आमंत्रित कुल छियासी पांडुलिपियों में सर्वश्रेष्ठ घोषित, पुरस्कृत तथा प्रकाशित।

वकालत की पढ़ाई का अंतिम वर्ष। रत्नाश्री ने अम्मा के सामने चिरौरी की थी—

'कम-से-कम परीक्षा तो पूरी हो जाए।'

... ...

'अम्मा, जैसे भी हो, पापा से कहकर यह तारीख टलवा दीजिए।'

शिवप्रकाशजी ने वर पक्ष से निवेदन किया था—२४ जून तक बिटिया का अंतिम परचा पूरा हो जाएगा। उसके बाद का कोई मुहूर्त...

तापस के एकमात्र अभिभावक बड़े भाई विनोद शंकर ने साफ मना कर दिया था, 'इससे अच्छा मुहूर्त फिर कहाँ मिलेगा! दोनों की लग्नपत्री का संयोग देखते हुए हमारे मनोहर शास्त्रीजी ने...'

तापस की भावज तरला देवी ने दूरभाष पर हिदायत दी थी, 'परीक्षा का क्या है, आज नहीं तो अगले साल। वैसे भी हमारे घर की बहू-बेटियों ने अदालत का मुँह नहीं देखा है। छोटी दुलहिन गाउन पहनकर कचहरी जाए, मरदों से मुँहामुँही बहस करे, तापस को, हम सबको यह कभी नहीं सुहाएगा।'

विवाहवाले दिन—

शिवप्रकाशजी के दीक्षा गुरु आचार्य पद्मदेव महाराज ऋषिकेश से पधारे थे।

रत्नाश्री के जन्म के समय उन्होंने पुलक भाव से कहा था, 'असाधारण व्यक्तित्ववाली होगी यह कन्या!'

पैरों में त्रिशूल के चिह्न—छह उँगलियों में चक्र...रुदन के बदले शिशु-मुख पर इतनी गहन मुसकान।

'सुनंदा, इसके पालन-पोषण में कोई कोर-कसर मत छोड़ना, बहुरिया। ताड़ना कदापि नहीं। शत्रु-मित्र सबके स्नेह की सहज अधिकारिणी होगी यह जीवात्मा।'

वेद-वेदांगों के अधीत विद्वान् परम तेजस्वी आचार्यजी ने स्वयं ही पुरोहित का दाय स्वीकार किया था, 'शिवप्रकाश बेटे, वर को तथा उनके संबंधियों को जनवासे से बुलवाने का प्रबंध करो। विवाह का मुहूर्त बीत रहा है।'

रामधनी ठाकुर जनवासे से बैरंग वापस लौट आए थे, 'भौजी, तनिक इधर आइए तो।'

बुझे हुए अलाव की तरह स्याह पड़ा सुनंदा का चेहरा, 'हे भोलेनाथ! हमारी मान-मरजाद की रक्षा अब तुम्हारे हाथ है।'

रक्तचाप के दबाव से शिवप्रकाशजी की कनपटियाँ तड़कने लगी थीं।

'हमने तो पहले ही कह दिया था कि माला-बदल का रिवाज हमारे यहाँ नहीं है। बारात दरवाजे लगेगी, द्वारपूजा होगी और वर-वधू सीधे लग्न-मंडप में...'

'रामधनी भाई, जरा बताइए तो, यह प्रस्ताव किसकी ओर से आया? और आपने उन्हें समझाया नहीं कि...'
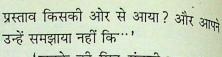
'लड़के की मित्र-मंडली जमा थी। वे लोग पूरी तरह नशे में थे। कर्ता-धर्ता भी वहीं बैठे हुए थे। हमने समझाने की कोशिश की, तो लगे डाँट-डपट करने—हजाम हो, अपनी औकात में रहो। जाकर शिवप्रकाशजी से कह देना—लड़की को लेकर ही जनवासे में आ जाएँ। उनके घर का रिवाज भी नहीं टूटेगा और माला-बदल की बच्चों की फरमाइश भी पूरी हो जाएगी।'

आशंकाओं के उद्वेलन ने हँसी-खुशी से भरे घर को पूरी तरह अपनी चपेट में ले लिया था, 'अब क्या होगा?'

... ...

'रत्ना को उन नशेड़ियों, भँगेड़ियों के बीच जाना होगा?'

आचार्यजी ने अविचलित स्वर में शास्ति दी थी, 'चिंता का कोई कारण नहीं है। शिव, तुम मेरे साथ जनवासे चलो।'

जीवन के प्रति अदम्य आस्था से भरी रत्ना की पावस-वर्णी आँखें पिता के समक्ष प्रश्न विकल थीं—समान विद्या-बुद्धि, समान आचरण, समान मानसिकतावाले मनुष्यों का परस्पर संबंध अविच्छिन्न होता है—यही कहा करते थे न आप? फिर...

आचार्यजी का स्वर विशेष रूप से गंभीर था, 'शिव बेटे, तुमने वर के संस्कारों, उसके परिवारवालों की मानसिकता के विषय में ठीक से पता लगा लिया था न?'

शिवप्रकाश कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं थे—

सयत्न सँवारा गया बैठकखाना। मुसकराकर भरपूर स्वागत करते तापस के बड़े भाई-भाभी, 'लेन-देन की बात पर आपको इतना चिंतित नहीं होना है, अंकलजी। भगवान् का

दिया हमारे पास इतना है कि···'

तापस जितनी बार सामने आया, संयत और मर्यादित ही रहा।

आचार्यजी ने प्रबोध दिया था, 'आजकल के युवक हैं, बालहठ कर बैठे। इस समस्या का निदान हो जाएगा। चलो, चलें···'

पद्मदेवजी की तर्जनी का इंगित भर यथेष्ट था, 'जयमाल की रस्म होगी यहाँ, जनवासे में नहीं, हमारे घर के आँगन में। आपके पक्ष से जो भी अभिभावकगण वर-वधू को आशीर्वाद देना चाहते हैं, वे बेशक साथ आएँ।'

तापस की मित्र-मंडली हतप्रभ थी—

'इस अवतारी पुरुष को बीच में लाने की क्या जरूरत थी भला? सारा मजा किरकिरा···'

आचार्यजी के संयत स्वर ने कशाघात किया था, 'मेरे युवा मित्र! मैं रत्ना का पितामह हूँ। आपको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि आपके मान में भंग नहीं होगा। आप यहीं विराजें। तापस को हमारे साथ जाना होगा। आओ, बेटे!'

आचार्यजी के पीछे-पीछे आदेशबद्ध तापस और उसके सभी स्वजन।

आनन-फानन में जयमाल की तैयारी हुई थी।

अप्रत्याशित कचोट से विकल रत्नाश्री की बड़ी-बड़ी आँखें आचार्यजी को अपलक निहारती रह गई थीं।

'इस तरह कातर नहीं होते, बच्ची! जीवन की सँकरी गलियों में ऐसे न जाने कितने मोड़ आएँगे। अपनी मन:शक्ति, अपने सत्य-बल और गुरुकुल के संस्कारों का साथ कभी मत छोड़ना। पालनहार सबकुछ मंगल करेंगे!'

शिवप्रकाशजी के भ्रातृज आनंद प्रकाश आरक्षी अधीक्षक के पद पर स्थानांतरित होकर आए थे।

उन्होंने चुपके से पेशकश की थी, 'चाचाजी, इच्छा तो यही हो रही है कि इन लोभियों को रात भर हाजत में रखवा दूँ। इनकी खातिरदारी के लिए उससे बेहतर कोई जगह नहीं हो सकती। चुपचाप उठवा लूँगा, किसीको कानोंकान खबर तक नहीं होगी।'

आचार्यजी ने विनोद भरी मुसकान के साथ
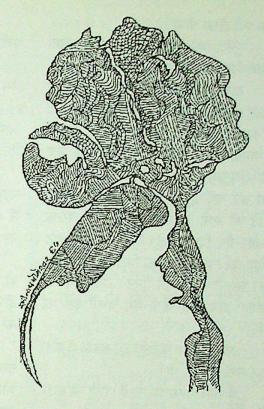
उन्हें निहारा था, 'ऐसा कुछ भी नहीं करना, आनंद बेटे! तुम्हारे वे दो लाल पगड़ीवाले पहले से ही सावधान की मुद्रा में डंडा दबाए खड़े हैं। उनकी ड्यूटी वहीं रहने दो। अब कोई फरमाइश नहीं आएगी। यह मंगल कार्य निर्विघ्न पूरा हो जाए, बस।'

विदाई के समय तापस की बड़ी भाभी ने विचित्र स्थिति उत्पन्न कर दी थी, 'तापस, रत्ना ने जो गहने पहन रखे हैं, उनका वजन।'

विनोद शंकर ने शिवप्रकाशजी से दो-टूक सवाल किया था, 'बीस तोले सोने की शर्त बदी थी आप लोगों ने, इसमें भी···'

आनंद प्रकाश की आँखें क्रोध से दहक उठी थीं, 'विदाई का मुहूर्त बीता जा रहा है और आप यह अनर्गल प्रसंग लिये बैठे हैं! क्या मंशा है आपकी? सुनार को बुलवाकर लगे हाथ गहनों की तौल करवा ली जाए, ताकि आप लोग···'

तरला देवी ने मधुर मुसकान के साथ बीच-बचाव का अभिनय किया था, 'आनंद बाबू, हमने ऐसा तो कुछ भी नहीं कहा कि आप···गहने तो आखिरकार रत्ना के ही होंगे न! आपके पास खरीद की पक्की रसीद तो होगी ही, वही दिखा दें।'

सुनंदा दालान में लेटे आचार्यजी के पास बिलखकर रो पड़ी थीं, 'यह कैसा संबंध हुआ, गुरुजी? कैसे निठुर लोग हैं ये! सूदखोर पठान भी होता तो ऐसे मौके पर···'

पद्मदेवजी की निर्विकार आँखों में पहली बार संशय था, 'भाग्यरेखा प्रबल होती है, यह मानकर कोई भी मनुष्य अपने दायित्वों से बरी नहीं हो सकता। यह संबंध तय करने में तुम लोगों से अवश्य कोई चूक हुई है, सुनंदा!

'शिवप्रकाश ने इनका ऊपरी रंग-रोगन देखा, इनके मन की कालिख को पहचान नहीं सके। उनका दोष भी कैसे मानूँ, वैभव का युग है। इनके भीतर का असुर तो तुम लोगों को दिखाई ही नहीं पड़ा होगा। मुझे रत्ना बिटिया के लिए असह्य पीड़ा हो रही है। जाओ सुनंदा, एक बार बच्ची को मेरे पास भेजो।'

प्रारब्ध की पहली चोट से उपजा हुआ रत्नाश्री की आँखों का वह अथाह सूनापन—

'आ बिटिया, बैठ मेरे पास।'

... ...

'तू कुछ घबड़ाई हुई सी लग रही है, बच्ची! तुझे एक बात समझाने की इच्छा हुई। मानेगी अपने इस बूढ़े बाबा की बात?

... ...

'निष्कपट हैं तेरे माता-पिता। ऊँचा घर देखा, ऊँची करनी नहीं थाह पाए। तू मेरी मानस कन्या है। रत्ना, तुझे स्मरण है—दस वर्ष की थी तू···! तेरी पीठ का वह बड़ा सा घाव!

'मैंने एक मंत्र दिया था। विघ्नविनाशिनी दुर्गा का नाम जप—और चीरा लगाते समय तूने 'आह' तक नहीं निकाली थी। इस बूढ़े की गोद में किस अद्भुत धीरज के साथ तू उस जर्राह का नश्तर झेल गई थी, रत्ना!

'यह मुहूर्त उस जर्राह के नश्तर की तरह ही तो है। तुझे अपार धीरज के साथ सबकुछ झेलना होगा।'

रत्ना की डबडबाई हुई आँखों में पहली बार एक अभियोग था, 'अपने दु:ख की चिंता नहीं है, बाबा। पर वे लोग अम्मा-बाबूजी का,

आनंद भैया का अपमान कर रहे हैं। ऐसी दशा में भी…'

… … … …

'मुझे एक ही पीड़ा है, बाबा। जिस पुरुष का चयन आप लोगों ने मेरे लिए किया, वह काठ की मूरत है या…'

… … … …

'मेरे सारे गहने उतरवा लिये गए, यहाँ तक कि मंगलसूत्र भी…और वह टुकुर-टुकुर देखता रह गया।'

'तो क्या वे लोग…'

'बाहरी बरामदे में बैठे हैं सबके सब… मेरी जेठानी गहने लेकर अलंकारवालों के यहाँ गई हैं।'

'और तेरा वर तापस?'

'वह आज्ञाकारी बालक की तरह अपनी भाभी का अनुगत बनकर गया है।'

आचार्यजी की वह कातर मुद्रा…उनका वह आत्मसंलाप…

'जैसे भी हो, इस बबूल वन में तेरे लिए सुखमय दशा और दिशा का संधान मुझे ही करना होगा, रत्ना!'

'आप और अम्मा-बाबूजी कन्यादान के महापुण्य से जुड़ा गए…अब इस बड़वाग्नि में अकेली ही झुलसना होगा मुझे!'

आचार्यजी ने पटुके का छोर आँखों पर रख लिया था, 'तेरी पीड़ाओं की अग्नि हम सबको जीवन भर दहकाएगी, रत्ना। हमारी आत्मा का सबसे कोमल अंश है तू। तुझे स्मरण भी नहीं होगा, महाकुंभ के मेले में सुनंदा की उँगली छोड़कर तू न जाने कहाँ गुम हो गई थी। सुनंदा की वह दशा—कंठगत हो चुके उसके प्राण—मेरी रत्ना को कहीं से ढूँढ़कर ला दीजिए, गुरुजी।…शिवप्रकाश के गुरुभाई आशीषदत्त के साथ किलकारियाँ भरती तू वापस आई थी—हम तो बंदर का नाच देख रहे थे, अम्मा, काकाजी के कंधे पर बैठकर।

'आशीष ने विनोद वाक्य कहते हुए सांत्वना दी थी—पाँच मिनट के लिए आँख से ओझल हुई नहीं कि ऐसी मर्मदशा, और जो बिटिया बड़ी होकर श्वसुर-गृह जाने लगेगी तब क्या होगा, भौजी?'

सुनंदा की वह दशा देखकर स्वयं आचार्यजी भी अधीर हो उठे थे।

ठाकुरजी के सिंहासन के समक्ष निश्चल बैठी, स्पंदन में गुँथे आर्त्तनाद को नीरव आँसुओं में ढालती सुनंदा की वह दीन-हीन दशा। 'माँ भगवती, तुम्हारी सेवा में ऐसी कौन सी चूक हो गई मुझसे…कभी किसीकी आत्मा को रत्ती भर चोट नहीं पहुँचाई हमने! गाँव-घर, रिश्ते-नाते की सभी कन्याओं को रत्ना के बराबर आदर-प्रेम दिया हमने। किस जन्म का दंड दिया, माँ? रत्ना को लेकर कितने स्वप्न सँजोए थे! रक्तबीज समझकर तुमने उसका वध कर डाला। अब कैसे रहेगी मेरी बच्ची उस घर में?'

आनंद प्रकाश के भिंचे हुए जबड़ों में क्रोध का भारी खिंचाव था।

वे लोग वापस आ गए हैं। रत्ना को बाहर बुलाया जा रहा है।

तरला देवी ने मुसकराते हुए गोल-मटोल प्रस्ताव रखा था, 'रत्ना पहनकर जाएगी इन जेवरों को? लंबा सफर है। न हो तो मैं इन्हें अपने बैग में रख लेती हूँ। वहाँ जाकर…'

आनंद ने तीखा प्रतिवाद किया, 'मेरे हथियारबंद आदमी साथ जा रहे हैं। रत्ना, जा, जल्दी से भीतर जाकर सारे जेवर पहन ले! मैं कह रहा हूँ न!'

रत्ना के बिना अथाह सूनापन की यंत्रणा झेलता—शिव भवन।

शिवप्रकाशजी ने अपने आपको छोटी कोठरी में बंद कर लिया था, 'बहुत थकान लग रही है। थोड़ी देर सोना चाहता हूँ।'

सुनंदा की वह उद्भ्रांत दशा, 'गुरुजी, प्रार्थना कीजिए, रत्ना वहाँ ठीक से रह पाए। वे लोग तो…'

आनंद प्रकाश ने आश्वासन देना चाहा था, 'किसी भी तरह की गड़बड़ी का इशारा भी मिला तो पकड़कर अंदर कर दूँगा सालों को! चाची, आप हिम्मत से काम लीजिए। मैं सुबह-शाम दोनों वक्त फोन पर रत्ना से बातचीत करता रहूँगा।'

दूसरे दिन शाम के वक्त फोन की घंटी बजी थी, 'अम्मा, कैसी हो तुम?'

दो दिन नहीं, दो सहस्र युग बीत गए हों जैसे।

सुनंदा के पोर-पोर में वात्सल्य उमड़ आया था, 'तू कैसी है, रत्ना? तू ठीक तो है न बिटिया?'

'हाँ, अम्मा, सब ठीक है। तुम बाबा को बता देना, वे किसी तरह की चिंता नहीं करेंगे। मैं अपनी दिशा के संधान में अकेली ही जुट गई हूँ!'

प्रीतिभोजवाले दिन आनंद प्रकाश अकेले ही गए थे, 'चाची, आपका या चाचा का जाना ठीक नहीं रहेगा। मेरी बात और है। मुझसे बोलने की हिम्मत…'

उपहारों की पेटी सहेजते हुए सुनंदा ने नरमी से समझाया था, 'वे लड़केवाले हैं। वहाँ थोड़ी ऊँच-नीच भी दिखे तो सह जाने में ही अपनी भलाई है, बबुआ! हाँ, रत्ना से अकेले में बातचीत हो तो ठीक से सब समाचार जान लेना।'

आनंद जानबूझकर सारा प्रसंग छिपा ले गए थे। रत्ना के ससुरालवालों ने उन्हें बैठने तक के लिए नहीं पूछा था। रत्ना के साथ गई मंगला ठकुराइन ने हाथ जोड़कर चिरौरी की थी, 'भैयाजी, भीतर चलकर एक बार रत्ना बच्ची से मिल तो लीजिए।'

गलियारे में रुककर उसने फुसफुसाते हुए कहा था, 'बड़े बेशरम हैं यहाँ के लोग! सुनंदा चाची और चाचाजी के लिए ऐसी गलीज बातें, वह भी बच्ची को सुना-सुनाकर…'

… … … …

'हमने भी इनकी महरी के सामने सबकुछ उघट दिया—

'अजी, चाँद-सुरुज की जोत है हमारी रतना बच्ची। साच्छात गौरी-संकर हैं इनके महतारी-बाप…किसी जनम का पाप-फल ही होगा जो ऐसे बेहया लोग हमें मिले।'

रत्ना के सयत्न प्रसाधित चेहरे पर दूज के चंद्रमा-सी फीकी मुसकान क्षण भर के लिए उभरकर तिरोहित हो गई थी।

'कैसी है, रत्ना, मेरी बहन?'

... ...

'तू ठीक तो है न, बिटियाऽऽ?'

'आप हमसे मिले बिना वापस चले जा रहे थे, भइया''' ?'

मंगला आँखें मटकाती बीच में टपक पड़ी थी, 'हमने नहीं देख लिया होता तो ये''''

किसीसे कुछ भी कहने की स्थिति नहीं थी आनंद प्रकाश की।

तापस ने बैरे के हाथों नाश्ते की ट्रे भिजवा दी थी, 'तुम इन्हें खिला-पिलाकर भेजना। रत्ना, मैं जरा अपने मित्रों को''''

विदा लेते समय उन्होंने रत्ना से धीरे से पूछ लिया था, 'चाची ने तुम्हारे लिए कपड़े भिजवाए हैं और कुछ नगद रुपए भी। तुम कहो तो तापस के बड़े भाई से तुम्हारी विदाई की बात'''

रत्ना ने सिर हिला दिया था, 'अम्मा को बता देना, भइया, मुझे यहाँ कोई भी कष्ट नहीं है और अभी कुछ दिन मेरा यहाँ रहना जरूरी है।'

'लेकिन, रत्ना'''

'घबड़ाओ नहीं, भइया, अम्मा-बाबूजी का आशीष और बाबा का तप मेरा रक्षाकवच है। तुम्हारे पुलिसिया डंडे का इस्तेमाल यहाँ नहीं हो सकता न''फिर भी''मेरी छोटी ननद सुलक्षणा पर तुम्हारा जबरदस्त प्रभाव है। वह तुम्हारी प्रशंसिका बन गई है।'

सवा महीने बाद—

सुनंदा ने रत्ना को बुलवा भेजा था। तापस घंटे भर के लिए आए और वापस चले गए थे।

सुनंदा सबकुछ थाहकर संशय-विकल थीं। कैसी बनावटी गंभीरता, कैसा सहमा हुआ सा असहज हाव-भाव—

'भाभी ने कहा है अगले शनिवार को वापस भेज देने के लिए'''।'

'इतनी जल्दी? कम-से-कम महीना भर तो रहने देते, बेटे।'

'इसके लिए तो आपको भाभी से ही बात करनी पड़ेगी।'

शिवप्रकाशजी ने तापस के बड़े भाई आनंद शंकर से फोन पर बात करनी चाही थी। तरला देवी ने दो टूक मना कर दिया था, 'रविवार को तापस चंडीगढ़ जा रहा है। उस समय रत्ना का हमारे पास होना जरूरी है।'

'तापस अपनी ड्यूटी पर जा रहा है और रत्ना''' ?'

'वह यहीं रहेगी क्या?'

पथरीले रास्तों पर मीलों दूर तक पैदल सफर करके लौटे यात्री की साँसों का भारीपन ऐसा ही होता होगा क्या?

रत्ना की बनावटी मुसकान सुनंदा को छलनी कर रही थी, 'इससे तो बेहतर था कि फूट-फूटकर रो लेती। उसके कलेजे में जमा दुःख तो पिघल जाता। रत्ना के बाबूजी''हम दोनों से बहुत बड़ा गुनाह हो गया।''फूल की छड़ी से कभी नहीं छुआ हमने अपनी बिटिया को''। जरा सी रोती थी तो हम दोनों उसे रिझाने के हजार तरीके ढूँढ़कर पस्त हो जाया करते थे।'

... ...

'वही रत्ना इतनी सयानी हो गई कि'''

> 'सादगी तेरा आभूषण है और गहन आत्मबल तेरा सहयोगी। सुनंदा के दिए हुए संस्कार तेरे आयुध हैं। आधुनिकता का मृग-जल तुझे कभी नहीं भटका सकता, रत्ना। तू आज की सीता है, मेरी बच्ची। सारे दुःखों से मुक्ति की एक ही दिशा बतला रहा हूँ तुझे—स्वावलंबन। अपने बौद्धिक तप से समाज में अपना स्थान बना, रत्ना'''बोल बेटी, ऐसा कर सकेगी तू?'''

शिवप्रकाशजी ने रत्ना को अपने सामने बिठाया था, 'हर घर-परिवार की जीवन शैली, उसकी दिनचर्या अलग-अलग होती है। सबकी मानसिकता एक जैसी हो, यह भी आवश्यक नहीं; लेकिन स्नेह-सौहार्द का परिवेश मिले तो विषम को भी सम बनाया जा सकता है। पता नहीं, किस मिट्टी के बने हैं वे लोग!'

रत्ना ने सुनंदा के सामने मुँह खोला था, 'अम्मा, बाबूजी को समझा दो, हर घड़ी उन लोगों का प्रसंग मन में नहीं लाएँ। उनकी तनावग्रस्तता का असर तुमपर, पूरे घर पर पड़ेगा। अशुभ का स्मरण भी अशुभकारी होता है न।'

रत्ना के विदा होने के बाद सुनंदा अचानक तेज ज्वर में ग्रस्त हो गई थी, 'रत्ना ने अशुभकारी कहा था—कहीं उसीके साथ कोई अशुभ घटित न हो जाए।'

... ...

'सुनिए, आप जाकर उसे ले आइए। उन लोगों ने तापस के साथ उसे नहीं भेजा। गुलामी करेगी रत्ना वहाँ रहकर''तापस ने भी मुँह खोलकर नहीं कहा—इसे मेरे साथ जाना है।'

आनंद प्रकाश के हवलदार जलालुद्दीन रत्ना की ससुराल के पड़ोस में रहते थे। उन्होंने दबी जबान से बताया था, 'इतनी बड़ी कोठी है। फाटक पर बड़े काले हरफों में लिखा है—कुत्तों से सावधान। बेअदबी की मुआफी चाहते हैं, सर। हमारे मन में आता है—हम अपनी ओर से एक लफ्ज और जोड़ दें—'दोपाया कुत्तों से सावधान।' सच बता रहे हैं आपको, उनका व्यवहार जानवरों से भी बदतर है। आधी रात में शोर-शराबा, मार-पीट'''। बड़ी बहू जंगली बिल्ली की तरह झपटती है और विनोद शंकर नौकर-नौकरानियों पर अपना गुस्सा निकालते हैं। आप लोगों ने उस घर में रिश्तेदारी बनाई, जहाँ तहजीब नाम की कोई चीज नहीं।'

सब पता था आनंद प्रकाश को—

तरला देवी और उनकी छोटी ननद

सुलक्षणा को होटल मीनार में डिस्को करते देखा था उन्होंने। उन दोनों की वे भड़कीली पोशाकें, उनका वह कुत्सित साज-शृंगार···

रत्ना को अपने साँचे में ढालने की कम कोशिश नहीं की थी तरला देवी ने, 'इस घर के अपने तौर-तरीके हैं। सोसाइटी में रहना है तो किटी पार्टी, क्लब, फ्लश-हौजी इनसे परहेज तो नहीं किया जा सकता न। माना कि तुम्हारे परिवारवाले पुराने धार्मिक खयालों के हैं और तुमने कभी इस तरह की दुनिया देखी नहीं है। इसलिए तो···तुम्हारा घर से निकलना बहुत जरूरी है।'

सुलक्षणा ने प्रस्ताव रखा था, 'छोटी भाभी ऐसी दशा में हमारी सहेलियों के सामने जाएँगी तो नाक नहीं कट जाएगी हमारी।'

··· ··· ··· ···

'सबसे पहले इन्हें हमारे साथ ब्यूटी पार्लर चलना होगा। डिसूजा आंटी इनकी कायापलट न कर दें तो फिर कहना, बड़ी भाभी!'

'और क्या? चंडीगढ़ जाने के पहले तापस ने भी बार-बार हिदायत दी थी—इसे अपनी तरह स्मार्ट बनाइए, भाभी। सोसायटी में उठना-बैठना सीख जाए तो···'

संपन्नता के उस बीहड़ वन में रत्ना के आचार्य बाबा की देवदूत-सी आँखें सामने थीं—'सादगी तेरा आभूषण है और गहन आत्मबल तेरा सहयोगी। सुनंदा के दिए हुए संस्कार तेरे आयुध हैं। आधुनिकता का मृग-जल तुझे कभी नहीं भटका सकता, रत्ना। तू आज की सीता है, मेरी बच्ची। सारे दुःखों से मुक्ति की एक ही दिशा बतला रहा हूँ तुझे—स्वावलंबन। अपने बौद्धिक तप से समाज में अपना स्थान बना, रत्ना···बोल बेटी, ऐसा कर सकेगी तू?'

रत्ना ने दो टूक मना कर दिया था, 'मैं जैसी भी हूँ, ठीक हूँ। मुझे कहीं नहीं जाना।'

विनोद शंकर ने तरला देवी की मार्फत अपनी शिकायत भिजवाई थी, 'मैं तो बड़े भाई के समान हूँ। मुझसे कैसी लाज भला! रत्ना से कहो, वह सबके साथ बैठकर खाना खाए।'

तरला देवी उसे बलपूर्वक खाने की मेज तक ले आई थीं, 'तापस रहता तो कोई बात नहीं थी। दोनों जने इकट्ठे कमरे में बैठकर लंच-डिनर लेते।'

रत्ना बड़ी बारीकी से घर के सभी सदस्यों की बातें सुनती रही थी।

तरला देवी अपने मायकेवालों का जिक्र कर रही थी, 'हमारी दोनों भावजें अपनी-अपनी सखियों के साथ कुल्लू-मनाली, नैनीताल, गोवा, मुंबई—कहाँ-कहाँ नहीं घूम आईं और एक हम हैं कि···'

विनोद शंकर ने कैसी कुत्सित इशारेबाजी शुरू कर दी थी, 'अजी, आप ठहरीं सती-सावित्री का लेटेस्ट एडीशन; जहाँ विनोद शंकर होंगे वहीं तरला देवी होंगी न···अब हर कोई रत्ना की तरह साधुनी थोड़े ही बन जाएगा। तापस वहाँ और यह बेचारी यहाँ···न जाने किस तरह···'

तरला देवी की कुटिल हँसी में छिपा वह बाजारूपन—'कलियुग की सती-सावित्रियों को देखा कहाँ है तुमने!'

··· ··· ··· ···

'कुष्ठ रोगी पति को वेश्यालय के द्वार तक छोड़ आनेवाली, मृतक पति के प्राण वापस लौटाने के लिए यमराज से लोहा लेनेवाली सतियों का सतयुग कथा-कहानियों में भले दिखाई देता हो, ऐसा कुछ भी है नहीं।'

··· ··· ··· ···

'अलबत्ता, अपने पति की दलाली दुगुनी-चौगुनी करने के लिए सोसाइटी में एक-दूसरी से बढ़ा-चढ़ाकर अपने आपको पेश करनेवाली, अपनी शक्ल-सूरत के बल पर सबको मात देनेवाली औरतों का युग-जमाना है यह।'

विनोद शंकर की आँखें रक्त-लोलुप भेड़िए की आँखों में तब्दील हो गई थीं—

'तो यही बात विनोद विला की सबसे छोटी बहू रत्नाश्री को क्यों नहीं समझातीं आप? इनसे कहिए, जरा बन-सँवरकर रहें।'

··· ··· ··· ···

विनोद शंकर ने बड़ी बेशरमी से प्रस्ताव रखा था, 'कल हमारे मित्र बजरंगी बाबू का जन्मदिन है। करोड़पति हैं। हमारे कार्यालय के कई महत्त्वपूर्ण ठेके उन्हींके नाम हैं। उन्होंने घर भर को दावत दी है। रत्ना को तो विशे तौर पर आमंत्रित किया है।'

मंगला ठकुराइन ने दो-तीन दिनों में ही सबकुछ भाँप लिया था, 'सुनंदा भौजी, रीति-रिवाज ठीक नहीं है उस घर का।···न भोर के भजन-कीर्तन, न डूबती बेला की साँझ-बाती···। रत्ना की जेठानी का इस उमिर में ऐसा बनाव-सिंगार···। और उस घर के धिया-पूता···टी.भी. पर ऐसी गंदी फिल्में देखते हैं, आपस में वह धमाचौकड़ी मचाते हैं कि पूछो मत।···हम तो कहें, जैसा गाछ-बिरिछ वैसे ही फल···जहर मोहरें हैं सबके सब···'

रत्ना ने अपना गंतव्य स्थिर कर लिया था—

'आनंद भइया, आप एक टैक्सी लेकर अभी, इसी वक्त आ सकते हैं यहाँ··?'

'क्या बात है, रत्ना, सब कुशल तो है न?'

'आप आइए तो सही।'

सुलक्षणा ने विनोद शंकर को खुशखबरी दी थी, 'छोटी भाभी हमारे साथ पार्टी में चलने के लिए तैयार हो गई हैं, बड़े भइया।'

'सच! मुझे तो यकीन नहीं हो रहा कि वह इतनी जल्दी···'

'रत्ना भाभी ने अपने मुँह से कहा है। उनके लिए नीली बनारसी साड़ी निकाल आई हूँ मैं!'

विनोद शंकर सस्ता फिल्मी गीत गुनगुनाते स्नानघर की ओर मुड़ गए थे।

आनंद प्रकाश टैक्सी लेकर आए, तब तक पूरा परिवार इत्र-फुलेल उड़ेलता जलसे में शरीक होने के लिए हर तरह से प्रस्तुत था।

विनोद शंकर लपकते हुए बरामदे की ओर बढ़े थे।

'लगता है, बजरंगी बाबू की गाड़ी आ गई···सुलक्षणा, रत्ना से कहो, तैयार होकर जल्दी बाहर आ जाए।'

आनंद प्रकाश और उनके अंगरक्षक के गाड़ी से उतरते ही सबके चेहरे उतर गए थे।

'आप··? इस वक्त··यहाँ··?'

आनंद प्रकाश सीधे रत्ना के कमरे की

ओर बढ़ गए थे, 'रत्ना, दरवाजा खोल, बहन।'

तरला देवी की भौंहें कपाल पर चढ़ गई थीं, 'देखा आपने कलियुग की सती-सावित्री हमारी देवरानी को? खूब हकाया महारानी ने···वहाँ बजरंगी भाई साहब इसके स्वागत की पुरजोर तैयारी किए बैठे हैं और यहाँ यह···'

विनोद शंकर या परिवार का कोई दूसरा सदस्य मुँह खोलता, इसके पहले रत्ना ने अपना वज्र निर्णय सुना दिया था, 'मैं अपने घर लौट जाने के लिए विवश हूँ, जेठानीजी! मनुष्य देहधारी वासनाओं की प्रेतलीला पूरे एक वर्ष तक झेलती रही। मेरे संस्कारों को हमेशा के लिए ग्रहण लग जाए, इसके पहले मुझे यह निर्णय लेना ही था।'

तरला देवी एकबारगी तमकती हुई सामने आ गई थी, 'कँगले की बेटी, तेरी यह मजाल! चुपके से अपने इस भाईनुमा खसम को बुला लिया और सारा मालमत्ता अटैची में समेटकर···'

आनंद प्रकाश का क्रोधानल अपने चरम पर था, 'जबान सँभालकर बात कीजिए श्रीमती तरला देवी! वरना···'

रत्ना का स्वर पूर्ववत् सहज था, 'आनंद भइया, इन्हें अपने मन की शंकाएँ मिटा लेने दीजिए।'

खुले हुए सूटकेस की गहन तलाशी ली गई थी—सिंदूर की डिबिया, रुद्राक्ष की माला, उपनिषद्, गीता और दुर्गा सप्तशती, दो जोड़ी कपड़े और तापस की एक तसवीर।

पड़ोसियों की जमात में से एक वृद्ध पुरुष सामने आ गए थे, 'देखा आप लोगों ने! अपने संस्कार सहेजकर लिये जा रही है यह कन्या!···जाओ बिटिया, अपनी मुक्ति की सबसे सार्थक दिशा तय की है तुमने! तुम्हारे पिता मेरे बचपन के सहपाठी रह चुके हैं। इस घर में तुम्हारा विवाह सुनिश्चित करने के पहले एक बार पूछा होता उन्होंने···अपनी जानकारी में ऐसा अनर्थ कभी नहीं होने देता मैं!'

सुनंदा अवाक् थीं।

'इस तरह अचानक···'

··· ··· ··· ···

'सब ठीक तो है न, रत्ना?'
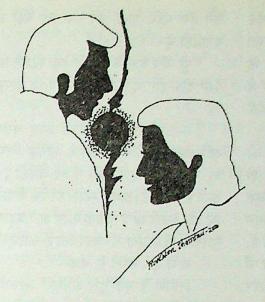
'अम्मा, मुझे भूख लगी है। कुछ भी खाने को दो न।'

'दो दिनों तक अन्न-जल का त्याग! यह कैसा प्रायश्चित्त था, मेरी बच्ची···?'

'तुम नहीं समझोगी, अम्मा!'

··· ··· ··· ···

'अच्छा सुनो, आचार्य बाबा क्या कहा करते हैं, भूल गईं—'दूषित परिवेश, दूषित अन्न-जल और पापात्माओं का संग-साथ—इनमें से एक भी पल्ले पड़ जाए तो शतकोटि नरक का दंड भुगतना होता है। मैंने तो अन्न-जल का त्याग भर किया न, आचार्य बाबा होते तो शायद उनके प्राणों पर बन आती।'

आनंद प्रकाश ने जाने के पहले हिदायत दी थी, 'चाचीजी, रत्ना से कुछ भी पूछकर उसे दुःखी नहीं करना है। वह जैसे रहना चाहे, रहे।'

☐

पूरे बारह वर्ष···पूरा एक कल्प···

न्यायाधीश के पद पर विराजमान रत्नाश्री से आनंद प्रकाश के नन्हे बेटे मनु ने प्रश्न किया था, 'बुआजी, तुम चोर को सजा देती हो न? तो सुनो, यह निमिषा की बच्ची मेरी सारी-की-सारी टॉफी हजम कर गई चोरी-छिपे। जरा बताना तो, इसके लिए कौन सी सजा ठीक होगी?'

निमिषा तुतलाती हुई रत्ना की गोद में छिप गई थी, 'बुआजी, भैया पहले ही मेरी पिट्टी-पिट्टी कर चुका है। अब आपके पास···'

रत्ना दोनों को गोद में सँभालती मुसकरा उठी थी, 'देखा भाभी, अब इन दोनों के लिए घर में भी एक इजलास लगानी पड़ेगी।'

काशी के सुप्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य सत्यनारायण शास्त्रीजी की बेटी अनुसूया भाभी कभी-कभार परिहास में कहा करती थीं, 'बात तो तब बने जब आप जज की कुरसी पर विराजमान हों और हमारे ननदोई कठघरे में खड़े दया की भीख माँग रहे हों!'

··· ··· ··· ···

'सच, आपकी जगह मैं होता न तो उम्रकैद की सजा पचास कोड़ों की मार के साथ सुनाती।'

अनुसूया से रत्ना ने कुछ भी नहीं छिपाना चाहा था, 'अपनी पत्नी की सुरक्षा, उसके मान-सम्मान के निर्वाह की कूवत जिसमें नहीं हो उस कापुरुष के साथ कोई भी बंधन कैसा, भाभी!'

अनुसूया भाभी की दलीलें अकसर आनंद और रत्ना दोनों को निरुत्तर कर देतीं, 'कुछ भी कहिए, दोष हमारे परिवार का भी कम नहीं था। न मन का मेल, न ही विचारों और संस्कारों का मेल। मैं कहती हूँ, ताऊजी और ताईजी—ये दोनों अतिशय भावुक प्राणी ठहरे। उनकी आँखें ननदोईजी का कोई भी दोष भाँप नहीं पाईं। लेकिन आप···? आपकी पुलिसिया शक-सुबहावाली बुद्धि को साँप सूँघ गया था क्या? घर में नौकर तक रखते हैं तो उसकी सात पुश्त के नाम-गोत्र का उच्चारण करवाते नहीं थकते—और रत्ना दीदी की जिंदगी का इतना बड़ा मोल लगाना था, तब आप लोगों की विवेक-बुद्धि घास चरने गई थी?'

आनंद प्रकाश की आँखें चाचा शिवप्रकाश और सुनंदा चाची के प्रति गहन अभियोग की वेदना से पूरित थीं, 'चाचाजी जब भी बातचीत करने गए, अकेले ही गए और सुनंदा चाची ने भी कभी कुछ नहीं···विवाह की तारीख तय हो गई तब कहीं···दोष मेरा भी था। मैं अपने विभागीय मामलों की जाँच में उलझा हुआ था। रत्ना ने कई बार बुलवा भेजा था, लेकिन···'

रत्नाश्री की सितकेशी अनुभूतियाँ कैशोर्य के अल्हड़पन से उमग उठी थीं, 'आपको पता है, अनुसूया भाभी, हमारी ननद सुलक्षणा के लिए साक्षात् कामदेव के अवतार बने हुए थे आनंद भैया। ऐसा पाठ पढ़ाया था हमारी जेठानी तरला देवी ने कि पूछो मत।'

आनंद प्रकाश अनायास भरे हुए मेघ की तरह गंभीर हो उठे थे, 'रत्ना, एक बात तो तुमसे बताना भूल ही गया था, बहन। ऋषिकेश से पंद्रह दिन पहले भेजी गई पद्मदेव नारायण की वह पाती—'यहाँ हम सब कुशलपूर्वक हैं, बिटिया। तेरी अम्मा पूरे गुरुकुल की मासी माँ बन बैठी है। सुनंदा यहाँ रहकर संतुष्ट है और स्वस्थ भी!

'शिवप्रकाशजी अंतर्मुखी ठहरे। उनका उच्च रक्तचाप यदा-कदा चिंता का विषय बन जाता है। लेकिन संतुलित आहार और ओषधि के नियमित सेवन का प्रभाव है—सबकुछ ठीक रहेगा।

'विधना के विधान की बानगी तो देख—तेरी ननद सुलक्षणा को उसके ससुरालवाले यहाँ के कुष्ठाश्रम में भरती कर गए हैं। सुनंदा ने उसे बुलवा भेजा था। अभी रोग अपनी प्रारंभिक दशा में है। सेवा और संवेदना साथ-साथ मिले तो उपचार सहज हो सकता है, अन्यथा···'

रत्नाश्री की आँखें शून्य में टँकी रह गई थीं—

कलकत्ता उच्च न्यायालय से एक महत्त्वपूर्ण मामले का निपटारा करके लौटते समय वातानुकूलित शयनयान के सामने किसकी प्रेतच्छाया उसके समक्ष थी।

साही के काँटों-से सीधे खड़े केश, बदरंग कुरता, चीकट पायजामा। प्लास्टिक का छोटा सा थैला बगल में दबाए वह छाया-मूर्ति···पाप के परिताप से धुँधली हो चुकी आँखों का वह असहाय भाव···

आनंद भइया और अनुसूया भाभी को कैसे बताती वह—

भविष्य निधि कार्यालय की बड़ी राशि का गबन किया था तापस ने। चंडीगढ़ की पुलिस उस तक पहुँच पाती, तब तक वह वहाँ से फरार हो चुका था···

पूरे पाँच वर्षों के बाद हावड़ा स्टेशन पर ऐसी दीन-हीन दशा में यूँ मिलना था तापस को···?

उन्हें स्टेशन तक छोड़ने आए वरीय अधिवक्ता कालीकिंकर सेन ने आगाह किया था, 'मैडम, जल्दी से डब्बे में आ जाइए। ट्रेन छूटने ही वाली है। हावड़ा स्टेशन पर ऐसे कँगलों की ओर देखती रहेंगी तो एक कदम आगे बढ़ाना मुश्किल हो जाएगा आपका। आइए-आइए!'

ठीक एक महीने के बाद—

निमिषा ने मुड़े-तुड़े अधखुले लिफाफे पर लिखी इबारत को पढ़ने का प्रयास किया था—'बुआजी, देखिए तो, किसी निपट गँवार की चिट्ठी मालूम पड़ रही है। आपका नाम भी ठीक से नहीं लिखा है बेचारे ने। होगा कोई दीन-दुखिया प्राणी! आपकी शरण में आकर शायद उसे भी त्राण मिल जाए!'

पत्र का एक-एक अक्षर अग्नि-शलाका बना हुआ था—

'बहुत बड़ा ओहदा पा लिया है न! जज साहिबा बन गई हो तुम! भला मुझ जैसे अति साधारण आदमी को पहचानने की जरूरत भी क्या है तुम्हें! तरला भाभी ठीक ही कहती हैं—घर-परिवार, विवाह—इन बंधनों में बँधनेवाली कभी भी नहीं थीं तुम!

'ठीक है—दोषी हूँ मैं, गबन किया है मैंने। तुम्हारी जगह दूसरी औरत होती तो बेदाग बचा लेती मुझे। एक बात ठीक से जान लो, जज साहिबा, मेरे मामले की सुनवाई जल्दी ही पूरी होने वाली है। बेदाग बच जाऊँगा मैं। हरजाने की रकम तो इतनी होगी जितने में तुम जैसी पाँच-सात औरतें एक साथ···'

इतनी अश्लील, इतनी कुत्सित भाषा···

अनुसूया भाभी का स्नेह-स्पर्श उन्हें चैतन्य कर गया था—'इस तरह कातर नहीं होते, ननदजी! मैं तो ज्योतिषी की बेटी हूँ। आपको अपने संस्कारों का अनुभव-सत्य बता रही हूँ। अनिष्टकारी ग्रहों और दुष्टों की संगति घुमा-फिराकर कष्ट देने के लिए ही होती है। क्रोध अथवा वेदना का अनुभव उसके लि[ए] होता है, जो मन के निकट होते हैं; जिन[का] परित्याग हो चुका उनके लिए कोई भी परि[ताप] क्यों···?'

··· ··· ··· ···

'अच्छा, सच बताइए तो ननदजी, आप[के] इजलास में ऐसे प्रपंची मनुष्य को खड़ा [कर] दिया जाए···आपके सामने कठघरे में वह आद[मी] खड़ा हो जिसके कारण आपकी यह दशा [हुई] है, तो आप क्या करेंगी?'

भारतीय दंड संहिता की न जाने कित[नी] ही धाराएँ रत्नाश्री के मस्तिष्क में एक स[ाथ] प्रवाहित होने लगी थीं। आचार्य पद्मदे[व] महाराज ने कहलवा भेजा था—'अपनी परंपरा[ओं] की मर्यादा का भान कभी नहीं भूले, बिटिया[!] तुमने उच्च शिक्षा पाई है। ज्ञान का तप दुर्[जन] को क्षमादान देने में ही फलित होता है। अनुसू[या] बहू के पत्र से पूरा प्रसंग हम लोगों को ज्ञात [हो] चुका है। शिवप्रकाशजी और सुनंदा का भी य[ही] विचार है।'

खचाखच भीड़ से भरा इजलास का व[ह] दिन···।

सरकारी वकील मधुरेंदु दत्त की जि[रह] पूरी हो चुकी थी···कड़े-से-कड़ा दं[ड] विधान···!

बचाव पक्ष की दलील सामने थी, 'मे[रा] मुवक्किल मानसिक रोग से त्रस्त एक लाचा[र] व्यक्ति है। विगत पाँच वर्षों से तापस ने अ[पने] किए पर कम पश्चात्ताप नहीं किया, ज[ज] साहिबा! उसकी दिमागी हालत को देख[ते] हुए···'

अनुसूया भाभी का धिक्कार, आनंद भइ[या] का सात्त्विक क्रोध, अम्मा की करुणा स[े भरी] आँखों का मौन चीत्कार···फैसला सुनाती हु[ई] रत्नाश्री की चेतना सबसे विलग आचार्य पद्मदे[व] महाराज की शास्ति से एकाकार हो चुकी थी—

निस्संदेह गहन पाप का भागी है य[ह] व्यक्ति! भारतीय दंड संहिता में कठोरतम स[जा] का प्रावधान है ऐसे व्यक्तियों के लिए! ज्ञा[न]

विपर्यय की दशा नहीं होती तो अदालत की ओर से इसके लिए कठोरतम दंड सुनिश्चित था। बौद्धिक अधोगति से युक्त चेतनाशून्य यह प्राणी आज की परिस्थिति में क्षमादान की ही पात्रता रखता है। अतएव…

माननीय उच्च न्यायालय के विशेष निर्देश पर तापस को मन:चिकित्सा केंद्र में रखा गया था। रत्नाश्री अपनी गाड़ी में बैठकर घर की ओर मुड़ने लगी थीं, तभी तरला देवी ने उन्हें घेर लिया था, 'वाह जज साहिबा, क्या खूब फैसला सुनाया आपने! अपने पति को पागल करार देते हुए चैन नहीं मिला तो उसके जिंदा नरक-भोग का पक्का इंतजाम करवा दिया। पतिव्रता हो तो आप जैसी!'

आनंद प्रकाश के इशारे पर महिला आरक्षी ने तरला देवी को खींचकर वहाँ से दूर हटा दिया था। गाड़ी में बैठी निमिषा का पूरा वजूद प्रश्न-विकल था, 'बुआजी, कौन थी वह औरत? उसने आपको इतना बुरा-भला कहा और आप चुपचाप…'

रत्नाश्री की मुँदी हुई पलकों में असह्य वेदना का सँभार था। निमिषा का कैशोर्य अनायास अभिभावक की भावभूमि में परिणत हो गया था, 'अरे बुआजी! आपकी देह तो बुखार से तप रही है। पापा, चलिए, सीधे घर चलें।'

अनुसूया भाभी की देख-रेख में निमिषा ने बुआ की सेवा का सारा दाय उठा लिया था, 'नहीं, महीने भर आपको पढ़ाई-लिखाई से दूर रहना होगा। अपनी कानूनी पोथियों से अलग, हमारे साथ। क्या समझीं आप?'

मनस्ताप की उसी अवधि में आचार्यजी का संदेश प्राप्त हुआ था—

'रत्नाश्री, ऋषिकेश में ज्ञान-कुंभ लगने वाला है। देश भर के तपी पुरुषों, सिद्धों, संतों का जमावड़ा…जैसे भी हो, कुछ दिनों के लिए मेरे पास आ जाओ। सत्संग भी रहेगा और तुम्हें देखने की सुनंदा की साध भी पूरी हो जाएगी।'

बड़ी-बूढ़ी बनी निमिषा ने ढेर सारी हिदायतें एक साथ दे डाली थीं, 'अकेली जा रही हैं, अपने सामान की देख-भाल ठीक से कर लेंगी न, बुआजी? और हाँ, भूलकर भी किसी छोटे स्टेशन पर उतरेंगी नहीं। वहाँ पहुँचते ही फोन जरूर करेंगी। जल्दी लौट आएँगी न, बुआजी?'

मुगलसराय स्टेशन पर किसकी प्रेतच्छाया थी वह…? खिड़की की सलाखों को दोनों मुट्ठियों में जकड़कर बेतहाशा चीत्कार करता वह नीम वहशी, चीकट चेहरा…

'मेरा क्या दोष था, रत्ना?…मेरे घर के संस्कारों ने मुझे इस दशा में पहुँचा दिया। विनोद शंकर भइया, तरला भाभी और तुम भी तो…क्या मेरी इस दशा के लिए थोड़ी सी भी जिम्मेदारी तुम्हारी नहीं है? तुमने मुझे टोका क्यों नहीं…मौन प्रत्याख्यान से पहले मुझे जबरन रोककर तो देखतीं…शायद मैं…

'मेरे माथे पर चोट का यह गहरा निशान देख रही हो, रत्ना! विनोद भइया ने मुझे दंडित किया था। घर को गिरवी रखने के बाद भी ऋण की पूरी राशि जमा नहीं कर पाए थे वे! कार्यालय की रकम हड़पने की स्कीम उन्होंने और तरला भाभी ने मिलकर बनाई थी, मेरी मनाही के बावजूद। तुम साथ होतीं तो इतनी बड़ी तबाही से बच सकता था मैं! अब भी वक्त है, रत्ना, बचा लो मुझे! जमीन-जायदाद का सर्वाधिकार चाहते हैं विनोद भइया! मुझे अस्पताल से ले आने के पीछे बात कुछ और थी। तरला भाभी भोजन में विष देकर…

'तुम सुन रही हो न, रत्ना?…'

अंगरक्षक रामपाल सिंह ने बलपूर्वक तापस को वहाँ से दूर हटा देना चाहा था। रत्नाश्री का स्वर ठहरे हुए जल की तरह शांत था, 'इन्हें डब्बे के भीतर ले आइए और इनके लिए एक टिकट…'

तापस की प्रसन्नता देखने लायक थी, 'मुझे अपने साथ ले चलोगी, रत्ना…ठीक…बहुत ठीक…! अब मजा आएगा। तरला भाभी अब मुझे खोज नहीं पाएँगी।'

… … … …

'अच्छा, बताओ तो, हम इस वक्त कहाँ जा रहे हैं?'

रामपाल सिंह की छठी इंद्रिय सचेष्ट थी—हो न हो, यह सिरफिरा आदमी…

उनकी प्रौढ़ दृष्टि में अभिभावकत्व उमग आया था, 'आप हमारे साथ ऋषिकेश जा रहे हैं। वहाँ दीदीजी के माता-पिता और इनके गुरुजी रहते हैं।'

'वे लोग मुझे सजा तो नहीं देंगे? रस्सियों में बाँधकर भूखा तो नहीं रखेंगे? बताओ न, रत्ना?'

पद्मदेव महाराज ने तत्क्षण उपचार प्रारंभ किया था, 'प्रायश्चित्त की सर्वाधिक करुण दशा से गुजर रहा है यह मनुष्य! आशा है, नए परिवेश में इसकी मनोदशा सुधरेगी।…धीरे-धीरे ठीक हो जाएगा।'

तापस की दशा अनायास बिगड़ गई थी—तेज ज्वर और सन्निपात की यंत्रणा के बीच उसका वह प्रलाप, 'काल कोठरी के द्वार खुल चुके हैं, रत्ना। मुझे बचा लो, मैं मरना नहीं चाहता। देखो, ये कौन लोग हैं—मुझे लेने आए हैं। कहा न, मैं नहीं जानेवाला!…रत्ना की दी हुई सजा काफी नहीं थी क्या…कौन हो, भाई, तुम लोग?'

आश्रम के चिकित्सकों ने अंतिम प्रयास किया था, 'गुरुदेव, रोग असाध्य था। शरीर की प्रतिरोधी शक्तियाँ नि:शेष हो चुकी थीं। ऐसी हालत में…'

रत्नाश्री ने एक वाक्य में अपनी बात पूरी की थी, 'आप आदेश दें, बाबा, इनकी अंत्येष्टि मुझे ही करनी है।'

तापस की रोग-जर्जर काया को निर्वाण के लिए प्रस्तुत करती रत्नाश्री की सूनी आँखों का दाह वयोवृद्ध आचार्य बाबा की सहन शक्ति से परे था, 'तुम्हारा दंड-विधान सर्वोपरि है, प्रभु! मेरी बिटिया को शक्ति दो। इस असह्य वेदना का भार आजीवन वहन करने की शक्ति…इत्यऽलम्…!'

□

टैगोर शिखर पथ,
मोराबादी, राँची

स्मरण

'मरणातिक्रमण पुरुषार्थ के कवि का यूँ चले जाना'

✍ गोविंद कुमार 'गुंजन'

जिस कविता में सिर्फ अतीत का स्मरण होता है वह हमें पलायन की ओर ले जा सकती है, जिसमें सिर्फ वर्तमान की हिमायत होगी वह अपनी परंपरा का गौरव खो देगी और जो सिर्फ भविष्योन्मुख होने का दावा करती है, वह भूमि को छोड़कर अधर में खड़े होने का दंभ भरती है। समय को समग्र रूप से अर्थात् उसके तीनों आयामों को एक साथ स्पर्श किए बिना एक कवि का समय-बोध अधूरा ही रहता है। श्रीकांत जोशी का कथन था, 'जब मुझे तीनों काल क्षणों को एक साथ छूना होता है, मैं अपनी जिंदगी को स्पर्श करता हूँ, यानी कविता लिखता हूँ।' सत्य उनका बीजाक्षर था। वह शब्द से आगे के कवि थे। कवि से भी बड़े वह एक इनसान थे। जिस तरह विद्युत् का चक्र लोहे में चुंबकत्व पैदा कर देता है उसी तरह वह अपने संपर्क में आनेवालों के भीतर आस्था और प्रेम की जीवंतता भर देते थे। २० जनवरी की अर्धरात्रि में अपने अध्ययनकक्ष की टेबल पर हमेशा की तरह वह लिखने-पढ़ने में व्यस्त थे, चिंतन और मनन की गहराइयों में डूबे हुए थे, उनके हाथों में उनकी कलम थी और वह इतने प्रसन्नचित्त और खोए हुए थे कि उन्हें पीठ पीछे दबे पाँव बिना आहट किए चली आई मृत्यु तक का एहसास नहीं हुआ। सिर्फ पाँच मिनट में सबकुछ समाप्त हो गया। टेबल पर पड़े पन्ने फड़फड़ाकर रह गए। उनपर 'शब्द वे लौटेंगे निश्चय' का विश्वास रखनेवाले कवि अब शब्दों की यात्रा को छोड़कर हमेशा के लिए जा चुका था। उनके बाद यह सवाल तो और भी अधिक चिंतनीय हो गया है कि अब—'प्रश्न कौन तोड़ेगा?'

उम्र के इकहत्तरवें वर्ष में भी वे सक्रिय थे। मैंने जब भी उन्हें देखा, अपने अध्ययनकक्ष की टेबल पर काम करते हुए ही देखा। 'पं. माखनलाल चतुर्वेदी ग्रंथावली' का दस खंडों में सुकुशल और प्रामाणिक संपादन उनके द्वारा किया हुआ ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य है। आज सारे भारत में माखनलालजी के शोधार्थियों के लिए वह आधारभूत संदर्भ ग्रंथ है। उनकी मुख्य कृतियाँ हैं—'प्रश्न कौन तोड़ेगा' (१९६८), 'शब्द से आगे' (१९७७), 'किसी सभी तारीख को' (१९८२) काव्य संग्रह। अन्य कृतियाँ—'कहते-कहते' (लेख-संस्मरण आदि), सोच-समझ (चिंतन एवं संवाद) एवं 'त्रयी'। उन्होंने माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य रचनाओं का संग्रह 'मरण ज्वर', 'माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा पुरुष', 'माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली' (दस खंड) एवं 'माखनलाल चतुर्वेदी : एक मोनोग्राफ' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन भी किया।

अपनी मृत्यु से मात्र दो दिन पहले सारी रात बैठकर उन्होंने अपने प्रशंसकों-जिज्ञासुओं और रचनाकारों के पत्रों के उत्तर देते हुए बहुत सारे पत्र लिखे थे। वह अपने पत्रों का उत्तर देने में बड़े सजग थे। स्वयं भी दूसरों को पत्र लिखा करते थे। उनकी दृष्टि में छोटे और बड़े का कोई भेदभाव नहीं था। नई पीढ़ी का वह मान बढ़ाने में कभी कोताही नहीं करते थे। निरंतर चिंतन की उनकी परिधि में समूचे विश्व की चिंता थी, तो वे अपने नगर की छोटी-से-छोटी समस्या के प्रति भी सजग थे। वे एक सच्चे शिक्षक थे और आजीवन उन्होंने एक शिक्षक की गरिमा को निभाया।

रात को लगभग दो बजे मंडलेकरजी ने जब मुझे फोन पर उनके निधन का समाचार बताया तो मैं हतप्रभ हो उठा। यह नितांत अविश्वसनीय सत्य था, जिसे स्वीकार करने के लिए हम सब विवश थे। 'अपने-अपने अवसान के पहले' वह मेरी आगामी पुस्तक की पांडुलिपि पढ़ रहे और भूमिका के लिए कुछ नोट्स भी ले रहे थे; किंतु काल ने उन्हें मेरे दुर्भाग्य से इस बात की इजाजत नहीं दी।

श्रीकांत जोशी उन बिरले रचनाकारों में से एक थे जिनका मूल्यांकन करने में उनका समय उनसे पीछे रह गया। चूँकि वे सभी प्रकार की गुटबंदियों-खेमेबाजियों से बहुत दूर थे, इसलिए भी हिंदी समीक्षा अपनी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकी; किंतु वे जिस ऊँचाई पर थे वहाँ टोलियों में कैद बौनी समीक्षाओं के प्रमाण-पत्रों की भी कोई आवश्यकता नहीं थी। वह अपने पैरों की तकलीफ के कारण चलने-फिरने में परेशानी महसूस करते थे; किंतु फिर भी उनकी सक्रियता में कोई कमी नहीं आई। वह आस्था से लबालब भरे इनसान थे, जिनकी दृष्टि में देशकाल का समूचा परिदृश्य था। उनका चिंतन बहुत साफ और ठोस था। बुद्धिजीवी वर्ग में व्याप्त नारेबाज पाखंड पर बड़ा ही सात्त्विक व्यंग्य करते हुए अपने अंतिम काव्य संग्रह 'सत्य वहाँ सुरक्षित है' में उन्होंने कहा था—'सुबह अपनी नजर नीची थी और शाम को भी/क्या बात है, भाई?

'सुबह पढ़ लिये थे अखबार/शाम को देर रात तक/वे ही जल्लाद खबरें/दूरदर्शन ने दिखाई बहुत/धोता हूँ आँखों को/मगर नहीं होती धुलाई—न सकती है खामोशियों में गिरफ्तार रुलाई।' इसपर वे कहते हैं—'जरूरत से कुछ अधिक बहक जाता हूँ भावनाओं में/अरे मरता वही है जिसकी मौत आई'/'यह तो ठीक कहा आपने/क्या आप भी बुद्धिजीवी हैं भाई?' श्रीकांत जोशी शब्दों के प्रति बहुत सजग और जिम्मेदार व्यवहार करते थे। भारतीय ज्ञानपीठ से आए उनके संग्रह 'शब्द वे लौटेंगे निश्चय' और इसके पूर्व उनके दूसरे संग्रह 'शब्द से आगे' की कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि वह शब्दों का महत्त्व और उसकी सीमा दोनों सत्यों का साक्षात्कार कर चुके थे। वह बीती हुई पीढ़ी का जीवंत स्मृतिकोश थे। उनके पास बैठते ही हमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पंतजी, निराला, महादेवी, प्रसाद, अमृतलाल नागर, शिवमंगल सिंह 'सुमन', नामवर सिंह, धनंजय वर्मा, देवीशंकर अवस्थी, अज्ञेयजी, बाबा नागार्जुन, धर्मवीर भारती, बालकवि बैरागी, मुक्तिबोध, चंद्रकांत देवताले, शरद जोशी, हरिशंकर परसाई, रामवृक्ष बेनीपुरी से लेकर आज के युवतर और नवीन रचनाकारों तक के व्यक्तित्व और उनके संस्मरणों के अछूते प्रसंग जीवंत हो उठते थे।

श्री जोशी का सौंदर्य-बोध बड़ा गहरा था। प्रकृति उनके लिए पाठशाला थी। प्रकृति की पाठशाला से वह जीवन और सौंदर्य का पाठ पढ़ते थे। वह उन रचनाकारों में से थे जो पीढ़ियों के निर्माण किया करते हैं। उनके पास जाना कुछ नया पाना होता था। वह ताजगी से भरे कभी न मुरझानेवाले पुरुष थे; क्योंकि उनके भीतर कविता का अजस्र रस प्रवाह प्रवाहित होता रहता था। वह सच्चे आस्तिक थे; किंतु कभी उनकी आस्तिकता दिखावटी नहीं थी। यह भीतरी आस्था से निकली आस्तिकता थी, जिससे मनुष्यता गौरवान्वित हुआ करती है। वह कहते थे, 'जीवन ही पुरुष है और मरणातिक्रमण पुरुषार्थ।'

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा सन् १९६८ में उन्हें 'निराला पुरस्कार' प्रदान किया गया था। उन्हें मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् के 'माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार' (१९७७) से भी नवाजा गया। इसके अलावा उन्हें 'भवभूति अलंकरण', 'श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान', 'अक्षर आदित्य सम्मान' भी प्रदान किया गया था। किंतु वे इन सब पुरस्कारों-सम्मानों से बहुत ऊपर थे। वह उनमें से थे जिन्हें पाकर सम्मान स्वयं सम्मानित हुआ करते हैं।

□

'वृंदावन' ६३, नाकोड़ा नगर,
खंडवा-४५०००१

साहित्य अमृत (मासिक)

(फॉर्म नं. ४, नियम ८ के अनुसार स्वामित्व संबंधी विवरण)

समाचार-पत्र का नाम	:	साहित्य अमृत
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
भाषा जिसमें प्रकाशित होनी है	:	हिंदी
प्रकाशन स्थान	:	४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२
संपादक का नाम	:	विद्यानिवास मिश्र
नागरिकता व पता	:	भारतीय, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२
प्रकाशक का नाम	:	श्यामसुंदर
नागरिकता व पता	:	भारतीय, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२
मुद्रक का नाम व पता	:	ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार या हिस्सेदार हों	:	श्यामसुंदर, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२

मैं, श्यामसुंदर, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार दिए गए विवरण सत्य हैं।

नई दिल्ली, २८ फरवरी, २००१ — श्यामसुंदर

कुछ अचीन्ही, अनजानी भारतीय लघुचित्र शैलियाँ

✍ नर्मदाप्रसाद उपाध्याय

कलाकार पॉलक्ली ने कहा था कि कला कृतित्व की मुसकान है। मैं उनके इस विचार को भारतीय परंपरा के परिप्रेक्ष्य में यह कहते हुए व्यक्त करना चाहता हूँ कि कला केवल कृतित्व की मुसकान भर नहीं है, बल्कि वह नृत्य, संगीत व गायन जैसे उन समस्त अनुशासनों का भी समन्वित रूप से प्रतिनिधित्व करती है, जो मानवीय संवेदना और चेतना से उपजते हैं। भारतीय मनीषा कृतित्व को सीमित नहीं बल्कि विस्तारित रूप में देखती है। समग्रता उसकी आत्मा है। भारतीय कला-दर्शन के संबंध में कुछ अधिक कहना विषयांतर होगा; किंतु मैं यह अवश्य कहना चाहूँगा कि भारतीय कला का उद्देश्य यदि काम-लीलाओं का अंकन भी रहा है तो वह भी कहीं-न-कहीं गहरे आध्यात्मिक-बोध से उपजा है। ओढ़ी हुई नकली नैतिकता में भारतीय कला-दर्शन का कभी विश्वास नहीं रहा तथा इस दर्शन की धारा वेदों से शंकर तक, विवेकानंद से श्रीअरविंद तथा डॉ. आनंदकुमार स्वामी तक निरंतर प्रवहमान रही है। भारतीय चिंतन के उषाकाल से लेकर आज तक जो कुछ भी लिखित और वाचिक रूप में उपलब्ध है, वह विभिन्न अनुशासनों के रूप में सुरक्षित है और उसकी अपनी ऐसी गरिमामय परंपरा है, जो पूरे विश्व को अनुप्राणित करती रही है तथा करती रहेगी। मैं अपने साथ इसी परंपरा के कुछ ऐसे सूत्र साथ लाया हूँ, जो इस तथ्य के साक्षी हैं कि भारत के विभिन्न अंचलों में उत्तर-मध्यकाल में ऐसी लघुचित्र शैलियाँ भी जनमी थीं, जिन्हें संभवत: कोई राज्याश्रय प्राप्त नहीं हुआ, जो कलाकारों के समर्पण भाव से जनमीं, जो उनकी अडिग आस्था की अभिव्यक्ति बनीं और जिन्होंने यह सिद्ध किया कि कलाकार का भाव ही सर्वोपरि है तथा यही भाव भारत की सर्जन परंपरा को परिभाषित करता है। इस अवसर पर मैं आपको दिखाने के लिए अपने साथ छह-सात सी.डी. लाया हूँ, ऐसे अभी तक अचीन्हे लघुचित्रों की तसवीरें लाया हूँ तथा इनसे संबंधित अपनी पांडुलिपियाँ भी लाया हूँ, ताकि आप समग्रता में इन लघुचित्रों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकें। मैं कैनबरा में गेयर-एंडरसन संग्रह के चित्रों का अध्ययन करने के लिए कुछ दिन रुकूँगा, इसलिए मेरा आपसे यह भी निवेदन है कि आप समय के सीमित रहने के संबंध में चिंतित न हों तथा मुझसे चर्चा करने के लिए संकोच भी अनुभव न करें। मैं आपसे खुले मन से चर्चा कर अपने आपको भी समृद्ध करना चाहता हूँ; क्योंकि मैं मानता हूँ कि मुझे अभी आप जैसे मनीषियों और प्रतिभा पुरुषों से बहुत कुछ सीखना है और अपने देश जाकर आपसे प्राप्त मौलिक विचारों के माध्यम से कुछ नया खोजना और रचना है।

इससे पहले कि मैं इन अचीन्ही लघुचित्र शैलियों के संबंध में आपसे चर्चा करूँ, मैं अपने कुछ ऐसे निष्कर्षों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, जो मेरे पिछले पच्चीस वर्षों के अध्ययन के परिणाम कहे जा सकते हैं। मैं चाहूँगा कि आप जैसे विद्वान्, मनीषी अपनी प्रतिक्रियाओं से मुझे अवश्य अवगत कराएँ।

सबसे पहला निष्कर्ष तो यह है कि बीती शताब्दी में केवल उन लघुचित्र शैलियों के संबंध में खोज और शोध होती रही है, जो मध्यकाल के विभिन्न कालखंडों में राज्याश्रयों में फली-फूली। बीती शती ने मनोरम, बारीक, भव्य और आभिजात्य शैलियों के अध्ययन को गति देती है। मेरा मानना है कि बीती शताब्दी में उन लोक-शैलियों का अध्ययन नहीं के बराबर हुआ, जिनका अपना निजस्व है, जिनकी अपनी मौलिक विशिष्टताएँ हैं और जो कलाकार के समर्पण भाव की देन हैं। ऐसी शैलियाँ हैं जिनमें भले भव्यता, बारीकी और आभिजात्य न हो, लेकिन जिनमें अपने लोक का सहज चित्रण है, जिनमें स्थानीय रंगों का प्रयोग किया गया है तथा जिनमें विषय के अंकन का महत्त्व है, बजाय इसके कि विषय के आस-पास के परिवेश का भव्य अंकन किया जाए। इन शैलियों में उन विषयों और प्रसंगों का चित्रण किया गया है, जो विषय और प्रसंग राज्याश्रयों में पनपी शैलियों में रूपायित किए गए। इन शैलियों के चित्रकार यश, प्रशंसा या पुरस्कार के आकांक्षी नहीं थे। लोक-शैलियों से मेरा तात्पर्य आंचलिक चित्रकला से नहीं है, बल्कि ऐसी उत्तर-मध्यकालीन लघुचित्र परंपरा में बनाए गए चित्रों से संबंधित शैलियों से है, जो विभिन्न कालखंडों में विभिन्न अंचलों में पनपीं और जिनपर अपने आस-पास के परिवेश और परंपराओं ने प्रभाव डाला। इन चित्र शैलियों के संदर्भ में मैं प्रकाश डालूँगा तथा आपसे अपने प्रवास के दौरान विस्तार से चर्चा भी करना चाहूँगा।

मेरा दूसरा निष्कर्ष यह है कि बीसवीं शताब्दी में जिन भारतीय लघुचित्रों का अध्ययन हुआ है, वह अध्ययन एकांगी है। एकांगी से मेरा आशय यह है कि कला मनीषियों ने इन लघुचित्रों के तकनीकी पक्ष का तो गहन अध्ययन किया, लेकिन इन लघुचित्रों के मानस को वे नहीं पढ़ पाए। 'गीत-गोविंद', 'रामायण' और 'रसिक-प्रिया' जैसे ग्रंथों को आधार बनाकर जो लघुचित्र बने, उनकी व्याख्या में 'गीत-गोविंद', 'रामायण' और 'रसिक-प्रिया' में समाविष्ट भाव रूप कहीं परिलक्षित नहीं होता। 'गीत-गोविंद' में समाया राधा का अद्भुत समर्पण भाव जो चित्रों में रूपायित किया है, उस भाव की व्याख्या नहीं हो पाई। उदाहरण के

में, काँगड़ा कलम के उस बहुप्रशंसित लघुचित्र की चर्चा करें, जिसमें राधा-माधव का वास परिवर्तन दरशाया गया है। 'गीत-गोविंद' की अंतिम अष्टपदी पर आधारित इस लघुचित्र में कृष्ण राधा को अपना मोर मुकुट पहना रहे हैं, अपना पीतांबर ओढ़ा रहे हैं और अपने वस्त्रों से उन्हें सज्जित कर रहे हैं। 'गीत-गोविंद' की अंतिम अष्टपदी का यह भाव रूपायन है। राधा और कृष्ण का जब पूर्ण मिलन हो जाता है तब भोर में राधा का कृष्ण से यही आग्रह रहता है कि मैं अब कृष्णमय हो गई और कृष्ण राधामय, इसलिए मुझे मेरे वे वस्त्र मत पहनाओ, जो मिलन के पूर्व मेरी पहचान थे; मुझे अपने वस्त्र पहनाओ, क्योंकि अब मैं राधा नहीं रही। मेरा मानना है कि इन चित्रों के भावपक्ष का भी उसी तरह अध्ययन होना चाहिए, जैसाकि इन चित्रों के तकनीकी पक्ष का किया गया है। यह इसलिए जरूरी है, क्योंकि बिना इस भावपक्ष को जाने चित्रकार की मानसिकता को नहीं जाना जा सकेगा। पश्चिम के चित्रकारों के संबंध में यह प्रयास किया गया है कि उनकी उस मानसिकता का अध्ययन किया जाय जिस मानसिकता में रहते उन्होंने चित्रांकन का कार्य संपन्न किया। विंशी, केरेवेग्यो, अल्ग्रेको, वॉल्जाक, रेंब्राँ, विलियम ब्लैक, डेलॉक्राक्स, मैनेट, मॉण्ट, वॉन गॉग तथा पाब्लो, पिकासो से लेकर पॉल क्ली, मांड्रेन, अर्नेस्ट, पोलॉक तथा रिचर्ड हेमिल्टन तक जो चित्रांकन की परंपरा चली आई उसमें इन चितेरों के मानस को पढ़ने की कोशिश विद्यमान रही है। उदाहरण के तौर पर, पिकासो के क्यूबिज्म पर जब अध्ययन आरंभ हुआ तो पिकासो की जीवन-शैली के विभिन्न प्रसंगों, उसके द्वारा दिए गए उद्धरणों, उसके जीवन के उतार-चढ़ाव की घटनाओं का विस्तार से विश्लेषण हुआ और यह कोशिश की गई कि पिकासो की उस मानसिकता का अध्ययन किया जाय जिस मानसिकता में रहकर उसने चित्र बनाए। इसी तरह वॉन गॉग की आत्महत्या जिस कुंठा से जनमी थी, उसे उसके चित्रों में खोजने की कोशिश की गई। मैं इस तथ्य पर जोर नहीं दूँगा कि चितेरों के जीवन की निजी घटनाओं से उपजी मानसिकता का विश्लेषण हो, क्योंकि भारतीय लघुचित्रों के संदर्भ में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारतीय चितेरों ने जिन लघुचित्रों को बनाया है, उनपर उसके निजी जीवन की छाप नहीं के बराबर है। इसलिए कि उसके बनाए लघुचित्रों में उसकी निजता अभिव्यक्त नहीं होती, अभिव्यक्त होती है तो समग्रता और वह विषय, प्रसंग, व्यक्ति या ईश्वर, जिसके चित्रण के प्रति वह एकनिष्ठ भाव से समर्पित रहा। मेरा मानना है कि भारतीय लघुचित्रों के संदर्भ में इस एकनिष्ठ समर्पण भाव को पहचानने की कोशिश नहीं के बराबर हुई और निश्चित ही चितेरे के उदात्त मानस को नहीं पढ़ा जा सका।

मेरे दूसरे निष्कर्ष पर अवलंबित मेरा तीसरा निष्कर्ष है। वह यह कि भारतीय लघुचित्रों के संदर्भ में साहित्य और कला को जोड़कर अध्ययन किया जाना चाहिए था, जो बीती शताब्दी में नहीं किया गया। साहित्य और कला को इस तरह बाँट दिया गया कि यह लगने लगा जैसे इन दोनों के बीच कोई अंतस्संबंध है ही नहीं और इन दोनों से संबद्ध तथा उपजे ये इतने अनुशासन हैं कि वे एक-दूसरे से पृथक् हो जाने के लिए मजबूर हैं। अंत:अनुशासिक अध्ययन की बातें तो हुईं, लेकिन अध्ययन नहीं हुआ। एक अनुशासन से दूसरे अनुशासन में झाँकने की कोशिश नहीं हुई। मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, स्थापत्य और शिल्पकला जैसे अनुशासन एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं; लेकिन वे पृथक् कर दिए गए। ये समस्त अनुशासन वाङ्मय की देन हैं। हुआ यह कि वाङ्मय को भी तरह-तरह से विभाजित कर दिया गया और इसी तरह कला को भी न जाने कितने हिस्सों में बाँट दिया गया। अध्ययन करने की दृष्टि से, माइक्रो लेवल एक्जामिनेशन या सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर अध्ययन की प्रवृत्ति विकसित हुई। उसका विकसित होना कोई बुरी बात नहीं थी, बुरी बात थी तो वह यह कि इस पद्धति ने समग्रता के भाव को तिरोहित ही कर दिया। दृष्टि सूक्ष्म होने के नाम पर संकीर्ण हो गई। विकास यदि हुआ है तो उसका अध्ययन होना ही चाहिए; लेकिन इस अध्ययन के समय यह सावधानी बरती जानी बेहद जरूरी है कि वह अध्ययन अपनी जड़ों से कटकर न पनपने लगे। उसका परिणाम न तो स्वाभाविक होगा और न ही दिशासूचक। इसलिए साहित्य और कला के अंतस्संबंधों की बुनियाद पर ही भारतीय लघुचित्रों का अध्ययन किया जाना चाहिए था, जो नहीं किया गया और जो इक्कीसवीं शताब्दी के कलाविदों के लिए चुनौती है।

मेरा चौथा निष्कर्ष यह है कि भारतीय लघुचित्रों के अध्ययन के दौरान अकादमिक स्तर की अत्यधिक बहस विद्वानों के बीच शुरू हुई, जिसका परिणाम विभिन्न शैलियों पर लिखी गई पुस्तकें हैं, बनारस और मुंबई जैसे स्कूल हैं, जो अपनी-अपनी मान्यताओं के बारे में रूढ़ हैं, खेमों में बँटे हुए विद्वान् हैं तथा विभिन्न शैलियों और उप-शैलियों के कालक्रम के अनुसार अपने-अपने ढंग से किए गए विभाजन हैं। इसका सबसे प्रासंगिक उदाहरण बूँदी शैली है, जिसे लाल और पीले काल में बाँटा गया है। इस अकादमिक बहस ने लोक को सार्थक रूप में कुछ नहीं सौंपा, बल्कि लोक से उन लघुचित्रों को बहुत दूर कर दिया, जो अभिन्न रूप से लोक से जुड़े थे या लोक की ही देन थे। मैं यह नहीं कहता कि अकादमिक बहस नहीं होना चाहिए। वह होना चाहिए, इसलिए कि इतिहास का सच सामने आए; लेकिन यह सच जिनके सामने आना चाहिए उन्हें इस सच को सामने लाने की प्रक्रिया के कारण इस सच को जानने से अनभिज्ञ हो जाना पड़ा। यह भारतीय लघुचित्रों के संदर्भ में बीती शताब्दी की एक बड़ी विडंबना है। भारतीय लघुचित्र उन विषयों, प्रसंगों, घटनाओं तथा व्यक्तियों पर आधारित है, जो सीधे भारतीय चेतना में बसे हुए हैं। इसलिए ये कलाकार की ऐसी निजी अभिव्यक्ति नहीं हैं, जिसका अर्थ बहुत सीमित रूप में समझा जाता हो; लेकिन हुआ यह कि इन चित्रों के संबंध में भारतीय जनमानस प्राय: अनभिज्ञ ही रहा। ज्यादातर लघुचित्र विदेशी संग्रहालयों में चले गए, व्यक्तिगत विदेशी संग्रहों में चले गए और उन लोगों के हाथों में चले गए जिनके लिए ये लघुचित्र सिर्फ पुरावस्तु के रूप में अपना आभिजात्य प्रदर्शित करने के उपादान थे। भारत में जो चित्र रहे, वे संग्रहालयों और व्यक्तिगत संग्रहों की शोभा बने रहे, विद्वानों की बहस का विषय बने रहे। व्यावसायिक वस्तु के रूप में एक हाथ से दूसरे

हाथ में आते-जाते रहे और प्रदर्शनियों में भी हमारी परंपरा के प्रतिनिधि के रूप में प्रदर्शित किए जाते रहे, जिनके बारे में आम आदमी को पूरी जानकारी नहीं दी गई। आज भी इस स्थिति में कोई बदलाव नहीं है। यदि इन लघुचित्रों को लेकर समाज के बीच सार्थक संवाद के साथ जाया जाता तो निश्चित ही परिदृश्य कुछ दूसरा होता। समाज इस धरोहर के बारे में बड़ी रुचि के साथ जानने की कोशिश करता; क्योंकि यह धरोहर उसीके बीच की थी, उसकी ही देन थी तथा इस धरोहर को दो सौ से तीन सौ वर्षों तक समाज ही सहेजता रहा था।

मेरा पाँचवाँ और अंतिम निष्कर्ष यह है कि भारतीय लघुचित्रों का परंपरा-पथ बड़ा सहज दृश्यमान है तथा इसमें विकास के साथ-साथ परिष्कार की प्रक्रिया भी निरंतर विद्यमान रही है; किंतु बीसवीं शताब्दी का अध्ययन इस प्रक्रिया को उसके पूर्ण परिप्रेक्ष्य में प्रकट नहीं करता। मुगल कलम के मुसव्विर जब राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में गए तो उन्होंने अपना तादात्म्य परिवेश के साथ स्थापित किया तथा इस तादात्म्य को स्थापित करने के दौरान उन्होंने स्वयं को समृद्ध किया और परिष्कृत भी। उनके संपर्क में जो स्थानीय कलाकार आए, उन्हें मुगल कलम की चमत्कारिक बारीकी की विरासत सहज मिली। परिणाम यह हुआ कि जो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चित्र बने, वे जहाँ एक ओर मुगल कलम के विकास की कहानी कहते थे वहीं दूसरी ओर देशज भाव को भी अभिव्यक्त करते थे—और यही अभिव्यक्ति वास्तव में लघुचित्रों के रूपायन का परिष्कार था। कलाविदों ने इस दृष्टि से इस परंपरा को बीती सदी में नहीं आँका।

मेरे ये पाँचों निष्कर्ष प्रमाणों के आधार पर भी पुष्ट होते हैं। मैं विस्तार से एक-एक निष्कर्ष को आधार बनाते हुए अपना कथन आपके सामने रखूँगा। निश्चय ही यह सीमित समय की परिधि में समेटा जा सकनेवाला प्रसंग नहीं है, न ही ऐसा प्रसंग है कि जिसमें अनवरत व्याख्यान देते हुए विषय के बारे में प्रमाण गिनाए जाते रहें। मेरी कोशिश यह होगी कि मैं संवाद को माध्यम के रूप में प्रयुक्त करूँ। आप लोगों से जब संवाद का पुल बन जाएगा तब कहीं मैं बेहतर ढंग से अपनी बात आपके सामने रख सकूँगा। संवाद के कारण आपके दृष्टिकोण भी तत्काल मेरे सामने आते रहेंगे, आपकी जिज्ञासाएँ सामने आएँगी, मेरे उत्तर आप तक पहुँचेंगे, फिर आपकी प्रतिक्रियाएँ मेरे सामने आएँगी—और इस तरह यह सिलसिला चलेगा, जो मेरी राय में किसी अंतिम परिणाम तक पहुँचाएगा, हमारी सोच को कहीं परिणति देगा और इस तरह एक नई दिशा की ओर यात्रा बढ़ेगी।

मेरा यह कतई दावा नहीं है कि मैं जो कह रहा हूँ वह अंतिम रूप से सही है, जिसे हम भारतीय ब्रह्मवाक्य कहते हैं। मैं जो कह रहा हूँ, वह मेरे अपने नतीजे हैं। मैं यह कतई नहीं चाहूँगा कि आप जैसे भारतीय कला के मनीषी इन नतीजों से सहमत हो जाएँ; बल्कि चाहूँगा यह कि आपकी जितनी असहमतियाँ हो सकती हैं, वे सब व्यक्त हों, ताकि मैं कोशिश करूँ कि इन असहमतियों के बीच में कोई नया बोध, नई दिशा पा सकूँ। मैं यह बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि असहमतियों का स्वाभाविक रूप से बड़ा मुखर होगा; क्योंकि मैं लीक से हटकर अ निष्कर्ष, अपनी स्थापनाएँ रख रहा हूँ। वह इसलिए मुखर होगा, क्यों भारतीय लघुचित्रों के संबंध में पश्चिम के मनीषियों ने बड़ी गहरा साथ विचार किया है और अपने अध्ययन के दौरान इस विचार समृद्ध हुआ हूँ, साथ ही मुझे इस विचार के विभिन्न आयामों ने प्रेरि किया है कि मैं जहाँ कहीं असहमत हूँ या इस विचार में कोई नया अ पाता हूँ, तो उसे अपने ढंग से व्यक्त भी करूँ। मैं यह मानता हूँ पश्चिम के कला-दर्शन और भारतीय कला-दर्शन में मौलिक भिन्नता और ये भिन्नताएँ परिवेशजन्य तथा परिस्थितिजन्य हैं। इसलिए यदि क दर्शन के धरातल भिन्न होंगे तो स्थापनाएँ भी भिन्न होंगी। इस तथ्य ध्यान में रखते हुए भी जब कभी पश्चिम के कला मनीषियों की भा लघुचित्र संबंधी अवधारणाओं के संबंध में मैंने विचार किया है तब यह चौंकानेवाला तथ्य सामने आया है कि पश्चिम के कला म भारतीय लघुचित्रों के अध्ययन के समय इस बारे में जागरूक रहे हैं। मुझे यह भी अनुभव हुआ है कि उन्होंने भले ही अनुवाद के स्त कोशिश की, लेकिन यह कोशिश की है कि वे इन चित्रों के संबं उपयुक्त संदर्भ दे सकें। बात इससे आगे जाने की थी, जिसके संबं मैंने संकेत किया है; लेकिन वह बात और आगे नहीं जा पाई, क्यों उसकी दिशा परिवर्तित हो गई और भाव अध्ययन का क्षेत्र पर्याप्त त विस्तारित नहीं हो पाया।

इन निष्कर्षों के बारे में विस्तार से बातें करने के पूर्व मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि सूत्र रूप में भारतीय लघुचित्रों के संदर्भ में इस तथ्य से भिज्ञ हो लें कि यद्यपि ये लघुचित्र अपने आपमें बहुआ संसार को समेटे हुए हैं, किंतु वे बार-बार संसार को चित्रित करते हु दैवीय-बोध को अपने आधार तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित करते रहे। यह दैवीय बोध प्रेम के संदर्भ में 'गीत-गोविंद' के रूपायनों में सजीव से मुखर हो उठा है। यह दैवीय-बोध बहुधा कुतूहल का विषय रहा इसलिए कि दैवीय अनुभवों की जितनी समृद्ध निधि भारतीय चेत विद्यमान रही है उतनी संभवतः वह पश्चिम की चेतना में नहीं रही। दैवीय-बोध की एक बड़ी विशेषता यह है कि यह कहीं से भी कृत्रि ओढ़ा हुआ नहीं है। यह भारतीय कला के संदर्भ में कहीं मान क्षमताओं का अतिक्रमण नहीं करता, बल्कि इसके विपरीत मानवी पाने के कारण उसकी नैसर्गिक गरिमा खिल उठती है।*

संभागीय उपायुक्त वाणिज्यि
भरतपुरी (प्राधिकरण भ
देवास रोड, उ

* १८ दिसंबर, २००० को नेशनल गैलरी ऑफ ऑस्ट्रेलिया में दिया गया व्याख्

कविताएँ

महेंद्र भटनागर

संघर्ष

घुटन, बेहद घुटन है!
होंठ···/हाथ···/पैर
निष्क्रिय बद्ध
जन-जन क्षुब्ध···/क्रुद्ध!

प्राण-हर
आतंक-ही-आतंक
है परिव्याप्त
दिशाओं में/हवाओं में!
इस असह वातावरण को
बदलना
जरूरी है!
इनसानियत को
बचाने के लिए
हर आदमी का अब सँभलना
जरूरी है!

जलन, बेहद जलन है,
तपन, बेहद तपन है!

हर क्षितिज
गहरे धुएँ से है घिरा
आग···
शोले उगलती आग,
लहराती
आकाश छूतीं अग्नि लपटें।
इनको बुझाना
जरूरी है!

□

जीवन

हर आगत पल का
स्वागत है!
मेरे हाथ पकड़
उठता है दिन
मेरे कंधों पर चढ़
बढ़ता है दिन,
मेरे मन से
अभिनव रचना
करता है दिन,
मेरे तन से
सृष्टि नई
गढ़ता है दिन,
लड़ मेरे बल पर
जीता है दिन,
क्षण-क्षण मेरे जीने पर
जीता है दिन,
मेरी गति से
सार्थक होता काल अमर,
मैं ही हूँ
अविजित अविराम समर,
मेरे सम्मुख हर
पर्वत-बाधा नत है,

हर आगामी कल का
स्वागत है!

□

संकल्पित

प्रज्वलित-प्रकाशित
दीप हैं हम!
सिर उठाए,
जगमगाती रोशनी के
दीप हैं हम!
वेगवाही अग्नि-लहरों से
लहकते चिह्नधर,
ध्रुव-दीप हैं हम!

शांत प्रतिश्रुत
दृढ़ प्रतिज्ञाबद्ध—
छाई घन-अँधेरी शक्ति का
पीड़न भरा

साम्राज्य हरने के लिए,
सर्वत्र
नव आलोक-लहरों से
उफनता ज्वार
भरने के लिए!

हमारा दीप्त
द्युति-अस्तित्व
करता लोक को आश्वस्त,
जन-समुदाय की प्रत्येक आशंका
विनष्ट-निरस्त!
भर उठता
सहज हर्षानुभूति से
हर दबा भय-त्रस्त
होता एक क्षण में
रुद्ध मार्ग प्रशस्त!

प्रतिबद्ध हैं हम—
व्यक्ति के मन में
उगी-उपजी
निराशा का, हताशा का
कठिन संहार करने के लिए!
हर हत हृदय में
प्राणप्रद उत्साह का
संचार करने के लिए!

□

११०, बलवंतनगर, गांधी रोड,
ग्वालियर-४७४००२

प्रहसन

कौन बनेगा साहित्यपति

✍ श्याम विमल

जन्म : १९ फरवरी, १९३१ को शुजाबाद (अब पाकिस्तान) में।

कृतियाँ : पाँच उपन्यास, एक कहानी संग्रह, तीन कविता संग्रह, एक व्यंग्य संग्रह तथा मराठी व संस्कृत में अनूदित चार कृतियाँ प्रकाशित।

पुरस्कार : साहित्य अकादमी द्वारा 'राष्ट्रीय अनुवाद पुरस्कार' (संस्कृत) तथा अ.भा. साहित्य परिषद्, दिल्ली द्वारा व्यंग्य संग्रह पर सम्मानित।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

❋ पात्र परिचय ❋

प्रश्नकर्ता : कोई भी सामान्य साहित्य ज्ञाता सरीखा।

उत्तरदाता : यथासंभव फिल्मी सुपर स्टार अमिताभ बच्चन की वर्तमान भूषा-सज्जा व अवस्थावाला कोई व्यक्ति।

अन्य : बीस-बाईस स्त्री-पुरुष, जो दो पंक्तियों में अर्ध गोलाकार रखी कुरसियों पर। अपने-अपने कंप्यूटर बॉक्स के सामने बैठे दस जन अगली पंक्ति में।

स्थान/मंच सज्जा : मंच व दृश्य सज्जा विस्तार से बतलाना जरूरी नहीं। विदेशी चैनल 'स्टार प्लस' की नकल से यथासुविधा तैयार किया जा सकता है। जैसेकि नीली-नीली विद्युत् रोशनी की स्वप्निल आभा में कंप्यूटरों के खोल रखकर चकमा देने में हर्ज क्या है! दो ऊँचे घूमनेवाले गोल स्टूल रखे हों, उनके बीच में चौकोर मेज। मेज पर भी एक कंप्यूटर बॉक्स। मंच सीमा से सटी प्रवेशद्वार की चौखट।

[यवनिका उठती है।]

पहला दृश्य

[नीले नीम अँधेरे में एक बिस्तर लगा दीवान है, उसपर एक व्यक्ति लंबी ताने सोया पड़ा है। एक-दो मिनट के लिए पार्श्व संगीत की मद्धम ध्वनि यवनिका उठने के साथ ही शुरू होनी चाहिए। संगीत में सितार-वायलिन-रबाब-गिटार आदि तार वाद्यों का सम्मिलित ललित स्वर चलता रहे, जब तक उद्घोषक की प्रस्तावित घोषणा पूरी न हो जाए।]

उद्घोषक : *(यवनिका के बाहर किनारे पर खड़े होकर)* सुनो-सुनो, उपस्थित सरस्वती-पुत्रो! क्षमा करें, मैं आपको 'करोड़पति' या 'लक्ष्मीपति' से संबोधित करके आपके धन-लोलुप होने का अपमानजनक खिताब आपको नहीं देना चाहता। यह 'स्टार प्लस' का विदेशी मंच नहीं, न ही धन-कुबेरों द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है। यह हिंदी साहित्य का 'नक्षत्रलोक' है, जिसे उलटबाँसी तरीके से संचालित किया जाना है। हमारे हिंदी साहित्य से इस असार संसार में साहित्य कम, साहित्यकार ज्यादातर चर्चित होने को

अभिशप्त हैं। साहित्य को समर्थ साहित्यकार नहीं मिलता। असमर्थ साहित्यकार को समर्थ प्रकाशक चारा नहीं डालता। असमर्थ प्रकाशक को पुस्तक खरीद का बड़ा ऑर्डर नहीं मिलता। व्यावहारिकता में कमजोर साहित्यकार को पुरस्कार नहीं मिलता। रॉयल्टी तक नहीं मिल पाती। इस नकार प्रकाशन की हालत को देखते हुए यह 'स्वप्नलोक'…ओह नहीं, सॉरी, यह 'नक्षत्रलोक' 'कौन बनेगा साहित्यपति' का द्यूतक्रीड़ात्मक दुःसाहसिक आयोजन शुरू करने जा रहा है। इसे जीत लेनेवाले को 'करोड़ी साहित्यपति' होने का आभास होने लगेगा। किसी भी बड़ी सभा का सभापति बनने में उसे हीनता की हिंदी-ग्रंथि नहीं सताएगी। 'साहित्यपति' बन जाने पर उसका कटा-पिटा कच्चा ड्राफ्ट भी छापनेवाले दिग्गज प्रकाशकों की होड़ लग जाएगी। रॉयल्टी की शिकायत कभी न रहेगी। हम इस 'नक्षत्रलोक' के प्रायोजकों की निगाह में करोड़ रुपया 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' यानी पराया धन मिट्टी के ढेले बराबर कूवत रखता है। असली धन तो साहित्य है, जिसे कोई चोर-डकैत नहीं उड़ा सकता। छप जाने पर तो उसका बिकते जाना, उसका पढ़ा जाना, पाठकों के प्रशंसा-पत्र पाना है, जो सर्वोच्च पुरस्कार से भी श्रेष्ठ हो जाता है—ऐसी मान्यता है और वह साहित्य की शाश्वतता की खुशफहमी पाले रहने का सुकून देती है साहित्यपति को।

खैर, यह जो मेरे पीछे मंच के वर्तमान दृश्य में आप एक बिस्तर पर सोए हुए व्यक्ति को देख रहे हैं, यह एक स्वप्नद्रष्टा साहित्यकार है। यह जो प्रगाढ़ निद्रा में स्वप्न देख रहा है उसीका मूर्त प्रतीक अगले रंग बदलते दृश्य में देखेंगे। यही स्वप्नद्रष्टा अगले दृश्य में प्रश्नकर्ता के रूप में बैठा आपको दिखेगा। तो मित्रो, समय हो रहा है, आपके इंतजार की घड़ियाँ खत्म और खेल शुरू होने को है। परदा उठते ही आप इस स्वप्नलोक…ओह, फिर से सॉरी, वैरी सॉरी…तो इस 'नक्षत्रलोक' में नीलकमल जैसी रूमानी रोशनी में अपने को भी भागीदार महसूस करने लगेंगे आप!…तो सरस्वती के उपासको, शुरू होता है आपके सामने पहला एपिसोड *(आवाज बुलंद करते हुए)* 'कौन बनेगा साहित्यपति'!

[परदा धीरे-धीरे उठ रहा है तथा मंचस्थ नीली रोशनी की चमकती आभा का विस्तार भी चकाचौंध करने लगता है। दो पुरुष पात्र चलकर आते हैं और पहले से रखे दो ऊँचे गोल स्टूलों की तरफ बढ़ते हैं।]

प्रश्नकर्ता : आइए अमिताभ बच्चनजी, बैठिए। *(दोनों स्टूलों पर आमने-सामने बैठते हैं)* आज हम और आप 'कौन बनेगा साहित्यपति' का खेल खेलते हैं। पहले आपको इस खेल की प्रक्रिया के बारे में बतला दूँ। इससे दर्शक भी समझ लेंगे।…आपके सामने रखे स्क्रीन विंडो पर क्रमवार कुल पंद्रह बार सवाल आएँगे। हर सवाल के चार उत्तर दिए होंगे। वे चार 'ऑप्शंस' होंगे। उन चारों में तीन उत्तर गलत होंगे और एक सही होगा। स्क्रीन पर वह सब अंग्रेजी में लिखा दिखेगा आपको। आप जानते होंगे, टी.वी. देखनेवाली हमारी जनता अंग्रेजी में लिखा-सुना समझ लेती है। फिर भी राष्ट्रभाषा का सम्मान रखते हुए मैं उसका हिंदी में अनुवाद करके समझाता रहूँगा। अगर सही उत्तर दे पाने में असमर्थ महसूस करें तो तीन लाइफ लाइनों का यानी तीन जीवन रेखाओं का आप इस्तेमाल कर सकते हैं।…एक लाइफ लाइन है 'फिफ्टी-फिफ्टी'। आपकी माँग पर उनमें से दो गलत जवाब मिटा दिए जाएँगे। बाकी बचे दो में से एक सही उत्तर होगा, एक गलत। अगर आपने सही उत्तर बतला दिया तो उतनी धनराशि आप जीत जाएँगे। ठीक?…दूसरी लाइफ लाइन 'फोन ऑफ फ्रैंड' की है। उससे आप अपने किसी फ्रैंड यानी मित्र को या किसी रिश्तेदार को यहाँ से फोन मिलवाकर प्रश्न का सही उत्तर पूछ सकते हैं। इसके लिए सिर्फ तीस सेकेंड का वक्त दिया जाएगा। ठीक?…तीसरी जो लाइफ लाइन है वो है 'वोट ऑफ ऑडियंस' यानी कि जनता की राय। यह सामने लाइन में बैठी जनता अपने हाथवाले वोटिंग पैड पर बटन दबाकर अपना फैसला बता देगी। इसके लिए भी तीस सेकेंड दिए जाएँगे।…यह अधिकार आपका होगा कि आप जनता की राय मानें या अपनी। ओ.के.? *(कुछ क्षण रुककर सोचने के बाद)* खेलने से पहले एक सवाल आपके लिए 'आउट ऑफ द वे,…अगर आप 'साहित्यपति' बन गए तो आप उन करोड़ रुपयों का कैसा इस्तेमाल करना चाहेंगे?

उत्तरदाता : *(लंबी साँस भरते-छोड़ते हुए)* पहले तो मैं 'साहित्यपति' लगता है, बनने से रहा। बन भी गया तो मैं अपने पिताश्री की समस्त लेखन सामग्री को खुद ही छपवाऊँगा और जन-जन में बँटवा दूँगा—फ्री! उसका कॉपीराइट बच्चन परिवार ही का रहेगा। एक 'बच्चन पुस्तकालय' की चार बड़े शहरों में स्थापना का भी मन बन रहा है।

प्रश्नकर्ता : यह तो अद्भुत घटना होगी हिंदी साहित्य जगत् में! क्या आप दूसरे उपेक्षित पड़े समकालीन रचनाकारों तथा युवा प्रतिभाओं के लिए कुछ करना चाहेंगे?

उत्तरदाता : करूँगा, क्यों नहीं करूँगा! उन लेखकों से फिल्मों के लिए नए-नए कथानक तैयार कराने का बंदोबस्त कराया जा सकता है। जैसेकि एक 'वर्कशॉप' यानी एक कार्यशाला की स्थापना वगैरह।

प्रश्नकर्ता : फिल्मों की आपकी बात से याद आया, सुना है कि आप 'एंग्री यंगमैन' वाली प्रारंभिक इमेज को तोड़ना चाहते हैं और इस ढलती उम्र में खलनायकी के रोल लेने की शुरुआत करना चाहते हैं। क्या यह सच है? यानी कि 'एंग्री ओल्ड विलेन'?

[उत्तरदाता अमिताभ बच्चन अपनी फ्रेंचकट सफेद दाढ़ी में से सिर्फ मुसकान से हामी भरने की सूचना देते प्रतीत होते हैं।]

प्रश्नकर्ता : आपके साथ यहाँ कौन आए हैं? आपके पिताश्री! *(पिछली पंक्ति के किनारेवाली कुरसी की तरफ देखते हुए)* नमस्कार, कविवर! आप तो हिंदी काव्य जगत् में जाने-माने हालावादी कवि हैं तथा आत्मकथा के श्रेष्ठ गद्य लेखक भी हैं। मैं एक बार फिर आपको प्रणाम करता हूँ।

[उधर से कविवर आशीष देने की मुद्रा में हाथ ऊपर करते हैं।]

अहोभाग्य हैं मेरे, जो आपके दर्शन सुलभ हुए। आपका स्वास्थ्य कैसा है? हम आपकी आत्मकथा के टटके वर्तमान पर नई किताब पढ़ना चाहते हैं।

[उधर कविवर स्वीकृति सूचना जैसा सिर हिलाते रहते हैं।]

जरूर-जरूर। इस समय मेरे सामने बैठे अपने सुपुत्र अमिताभ बच्चन को आशीर्वाद दें, ताकि यह यहाँ 'साहित्यपति' बनने के खेल में विजयी हों।

[कविवर मुसकराकर हाथ उठाते हैं।]

धन्यवाद! *(अ.ब. के मुखातिब होकर)* तो चलिए अमिताभजी, एक हजार रुपए के पुरस्कार के लिए। साहित्यकारों को 'पुरस्कार' शब्द ज्यादा प्रिय तथा सम्मानजनक लगता है, इसीलिए इसे यहाँ जोड़ा गया है। तो इस पुरस्कार के लिए ये रहा आपके सामने पहला सवाल—' 'बच्चन' शब्द में व्यंजन व मात्राएँ मिलाकर कितने वर्ण होते हैं?'

ए.—चार, बी.—तीन, सी.—सात, डी.—छह?

उत्तरदाता : सी.—सात।

प्रश्नकर्ता : सही जवाब! एक हजार रुपए का साहित्यकार पुरस्कार जीत गए आप!···अब दूसरा सवाल दो हजार के साहित्यकार पुरस्कार के लिए ये रहा आपके सामने—'हिंदी वर्णमाला में कुल कितने व्यंजन होते हैं?'

ए.—पच्चीस, बी.—उनतीस, सी.—तैंतीस, डी.—छत्तीस?

उत्तरदाता : सी.—तैंतीस।

प्रश्नकर्ता : बिलकुल सही जवाब! आपने दो हजार का साहित्यकार पुरस्कार जीत लिया।···अब तीन हजार के साहित्यकार पुरस्कार के लिए ये रहा तीसरा प्रश्न—' 'हिंदी' शब्द को अंग्रेजी के अल्फाबिट में लिखना हो तो इनमें से कौन सा रूप सही है?'

ए.—एच आई एम डी आई, बी.—आई एन डी आई, सी.—एच ई एन डी वाई, डी.—एच आई एन डी आई?

उत्तरदाता : डी.—एच आई एन डी आई।

प्रश्नकर्ता : बिलकुल सही जवाब! आप तीन हजारवाला साहित्यकार पुरस्कार जीत गए! बधाई हो! लगता है, हिंदी का अच्छा ज्ञान है आपको।···तो अमिताभजी, अब अगले प्रश्न के लिए तैयार हो जाइए। उसकी राशि बढ़कर पाँच हजार हो जाएगी। आप तीन हजार जीत चुके, मेरा मतलब साहित्यकार पुरस्कार जीत चुके। आपने अब तक कोई लाइफ लाइन भी इस्तेमाल नहीं की, वैरी गुड!···अब चलिए, हम और आप खेलते हैं 'पंज हजारी' साहित्यकार पुरस्कार के लिए।···पाँच हजार को 'पंज हजारी' बोलने में अच्छा लगता है।···तो यह रहा आपके सामने चौथा प्रश्न—'इनमें से कौन सी पुस्तक डॉ. हरिवंशराय बच्चन की नहीं है?'

ए.—निशा निमंत्रण, बी.—मधुबाला, सी.—चाँद का मुँह टेढ़ा है, डी.—बुद्ध और नाचघर?

उत्तरदाता : *(तनिक सोचने के बाद)* सी.—चाँद का मुँह टेढ़ा है।

प्रश्नकर्ता : पक्का?···श्योर? *(गौर से देखते हुए)* आप चाहें तो किसी लाइफ लाइन का इस्तेमाल कर सकते हैं। *(कुछ पल मुसकान द्वारा भ्रमित करने का अभिनय)* नहीं करना?···तो 'सी' पर ताला लगा दिया जाय? *(उत्तरदाता का सहमति में सिर हिलाना)* कंप्यूटरजी, प्लीज 'सी' को लॉक कर दीजिए। *(कुछ क्षण मौन-दर्शन, फिर एक लंबी साँस भरना और छोड़ना)* आप 'पंज हजारी' साहित्यकार बन गए *(तालियाँ)*, लेकिन अमिताभजी, हम आपको 'दस हजारी' से नवाजना चाहते हैं। *(दृष्टि पिछली कुरसी पर बैठे कविवर पिताश्री की तरफ डालकर)* लगता है, आपके पिताश्री बहुत खुश हैं। क्यों न हों, उन्हें अपनी संतान की हरफनमौला योग्यता पर गर्व जो है। खैर···चलिए, आगे बढ़ते हैं, अमिताभजी! यहाँ से अब पुरस्कार की राशि

दुगुनी होती जाएगी। अभी आप शिखर या क्या कहते हैं उसे…शलाका! हाँ, शलाका पुरस्कार यानी एक करोड़ रुपए के 'साहित्यपति' से ग्यारह प्रश्न दूर हैं।…तो चलिए, हम और आप खेलते हैं दस हजारी साहित्यकार पुरस्कार के लिए। ये बाजी आप जीत गए तो यहाँ से आप कम-से-कम दस हजार रुपयों का साहित्यकार पुरस्कार लेकर ही जाएँगे।…तो यह रहा आपके सामने 'कौन बनेगा साहित्यपति' के लिए पाँचवाँ सवाल—' 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रंथ किस लेखक की रचना है?'

ए.—रामकुमार वर्मा, बी.—रामचंद्र शुक्ल, सी.—रामनारायण शुक्ल, डी.—रामधारी सिंह दिनकर?

उत्तरदाता : *(कुछ देर सोच में रहकर)* लाइफ लाइन का इस्तेमाल करना चाहता हूँ। जनता की राय…वोट ऑफ ऑडियंस।

प्रश्नकर्ता : ओ.के.! तो जनता अपने-अपने वोटिंग पैड हाथ में लेकर तैयार हो जाए, अमिताभ बच्चनजी इस सवाल पर आपकी राय लेना चाहते हैं। इन चारों ऑप्शंस में से कौन सा सही है उसीके लिए ए-बी-सी-डी में से किसी एक सही उत्तर के लिए पैड का बटन आपको दबाना है। जब मैं 'अप' बोलूँगा तभी। सोचने के लिए आपको मात्र तीस सेकेंड का समय मिलेगा। तो लीजिए, समय शुरू होता है—'अप'! *(आधे मिनट के बाद सामनेवाले स्क्रीन पर ग्राफ देखकर)* ओऽऽ…चारों ही ऑप्शंस बराबर-बराबर! यानी पच्चीस-पच्चीस प्रतिशत! अब आप ही बताइए, अमिताभजी, क्या दूसरी जीवन रेखा का इस्तेमाल करना चाहेंगे?

उत्तरदाता : हाँ, फिफ्टी-फिफ्टी।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, फिफ्टी-फिफ्टी। कंप्यूटरजी, प्लीज आप चारों में से कोई दो गलत उत्तर मिटा दीजिए। *(ए और डी वाले मिट जाते हैं)* अब बचे दो ऑप्शंस। ये दो नाम आपके सामने हैं, अमिताभजी, एक है बी—रामचंद्र शुक्ल, दूसरा है सी—रामनारायण शुक्ल। इन दो में से आप किस शुक्ल को 'हिंदी साहित्य का इतिहास' का लेखक मानते हैं? अगर आप अभी भी कॉन्फिडेंट नहीं हैं तो 'फोन ऑफ फ्रैंड' की आखिरी लाइफ लाइन बाकी है। आजमाना चाहेंगे? *(उ.दा. का स्वीकृतिसूचक सिर झुकाना)* आप किसी मित्र से, किसी रिश्तेदार से, किसी जाने-माने लेखक मित्र से फोन पर पूछ सकते हैं। फोन मिलाया जाय? किस नाम पर?

उत्तरदाता : आदरणीय नामवर सिंह।

प्रश्नकर्ता : ओ.के., तो प्लीज आदरणीय नामवर सिंह को फोन लगाया जाय! देर क्यों लग रही है? *(इतने में उधर से हैलो की आवाज आती है)* हैलो, आदरणीय नामवर सिंह बोल रहे हैं? मैं हूँ कौन बनेगा…अरे! तो क्या आप नामवर सिंह नहीं हैं? उनके शिष्य बोल रहे हैं? तो शिष्यजी, नामवरजी को फोन दीजिए। क्या कहा? आदरणीय सो रहे हैं? ओह! अमिताभजी, वो तो इस वक्त सो रहे हैं। उठाया भी नहीं जा सकता। उनके शिष्य डरते हैं। वह यह भी बता रहे थे कि अभी-अभी 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' पर काम करते-करते बीच में ही सो गए हैं। वह शिष्य इतिहास लेखन में उनका सहयोग कर रहे हैं। आप तो जानते हैं…

मुझे 'साहित्यपति' बन के क्या करना है? मुझे इतिहास तो लिखना नहीं। सब भूल जाते हैं साहित्यिकों और साहित्यपतियों को भी। करोड़पति को ही याद रखते हैं लोग और करोड़पति ही बनना चाहता है हर कोई। इंटरनेट के रहते और सूचना तकनीक के इस जमाने में सब सूचनाएँ तत्काल पाई जा सकती हैं। मुझे तो उसकी भी जरूरत नहीं; न साहित्यपति, न करोड़पति बनने की।

उत्तरदाता : जानता हूँ। वह सर्वहारा वर्ग के हिमायती पार्टी वर्कर रहे हैं और प्रगतिशील जनवादी लेखक भी।

प्रश्नकर्ता : क्या यह सच है? आप उन्हें कैसे जानते हैं?

उत्तरदाता : अपने पिताश्री की बदौलत।

प्रश्नकर्ता : *(कुछ देर सोचकर)* चलिए, तो हम फिर भी आपको किसी और शख्सियत को फोन लगाने की विशेष छूट दिए देते हैं। किसी और शख्स का नाम बताइए।

उत्तरदाता : रिटायर्ड सचिव श्री अशोक वाजपेयी।

प्रश्नकर्ता : तो फोन मिलाया जाय? ये भी सो तो नहीं रहे होंगे?…तो प्लीज श्री अशोक वाजपेयी को फोन लगाया जाय। *(जब तक उधर से 'हैलो' हो, संवाद जारी)* क्या ये आपके मित्र लेखक हैं? अच्छा! तब तो ये आपको अच्छी तरह जानते होंगे! उनका जवाब भी गलत नहीं होगा, आखिर कुलपति ठहरे! *(फोन से 'हैलो' की ध्वनि उठती है)* हैलो, नमस्कार अशोक वाजपेयीजी! 'कौन बनेगा साहित्यपति' से मैं विमल बोल रहा हूँ। इस वक्त मेरे सामने आपके मित्र अमिताभ बच्चन बैठे हुए हैं। यह

'कौन बनेगा साहित्यपति' कंटेस्ट में आपसे सहायता… देखिए, श्रीमान, आप पहले मेरी पूरी बात तो सुन लीजिए। फिर पूछिएगा और मैं निस्संकोच बताऊँगा, कौन विमल। आप 'शत्रु लेखक' या 'मित्र लेखक' हैं का यह विभाजन क्यों कर रहे हैं? लेखक तो लेखक होता है, क्षमा करें, यह 'शत्रु-मित्र' शब्द कहाँ से आ टपके आपके जेहन में? तो सुना है, आप स्वायत्ततावादी लेखक हैं और इस वक्त *(उधर से रिसीवर पटकने की आवाज)* लीजिए अमिताभजी, उन्होंने तो फोन का रिसीवर ही पटक दिया! ये मित्र-शत्रुवाला आप हिंदी लेखकों का कैसा आपसी झगड़ा है? आप तो हिंदी लेखक के पुत्र हैं, वे जानते होंगे। खैर, इस असाहित्यिक लगनेवाले प्रसंग को यहीं खत्म करते हैं। फिलवक्त आप अपने विवेकाधीन वैचारिक कोटे का इस्तेमाल करते हुए उत्तर दे सकें तो ठीक, नहीं तो आप इसे यहीं छोड़कर सिर्फ पंज हजारी साहित्यकार पुरस्कार जीतकर जा सकते हैं।

उत्तरदाता : मैं यहीं छोड़ना चाहता हूँ। वैसे मुझे 'साहित्यपति' बन के क्या करना है? मुझे इतिहास तो लिखना नहीं। सब भूल जाते हैं साहित्यिकों और साहित्यपतियों को भी। करोड़पति को ही याद रखते हैं लोग और करोड़पति ही बनना चाहता है हर कोई। इंटरनेट के रहते और सूचना तकनीक के इस जमाने में सब सूचनाएँ तत्काल पाई जा सकती हैं। मुझे तो उसकी भी जरूरत नहीं; न साहित्यपति, न करोड़पति बनने की। मैं ऑलरेडी 'करोड़ों का पति' बना हुआ हूँ। छोड़िए ये सब।

प्रश्नकर्ता : तो आप इस खेल को यहीं छोड़कर जाना चाहते हैं? पक्का फैसला?…तो ठीक है। आपको पंज हजारी साहित्यकार पुरस्कार किसी सांस्थानिक उत्सव पर समारोहपूर्वक प्रदान कर दिया जाएगा। इस वक्त हम आपको बहुत-बहुत बधाई दे सकते हैं और इस 'नक्षत्रलोक' में आकर भाग लेने का शुक्रिया भी! *(समाप्तिसूचक सायरन की ध्वनि गूँजती है)* ओह! टाइम खत्म होने का सायरन बज गया है। ठीक है, फिर कभी मिलेंगे *(खड़े हो… हाथ मिलाते हैं)* थैंक्यू वैरी मच!

[नीली रोशनी धीरे-धीरे घनी होती हुई अँधे… सृजन कर देती है। मैं विमल 'करोड़ों के पति' सुपर… अमिताभ बच्चन के गरम हाथ से अपना ठंडा हाथ मिल… हूँ। फिर उन्हें पलटकर नीली रोशनी की बाँहों में… नीले पड़ते 'नक्षत्रलोक' के मंच से लंबे-लंबे डग… उतरता जाता देखता हूँ। उसके बाद मैं भी अपने… स्टूल से उतरकर दर्शकों के सामने मुँह करके 'अ… खयाल रखिएगा' कहता हुआ वापस उस द्वार के … जाने को हुआ, ताकि नए प्रतियोगियों के नामों की घो… करूँ कि चिकने फर्श पर मेरा पाँव जो फि… कि… धड़ाम!]

[यह दृश्य परदा गिराकर या कुछ देर के लिए अँ… करके बदल दिया जाता है। इसके बाद मंद रोशनी में… उभरता है वही पहला दृश्य, जिसमें एक दीवान… स्वप्नद्रष्टा सोया हुआ था। अब वह प्रश्नकर्ता दीवान… निकट फर्श पर गिरा पड़ा दिख रहा है।]

प्रश्नकर्ता : मैं विमल दीवान पर सोए-सोए नीला चाँद सा पुर… सपना देख रहा था। सपने देखना बुरा नहीं, परंतु… सपने क्यों देखना कि नीचे गिरना पड़े? मैं भी गिरा… यह सच है, गिरकर जमीन से जुड़े रहने में ही संतो… सुख का अनुभव ले रहा हूँ। *[अब वह अपनी दोनों… हथेलियाँ आँखों की नजर के आगे करके 'प्रभाते… दर्शनम्' करता यह मंत्रोच्चार करने लगता है]* 'क… वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वतीः, करमूले तु गोविन्द…

[इस मंत्र की मंथर ध्वनि के समांतर धीरे-… यवनिका गिरती रहती है। तार वाद्यों का संयुक्त … स्वर भी नीरव हो जाता है।]

विमल वाटिका, बी…
सेक्टर २६, नोएडा-२०१…

पाठकों से निवेदन

- आपके सक्रिय सहयोग से साहित्य अमृत का प्रकाशन निरंतर हो रहा है। इसके लिए हम आपके आभारी हैं।
- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो गई है, वे कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करवा लें। साथ ही अपने मित्रों-संबंधियों को भी इसकी सदस्यता ग्रहण करने हेतु प्रेरित करने की कृपा करें।

भैंस और भारत

✍ गोपाल चतुर्वेदी

भैंस से अपना परिचय बचपन का है। पिताजी ने एक बार काले, मोटे, जुगाली करते, झील-सी आँखोंवाले जीव को हमें दिखाया और बताया, 'इसे भैंस कहते हैं। अगर तुमने अगड़म-बगड़म चरना जारी रखा तो तुम्हारा भैंसा होना निश्चित है।' हमारे पिताजी ज्योतिषी नहीं थे। पर हमारे बारे में उनकी हर भविष्यवाणी सही साबित हुई है। हमारी पढ़ाई-लिखाई की प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्होंने एक दिन नाश्ते की मेज पर हमारी माताजी को सूचित किया, 'तुम्हारा होनहार सरकार तो चपरासी बनने के काबिल भी नहीं है।' उस साल हम दसवीं में दोबारा 'फेल' हुए थे। तब तक हमने जीवन में नकल की निजी खोज नहीं की थी। दसवीं पास करने के बाद हमने फिर मुड़कर नहीं देखा। अकादमिक हालात इतने सुधर गए थे कि हम उत्तर पुस्तिका पर चील-कौओं की कलाकृति रचते रहते और तीन घंटे बाद हमारी कॉपी बाहर से प्रश्न-पत्र के आदर्श उत्तरों के साथ अंदर आ जाती। हम चील-कौओं को बाहर ले जाकर उड़ा देते। प्रबंधन तकनीक के सफल इस्तेमाल से आनन-फानन हमने बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली।

पिताजी को प्रसन्नता का ऐसा धक्का लगा कि उन्हें दिल का दौरा पड़ गया। घर में कोहराम मचा। हमारे ताऊजी के साले ने सरकार में दौड़-भाग की। माताजी के जेवर बिके। उसके रुपए पाकर सरकार को दया आई। हम चपरासी तो नहीं बन पाए, करुणामूलन आधार पर बाबू बन गए। हमारे शरीर और शक्ल में आनंद का ऐसा संक्रामक गुप्त रोग है कि जो हमें देखता है, हँसने लगता है। कुछ हमें प्यार से 'भैंसा भाई' कहकर पुकारते हैं तो कुछ संभावना की सीमा से आगे जाकर 'हिप्पो-हाथी' के संबोधन से। अपने अनुमान से हिप्पो-हाथी एक नामुमकिन नस्ल है। हमारे अनुभवी साथियों का कहना है कि सरकार में सब संभव है।

दफ्तर की कैंटीन के हम एक प्रमुख आकर्षण हैं। लोग हमें देखकर मुसकराते हैं। हम भी मुसकराते हैं। वे हँसते हैं, हम ठहाका लगाते हैं। सुननेवाले को भ्रम होता है कि यह कैसा हाथी है जो हिनहिना रहा है। उनके गले से भी 'हो-हो, हा-हा' के अस्वाभाविक स्वर निकलते हैं। सब हँसते हैं। किसीको अहसास ही नहीं होता है कि क्यों हँस रहे हैं। हमें शक है कि हँसी अब आंतरिक आनंद की उन्मुक्त अभिव्यक्ति नहीं बल्कि आदमी के मुँह से निकलनेवाली एक अजीब सी आवाज है। इससे हमें फायदा हुआ है। कैंटीन मैनेजर ने वहाँ हमारा खाना-पीना 'फ्री' कर दिया है। हमारे कैंटीन में स्थापित होने से उनका धंधा बढ़ता है। बड़े हमें देखकर हँसने आते हैं, जैसे बच्चे 'जू' में जानवर देखने जाते हैं। सरकार के संडासी मुद्रा के माहौल में किसी बाबू का मुसकराना एक अपवाद है। आनेवाले ताज्जुब करते हैं कि इस दफ्तर का यह कैसा काया-पलट हो गया है। कुछ कैंटीन के हँसी-कंपटीशन में शामिल भी हुए हैं। एकाध का खयाल है कि जिस दरियादिली और उदारता से सरकार राष्ट्रीय सम्मान बाँट रही है, हम उसके हास्यास्पद सुपात्र हैं। पहले लोग पैसा लेते और रो-झींककर काम करते थे। अब भी बाबू पैसा लेते हैं, पर हँसी-खुशी काम कर देते हैं। हमें खुशी है कि दृष्टिकोण के इस क्रांतिकारी परिवर्तन में अपना भी तुच्छ योगदान है।

ऐसे हम जब भी शीशे के सामने खड़े होते हैं तो हमें बिना सींग-पूँछ का एक भैंसा नजर आता है। हम पिताजी को सादर याद करते हैं। भैंस इस देश का उपयुक्त प्रतीक है। भैंस ने भारत पर अनेक अहसान किए हैं। हमें अपने छोटे शहर का आज भी स्मरण है। भैंसवाले भोलू मोहल्ले को दूध सप्लाई करते थे। उनके दूध में अहिंसा के ऐसे कीटाणु बुलबुलाते थे कि मोहल्ले की मरियल और अहिंसक पीढ़ी का सारा श्रेय भोलू और उनकी भैंसों को है। भोलू ने शुरुआत सरकारी भूखंड हथियाकर, उसपर मंदिर बनाकर की। उसके कंपाउंड में उन्होंने जनसेवा के लिए भैंसें पालीं। जनता के तन-मन की सेवा का इससे बेहतर उदाहरण मिलना कठिन है। मंदिर के पीछे कुआँ और सामने एक म्यूनिसपैलिटी का नल है। भोलू कुएँ के जल से भैंसों को नहलाते हैं और म्यूनिसपैलिटी के नल से दूध को। उन्होंने एक दिन हमें अपने पिताजी के खिलाफ भड़काया भी था। यह घटना उस वक्त की है जब वह भैंस के दूध को पात्र समेत स्नान करवा रहे थे। उन्हें संदेह हुआ कि कहीं हम उनकी दूध की मिलावट का दुष्प्रचार न कर दें।

उन्होंने हमें समझाया, 'यह जो आपका बेडौल शरीर है, इसकी इकलौती वजह गाय का शुद्ध दूध है। वे दिन बीत गए जब निखालिस

दूध स्वास्थ्यवर्धक था। अब तो व्यापार, बाजार, सरकार, संस्कार, भाषा, आचरण, पोशाक-परिधान सबमें मिलावट है। भैंस के दूध में पानी मिलाकर हम उसे आम आदमी के हाजमे के लायक बनाते हैं। यह पानी भी ऐसा-वैसा नहीं है। इसमें भी ऐसे खास बैक्टीरिया हैं, जो केवल हिंदुस्तानी झेल सकता है। कोई विदेशी इसे पीकर, जिंदा रहकर दिखाए तो हम अपनी भैंस इसपर कुरबान कर दें। म्युनिसपैलिटी के बंबे का पानी और हमारी भैंस का दूध सही अनुपात में मिलकर पीनेवाले की जीने की कूवत बढ़ाते हैं। हमने तो कई बार आपके पिताजी से अर्ज की कि अपने बेटे की सेहत से न खेलें। उसे भैंस का दूध पिलाएँ। पर उन्होंने हमारी एक न सुनी।'

हम बाबूगिरी करते-करते महानगर में आ बसे हैं। यहाँ चार पैरों की भैंसों का शहर में रहना वर्जित है। दो पैरवाली इतनी हैं कि चौपायों के लिए जगह नहीं है। हम भैंसवाले भोलू की बात से सहमत हैं। यह भोलू और उनके ऐसों के सस्ते और मिश्रित दूध का ही कमाल है कि भारत का आदमी दुनिया में सबसे सख्त-जान है। भूख, अभाव, प्रदूषण, मिलावट, भूकंप, मौसम से उसे खास फर्क नहीं पड़ता है। वह इन सबके बीच ठाट से जिंदा रहता है। हमारी अपनी मिसाल है। न हमने शुद्ध पढ़ाई की, न योग्यता के शुद्ध तरीके से नौकरी पाई। बस हमारे पिताजी ने हमें शुद्ध दूध पिलाया। यहीं वह गलती कर बैठे। उस वक्त से लेकर आज तक हम हँसी के पात्र हैं। जो हमें देखता है, हँसता है। यह दीगर है कि हम भी सबके साथ हँस लेते हैं। यों हँसने में भी मिलावट है। अब रोने-हँसने में विशेष अंतर नहीं है। हमने कैंटीन में देखा है। हँसते-हँसते कइयों को जैसे कुछ याद आता है। उनके आँसू निकल पड़ते हैं।

शरीर की इतनी जटिल मुद्राओं से कैंटीन की कुरसी उलार हो गई। हमने कुरसी समेत जमीन चाटी। हमारे पैर से लगकर मेज थोड़ा सा हवा में उछली। एक चटनी लगा समोसा आकर हमारे माथे से टकराया, दूसरा हाथ के पास टपका। मेज गिरी। कुरसी के ऊपर आ टिकी। कप 'छन्न' से टूटा। उसकी चाय हमारे पैरों पर बूँदाबाँदी करने लगी।

हमें एक ही अफसोस है। पूरी तरह मिलावटी न होने के कारण हमारे शरीर में कुछ भैंस जैसे तत्त्व आ गए हैं। जिसने भैंस देखी है (शहरवालों से ऐसी अपेक्षा करना नाइनसाफी है। उन्हें इनसानी भैंसों से फुरसत नहीं है) या उसकी तसवीर पर नजर डाली है, उसने नोटिस किया होगा कि शरीर के अनुपात में उसकी दुम छोटी है। अपनी दुम से पीठ पर बैठे मक्खी-मच्छर तक को वह नहीं उड़ा पाती।

अपना भी यही हाल है। एक बार किसी चींटी की साहसिक भावना जागी। उसे पर्वतारोहण का शौक चर्राया। हमारी पतलून की घाटी से वह चींटी हमारे पेट का पहाड़ चढ़ गई। हमें लगा कि हमारी गुदगुदी तोंद पर कोई टहल रहा है। फिर वहाँ गुदगुदी, खुजली और जलन शुरू हुई। हमने पैर कुछ ऊपर उठाए, सिर पीछे किया और कमीज के ऊपर से इस नन्हे घुसपैठिए को कुचलने के लक्ष्य से हाथ के हथौड़े से पेट के उस संभावित शरणस्थल पर वार किया। शरीर की इतनी जटिल मुद्राओं से कैंटीन की कुरसी उलार हो गई। हमने कुरसी समेत जमीन चाटी। हमारे पैर से लगकर मेज थोड़ा सा हवा में उछली। एक चटनी लगा समोसा आकर हमारे माथे से टकराया, दूसरा हाथ के पास टपका। मेज गिरी। कुरसी के ऊपर आ टिकी। कप 'छन्न' से टूटा। उसकी चाय हमारे पैरों पर बूँदाबाँदी करने लगी। हमें उठाने के लिए हमदर्द कैंटीन मैनेजर को बाहर से भार ढोने के आदी हम्मालों को बुलवाना पड़ा। हमारे सहयोगी बाबू इतने नाजुक हैं कि उनसे फाइलें तक नहीं उठतीं हैं। उन्होंने मोच आने के डर से हमें सहारा देने की कोशिश तक नहीं की। हमें लगता है कि सरकार भी हमारी और भैंस की तरह असहाय और निरुपाय है। उसके पेट पर भ्रष्टाचार के चूहे तांडव कर रहे हैं। वह जनता का पेट काटकर चूहों का पेट भर रही है। पर उन्हें हटाने में असमर्थ है। अब तो आलम यह है कि छोटे-छोटे चूहे उसके कान, नाक, सिर पर कबड्डी खेल रहे हैं। सरकार विवश है। अगर उन्हें हटाने का प्रयास किया तो हमारी तरह कुरसी के साथ लुढ़क न पड़े। हमें तो हम्मालों ने उठा भी लिया। उसे कौन उठाएगा!

सरकार ने चूहों को पकड़ने के लिए बिल्लियाँ पाली हैं। आस-पास गौरैया और उसकी तरह की छोटी चिड़िया 'चीं-चीं' कर सरकार पर चूहों के साम्राज्य का विरोध कर रही हैं। सरकारी बिल्लियाँ अधिकार की चूहेदानी की जगह जाल बिछाकर चिड़ियों को पकड़ने, चट करने की जुगाड़ में हैं। प्रजातांत्रिक सरकार में बहुमत की चलती है। भारत का प्रजातंत्र मजबूत है। उसमें चूहों के बहुमत का राज्य है। चिड़ियों के अल्पमत की क्या जुर्रत कि व्यवस्था को बदलने की आवाज उठाएँ? उनके हर घोंसले के पास सदाचारी बिल्लियों ने अपने जाल बिछा रखे हैं। उनकी बोलती बंद करने का हर इंतजाम है। फिर भी वे चीं-चीं करने से बाज नहीं आती हैं। सरकार ने तंग आकर अपने कान बंद कर लिये हैं। सरकार के सामने चिड़ियों की चीं-चीं भैंस के सामने बीन बजाने की तरह है। दोनों पर इस निरर्थक शोर का कुछ असर नहीं पड़ता है।

यों भैंस का झुकाव जनता की तरफ है। ग्वाला उसका शोषण करता है। वह चुपचाप आम आदमी की तरह सबकुछ सहती है

आकस्मिक मजदूर भी कभी व्यवस्था की नाइनसाफी के खिलाफ कोर्ट चले जाते हैं। भैंस के कट्टों के मुँह से भोलू उनका दूध छीनते हैं। भैंस उफ तक नहीं करती है। क्या पता ढोर-तंत्र में गाय-भैंसों के केवल कर्तव्य हों और ग्वालों के सिर्फ अधिकार। उसी प्रकार जैसे जनतंत्र में जन केवल जुलूस और मर्दमशुमारी की गिनती बढ़ाने के लिए होते हैं। बहुत हुआ तो पुलिस उनपर निशानेबाजी का अभ्यास कर लेती है। भोलू और भैंस का भी यही रिश्ता है। भोलू पत्नी का गुस्सा भैंस पर निकालते हैं। आम आदमी और भैंस दोनों प्रजातंत्र के लिए काफी उपयोगी हैं। जनतंत्र के जन और भैंस में एक और समानता है। दोनों काला अक्षर भैंस बराबर हैं। भैंस के दूध में पानी मिलाकर भोलू का घर भरता है, आम आदमी को भैंस के बराबर निरक्षर रखकर प्रजातंत्र का काम चलता है। दरअसल पढ़े-लिखे हल्ला ज्यादा मचाते हैं। इतना ही नहीं, वह जनता को व्यवस्था के विरोध के लिए उकसाते हैं। उनका वश चले तो वे हमारे सियासी दलों द्वारा स्थापित जाति, धर्म, संप्रदाय जैसे आदमी आदमी के शाश्वत फर्क ही मिटा दें। अब ऐसे अंतर मिटे तो हमारे प्रजातंत्र के अस्तित्व को खतरा है। भैंस जैसे निरक्षर जन जनतंत्र के लिए जरूरी हैं। उनसे वोट मिलते हैं। देश यानी नेता के विकास का सफर अवरुद्ध नहीं होता है।

भैंस और भारत एक ही आत्मा के दो नाम हैं। संसार में भारत अनूठा है। दुनिया में भैंस की मिसाल भी नहीं है। वह भारत में ही पाई जाती है। यूरोप-अमेरिका क्या खाकर हमारा मुकाबला करेंगे। वे भैंस-विहीन देश हैं। उनके यहाँ हालात इतने गए-गुजरे हैं कि कोई भैंस या भैंसे की तरह दिखा नहीं कि वह वक्त के कूड़ेदान के हवाले कर दिया जाता है। हम भैंस को आदर्श ही नहीं, आराध्य भी मानते हैं। उसकी नकल में पूरा देश भैंस की तरह पगुआता है। सिर्फ मुँह चलाता है। अकसर देखने में आया है कि जब सियासी और बुद्धिजीवी हस्तियाँ भैंस के अनुकरण में मुँह चलाती हैं तो अपने कान में तेल जरूर डाल लेती हैं, जिससे उन्हें किसी और की आवाज सुनाई ही न पड़े। विचारों के ऐसे ही उपयोगी आदान-प्रदान से समस्याओं का समाधान होता है। विद्वानों का मानना है कि ऐसे ही मुँह चलाने से देश के वातावरण में प्रदूषण का प्रतिशत भी घटता है।

भैंस को देखने से अकसर प्रतीत होता है कि वह ध्यान में डूबी है। इस मायने में वह सरकार के दफ्तर और देश के बुद्धिजीवी का भी प्रतिनिधित्व करती है। बाबू और बुद्धिजीवी भी इसी तरह कान में कलम लगाए या पैंसिल चबाते अनजान के ध्यान में डूबे पाए जाते हैं। हम भैंस से बेहद प्रभावित हैं। भोलू की भैंस का जल-मिश्रित दूध न पीने से हम बेडौल हो गए हैं। पर देश के आधुनिक युवा-युवतियों को देखकर हमें विश्वास है कि इस समय पूरे देश की दूध सप्लाई पर भोलू और उनके साथियों का नियंत्रण और एकाधिकार है। पूरा भारत घूमने का सौभाग्य अभी तक हमें नहीं मिला है। हम भैंस की तसवीर देखकर संतोष कर लेते हैं। हमें लगता है कि भैंस भारत है और भारत भैंस है। अगर भारत की प्रगति की यही रफ्तार रही तो वह दिन दूर नहीं है जबकि भारत की भैंस संसार में छाए। लोग भैंस पर नजर डालें और कहें, 'भारत वाकई दर्शन और चिंतन का देश है। इतनी समस्याओं के बावजूद इसकी भैंस कितनी टेंशन-फ्री है!'

□

डी-II/२९८, विनय मार्ग,
चाणक्य पुरी, नई दिल्ली-११००२१

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, परिचय तथा पता अवश्य लिखें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः लेखकों से निवेदन है कि रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेखों को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।

शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह : हिंदी के अद्वितीय शिल्पी

✍ कुमुद शर्मा

आजादी के साथ परिवर्तित परिवेश और चेतना से कविता के स्वरूप में भी बदलाव आया। ऐतिहासिक क्रम में कविता का यह परिवर्तन निस्संदेह नए परिवेश का प्रारंभ था, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए आधुनिक भाव-बोध की आवश्यकता थी। युगीन संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए नई काव्य-पद्धति विकसित करते हुए जिन कवियों ने नए परिवेश के अनुरूप अपनी काव्य चेतना को नई दिशा दी, समय की माँग के अनुरूप कविता को जीवन की अनुरूपता में ढाला उनमें शमशेर बहादुर सिंह का नाम अग्रणी ही नहीं, विशिष्ट भी है। विशिष्ट इसलिए कि उन्होंने कविता के क्षेत्र में छाए हुए वादों, विचारों और मुहावरों की जकड़न से सर्वथा अलग रहकर अनूठे बिंब-विधान, चित्रात्मक जादुई भाषा और लय की अटूट डोरी के जरिए काव्यभाषा को नई तराश दी। अपनी अनुभव-वस्तु में जीवन के विविध रंगों को समेटते हुए शिल्पगत कसाव के साथ एक अनूठा काव्य-संसार रचा।
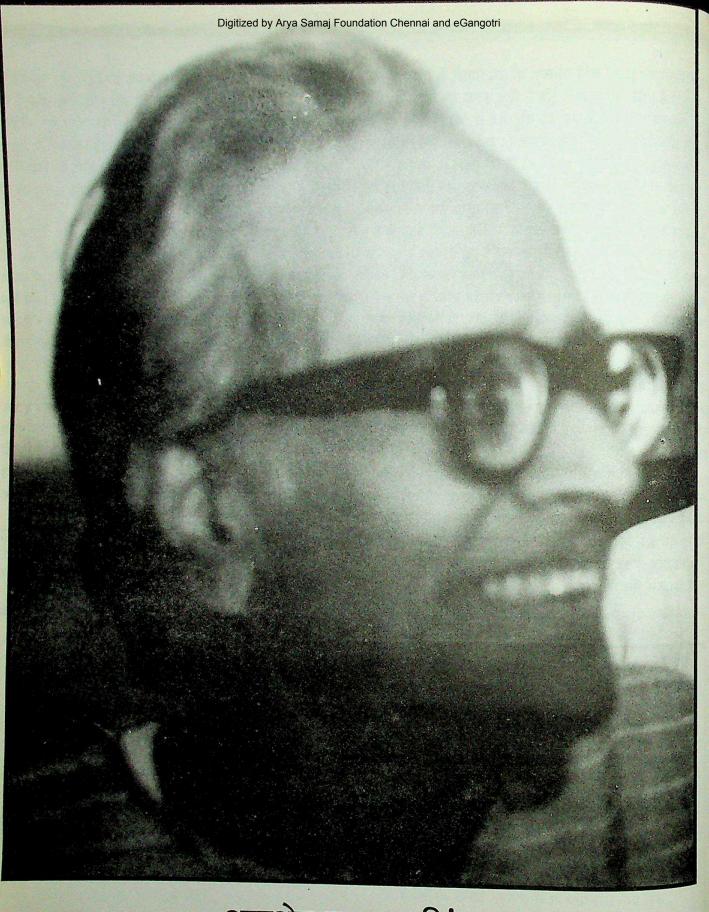
शमशेर की दृष्टि में कवि कर्म

कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने आंतरिक संस्कारों में समाज के सत्य के मर्म को ढालना— उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को पूरी कलात्मक क्षमता से पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है जहाँ तक वह हो सकता है।

शमशेर बहादुर सिंह का जन्म ३ जनवरी, १९११ को देहरादून में हुआ तथा निधन १२ मई, १९९३ को अहमदाबाद में। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा ग्रहण करने के बाद कविता की जमीन थामे हुए वे जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरते रहे। सन् १९४१ से १९४७ के बीच घोर अतार्किक भावुकता, रोमानी आदर्शवाद आदि से अपना रचनात्मक संघर्ष शुरू करनेवाले शमशेरजी जीवन के अंतिम समय तक सर्जनात्मक रूप से सक्रिय रहे।

जहाँ तक वैचारिक प्रतिबद्धता का सवाल है, साहित्य में व्याप्त खेमेबाजी के चलते कुछ आलोचकों ने उन्हें घेर-घारकर अपने खेमे में घसीटने का उपक्रम भले ही किया हो, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिल पाई। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि वे 'मार्क्सवादी मॉडल' और 'नई कविता के उभार' से प्रभावित हुए। श्रीअरविंद, रवींद्रनाथ, इकबाल, शेली आदि का प्रभाव भी उनपर दिखा; लेकिन उनकी समूची काव्ययात्रा और उनकी आलोचनात्मक टिप्पणियाँ इस बात की ही गवाही देंगी कि उन्होंने सबसे अलग होकर केवल स्वर की सच्चाई की चिंता करते हुए अपनी रचनाधर्मिता के लिए अपना रास्ता स्वयं तैयार किया।

शमशेरजी की प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं—**पद्य :** 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', 'चुका भी हूँ मैं नहीं', 'इतने पास अपने', 'उदिता—अभिव्यक्ति का संघर्ष', 'बात बोलेगी', 'काल तुझसे होड़ है मेरी', 'कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ'। **गद्य :** 'दोआब' (निबंध), 'प्लॉट का मोर्चा' (कहानियाँ-स्केच), 'कुछ गद्य रचनाएँ', 'कुछ और गद्य रचनाएँ' आदि। इसके अतिरिक्त वे 'नया पथ', 'मनोहर कहानियाँ', 'माया' आदि पत्रिकाओं के संपादन से भी संबद्ध रहे।

यह सही है कि शमशेरजी की गद्यात्मक कृतियाँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उनकी कहानियों और स्केच में गद्य की नई और पैनी भंगिमाओं के दर्शन होते हैं तो आलोचनात्मक निबंधों में उनकी वैचारिक टिप्पणियाँ तत्कालीन कविता और भाषा को समझने में मदद करती हैं। सच्चे कलाकार की सजीवता उनके गद्य में भी है; लेकिन अपने समूचे सर्जनात्मक व्यवहार में वे मूलत: कवि ही हैं। गद्य रचनाओं में भी कवि शमशेर अपने पूरे वजूद के साथ उपस्थित हैं।

शमशेरजी की कविताओं का फलक अत्यंत विस्तृत है। उनकी कविता की पंक्तियों को उधार ले कह सकते हैं कि 'अनगिनत आईनों को, न जाने कितने कोणों से प्रतिबिंबित किए हुए' उनकी कविता प्रेम, सौंदर्य, मनुष्य, देश, समाज और प्रकृति से जुड़े अनगिनत भाव-चित्रों में भावनाओं की सच्चाई को, जीवन की सच्चाई को खोज-खोजकर दिखाती रही।

'मेरी असली जमीन रोमानी रही और रोमानी ही बनी रही' कहनेवाले शमशेर के विराट् काव्यानुभव का एक बड़ा हिस्सा रागात्मक चेतना से संपृक्त है। देखा जाए तो उनकी रोमानी भूमि उन्हें व्यक्तिवाद के उस धरातल पर ले जाती है जहाँ व्यक्ति मन की अनंत गहराइयाँ हैं, अकेलेपन का संत्रास है। इस वैयक्तिक मनोभूमि में अनिश्चय की स्थिति में शमशेर अपने को ही तलाशते नजर आते हैं। लेकिन स्वीकारना होगा कि उनका यह वैयक्तिक बोध आधुनिकता के निकट है। इस पृष्ठभूमि पर वे रोमानी भूमि को व्यापक प्रसार देते हुए मानवीय आस्था, सत्-असत् के आत्मसंघर्ष, मूल्यहीनता की स्थिति और मृत्यु-बोध को व्यक्त करते हैं। अपनी प्रेमपरक कविताओं में वे प्रणय जीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि के रूप में सामने आते हैं। यह रोमानी कवि जब प्रकृति के सौंदर्य जगत् में प्रवेश करता है तो वह प्रकृति से निराला और पंत की ही तरह गहरा जुड़ाव दरशाता है।

आधुनिक काव्य-बोध के चलते सामयिकता का आग्रह भी शमशेर की कविताओं में बना रहा। बदलती हुई जटिल और भयावह दुनिया में मनुष्य की पीड़ा, मूल्यहीनता और गरिमा सब पर उनकी दृष्टि गई है। भारतीय मनुष्य की विषम परिस्थितियाँ और उनके सुख-दु:ख को विविध धरातलों पर उन्होंने अभिव्यक्त किया है। स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक संबंधों और परंपरागत संस्थाओं के बीच असमंजस, टकराव और संघर्ष की अनुभूतियों को भी उन्होंने विभिन्न आयामों के साथ चित्रित किया है। जहाँ परंपरा और आधुनिकता के बीच के दबाव हैं, तनाव हैं। आधुनिक युग-बोध की इस प्रक्रिया में शमशेर अपने काव्यानुभव को बराबर नवीनीकृत करते हुए चलते हैं। इसी कारण परंपरा से संघर्ष करने की चेतना भी उनमें यत्र-तत्र दिखाई देती है। लेकिन वे परंपरा से न तो गहरे स्तर तक जुड़े हैं और न ही आधुनिक विसंगतियों के मध्य से उसे स्वतंत्र चेतना दे सके हैं। फिर भी वे अपनी कविता में 'बुर्जुआ भावों की गुमठी को काट' नवीन प्राण-स्वर अर्थात् आधुनिकता को प्रश्रय देने के हामी हैं।

काव्यभाषा और शिल्प-कौशल के प्रति शमशेर में अतिरिक्त सजगता है। सूक्ष्म लयात्मक बोध, उर्दू-हिंदी से संस्कारित काव्यभाषा और शिल्पगत कसाव उनकी काव्य संरचना की खास पहचान है। 'बात बोलेगी हम नहीं, भेद खोलेगी बात ही' कहनेवाले शमशेर की कविता में बोलती हुई बात का भेद खुलवाना आसान नहीं होता, उसके लिए शिल्प की दीवार को भेदना पड़ता है। कविता के विशिष्ट मुहावरों को पकड़ने की क्षमता रखनेवाला विशिष्ट पाठक ही उनकी कविता की तह तक पहुँच पाता है। अन्यथा लय की धारा में बहकर दूर बैठे वह सुख ही पाता है। कविता का वस्तु तत्त्व उससे दूर छिटक जाता है।

शमशेर अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' के ही महत्त्वपूर्ण कवि नहीं हैं बल्कि वे नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। शिल्प के नए और विशिष्ट ढाँचे में ढली युगीन संवेदना की अभिव्यक्ति से संपन्न उनकी कविता नई कविता की शक्ति का पैमाना बनी।

□

एफ-९ जी, मुनीरका, डी.डी.ए. फ्लैट,
नई दिल्ली-११००६७

अपनी जड़ों से उखड़ने की भयावहता नई पीढ़ी के सामने मुँह बाए खड़ी है—चित्रा मुद्‌गल

प्रस्तुति—उर्मिला शिरीष

इन दिनों आप क्या लिख रही हैं ?

साल भर से मैं अपने नए उपन्यास 'एक काली एक सफेद' पर काम कर रही हूँ। जिसके भीतर निरंतर खदक रही कालिख गहरी बेचैनी सी दिल-दिमाग पर तारी है। प्रश्न चारों ओर से फन काढ़े घेरे हैं। लग रहा है कि पूरा-का-पूरा समाज काजल की कोठरियों में तब्दील होता चला जा रहा है। मनुष्य मनुष्यत्व का उपभोक्ता हो रहा! पलायन आम आदमी की प्रवृत्ति बन चुकी है। विकल्पहीनता को उसने स्वीकार कर लिया है। जूझने और मोरचेबंदी से उसकी निष्ठा डिग चुकी है, डिग रही है। प्रतिवाद उसे खोटे सिक्कों का पर्याय प्रतीत हो रहा है।

बड़ी अजीब बात है। पता नहीं, औरों के साथ यह होता है या नहीं। जब भी मैं कोई उपन्यास आरंभ करती हूँ—इर्द-गिर्द की दुनिया से मेरा नाता टूटने लगता है। उन लोगों की दुनिया मेरे भीतर डेरा डालने को उद्विग्न अपना स्पेस माँगने लगती है और मैं विवश हो उठती हूँ। लगभग बाध्य कर दी गई जबराई के चलते कि अब मुझे केवल उनके साथ रहना है—उन्हींमें से एक बनकर! क्योंकि उनकी और मेरी दुनिया अलग नहीं है। अलग होने के आडंबर से मैं मुक्त हो लूँ। जितनी जल्दी मुक्त हो सकती हूँ—बेहतर है। आजकल मेरा ठिकाना वहीं है।

हाल ही में प्रकाशित आपका नया उपन्यास 'आवाँ' काफी चर्चित रहा और इसपर काफी गंभीर चर्चाएँ चल रही हैं। इसको लिखने की प्रेरणा क्या रही ?

ट्रेड यूनियन से बतौर सक्रिय कार्यकर्ता मेरा लंबा नाता रहा। आज भी श्रमिक समस्याओं के निदान में मेरी गहरी रुचि है। श्रमिक बस्तियाँ मेरी चेतना शिविर। अपने समय और सीमा में। संयोग से विद्यार्थी जीवन में ऐसे श्रमिक मसीहा से परिचय हुआ जिसने अपना संपूर्ण जीवन श्रमिकोत्थान में उत्सर्ग कर दिया। राजपूत खानदान के मूल्यगत विसंगतियों से त्रस्त, असंतुष्ट मेरे मन को अचानक उनकी छत्रच्छाया में चेतना की राह मिली। वे दिन थे जब श्रमिक बस्तियों के बाशिंदों का आग्रह था कि मैं निगम पार्षदों के चुनाव में उनका प्रतिनिधित्व करूँ। लेकिन राजनीति में मेरे प्रवेश के विरुद्ध थे आदरणीय दत्ता सामंत और स्वयं मेरी माँ। उनका मानना था कि धारा से अलग खड़े होकर आप समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। गलत दिशा को वांछित मोड़ दे सकते हैं। यह सच है कि ट्रेड यूनियन के जिन अंतर्विरोधों और अवमूल्यनों से मेरा सामना हुआ—उसने मुझे अवाक् ही नहीं किया, विश्वास भी खंडित हुआ मेरा। उस समय भी आक्रोश अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रहा था। समझ नहीं पा रही थी कि असंतोष को कैसे और क्यों व्यक्त करूँ। मुद्‌गलजी का कहना था, तात्कालिक उग्रता आंदोलन की सकारात्मकता को उपेक्षित कर सकती है। प्रतिक्रिया व्यक्ति राग-द्वेष से ऊपर उठकर होनी चाहिए।

सन् १९९२ में जब नियोगी हत्याकांड हुआ—इस खबर ने मुझे भीतर तक दहला दिया। उसी क्षण मैंने निश्चय किया कि अब समय आ गया है, मैं ट्रेड यूनियन पर लिखूँगी। श्रमिक स्त्रियों के अधिकारों की पक्षधरता करनेवालों को भी कठघरे में खड़ा करना जरूरी है। मुंबई में एक भेंट के दौरान मैंने अपने निश्चय की जानकारी डॉ. दत्ता सामंत को दी थी। वेस्टर्न कोर्ट में आदरणीय मधुजी से भी चर्चा हुई थी। दोनों ने लगभग एक ही प्रश्न किया था, 'क्या ट्रेड यूनियन के संदर्भ में तुम्हारा रुख नकारात्मक है ?' मेरा उत्तर था, 'नहीं, सकारात्मक है। लेकिन मैं श्रमिक आंदोलन की संगठन शक्ति को क्षीण करनेवाली आंतरिक राजनीति को उजागर करना चाहती हूँ। पूँजीपतियों की अतियों के खिलाफ तो वह लड़ सकता है; किंतु संगठन के भितरघातों से वह कैसे मुक्त हो ? यथार्थ से रू-ब-रू हो संगठन को आत्म-विश्लेषण की जरूरत नहीं ?'

अफसोस! मैं उस श्रमिक मसीहा के जिंदा रहते 'आवाँ' पूरा नहीं कर

पाई। १७ जनवरी, १९९७ को जब मैंने उनकी हत्या की खबर सुनी, हफ्ते भर मानसिक आघात से उबर नहीं पाई। मित्रों ने फोन कर हिम्मत बँधाई। पहले नियोगी और फिर डॉ. दत्ता सामंत की क्रूर हत्या! प्रतिक्रियावादी ताकतों के निरंतर मजबूत होते जाने का प्रमाण नहीं है? दत्ताजी हमेशा कहा करते थे, 'मुझे कौन मारेगा? कभी किसीका अहित किया ही नहीं है मैंने।'

कितने संशयों ने घेरा था उस क्षण! सच के नयन-नक्श क्या हैं! पूँजी सत्ता स्वयं किसीका वध नहीं करती। संगठन में से ही किसी अति महत्त्वाकांक्षी को खरीदकर अपनों के ही खिलाफ—मौत की सुपारी पकड़ा देती है।

इस उपन्यास के किस पात्र या घटना ने आपको सबसे ज्यादा उद्वेलित किया है?

प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा सुनंदा की हत्या ने। सुनंदा की हत्या नारी चेतना की हत्या की साजिश है। साथ ही दलित वर्ग से आया पवार दूसरा ऐसा जटिल किरदार है जिसकी बेबाकी ने कई बार मेरी कलम को ठिठकाया कि है हिम्मत सच से सामना करने की तो—करके देखो।

एक रचनाकार के रूप में आपकी मानवीय, सामाजिक और राजनीतिक चिंताएँ क्या हैं?

एक विकासशील स्वतंत्र राष्ट्र में कानून और व्यवस्था का निरंतर पंगु होते चले जाना चिंतनीय तथ्य है। नागरिक जीवन पूर्णत: जटिल और असुरक्षित हो गया है। कब किसके साथ क्या घट जाए—कोई नहीं जानता। न्याय प्रणाली जेबें भरनेवालों की अंकशायिनी सिद्ध हो रही है। मामूली-से-मामूली केस अदालतों की दीवारों पर सिर पटक-पटक बरसों बरस खिंचता ही नहीं है, अधिकांश प्रकरणों में न्याय की उम्मीद में वादी स्वर्ग सिधार लेता है।

बाजारवाद अब केवल बाजारों में क्रय-विक्रय तक सीमित नहीं रहा, व्यक्तिवादिता और भोगवादिता के चलते लोगों की प्रकृति और प्रवृत्ति बन चुका है। भूमंडलीकरण के चलते हम वैश्विक तो हो रहे, लेकिन अपनी जड़ों से उखड़ने की भयावहता नई पीढ़ी के सामने मुँह बाए खड़ी है। संस्कृतियों का मेल चिंता का विषय नहीं। चिंता का विषय है अपनी सांस्कृतिक विरासत को लगभग दफन करने की तैयारी। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपनी सार्थक भूमिका से छिटक अपसंस्कृति का पर्याय बन रहा। देश के नौजवानों के लिए वह नित नए जुआघर खोल रहा, उन्हें शॉर्टकट के गुर सिखा रहा। मेहनत-मशक्कत की महिमा का ऐसा भोंड़ा अश्लील मजाक हमारे देश में ही संभव है। अगर यही समय के साथ होना है तो अपनी आस्तीनों में स्वयं मुँह छिपा लेना ही उचित होगा और अपनी मौत की घोषणा कर देना भी।

आज आप कैसा रचनात्मक माहौल पाती हैं?

चुके हुए लोगों की हताश फुफकारों के विष-वमन से प्रदूषित। दु:ख और क्षोभ के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि हम जिस विरासत में रचनारत हुए वह गुरु समान उन साधक रचनाकारों से सिंचित-पल्लवित हुई जिन्होंने लगातार समाजसापेक्षीय रचना-दृष्टि से हमें संस्कारित किया। सर्जनरत रहते हुए हमने यह गहरे अनुभूत किया कि अपनी प्रत्येक रचना के साथ रचनाकार विकास की सीढ़ियाँ चढ़ता है, संवेदनाओं में व्यापकत्व ग्रहण करता है और विवेक में समदृष्टि।

विचारणीय है, विरासत में हम सर्जनरत नई पीढ़ी के लिए कौन सी जमीन छोड़ेंगे; छोड़ रहे हैं। उस दलदल में क्या वह साँसें ले पाएगी? बचा पाएगी उस रचनात्मक भूख को कि लेखक की पीठ व्यास पीठ है?

दरअसल, लोगों की रुचियाँ भ्रष्ट कर साहित्य को विस्थापित करने का षड्यंत्र इलेक्ट्रॉनिक मीडिया नहीं रच रहा। बड़ी सहजता से इन आड़ों को ओढ़ हम अपनी भूमिका से मुठभेड़ करने से कतरा लेते हैं। वास्तविकता यह है कि कुछेक पत्रिकाओं के संपादक संपादकीय एथिक्स से आँख मूँद चुके हैं। उनका उद्देश्य रचनात्मकता के प्रति पाठकों को जागरूक करना नहीं रहा, न वो आईना देना (बकौल डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी) जिसमें वे अपने व्यवस्थागत इस्तेमालों और शोषणों की साजिशों को सूँघ सकें। उनका एकमात्र लक्ष्य है स्वयं को चर्चा में बनाए रखना और मसालों के माध्यम से सेलीब्रेटी होने का तमगा पहनना। यह भी कि पत्रिका की बिक्री में कुछ इजाफा हो सके। वे भूल गए कि बिक्री बढ़ाने के लिए ऐसे हथकंडे फिल्मी पत्रिकाएँ अपनाती रही हैं, साहित्यिक पत्रिकाएँ नहीं। आज पूरे देश में एक ऐसे ही चुके हुए नई कहानी दौर के रचनाकार सुर्खियों में हैं। एक कथा पत्रिका में उनका सनसनीखेज साक्षात्कार एवं एक अन्य साहित्य के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका में प्रकाशित उनका अश्लील लेख, जो स्त्री अस्मिता को सरेआम बाजार में नंगा कर रहा और उनके उस ढोंग के भी परखचे उड़ा रहा है, जो वे दलित और स्त्री के पक्षधर के रूप में अब तक प्रचारित-प्रसारित करते रहे हैं।

यह जो अंधकार हम बो रहे हैं—साहित्यकार होने के नाते, आत्मविश्लेषण की माँग नहीं करता है।

इन दिनों आप क्या पढ़ रही हैं और क्या पढ़ना पसंद करती हैं?

जब मैं लिख रही होती हूँ तो उन दिनों गंभीर चीजें पढ़ना लगभग स्थगित हो जाता है। पत्र-पत्रिकाएँ पलटने की बात अलग है। ऐसे में मैं किसी यात्रा की प्रतीक्षा करती हूँ, ताकि चुनी हुई उन पुस्तकों को पढ़ने की सुविधा हासिल कर सकूँ जिन्हें पढ़ने की ललक से मैं भरी हुई हूँ। इधर मैंने दो पुस्तकें पढ़ने के लिए चुन रखी हैं। चंद्रकांता का कश्मीर की पृष्ठभूमि पर लिखा गया महत्त्वाकांक्षी उपन्यास 'कथा सतीसर', जो निश्चित ही केवल चंद्रकांता लिख सकती थीं। दूसरी पुस्तक है महेश दर्पण द्वारा संपादित 'बीसवीं शताब्दी की हिंदी कहानियाँ', जो बारह खंडों में है; जिसकी श्रम-साध्य, समाज सरोकारीय, शोधपरक भूमिका पढ़कर मैं लगभग चित्त हूँ। इतने चुनौतीपूर्ण कार्य को अंजाम देना आसान काम नहीं; क्योंकि महेश दर्पण को मात्र कहानियाँ भर नहीं चुननी थीं, अपने समय के आईनों की धूल झाड़ उन प्रतिच्छवियों के चेहरों की सलवटों को छूना-परखना भी था जो आदमी की निरंतर मुठभेड़ों की गवाह हैं। अद्भुत काम किया है महेश दर्पण ने!

बी-१०५, वर्धमान अपार्टमेंट्स
मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-११००९

अजोधिया न जाबइ!

अभिराजराजेंद्र मिश्र

रामकथा का लोकगीतात्मक स्रोत, मेरी दृष्टि में, पौराणिक एवं अपने मौलिक स्रोत (वाल्मीकि रामायण) से भी कहीं अधिक विलक्षण है। प्रकरणवक्रता एवं अभिनव-प्रस्थान का जो शिल्प इन लोकगीतों में दीखता है, वह कालिदास एवं भवभूति की प्रतिभा को भी चुनौती देता प्रतीत होता है। भास, कालिदास, अभिनंद, भवभूति, कुमारदास, मुरारि, राजशेखर, जयदेव, शक्तिभद्र एवं महादेव से लेकर बौद्ध एवं आर्हत परंपरा के कवियों तक प्रायः सबने अपने रामकथा पात्रों की सृष्टि अपनी रुचि के अनुकूल की है। सबके राम पृथक् हैं, सबकी सीता पृथक् हैं, सबके लक्ष्मण पृथक् हैं।

परंतु अवधी लोकगीतों की सीता का क्या कहना! वह तो अभिजात संस्कृत साहित्यकारों की सीता सृष्टि को भी अतिक्रांत करती प्रतीत होती हैं। विशेषकर राम द्वारा अकारण निर्वासित सीता का जो उदात्त स्वरूप इन गीतकारों ने अंकित किया है वह नारी-स्वाभिमान की दृष्टि से अद्‌भुत एवं अभिनंदनीय प्रतीत होता है।

कालिदास के राम अपवादभीरु हैं। वह सीता को निरपराध जानते हुए भी, मात्र वंश मर्यादा एवं आत्मयश की रक्षा के लिए निर्वासित कर देते हैं और इतने पर भी शुद्धशीला वैदेही राम के प्रति मन में कोई मालिन्य नहीं पालतीं। वह तो उलटे अपने निर्वासन को अपने ही 'जन्मांतर-पातकों का विस्फूर्जन' मानती हैं और यह अटूट निष्ठा व्यक्त करती हैं कि 'अगले जन्म में भी राम ही मेरे पति हों (परंतु) उनसे मेरा वियोग न हो'—भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः॥

भवभूति के राम प्रजानुरंजन-व्रत के पालनार्थ निरपराध पत्नी का त्याग करते हैं—'यदि वा जानकीमपि-आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा'—अर्थात् लोकाराधन के लिए तो (प्राणप्रिया) जानकी तक का परित्याग करने में मुझे कोई व्यथा नहीं है। राम ने यह कहा भर ही नहीं, कर भी दिखाया। भवभूति की निर्वासिता सीता भी, इस अवमानना के बावजूद, स्वामी के प्रति खिन्न नहीं है, आक्रोशमुक्त नहीं है।

परंतु अवधी लोकगीतों के कवियों ने नारी मनोविज्ञान को भली-भाँति समझा है। वे कवि न्याय (पोएटिक जस्टिस) के भी पक्षधर हैं। फलतः लोकगीतों की सीता को हम अवमानना, कलंक एवं तिरस्कार की ज्वाला में दग्ध होती देखते हैं। वह कुलगुरु वसिष्ठ के प्रति तो श्रद्धालु हैं, देवर लक्ष्मण को भी 'विपत्ति-बंधु' के रूप में जानती-पहचानती हैं, उनके प्रति वात्सल्य भी प्रकट करती हैं; परंतु निरंकुश, आततायी, हृदयहीन एवं राज्याधिकार-दुर्मद राम के प्रति उनका प्रतिहिंसालु मन सर्वथा उदासीन है।

लव-कुश का जन्म होते ही जब सेवक 'रोचना' (शुभ संवाद) लेकर अयोध्या आते हैं और कुमार लक्ष्मण उसे आह्लादपूर्वक सिर-माथे लगाते हैं तो दातौन करते राम को भी यह मंगलवृत्त ज्ञात होता है। उनके मन में प्रसुप्त सीता विछोह की पीर दावाग्नि बन जाती है और वह अपने अश्वमेध यज्ञ में सीता को ले जाने के लिए गुरु वसिष्ठ एवं भाई लक्ष्मण पर जोर डालने लगते हैं।

मूल रामकथा (वाल्मीकि रामायण) में भी सीता महर्षि वाल्मीकि के साथ राम के अश्वमेध यज्ञ में आती हैं; परंतु सहधर्मिणी बनने के लिए नहीं, प्रत्युत चरित्र-सत्यापनार्थ! लोकगीतों में वाल्मीकि का स्थान कुलगुरु वसिष्ठ लेते हैं। राम का अश्वमेध यज्ञ सीता के अभाव में अधूरा है। कहाँ जीवित अर्धांगिनी सीता और कहाँ उनकी निर्जीव सुवर्ण प्रतिमा! राम सीता के लिए व्याकुल हैं, विक्षिप्त हैं। परंतु सीता को मनाए कौन! भला वह राम का कहा मानेंगी! जिस राम ने सीता की, लंका में भरे समाज के समक्ष, चिता की आग में सोने की तरह धधकाकर (शुद्धता की) परीक्षा ली, जिसने उन्हें विपत्ति के अथाह सागर में डुबो दिया—क्या उस हृदयहीन राम का कहा सीता मानेंगी? चाहे पृथ्वी फट जाए और सीता उसीमें जीवित समा जाएँ, परंतु उस 'पापी' राम का मुँह नहीं देखेंगी!

परंतु निष्ठुर पति से विमुख स्वाभिमानिनी सीता इतनी विवेकहीन भी नहीं कि स्त्रियोचित शील एवं आर्जव भी भूल जाएँ। एक राम के प्रति वह कठोर एवं निरपेक्ष हैं, परंतु विपत्ति के सहचर प्रिय देवर लक्ष्मण के प्रति नहीं। गुरु वसिष्ठ के प्रति भी उनका सम्मान भाव सर्वथा अक्षत है। वस्तुतः लोकगीतों की सीता, रघुवंश महाकाव्य (कालिदास) की सीता से भी कहीं अधिक स्वाभिमानिनी हैं। फलतः वह दारपरित्यागी राम से अनुनय नहीं करतीं*, बल्कि उन्हें 'पापी' कहकर, उनके अभद्र आचरणों

* वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥ ६१
कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः॥ ६२
साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः॥ ६६

—रघुवंश, सर्ग १४

तक को एक-एक करके गिना डालती हैं।

चइतइ केरि नउमियाँ राम जी जगि रोपेनि हो
बिन रे सीतहिं जग सून, सितहिं लइ आवउ हो!
एतनी बचन राम सुनेनि, गुरु के मंडिल गयेनि हो
गुरु! तोहरै कहन सीता करिहैं, अजोधिया बसावउ हो!
अगवाँ के घोड़वा बसिष्ठ जिउ, पछवाँ के राम जिउ हो
नीले घोड़े लछिमन देवरा त रिसि कै मड़इया पूछइँ हो!
अरे अरे कवनी मड़इया जहवाँ सीता तप करइँ हो
एतनी बचन सीता सुनीं, सुनहिं नहिं पाइँन हो॥
दहिने हाथ लिहे चन्नन-पिढ़ई, बाएँ हाथे गेंडुवा हो
सीता निहुरि निहुरि चरन धोवैं औ सिर पै चढ़ावइँ हो!
एतनी जौ बुधि सीता तोहरे, सरब गुन-आगरि हो
सीता! केकरी बुधि से भला चलिउ, त वन लागिउ सेवइ हो?
एक बचन हम कहबइ, जउ तुहूँ मानउ हो
एक बेरी चलतिउ अजोधिया, अजोधिया बसावउ हो!
एतनी तौ बुधि गुरु! हमरे सरब गुन-आगरि हो
गुरु! राम कै बुधि से चालिउँ त बन लागिउँ सेवइ हो!!
सोनवाँ की नइयाँ धधकाएनि, औ जल माँ डुबाएनि हो
गुरु! तबउ राम एस के बिछोहिन कि बन लागिउँ सेवइ हो!!
तोहरा कहा गुरु करबइ, परग दस चलबइ हो
गुरु! फाटइ धरतिया समउबइ, पपियवा-मुँहना देखबइ हो!!
एतनी बचन गुरु सुनेनि त राम सनकाएनि हो
दहिन हाथ धरेन जे राम, त बावाँ हाथ लछिमन हो!!
अरे अरे लछिमन देवरा! बिपतिया के नायक हो
देउरा! सिर पै जामे कुस-कास उहइ लइके जायऽ
अजोधिया तोहरी बसिहइँ हो!!

[—प्रतापगढ़ जनपद (उ.प्र.)]

लोकगीतों की सीता गाँव-गिराँव की माटी में जनमी हैं। वह भला पुनर्जन्म, कर्मविपाक-रहस्य तथा कठोर राजधर्म क्या जानें? उन्हें तो बस पति द्वारा किए गए अपमान मात्र याद हैं। उन कलंकों तथा अपमानों के बाद भला क्या रह गया? अब पाषाण-हृदय राम से उनका चित्त कैसे मिल सकता है? सुल्तानपुर जनपद के लोकगीत में वह मर्म द्रष्टव्य है—

सीता गुरुजी के चरन पखारइँ अउ मथवा चढ़ावइँ हो
मोरे रामा, अतरी अकिल सीता तोहरे त बुधि कइ आगरि हो
सीता! के तोहरा हरा है गियान, रामहिं बिसरायउ हो!
ए हो, सब तौ हवाल गुरु! जानउ, जानि अनजान बनउ हो
गुरु! अतरी साँसति मोरि कीन तउ कइसे क चित मिलहिं हो!
ए हो, तोहरा कहा गुरु मनबइ, परग पाँच चलबइ हो
गुरु! उलटि हियाँ चलि अउबइ, अजोधिया न जाबइ हो!!

इतना ही नहीं, मनस्विनी सीता देवर, गुरु एवं तपोवनवासियों के समक्ष ही राम के आचरण में तिरोहित अंतर्विरोधों को खोलकर रख देती हैं और अपनी अवमानना के लिए पूरी अयोध्या को ही शाप देती हैं—

चइतहि कै तिथि नउमी त राम जागि करिहइँ हो
सखिया! बिन हो सितल जगि सून, सितल रानी बन सेवइँ हो!!
सोने के खरउवाँ राजा रामचंद्र माता से अरज करइँ हो
माता! बिन हो सीता के जागि सून, सितल रानी बन सेवइँ हो!!
सोने के खरउवाँ बसिष्ठ मुनि बेदिया पै ठाढ़ भए हो
गुरुजी! रउरे मनाए सीता मनिहइँ मनाइ लेइ आवाउ हो!
आगे के घोड़वा गुरु बाबा, त पीछे के लछिमन देवरा हो
ए हो, अल्हरे बछेड़वा राजा रामचंद्र सीता के मनावइ चलें हो!!
अँगना बहारइ चेरिया तउ, अउर ऊ लउँड़ियउ हो
रानी! आइ गएनि गुरुजी तोहार तउ तुमका मनावइ हो!!
झूठइ चेरिया-लउँड़िया! त झूठहि तोरी बोलियउ रे
चेरिया कहाँ बाटइ भागि हमारि जउ गुरु मोरे अइहइँ हो!!
जउ मोरे गुरु बाबा अइहइँ चरन धोइ, पियबइ हो
सखिया! मथवा चढ़उबइ गुरु-पाउँ त जनम सुफल होई हो!!
अतनी अकिल सीता! तोहरे तू बुधियन आगरि हो*
सीता! कवने गुन छोड़ेउ अजोध्या, रामहिं बिसरायउ हो?
समझउ न ए राम! उह दिन, जवने दिन बियाह भए हो
राम! असी मन कै धनुष उठाएउ, निहुरि अउँठा छूएउ हो!!
समुझउ न ए राम! उह दिन, जवने दिन गवन आए हो
राम! मखमल सेजिया बिछाएउ, हिरदइयाँ लइके सोएउ हो!!
समुझउ न ए राम! उह दिन, जवने दिन बन गएउ हो
राम! बँहिया पकरि के निकारेउ, उलटि नाहीं चितएउ हो!
राउर कहन गुरु! करबइ परग पाँच चलबइ हो
गुरु! अजोध्या माँ बसे डोम-चंडाल, अजोधिया न जाबइ हो!!

[

११४, टीचर्स हॉस्टः
समर हिल, शिमला-

* एतनी बुधि है सीता! तोरे अकिलियनि आगरि
सीता! काहें अवध दिहेउ छाँड़ि रमइया बिसराएउ!!
सीता! तुमका आनन हम आएन अवध लइ चलबइ
पाँच परग गुरु चलबइ, तोहार कहा करबइ
गुरु! मेहू तें बिकट बन होइहैं, अवध नाहीं जाबइ!!

[—बस्ती जनपद (उ.प्र.)]

नवांकुर

कविताएँ

जन्म : १९.१०.१९८८ को बुधवाई, बदायूँ (उ.प्र.) में।
शिक्षा : कक्षा ९ में अध्ययनरत।
प्रकाशन : प्रस्तुत कविताएँ प्रथम बार प्रकाशित।
प्रसारण : सन् २००० में ऑल इंडिया रेडियो (उर्दू सर्विस) से बाल कार्यक्रम 'आओ बच्चों प्रोग्राम' में होली पर एक कविता।

✍ शिवम् श्रोत्रिय

मन और आत्मा
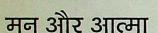
'मेरा मन'
भेजता है मुझे सूचना,
कहना चाहता है मन
मुझसे
अपने मन की व्यथा,
पर सुन न सका कभी सूचना,
नहीं समझ सका
मन की दुविधा।
क्योंकि मेरी आत्मा
काटकर टेलीफोन के तार,
रोककर संदेश
बढ़ाती है
उन्नति के पथ पर—
मुझको,
नहीं!
'मुझको नहीं, खुद को'
क्योंकि 'मैं'!
'मैं' तो है नश्वर नाशवान्
'मैं' का राजा है खुद आत्मा या प्रान
मन का तो पता नहीं,
पर आत्मा है महान्।
पर जिस दिन—
आत्मा की कुल्हाड़ी की धार
न काट सकी सूचना के तार,
मुझे मिलेगा मन का संदेश,
जान जाऊँगा मन का रूप
भूलकर उन्नति का पथ
पछताऊँगा, छटपटाऊँगा
मगर फिर न उबर पाऊँगा,
इसीलिए!
आत्मा के पक्ष में रहूँगा,
आत्मा के पक्ष में कहूँगा,
क्योंकि
जानने लगा हूँ,
पहचानने लगा हूँ
मन और आत्मा का भेद,
मन कर देता है—
शरीर में दुर्गुणों के छेद।
आत्मा देती है आत्मसंयम,
पर मन!
कर देना चाहता है कम,
भले दोनों एक शरीर में हैं
पर अलग-अलग।
जैसे नाक केवल सूँघती है
और आँख देखती है,
एक शरीर में होकर भी—
दोनों में कार्य-भेद है,
वैसे ही—
मन मन है, आत्मा आत्मा,
उनमें सचमुच कार्य-भेद है।
हे मेरी आत्मा!
शरीर पर घिसकर
कुल्हाड़ी की धार,
काटती रहना—
सूचना के तार।
अवनति से बचाकर
उन्नति के पथ पर
बढ़ाना मुझको,
नहीं!
'मुझको नहीं, खुद को'। □

दर्पण में दर्प

'एक दर्पण'
अरे, वही!
काँच का दर्पण
जिसे—
आईना भी कहते हैं।
इसी आईने या दर्पण को—
जो काँच का है
अपने हाथों में लेकर
देखो! और झाँको!
दिखेगा 'एक चेहरा',
जो हू-ब-हू
तुम्हारी तरह है
साधारण!
इसे छोड़ो
मगर
मत फोड़ो

क्योंकि यह
मन के आईने
से तो अच्छा है।
अगर झाँकोगे
इस
मन के आईने में
तो एक महान् चेहरा
दिखेगा
जो हू-ब-हू
तुम्हारी तरह है।
मगर बहुत महान्
और दर्प भरा।
फिर भी
नहीं दीखता
चेहरे के पीछे
छिपा अहं,
यह सब है
मन का
केवल वहम।
काँच का दर्पण
और मन का आईना,
इनसे तो अच्छा है
तुम्हारी आत्मा का आईना।
मगर तुम
क्योंकर झाँकोगे,
तुम तो उसे
देखकर भागोगे।
तुम्हें पसंद है
अपना महान् चेहरा,
जरूर पूरा करोगे
मन का इशारा।
मन की कुत्सित, घृणित
इच्छाएँ ही तुम
करोगे पूरी।
क्योंकि
आत्मा के आईने में
देखोगे और झाँकोगे
तो उसमें पाओगे
महान् चेहरे के पीछे—
छिपा हुआ
काला, भयंकर
जहरीले, जीभ लपलपाते
काटने को दौड़ते—
हुए सर्प—
की तरह
तुम्हारा दर्प!
और
महान् चेहरे का वहम—
है जाड़े में ठिठुरते
भोलेभाले पशु की तरह
काँपता हुआ सा—
नितांत भ्रम!
यही दर्प
ले जाता है सबको—
विनाश की ओर
जहाँ है चारों ओर
नितांत अंधकार घोर
केवल! □

ग्रा. + पो.—खेला, वाया—धारचूला,
जनपद—पिथौरागढ़ (उत्तरांचल)

आवश्यक सूचना

प्रिय पाठको! 'नवांकुर' स्तंभ के अंतर्गत केवल पच्चीस वर्ष तक की आयु के लेखकों की ही रचनाएँ—कहानी, लघुकथा, कविता, आलेख, व्यंग्य आदि सभी विधाएँ—प्रकाशित की जाएँगी।

कृपया रचना के साथ अपनी जन्मतिथि का प्रमाणपत्र भी भेजें।

आपकी रचनाओं का स्वागत है।

कविता

नई आशा का जन्म

✍ शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव

आशाएँ पहाड़ों से नहीं झरतीं,
धरती से ही उपजती, पनपती हैं।
आशाएँ केवल कलियों की तरह खिलतीं
ही नहीं,
फूलों की तरह झड़ती भी हैं।
वे केवल अक्षरों के साथ नहीं पनपतीं,
अक्खड़ों के साथ मचलती हैं, फुदकती हैं।
उन्हें वे पसंद नहीं आते
जो बस उनके रूप को सराहते हैं
प्रशंसा के पुल बाँधते हैं
तरह-तरह के वादे करते हैं
बहकाते, फुसलाते हैं
और फिर उन्हें अधूरी छोड़ देते हैं।
उन्हें तो वे भाते हैं जो उन्हें जब
मन से अपनाते हैं तो उनकी ही
माँग पूरी कर देते हैं,
मरते दम तक जो उन्हें नहीं छोड़ते
किसी निराशा को सौतन बनाकर नहीं लाते
न थकते, न ऊबते
बार-बार प्रयास कर
अपनी रत्नगर्भा से
एक नई आशा पैदा कर लेते हैं। □

एम २/११, राजेंद्र नगर,
पटना-८०००१६

भूल सुधार

'साहित्य अमृत' मार्च २००१ अंक में पृष्ठ २२ पर प्रकाशित निबंध का शीर्षक 'रामकृष्ण परमहंस का महाप्रयाण' भूलवश गलत छप गया है। कृपया पाठक उसे 'रामकृष्ण परमहंस का जन्म-पर्व' पढ़ें।

मेरे मित्र बलदेवजी

✍ आशुतोष भट्टाचार्य

[लिप्यंतर—अजय मिश्र]

अपने मित्र, बालसखा बलदेवजी के लिए क्या लिखूँ! वे 'कैसा' लिखते थे, यह बताने के लिए उन सरीखा ज्ञानी, पंडित तथा विद्वान् होना होगा, जो मैं नहीं। इसलिए वे 'कैसा' लिखते थे की बजाय 'कैसे' लिखते थे तक सीमित रहूँ तो उचित। बलदेवजी जैसा संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिंदी, अंग्रेजी, बँगला, गुजराती, उर्दू और मराठी का समग्र ज्ञान एक ही स्थान पर कम मिलता है। ब्रजभाषा और बनारसी बोली के तो वे धुरंधर जानकार थे ही।

शुरुआत उन्होंने ब्रजभाषा और बनारसी बोली में कविताओं से की। तब वे आठवीं में थे। अखबारों में छपना शुरू हुआ एक साल बाद, नौवें दरजे से। तब सेंट्रल हिंदू स्कूल में कक्षाध्यापक थे पं. साँवलजी नागर। स्वयं साहित्यिक होने के कारण बलदेवजी को बहुत मानते थे। वे बलदेवजी को 'आज' के संपादक बाबूराव विष्णु पराडकर के पास ले गए। उनकी कहानियाँ, लेख तथा कविताओं का प्रकाशन 'आज' में होने लगा।

जब बलदेवजी दसवीं में थे, स्कूल वापसी में एक दिन अपनी कहानियों के साथ प्रेमचंदजी से मिले। उन दिनों प्रेमचंदजी गदौलिया के गिरजाघर चौमुहानी के आगे एक मकान में रहते थे। यहीं बाद में 'सरस्वती प्रेस' खुला। उनसे बलदेवजी को प्रोत्साहन मिला। उनकी कहानियाँ, कविताएँ 'जागरण' में छपने लगीं। 'जागरण' में छपी कहानियों को प्रेमचंदजी ने 'अनुभूति' नामक कहानी संग्रह के रूप में सरस्वती प्रेस से छापा। इसी बात से बलदेवजी की प्रतिभा और प्रेमचंद के उनके प्रति स्नेह को समझा जा सकता था। 'हंस' में भी बलदेवजी की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। 'हंस' के 'काशी अंक' में बलदेवजी के दो लेख थे।

तब तक कहानी लेखक के रूप में बलदेवजी प्रतिष्ठित हो चुके थे। सन् १९३७ में ब्रजभाषा में लिखी उनकी कविताओं का संग्रह 'ब्रजविभूति' छपा। फिर दो माह बाद हिंदी कविताओं का संग्रह 'दीपदान'। प्रेमचंद चाहते थे कि बलदेवजी अपनी प्रतिभा का उपयोग कहानी लिखकर करें, कविता में रुचि न लें। इसके विपरीत उनकी कविता में रुचि बढ़ रही थी। उन दिनों दो घटनाएँ एक साथ हुईं। पहले प्रेमचंदजी की मृत्यु, फिर कुछ दिन बाद उनकी माँ की मृत्यु हुई। तब वे इंटर करने के बाद बी.ए. में दाखिला ले चुके थे। बलदेवजी के पिता काशी के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् थे—महामहोपाध्याय पं. विद्याधर मिश्र। संवेदना प्रकट करने गए महामना मालवीय ने बलदेवजी से पूछा, 'कहाँ पढ़ते हो?'

बलदेवजी ने उत्तर दिया, 'आपके ही यहाँ बी.ए. में।'

तब मालवीयजी ने विद्याधरजी को फारसी का एक मुहावरा सुनाया जिसका अर्थ था, 'यदि काबा से ही कुफ्र उत्पन्न हो तो मुसलमानी कहाँ जाएगी?'

मालवीयजी की यह उक्ति बलदेवजी को चुभ गई। वे सामान्य प्रतिभावाले छात्र न थे—साहित्यानुरागी होते हुए भी वे बहुत अच्छे नंबर लाते थे। हम लोगों ने उन्हें बहुत समझाया, किंतु वे न माने। पढ़ाई छोड़ दी। संस्कृत के महान् विद्वान् गोस्वामी दामोदरलाल का शिष्यत्व ग्रहण किया। उस समय तक उनकी कहानियाँ 'हंस', 'विश्वामित्र', 'प्रपंच', 'आँधी', 'तरंग', 'आज' तथा 'संसार' में धूम मचाने लगी थीं। अल्पायु में लिखना शुरू करने तथा प्रतिष्ठित पत्रों में लगातार छपने पर भी उन्हें अभिमान न था। गोस्वामीजी के चरणों में जाने के बाद उनका कहानी लिखना कुछ कम हो गया। उन्हीं दिनों एक और घटना हुई। हम लोगों के अन्य मित्र 'रुद्र' काशिकेय ने उन्हीं दिनों बनारसी बोली में कविता लिखना शुरू किया तो बलदेवजी ने, जो 'बनारसी' नाम से बनारसी बोली में लिखते थे, बनारसी बोली में लिखना बंद कर दिया। जीवनपर्यंत भोजपुरी में कविताएँ नहीं लिखीं। मित्र के लिए ऐसा त्याग बलदेवजी ही कर सकते थे। 'रुद्रजी' पर उन्होंने एक लंबी कविता लिखी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ याद हैं—

> आगमन आपका हर्षित करता है
> मन, धन, तन, प्राण, गृह और स्नेह को।
> खोपड़ी की पिछली खिड़की सी छूती हुई
> अलकें मुग्ध नायिका-सी
> मुग्ध करती हैं आज!
> चोली धारीदार जैसे खाल वृद्ध चीते की है
> पंजे से दोनों नग्न हस्त विस्तृत
> आमिष-सम पुस्तिका उनमें धरी हुई
> इस प्रकार साकार शोभित हैं
> मेरी बैठक गुफा में 'रुद्र' बने शिवजी!

रुद्र तथा बलदेवजी की जोड़ी तब बनारस में प्रसिद्ध थी। रुद्र के पिता पं. महावीरप्रसाद मिश्र तीर्थ पुरोहित थे। व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के कारण पचासों लठैत हर समय ड्योढ़ी पर मौजूद रहते। बलदेवजी के

पिता संस्कृतज्ञ थे। रुद्र ने तीर्थ पुरोहितों, पंडों पर चोट की; जबकि बलदेवजी ने अपनी कहानियों में ब्राह्मणों की लोलुप वृत्ति पर, मूर्ख बनानेवाले पंडितों पर। दोनों एक प्राण, दो शरीर थे। गोयनका पुस्तकालय, कारमाइकेल लाइब्रेरी, गवर्नमेंट कॉलेज तथा नागरी प्रचारिणी सभा दोनों साथ ही जाते थे। एक पढ़ता था, दूसरा सुनता था। लगभग साथ ही लिखना शुरू किया। बनारस पर दोनों ने लिखा है। फिर भी बलदेवजी की कहानियों में विविधता और पकड़ रुद्र से अधिक है। उनकी नजर से कुछ बचता न था। वे छोटी-छोटी घटनाओं, बातचीत-प्रसंगों में कल्पना का पुट दे चुटीली कहानियाँ लिखने में समर्थ थे। बनारस पर बलदेवजी जैसी कहानियाँ किसीने नहीं लिखी हैं।

बलदेवजी को अपने समय के सर्वश्रेष्ठ गुरु मिले थे। संस्कृत साहित्य तथा न्यायशास्त्र के लिए पिता व चाचा शिवदत्त मिश्र, कहानी लेखन के लिए प्रेमचंद, पत्रकारिता के लिए पराडकर तथा नाट्यशास्त्र के लिए गोस्वामी दामोदरलाल। पं. साँवलजी नागर, रामचंद्र शुक्ल तथा 'संसार' के मुकुंदीलालजी का वरदहस्त तो उनपर था ही। उन दिनों काशी साहित्यकारों का गढ़ थी। शुक्लजी के अतिरिक्त प्रसादजी, प्रेमचंद, उग्र, विनोद शंकर व्यास, निरालाजी, श्यामसुंदर दास तथा रामचंद्र वर्मा जैसे महान् लेखकों तथा कवियों के बीच उठने-बैठने का अवसर मिला बलदेवजी एवं रुद्रजी को। किंतु दोनों ही तत्कालीन लेखकों से अप्रभावित रहे और न किसीके गुट में शामिल हुए।

हास्य कहानियाँ वे रोजाना की बातचीत, मित्रों की नोक-झोंक तथा दैनिक घटनाओं को आधार बना लिखते थे। उनकी ग्राह्य शक्ति प्रखर थी, दृष्टि सूक्ष्म और लाजवाब कल्पना। बलदेवजी की प्रायः सभी चर्चित कहानियों के पात्र उनके मित्र ही हैं। 'उलूकतंत्र' छपने पर कुछ लोगों ने गुल्लू गुरु को चढ़ाया कि बलदेवजी ने तुम्हारा खाका खींचा है। गुल्लू ने मुँह फुला लिया। उनके लड़के का तिलक हुआ।

बाह्य रूप से बहुत गंभीर थे बलदेवजी। देखकर डर लगे, ऐसा गुरु-गंभीर स्वरूप। कसरती बदन—छह फीट से निकलता हुआ। माथा चौड़ा, बड़ी-बड़ी आँखें। पतली नाक, वैसे ही पतले ओठ और गोरा रंग। पर बाल कम थे सिर पर। संस्कृत ज्ञान के साथ वह भी पैतृक देन थी शायद। एक दिन रुद्र के साथ मेरे बाँस फाटक स्थित दवाखाने पर आ बलदेवजी ने पूछा, 'ऐर किछू उपाय आचे?'

मैंने पूछा, 'केर?' हम दोनों की बातचीत बँगला में ही होती थी।

जवाब में उन्होंने रुद्रजी के कंधों तक लहराती केशराशि की ओर इशारा किया, 'की कोरे आमिपाबो ऐई जोन्ये भालो केश?'

मैंने कहा, 'होंगे। आयुर्वेद में उपाय है। किंतु खटकरम बहुत है। कर सकोगे?'

बोले, 'ब्रह्म हत्या छोड़ बाकी सब कर लूँगा। सबकुछ उलटा-पलटा होने लगा है। बाहर से आनेवाले पिताजी के बजाय पहले मेरे चरण छूने लपकते हैं।'

उन्हें उपाय बताया कि लगातार पंद्रह दिन उस्तरे से सिर छिलवाना होगा। एक विशेष दवा बकरी के दूध में मिला सिर पर लगानी होगी।

बोले, 'गांधीजी का उदाहरण देने पर भी बकरी पालने के लिए पिताजी सहमत न होंगे। वैसे भी, दालान में बाँधी तो गौ के पैरों के नीचे दब जाएगी। खैर, उसे छत पर अपने कमरे में बाँध लूँगा। खिलाने के लिए पुस्तकों की कमी नहीं है। किंतु अकारण सिर छिला पंद्रह दिन घर बैठा तो पत्नी को विराग हो जाएगा।'

कुछ देर बाद गंभीरतापूर्वक बोले, 'आसू, किसी वृद्ध पड़ोसी को स्वर्गीय होने दो। तुम्हारी वैद्यकी की परीक्षा भी हो जाएगी।'

कुछ देर चुप रह उतनी ही गंभीरता से पूछा, 'आसू, तुमको मारण-मंत्रों पर भरोसा है क्या? बालम से कहते हैं, किसी पर सिद्ध करेगा।'

हम लोगों की 'नवग्रह' मंडली के एक सदस्य थे महाराष्ट्रियन ब्राह्मण बालम भट्ट—तंत्र-मंत्र के शौकीन। अन्य थे—अमरनाथ मिश्र। (बनारस के बेजोड़ पखावजबाज, जो बाढ़ में संकटमोचन मंदिर के महंत हुए), रमाकांत कंठाले (बनारसी शैली के चित्रकार), लक्ष्मीकांत झा (राजनीतिज्ञ तथा राज्यपाल) तीर्थ पुरोहित छन्नूजी के पुत्र मदन मिश्र तथा जगन्नाथ मिश्र (गुल्लू गुरु)। दसवें ग्रह के रूप में कभी-कभी अशोकजी शामिल होते थे।

उस दिन का वह परिहास, वह बातचीत उनकी दो कहानियों का आधार बना—'केशकल्प' तथा 'उलूकतंत्र'। हास्य कहानियाँ वे इसी तरह रोजाना की बातचीत, मित्रों की नोक-झोंक तथा दैनिक घटनाओं को आधार बनाकर लिखते थे। उनकी ग्राह्य शक्ति प्रखर थी, दृष्टि सूक्ष्म और लाजवाब कल्पना। बलदेवजी की प्रायः सभी चर्चित कहानियों के पात्र उनके मित्र ही हैं। 'उलूकतंत्र' छपने पर कुछ लोगों ने गुल्लू गुरु को चढ़ाया कि बलदेवजी ने तुम्हारा खाका खींचा है। गुल्लू ने मुँह फुला लिया। उनके लड़के का तिलक हुआ। बलदेवजी को तथा मुझे नहीं बुलाया। तिलक के दिन बलदेवजी मेरे पास आए। बोले, 'चलो चलें। उस मूर्ख ने नहीं बुलाया तो क्या हुआ! बच्चे को आशीर्वाद देना हमारा कर्तव्य बनता है।'

जाने पर गुल्लू गुरु की पत्नी ने स्वागत किया। गुल्लू को भी गिले-शिकवे भूलने पड़े। रमाकांत कंठाले को उनके भाई के एक मित्र प्राय: उपदेश दिया करते थे। उनकी समझ से कंठाले चित्र और कार्टून बना अपना समय नष्ट कर रहे थे। कंठाले बहुत विनोदी थे। एक दिन उन्होंने अपने भाई के मित्र की चर्चा की, 'सरऊ, हर समय पिछियावलन।'

बलदेवजी ने जवाब दिया, 'तू ओके भूत बन के चपतिया दऽ।'

वह मनोरंजक शिकवा-शिकायत तीन दिन बाद बलदेवजी की 'ब्रह्म दैत्य' कहानी में उतरी। यह अद्भुत कहानी है। मुख्य पात्र का नाम भी नहीं बदला है बलदेवजी ने। जब मैंने पिताजी की गद्दी सँभाली, यानी रोगियों की नब्ज पकड़ने लगा तो बलदेवजी ने मुझपर भी एक कहानी लिखी। बालम भट्ट, रुद्र तथा लक्ष्मीकांत झा भी उनकी कहानियों में हैं। यहाँ तक कि उनके चाचा काली प्रसादजी तथा शिवदत्तजी भी। वे छोटी कहानियाँ खूब लिखते थे। शाम उनके साथ संसार, तरंग या अजगर का तगादा लिये कोई आदमी जरूर होता। तब वे मेरे दवाखाने के तख्त के कोने में बैठ या बाहर बरामदे में कुरसी लगा, बीस-तीस मिनट में कहानी लिख छुट्टी करते। ऐसी कहानियाँ वे कभी भी लिख देते।

बलदेवजी अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उनके ब्रजभाषा ज्ञान को मैं ईश्वरीय देन मानता हूँ; क्योंकि हम मित्रों में या उनके परिवार में ब्रजभाषा का जानकार कोई न था। वे गोस्वामी दामोदरलाल के संपर्क में आने से पूर्व ही ब्रजभाषा में दो काव्य लिख चुके थे। गुजराती उन्होंने साँवलजी नागर से सीखी। बँगला अक्षर-बोध मुझसे और मराठी बालम भट्ट से। संस्कृत का ज्ञान तो उन्हें विरासत में मिला ही था। उर्दू पाठ के लिए वे और रुद्रजी एक मुंशीजी के पास चौकाघाट जाते थे। उनके हाथ में हमेशा एक-न-एक पुस्तक जरूर होती। उनकी आदत थी हाथी छाप रूलदार कॉपी में अपनी पढ़ी पुस्तक का नोट्स तैयार करने की। कारमाइकेल लाइब्रेरी में उन्होंने वर्षों सुबह आठ से दस के बीच हर रोज नोट्स तैयार किए। बँगला, संस्कृत एवं अंग्रेजी पुस्तकों के नोट्स की सैकड़ों कॉपियाँ भरी होंगी उन्होंने। वे जबरदस्त स्वाध्यायी थे। संस्कृत साहित्य के वे अद्भुत ज्ञाता थे—वेद, पुराण, उपनिषदों के बाद संस्कृत के सभी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ पढ़ चुके थे—उनपर उनके नोट्स थे। वैसे तो उनके पिता की स्मृति का लोहा सभी मानते थे; क्योंकि वे पुस्तक का नाम तथा पेज संख्या तक बता दिया करते थे; किंतु कभी-कभी, शायद पुत्र की परीक्षा लेने के लिए वे अपनी बैठक से आवाज देते, 'बच्चे, जरा देखना तो यह श्लोक कहाँ से है।' ऐसे अवसर पर बलदेवजी हमेशा खरे उतरते। वे संस्कृत साहित्य के चलते-फिरते कोश थे।

बँगला साहित्य तो उन्होंने मथकर निचोड़ लिया था। वे शरत् से प्रभावित थे। शरत् पर लिखना चाहते थे, जिसके लिए वे कई बार भागलपुर और कलकत्ता भी गए थे। सन् १९५५ के अक्तूबर माह में लखनऊ गए थे कंठे महाराज के साथ। हम लोग उन्हींके घर रुके थे। तब बताया था उन्होंने कि शरत् पर अपनी पुस्तक पूरी कर चुके हैं। 'तीसरी पीढ़ी' तथा 'बिजली' नामक उपन्यास भी तैयार है। दो कहानी संग्रह तथा 'आँसू के गान' नाम से कविता संग्रह भी तैयार कर चुके हैं। उन दिनों वे अपने लेखों के संग्रह तैयार कर रहे थे। अगले वर्ष अपनी दस पुस्तकें छपवाना चाहते थे। यह मेरी उनसे अंतिम भेंट थी। अगले साल २६ अप्रैल को वे कोमा में चले गए।

बँगला पर उनके असाधारण अधिकार का अनुमान इसी बात से होता है कि बँगला रचनाकारों की पचास से अधिक कहानियों का—विशेषत: परशुराम की हास्य कहानियों का—उन्होंने अनुवाद किया है। 'आनंद बाजार', 'देश', 'वसुमती' तथा 'परिचय' नामक बँगला पत्र-पत्रिकाओं में वे लिखते भी थे। उनके कमरे में एकमात्र चित्र शरत् का ही होता था—बनारस में भी और लखनऊ में भी।

फरमाइशी कहानी तो बलदेवजी कभी भी, कहीं भी लिख दिया करते थे; किंतु गंभीर लेखन वे प्राय: रात में ही करते थे। वे दिन भर का कार्यक्रम बना सबसे मिलते-जुलते। पं. दिनेशदत्त झा के पास थोड़ी देर बैठते, 'आज' और 'संसार' जाते, वहाँ से लौटते हुए प्रसादजी से मिलते हुए घर वापस। बिजली तब न थी। रात वे जल्दी घर लौटते। कभी टोका तो गंभीरतापूर्वक कहते, 'क्या फायदा देर करने से! भूत चपतियाएँगे।'

दरअसल, पक्के महालों की अँधेरी गलियों का यह उन दिनों बहु-प्रचलित मनोविनोद था। अँधेरे में घात लगाए 'भूतों' द्वारा हाथ का सामान छीन लेना, सिर पर चपत लगा देना, धोती की लाँग खोल देना या टोपी उड़ा लेने जैसी घटनाएँ सामान्य थीं। कभी हमने भी किया था यह सब। अगले दिन मिलते तो रात में लिखा सुनाते। उनकी आदत थी कॉपी की मार्जिन पर रचना का समय व तारीख लिखने की। दरअसल, उनका हर काम घड़ी के काँटों के साथ होता था—इसीलिए वे सबसे मिलने का समय निकाल पाते। सबसे मिल-जुलकर बालम भट्ट, रुद्रजी और गुल्लू गुरु के साथ मिल भाँग छानते, फिर आते मेरे पास। वे तानपूरा बजाते, मैं तबले पर संगत करता। मन न किया तो चुपचाप आँख बंद किए तबला सुनते रहते। वे संगीत के अद्भुत ज्ञाता थे। संगीत पर उन्होंने अनेक पुराने ग्रंथों का अध्ययन किया था। संगीत के विभिन्न पक्षों पर उनके लेख 'संगीत', 'ओज' तथा 'संसार' में छपते थे। बहुत गंभीर तथा गहरी पकड़ थी उनकी।

मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ कि गायन तथा वादन पक्ष पर उन सरीखा गंभीर ज्ञान समालोचकों में उन दिनों भी न था। उनके मित्रों में अमरनाथ पखावज बजाते थे, गुल्लू गुरु सितार और चौकाघाट के धीरेंद्र चक्रवर्ती तानपूरा तथा वायलिन बजाने के अतिरिक्त बहुत अच्छे गायक भी थे। स्वयं बलदेवजी बजाते केवल तबला, तानपूरा, सितार या हारमोनियम ही, किंतु जानकारी प्राय: सभी वाद्यों की थी। लखनऊ जाते समय अपना तानपूरा तथा हारमोनियम मुझे दे गए थे। संगीत के शौक तथा उसपर अपनी पकड़ के कारण उस समय के प्राय: सभी कलाकारों से उनका व्यक्तिगत परिचय था। कंठे महाराज, विनायक राव पटवर्धन,

वी.जी. जोग, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब न केवल बलदेवजी को जानते थे बल्कि उनके द्वारा 'आज' व 'संसार' में लिखी संगीत समीक्षाओं, संगीत से संबंधित उनके ज्ञान का सम्मान भी करते थे। बजड़े पर छोटी-मोटी संगीत गोष्ठियों का आयोजन बलदेवजी प्रायः करते। बनारस आनेवाले संगीतज्ञों में शायद ही कोई ऐसा बचा हो, जिसने उनके द्वारा आयोजित इस तरह की गोष्ठियों में भाग न लिया हो।

मुझे अच्छी तरह याद है कि अपने इस परिचय एवं संगीत संबंधित ज्ञान के कारण लखनऊ रेडियो द्वारा उनको प्रायः रेडियो वार्त्ता के लिए बुलाया जाता था। जब इलाहाबाद रेडियो केंद्र बना तो स्टेशन डायरेक्टर मूर्ति ने बलदेवजी को पत्र लिख उद्घाटन कार्यक्रम तैयार करने के लिए कहा। उन्होंने उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब और कंठे महाराज की जुगलबंदी तय की। किंतु कंठे महाराज ने जाने से इनकार कर दिया। बोले, 'कौन सुबह से रात तक बजाएगा।'

उन दिनों टेप न होने की वजह से कलाकारों का स्टूडियो में ही बजाना होता था—प्रोग्राम के समय। 'बी' श्रेणी को साठ मिनट और 'ए' श्रेणी को बीस मिनट मिलते थे—चार या पाँच किश्तों में। तब बलदेवजी ने मूर्ति से संपर्क कर कंठे महाराज के लिए शाम से रात नौ तक का समय तय कराया। वे उस्ताद को लेकर खुद इलाहाबाद गए।

संयोगवश ट्रेन लेट होने के कारण अलाउद्दीन खाँ साहब नियत समय पर न पहुँच सके। मूर्ति परेशान, अब क्या होगा? बलदेवजी बोले, 'घबड़ाइए मत। उस्ताद अकेले ही बजाएँगे।'

संस्कृत में हास्य रस की पहली पत्रिका 'उच्छृंखलम्' उन्होंने ही निकाली थी। 'सिद्धलिंगास्तैलंग' नाम से संपादन करते थे और सारी सामग्री स्वयं लिखते—छिनारस्वामी, अभिनव धूर्जटि, लंठस्वामी, दंडी स्वामी, कुतर्काचार्य, दंडधर शास्त्री आदि नामों से। वे 'ज्योतिष्मती' नामक एक संस्कृत मासिक भी निकालते थे, जिसमें श्रीईशजी, प्रमथनाथजी, मंगलदेवजी आदि तत्कालीन संस्कृतज्ञों के हाथ···

बलदेवजी ने कंठे महाराज से 'लहरा' बजाने का आग्रह किया। किसी तरह उस्ताद तैयार हुए। बीस मिनट का कार्यक्रम तीस मिनट चला। उनके कार्यक्रम के तुरंत बाद खाँ साहब पहुँचे। उस रात दोनों की पहली जुगलबंदी हुई। कार्यक्रम के बाद मूर्ति ने बलदेवजी को गले लगा लिया। संयोगवश बलदेवजी के लखनऊ जाने के कुछ समय बाद मूर्ति वापस लखनऊ चले गए, जिससे लखनऊ में बलदेवजी का काम और बढ़ गया। संगीत के विभिन्न पक्षों पर उनकी वार्त्ता प्रायः हर माह प्रसारित होती थी। बलदेवजी के आग्रह पर कंठे महाराज तब लखनऊ जाने लगे। वे बलदेवजी के घर ही ठहरते। तब उनके घर की छत पर छोटी-मोटी संगीत गोष्ठियाँ होतीं। इस तरह की गोष्ठियों में श्रीनारायण चतुर्वेदी, योगींद्रपति त्रिपाठी, अमृतलाल नागर, सत्यव्रत सिंह और मूर्ति अवश्य होते। इन अवसरों पर वे शुद्ध बनारसी होते। आग्रह कर ठंडई और भाँ पिलाते। संयोग से एक होली पर काशी से रुद्र, बेधड़क तथा भैयाजी भ पहुँचे थे रेडियो कवि-गोष्ठी के लिए।

बलदेवजी प्रारंभ से ही मनमौजी थे। वे कोई काम जमकर नह करते थे—सिवाय अध्ययन के। कभी महीनों ब्रजभाषा में लिख रहे हैं कभी केवल संस्कृत श्लोकों का पद्यानुवाद चल रहा है। संस्कृत साहित्य के न केवल मर्मज्ञ थे बल्कि संस्कृत में कविताएँ तथा गद्य भी लिखते थे। उन्होंने संस्कृत में भी हास्य रस की कहानियाँ, लेख तथा कविता लिखी हैं। संस्कृत में हास्य रस की पहली पत्रिका 'उच्छृंखलम्' उन्होंने ही निकाली थी। 'सिद्धलिंगास्तैलंग' नाम से संपादन करते थे और सार सामग्री स्वयं लिखते—छिनारस्वामी अभिनव धूर्जटि, लंठस्वामी, दंडी स्वामी कुतर्काचार्य, दंडधर शास्त्री आदि नामों से वे 'ज्योतिष्मती' नामक एक संस्कृ मासिक भी निकालते थे, जिसमें श्रीईशजी प्रमथनाथजी, मंगलदेवजी आदि तत्काली संस्कृतज्ञों के हाथ प्रभात शास्त्री तथ जानकीवल्लभ शास्त्री की रचनाएँ छपत थीं। 'उच्छृंखलम्' के होली अंक बेजो होते थे। इन दोनों पत्रों की सफलता उत्साहित हो उन्होंने 'अजगर' नामक हिं हास्य पाक्षिक का प्रकाशन-संपादन किय संपादक का नाम होता था—'अहितुंड भुजंगराव जोगदंड।' 'अजगर' में बेढ बनारसी, भैयाजी तथा बेधड़क नियमि रूप से लिखते थे।

उन्हीं दिनों उनकी पत्नी की मृ हुई, फिर उनके पिताजी की। बलदेव का मन उचाट हो गया। गंभीर तो वे ही, अब एकदम चुप रहने लगे। लिखना-पढ़ना बंद। उनके पिता जानते थे कि बलदेवजी किसी नौकरी में शायद ही टिकें। उन्होंने चौ पर बलदेवजी को एक दुकान करवा दी थी, बलदेवजी ने जिसका न अपनी पुत्री के नाम पर रखा था, 'कमला होजरी'। यहाँ बलदेवजी श को बैठते थे। पत्नी की मृत्यु के बाद वे बंबई चले गए। बाकायदा गं बँधवा विनायक राव पटवर्धन के शिष्य हो गए। फिर एक साल कलक रहे; कुछ दिन भागलपुर। पिता की बीमारी पर वापस बनारस आ उनकी मृत्यु के बाद बनारस छोड़ पटना चले गए 'आर्यावर्त' के समाच संपादक होकर। पटना की खुली नालियों, गंदगी, खटमल और मच्छ पर उन्होंने 'हलायुध' नाम से 'आर्यावर्त' और 'तरंग' में कई कहानि तथा कविताएँ लिखीं।

उसी वर्ष मई में उनका दूसरा विवाह हुआ। विवाह के बाद वे पटना गए, त्यागपत्र देने। जयकांत ठाकुर तथा पारसनाथ सिंह ने उन्हें रोकने की काफी कोशिश की, किंतु वे न माने। बनारस वापस आने पर सुप्रसिद्ध हास्य लेखक अन्नपूर्णानंद तथा पराडकरजी ने उन्हें 'आज' में बुला लिया। वे 'आज' के साप्ताहिक अंक के संपादक बनाए गए। तब साप्ताहिक अंक सोमवार को निकलता था।

सन् १९३९ से १९४४ जून के बीच बलदेवजी ने केवल फरमाइशी कहानियाँ लिखी थीं—यानी अखबारों के माँगने पर चट-पट कुछ लिख दिया। इस बीच कविताएँ अधिक लिखीं, विशेषत: गीत। 'आज' में आने के बाद पत्नी और पिता की मृत्यु के कारण लेखन में हुए व्यवधान की मानो उन्होंने भरपाई की।

सन् १९४४ के जुलाई से दिसंबर १९४५ के अठारह माह में अखबार का काम करते हुए, लेख, कविताएँ, पुस्तक समीक्षा लिखते हुए, संगीत सम्मेलनों व कवि सम्मेलनों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए भी उन्होंने पचास से कम कहानियाँ न लिखी होंगी। सन् १९४५ के अक्तूबर माह में उनकी पाँच कहानियाँ 'संसार' में, तीन 'आज' में और सात 'आँधी', 'विश्वामित्र' आदि में छपीं। दिसंबर में फिर पाँच कहानियाँ। उन दिनों वे मशीन की तरह लिख रहे थे। 'शव साधन', 'वीराचारी', 'खंग', 'मलिता की गद्दी', 'रात का अतिथि', 'जुहू', 'रामायण लोक' जैसी लोकप्रिय कहानियाँ उन्हीं दिनों लिखी गईं। सन् १९४७ में जब ज्ञानमंडल से उनकी हास्य कहानी संग्रह का प्रकाशन तय हुआ तो वे लगभग एक सप्ताह घर से न निकले। इस संग्रह की सभी कहानियाँ उन्होंने प्राय: एक सप्ताह में लिखी होंगी। इस तरह, उनकी पहले लिखी तथा सन् १९४७ के बाद लिखी हास्य कहानियों का संग्रह सामने न आ सका।

सन् १९४८ के नवंबर में उनके गुरु गोस्वामी दामोदरलाल परलोक सिधार गए। 'शव साधन' तथा 'उलूकतंत्र' के प्रकाशन के बाद वे 'आज' छोड़ चुके थे। गुरु की मृत्यु से वे एक बार फिर सन् १९३९-४२ की स्थिति में पहुँच गए और दो माह बाद उन्होंने काशी त्याग दिया।

लखनऊ पहुँचने पर वे पहले 'रक्षक' के संपादक हुए, फिर दो वर्ष 'स्वतंत्र भारत' के साहित्य संपादक। 'रक्षक' में उन्होंने अपने मित्र 'रुद्र' से तगादा कर कई कहानियाँ लिखवाईं, जो 'बहती गंगा' में आई हैं—तीन का नाम मुझे याद है—'ऐही अँगना, ऐही डेरी', 'सूली ऊपर सेज पिया की' तथा 'गाइए गणपति जगबंदन'। 'रक्षक' में ही बलदेवजी की 'गुदड़ी बाजार की प्रेमिका' कहानी छपी थी, जिसे मैं उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी मानता हूँ—'उलूकतंत्र' से भी उत्कृष्ट। लखनऊ जाने के बाद संपर्क पोस्टकार्ड तक सीमित रह गया। वहाँ उन्होंने रेडियो नाटक खूब लिखे। रेडियो वार्त्ता प्राय: हर माह प्रसारित होती। तब उनका पोस्टकार्ड मिलता, जिसमें वार्त्ता का शीर्षक, प्रसारण तिथि एवं समय का उल्लेख होता।

बलदेवजी सरीखे व्यक्ति का मित्र होने का मुझे गर्व है, उनके न रहने पर भी, आजीवन रहेगा। मेरे सभी मित्र गुणी और विद्वान् थे। ईश्वर को विद्वानों की जरूरत थी, उन्हें एक-एक कर बुला लिया अपने पास। मैं मूर्ख पृथ्वी पर भारस्वरूप बना हुआ हूँ। □

रेड हार्ट एंड कंपनी, कतरास रोड,
धनबाद-८२६००१

कहानी

महायात्रा

✍ संजय कुमार गुप्त

क
कहार,
काँधे पर बहँगी।
लाँघता—
शव का गाँव
बस्ती बचपन की
कैशोर्य का बाग-बियाबान
यौवन के पठार-पहाड़
नदी वयस्कता की
जंगल अधेड़पन का
वीरान घाटी बुढ़ापे की

खड़ा
मृत्यु-सागर के किनारे,
प्रतीक्षा में
उन लहरों के
जो आएँगी
अयत्न
बहा ले जाएँगी,
उस लोक
मिलेगी

उसे मुक्ति
काँधे पर लदी बहँगी से,
पार पा सकेगा
वह अनंत के तट पर
एक दीर्घ विराम के उपरांत
करेगा प्रस्थान
पुन:
शुरू होगी यात्रा
धरित्री की गोद से

तय होगा
एक विराट् यात्रापथ
गाँव, बस्ती, बाग
पहाड़, नदी, जंगल
घाटी, समुद्र।

ब्रह्मांड में
महा सूर्ययात्रा का
अनवरत
एक क्रम। □

वार्ड नं. २६, प्रेमनगर,
गायत्री मंदिर के पास,
बालाघाट-४८१००१

ब्रज के लोकगीतों में रामकथा

✍ हर्ष नंदिनी भाटिया

हिंदी की प्रादेशिक भाषाओं में ब्रज और अवधी का अपना अलग ही महत्त्व है। दोनों ही भाषाओं में भरपूर मधुरता और सरसता है। साधारणतया ब्रजभाषा का संबंध कृष्ण साहित्य से और अवधी भाषा का संबंध राम साहित्य से स्थापित किया गया है। यह सत्य है कि ब्रजभाषा में कृष्ण काव्य का ही प्राधान्य रहा है और स्वाभाविक भी है, क्योंकि कृष्ण का संबंध ब्रज प्रदेश से रहा है। साथ ही ब्रजभाषा में राम साहित्य और अवधी में कृष्ण साहित्य भी पर्याप्त मिलता है। सूर ने भी राम संबंधी पदों की रचना की है। ब्रजवासियों को भी राम उतने ही प्रिय हैं जितने कृष्ण। यही कारण है कि ब्रज के लोकगीतों में राम संबंधी लोकगीत भी पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते हैं। यहाँ पर हम राम संबंधी ब्रज के लोकगीतों को कथा के रूप में संकलित कर रहे हैं।

राम के जन्म के ही अवसर से चारों ओर आनंद सागर की लहरें उठने लगीं और बधाइयाँ बजनी प्रारंभ हो गईं—

राजा दसरथ के चारों लाल, दिन-दिन नीके लगें।
कौन के बाजें ढोल-मजीरा, कौन के धुरत निसान॥
दिन-दिन नीके लगें···
कैकई के बाजें ढोल-मजीरा, कौसिल्या के धुरत निसान।
कौन ने बाँटे बीरा बतासे, कौन ने नागर पान॥
कैकई ने बाँटे बीरा बतासे, कौसिल्या ने नागर पान।
कैकई ने पूजे कुआँ बाबरी, कौसिल्या ने सागर ताल॥
कैकई के बाजे नौबत नगारे, कौसिल्या के धुरत निसान॥

धीरे-धीरे ये चारों भाई बड़े होते हैं और नगर निवासियों को आनंद देने लगे। एक दिन मुनि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आए और उन्होंने राम-लक्ष्मण को राक्षसों का वध करने के लिए राजा से माँग लिया। राजा ने कर्तव्य को समझते हुए अपने दोनों पुत्रों को मुनि को दे दिया। मुनि के आश्रम में पहुँचकर इन्होंने राक्षसों को मारकर विघ्नों से यज्ञ सुरक्षित रखा। तत्पश्चात् विश्वामित्र के साथ ही जनकपुर सीता स्वयंवर देखने गए। राम ने धनुष तोड़ दिया और राम-सीता के विवाह के अवसर पर आनंद की वर्षा होने लगी। सखियों ने मंगल गीत गाने आरंभ कर दिए—

जुरि आई नर-नारि, जनकजी के अँगना में।
हरे-हरे गोबर अँगन लिपाए, मोतिन चौक पुराए॥
कूप कलस इमरत भरि लाऔ, ऊपर महुए की डार।
सिया रघुबर की जोरि बैठी, रामचंद्र दोउ भाई॥
रामचंद्र की होति निछावर, हीरा लाल जवाहर।
पानन मढ्यो छबाई मेरे बाबुल, लौगन गाँथ दिवाजी॥
सिया रघुबर की परें भौमरियाँ, बिन माइल बिन बोप।
कंगन गाँठि खुलै हति नाए, सखियाँ हसैं दै-दै तारी।
कंगन गाँठि खुलै हति नाए, एक माइ द्वै बाप जनकजी॥

राम के विवाह पर समस्त अयोध्या में आनंद छा गया। एक दिन दशरथ ने अपनी वृद्धावस्था समझ राम को राजगद्दी सौंपने का निश्चय किया। कैकयी राजा की बहुत प्यारी रानी थी। मंथरा के बहकाने पर रानी कैकेयी ने राजा से दो वचन माँग लिये। एक में भरत को राजगद्दी और दूसरे में राम को चौदह वर्ष का वनवास। पिता की आज्ञा से राम वन को चल दिए और साथ में सीता और भाई लक्ष्मण भी—

पग हौले धरहु रे धनुषधारी।
आगे-आगे राम चलत है, पीछे लछिमन बलधारी।
बीच-बीच में चलें सियाजी, सोभा लगे अधिक प्यारी।
ग्वाँ वनखंड में प्यास लगी है, कुमिलाइ गई जैसे फुलवारी॥
देवर लछिमन जल भरि लाओ, भरि लाओ जल की झारी।
जाके घर सें तीनों निकरे, कैसे जीमें इनकी महतारी॥

पुत्र-वियोग में दशरथ ने अपने प्राण त्याग दिए। भरत और शत्रुघ्न, जो अपने ननसाल गए हुए थे, बुलवाए गए। आते ही इस समाचार को सुनकर बहुत दुःखी हुए और राम से मिलने चल दिए—

उठि मिल लेउ राम, भरत आए।
बिंदाबन में करी रे तपस्या, मथुराजी में फल पाए।
हरे-हरे गोबर अँगन लिपाए, रामा मोतिन चौक पुरत आए।
हाथी के हौदा चढ़े री चारों भैया, रामा ऊपर चौर ढुरत आए।
बइयाँ पसारि मिले री चारों भैया, नैनन नीर ढरत आए।
उठि मिलि लेउ राम, भरत आए।

भरतजी ने बहुत हठ किया, पर राम वापस नहीं लौटे। भरतजी उनकी खड़ाऊँ लेकर अयोध्याजी चले आए। राम सीता और लक्ष्मण के पास पंचवटी में बस गए। लंका का राजा रावण सीताजी को ले गया और भगवान् राम को सीता वापस लाने हेतु लंका पर चढ़ाई करनी पड़ी। रावण का वध कर, चौदह वर्ष की अवधि पूरी करके पुष्पक विमान से सीता, लक्ष्मण, हनुमान और अन्य साथियों सहित राम अयोध्या लौट आए। अयोध्यावासियों ने इस समाचार को सुनकर ही उल्लास प्रकट किया। संपूर्ण नगर में आनंद-ही-आनंद बरसने लगा—

घर आइ गए लछिमन री, पुरी में आनंद भए।
हरे-हरे गोबर अँगनु लिपाओ मुतिअन चौक पुराए।
खरी, मातु कौसिल्या करै आरतौ, तिरियन मंगल गाए।
मातु कौसिल्या पूछन लागी, कहै लंक की बात।
कैसे तो गढ़ लंका तोरी, कैसे तौ लयो सिया नारि।
आठ घाट लछिमन ने घेरे, औघट घेरे राम।
दरवाजो अंगद ने घेर्‌यौ, लंका में कूदे हनुमान।
राम भजौ सियाराम भजौ, गुरु चरनन चित लाई
चारों भैया हैं इकट्ठे रे फूलन की होई बरसात
पुरी में आनंद भए॥

इस प्रकार राम संबंधी अनेक सरस, अर्थगर्भित एवं भावमय लोकगीत ब्रज में गाए जाते हैं, जो किसी प्रकार कृष्ण संबंधी लोकगीतों से हीन नहीं हैं। ब्रज के गढ़ मथुरा-वृंदावन में भी रामनवमी उसी उत्साह से मनाई जाती है जिस आनंद और उत्साह से कृष्ण जन्माष्टमी सभी स्थलों पर मनाई जाती है।

□

नंदन, भारती नगर,
मैरिस रोड, अलीगढ़

कविताएँ
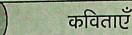
स्वदेश भारती

कविता की नाव में

कितनी सारी यात्राएँ कीं
कविता की नाव में
गाँव से शहर-दर-शहर
फुटपाथों, गलियों और
चौराहों तक
जहाँ से रास्ते हाथ मिलाते हुए
अचीन्ही दिशाओं की ओर चले जाते हैं
गूँजते रहते स्वर, शब्द-गान
नए-नए अर्थ-बोध, संवेदन-भाव में।

इन यात्राओं के बीच
आए कितने ही संदर्भ
प्रेम करने के लिए वक्त था नहीं
पिपासाकुल नदी ने ही
तटबंध अवगाहित किया
प्रेम-प्रवंचना का विष पिया,
फिर भी कुछ-न-कुछ सबको दिया
भले ही प्यार
भले ही मनुहार
भले ही घृणा-अंधकार
विस्मित रेखा के आर-पार
खोजा किए संप्रीति अस्तित्व के नए-नए अर्थ
नए-नए ठाँव में।

अँधेरे नगर की यंत्रणाएँ भोगीं
और मनुष्य के परास्त आहत स्वरों
उनके संघर्षों को
मैंने कविता के लिए
चुनकर रख लिया
फिर बनाए नए-नए शब्द, अर्थ
सजाए नव्यतम भाव-बोध-वितान चिंतन-
आकाश में
रिक्त हृदय-आँगन में
सांध्य प्रदीप के प्रकाश में
रात के अंधकार तले
मैंने यही सोचा बार-बार
कि लौट जाऊँ पलाश वन-स्मृतियों की
छाँव में
कविता की नाव में।

□

सानेट

नदी का खुलता शब्द-कपाट
प्रवाह निस्तरंगता खोलता
आनंद-उफान रति-संकेत देता
अपने भीतर आकाश-नीलिमा घोलता
हिलाता अपना उद्वेलित हाथ
बनाता नए-नए घाट
नदी का खुलता कपाट
प्रवाह नदी का हाथ थामे निरंतर चलता
शब्द तरंगित होते क्षण-प्रतिक्षण
प्रवाह उड़ेल देता लहरों की हिल्लोलित
हथेलियों पर
अंतस्तल का प्यार
तटस्थ हरीतिमा मौन भाव से मुसकराती
और उस दिन भी मुसकराई थी
जब कृष्ण-सम्मोहन प्रवाह में
नदी बनी राधा ने समर्पित किया था
प्राण-संप्रीति-संगोपन
और गोपियों ने अर्जुन की
कामांध आँखों के मौन बाण से आहत
गोपी तालाब में जल-समाधि ले ली थी
नदी और प्रवाह बँधे हैं अवश
संप्रीति और आकांक्षा से
साधारण जन हो अथवा महारथी सम्राट्
प्रवाहित होती सभ्यता की नदी निरंतर
बार-बार खोलती अपना अवरुद्ध कपाट।

□

भवितव्य की तलाश

लो थाम लो
मेरा हाथ
मेरे भाई, मेरे मित्र
खो एक नहीं कई बार
मेरे सीने में फैले
दर्द के अंतराल में
एकाकी क्षणों की मुहरें
जिनपर अंकित है—
अधूरा सपना
खोया प्यार
सहमे चुंबन
भटका वर्तमान
खंडित स्वाभिमान
और मस्तिष्क के आर-पार
बहता दुर्निवार झंझावात
लो थाम लो बंधु
मेरा हाथ।

सिवान के आर-पार
खेतों की हरियाली के बीच
आम्रपल्ली छाया तले

अनुभव की मैंने
रोटी की गंध और
प्यार की चाह
जो बार-बार पागल बनाती रही।
मैंने अनुभव किया
भीगती हरियाली
भीगते मधुमास में फूलों का प्रस्फुटित अनुराग
और यह भी कि
कैसे मौसम हृदय में लगा जाता आग
वसंत भरे हृदय में
जब गाँव से शहर आया
तो मेरे हाथों में थमा दी गई
बासी कड़ी रोटी का टुकड़ा और जुलूस
का झंडा
घुटन भरी दिनचर्याओं ने सौगात दिया—
कि तुम्हें सिर्फ मरने के लिए जीना है
और प्यार सिर्फ मृगमरीचिका है
अंततः प्रवंचना का जहर ही तो पीना है।

मेरे भाई, मैं देखता रहा किंकर्तव्यविमूढ़
नगर-दिशांतर पर छाता रहा अंधकार दुर्निवार
छायांकित होती रही भोर
खंडित सपने प्रतिध्वनित होते बार-बार
सिवान और फुटपाथ के आर-पार
हाथों से छिनती रोटी का शोर
आश्वासनों, वादों, नारों की उड़ती धूल चारों
ओर
हिंसा रक्तपात
घात-प्रतिघात
चक्रव्यूह रचाती महानगरीय यंत्रणा में डूबी रात
लो अब थाम लो मेरा हाथ
मेरे बंधु, मेरे सखा
जिनमें सँजोकर रखा है एक विश्वास
समय की जर्जर शून्यता में
कहीं खो न जाए भवितव्य की तलाश। □

अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी अकादमी,
रूपांबरा, २२ बी, प्रतापादित्य रोड,
कोलकाता-७०००२६

कविता

✍ ऋता शुक्ल

जोहार नई सदी!

आम, महुआ, साल, सखुआ
जंगल पहाड़ नदी
माँदर की थाप पर
झूम रही नई सदी!
बिरसा की साध सफल
झारखंड अजर-अमर
पुरखों की आस पुजी
नाच रही नई सदी!
माटी की पावनता
मन की महानता
शिशुता की मुसकान
माँग रही नई सदी!
अनय नहीं, सुख-शांति
मिटे सकल भय-भ्रांति
मानव हो सर्वोपरि
चाह रही नई सदी!
स्वर्णिम उत्कर्ष हो
कण-कण में हर्ष हो
आस्था विजयिनी हो
गा रही नई सदी!
जोहार नई सदी!!

□

निदेशक,
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची

अनसिखुए

केवल गोस्वामी

मास्टर नंदलाल ने पेट काटकर हर महीने प्रॉविडेंट फंड में इस उम्मीद से वेतन का एक बड़ा हिस्सा कटवाया था कि बाल-बच्चों के शादी-ब्याह के समय उसे किसी ऐरे-गैरे के आगे हाथ नहीं फैलाने पड़ेंगे, सारे काम इसी जमा-पूँजी से निपट जाएँगे।

जब संयोग होता है तो जिन कामों को हम बहुत कठिन मान रहे होते हैं वे अनायास ही हो जाते हैं। रिटायरमेंट से कुछ माह पूर्व लड़की के लिए अच्छा वर-घर मिल गया था। इधर बात पक्की हुई उधर शादी की तारीख भी तय हो गई। मास्टर नंदलाल ने चैन की साँस ली। जिनका कोई नहीं उनका भगवान् होता है। रिटायरमेंट से पहले लड़की के हाथ पीले हो जाएँ, इससे बड़ा सुख-संतोष उसके लिए और क्या हो सकता था!

शादी की तारीख से एक महीना पहले मास्टर नंदलाल ने स्कूल के बाबू के सामने प्रॉविडेंट फंड एडवांस की बात चलाई; किंतु बाबू ने उनकी बात का कोई नोटिस नहीं किया और उसी तरह फाइल में सिर गड़ाकर बैठा रहा—जब तक मास्टरजी ने थोड़ी खनकदार आवाज में अपनी मंशा नहीं दोहराई, ''मोहन बाबू, पार्ट फाइनल में कितना मिल सकता है?''

''ऐसी भी कौन सी जरूरत आन पड़ी, मास्टरजी? चार छह-महीने में तो आपको पूरा ही मिलने वाला है।'' बाबू ने मुसकराकर कहा।

मुसकराहट का कोई विशेष अर्थ नहीं था; किंतु मास्टरजी को लगा जैसे वह उनकी खिल्ली उड़ा रहा है। किंतु इस तमाम बात को तूल तो देना नहीं था, इसलिए पी गए। आवाज को अति विनम्र बनाते हुए बोले, ''भई, लड़की का रिश्ता तय हो गया है; माघ की सत्ताईस तारीख निकली है।''

जन्म : २८ दिसंबर, १९४० (पश्चिमी पंजाब)।
शिक्षा : एम.ए.।
प्रकाशित कृतियाँ : 'पहली बारिश में', 'बंद कमरों की संस्कृति', 'एक नदी की देहगाथा' (पुरस्कृत), 'उसकी माँ', 'रास्ता इधर है' (कविता संग्रह); 'आसपास की जमीन', 'चक्रव्यूह में घिरा अकेला' (कहानी संग्रह); 'भारतीय साहित्य की समस्याएँ' (ई.पी. चेलीशेव), 'तीसरी दुनिया की कविताएँ' (अनुवाद); 'प्रगतिशील कविताएँ-I', 'प्रगतिशील कविताएँ-II' (सह संपादन)।
संप्रति : अध्यापन।

''तो ठीक है, मास्टरजी, अप्लाई कर दीजिए एडवांस के लिए।'' और अप्लाई का फॉर्म निकालकर उनके आगे रख दिया।

मास्टरजी के चेहरे का तनाव ढीला पड़ गया, मन-ही-मन मोहन बाबू की सदाशयता की प्रशंसा करने लगे; जैसे एडवांस का फॉर्म नहीं, चेक ही उनके हाथ में आ गया हो।

फॉर्म को बड़े इत्मीनान से पढ़ा; किंतु उन्हें कुछ समझ में नहीं आया। डर था कि कहीं भरने में गलती हो गई तो दूसरा फॉर्म देने पर जाने क्या-क्या सुनाएगा! पता नहीं, बाबू लोगों को मास्टरों से कौन जन्म का वैर होता है। बड़े-छोटे का लिहाज तो छोड़ो, तहजीब को भी घोलकर पी जाते हैं। अभी जो मन बाबू की सहायता से भीग रहा था, फिर शंकाओं के जल में डूबने-उतराने लगा।

बाबू ने सिर उठाकर देखा, मास्टरजी असमंजस में डूबे हैं। बाबू उम्र में भले ही बड़ा रहा हो, या पूरा घाघ, उसे यह समझने में कोई वक्त नहीं लगा कि मास्टरजी को फॉर्म भरना नहीं आता। किंतु वह कुछ बोला नहीं।

''बड़े बाबू, अगर कल फॉर्म भरकर दे दूँ तो चलेगा?'' किंतु डर मास्टरजी की आँखों में छिपा न रह सका।

''क्यों मास्टरजी, फॉर्म भरने के लिए किसी पंडित से मुहूर्त निकलवाओगे क्या?'' इस बार फिर वैसी ही तीखी मुसकान थी बाबू के चेहरे पर।

किंतु करते क्या, झेलनी तो थी ही। घर ले जाने की बात तो उन्होंने यों ही कह दी थी। सोचा था, स्टाफ में किसीकी मिन्नत करेंगे; पर फिर खयाल आया, उनकी जबान के कोड़े झेलने से अच्छा है, इसी कसाई के हाथों सौंप दो।

''कुछ चाय-वाय मँगवाओ, मास्टरजी। यों गाँठ भींचने से कैसे चलेगा? कक्षा में बच्चों को मूर्ख बनाना और बात है; पर दफ्तर का काम तो दिमाग से होता है।'' बाबू ने मास्टरजी के हाथ से फॉर्म लेते हुए कहा।

चपत करारी थी और पीड़ा भी गहरी; पर क्या करते, किससे कहते। अगर चुपचाप नहीं सहते तो फॉर्म नहीं भरा जा सकता था। अब वह बेदिमाग कहे या गधा।

मास्टर नंदलाल को झटके से उतरने में थोड़ा समय लगा। अपना पैसा लेने के लिए भी चाय-पार्टी देनी होगी। वह मन-ही-मन कुढ़ते-भुनते रहे। दफ्तर में निगाह घुमाकर देखा, चार लोग मौजूद थे। चपरासी आनन-फानन चाय और समोसे ले आया।

''चैक दो-चार रोज में मिल जाएगा न?'' मास्टर नंदलाल ने बाबू के सामने की कुरसी से

उठते हुए कहा।

"देखिए मास्टरजी, मैं तो हेडक्वार्टर आज ही डिस्पैच कर दूँगा। वहाँ पर कोई जुगाड़ फिट करो।"

मास्टर नंदलाल ने चालीस वर्ष तक मेहनत और लगन से नौकरी की थी, बच्चों को जी-जान से पढ़ाया था; किंतु जुगाड़ फिट करने के मामले में वह बिलकुल कोरे थे।

शादी की तैयारियाँ बिना पैसे के तो हो नहीं सकती थीं और एक-एक करके तारीख नजदीक आ रही थी। जो थोड़ा-बहुत जमा-पूँजी थी, उसीसे हलवाई और टेंटवाले को बुक कर दिया था। शादियों का मौसम ठहरा, ऐन वक्त पर कोई न मिला तो जान साँसत में आ जाएगी। पर मन में एक खटका बराबर लगा हुआ था।

चार-पाँच रोज बाद जाकर मोहन बाबू से पूछताछ की। बाबू का वही धड़ा-धड़ाया जवाब, "मैंने तो तभी आपके सामने हेडक्वार्टर भेज दिया था। वहीं जाकर कोई टिप्पस भिड़ाओ।"

मास्टर नंदलाल के लिए यह नई समस्या बन गई थी। अब इस उम्र में यह हुनर वह किससे सीखें? पर मन-ही-मन उन्होंने छुट्टी के बाद हेडक्वार्टर जाने का इरादा बना लिया था।

रास्ते भर इसी उधेड़-बुन में रहे कि शायद चैक बना पड़ा हो। पुख्ता आधार है, चैक बनने में अब कितनी देर लगती है? यह सोचकर उनके कदम और तेज हो जाते। किंतु दूसरे ही क्षण वह बुझ से जाते कि अगर न बना हुआ हो तो टिप्पस भिड़ाना तो उन्हें आता ही नहीं।

पूरी नौकरी में वह हेडक्वार्टर एकाध बार ही गए थे। वहाँ पर वह किसीको जानते भी तो नहीं थे। किससे कैसे पूछताछ करेंगे? किसी तरह डीलिंग सेक्शन में बाबू के सामने तक तो पहुँच गए; पर वहाँ जाकर उनका हलक सूखने लगा। होंठों तक आते-आते शब्द बिखर गए। बड़ी मुश्किल से बाबू ने सिर उठाकर केवल इतना ही बताया कि सैंक्शन नहीं हुआ। यह समय मास्टरजी के लिए बहुत भारी था।

मास्टर नंदलाल ने चालीस वर्ष तक मेहनत और लगन से नौकरी की थी, बच्चों को जी-जान से पढ़ाया था; किंतु जुगाड़ फिट करने के मामले में वह बिलकुल कोरे थे।

मास्टरजी को टिप्पस भिड़ाने की कला न आने के कारण खुद पर शर्म आ रही थी। अगर आज यही आता होता तो बात न बन जाती।

"कब तक हो जाएगा?..."

अभी वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि बाबू हत्थे से उखड़ गया, "अब मैंने तो करना नहीं; जिसने करना है, जाकर उसीका दिमाग चाटो!" और वह सिगरेट सुलगाकर इत्मीनान से बैठ गया।

मास्टरजी को टिप्पस भिड़ाने की कला न आने के कारण खुद पर शर्म आ रही थी। अगर आज यही आता होता तो बात न बन जाती। वह डायरेक्टर साहब के कमरे के बाहर पड़ी बेंच पर निराश होकर बैठ गए।

शाम हो रही थी। बाबू लोग बस्ते बाँधकर अपने-अपने घर की ओर दौड़ रहे थे। बैठे-बैठे मास्टर नंदलाल की कमर अकड़ गई। चपरासी को शायद उनके बुढ़ापे पर तरस आ गया था। उसने पास जाकर सुझाव दिया, "पी.ए. साहब को लिखकर दे जाओ। साहब आज बजट की मीटिंग में हैं। मिलना मुश्किल होगा।"

नंदलाल ने पी.ए. साहब के पास जाकर अपनी फरियाद दोहराई। पी.ए. ने अपने रुतबे का लबादा ओढ़े हुए अपनी डायरी में नोट करने की मेहरबानी तो की, पर कोई जवाब नहीं दिया। इतने भर से मास्टरजी संतुष्ट हो गए।

शादी की तारीख नजदीक आ रही थी और मास्टरजी के हाथ-पाँव फूल रहे थे। कोई काम भी तो नहीं हुआ था। कई सारे प्रश्न मुँह बाए उनके सामने खड़े थे। वह कैसे बच सकते थे उनके डंक से! पाँव मन-मन के भारी हो गए।

नंदलाल जैसे वर्षों के बीमार नजर आने लगे। बिना नागा मोहन बाबू से आकर पूछते। जवाब मिलता, 'अभी हेडक्वार्टर से नहीं आया।' और मास्टरजी मुँह लटकाए लौट आते।

एक दिन चपरासी ने उनकी कक्षा में आकर बताया, "मोहन बाबू ने दफ्तर में बुलाया है।"

मास्टर नंदलाल के जैसे प्राण लौट आए। आखिर भगवान् ने उनकी सुन ही ली। वह लगभग फलाँगते हुए मोहन बाबू के पास पहुँचे। मन में सपने फिर सिर उठा रहे थे।

मोहन बाबू कुछ टाइप कर रहे थे, मास्टरजी ने व्यवधान डालना उचित नहीं समझा। किंतु उनकी बेचैनी बढ़ रही थी। अपने ही दिल की धड़कनों से वह भयभीत हो रहे थे। 'चैक देने के लिए ही बुलाया होगा।' उन्होंने मन-ही-मन सोचा।

टाइप का काम समाप्त होने पर बाबू ने कागज समेटे, अलमारी से एक चिट्ठी निकालकर मास्टरजी के हाथ में थमा दी। धुँधले चश्मे को ठीक करते हुए मास्टरजी ने पढ़ने की कोशिश की; किंतु शब्द जैसे उनकी आँखों के आगे नाचने लगे।

"कर गए न कंजूसी, मास्टरजी! अगर जुगाड़ फिट की होती तो आपसे बहुत पहले चैक आपके हाथ में होता।" बाबू ने मास्टरजी के काँपते हाथों से चिट्ठी लेकर पढ़कर सुनाई, "बेटी का नाम और उम्र पूछी है बड़े साहब ने। एक कागज पर लिखकर दे दो, आज ही डिस्पैच करवा दूँगा।"

मास्टर नंदलाल की आँखों के आगे अंधड़ चल रहा था। गिरते हुए शामियाने, बुझते हुए लट्टू, टूटते हुए काँच और बिखरते हुए सपने। उन्होंने रूमाल से आँखें पोंछीं और कागज बड़े बाबू की ओर बढ़ा दिया।

□

जे-३६३, सरिता विहार, मथुरा रोड,
नई दिल्ली-११००४४

कविताएँ

अरुणेश नीरन

बची रहेगी चरण-पादुका

जब तुम पढ़ लिये जाओगे
या बिना पढ़े रख दिए जाओगे
बुझे हुए बल्ब के नीचे पड़ी तिनगोड़ी मेज पर
और कोई नहीं झाँकेगा
टूटी-उखड़ी सुनहली जिल्द के भीतर।

जब तुम लिख लिये जाओगे
और कैद हो जाएगा सारा प्रवाह
काले-काले अच्छरों के बीच
और कुछ भी नहीं बचेगा
जो बो सके, उगा सके या बढ़ा सके
अर्थ की सत्ता को।

तब आओगे यहीं
दूसरों के कंधों पर लदे
अपना कंधा काठ हो जाएगा तब।

आग के लिए
जरूरी है कंधों का काठ होना
हाथ-पैर का सूखी लकड़ियों में बदल जाना
रुधिर का घी बनकर
कल्पना-कपूर के साथ बहना
अजेय लोहे का लोहबान के रूप में
चटखना-धधकना।

तुम्हारे साथ-साथ
जलेगा मेरा वज्र-कठोर वक्ष
रोम-कूपों में उगीं वनस्पतियाँ
घास-फूस के गट्ठर
हवा की जल भरी नमी
और वह हँसती हुई हरियाली
जो जीवन के छोटे-छोटे सुखों के लहराते
पौधों पर
हवा के घुँघरू बाँध
जल-महल में नाच रही थी
बिना थके, बिना रुके।

लकड़ियों के विशाल भगोने में
लोग चढ़ा देंगे तुम्हारे शरीर का अदहन
और बाँस की कलछुल
तैरने लगेगी रक्त भरी बटलोई में।

तब बदल जाएगा
तुम्हारा वंश-वृक्ष और कुहराम बजने लगेगा
नर्म हवाओं में
दहकती काली चट्टान
हो जाएगी घास से भरी हुई साँवली हथेली
रह जाएगा
नदी का गुनगुनाता फैलाव।

मिट्टी के निरपेक्ष कंकाल
बीन लेंगे सारे-के-सारे अँखुए
किसी दूसरे शस्य-श्यामल क्षेत्र में
रोपने के लिए।

बची रहेगी
फूलों से भरी चरण-पादुका
जिसपर तुम्हारे चरण नहीं होंगे। □

हरिश्चंद्र घाट

हरिश्चंद्र नहीं हैं
हरिश्चंद्र घाट पर अब
बहुत दिन हुए
उनको यहाँ से गए।

शवदाह की पथरीली मचिया को छेंककर
लहरों में डूबती-उतराती
कीच-कानों से लथपथ
रंग-बिरंगे फूलों पर
साँप की तरह लिपटी रस्सियाँ
अगरबत्ती के अधगले पैकेट
बाँस के टुकड़े
टूटे हुए मृण्पात्र।

सभी खोज रहे हैं उन्हें
कोई नहीं जानता कौन ले गया उन्हें
कहाँ? किस दिशा में?

भादों की आन्हर अन्हरिया
जब मेघ झुंड-के-झुंड उतर आते हैं
गंगा में सिराने
बिजलियाँ कड़ककर
थाम लेती हैं लहरों के हाथ
और आता है आँचल में लिपटा
कोई पिता-विहीन शिशु
तब बढ़ जाती है उनके यहाँ होने की संभावना।

आधी रात
कुत्तों-सियारों का रुदन

नावों-सीढ़ियों पर सिर पटकती
प्रलयंकारी हवा
बुझा हुआ डोम का लुआठा
और शवदाह के लिए
न चुकाया गया डोमराज का शुल्क
कहीं भी इनमें हो सकते हैं
हारे हुए सतर्क हरिश्चंद्र।

कहीं भी फूट सकती है
अनाथ शवों के जल न पाने की पीड़ा
घाट का सत्य
अधजली लकड़ियाँ
चिताओं की पवित्र गंध
धुँइठ दीवारें
लाल आलते की अल्पना बनाती झंडियाँ
शव-यात्रियों का खौफनाक मौन
तुलसी के बिरवे।

कहीं नहीं हैं
मुक्त करनेवाली अग्नि-समिधाएँ
परलोक की सुरक्षित यात्रा करतीं
सजे-सँवरे शवों की मुक्त आत्माएँ।

कहीं भी हो सकते हैं हरिश्चंद्र
आधी साड़ी के सत्य को हृदय में दबाए
और आधी में शरीर को छिपाए
बिलखती हुई स्त्री से
सत्य का शुल्क माँगते।

जिसे बिना चुकाए
आग की ऋचाओं में खिलना चाहते हैं सब
मुक्त होना चाहते हैं
जल-जलकर जल में विलीन होने के लिए।

लहरों में बजना
हवा में उड़ना
आकाश में फैलना
कैसे हो पाएगा
बिना शुल्क दिए?

□

कहीं भी नहीं है मृत्यु

क्यों लिख रहे हो
मृत्यु की कविताएँ
कर रहे हो श्मशान से संवाद
राख से जीवन का अभिषेक।

क्यों देख रहे हो
गंगा में उतरता निर्वीर्य सूर्य
और उसकी परास्त भुजाएँ
काले भुजंग अंधकार का
पृथ्वी पर धीरे-धीरे उतरना।

क्यों सुन रहे हो
प्रकाश का मृत्यु-संगीत
आदिवासी मजबूत कंठों से
एक साथ फूटती
ढोल की थाप पर नाचतीं श्याम संध्याएँ।

कहाँ है मृत्यु
जीवन का अवसान
शरीर छोड़ने की आत्मा की बेचैनी
परलोक से जुड़ने का सुख-दुःख।

आकाश है ही नहीं
हवा की कोई समस्या नहीं है
न जल में मची है
सृष्टि को डुबोने की सनातन इच्छा
आग प्रस्तुत है पदार्थ-शुद्धि के लिए
उर्वर आर्द्रता से भर देने के लिए
धरती है
चरणों में बिछी हुई।

कहाँ है मृत्यु
पंचमहाभूतों में?
जिसके पास है सजा हुआ श्मशान
सुगंधित चिताएँ
रंग-बिरंगी पताकाएँ
फूलों से मिट्टी को ढकने की क्षमता
शुल्क चुकाने का धन।

वहीं चमकती हैं पत्तों की आँखें
जो शवों से निकलकर
वृक्षों पर उग आती हैं
वहीं घूमती है वह हवा
प्राणायाम-मुक्त जो लहर-लहर को छूती है
वह अग्नि जो हरदम सुलगती रहती है
चिता से चिलम तक
पीढ़ी-दर-पीढ़ी जलती रहती है।

कहीं भी नहीं है मृत्यु
न पेड़-पौधों में
न अँधेरे-उजालों में
न पशु-पक्षियों में
न नक्षत्र-मंडल में
न घर में न मसान में
न कुंडली में
न जलझरी में।

अंधकार में होती है
नील रूप की कल्पना
सुबह दे देती है अपने हिस्से की धरती
अपने हिस्से का आकाश।

अपने जीने के घरौंदे
अपने मरने की जगह।

किसीके पास
नहीं है चुकाने के लिए शुल्क
पंखों से झरता जीवन है
छायातप से भरा हुआ
धूप जले चरवाहों के पाँव तले
नर्म घास का मन है।

प्रक्षेप-पथ पर अग्निबाण के
सबकुछ जलता-जलता है
शव, शवयात्री, मंत्र, ऋचाएँ
तिल-तंदुल-तुलसी-समिधाएँ
हो जाती हैं एक।

मरघट-पनघट के भीतर से
जीवन-सा कुछ उगता है
जो रहता है जाता है
पुनः लौट जाता है।

□

देवरिया खास,
देवरिया-२७४००१

आलेख

गौ, गोवर्धन, जीवन धन—गोबर संस्कृति की सार्थकता

मालती शर्मा

अपने शीश पर मोरपंख का मुकुट धारे ग्वाल गोपाल कृष्ण की ब्रजभूमि गौ, गोवर्धन, गोबरमय है। ब्रज की लोक संस्कृति गोबर संस्कृति है।

गोबर वस्तुतः गो + वर है। गौ माता का दिया वरदान। जीवन की सृष्टि, पुष्टि, तुष्टि का अजस्र विधायक, रक्षक।

वैदिक चिंतन मनुष्य को पृथ्वी का पुत्र कहता है और पृथ्वी को गौ रूप में देखता है। 'संग गौ तनु धारी भूमि बिचारी' तुलसी ने लिखा है। इस विश्व की संपूर्ण जीवन शक्ति मातृशक्ति है। 'दुर्गा सप्तशती' समस्त वस्तुओं में शक्ति को मातृ रूप में स्थित कहती है। 'देवीभागवत' पुराण कहता है कि समस्त भूतों में शक्ति ही विचर रही है। वह जीवन शक्ति, जिसके बिना शिव भी शव है, वह शक्ति, माता, गौ माता और धरती माता में समाहित है। माँ जन्म देती, धरती धारण करती और गौ माता पोषण करती है।

लोक-जीवन में गाय का दूध बच्चे के लिए माँ के दूध के समतुल्य है। सूत्र है, 'मैया, गैया, छिरिया, भैंसिया।' तात्पर्य है कि यदि बालक को ऊपर का दूध देना हो तो उसे गाय या बकरी का देना चाहिए। दोनों का न मिलने पर तो अंततः भैंस का दूध देना ही होगा।

मैं ऐसा सोचती हूँ कि अपने सद्यःजात वत्स को चाटती गाय की आँखों से ही माँ-बच्चे के बीच के अद्वितीय रिश्ते का, प्रेम का जन्म हुआ है। अतुल्य भाव वात्सल्य की रसधारा फूटी है। भाषा शास्त्रियों की वे जानें, पर मेरे लेखे वत्स, वत्सल और वात्सल्य का क्रम सीधा है। यह सहज संयोग नहीं है कि वात्सल्य के अनुपम चितेरे सूरदास आभीर संस्कृतिमय हैं और ब्रज के हैं।

आज तो गोबर गैस ऊर्जा की नीली लौ में गाँव-गाँव पकते जीवन के पंच पकवानों का स्वाद सर्वविदित है और वैज्ञानिक खोजों के पारदर्शी शीशे में का यह सुज्ञात तथ्य भी है कि गौ, गोबर, गोमूत्र, गाय के दूध, दही, घी में टी.बी. और कैंसर जैसे रोगों की निवारक क्षमता है। इनमें संक्रामकता को पर्यावरण में फैलने से रोकने की शक्ति है। ये प्राणिजगत् वातावरण और मानव को शुद्ध रखने में सहायक हैं। न जाने आज तक कितनी ओषधियों में इनका विविध रूपों में उपयोग होता आ रहा है, हो रहा है।

किंतु लोक के सहज ज्ञान ने तो गाय के दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र की जीवन की रक्षक पोषक उपयोगिता को चरागाही और कृ[illegible] सभ्यता के भिनसार में ही जान-पहचान लिया था। उसे मानव जीवन के संस्कारों के विधि कृत्यों, धार्मिक अनुष्ठानों के कर्मकांडों, पर्व-त्योहारों-उत्सवों, पाप-प्रायश्चित्त के शुद्धि विधानों से जोड़ दिया। गृहस्थ और साधु-संन्यासी की जीवनचर्या में रसा-बसा दिया।

हमारे लोक में गृहस्थ और साधु की दिनचर्या गोबर-माटी से लि[illegible] घर-आँगन, द्वार-देहरी, चूल्हा-चक्की, वेदी-धूनी पर ही शुरू होती है। कलेऊ बनता है, अग्निहोत्र होता है। बैसांदुर और अग्यारी होती है [illegible] उसके लिए गाय के गोबर के उपले चाहिए। ऐसा कोई संस्कार खोज[illegible] होगा जिसे बिना गौ-गोबर के पूरा किया जा सकता हो। पंचामृत के [illegible] अमृत गौ से मिलते हैं।

गोमेय और गो मूत्र के बिना न तो जन्म-मरण के सूतक छूटते हैं न किसी पाप का प्रायश्चित्त पूरा होता है। मरणोपरांत भी मृत्यु पूर्व द[illegible] की गई गाय की पूँछ पकड़कर ही वैतरणी पार होती है।

लोक-चिंतन, लोक-दर्शन गोमेय में लक्ष्मी का वास मानता है। लोक की धन-धान्य लक्ष्मी, आरोग्य लक्ष्मी और संतान लक्ष्मी गोबर [illegible] बसती हैं। गोबर की खाद पड़ी भूमि से यदि धान्य लक्ष्मी के अंकु[illegible] फूटते हैं तो गोबर से लिपे और गोबर की मेंड़ लगाकर बनाए गए सूति[illegible] गृह में संतान लक्ष्मी जन्म लेती है। जन्म लेते ही गोबर धरती पर [illegible] नवशिशु का रक्षक बन जाता है। वह नन्हे शिशु की भीतरी-बाह[illegible] संक्रामकता से रक्षा करता है—प्रसूता का पीने का पानी उबालने[illegible] चरुए के चीतनों से लिपटा हुआ। सूतिका गृह के कौरों से बने साँ[illegible] (स्वस्तिक) में रचा हुआ और गंधक-भूसी की पर्यावरण शुद्धि हेतु [illegible] जाती धूमनी के लिए बरौसी के उपलों में जलता हुआ। नवशिशु [illegible] ऊष्मा पहुँचाकर, माता का दूध शुद्ध कर वह उसे आरोग्य लक्ष्मी [illegible] संपन्न करता है।

गोबर से ही बनाई गई छठी मैया नवशिशु का भाग्य लिखती है। गोबर से बनी ठमसार पर रखे दीपक की लौ से पारा गया काजल [illegible]

नवशिशु की आँखों में रँजता है, ज्योति देता है।

गोबर की बहुआयामी उपयोगिता और नवजात शिशु की जीवन रक्षक भूमिका ने ब्रज के लोक-जीवन में हो-होकर मर जाते शिशुओं को बचाने के लिए एक आनुष्ठानिक टोटके का रूप ले लिया है।

आज तो यह रीति बीते कल का इतिहास है और शायद कल्पनातीत लगे; पर ब्रजभूमि में एक ऐसा भी वक्त था...शायद अनजान-अनाम बना वह ठहरा भी हो कहीं पर तब, वर्ष भर पूँछरी को लौठा (पट्ठा) बने रहने के लिए ग्वाल-बाल-बछड़े गोबर के बने गोबरधन महाराज की नाभि में भरा दूध पीते थे।

यह प्रथा तो उठ ही गई, पर गोबरधन का गोबर आज भी अत्यंत पवित्र, मंगलकारी, संतति रक्षक और संतान लक्ष्मी देनेवाला माना जाता है। तभी तो जिस घर में बच्चे नहीं जीते उन घरों में गोबरधन का गोबर एकत्र कर शिशु-रक्षा के आनुष्ठानिक टोटके के लिए एक विशेष बड़ा सा उपला बनाया जाता है। उपले के बीच में बड़ा सा घेरा। उस घेरे में से हाल का जनमा शिशु निकालकर बच्चे का विवाह होने तक प्रतिवर्ष उपले की पूजा की जाती है। विवाहोपरांत मंडप के साथ उपले का विसर्जन होता है।

निश्चय ही इस विशेष विधि कृत्य के कुछ तांत्रिक और अभिसंचार-मूलक अर्थ भी हैं; किंतु उनसे भारत की धरती में गहरे उबरी गौ-गोबर की सर्वोपरि जीवनधर्मिता कहीं भी कम नहीं होती। जब विशेष और इतनी दवाएँ नहीं थीं तब गोबर का सूखा रोग से ग्रस्त बच्चे के शरीर पर लेप और फिर उस गोबर का पुतला बना धूप में डाल देना सूखा रोग का इलाज था।

आज मानव और प्राणिजगत् की जीवन सुगंध और पुष्टि के वर्धक गोबर पर जब सोचती हूँ तो 'गोबर गणेश' और 'गुड़ गोबर' मुहावरे अटपटे लगते हैं। 'गोबर गिरैगो तौ कछु लेकेंई उठैंगो' यह लोक सुभाषित सीधा सच्चा लगता है। इन्हीं सब संदर्भों में पाश्चात्य संसार में मांस भक्षण में बीफ की सर्वोपरिता और सैमेटिक संसार में रोजों के पश्चात् गो मांस भक्षण की पौष्टिकता समझ में आती है। लंबी समाधि से उठने के बाद पित्त शांति के लिए योगी, जती गौ का घी पीते थे।

फिर भी वहाँ घोड़ा शक्ति का स्रोत और मूल्यों का मानक रहा, हमारे यहाँ गौ। वहाँ जीवन के सत्य घोड़े के मुख से आते हैं, हमारे यहाँ गोमुख से। तृषा, ताप, पापहारिणी सदानीरा गंगा-यमुना गोमुख से निकलती हैं। मंदिरों का देवार्चन का जल भी गोमुख से निःसृत होता है।

> **वैज्ञानिक खोजों के पारदर्शी शीशे में का यह सुज्ञात तथ्य भी है कि गौ, गोबर, गोमूत्र, गाय के दूध, दही, घी में टी.बी. और कैंसर जैसे रोगों की निवारक क्षमता है। इनमें संक्रामकता को पर्यावरण में फैलने से रोकने की शक्ति है। ये प्राणिजगत् वातावरण और मानव को शुद्ध रखने में सहायक हैं। न जाने आज तक कितनी ओषधियों में इनका विविध रूपों में उपयोग होता आ रहा है।**

गोमुख सत्य, धर्म और पवित्रता का प्रतीक है, विपत्ति के कष्टों का मोचक है। बच्चों पर अमंगलकारी ग्रहों का प्रभाव उन्हें गोमुख से चटवाकर दूर किया जाता है। ममता, करुणा और सरलता का प्रतीक गोमुख अहिंसा की भी अभिव्यक्ति है। जैन श्रावक-श्रमण मुनियों का भोजन भोजन नहीं, 'गोचरी' कहलाता है। गोमुख ऋत सत्य का भी रक्षक है। यदि निर्जला एकादशी, करवाचौथ, हरतालिका इत्यादि निर्जल व्रतों में व्रत रखनेवाले की स्थिति प्यास से बिगड़ने लगे तो गोमुख से पानी पीने से व्रत खंडित नहीं होता।

आज तो रासायनिक खाद और कीटनाशक हरित क्रांति की मूलभूत जरूरतें हैं। ये धरती के गुण, गंध और आस्वाद का हरण कर धान्य, फल-फूल, शाक-भाजी सभी का उत्पादन बढ़ाकर क्रांति कर रहे हैं। पर यह बात तब की है जब स्वतंत्रता के बाद रासायनिक खादों का प्रचलन शुरू ही हुआ था और खेतों में नाइट्रोजन छिड़का जाता था। मुझे खूब याद है कि तब मेरे बड़े बाबा गोबर व गो मूत्र से सिंचित गौशाला की मिट्टी उठाकर अपने खेतों में डालते थे और मजाक में नाइट्रोजन की तर्ज पर उसे गोमुतंजन मितंजन कहते थे, जोर से हँसते थे।

गौ, गोवर्धन, गोबर की संस्कृति अंकुर से बीज, बीज से खाद और पुनः अंकुर बनने की ऋत संस्कृति है। कुआँ की माटी कुआँ में ही लग जाने पर विश्वास करनेवाली संस्कृति है। यहाँ ऋत और ऋतुओं में, प्रकृति और मानव जीवन में तालमेल है। अपने आस-पास और प्रकृति के अनप्त को लोक शंका की दृष्टि से देखता है, उसे अशिष्ट और अनिष्टसूचक पाता है। वेदों का अनृत लोक का अनरय, अनरत है। उसका 'ऋत' साँच (सत्य) है, जिसपर यह धरती टिकी है, नहीं तो कभी की रसातल को चली गई होती।

आज का पश्चिमी जगत् वैदिक 'ऋत' को कॉस्मिक ऑर्डर के अनुवाद में ही यदि समझ ले, ऋत की गति को भंग कर अनृत पथगामी न हो तो विश्व में, पर्यावरण में नित्य नई उपस्थित हो रही विभीषिकाओं से यह मानव सभ्यता बच सकती है।

हम आज भी यदि गौ, गोबर, गोवर्धन की ऋत आधारित संस्कृति अपना लें तो विश्व में हमारे जीवन का राग विसंवादी होने पर भी खंडित नहीं होगा, उसकी लय नहीं टूटेगी। □

२५/२ 'पाखर', पुणे-मुंबई मार्ग,
पुणे-४११००३

कविताएँ

✍ राम प्रताप खरे

भय

: १ :

कुत्ते का बच्चा
अपने चारों पैरों को
पेट के नीचे दबाकर
सोफे पर बैठ गया है
घबराया सा
हवा से डरता है,
हवा ही कुछ ऐसी है
अखबार पढ़ते-पढ़ते
मैं उठता हूँ
दरवाजे को बंद कर
अंदर से ताला डाल देता हूँ।

□

: २ :

भवानी भाई ने कहा था,
भय कहाँ नहीं है
बस इतनी सी बात है
कि कल कुछ लोग थे
जो अब नहीं हैं,
दरअसल बात इतनी सी नहीं है,
बात यह है कि
अभी जो यहाँ हैं
किस क्षण नहीं में बदल जाएँ
कोई नहीं जानता—
न स्कूल जानेवाला बच्चा
न कॉलेज जाती लड़की
न उनको बस में छोड़कर आती माँ
न ऑफिस जाता पिता
न घर में बैठे वृद्ध जन।
यह अलग है—
कि फिर भी लोग चल रहे हैं
कि फिर भी लोग जीते हैं
फिर भी लोग खाते हैं पीते हैं
उत्सव आनंद मनाते हैं।
भवानी भाई की बात को
सच मानते हुए।

□

मैनग्रोव

सिंधु तट रेखा पर
धरती में मजबूती से
अपने पैर गड़ाए
खड़े हैं छोटे-छोटे मैनग्रोव
वियतनामी सैनिकों की तरह
झेलते
अमेरिकी शक्तिशाली सेना-सी लहरों का
तेज प्रहार
समुद्र की शक्ति अपार है
आधारभूत मिट्टी को काटता है पानी
डालता है, उलीचता है रिश्वत में
कोरल्स, रंग-बिरंगी सीपियाँ
सामाजिक संस्कृति को जैसे
नष्ट करती हैं चालाक शक्तियाँ
जाग्रत् उद्यत राष्ट्र में
सजग चेतना की दृढ़ता में
बिना भय या लोभ
समुद्र की शक्ति को चुनौती देते
खड़े रहते हैं मैनग्रोव।
जब समाज का हर व्यक्ति
उठ खड़ा होता है
आक्रांता का करने प्रतिरोध
समृद्ध से समृद्ध,
शक्तिशाली से शक्तिशाली,
क्रूर से क्रूर शक्तियाँ
मान लेती हैं हार
असीम पारावार को
अपनी मर्यादा में रहना
सिखाते हुए
खड़े हैं छोटे-छोटे मैनग्रोव
सिंधु तट रेखा पर।

□

फूल चुकूँ तो

फूल बनूँ
फूल चुकूँ तो
सूखने से पहले
पंखुरी-सा बिखर जाऊँ
सार्थकता से कटूँ नहीं
जो कुछ सुरभि है
उसे बाँट दूँ
और चुपचाप झर जाऊँ।
जब तक थोड़ा सा भी
रस है
दोनों हाथ में उलीचूँ
अविरल
निर्झर-सा झरूँ
चुकते ही मर जाऊँ।

□

छोड़ो लिहाफ

छोड़ दो लिहाफ
आओ बाहर
गुनगुनी है धूप
और उजाला
दिखता है साफ
रात का कहा-सुना माफ
छोड़ो उसे
प्यार सबसे बड़ा होता है
नहीं इंसाफ विंसाफ।

□

बरसते पानी में

बरसते पानी में
जैसे गलती है मिट्टी
तुम्हारी याद में गलता है मेरा मन
बरसते पानी में
पत्तों में अनुनादित
जैसे झरते हैं जलकण
तुम्हारे वचनामृत की
एक-एक बूँद
पीता है मेरा मन
बरसते पानी में
जैसे तृप्त होती है धरती
तुम्हारे पावन स्मरण में तृप्त होते हैं मेरे नयन
मेरा अंतर्मन।

□

खग भाषा

क्या कहती है चिड़िया?
अपने बच्चों के मुँह में चुग्गा डालती
उड़ना सिखाती
क्या समझाती है?
यह कि
जब कोई बड़ी चिड़िया तुमपर झपटे
कोई बाज जैसी बड़ी चिड़िया,
आदमियों के पास उड़ जाना
वे तुम्हें बचा लेंगे
बड़े दयालु होते हैं
अपने आँगन में या
देहरी के बाहर
दाना डालते हैं
पानी रखते हैं
धर्म समझकर।
पर रहना सतर्क
धर्म कभी-कभी
मन बहलाव भी होता है
दिखावा
औरों के लिए ही नहीं
खुद के लिए भी।
वे तुम्हें पकड़ लें
पिंजरे में डाल दें
काट दें पंख
तुम उड़ भी न सको
कोमल पक्षियों का
मांस कोमल होता है
इसलिए रहना सतर्क
सतत सतर्क।
कौन जाने क्या कहती है चिड़िया!

□

ई-७/९५, अशोक सोसाइटी,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०१६

गीत

सुधि

गिरिधर करुण

महक रही सुधि की कस्तूरी
मन का हिरना बन-बन डोले।
दिन आते हैं दिन जाते हैं,
मन मसोस के रह जाते हैं
दूर बादलों की बस्ती में
इंद्रधनुष के उड़न खटोले।
लहरों का मदहोश इशारा
दूर बहुत ही दूर किनारा,
यादों के गहरे सागर में
खाती हैं नावें हिचकोले।
चौतरफा मन ताक रहा है
उझक-उझक के झाँक रहा है,
कहते-सुनते सुनते-कहते,
ओठों पर पड़ गए फफोले॥

□

सलेमपुर,
देवरिया-२७४५०९

विदाई

सुषमा अग्रवाल

आज सुबह से ही कड़ाके की ठंड है; साथ ही बारिश के कारण गलन भी महसूस हो रही है। दिन के बारह बज रहे हैं, लेकिन कुहरा वैसा ही बना हुआ है। इस कारण सड़क पर कम ही लोग दिखाई दे रहे हैं।

सुरेश सर्दी के कपड़े पहने बाहर जाने के लिए दरवाजे पर आया ही था कि तभी उसे एक रिक्शा आता दिखाई दिया। रिक्शे में उसे एक महिला दिखाई दी। जब रिक्शा दरवाजे पर आकर खड़ा हुआ तो सुरेश यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि वह महिला कोई और नहीं वरन् उसकी बड़ी बहन मृदुला थी। उसके दोनों हाथों में दो बैग थे। मृदुला को इस तरह ससुराल से पहली बार अकेले आता देखकर उसके मन में कई सवाल उठ रहे थे, 'अभी दो दिन पहले ही तो मैं दीदी के यहाँ होकर आया था। फिर इतनी ठिठुरन भरी ठंड में, बरसात में भीगती हुई दीदी कैसे आई?'

गौरवर्ण, छरहरे बदन, लंबे कद की मृदुला, जिसके चेहरे पर हमेशा संतोष का भाव रहता था। आज भी वैसा ही प्रतीत हो रहा था। फिर भी कुछ अस्वाभाविक सी लग रही थी। उसके चेहरे की मुसकराहट जैसे अंदर कुछ छुपाने का असफल प्रयत्न कर रही थी। आँखें सुर्ख लाल थीं।

तभी छोटी बहन मीनल मृदुला को कमरे में आता देखकर खुशी से बोल पड़ी, ''दीदी, आ गईं!''

मृदुला चेहरे पर मुसकराहट का भाव लाकर बोली, ''अपनी नई भाभी से मिलने आई हूँ।'' लेकिन आँसू बाहर निकल आए। वह अपनी माँ के सीने से लगकर फफक-फफककर बहुत रोई।

मृदुला बहुत ही सुशील, समझदार, भोलीभाली, पढ़ी-लिखी व सुंदर लड़की थी। घर में बड़ी होने के कारण उसने अपनी उम्र से अधिक जिम्मेदारियों को निभाया। वह पढ़ती भी थी, साथ ही घर के सारे काम भी करती। क्योंकि उसके पिता दूसरे शहर में नौकरी करते थे। माँ अकसर पिता के पास रहा करती थीं। यहाँ मृदुला के बूढ़े दादा-दादी व छोटे भाई-बहन रहते थे। किसी तरह उसने एम.कॉम. कर लिया था।

अब वह समय आ गया, मृदुला की शादी की बात चलने लगी। हालाँकि मृदुला के पिता ने उसके इंटर करने के बाद से ही लड़का देखना शुरू कर दिया था; लेकिन वक्त से पहले कुछ नहीं होता। इसी कारण आज वह एम.कॉम. कर चुकी थी। हालाँकि पिता ने तो आगे पढ़ाने से इनकार कर दिया था, लेकिन कुछ तो माँ का सहयोग और कुछ अपनी लगन से वह इतना पढ़ गई।

आखिरकार उसके विवाह की भी बात पक्की हो गई। महेश माँ-बाप का इकलौता लड़का था। दो बड़ी बहनें शादीशुदा थीं। घर का व्यापार था। लड़के से उसकी पसंद-नापसंद के बारे में कई बार पूछा गया। बाद में लड़का एक-दो बार देखने भी आया, साथ ही बेतुके सवालों से अपना रोब भी खूब झाड़ा। लेकिन मृदुला से किसीने भी नहीं पूछा कि उसकी पसंद क्या है? यहाँ तक कि जन्मपत्री भी नहीं मिलाई गई, जो कि इस तरह के व्यवस्थित विवाह का आधार होती है। मृदुला के पिता जगदीश ने महेश के घरवालों से उसकी जन्मपत्री माँगी; लेकिन उन्होंने उसके खो जाने का बहाना कर दिया। हालाँकि मृदुला के पिता पुराने विचारों के थे, जन्मपत्री वगैरह में बड़ा विश्वास रखते थे; लेकिन जब मृदुला उन्हें पसंद आ गई तो जगदीश ने भी आधुनिक बन बहती गंगा में हाथ धो लेना चाहा और शीघ्र ही मृदुला की शादी कर देनी चाही।

आखिरकार शादी का वह दिन भी आ गया। सभी लोग खुश थे। मीनल भी सजी-सँवरी खुशी से चहक रही थी। विदाई का वक्त आ गया। तभी तेज-तेज आवाज सुनाई पड़ी।

महेश कह रहा था, ''मैं मृदुला को नहीं ले जाऊँगा।''

कुछ ही देर में खुशी के स्थान पर तनावग्रस्त माहौल पैदा हो गया। मीनल सबकुछ देख व सुन रही थी; लेकिन उसका बारह वर्षीय अबोध बालमन उसे समझ पाने में असमर्थ था। उसने अपनी चचेरी बहनों से झगड़े का कारण पूछा; हालाँकि वे भी उसकी ही हमउम्र थीं।

उनमें से एक ने बताया, ''रंगीन टी.वी. की जगह ब्लैक एंड ह्वाइट टी.वी. आ गया है, इसीलिए झगड़ा हो रहा है।''

मीनल यह सुनकर रोने लगी; हालाँकि उसे नहीं पता था कि वह क्यों रो रही है—अपनी बहन की जुदाई के गम में या उस घटना के लिए।

रंगीन टी.वी. भेजने के आश्वासन पर मामला शांत हो गया। अपनों से जुदा होने के गम में मृदुला बेहोश हो गई और उसी हालत में विदा कर दी गई।

मृदुला की विदाई के बाद घर के प्रत्येक सदस्य का चेहरा मुरझा सा गया था। इस तरह की विदाई से उनके मन में कई तरह की आशंकाएँ उत्पन्न हो रही थीं।

शादी के पाँच-छह महीने बाद तक सब ठीक चलता रहा। मृदुला के पिता ने भी शादी में जो कुछ कमी रह गई थी, सारी पूरी कर दी; यहाँ तक कि स्वेच्छा से बेटी को जितना हो सकता था, दिया—यही सोचकर कि मृदुला को कोई परेशानी न हो। लेकिन कुछ माह बाद ही महेश का आना बंद हो गया।

शादी के करीब एक साल बाद मृदुला का भाई सुरेश उसे लेने गया और सबकी सहमति से वह उसे लिवा लाया। कुछ दिनों बाद महेश

मृदुला को लेने आया; लेकिन वह अपनी ससुराल न आकर उसी शहर में बसी अपनी बहन के घर ठहरा। वहीं से उसने मृदुला के घर फोन किया और बोला, "अगर मृदुला को भेजना चाहते हो तो यहीं पर भेज दो, वरना वहीं पर रखो।"

उस समय घर पर मृदुला की माँ व छोटा भाई थे। मृदुला की माँ सीधी-सादी तथा पुराने विचारों की थीं, ऐसी बातें सुनकर घबरा गईं। उन्होंने मृदुला को उसके भाई के साथ भेज दिया।

महेश को इस घटना से मृदुला व उसके घरवालों की कमजोरी का पता चल गया। अब तो बस कोई-न-कोई नाटक चलता रहता। यहाँ तक कि कभी-कभी वह मृदुला को छोड़ने की भी धमकी दे देता; जबकि मृदुला उस घर के प्रत्येक सदस्य के प्रति पूर्णरूप से समर्पित थी। सबका खयाल रखना, घर का काम करना तो स्त्री का कर्तव्य ही है। वह पूरी निष्ठा से सास-ससुर की सेवा करती। जहाँ आज सास के प्रति बहू का कर्तव्य सिर्फ पैर छूने की औपचारिकता रह गया है वहीं आज के समाज की मृदुला रोज सास के पाँव दबाती, बिजली के चले जाने पर घंटों तक पंखा हिलाती रहती; जबकि वह किसी छोटे परिवार या गरीब घर की नहीं थी। उसके पिता भी अच्छे पद पर कार्यरत थे। शिक्षित, सुशील मृदुला की आज अपाहिज-सी स्थिति हो गई थी। कई मौकों पर महेश ने मृदुला को मायके नहीं जाने दिया। इसी तरह तीन-चार साल बीत गए।

अब तक मृदुला के छोटे भाई की शादी की बात चलने लगी थी। लड़की देखने के लिए महेश को बुलाया गया; लेकिन उसने आने से इनकार कर दिया। मृदुला भी चिंतित थी, 'सुरेश की शादी में न जाने क्या होगा। अगर महेश ने फिर कोई नाटक किया…'

और अंततः वह दिन भी आ गया। एक हफ्ते बाद सुरेश की शादी थी। शादी तय करने से पहले मृदुला के माता-पिता महेश से मिल आए थे। उन्होंने शादी में आने के लिए महेश व उसके माता-पिता से काफी मिन्नतें भी कीं।

लेकिन महेश ने आने से साफ इनकार कर दिया, "मैं शादी में नहीं आऊँगा। अगर मृदुला को ले जाना चाहते हो तो ले जा सकते हो।"

लेकिन मृदुला ने भी दृढ़ निश्चय कर रखा था—"मैं शादी में जाऊँगी तो महेश के साथ ही।"

लगन के दिन से ही रोज कोई-न-कोई वहाँ तीन-चार घंटे का सफर तय करके जाता। मृदुला के चाचा-चाची भी गए। चाची ने महेश के पाँव पकड़कर बड़ी अनुनय की। जैसे-तैसे वह तैयार हो गया; लेकिन इस शर्त पर कि वह घर नहीं आएगा, सिर्फ बारात में ही जाएगा। उसने चाचा-चाची के साथ मृदुला को भेज दिया।

सुरेश भी मृदुला के न आने के कारण बहुत उदास था। घर का प्रत्येक सदस्य काम तो कर रहा था, लेकिन उनके चेहरे मुरझाए हुए थे। माँ छुप-छुपकर रोती रहीं। मीनल भी परीक्षा के कारण शादी से दो-तीन दिन पहले ही घर पहुँच सकी। देखा तो सारा घर मेहमानों से भरा हुआ है। उसकी आँखें उन सभी में अपनी दीदी को खोज रही थीं। बिना किसीसे पूछे वह सारा घर देख आई। जब उसे पता चला कि मृदुला दीदी नहीं आई हैं, तो वह बहुत दुःखी हुई। उसे शादी के कोलाहल भरे माहौल में सूनापन महसूस हो रहा था। जब कोई रिश्तेदार मृदुला के बारे में बातें करता और उसकी स्थिति पर खेद व्यक्त करता तो उसका दिल भर आता। कुछ रिश्तेदार तो मृदुला के पिता से ईर्ष्या करते थे। वे लोग सामने दुःख व्यक्त कर पीठ पीछे खुशी के ठहाके लगाते। किसी समय मीनल को किसी भी रिश्तेदार के उनके यहाँ आने पर बहुत खुशी हुआ करती थी, लेकिन आज उसे रिश्तेदारों का आना जख्म पर नमक जैसा लग रहा था। लेकिन जब मृदुला आ गई तो परिवार के प्रत्येक सदस्य का चेहरा खुशी से खिल गया।

मृदुला अपने भाई के सीने से लगकर बहुत रोई। कभी उसने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि भाई की शादी में आने के लिए वह तरस जाएगी। न जाने उसने भाई की शादी के लिए बचपन से कितने सपने सँजोए होंगे। मीनल का मन भी अपनी दीदी को देखकर चहक उठा।

बारात पहुँच गई। मृदुला बारात में नहीं गई थी। चारों तरफ हलचल थी। सभी का मन शादी के मौके पर खुश था। मीनल भी सजी-धजी घूम रही थी। उसकी आँखें अपने जीजाजी को तलाश रही थीं। आखिर महेश भी आ पहुँचा। महेश को देखकर मीनल का मन खुशी से चहक गया। पल भर में ही उसके मन से पुरानी बातें विस्मृत हो गईं। वह महेश की बहुत इज्जत करती थी; यहाँ तक कि महेश के बारे में कोई कुछ कहता तो वह उसीसे लड़ने लगती, चाहे वह कोई भी हो। शायद महेश के प्रति उसकी यह भावना मृदुला के कारण थी; क्योंकि वह अपनी बहन को सिर्फ चाहती ही नहीं थी वरन् उसके दिल में मृदुला के लिए एक अलग स्थान था।

कुछ देर रुककर महेश चला गया। हालाँकि सभी ने उसे रोकने की कोशिश की, लेकिन वह नहीं रुका। फिर दूसरे दिन वह मृदुला के चाचा के यहाँ आया। मृदुला के माता-पिता को महेश के आने का पता चला तो वे भी वहीं आ गए। उन्होंने उससे घर चलने के लिए विनती की। कुछ रिश्तेदार, जो मृदुला को बहुत चाहते थे, जगदीश को बहुत मानते थे, उन्होंने भी काफी मिन्नतें कीं। यहाँ तक कि उसके पैर भी पकड़े। मृदुला की माँ रो-रोकर, महेश के पैर पकड़कर गिड़गिड़ा रही थीं; लेकिन महेश पर उसका कोई असर नहीं हुआ।

वह माँ की ममता की खिल्ली उड़ाता हुआ बोला, "छोड़ो मेरे पैरों को। यह अच्छा तमाशा कर रहे हो।"

मीनल अपनी माँ को इस तरह किसीके पैरों पर गिड़गिड़ाते हुए पहली बार देख रही थी। यह देखकर उसका मन रो पड़ा। उसका मन कह रहा था कि धरती फट जाए और वह उसमें समा जाए, ताकि उसके लिए फिर कभी माँ को किसीके पैरों में गिरना न पड़े। आज उसके मासूम मन में चिनगारी सी जल उठी। वह बहुत कुछ बोलना चाहती थी, लेकिन अपने माता-पिता की तरह उसने भी सबकुछ सह लिया और औरों की तरह महेश के आगे हाथ जोड़कर उससे घर चलने की विनती करने लगी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। मीनल की

बात वह टाल न सका, शायद यही उसके इनसान होने की सच्चाई थी। वह थोड़ी सी देर के लिए घर गया।

सुरेश की शादी के बाद मृदुला के ससुरालवालों का व्यवहार उसके प्रति और भी बुरा हो गया। हर समय उसको ताने सुनने को मिलते, मायकेवालों के बारे में अपशब्द सुनने को मिलते। उस समय मृदुला गर्भवती थी। वह दूसरे बच्चे की माँ बनने वाली थी, तब भी उन लोगों का व्यवहार वैसा ही रहा। महेश की बड़ी बहनें कहने को तो शिक्षित थीं, उनके पति भी अच्छे पदों पर कार्यरत थे, लेकिन वे सब भी महेश को समझाने की जगह और भड़कातीं। वे लोग मृदुला के साथ बेहूदेपन से पेश आतीं, बात-बात पर भला-बुरा सुनातीं। किसी भी काम में एक पल की भी देरी होने पर उसपर बरसने लगतीं। छोटी-छोटी बातों पर भी खानदान को बखानने लगतीं।

एक दिन महेश ने मृदुला से अलमारी से कमीज लाने को कहा। लेकिन बच्ची को दूध पिलाने के कारण उसे एक-दो मिनट की देर हो गई। तभी महेश ने मृदुला के पास आकर उसके दोनों गालों पर दो थप्पड़ जड़ दिए, साथ ही भला-बुरा भी कहा। मृदुला बिना किसी विरोध के रोते हुए सबकुछ सहती रही। उसके बाद से महेश ने उससे बोलना बंद कर दिया। इतना सबकुछ सहने के बाद भी मृदुला उससे कई बार बात करने की कोशिश करती, लेकिन वह उससे बोलना नहीं चाहता था।

मृदुला की सास ने भी उसे ही डाँटा, "तू उससे माफी नहीं माँग सकती!"

सास के कहे अनुसार मृदुला ने महेश के पाँव पकड़कर रोते हुए माफी माँगी तो उसने उसे पैरों से झटक दिया। मृदुला रोती-गिड़गिड़ाती रही, लेकिन महेश पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

ऐसे ही न जाने उसने क्या-क्या सहा, कितनी यातनाएँ सहीं! उसका मन खुशहाल व शांतिपूर्ण जीवन के लिए तरसता रहा, पर उसे चंद मीठे शब्द सुनने का सुख तक न मिला और न ही सामान्य व्यवहार ही।

मृदुला का बच्चा वक्त से पहले ही इस दुनिया में आकर चल बसा। यहाँ तक कि मृदुला भी बड़ी मुश्किल से बच सकी।

मृदुला की गंभीर अस्वस्थता की खबर जब उसके मायके पहुँची तो सब मृदुला को देखने दौड़ पड़े। मीनल पर तो मानो पहाड़ ही टूट पड़ा। उसने मन में सोचा, 'मैं जानती हूँ कि मेरी बहन की ऐसी हालत का जिम्मेदार कौन है। अगर दीदी को कुछ हुआ तो मैं किसीको नहीं छोड़ूँगी। अब तक तो नारी का पूर्ण समर्पित, ममता भरा रूप देखा है, लेकिन अब दूसरा रूप भी देखना तुम।' भगवान् के सम्मुख रो-रोकर वह अपनी बहन की रक्षा के लिए प्रार्थना करती रही। आखिर भगवान् ने उसकी प्रार्थना सुन ली।

समय बीतता रहा। पर मृदुला के ससुरालवालों का व्यवहार वैसा ही रहा। लेकिन मृदुला हिम्मत नहीं हारी। उनके हर जुल्म सहकर जीवन-पथ पर चलती रही। कभी-कभी उसका मन दुःखी होकर कहता, 'ऐसे जीवन से तो अच्छा है, स्वयं को खत्म कर ले।' लेकिन उसमें हिम्मत थी। उसने ऐसा नहीं किया, न ही अपने माता-पिता को अपनी पीड़ा बताई; बल्कि हमेशा उनको ढाढ़स बँधाया।

नहीं जानती थी कि बेटी शादी के बाद माँ-बाप को भी बोझ लगती है। अगर उसे कल को घर छोड़ना पड़ा तो जो बाप दहेज के लिए लाखों रुपए लुटा देता है, शायद बेटी के लिए उसे रोटी भी भारी पड़ेगी।

मृदुला का जीवन भाग्य की काली लकीर बनकर रह गया। ऐसे जीवन को देखकर शायद हरेक को ऐसा लगे मानो लड़ना आसान है, सहना नहीं; तभी तो जगज्जननी माँ सीता बिना किसी विरोध के धरा में समा गईं। नहीं तो वह आदिशक्ति जग को हिला भी सकती थी।

मृदुला के दूसरे भाई की शादी भी नजदीक आ गई, लेकिन अब भी महेश का वही हाल था। काफी मिन्नतें करने के बावजूद वह मृदुला के साथ सीधा बारात में ही शामिल हुआ। उसके चेहरे पर आज भी वही अजाना अहंकार था। वह रात भर वहीं रहा। लेकिन सुबह पाँच बजे जब बारात विदा हो रही थी, वह भी मृदुला के साथ घर लौटने लगा। सभी लोगों ने उससे घर चलने के लिए निवेदन किया, लेकिन वह नहीं माना।

कड़ाके की ठंड थी। सूरज भी नहीं निकला था। अब भी घना अँधेरा पसरा था। इधर मृदुला की नई भाभी व उसके घरवाले विदाई के गम में रो रहे थे। वहीं खड़ी मृदुला आज अपनी शादी के सात साल बाद भी अपनी किस्मत पर आँसू बहा रही थी।

अकसर ननद अपनी नई भाभी को खुशी से अपने साथ विदा कराकर लाती है; किंतु मृदुला के नसीब में यह सुख भी नहीं बदा था। बारात विदा हो रही थी और मृदुला वहीं से अपनी ससुराल लौट रही थी। उसकी आँखें रक्ताभ थीं, जिनमें आँसू स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। मीनल भी बहुत दुःखी थी। अपनी भाभी के साथ गाड़ी में बैठी हुई वह सारे रास्ते रोती रही। उसकी आत्मा चीख-चीखकर कह रही थी, 'आखिर कब तक मेरी बहन के साथ जुल्म होता रहेगा? कब तक मेरी बहन मूक बनी हर जुल्म सहती रहेगी?' मीनल के हृदय में विद्रोह की चिनगारी तो पहले ही सुलग चुकी थी, ऐसी घटनाएँ उसे और भभका देतीं।

मृदुला के मायकेवाले यह सोचकर संतुष्ट थे कि दामादजी मृदुला को साथ लेकर शादी में पहुँचे तो। शाम को दावत में सभी लोग आ रहे थे, लेकिन हर बार की तरह मृदुला नहीं थी। खुशी का मुखौटा चढ़ाए परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने काम में लगा हुआ था।

दो दिन बाद मृदुला की माँ ने शादी का सामान, कपड़े, मिठाई वगैरह उसकी ससुराल भिजवा दिए। उस समय तो महेश ने कुछ नहीं कहा, लेकिन सुरेश के जाने के बाद मृदुला से काफी बुरा-भला कहा और उसे कड़ाके की ठंड में अकेले ही वह सामान लौटाने के लिए भेज दिया।

एक घंटा मायके में रुककर मृदुला वापस ससुराल लौट आई। लेकिन आज लौटते समय उसकी आँखों में आँसू नहीं वरन् एक चमक थी। शायद कह रही हो, 'नहीं, अब नहीं सहूँगी मैं जुल्म! मेरी विदाई आज हार नहीं वरन् शुरुआत है जंग की!' □

१०८५, महावीर नगर-II, कोटा-३२४००५

कुछ साहित्यिक शब्दों का व्युत्पादन

बलदेवप्रसाद मिश्र

पीठमर्द

आजकल पठन-पाठन में आनेवाले 'साहित्यदर्पण', 'दशरूपक' आदि ग्रंथों में पीठमर्द का यह लक्षण मिलता है—पीठमर्द वह है जो नायक का भक्त तथा अनुचर, शुद्ध अर्थात् सदाचारी, विचक्षण एवं नायक से गुणों में कुछ न्यून हो।

'दशरूपक' में पीठमर्द का 'पीठमर्दो विचक्षणः। तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः' यह लक्षण देने के बाद उदाहरण भी दिया है—'यथा मालतीमाधवे मकरन्दः रामायणे सुग्रीवः।' ठीक, मान लिया कि सुग्रीव राजा रामचंद्र के पीठमर्द थे और इसी प्रकार अन्य ग्रंथों में भी समझ लेंगे। पर 'मृच्छकटिक' या अन्य कई नाटकों या उसके उपभेदों में वेश्या के साथ भी पीठमर्द का वर्णन है। वहाँ 'नायक के गुणों से कुछ न्यून गुणवाला' की संगति कैसे बैठेगी?

वर्तमान अध्यापक पीठमर्द का अर्थ प्रायः 'संवाहक'—शरीर दबानेवाला—बताते हैं—'पीठं (देश्यां), तदुपलक्षणेन शरीरं मर्दयतीति पीठमर्दः।' यह और भी विलक्षण है।

ईसा के तीसरे या चौथे शतक पूर्व के आचार्य वात्स्यायन 'कामसूत्र' में लिखते हैं—'अविभवस्तु शरीरमात्रो मल्लिकाफेन कषायमात्रपरिच्छदः पूज्याद्देश्यादागतः कलासुविचक्षणस्तदुपदेशेन गोष्ठ्याँ वेशोचिते च वृत्ते साधयेदात्मानमिति पीठमर्दः।' अर्थात् दरिद्र और कलाओं में कुशल जो व्यक्ति कलाओं के उपदेश से गोष्ठियों या वेशोचित (वेश = वेश्याओं का वासस्थान) कामों से अपनी जीविका चलाए वह पीठमर्द है। वात्स्यायन के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि पीठमर्द का विशेष परिचय उस समय के नगरों के रसिकों और वेश्याओं से रहता था। उन्हींको वह कलाओं का उपदेश करता था।

ईसा की दशवीं शती के आचार्य हेमचंद्र 'अभिधान चिंतामणि' (२,२४४) में लिखते हैं—'वेश्याचार्यः पीठमर्दः।' इसकी व्याख्या वे ही इन शब्दों में करते हैं, 'वेश्याचार्यो वेश्यानां नृत्तोपाध्यायः। पीठं नर्तनस्थानं पादैर्मृद्नाति पीठमर्दः।' अर्थात् वेश्या को नृत्त सिखानेवाले आचार्य का नाम पीठमर्द है। पीठ अर्थात् नर्तन-स्थान को (नृत्त में) पैरों से रौंदने के कारण उसका नाम पीठमर्द है। वस्तुतः पीठमर्द का यही अर्थ है। वात्स्यायन कालिक गोष्ठियाँ तो अब नहीं हैं, पर 'वेश' हैं। अतः यह स्पष्ट ही है कि वात्स्यायन के समय के पीठमर्द धीरे-धीरे वेश्याओं से अधिक संबद्ध होते गए, वे कलाओं में कुशल थे ही; अतः धीरे-धीरे वेश्याओं को नृत्त की शिक्षा देने लगे। बाद में यही कर्म मुख्य हो गया और वे वेश्याचार्य हो गए।

आचार्य हेमचंद्र ने पीठमर्द की यह व्याख्या 'अभिधान चिंतामणि'—एक शब्दकोश—में की है। वहाँ उन्हें इसका ठीक-ठीक अर्थ देना ही पड़ा। इस अर्थ से 'मृच्छकटिक' आदि में वेश्या के साथ पीठमर्द के वर्णन की संगति भी ठीक-ठीक बैठ जाती है और उन वेश्याओं का पीठमर्द के लिए आदरसूचक संबोधन भी उचित ज्ञात होता है।

अन्य आचार्यों ने संभवतः पीठमर्द की इस हीनावस्था को छिपाने के लिए ही उसका यथार्थ परिचय नहीं दिया और 'रामायणे सुग्रीवः' कहकर चुप रहे; क्योंकि यह तो माना ही नहीं जा सकता कि चौदहवीं शताब्दी के 'अष्टादशभाषावारवनिताभुजंग' 'साहित्यदर्पण' के कर्ता विश्वनाथ ने या उनके बाद के विद्वानों ने आचार्य हेमचंद्र के ग्रंथ न देखे हों।

अतः निष्कर्ष यही रहा कि वेश्याओं का नृत्ताचार्य ही पीठमर्द है। नृत्त उस नाच को कहते हैं जिसमें नर्तक न गाता है और न 'बताता' है। 'अमरकोश' के सबसे प्राचीन टीकाकार क्षीरस्वामी नृत्त के संबंध में लिखते हैं—'नृत्तं अंगविक्षेपमात्रं विवाहाभ्युदयादौ।' अर्थात् विवाह या किसी अभ्युदय के समय अंगविक्षेपमात्र (गायनहीन एवं भाव-प्रदर्शनहीन) नृत्त है।

असुरविवर

संस्कृत साहित्य में 'असुरविवर' का उल्लेख कई ग्रंथों में है। सर्वाधिक उल्लेख संभवतः महाकवि बाणभट्ट ने किया है। 'कादंबरी' में वृद्ध द्रविड़ के वर्णन में उसका एक विशेषण है—'लग्नासुरविवरप्रवेशपिशाचेन' अर्थात् जिसे असुरविवरप्रवेश रूप पिशाच लगा हुआ था। 'कादंबरी' की प्रायः सभी टीकाओं में असुरविवर का अर्थ 'पाताल' किया गया है। कुछ टीकाकारों ने और विचित्र अर्थ भी किए हैं। दो उदाहरण यथेष्ट होंगे—(१) 'लग्नोऽसुरविवरं पातालं तत्र प्रवेशलक्षणः पिशाचो यस्य[१]।' इन टीकाकार ने 'असुरविवर' का अंग्रेजी पर्याय 'दि नीदर वर्ल्ड' दिया है। (२) 'लग्नोऽसुरविवरे प्रवेशाग्रह एवं पिशाचो यस्मिन् तेन[२]।' सिद्धांतवागीशजी की इस टीका से असुरविवर का अर्थ स्पष्ट व्यक्त नहीं होता, पर उनके वंगानुवाद से यह ज्ञात होता है कि वे उसका अर्थ 'असुर का ह्रद' मानते हैं—असुरेर ह्रदे प्रवेश करिबार

१. श्री एम.आर.काले बी.ए.।
२. श्री हरिदास सिद्धांतवागीश।

आग्रह रूप पिशाच ताहार पिछने लागियाछिलो।

असुरविवर का उल्लेख महाकवि बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में कई स्थानों पर है—(१) असुरविवर व्यसनी लोहिताक्षः (प्रथम उच्छ्वास)। (२) असुरविवरमिति वातिकैः (तृतीय उच्छ्वास)। (३) असुरविवराणीवापावृतानि (चतुर्थ उच्छ्वास)। (४) असुरविवरव्यसनिनं चापजह्रुरपरिमितरमणीनूपुरझणझणाह्लादरम्यया मागधं गोधनसुरुङ्गया स्वविषयं मे कलाधिपमन्त्रिणः (षष्ठ उच्छ्वास)।

इन चारों उल्लेखों में से तीसरा काम का है। उससे असुरविवर का ठीक अर्थ ज्ञात होता है। राजदर्शन के लिए सामंतों की महिलाओं के दल आ रहे हैं, उन्हींका एक विशेषण है—असुरविवराणीवापावृतानि—'मानो असुरविवर खुल गए हों', अर्थात् मानो असुरविवर से महिलाएँ निकल आई हों। इससे यह अनुमान होता है कि भूगर्भ में सुंदरी स्त्रियों के होने का कुछ लोगों को विश्वास था और वे उसका मार्ग ढूँढ़ते फिरते थे। उन्हें यह भी निश्चय रहा ही होगा कि वहाँ पहुँचते ही वे स्त्रियाँ सर्वस्व अर्पित कर देंगी। अतः असुरविवर का अर्थ पाताल न होकर भूगर्भ की स्त्रियों के पास पहुँचने का मार्ग ही समीचीन ज्ञात होता है। उक्त स्त्रियाँ भले ही पाताल में ही रहती हों, पर 'विवर' शब्द की सार्थकता 'मार्ग' अर्थ से ही है।

बाणभट्ट ऐसे लोगों—असुरविवरान्वेषकों—को पागल समझते थे, यह ऊपर के दूसरे उल्लेख से सिद्ध है—असुरविवरमिति वातिकैः। स्थाण्वीश्वर के वर्णन में यह उल्लेख है; उसे वातिकों—वातग्रस्तों—ने असुरविवर समझा।

जय जीव

'रामचरितमानस' में यह अर्द्धाली ज्यों-की-त्यों दो बार मिलती है— 'कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए।' एक बार राजा दशरथ के मंत्री जब उन्हें 'जुहारते' हैं तब आई है और दूसरी बार राजा जनक के मंत्री जब उन्हें प्रणाम करते हैं तब।

स्कूल में मेरे अध्यापकजी ने जय जीव की अर्थ बतलाया था, 'जीव की जय हो।'

कुछ वर्षों बाद 'मानस' का स्वतंत्र अध्ययन करते समय 'जय जीव' बार-बार कहने लगे कि हमारा अर्थ 'जीव की जय हो' नहीं है। 'मानस' की टीकाएँ देखीं, उनमें 'जीव की जय हो' भी था, अन्य बलात्कृत अर्थ भी थे। काशी के कुछ रामायणी व्यासों के यहाँ पहुँचा, बाहर से आनेवाले कुछ व्यासों को भी कष्ट दिया; पर संतोष न हुआ। हारकर चुप बैठ रहा।

तीन-चार वर्षों बाद कश्मीर के कवि क्षेमेंद्र का 'चतुर्वर्ग संग्रह' पढ़ा। उसके 'अर्थ-प्रशंसा' प्रकरण के पाँचवें श्लोक से 'जय जीव' का समाधान हो गया। श्लोक यह है—

वृद्धाः प्रसिद्धा विबुधा विदग्धाः शूराः श्रुतिज्ञाः कवयः कुलीनाः।
विलोकयन्तः सधनस्य वक्त्रं जयेति जीवेति सदा वदन्ति॥

अर्थात् वृद्ध, प्रसिद्ध आदि सभी तरह के व्यक्ति धनवान् का मुँह देखकर उसे कहते हैं—'तुम्हारी जय हो, तुम जीओ।'

और कुछ दिनों बाद 'योगवासिष्ठ' जैसे प्राचीन ग्रंथ में भी इस प्रकार 'जय जीव' के ऐसे ही प्रयोग मिले। तब यह निश्चय हो गया कि राजवर्ग का अभिवादन करना पुरानी परंपरा और शिष्टता है। गोस्वामीजी ने उसे ही 'मानस' में दिखलाया है।

होली

होलिकादहन के लिए 'होली' शब्द न मिलने के कारण विद्वानों के कई तरह के मत हैं। कुछ लोगों का कथन है कि होलिकादहन अलग वस्तु है; और उस दिन या उसके दूसरे दिन गुलाल (या रंग आदि का) प्रयोग नहीं होता था; वह वसंत पंचमी को होता था। वस्तुतः वसंत पंचमी को कामदेव-पूजन होता था। होलिकादहन के दिन या दूसरे दिन भी गुलाल आदि का उपयोग होता था। 'कल्पद्रु' कोश के इस श्लोक से यह व्यक्त है—

होलाकाऽपि च होली च वासन्ती कूर्दना स्त्रियः।
मधूत्सवः कामिमहो रजःपर्यायतो महः॥

इस श्लोक में 'होली' शब्द भी है, और इसके अनुसार होली के इतने पर्याय हुए—

१. होलाका, २. होली, ३. वासंती, ४. कूर्दना, ५. मधूत्सव, ६. कामिमह तथा ७. 'रजः' शब्द के किसी भी पर्याय शब्द के साथ 'महः' जोड़कर बना शब्द; जैसे—धूलिमहः।

इन पर्यायों में अंतिम 'रजोमह', 'धूलिमह' आदि यह सूचना देते हैं कि अबीर, गुलाल आदि का उपयोग होता था। 'कूर्दना' उछल-कूद, आमोद-प्रमोद के आधिक्य का सूचक है। 'कामिमह' भी विशिष्ट संकेत करता है।

झंझर

जल शीतल रखने का झंझर नामक मृत्पात्र काशी में और अन्यत्र भी प्रसिद्ध है। पर एक और 'झंझर' का प्रयोग भी बनारसी बोली में होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र भी एक नाटक (प्रेमजोगिनी) में उसका प्रयोग कर चुके हैं—'रंग है पुराने झंझर'। 'पुराने झंझर' प्रयोग में कुछ वैशिष्ट्य है, संभवतः मृत्पात्र से उसका संबंध नहीं है, मन में यह विचार बार-बार आता था। गत वर्ष 'ठाली' बैठा 'कल्पद्रु' कोश का पाठ करने लगा। उसमें वृद्ध के पर्याय में 'झर्झर' शब्द मिला, साथ ही याद आया—'रंग है पुराने झंझर'। यह 'झर्झर' ही 'पुराने झंझर' के 'झंझर' का जनक है या नहीं, सहृदया अत्र प्रमाणम्।

'कल्पद्रु' कोश (३/९६-९७) का श्लोक यह है—प्रवयाः स्थविरो वृद्धो जीनो जीर्णो जरन्नपि। झर्झरोऽपि च...... ॥ □

'साहित्य अमृत' पत्रिका पढ़ने में अच्छी लगती है। हम 'धर्मयुग' तथा 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के कई वर्षों तक पाठक रह चुके हैं। आज आपकी पत्रिका देखने पर पुरानी यादें ताजा हो गईं। सुंदर पत्रिका के प्रकाशन के लिए बधाई स्वीकारें। रचनाएँ सुलझी हुई, मन को छूनेवाली एवं दिशा-निर्देशन देनेवाली हैं।

शरद सिंह की कहानी 'बोलो बुआ, बोलो', सुनीता शर्मा की कविता 'पत्नी हलधर की', जी. गोपीनाथन की लघुकथाएँ बड़ी ही सुंदर रहीं। मैं श्री वंशीधर त्रिपाठी को बधाई देना चाहूँगा जिन्होंने 'देवनागरी लिपि में रूढ़ संयुक्ताक्षरों की संरचना' की उपयोगी जानकारी दी है।

—टी. भरत सिंह, महबूबनगर (आं.प्र.)

'साहित्य अमृत' के मार्च अंक में कुमुद शर्मा का आलेख 'पं. मुकुटधर पांडेय : छायावाद के अग्रदूत' इतिहास को जीवंत बनाए रखनेवाला लगा। संपादकीय सही धरती-पुत्रों को भूकंप से अधिक हिलानेवाला है। जी. गोपीनाथन की लघुकथाओं के अंत गर्भस्थ कथ्य को खूब शाइस्तगी के साथ संकेतित करते हैं। वंशीधर त्रिपाठी के 'देवनागरी लिपि में रूढ़ संयुक्ताक्षरों की संरचना' में काफी ज्ञानपरक सामग्री है। बस एक शंका है कि अन्यत्र 'क्ष' को 'क्' और 'श' का नहीं, 'क्' और 'ष' का योग लिखा गया है।

पुष्पिता का 'काव्यालोचक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ' सधे हुए लेखन का अच्छा नमूना कहा जाएगा।

—रमेश चंद्र महरोत्रा, रायपुर

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक पढ़ा। 'भारतीय संस्कृति के महिमामय प्रतीक : पं. सूर्यनारायण व्यास' लेख में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सुंदर विवेचन है। 'काव्यालोचक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ' में अज्ञेयजी के समीक्षक रूप पर प्रकाश डाला गया है। 'रामकृष्ण परमहंस का जन्म-पर्व' निबंध में परमहंस के व्यक्तित्व की दिव्यता का निरूपण है। श्रीमती कुमुद शर्मा ने 'पं. मुकुटधर पांडेय : छायावाद के अग्रदूत' आलेख में अनूठी जानकारी दी है। डॉ. वंशीधर त्रिपाठी ने हिंदी वर्णमाला के संयुक्ताक्षरों की संरचना का अच्छा ज्ञानवर्द्धन कराया है।

कविताएँ एवं कहानियाँ भी हृदयावर्जक हैं। इस प्रकार यह अंक विशेष सुंदर एवं संग्रहणीय है।

—विश्वंभर दयाल अवस्थी, बाँदा

'साहित्य अमृत' के मार्च अंक में रामनारायण सिंह 'मधुर' का लोक-साहित्य पर लिखा निबंध, भारतेंदु मिश्र का अवधी गीत 'ठग बिद्या', पुष्पिताजी द्वारा 'काव्यालोचक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ' आलेख और श्रवण कुमार गोस्वामीजी की 'कल्लो रानी' कहानी बहुत सुंदर हैं।

संपादकीय 'त्रासद वसंत आगम' मन को झकझोर गया।

—अनुराग अग्निहोत्री, सीतापुर

'साहित्य अमृत' के अंक समय पर मिल जाते हैं। फरवरी अंक में आपने 'असमानस मानस चख चाहीं' में कालातीत शाश्वतता के बारे में चिंतनपूर्ण लेख देकर सशक्त दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। मार्च के संपादकीय में त्रासदी के अंदर के मानवीय यथार्थ को प्रस्तुत कर पूरी तरह संवेदित किया है। लुप्त हो रहे मानवीय सरोकारों एवं नैतिक मूल्यों के प्रति चेतना जाग्रत् करना ही साहित्य का अमृत है। अजित कुमार राय की व्यथा भी कविता में ऐसी ही है।

—अरुण पाराशर 'बारना', कुरुक्षेत्र

'साहित्य अमृत' का फरवरी २००१ अंक पढ़ा। विष्णु प्रभाकर का संस्मरण और रामनारायण सिंह 'मधुर' तथा गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य रोचक लगे। परंतु कविताओं से संतोष नहीं हुआ। कहानियाँ अच्छी हैं। आपका संपादकीय तो पठनीय है ही।

—अश्विनी कुमार 'आलोक', समस्तीपुर

'साहित्य अमृत' का मार्च २००१ अंक मिला। श्री प्रभाकर श्रोत्रिय का आलेख पढ़कर अच्छा लगा। संपादकीय मन को पीड़ा के साथ छू गया। उषादेवी मित्रा की कहानी 'प्यासी हूँ', गोपीनाथनजी की लघुकथाएँ, 'रामकृष्ण परमहंस का जन्म-पर्व' निबंध उत्तम लगे। हिंदी के निर्माता में छायावाद पर पं. मुकुटधर पांडेय का योगदान पठनीय एवं संग्रहणीय सामग्री है। इस बार पुराने साहित्यकारों के पत्रों की प्रस्तुति न होना अखर गया। स्व. श्रीकांत जोशी की कविता 'मुझे मेरे विचार की परीक्षा देनी है' प्रभावित कर गई। रचनाओं के चयन व कुशल संपादन हेतु शत-शत बधाई।

—गजानन वर्मा, उज्जैन

'साहित्य अमृत' के दो अंक प्राप्त हुए। दोनों ही अंक अपने नाम को चरितार्थ करते हैं। संपादकीय सारगर्भित हैं। कहानियाँ, कविताएँ और संस्मरण रोचक, ज्ञानवर्धक व वैविध्यपूर्ण हैं। इतनी सुंदर पत्रिका के प्रकाशन के लिए हमारी बधाइयाँ स्वीकार करें।

—सहदेव सिंह पुरती, तिरुच्चि

'साहित्य अमृत' प्राप्त हुई। धन्यवाद। पत्रिका में संकलित सभी लेख आकर्षक हैं। विशेषतः संपादकीय 'असमानस मानस चख चाहीं' और कहानियों में श्री अजय मिश्र की 'रहे बनारस बना बनारस' बहुत ही अच्छी लगी। आशा है कि भविष्य में भी आपका यह प्रयास जारी रहेगा।

—मीरा सेन, कोच्चिन

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक पढ़ा। 'विधवा पेंशन योजना' व्यंग्य कविता अत्यंत पसंद आई। कवि घनश्याम अग्रवालजी ने मनोरंजक ढंग से सरकारी खामियों को उजागर कर दिया। ऐसी व्यंग्य रचनाओं तथा लोक-साहित्य से निश्चित ही 'साहित्य अमृत' सामान्य पाठकों के बीच भी अपनी सम्मानजनक जगह बनाएगा। साधुवाद!

—राजकुमार धर द्विवेदी, जबलपुर

'साहित्य अमृत' के मार्च अंक में रंग, उमंग और रस से ओतप्रोत होली के संदर्भ में डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर' के आलेख 'ब्रज में हरि होरी मचाई' ने मन को गद्गद कर दिया। लेखक को जी भर बधाई।

—राजा चौरसिया, कटनी

प्रश्नोत्तरी-४५

अगस्त १९९७ से हमने पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु प्रश्नोत्तरी प्रारंभ की थी, जिसमें पाठक निरंतर बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। हमें विश्वास है, पाठकों को आगे भी यह रुचिकर लगेगी तथा पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे और पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ मई, २००१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध जवाबवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो पत्र छाँटे जाएँगे तथा उन्हें एक सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कृत होनेवाले उत्तरदाताओं के नाम-पते जुलाई २००१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने पत्र 'प्रश्नोत्तरी', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ के पते पर भेजें।

प्रश्नोत्तरी-४२ का शुद्ध उत्तर

१. अंधा युग
२. जयशंकर प्रसाद, कामायनी
३. उर्वशी
४. मन (भारतभूषण अग्रवाल)
५. मंझन
६. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
७. श्याम नारायण पांडेय
८. माखनलाल चतुर्वेदी
९. सुमित्रानंदन पंत
१०. महादेवी वर्मा

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **आचार्य बजरंगी मिश्र**
ग्रा.—करनेहुवाँ
पो.—मेहनगर
आजमगढ़-२७६२०४

२. **डॉ. वंदना पांडिय**
३६/५, शास्त्री नगर
कानपुर-२०८००५

प्रश्नोत्तरी-४५

१. 'इंदु' में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी का नाम बताइए।
२. द्विवेदी युग का नामकरण किस रचनाकार के नाम पर हुआ?
३. उत्तर भारत की खड़ीबोली दक्षिण में जाकर किस रूप में विकसित हुई?
४. जायसी की रचना 'पद्मावत' किस भाषा में रचित है?
५. भगवतीचरण वर्मा के पाप-पुण्य की व्याख्या पर आधारित उपन्यास का नाम बताइए।
६. अमीर खुसरो की पहेलियाँ-मुकरियाँ किस भाषा में रची गईं?
७. 'आँसू' और 'लहर' काव्य कृतियों के रचयिता का नाम बताइए।
८. 'तीसरा सप्तक' किस वर्ष प्रकाशित हुआ?
९. 'नूतन ब्रह्मचारी' उपन्यास के लेखक का नाम बताइए।
१०. गिरिराज किशोर को उनकी किस कृति पर 'व्यास सम्मान' से सम्मानित किया गया?

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

हिंदी अकादमी के सम्मान घोषित

गत दिनों हिंदी अकादमी, दिल्ली ने वर्ष २०००-२००१ के लिए दिए जानेवाले सम्मानों की घोषणा की। वरिष्ठ कथाकार सुश्री कृष्णा सोबती को हिंदी के लिए उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए अकादमी का सर्वोच्च सम्मान 'शलाका सम्मान' प्रदान किया जाएगा। सम्मानस्वरूप एक लाख ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रुपए नकद, शॉल तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए जाएँगे।

इसके अतिरिक्त ग्यारह अन्य साहित्यकारों को उनकी विशिष्ट साहित्य सेवा, पत्रकारिता तथा राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान के लिए 'साहित्यकार सम्मान' दिया जाएगा। इसके अंतर्गत प्रो. निर्मला जैन, श्री सत्येंद्र शरत्, डॉ. मैनेजर पांडेय, डॉ. धर्मेंद्र गुप्त, श्री प्रेम कपूर, श्री महेंद्र भल्ला, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, डॉ. (श्रीमती) कमल कुमार (साहित्य सेवा), डॉ. रमेश दत्त शर्मा (हिंदी सेवा), श्री वीरेंद्र साँघी तथा श्री रवींद्र त्रिपाठी (पत्रकारिता) सम्मानित होंगे। प्रत्येक साहित्यकार एवं हिंदी-सेवी को इक्कीस हजार रुपए नकद, शॉल व प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए जाएँगे।

अकादमी का हास्य तथा व्यंग्य कविता के लिए 'काका हाथरसी सम्मान' डॉ. सरोजनी प्रीतम को दिया जाएगा। सम्मानस्वरूप उन्हें इक्कीस हजार रुपए नकद, शॉल एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया जाएगा।

अकादमी द्वारा वर्ष १९९९-२००० के लिए एक विशिष्ट कृति, ग्यारह साहित्यिक कृतियों और पाँच बाल साहित्य कृतियों को भी सम्मानित किया जाएगा। हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार स्व. श्री महावीर त्यागी को (निधनोपरांत) उनके संस्मरण 'आजादी का आंदोलन : हँसते हुए आँसू' के लिए 'विशिष्ट कृति सम्मान' प्रदान किया जाएगा। सम्मानस्वरूप इक्कीस हजार रुपए नकद, शॉल एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए जाएँगे। अन्य सम्मानित की जानेवाली साहित्यिक कृतियों में प्रो. रामशरण जोशी की 'मीडिया-विमर्श' (पत्रकारिता), श्रीमती चित्रा मुद्गल का 'आवाँ' (उपन्यास), डॉ. मक्खनलाल शर्मा का 'अल्लादी क्यों मारा गया?' (उपन्यास), श्री भगवान सिंह का 'उन्माद' (उपन्यास), श्री भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' (उपन्यास), श्री प्रताप सहगल का 'अनहद नाद' (उपन्यास), श्री रूपसिंह चंदेल का 'आखिरी खत' (कहानी संग्रह), डॉ. रमेशचंद्र मिश्र की 'कबीर अकेला' (समीक्षा), श्री देवेंद्र राज अंकुर की 'पहला रंग' (समीक्षा), डॉ. राज बुद्धिराजा का 'हाशिए पर' (संस्मरण) तथा श्री गौहर रजा का 'जज्बों की लौ तेज करो' (काव्य संग्रह) शामिल हैं। बाल साहित्य कृति सम्मान योजना के अंतर्गत पद्मश्री चिरंजीत का 'धरती का लाल', श्री बलवीर त्यागी का 'खेल-खेल में भूगोल', श्रीमती चित्रा गर्ग का 'विश्व की महान् वैज्ञानिक महिलाएँ', श्रीमती वंदना जोशी का 'उत्तराखंड की लोककथाएँ' तथा डॉ. बी.आर. धर्मेंद्र त्यागी के 'उत्तराधिकार' को सम्मानित किया जाएगा। साहित्यिक कृति सम्मान तथा बाल साहित्य कृति सम्मान योजना के अंतर्गत क्रमशः ग्यारह हजार रुपए तथा पाँच हजार एक सौ रुपए नकद, शॉल एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए जाएँगे। ☐

पाञ्चजन्य नचिकेता सम्मान अर्पण समारोह

२३ मार्च को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में पाञ्चजन्य नचिकेता प्रतिष्ठान की ओर से 'पाञ्चजन्य नचिकेता सम्मान अर्पण समारोह' का आयोजन किया गया। 'पाञ्चजन्य नचिकेता सम्मान' से श्रीयुत धीरेंद्रनाथ बेजबरुआ, संपादक—'सेंटीनल', गुवाहाटी को सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें एक लाख रुपए नकद, उत्तरीय एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। 'पाञ्चजन्य विशिष्ट सम्मान' से श्री गिरीश चंद्र मिश्र, हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व संपादक—'पाञ्चजन्य' तथा श्री असीम कुमार मित्र, वरिष्ठ बँगला पत्रकार एवं पूर्व सहायक संपादक—दैनिक 'आजकल', कोलकाता को सम्मानित किया गया। इन्हें सम्मानस्वरूप इक्यावन हजार रुपए नकद, उत्तरीय एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। 'पं. दीनदयाल उपाध्याय स्मृति सम्मान' श्री शरद चव्हाण, मराठी पत्रकार एवं श्रमिक विषयों के स्तंभ लेखक—दैनिक 'लोकसत्ता', मुंबई को; 'स्वामी तिलक स्मृति सम्मान' श्री किशोर मकवाणा, संपादक—'साधना', गुजराती साप्ताहिक, अमदाबाद को; 'बिपिन चंद्र पाल स्मृति सम्मान' श्री राकेश सिन्हा, स्वतंत्र पत्रकार एवं प्राध्यापक को; 'रामस्वरूप स्मृति सम्मान' श्री वीरेंद्र पारेख, पत्रकार व आर्थिक विश्लेषक एवं पूर्व सहायक संपादक—'ऑब्जर्वर ऑफ बिजनेस एंड पॉलिटिक्स' को तथा 'राजीव लोचन अग्निहोत्री सम्मान' श्री सिद्धार्थ शर्मा, विशेष संवाददाता 'ज़ी टेलीविजन नेटवर्क' को पच्चीस-पच्चीस हजार रुपए नकद, उत्तरीय एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान कर दिए गए। पुरस्कृत महानुभावों को प्रतीक चिह्न के रूप में भगवान् बुद्ध की कांस्य प्रतिमा भी दी गई। समारोह के मुख्य अतिथि प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पुरस्कार प्रदान किए। समारोह की अध्यक्षता श्री चो रामास्वामी, संपादक—'तुगलक' ने की। समारोह को श्री कुप्.सी. सुदर्शन, सरसंघचालक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ; श्री लालकृष्ण आडवाणी, केंद्रीय गृहमंत्री; डॉ. मुरली मनोहर जोशी, मानव संसाधन विकास मंत्री; आचार्य विष्णुकांत शास्त्री, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश तथा श्रीमती सुषमा स्वराज, केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री का प्रेरक सान्निध्य मिला। समारोह में बड़ी संख्या में साहित्यकार, पत्रकार, बुद्धिजीवी, राजनेता एवं विद्वान् उपस्थित थे। इसमें 'पाञ्चजन्य' पर निर्मित वृत्तचित्र का भी प्रदर्शन हुआ। ☐

पुरस्कार वितरण समारोह

१ मार्च को लखनऊ में अ.भा. अगीत परिषद् और रसाल स्मृति शोध संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित छत्तीसवें साहित्यकार सम्मेलन में डॉ. उषा गुप्ता को उनकी दीर्घकालीन साहित्यिक सेवाओं के लिए 'डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' पुरस्कार' प्रदान किया गया। पुरस्कारस्वरूप शॉल, वाग्देवी की प्रतिमा, प्रशस्ति-पत्र तथा एक हजार एक रुपए प्रदान किए गए।

समारोह के मुख्य अतिथि कवि श्री विनोद चंद्र पांडेय 'विनोद' थे। विशिष्ट अतिथि थे चिंतक एवं लेखक श्री रामचंद्र शुक्ल। इस अवसर पर सर्वश्री विनोद चंद्र पांडेय 'विनोद' को 'गजेंद्रनाथ चतुर्वेदी स्मृति सम्मान', श्री राजेश दयाल 'राकेश' को 'डॉ. हरदेव बाहरी स्मृति सम्मान', श्री रामचंद्र शुक्ल को 'डॉ. रामविलास शर्मा स्मृति सम्मान', श्री अशोक पांडेय 'अशोक' को 'पद्मश्री प्रो. लक्ष्मी नारायण दुबे स्मृति सम्मान', श्री सोहनलाल 'सुबुद्ध' को 'शलभ श्रीराम सिंह स्मृति सम्मान', श्री प्रमोद शंकर मिश्र को 'डॉ. शिवदान सिंह चौहान स्मृति सम्मान', श्री सुरेश श्रीवास्तव (विधायक) को 'प्रो. हरिकृष्ण अवस्थी स्मृति सम्मान', श्री श्रीराम शुक्ल को 'डॉ. गोविंद नारायण श्रीवास्तव स्मृति सम्मान', श्री तेज नारायण श्रीवास्तव 'राही' को 'मजरूह सुल्तानपुरी स्मृति सम्मान', श्री सुशील कुमार त्रिपाठी 'रागी' को 'ओम प्रकाश श्रीवास्तव 'लंठ' स्मृति सम्मान', डॉ. अशोक गुलशन को 'गीतकार बृजेंद्र स्मृति सम्मान', श्री त्रिभुवन सिंह चौहान को 'श्रीनारायण मिश्र 'साथी' स्मृति सम्मान', श्री संकटा प्रसाद श्रीवास्तव को 'लल्लनजी गाजीपुरी स्मृति सम्मान', श्री हाशमी लखनवी को 'अली सरदार जाफरी स्मृति सम्मान', सुश्री विभा रानी शुक्ला को 'महादेवी वर्मा स्मृति सम्मान', सुश्री श्रद्धा लक्ष्मी को 'स्नेहलता 'स्नेह' स्मृति सम्मान', डॉ. गीता को 'श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा सम्मान', श्री अनिल किशोर

शुक्ल 'निडर' को 'उमेश चंद्र शुक्ल स्मृति सम्मान', श्री विनय सक्सेना 'राही' को 'नरेश मेहता सम्मान' और श्री अवधेश 'शांतानंद' को 'केदारनाथ अग्रवाल स्मृति सम्मान' से—प्रतीक चिह्न देकर—सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम के दूसरे चक्र में राष्ट्रीय एकता कवि सम्मेलन संपन्न हुआ।

□

'विजय वर्मा कथा सम्मान' प्रदत्त

३ मार्च को मुंबई में तीसरा विजय वर्मा अखिल भारतीय समारोह संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार श्री गिरिराज किशोर ने युवा कहानीकार श्री शैलेंद्र सागर को उनके तीसरे कहानी संग्रह 'माटी' के लिए तीसरा 'विजय वर्मा कथा सम्मान' से सम्मानित किया। सम्मान के अंतर्गत शॉल, श्रीफल, स्मृति चिह्न और ग्यारह हजार रुपए का चैक प्रदान किया गया।

समारोह के विशिष्ट अतिथि थे 'वर्तमान साहित्य' के संपादक कथाकार श्री विभूति नारायण राय। श्री काशीनाथ सिंह ने समारोह की अध्यक्षता की।

□

दीक्षित दनकौरी को 'दुष्यंत अवार्ड'

२४ फरवरी को हिंदी अकादमी, दिल्ली के सौजन्य से अंजुमन फरोगे-उर्दू द्वारा पूर्वी दिल्ली में आयोजित एक समारोह में चर्चित शायर श्री दीक्षित दनकौरी को उनके गजल संग्रह 'डूबते वक्त…' के लिए 'दुष्यंत अवार्ड' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप पाँच हजार एक सौ रुपए, शॉल एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया।

□

लोकार्पण व काव्य गोष्ठी आयोजित

४ मार्च को गीता भवन, यमुना विहार, दिल्ली में एक लोकार्पण कार्यक्रम एवं काव्य गोष्ठी का आयोजन हुआ। कार्यक्रम का आयोजन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (यमुना विहार विभाग) के संपर्क विभाग के तत्त्वावधान में हुआ। इसमें युवा कवि श्री उत्तम प्रकाश की काव्यकृति 'माटी के स्वर' का लोकार्पण संघ के दिल्ली प्रांत के प्रचार-प्रसार प्रमुख श्री किशोर कांत ने किया। उन्होंने अपने उद्बोधन में संघ के कार्यों, उसकी वैचारिकता तथा स्वयंसेवकत्व पर प्रकाश डालते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण बातें कहीं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता विभाग संघचालक श्री रामचंद्र ने की। इस अवसर पर एक सरस काव्य गोष्ठी भी आयोजित हुई। इसमें एक दर्जन से अधिक कवियों ने अपने काव्य-पाठों से श्रोताओं का मन मोह लिया। कवियों में थे—श्री सत्यवीर सिंह, श्री रामचरन सिंह 'साथी', श्री कृष्णकांत मधुर, श्री देवेश तिवारी, श्री जयराम अरुण, श्री संत 'हास्यरसी', श्री राजवीर सिंह, श्रीमती मीरा गुप्ता, श्री सत्य प्रकाश 'बजरंग', श्री गिरिराज सक्सेना, श्री उत्तम प्रकाश, श्री रिसाल सिंह 'खुशदिल', श्री राधेश्याम 'बंधु', श्री रघुवीर रावत 'रोचक', श्री मुसाफिर 'देहलवी', श्री महेंद्र कुमार 'करुणेश' एवं श्री ओमकार त्रिपाठी।

कार्यक्रम के अंत में दिल्ली विश्वविद्यालय के पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज में हिंदी के प्रोफेसर तथा संघ के विभाग संपर्क प्रमुख डॉ. सुरेश चंद्र शर्मा ने आगत अतिथियों का आभार प्रकट किया। इस समारोह में अनेक साहित्यकार, बुद्धिजीवी एवं विद्वान् उपस्थित थे।

□

लोकार्पण

गत दिनों लखनऊ राजभवन के गांधी सभागार में एक साथ आठ कृतियों का लोकार्पण प्रदेश के राज्यपाल महामहिम आचार्य विष्णुकांत शास्त्री द्वारा किया गया। लोकार्पित की गई कृतियाँ थीं—'दिन-दिन पर्व', 'कविता : गूँजते स्वर', 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे', 'अब्रह्मण्यम्-त्राहिमाम', 'वैदेही', 'वेद-पारिजात', 'अभिव्यक्ति' और 'पर्यावरण की समस्याएँ—वैदिक समाधान'।

★★

८ मार्च को कांस्टीट्यूशन क्लब, नई दिल्ली में डॉ. रामदरश मिश्र की चौदह खंडों में प्रकाशित रचनावली का लोकार्पण हुआ। लोकार्पण प्रख्यात लेखक तथा समारोह के मुख्य अतिथि श्री विष्णु प्रभाकर ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर ने की। समारोह में प्रसिद्ध लेखक श्री महीप सिंह, आलोचक डॉ. नित्यानंद तिवारी एवं श्री विश्वनाथ त्रिपाठी तथा श्री विष्णुचंद्र शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर अनेक साहित्यकार, बुद्धिजीवी, विद्वान् एवं हिंदी-प्रेमी उपस्थित थे।

★★

गत दिनों पटना पुस्तक मेले में कथाकार मिथिलेश्वर के नए कहानी संग्रह 'जमुनी' का लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न हुआ। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में आलोचक डॉ. नंदकिशोर नवल उपस्थित रहे। समारोह में बड़ी संख्या में प्रबुद्ध पाठक और पुस्तक-प्रेमी उपस्थित थे।

□

गोष्ठियाँ

२३ मार्च को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में पाञ्चजन्य नचिकेता प्रतिष्ठान तथा युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार के संयुक्त तत्त्वावधान में राष्ट्रीय युवा पत्रकार संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी का विषय था—'पत्रकारिता में दलगत राजनीति'। इसमें सहभागी थे—श्री अरुण शौरी, सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं केंद्रीय विनिवेश राज्यमंत्री; श्री चो रामास्वामी, संपादक—'तुगलक', चेन्नई; सुश्री सबा भौमिक नकवी, विशेष संवाददाता—'आउटलुक'; श्री सईद नकवी, संपादक—'वर्ल्ड रिपोर्ट'; श्री राजदीप सरदेसाई, विशेष संवाददाता—'एन.डी.टी.वी.'; श्री दिलीप पडगाँवकर, प्रबंध संपादक—'द टाइम्स ऑफ इंडिया'; श्रीमती नीरजा चौधरी, राजनीतिक संपादक—'दि इंडियन एक्सप्रेस'; श्री चंदन मित्रा, संपादक—'पायनियर' एवं श्री यशवंत व्यास, संपादक—'नेटजाल डॉट कॉम'। संगोष्ठी के संयोजक श्री देवेंद्र स्वरूप एवं श्री बलबीर पुंज थे।

सुश्री उमाश्री भारती, युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्री, भारत सरकार ने सहभागियों का स्वागत किया। गोष्ठी में बड़ी संख्या में पत्रकार-संपादकों ने भाग लिया।

★★

गत दिनों मानव भारती शिक्षा समिति, हिसार द्वारा राजभाषा स्वर्ण जयंती वर्ष के समापन पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय के सौजन्य से एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी का आयोजन जाट कॉलेज के सभागार में किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन सांसद एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री बनारसीदास गुप्त ने किया। इसमें डॉ. बालशौरि रेड्डी (चेन्नई), डॉ. जी. पद्मजादेवी (तिरुपति), डॉ. मोहन शर्मा (वर्धमान), डॉ. तपेश्वर नाथ (भागलपुर), डॉ. राजमणि शर्मा (वाराणसी), डॉ. परमानंद पांचाल (दिल्ली), डॉ. लालचंद मंगल (कुरुक्षेत्र), डॉ. बैजनाथ सिंहल (रोहतक), श्री उदयभानु 'हंस' और डॉ. रामकुमार भारद्वाज (हिसार) सहित लगभग दो दर्जन प्रमुख विद्वानों ने भाग लिया।

इस अवसर पर डॉ. बालशौरि रेड्डी को 'मानव भारती सम्मान' तथा अन्य विद्वानों को प्रशस्ति-पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त एक 'राजभाषा' शीर्षक स्मारिका का प्रकाशन और बहुभाषी राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का आयोजन भी किया गया।

□

साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-६ अंक-१० वैशाख-ज्येष्ठ, संवत्-२०५८ मई २००१

संपादक
विद्यानिवास मिश्र

प्रबंध संपादक
श्यामसुंदर

सहायक संपादक
कुमुद शर्मा

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन-फैक्स : ३२५३२३३
ई-मेल : sahityaamrit@indianabooks.com
वेब ठिकाना : indianabooks.com/sahityaamrit

शुल्क
एक अंक—१२ रुपए
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—१२५ रुपए
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—१५० रुपए
विदेश में
एक अंक—दो यू.एस. डॉलर (US$2)
वार्षिक—बीस यू.एस. डॉलर (US$20)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

'साहित्य अमृत' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

आवरण चित्र : अशोक सिंह

इस अंक में

संपादकीय

भारत-तीर्थ

गरमियाँ आईं, उत्तराखंड की ओर तीर्थयात्रियों के पैर चल पड़े। कुछ वैष्णव देवी की ओर, कुछ ज्वाला देवी की ओर; पर सबसे बड़ी भीड़ गंगोत्तरी, जमुनोत्तरी, बदरी-केदार की ओर। थोड़े से लोग जागेश्वर, वैद्यनाथ और नंदा देवी की ओर। तयशुदा संख्या में टोली सरकारी देखरेख में या अपनी विशेष व्यवस्था से कैलास की ओर। तीर्थ का इतना आकर्षण क्या दिखावा है ? किसी तीर्थयात्रा पर ऐसा ही प्रश्न युधिष्ठिर के सामने आया। उन्हें वनवास मिला तो उन्होंने तीर्थयात्रा से उस वनवास को सार्थक करना चाहा। उसके पहले राम ने एक मुनि के आश्रम से दूसरे मुनि के आश्रम की यात्रा की और अपनी यात्रा से ही उन्होंने अनेक तीर्थ बना दिए। युधिष्ठिर के सामने प्रश्न आया था, 'सभी नदियाँ सरस्वती हैं, सभी पहाड़ पुण्य हैं, आत्मा ही तीर्थ है। इधर-उधर घूमने की और तमाम देशों का अतिथि बनने की आवश्यकता क्या है ?' 'वामनपुराण' में कहा गया कि आत्मा ही नदी है। उसमें संयम का जल है। सत्य ही धारा है, शील ही तट है, दया ही लहर है—इसीमें स्नान करें, इसीसे शुद्ध होंगे। जल से अंतरात्मा शुद्ध नहीं होती। मध्य युग में भी कठौती में गंगा आईं। कबीर ने इन यात्राओं को अर्थहीन बताया। पर विचित्र विडंबना यह कि कबीर का जन्म-स्थान तीर्थ, कर्म-स्थान तीर्थ, निर्वाण-स्थान भी तीर्थ हो गया। बुद्ध के साथ भी यही हुआ। तीर्थ क्या कर्मकांड है ? क्या वह अपने को विशाल में खोने की तैयारी नहीं है ? मैं भारत के कोने-कोने में गया हूँ और कोने-कोने में मुझे कुछ तीर्थ मिले जहाँ देश भर से लोग आते हैं। कुछ ऐसे मिले जहाँ क्षेत्र विशेष के लोग आते हैं। एक-दो अभिशप्त नदियों को छोड़कर कोई नदी नहीं मिली जिसमें तीर्थ न हो, जिसने अनेक तीर्थ न बनाए हों; कोई शिखर नहीं मिला, छोटी सी टौरिया भी नहीं मिली जहाँ किसी देवता का स्थान न बन गया हो। वहाँ मूर्ति भले ही न हो, पर कोई-न-कोई हाथी या घोड़ा सवारी करनेवाले देवता की उपस्थिति जताता है। कहीं केवल ढूह हैं। वैष्णव देवी में तीन पिंडियाँ हैं। पहाड़ों की हिममंडित चोटियाँ हैं, जहाँ धूप तरह-तरह के खेल रचती है—ये सभी तीर्थ हैं। समुद्र में मिलनेवाली नदियों के संगम हैं, वैसे भी समुद्र तट हैं, तमाम वनखंडियाँ हैं, वनखंडियों के भीतर कहीं टँगी हुई लाल पताका है, कहीं किसी गिरि देवता के कुछ आकार प्रतीक हैं—ये सभी स्थान तीर्थ हैं; क्योंकि पहाड़ियाँ दुर्गम, नदी दुर्गम, वन दुर्गम, सागर अथाह, पर पार जाने के संकल्प ने राह बनाई है। राह ही तीर्थ है। कष्ट सहकर राह बनाई है, तपकर राह बनाई है, श्रम कर राह बनाई है—वही तीर्थ है। तीर्थ का अर्थ है—पार जाने की जगह। इतना जरूर है कि तीर्थ जाना पिकनिक पर जाना नहीं है। निछद्दम में मौज-मस्ती के लिए नहीं जाना है। तपने जाना है या गलने जाना है। और उससे भी अधिक अपने छोटे से दायरे को तपाने और गलाने जाना है। वह दायरा धन का हो, पद का हो, प्रतिष्ठा का हो, विद्या का हो, रूप का हो, बल का हो, यश का हो, जाति का हो, मजहब का हो—उसको आदमी कहलाने के लिए तपाने-जलाने को तैयार न हो तो वह तीर्थयात्री नहीं, पर्यटक है। पर्यटक की आँखों को भोजन चाहिए, साँसों को भोजन चाहिए। तीर्थयात्री की इंद्रियाँ बराबर पीछे रह जाती हैं, उसकी दूसरी आकांक्षाएँ आगे दौड़ती चली जाती हैं। अस्सी-पचासी साल की बुढ़िया भी जय बदरीनाथ, जय केदारनाथ बोलती लाठी के सहारे चढ़ती चली जाती है—इस प्रत्याशा में कि कुछ घटने वाला है, अपने साथ अपने ऊपर, अपना कुछ नया रूपांतर होने वाला है।

मंदाकिनी के तट पर पहुँचते ही केदार पर्वत सिर पर आ जाता है और मंदिर, लगता है, कंधे पर खड़ा है। बदरीनाथ से काफी दूर से ही नर-नारायण पर्वत दिखने लगते हैं। बस के हिचकोलों पर ध्यान नहीं जाता, उन जोड़ी पर्वतों पर ही ध्यान जाता है। बदरीनाथ से भी ऊपर माना गाँव से आगे चलते हैं, वहाँ व्यास गुफा है, आगे सरस्वती नदी पर भीमपुल है। भीम ने ही उस नदी पर बड़ा सा पत्थर डाल दिया है, पुल बन गया है। उस पुल के पार सप्तधारा है, तपोवन है और आगे स्वर्गारोहण है। युधिष्ठिर का स्वर्गारोहण तीर्थयात्रा का अंतिम सोपान है।

जाड़ों में तीर्थयात्री माघ-स्नान के लिए त्रिवेणी की ओर करोड़ों की संख्या में चलते हैं, मकर संक्रांति के अवसर पर

गंगासागर जाते हैं, सावन में और चैत की रामनवमी के आस-पास अयोध्या की ओर अपार भीड़ जाती है। सावन-भादों और कार्तिक में ब्रजमंडल की ओर भीड़ जाती है। आश्विन, पौष, चैत्र में पिंडदान के लिए गया की ओर भीड़ जाती है। जाड़ों में चारों धाम की यात्रा के लिए तीर्थ रेलगाड़ियाँ निकलती हैं, जो जगन्नाथ, रामेश्वर, कन्याकुमारी होते हुए मुंबई जाती हैं; वहाँ से द्वारिका, द्वारिका से सोमनाथ, सोमनाथ से राजस्थान में एकलिंग और नाथद्वारा, कुरुक्षेत्र। वहाँ से मथुरा-अयोध्या होते हुए काशी लौटती हैं। यह भारत परिक्रमा किस पहचान के लिए होती है? क्या राष्ट्रीयता की पहचान के लिए? या मनुष्य के नर के भीतर नारायण की सहवर्तिता, सहचारिता की पहचान के लिए होती है? ये तीर्थयात्री राष्ट्रीय एकता के सूत्र नहीं ढूँढ़ने चलते, ये राष्ट्र को जगाने को नहीं चलते, भारत-दर्शन के लिए भी नहीं चलते, ये केवल अपने भीतर सोए हुए उस सामान्य भाव के लिए चलते हैं जो सबकुछ के बावजूद, सारे आवरणों के बावजूद रहता है। इसीलिए तीर्थ में एकत्र व्यक्ति एक-दूसरे का परिचय पूछने की आवश्यकता नहीं समझते। गंगा में डुबकी लगानेवाले लोग पासवाले की जाति-पाँति नहीं पूछते। हैसियत का कोई हिसाब नहीं पूछता। हैसियत ही यहाँ पर नंगे पाँव चलनेवालों से, चाहे वह ठंडी बालू पर चल रहा हो, चाहे गरम रेत पर, चाहे कँटीली-पथरीली राह पर, चाहे चढ़ाई पर, चाहे ढलान पर—अपना स्थान पूछती है कि मैं कहाँ हूँ?

इन तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए कोई कुछ क्या करेगा! सरकारें भी जो करती हैं, बस रस्म अदायगी करती हैं। उनका पर्यटक विभाग कुछ करने की सोचता है तो धर्मशालाओं को अतिथिभवन बनाने की बात के रूप में सोचता है। सामान्य को विशेष बनाए बगैर पर्यटन का काम चलता ही नहीं है। लोक के हित की चिंता तो केवल नारों में है अथवा संविधान में, या सड़कों के निर्माणवाले विभाग में। पर लोक चारों ओर से खदेड़ करके या तो रेडियो को सौंप दिया गया है या फिल्मी गानों को। सौंप क्या दिया गया है, उसे एक तरह से वहीं पर, भोजपुरी शब्द का प्रयोग किया जाय तो, ठठरिया दिया गया है, काँजी हाउस के बाड़े में बंद कर दिया गया है। यह जरूर है कि वहाँ खूँटा नहीं है और साथ ही चारा भी नहीं है; पर लोक है कि दूब की तरह बेहया—कट रही है, छँट रही है, फिर भी झुलसते-झुलसते भी जिए जा रही है। तीर्थयात्रा इसी लोक की होती है—लोक के भीतर रहनेवाले लोकोत्तर की पहचान के लिए। वह लोकोत्तर और कुछ नहीं, लोक का सहज स्वभाव है। अछोर विशालता, जरा सा छूते ही ढुलक जाने की प्रवृत्ति, तीव्र संवेदनशीलता और वज्र सहने की शक्ति। तीर्थयात्रा इन सबकी पहचान है। और सबसे अधिक पहचान है सहज विश्वास की। ठगे जाने पर भी लोग सहज विश्वास नहीं खोते। पहाड़ों में तीर्थयात्रियों का अनुभव यह था कि अब कहीं कोई किसीकी चीज उठाता नहीं। इसी सहज विश्वास के कारण यात्री सहज विश्वास कर लेते हैं कि एक भतीजा बनकर आता है और कहता है कि मैं सामान रखता हूँ, नहाकर आता हूँ, देखते रहिएगा। वह आता है तो आत्मीयता इतनी बढ़ी रहती है कि पूछने पर कि तुम्हें पहचान नहीं रहा हूँ, कहता है कि मैं आपके पीछे पैदा हुआ, आप गाँव के नाते मेरे फूफा हैं। फूफा सामान छोड़ नहाने जाता है, आता है तो सब गायब। और वह चिल्लाता फिरता है कि मैं किसका फूफा हूँ। ऐसे असंख्य लोग उपहसनीय बनते हैं, पर विश्वास करने की टेव नहीं छोड़ना चाहते। मेरे बाबा के समय के लोग उत्तराखंड की यात्रा के लिए पैदल जाते थे और घर से सदा के लिए विदा होकर जाते थे, लौटना हो, न हो। बड़ी कठिन यात्रा थी; पर यह यात्रा घर छोड़ने की यात्रा नहीं थी, घरों के घर में प्रवेश करने की यात्रा थी।

भारत की तीर्थयात्रा में सबकुछ के बावजूद अभी भी वह भाव कहीं बचा हुआ है। यात्रा की सुविधाएँ नहीं, ठहरने की सुविधाएँ नहीं; पर भोलेभाले तीर्थयात्री भीड़ में चलते जरूर हैं; पर भीड़ नहीं होते, न भीड़ के भाव से चालित होते हैं। हर आदमी अकेला होता है। एक तरह से अकेला शिखर। ऐसा शिखर जिससे सब दिखते हों और सब अपनी ओर आते हुए, अपने भीतर समाते हुए दिखते हों। व्यक्तिगत तौर पर मैंने अनुभव किया है कि चाहे अलकनंदा के किनारे-किनारे चढ़ना हो, चाहे मंदाकिनी के, लगता यही है कि हम ऊपर की ओर कहीं खिंचे जा रहे हैं, नीचे की ओर देखने में हमें चाहे डर लगे, पर ऊपर हमें अभय दिखता है। यात्रा करते समय गुरुत्वाकर्षण का हिसाब गड़बड़ा जाता है। आदमी का सत्त्व उड़ने-उड़ने को हो जाता है।

कैसे कहें कि यह उपक्रम पाखंड है। ऊँचाइयों और गहराइयों तथा दूर-दूर तक फैली हुई समानतल की उपत्यकाओं, अधित्यकाओं के बीच से गुजरना क्या अंतस्तल को प्रभावित किए बिना रहता है? क्या उसमें भीतर का प्रकाश उछलकर बाहर भी नहीं आता? भीतर का अंधकार दुबककर गहराइयों में धँसने नहीं चला जाता? भारत में तीर्थयात्रा पैरों की थकान नहीं है, न स्वास्थ्य-लाभ है, वह ऊर्जा के ग्रहण की तैयारी है। वर्षा का जल पड़ने के लिए पात्र साफ किया जाता है, खाली किया जाता है। तीर्थयात्रा ऐसा ही विरेचन है। जब पूरे भारत के साथ यह भाव जुड़ा हुआ दिख जाता है तो भारत कोई राजनीतिक, भौगोलिक इकाई नहीं रह जाता, वह भावात्मक सत्ता बन जाता है। तीर्थयात्रा भारत की भावात्मक सत्ता की असली पहचान है।

□

मास्टर साहब

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

> आधुनिक हिंदी में पत्रकारिता से लेकर कहानी, नाटक और निबंध लेखन के क्षेत्र में चंद्रगुप्त विद्यालंकार का विशेष स्थान है। 'वापसी' और 'चंद्रकला' उनके महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं। शिल्प की प्रौढ़ता तथा यथार्थ के कसे हुए रूप के कारण उनकी कहानियों ने पाठकों को आकर्षित किया। पाठकों के लिए हम यहाँ उनकी एक प्रसिद्ध कहानी प्रस्तुत कर रहे हैं–

न जाने क्यों बूढ़े मास्टर रामरतन को कुछ अजीब तरह की थकान सी अनुभव हुई और संध्या-प्रार्थना समाप्त कर वे खेतों के बीचोबीच बने उस छोटे से चबूतरे पर बिछी एक चटाई पर ही लेट रहे। सन् १९४७ के अगस्त मास की एक चाँदनी रात अभी-अभी शुरू हुई थी। मास्टर साहब ने जब संध्या-प्रार्थना शुरू की थी तो आकाश पर छितराए बादलों में अभी गहरी लाली विद्यमान थी; परंतु संध्या समाप्त कर जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो सब तरफ चाँदनी व्याप्त हो चुकी थी और आकाश के एक भाग में छाए हलके-हलके बादल रुई के बंडलों की तरह सफेद दिखाई देने लगे थे। पिछले दिनों बहुत गरमी रही थी—मौसम की भी, दिमाग की भी। मास्टर साहब का यह कस्बा जैसे दुनिया के एक किनारे पर है। नजदीक-से-नजदीक का रेलवे स्टेशन वहाँ से तीस मील की दूरी पर है। फिर भी पिछले कितने ही दिनों से कितनी अमंगलपूर्ण खबरें दिन-रात सुनने में आ रही हैं। सुना जाता है, मुसलमान हिंदुओं और सिक्खों के खून के प्यासे बन गए हैं। दुनिया तबाह हो रही है। घर-बार लूटे जा रहे हैं। सब तरफ मार-काट जारी है। मास्टर साहब के गाँव में अभी तक अमन-चैन है, फिर भी वहाँ के वातावरण में एक गहरा त्रास स्पष्ट रूप से छाया हुआ है।

चाँदनी रात की ठंडी हवा और चारों तरफ गहरा सन्नाटा। मास्टर साहब को जैसे राहत सी मिली। थके हुए दिमाग का बोझ उतर सा गया। ऊँह, ये सब झूठी अफवाहें हैं। कभी ऐसा भी हो सकता है! भला, जब मैंने किसीका कुछ भी नहीं बिगाड़ा तो किसीको कुत्ते ने काटा है कि वह मेरे खून तक का प्यासा बन जाय! अपनी जिंदगी के पैंसठ बरस मैंने यहाँ बिताए हैं। मेरे शागिर्दों की संख्या हजारों में है। हिंदू, सिक्ख, मुसलमान सभी को मैंने एक समान दिलचस्पी से पढ़ाया है। कोई एकाएक मेरा दुश्मन क्यों बन जाएगा? मगर यह पाकिस्तान! मास्टर साहब की दिमागी राहत को जैसे एकाएक ठोकर लग गई। हूँ, यह पाकिस्तान तो अब सिर पर ही आने वाला है! मास्टर साहब के शरीर भर में एक कँपकँपी सी छूट गई।

माँ प्रकृति ने जैसे अपने इस बूढ़े पुत्र को एक प्यार भरी थपकी दी। हवा की ठंडक और भी बढ़ गई तथा चाँदनी का उजलापन और भी चमक आया। मास्टर साहब को सहसा अनुभव हुआ, यह तो वही दुनिया है जिसे देखने का अभ्यास उन्हें बचपन से है। वही खेत हैं, जिन्हें उनके बाप-दादा उनके लिए छोड़ गए हैं। वही आसमान है, वही धरती है और वही सदैव ताजा बनकर बहनेवाली हवा है। आखिर पाकिस्तान इन सबको तो नहीं बदल डालेगा। ये सब तो उसी तरह कायम रहेंगे। आखिर पाकिस्तान में भी इनसान की मिल्कीयत रहेगी, काम-धंधे रहेंगे, जबान

रहेगी, लिखना-पढ़ना रहेगा। फिर मेरे जैसा फारसीदाँ पाकिस्तानवालों को क्योंकर नागवार गुजरेगा? पाकिस्तान बनेगा तो यह सबकुछ बदल थोड़े ही जाएगा। आखिर कोई बाहर के लोग तो आकर पाकिस्तान को नहीं बसाएँगे। पाकिस्तान एक दिन बनना ही था। चलो, वह हमारी जिंदगी में ही बन गया।

रात का सन्नाटा और भी गहरा हो गया और अपनी इस छोटी सी जमींदारी के इस अत्यंत सुरक्षित भाग पर लेटे-लेटे मास्टर साहब को नींद आ गई। प्रभात की लाली आसमान पर दिखाई देने लगी ही थी कि मास्टर साहब की नींद टूट गई। सहसा उन्होंने पाया कि वातावरण अभी तक एकदम नीरव है। यहाँ तक कि चिड़ियों की चहचहाहट भी उन्हें सुनाई नहीं दी। मास्टर साहब उठ खड़े हुए और तेजी से गाँव की ओर चल पड़े।

एक खास तरह की मनहूसियत जैसे उन्हें चारों तरफ फैली हुई दिखाई दे रही थी। राह में कितने ही मुसलमान किसानों के कच्चे कोठे हैं। उन कोठों के आस-पास कितने ही बच्चों और औरतों को उन्होंने देखा। उनमें से अधिकांश से वे परिचित थे; परंतु आज सभी उन्हें कुछ बदले हुए से प्रतीत हो रहे थे। एक गहरी चुप्पी जैसे पुकार-पुकारकर उन्हें चेतावनी दे रही थी कि महाकाल की बेला सिर पर है। राह के किसानों के चेहरे जरूर गंभीर थे, परंतु मास्टर साहब से किसीने कुछ भी नहीं कहा। वे तेजी से अपने गाँव की ओर बढ़ते गए।

यह दूर पर क्या दिखाई दे रहा है? मास्टर रामरतन सहसा चौंक पड़े। जिस तरफ उनका गाँव है, उधर ही सुदूर क्षितिज पर बहुत बड़े पैमाने पर एक काला-काला क्या दिखाई दे रहा है? ये बादल नहीं हैं, क्योंकि बादल नीचे से ऊपर को नहीं जाया करते। मास्टर साहब की चाल और भी तेज हो गई। अब उन्हें सुदूर क्षितिज पर लाली भी दिखाई देने लगी। सुबह-सुबह पश्चिम में दिखाई देनेवाली यह लाली स्पष्टत: किसी बहुत बड़े अमंगल की सूचक थी। बूढ़ा मास्टर अपने परमात्मा से प्रार्थना करने लगा—और चाहे जो कुछ हो, यह अग्निकांड उसके गाँव में न हुआ हो। मगर यह तो स्पष्ट ही है कि उनका गाँव जल रहा है। बूढ़े मास्टर ने अपनी प्रार्थना की माँग और भी कम कर दी—चाहे उनका सारा गाँव जलकर भस्म हो जाय, उनके गाँव के सभी निवासी ही सलामत बच जाएँ।
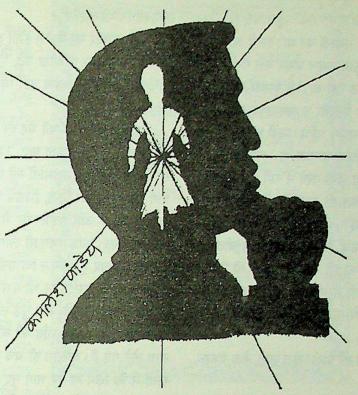
मास्टर साहब अब दौड़ने लगे। बहुत जल्द वे पसीना-पसीना हो गए; पर उनकी दौड़ जारी रही। कुछ दूर पहुँचकर एक अत्यंत त्रासदायक महानाद सा भी उन्हें सुनाई देने लगा, जैसे सैकड़ों नर-नारी एक साथ हाहाकार कर रहे हों।

बूढ़े मास्टर ने अपनी प्रार्थना की माँग और भी कम कर दी—चाहे कितने ही लोग कत्ल भी क्यों न हो जाएँ, उनके गाँव की किसी लड़की का अपमान न होने पाए।

और तभी सहसा चिंता के एक बड़े तूफान ने उनके हृदय को एक सिरे से दूसरे सिरे तक झकझोरकर रख दिया। ओह, उनके परिवार की सब स्त्रियाँ और बच्चे गाँव में ही थे! और उनकी लाड़ली पोती निर्मला, जिसकी पंद्रहवीं वर्षगाँठ अभी पाँच ही दिन हुए बीती है।

मास्टर साहब के हृदय की संपूर्ण सद्-अभिलाषाएँ खुद-ब-खुद अपनी लाडली पोती निम्मी के चारों ओर केंद्रित हो गईं। ओ मेरे परमात्मा, ओ मेरे देवता! यह तेरी अपनी लज्जा का सवाल है! मेरी निम्मी को तू अपने पास भले ही बुला ले, उसकी बेइज्जती मत होने देना।

पूरब दिशा में अग्नि का पुंज सूरज निकल आया। मास्टर साहब अब अपने गाँव के काफी नजदीक पहुँच गए थे। अब वे अकेले भी नहीं थे। उनके गाँव के कितने ही हिंदू और सिक्ख खेतों में छिपे या गाँव की ओर से भागकर आते हुए उन्हें दिखाई दिए। मास्टर साहब पसीने से तर-ब-तर हो गए थे। राह की धूल उस पसीने से लगकर वहीं द्रवीभूत होने लगी थी। इसी बहती मिट्टी से उनका मुँह, कपड़े और बाल पूरी तरह भर गए। फिर भी जिस किसी तरह वे दौड़ते चले गए और अपने गाँव की सीमा में आ पहुँचे।

मास्टर साहब ने आवाज दी, "नत्थूसिंह, मेरे घर का क्या हाल है?"

नत्थूसिंह उनका पड़ोसी था। वह इतना उदास दिखाई दे रहा था जैसे उसकी निर्जीव देह मात्र चल-फिर रही हो। नत्थूसिंह ने मुँह से कुछ नहीं कहा, सिर्फ इस तरह सिर हिला दिया जिससे असमर्थता प्रकट होती थी। मास्टर साहब ने कितने ही लोगों को पुकारा, जवाब कहीं से नहीं मिला। कुछ क्षणों के बाद वे अपने मोहल्ले के सामने विद्यमान थे। राह

भर में कितनी लाशों को लाँघकर वे इस जगह तक पहुँच पाए।

मास्टर साहब का मोहल्ला पक्के मकानों का था। इससे आग वहाँ बहुत फैलने नहीं पाई थी। किनारे के कुछ मकान जरूर जल गए थे और अब उनमें गहरा नीला-काला धुआँ उठ रहा था। पर मास्टर साहब का अपना मकान जरा भी नहीं जलने पाया था और न अब उधर आग बढ़ने का खतरा ही था। वे लपककर घर के सामने पहुँचे। गली भर में एक भी आदमी उन्हें दिखाई नहीं दिया। सब तरफ सन्नाटा था—मौत का गहरा सन्नाटा! कुत्ता, बिल्ली या कोई भी जिंदा प्राणी गली में नहीं था। आसमान में परिंदे तक नहीं थे। सिर्फ दूर पर जल रहे मकानों की ज्वालाएँ एक भयोत्पादक आवाज उत्पन्न कर रही थीं।

क्षण भर को मास्टर साहब ठिठक गए। जो कुछ भी बीता है, उसका आभास उन्हें मिल गया था। फिर भी यह उम्मीद तो थी कि घर के लोग शायद बच गए हों। अगर यही उम्मीद कायम रह सकती तो! क्षण भर के बाद मास्टर साहब ने सहमे-सहमे आवाज दी, ''निम्मी!''

कोई जवाब नहीं आया।

मास्टर साहब ने पुकारा, ''निम्मी की दादी! बेटा सत्तो, बेटा प्रकाश, बेटी सतवत्ती!''

कोई जवाब नहीं आया।

मास्टर साहब धीरे-धीरे घर के भीतर प्रविष्ट हुए। घर के सब दरवाजे चौपट खुले पड़े थे। अंदर जैसे कोई झाड़ू सा दे गया था। कहीं कोई चीज नहीं थी। गुंडे सभी कुछ उठा ले गए थे। भीतर जाते ही एक तरफ बैठक है। सब खाली। उसके बाद एक खुला सहन है। इस सहन के दाहिनी ओर दो कमरे हैं, जो सर्दियों में परिवार के सोने के काम आते हैं। दोनों कमरे एकदम खाली पड़े हैं। सहन की बाईं ओर एक दरवाजा है। उसमें से होकर एक छोटे सहन में जाना होता है, जहाँ घर के जानवर बाँधे जाते हैं—एक बरामदा, एक कमरा जानवरों के लिए। इस वक्त सब खाली है। कमरे के पिछवाड़े में जरा सी जगह खाली है, जिसके चारों ओर ऊँची दीवारें हैं। यहाँ मास्टर साहब की बूढ़ी घरवाली ने तुलसी के कुछ घने झाड़ बो रखे हैं और उनके पास एक चबूतरे पर वे नियमित रूप से भगवान् की पूजा करती हैं। धड़कते दिल से मास्टर साहब इस झाड़ तक आ पहुँचे।

ओह, मेरे भगवान्! यह सब क्या सच है? तुलसी के उस झाड़ के नीचे नन्हे सत्तो और प्रकाश की क्षत-विक्षत निष्प्राण देह पड़ी हैं, मानो अनजान शिशु डरकर माँ तुलसी की गोद में आसरा पाने आए हों। उधर चबूतरे पर माँ-बेटी—मास्टर साहब की जीवनसंगिनी अपनी बड़ी लड़की से चिपककर—पड़ रही हैं निष्प्राण, निस्पंद!

क्षण भर के लिए मास्टर साहब को प्रतीत हुआ जैसे वे स्वयं निष्प्राण हो गए हैं; उनके हृदय की संपूर्ण अनुभूति सन्न होकर निष्क्रिय बन गई है। परंतु अभी तो मास्टर साहब ने सभी कुछ नहीं देखा! उनकी लाडली निम्मी कहाँ है?

बूढ़े मास्टर की बेहोश होती हुई चेतना खुद-ब-खुद लौट आई। वे अत्यंत करुण स्वर में चीख उठे, ''निम्मी! निम्मी! निम्मी!''

कहीं से कोई जवाब नहीं मिला।

□

उसके बाद घंटों की मेहनत से मास्टर रामरतन रात के महाप्रलय के संबंध में जो कुछ जान पाए, उसका सार इतना ही था कि चाँद डूबने से घंटा भर पहले मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या ने गाँव के उस भाग पर हमला कर दिया, जिसमें हिंदू और सिक्ख रहते थे। यह हमला इतना अचानक और इतनी जोर से हुआ कि उसका मुकाबला किया ही नहीं जा सका। आक्रमणकारी लोगों में बहुत बड़ी संख्या आस-पास के तथा दूर से आए मुसलमान किसानों की थी; परंतु यह कह सकना कठिन है कि गाँव के मुसलमान भी उसमें शामिल थे या नहीं। भयंकर मार-काट और लूट-मार के बाद गुंडे लोग गाड़ियों में भरकर लूटा हुआ माल अपने साथ ले गए हैं। गाँव की बीसों जवान लड़कियों को भी वे अपने साथ लेते गए हैं। वे लोग ही बच पाए, जो रात के वक्त घरों से भागकर खेतों में जा छिपे या दूर भाग गए। वे सब लोग अब एक जगह इकट्ठे कर दिए गए हैं और उन्हें नए हिंदुस्तान में भेजने का इंतजाम किया जा रहा है। मास्टर साहब के एक पड़ोसी ने इतना ही बताया कि जब वह उनके घर के सामने से होकर भागा जा रहा था तो घर के भीतर से भयंकर हाहाकार सुनाई दे रहा था। निम्मी के संबंध में सभी का यह खयाल था कि गुंडे जरूर उसे अपने साथ उठा ले गए हैं।

बूढ़े मास्टर की परेशानी की सीमा न रही। जन्म भर से अत्यंत ईश्वर-परायण वृद्ध की अंतरात्मा ने अपने उस अज्ञात आराध्य देव से पूछा, 'मेरे किस अपराध की सजा इस छोटी सी, मासूम सी बच्ची को मिली है, ओ मेरे देवता?'

अपनी जीवनसंगिनी, बड़ी विधवा पुत्री और दोनों पोतों को एक साथ खोकर बूढ़े मास्टर के लिए जिंदगी में क्या दिलचस्पी बाकी रह सकती थी? अच्छा होता कि वे भी साथ ही मर जाते। पर मास्टर अब यह बात सोच भी नहीं सकते थे। उनकी लाडली पोती निम्मी जिंदा है और वह गुंडों के हाथ में है।

अपना जीवन-ध्येय चुनने में मास्टर साहब को सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह तो जैसे आसमान पर लिखा हुआ सा उनके सामने आ गया। बूढ़े मास्टर ने निश्चय किया कि वे जिस किसी तरह निम्मी की तलाश करेंगे, किसी-न-किसी तरह उसके पास पहुँच जाएँगे और? साफ था कि बूढ़ा उसे बचा नहीं सकेगा तब? निम्मी के पास पहुँचकर बूढ़ा दादा अपने हाथों अपनी पोती की हत्या करेगा और उसके बाद खुद भी मर जाएगा।

साँझ तक गाँव के भले मुसलमानों की मेहनत से वे सब हिंदू और

सिक्ख एक धर्मशाला में एकत्र कर दिए गए, जो प्रभात के महाप्रलय से बाकी बच रहे थे। थाने से दो बार सिपाही भी उनकी देखभाल के लिए आ पहुँचे और उन्हें जिले की ओर से जाने का प्रबंध किया जाने लगा। परंतु मास्टर रामरतन इन लोगों में नहीं थे। न जाने वे किस वक्त चुपचाप गाँव से खिसक गए।

गाँव छोड़ने के तीन दिनों के भीतर ही मास्टर रामरतन का जैसे कायाकल्प हो गया। मुँह की झुर्रियाँ और भी गहरी हो गईं। आँखें एक तरह से गढ़े में चली गईं और उनके नीचे कालिमा-सी पुत गई। ये तीन डरावने दिन उनकी पैंसठ साल की जिंदगी पर जैसे पूरी तरह छा गए। मास्टर साहब का चेहरा इतना गमगीन और इतना गंभीर दिखाई देने लगा जैसे वे अपनी सारी जिंदगी में कभी न हँसे हों और न मुसकराए ही हों।

किसी अपरिचित के लिए यह पहचान सकना अब आसान नहीं था कि मास्टर साहब हिंदू हैं या मुसलमान। बेतरतीबी से बढ़े हुए और बेपरवाही से बिखरे हुए उनके धूलि-धूसरित बालों ने उनकी आकृति पर फकीरी की छाया डाल दी थी—एक फकीर, जो न हिंदू होता है और न मुसलमान। वह फकीर बन ही तभी सकता है, जब वह इस दुई को, इस भेदभाव को एकदम भूल जाए।

आस-पास की कितनी ही बस्तियों और गाँवों की खाक छानते-छानते मास्टर साहब को यह मालूम हो गया कि उनके गाँव पर आक्रमण करनेवालों का मुखिया एक पूरे गाँव का जमींदार गुलाम रसूल था। और यह भी कि वह कितनी ही हिंदू लड़कियों को अपने साथ घर ले गया है।

राह की एक सुनसान पगडंडी पर चलते-चलते सहसा बूढ़े मास्टर को अनुभूति हुई कि वे अपने लक्ष्य के बहुत नजदीक आ पहुँचे हैं। इस अनुभूति के साथ-ही-साथ उनका हाथ जैसे खुद-ब-खुद जेब में पहुँच गया, जहाँ एक चाकू सँभालकर रखा गया था। बूढ़े मास्टर ने चारों ओर एक खोजती निगाह डाली और जब दूर तक उन्हें और कोई मानव आकृति नहीं दिखाई दी तो काँपते हाथों से उन्होंने वह चाकू जेब से बाहर निकाल लिया। चलते-चलते बाएँ हाथ में चाकू पकड़कर दाहिने हाथ से उसे खोला और बिना रुके ही दाहिने हाथ की तर्जनी उँगली से उसकी धार की परीक्षा की। बूढ़े का हाथ बुरी तरह से काँप रहा था। इससे उँगली की मोटी चमड़ी जरा सी कट गई और उसपर खून चमक आया। चार दिनों में पहली बार मास्टर को उत्साह की अनुभूति हुई। एक अजीब तरह की उत्तेजना उनके थके हुए मन पर छा गई। हाँ, मैं अपना काम बखूबी कर सकूँगा। इस तेज चाकू से एक हत्या और उसके बाद आत्महत्या! चाकू बंद करके उन्होंने जेब में डाल लिया और डगमगाते पैरों की गति स्वयमेव तेज हो गई।
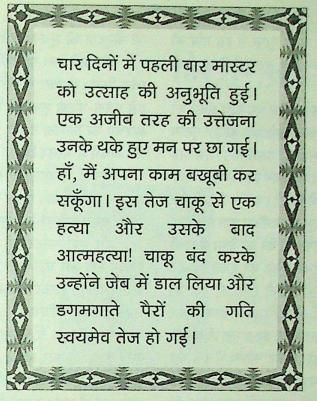
गुलाम रसूल का घर तलाश करने में मास्टर साहब को देर नहीं लगी। कुल मिलाकर पच्चीस-तीस मकान थे और उनमें सबसे बड़ा तथा सबसे ऊँचा मकान जमींदार का था।

उन्होंने मकान के दरवाजे पर दस्तक दी। क्षण भर में मकान के सहन का दरवाजा खुल गया और एक बच्चे ने आकर पूछा, ''क्या चाहिए?''

मास्टर साहब सहसा चौंक गए। बच्चे की उम्र उनके चार साल के सत्तो से अधिक नहीं थी। तो अभी तक दुनिया में मासूम बच्चे मौजूद हैं! इस महान् हत्यारे के घर उनका स्वागत एक बच्चा करेगा, इसकी उम्मीद उन्हें कदापि नहीं थी। मास्टर साहब के झिझक भरे मौन पर वह बच्चा चकित होनेवाला ही था कि उन्होंने कहा, ''मियाँ गुलाम रसूल घर पर हैं?''

''कौन, अब्बा?''

''हाँ, तुम्हारे अब्बा।''

इसी वक्त भीतर से एक नारी कंठ सुनाई दिया, ''कौन आया है, बेटा हमीद?''

बच्चे ने जवाब दिया, ''कोई फकीर है, अम्मी। अब्बा को पूछता है।''

बड़े दरवाजे के दाहिनी ओर घर की बैठक थी। क्षण भर बाद बैठक का दरवाजा खुल गया और बड़ी उम्र के एक अन्य लड़के ने मास्टर साहब से भीतर चलने को कहा। बैठक में कुछ मोढ़े रखे थे। एक तरफ एक पलंग पड़ा हुआ था। मास्टर साहब चुपचाप एक मोढ़े पर जा बैठे।

वह लड़का बड़ी हैरानी से मास्टर साहब की ओर देख रहा था। उनके बैठ जाने पर उसने पूछा, ''चचा से क्या कह दूँ? वे साथ के मकान में गए हैं। मैं अभी जाकर उन्हें बुला लाता हूँ।''

मास्टर साहब इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। फिर भी उनके दिमाग ने उन्हें धोखा नहीं दिया। वे आज सुबह नूरपुर से इस गाँव की ओर चले थे। उन्होंने कह दिया, ''चचा से कहना, नूरपुर से पैगाम आया है।''

लड़का चला गया और मास्टर साहब को जैसे जरा सोच सकने की फुरसत मिली। यहाँ तक तो सब ठीक! अब आगे क्या होगा? गुलाम रसूल अभी आता होगा। परंतु वे अपनी निम्मी को उससे माँग किस तरह सकेंगे? कोई बहाना तलाश करने से शायद काम बन जाय। यह तो साफ ही है कि सब लोग उन्हें मुसलमान समझने लगे हैं। क्यों न वे इसी बात का फायदा उठाएँ। वे कह सकते हैं कि नूरपुर का जमींदार कुछ लड़कियाँ चाहता है और वह उनके लिए अच्छी कीमत भी देने को तैयार है। इसी बहाने से वे सब लड़कियों को देखने की इच्छा प्रकट कर सकते हैं। और जहाँ तक भेद खुलने का सवाल है, उन्हें उसकी चिंता ही क्या है। आखिर वह तो अपनी जान देने ही यहाँ आए हैं। अगर उनकी चाल असफल हो गई तो वे गुलाम रसूल पर तेज चाकू का हमला तो कर ही सकते हैं। जो कुछ हो जाय, उतना ही सही। निकट भविष्य में उन्हें क्या करना होगा, इसका निश्चय उन्होंने अनायास ही कर लिया।

और यह निश्चय कर लेने के साथ-ही-साथ उन्हें ध्यान आया कि उनका अंत समय सिर पर है। कुछ ही क्षणों के भीतर वे अपने परिवार से जा मिलेंगे, अपने भगवान् के चरणों में जा पहुँचेंगे। मास्टर साहब मन-ही-मन राम-नाम का जाप करने लगे।

और यहीं सहसा एक अत्यंत अप्रत्याशित घटना घटित हो गई। जो छोटा बच्चा पहले-पहल मास्टर साहब का स्वागत करने दरवाजे पर उपस्थित हुआ था, उसी हमीद का हाथ पकड़कर सहसा निम्मी बैठक के दरवाजे पर आ उपस्थित हुई।

बूढ़ा मास्टर सहसा चीख उठा, ''निम्मी!''

दरवाजे पर ही से निम्मी चिल्लाई, ''दद्दा!''

और उसी क्षण बूढ़े रामरतन ने अपनी पंद्रह वर्ष की पोती को गोद में उठा लिया। न जाने इतनी शक्ति बूढ़े मास्टर में कहाँ से आ गई! भावों का पहला तूफान निकल जाने के बाद भी मास्टर को यह समझ नहीं आया कि वे इस हालत में क्या करें! जेब में मौजूद तेज चाकू की उपस्थिति का ज्ञान उन्हें अब भी था; परंतु जैसे चाहते हुए भी वे चाकू निकाल नहीं पाए। बूढ़े के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने पाया कि जैसे बच्चा हमीद निम्मी का साथ ही नहीं छोड़ना चाहता। मास्टर साहब के प्रेम का यह उफान देखकर वह सहम सा गया है और तब भी उसका दाहिना हाथ निम्मी के बाएँ हाथ को पकड़े हुए है।

मास्टर साहब अभी तक सकते की सी हालत में थे कि सहसा गली में शोर मच गया, 'काफिर, काफिर!' मास्टर साहब अभी तक अपनी जेब से चाकू निकाल तक नहीं पाए थे कि दो जवान मुसलमानों ने उन्हें जकड़कर पकड़ लिया। घर की एक बूढ़ी औरत ने घर में काफिर की मौजूदगी की सूचना बहुत शीघ्र ही मोहल्ले भर को दे दी थी।

और उसी वक्त गालियाँ बकते हुए गुलाम रसूल ने अपनी बैठक में प्रवेश किया। मुमकिन था कि अपने नए कैदी को देखते ही गुलाम रसूल उसे मारना-पीटना शुरू कर देता; परंतु कमरे में मौजूद सभी लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब बूढ़े मास्टर पर निगाह पड़ते ही वह जैसे अचंभे में भरकर चिल्ला उठा, ''ओ, मास्टर साहब!''

जिन दो नौजवानों ने मास्टर को पकड़ रखा था उनकी जकड़ एकाएक कम हो गई। गुलाम रसूल क्षण भर के अंतर से फिर चिल्लाया, ''ओ, मास्टर साहब! आप यहाँ कैसे?''

और बूढ़ा मास्टर, जो इस अप्रत्याशित घटनाचक्र के प्रवाह में एकदम मूक और संज्ञाहीन सा बन गया था, सहसा फफककर रो उठा। दोनों जवानों ने मास्टर को अपनी पकड़ से मुक्त कर दिया और निम्मी अपने दादा से जा चिपकी।

गुलाम रसूल ने बूढ़े मास्टर को सांत्वना देने का प्रयत्न किया। उसने कहा, ''मास्टर साहब, बचपन में जब हम रोया करते थे तो आप हमें चुप कराया करते थे और आज···'' कहते-कहते सहसा गुलाम रसूल चुप हो गया। न जाने किस शक्ति ने उसे यह अनुमति प्रदान कर दी कि उसे यह सब कहने का अधिकार नहीं रहा।

बात बदलने की गरज से गुलाम रसूल ने कहा, ''यह लड़की आपकी क्या लगती है, मास्टर साहब?''

बूढ़े मास्टर ने सिसकते हुए कहा, ''यह मेरी पोती है।''

गुलाम रसूल ने कहा, ''तभी!'' और चुप ही रहा।

बूढ़ा मास्टर निम्मी को छाती से लगाकर अब भी धीरे-धीरे सिसक रहा था। उसने कोई सवाल नहीं किया। क्षण भर बाद गुलाम रसूल ने खुद ही कहा, ''शायद तभी चार ही दिनों में हमीद इसे अपनी सगी बहन समझने लगा है।'' और तब आसमान की ओर ताककर उसने कहा, ''खुदा का शुक्र है।''

मानवीय सहानुभूति का हलका सा आसरा पाकर बूढ़े मास्टर के हृदय की संपूर्ण व्यथा आँखों की राह बह चली, जैसे गरमी पाकर बर्फ पिघलती है।

कुछ क्षणों तक गुलाम रसूल चुपचाप मास्टर साहब की ओर देखता रहा और उसके बाद धीरे-धीरे आगे बढ़कर उसने बूढ़े मास्टर को अपनी छाती से लगा लिया। मास्टर साहब ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। गुलाम रसूल ने बहुत धीमे शब्दों में कहा, ''धीरज से काम लीजिए, मास्टर साहब। आपको अब कोई भय नहीं है। निम्मी के साथ मेरी हिफाजत में आप चाहे जहाँ चले जा सकेंगे।''

□

कहानी

मित्र-आगमन

रामदरश मिश्र
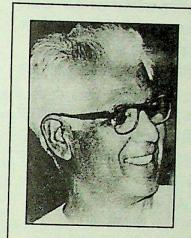
जन्म : १५ अगस्त, १९२४ को ग्राम डुमरी, जिला गोरखपुर में।
शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.।
प्रकाशन : बारह काव्य संग्रह, बारह उपन्यास, दस कहानी संग्रह, एक निबंध संग्रह, दो यात्रा वर्णन, आत्मकथा 'सहचर है समय' तथा एक संस्मरण की पुस्तक।

दरवाजे पर खट-खट हुई तो कमरे में से निकलकर देखा, एक देहाती बुजुर्ग मेरे दरवाजे पर खड़े हैं। सिर पर तौलिया है, आँखों पर मोटा चश्मा है और सिर उठाकर यों देख रहे हैं जैसे बड़ी मुश्किल से सामने की चीज को देख पा रहे हों। उनके साथ एक युवक है।

बुजुर्ग ने मुझे नमस्कार किया और पूछा, 'पहचान रहे हैं ?'

लोगों को पहचानने में मैं प्रायः भूल कर जाता हूँ। समारोहों में तथा यहाँ-वहाँ अनेक लोग मिलते रहते हैं, नमस्कार करते हैं, मैं भी करता हूँ और हालचाल भी पूछता हूँ। जब वे चले जाते हैं तब काफी देर तक याद करने की कोशिश करता हूँ कि कौन थे ये ? किंतु सबसे बड़ी असुविधा तब होती है जब कोई व्यक्ति पूछ बैठता है, 'पहचाना आपने ?' तब कहना पड़ता है कि 'हाँ, शक्ल तो पहचान रहा हूँ, नाम भूल रहा हूँ।' तब वह व्यक्ति मुसकराता है और नाम बता देता है; किंतु कुछ लोग नाराज होकर चले जाते हैं। उन्हें लगता है कि मैं घमंड के मारे जानबूझकर उन्हें पहचानने से इनकार कर रहा हूँ।

अब इसके लिए क्या किया जाए ? एक तो मेरी स्मृति कमजोर, दूसरे कुछ लोग दो-एक भेंट-मुलाकात के बल पर सोचते हैं कि उन्हें पहचाना जाना ही चाहिए। हाँ, उनकी बात और होती है जो बचपन में या किशोरावस्था में काफी समय साथ रहे होते हैं और अब भी स्मृतियों में आते-जाते रहते हैं, भले ही पचास साल से उनसे भेंट न हुई हो। ऐसे व्यक्ति पचास-साठ साल बाद मिलने पर कभी तो एकाएक स्मृति की पकड़ में आ जाते हैं, कभी लाख सिर खपाने पर भी पकड़ में नहीं आते।

गनीमत थी कि इन सज्जन के पूछते ही मेरी स्मृति में उनका पचपन साल पहले का चेहरा चमक उठा। मैं बोल पड़ा, 'आप अवधेश पांडे हैं न ?'

वे एकाएक खुश हो आए और तपाक से बोले, 'चलिए, अंदर चलते हैं।' और गेट खोलकर अंदर आ गए। फिर स्वयं बोले, 'सोचा था, आप नहीं पहचानेंगे तो दरवाजे पर से उलटे पाँव लौट जाऊँगा।'

'अरे भाई, ऐसा कैसे हो सकता था! हम लोग सन् '४१-४२ में कितने दिन साथ रहे। तब मैं गाँव से पाँच कोस दूर के कस्बे के स्कूल में दरजा नौ का छात्र था। कविताएँ भी लिखता था। किसी दिन आपसे भेंट हो गई। परिचय हुआ और ज्ञात हुआ कि आप भी कविताएँ लिखते हैं, और मिडिल पास करके प्राइमरी स्कूल में पढ़ाने लगे हैं। उसके बाद आप अकसर मेरे पास आ जाते थे। कविताएँ सुनी-सुनाई जाती थीं।'

'तो आपको सबकुछ याद है। कितनी बड़ी बात है कि दिल्ली में रहकर और इतना आगे बढ़कर भी अपने गँवई साथी को भूले नहीं हैं। मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ।'

'नहीं, भाई पांडेजी, आप नहीं जानते कि मुझे अपने बचपन और किशोरावस्था के साथियों से मिलकर कितनी प्रसन्नता होती है। कुछ देर के लिए लगता है कि वे दिन लौट आए हैं जब हम लोग कुछ नहीं थे, बस साथी थे—निर्व्याज हँसते-खिलखिलाते हुए, अपने अभावों को एक-दूसरे से भरते हुए, शरारतें करते हुए और सहजभाव से भविष्य के छोटे-छोटे सपने देखते हुए। प्रयोजनों से लदे-फँदे आजकल के समय में लगता है, वे सीधे-सादे, हलके-फुलके प्रयोजनहीन दिन खिल आए हैं जाड़े की धूप की तरह, बह रहे हैं शरद् की हवा की तरह।'

पांडेजी सुनते रहे। उनके साथ का युवक प्रसन्न हो रहा था।

'हाँ, इनसे तो परिचय कराया ही नहीं। ये मेरे भतीजे लगते हैं। इनके साथ ही आया हूँ। अकेले आने की हिम्मत नहीं होती। दिखाई भी कम पड़ता है। इसलिए कम ही निकलता हूँ।'

'तो किसी बहुत जरूरी काम से दिल्ली आए होंगे। वैसे कविताएँ अभी भी लिखते हैं ?'

'हाँ, लिखता हूँ। कविता पढ़ने ही तो आया हूँ।'

'अच्छा, यह तो अच्छी बात है कि दिल्ली ने आपको कविता पढ़ने के लिए आमंत्रित किया है।'

'अरे कहाँ! दिल्ली भला मुझे क्यों पूछने लगी!'

'तो ?'

'अरे, हमारे जिले के जस्टिस सुधांशु चतुर्वेदी हैं न!'

'हाँ, होंगे।'

'अरे, आप उन्हें नहीं जानते? सुप्रीम कोर्ट में जज हैं और अपने यहाँ के हैं।'

'हाँ, मैं उन्हें नहीं जानता। अपनी ओर के सैकड़ों लोग हैं जिन्हें मैं नहीं जानता। हाँ, आप अपनी बात कहिए।'

पांडेजी ने कुछ आश्चर्य से मुझे देखा। फिर बोले, 'आज उनकी बेटी की शादी है।'

'अच्छा, तो उन्होंने शादी में कोई कवि गोष्ठी आयोजित की होगी। अपनी ओर यह रिवाज चल पड़ा है।'

'नहीं-नहीं, वे कवि गोष्ठी तो नहीं कर रहे हैं, मुझी को कविता पढ़नी है। वह कविता जरा देख लीजिए। कुछ संशोधन अपेक्षित हो तो कर दीजिए। ठीक लगे तो कुछ अपनी पंक्तियाँ जोड़ दीजिए, ताकि कविता और चमक जाए और पढ़ूँ तो धाक जम जाए।'

उन्होंने एक कविता मुझे थमा दी। पढ़ी तो ज्ञात हुआ कि वह सेहरा था—प्रशंसा और चापलूसी से भरा हुआ। मैंने मन-ही-मन कहा, 'धाक ही नहीं जमेगी बंधु, निछावर भी खूब मिलेगा।' सेहरा उन्हें वापस कर दिया।

'कैसी लगी कविता?'

'कविता?'

'हाँ, कविता।'

'सेहरा को आप सेहरा ही कहिए न! और आपने जैसा चाहा है, लिख दिया है। ठीक है। इसमें संशोधन करने या कुछ जोड़ने का सवाल कहाँ उठता है!'

लगा कि वे कुछ आहत हो गए। मुझे भी थोड़ा दुःख हुआ कि इतने दिनों बाद किशोरावस्था का एक दोस्त मिलने आया है और मेरे किसी व्यवहार के कारण खिन्न हो रहा है। मगर मैं करता क्या? फिर भी उन्होंने अपने झोले में से कुछ कविताएँ निकालकर मेरे सामने रख दीं और बोले, 'इन्हें जरा देख लीजिए और अपनी राय दीजिए। ये सेहरा नहीं हैं।' वे अपने इस व्यंग्य पर मुसकराए।

मैं कई कविताएँ सरसरी निगाह से देख गया। वे वैसी ही थीं जैसी वे पचपन-साठ साल पहले लिखते थे।

'कैसी हैं ये?'

'अच्छी हैं।' मैंने शिष्टाचारवश कहा।

'बस-बस, मुझे आपका प्रमाण-पत्र मिल गया तो निश्चिंत हो गया। मेरे पास ऐसी बहुत सी कविताएँ हैं। चाहता हूँ, आपके प्रयत्नों से मेरा एक कविता संग्रह दिल्ली से निकल जाए और उसकी भूमिका आप लिखें।'

'मैं कोशिश करूँगा।' जान बचाने के लिए मैंने कह दिया। लगा, मैं अपने द्वारा बरते गए शिष्टाचार की लपेट में आ गया।

'कोशिश नहीं, आपको यह काम करना ही है।'

'ठीक है, भाई, अभी तो जिस काम से आए हैं उसे देखिए।'

'बंधुवर, एक निवेदन है।' कुछ देर बाद अवधेशजी ने कहा।

'हाँ-हाँ, कहिए।'

'देखिए, ना मत कहिएगा।'

'अरे, आप कहिए तो सही।'

'आप भी मेरे साथ शादी में चलिए।'

मैं अचकचा गया। कुछ देर तक सोच नहीं पाया, क्या जवाब दूँ इस विचित्र प्रस्ताव का। वे उत्तर की प्रतीक्षा में मेरी ओर देखते रहे।

'तो चल रहे हैं न?' उन्होंने कहा।

'यानी मैं बिना निमंत्रण के उनके यहाँ इसलिए जाऊँ कि वे जज हैं?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। वे बहुत सरल स्वभाव के हैं। वे आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे।'

'यानी मैं बिना निमंत्रण के उनके यहाँ इसलिए जाऊँ कि उन्हें मुझसे मिलकर खुशी होगी?'

'नहीं बंधुवर, सवाल उनका ही नहीं, मेरा भी है। उन्हें भी तो पता चले कि कितने ऊँचे कद के लोग मेरे मित्र हैं। इससे उनके यहाँ मेरा महत्त्व बढ़ेगा।'

'और ऊँचे कदवाले मित्रों के कद की ऊँचाई इस बात से सिद्ध होगी कि वे बिना बुलाए शादी-ब्याह में पहुँच जाएँ। बंधु, मैं बहुत सामान्य कद का आदमी हूँ, ऊँचे लोगों के यहाँ होनेवाले उत्सवों में मैं बुलाने पर भी प्रायः नहीं जाता। बिना बुलाए जाना घोर अपमानजनक तो है ही, ऊँचे लोगों के अहंकार को सहलाना भी है। हाँ, सामान्यजन के यहाँ बिना बुलाए भी जा सकता हूँ।'

'नहीं भाई, जज साहब ऐसे नहीं हैं। आपको देखकर उन्हें बहुत अच्छा लगेगा और सोचिए तो, मुझे कितना अच्छा लगेगा!'

मेरा जब्त किया हुआ क्रोध आखिर फूट ही पड़ा, 'तो आप मेरा उपयोग करना चाहते हैं? आपके लिए मैं उपयोग की वस्तु हूँ? आपको मेरे मान-सम्मान की चिंता नहीं है। चिंता है तो केवल इस बात की कि कैसे मुझे खींचकर शादी के उत्सव में ले जाएँ और जज साहब तथा अन्य लोगों को यह जताएँ कि आप मामूली व्यक्ति नहीं हैं, ऐसे-ऐसे महत्त्वपूर्ण लोग आपके साथी हैं जो आपके कहने पर अनाहूत रूप से कहीं भी जा सकते हैं।'

मैं थोड़ा थमा, फिर बोला, 'जज साहब को आप इतना बड़ा समझते हैं कि इतनी दूर से सेहरा पढ़ने आ गए हैं; किंतु मेरे लिए वे क्या हैं? हाँ, आपकी बेटी की शादी होती तो मैं बिना बुलाए चला आता—पैदल।'

मेरा आवेग थमा तो पांडेजी का चेहरा देखा। चेहरे पर कुछ खिन्नता दिखाई पड़ी।

'माफ करना श्रीमान, मुझसे गलती हो गई।' वे बोले और कुछ देर बाद चलने के लिए उठ खड़े हुए।

चलते-चलते फिर कहा, 'माफ करना श्रीमान, गलती हो गई।' लेकिन मुझे उनकी वाणी में व्यंग्य की वक्रता का आभास हो रहा था और लग रहा था कि उन्हें गलती का अहसास नहीं हुआ है। उनकी मुद्रा से भी मेरे प्रति नाराजगी व्यक्त हो रही थी। वे शायद यही सोच रहे थे कि क्या हो गया होता, यदि ये मेरे साथ शादी में चल पड़े होते। मैं कितनी उम्मीद लेकर आया था दोस्त के पास; लेकिन दोस्त तो आखिर दिल्ली का ही निकला—अहंकारी।

मैं मुसकराया। आखिर इसके सिवा मैं कर ही क्या सकता था! □

आर-३८, वाणी विहार,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-५९

ललित निबंध

हंसा कहो पुरातन बात

✍ श्रीराम परिहार

हंसा! कहो बात, खुटे रात। अँधेरा घना है। यह काली रात बहुत धीरे-धीरे सरक रही है। धरती की हरियाली पर कालिमा की परत जमती जा रही है। मनुष्य की साँसों में गरमी नहीं बची। एक चुप सन्नाटा पंछियों के परों से लेकर हवा की लहरों तक पसरा हुआ है। केवल नदी बह रही है—अपनी विरल और तन्वंगी धारा में। स्वर्णिम विहान कब आएगा?

सुनो, मानुष भाई। एक पुरानी बात याद आ रही है। इस सृष्टि में समुद्र-मंथन हुआ था। सुर-असुर समुद्र को मथकर उसमें से अमृत निकालना चाहते थे। समुद्र को मथने की उद्दाम चेष्टाएँ हुईं। अमृत को पा जाने की उत्कंठा में समुद्र को मथा गया। समुद्र के गर्भ में जो कुछ था, सब ऊपर आ गया। कहते हैं, एक-एक करके चौदह रत्न निकले।

श्री मणि रंभा वारुणी अमिय शंख गजराज।
धन्वंतरि धनु धेनु शशि कल्पवृक्ष विष बाज॥

अमृत सबसे बाद में निकला। उसे पाने के लिए समुद्र मथनेवालों में संघर्ष हुआ। अमृत की चाह ने सबको पागल-सा बना दिया। अमृत का बँटवारा विष्णु नामक देवता ने बड़ी चतुराई से किया, ताकि आसुरी वृत्तियोंवालों को अमृत न मिल पाए। फिर भी राहु-केतु उसे पाने में सफल हो गए। कहते हैं, अमृत को पीकर राहु-केतु अमर हो गए। समय आने पर वे सूर्य और चंद्र को ग्रसने से चूकते नहीं हैं।

यह मिथक आज भी अपने अर्थों में हरा है। आज मनुष्य ने अपनी प्रज्ञा को मथकर अपने पुरुषार्थ से अनेक रत्न प्राप्त कर लिये हैं। उसने आकाश की नीलिमा को भाँप लिया है। उसने अपने पंखों से गगन को नाप लिया है। वह अपार जल-सतह पर तैरा और अथाह जलराशि में उतरा भी है। उसने चुटकी में पर्वतों को लाँघना सीख लिया है। वह अपने बाहुबल से नदियों की दिशाएँ मोड़ने लगा है। उसने रत्नगर्भा धरती से मणि-माणिक्य निकाले हैं। उसने धरती की सुगंध को और उसके रस को अन्न के रूप में पा लिया है। उसने भावों, विचारों और कल्पना को कलम और कूँची से कला में रूपांतरित कर लिया है। वह आज अपनी अँगुलियों पर पूरे संसार को नचा रहा है। उसने महाभारत के संजय की दिव्य दृष्टि दूरदर्शन में उतार ली है। इंटरनेट, इ-मेल, पेजर एवं और भी नवीनतम खोजों से उसने अपनी आँखों और कानों का विश्वव्यापी फैलाव किया है। कुल मिलाकर मनुष्य मात्र हाड़-मांस का पुतला न होकर अक्ल की सजीव प्रतिमा सिद्ध हुआ है।

हे हंसा! यह तो ठीक है, लेकिन मनुष्य ने इस मंथन में से विध्वंसक और विस्फोटक पदार्थ भी खोजे हैं। उसने परमाणु बम सरीखा सृष्टि-संहारक भी तो बना लिया है।

हाँ मनुष्य! अभी बात पूरी कहाँ हुई। समुद्र-मंथन का मिथक आज अपने अर्थ विस्तार में पूरी तरह छाया है। समुद्र-मंथन में से वैभव को श्रीवृद्ध करनेवाले अनेक रत्न निकले। साधन और सुविधा के प्रतीक कई अनमोल और अद्भुत रत्न हाथ लगे। समुद्र-मंथन से ही शराब भी निकली और कालकूट विष भी। शराब तो असुर पी गए। मस्त हो गए। थोड़ी देर अपना श्रम परिहार कर पुनः वासुकि नाग की फुफकार सहन करते हुए मंदराचल से समुद्र को मथने के लिए तत्पर हो गए। पर कालकूट तो शिव को अकेले पीना पड़ा। जग के कल्याणार्थ शिव ने ऐसा किया। शिव ने अपनी शक्ति से उस गरल को पचा लिया।

वर्तमान में मनुष्य ने अपनी बुद्धि के मंथन से विकास के चरम को पा लिया है। उसकी गति विकास के रास्ते पर अभी भी है। परंतु इस मंथन से उसने अपने ही विनाश के अस्त्र-शस्त्र तैयार कर लिये हैं। खास बात यह है कि जिस राष्ट्र ने ये अणु-परमाणु बम बनाए हैं, वह राष्ट्र भी इनकी चपेट से नहीं बच सकेगा। आज तो बटन दबाते ही सारा संसार राख के ढेर में बदल सकता है। यह युग के मंथन से निकला जहर है। यह अंधी दौड़ है। आज दिल्ली और वाशिंगटन दूर नहीं हैं। वोल्गा और मिसीसिपी का पानी भी बहुत निर्मल नहीं रह पाया है। गंगा की दशा और नर्मदा की कथा तो हमारे सामने है।

जब समुद्र-मंथन से विष निकला तो उससे भयानक ताप फैला। उसकी गरमी के पास कौन जा सकता था? कौन उसे सहन कर सकता था? कौन उसे पी सकता था? सब सोचते रहे कि हमारे अतिरिक्त दूसरा इसे पीए। आज भी यही हो रहा है। घातक हथियारों के निर्माता राष्ट्र भी यही सोचते हैं कि अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग दूसरे राष्ट्रों के विनाश के

लिए हो। हम बचे रहें। लेकिन ऐसा नहीं होगा। आज पूरा संसार चिनगारी पर बैठा है। वह भभकी कि सर्वनाश। उसका यह आत्मघाती और सर्वविनाशी विकास अविवेकपूर्ण है।

हंसा! देवों-दानवों ने जो समुद्र-मंथन किया था, उसका उद्देश्य अमृत प्राप्ति था। अमृत के पूर्व गुण-दोषमय पदार्थ उसमें से अनायास निकले थे।

हाँ मनुष्य! तुम ठीक कहते हो। उनका लक्ष्य अमृत प्राप्ति था। उनका प्रयास उच्चतम बिंदुओं की तलाश थी, अमरता की खोज थी। अमृत के पूर्व निकले रत्नों के उभरने के भी कारण थे। उनके बँटवारे में संयम और सामंजस्य था। देवों-दानवों का शोध कल्याण का भाव लिये हुए था। कल्याण के लिए ही शिव ने जहर पिया।

शोध सांडों की लड़ाई न बन जाए, यह ध्यान रखना जरूरी है। नई समस्याओं के हल के लिए नया ज्ञान चाहिए। वह नया ज्ञान पिछले शोध से प्राप्त ज्ञान से भिन्न और नया होना चाहिए। वह नया ज्ञान संयम-अनुशासित हो। ज्ञान और मूल्य आपस में भाई-भाई हैं। तब तक यह भाईचारा बना रहता है जब तक ज्ञान-विज्ञान को सही दिशा देते हुए उसे शिवत्व की ओर बढ़ाते रहता है। महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन ने इसीको प्रमुखता देते हुए कहा था, 'विज्ञान के बिना धर्म अंधा है और धर्म के बिना विज्ञान लँगड़ा है।'

इधर पोखरण में शक्तिपुंज घनीभूत हुआ तो उधर कराची में ईर्ष्या और स्पर्धा की लपटें उठने लगती हैं। इधर विषधर को नाथने की कोशिश की जाती है तो उधर सपेरे को बंदी बना लिया जाता है। इधर दोस्ती के हाथ शिवत्व का भाव लिये आगे बढ़ते हैं तो उधर शव की साधना शुरू हो जाती है। हिरोशिमा और नागासाकी के इतिहास को बार-बार दोहराने की कुचेष्टा की जाती है।

ज्ञान से मूल्यों का विच्छेद आधुनिक उपभोक्तावाद की देन है। ज्ञान पर मूल्यों का अंकुश जरूरी है। ज्ञान जब तक समाज और सृष्टि के उपयोग में नहीं आता, वह निरर्थक है। शोध निरपेक्ष नहीं होता।

लेकिन हंसा! लड़े तो देव और दानव भी थे?

हाँ; पर अमृत के लिए। जहर के लिए उनमें लड़ाई नहीं हुई। मनुष्य तो जहर पाने के लिए लड़ रहा है। होड़ लगी हुई है। इधर पोखरण में शक्तिपुंज घनीभूत हुआ तो उधर कराची में ईर्ष्या और स्पर्धा की लपटें उठने लगती हैं। इधर विषधर को नाथने की कोशिश की जाती है तो उधर सपेरे को बंदी बना लिया जाता है। इधर दोस्ती के हाथ शिवत्व का भाव लिये आगे बढ़ते हैं तो उधर शव की साधना शुरू हो जाती है। हिरोशिमा और नागासाकी के इतिहास को बार-बार दोहराने की कुचेष्टा की जाती है।

हंसा! क्या इस झोंक को रोका नहीं जा सकता?

क्यों नहीं रोका जा सकता। समुद्र-मंथन के समय कालकूट गरल को पीने के लिए शिव तत्पर हुए। हे मनुष्य भाई, यह शिवत्व-बोध खत्म नहीं हुआ है। पूरे संसार में विध्वंसक हथियारों के खिलाफ लोगों की आवाज धीरे-धीरे बुलंद हो रही है। दक्षेस सम्मेलन में निरस्त्रीकरण प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। तीसरी दुनिया के लोग शिवत्व-बोध के अधिक नजदीक हैं। वे विकसित राष्ट्रों की कल्याणकारी नीतियों का स्वागत करते हैं; गलत नीतियों का विरोध भी करते हैं। वे उनकी धौंस से दबते भी नहीं। अहितकारी प्रस्तावों को स्वीकारते भी नहीं। उलटे-सीधे दाँव-पेंच खेलनेवाले पहलवान राष्ट्रों के सामने झुकते भी नहीं हैं। यह वैष्णव भाव है। असुरों के गलत प्रस्ताव के सामने देव परास्त नहीं हुए। उनके अहितकारी कृत्यों से विष्णु ने देवों को बचाया था। यह विवेकसम्मत, संयमित और शिवत्व से भरा वह भाव है, जो तीसरी दुनिया के राष्ट्रों को सही का पक्षधर बनाए हुए है।

हंस को कमलिनी वन में विहार करने से रोक दिया जाए, तब भी उसके नीर-क्षीर विवेक का क्या करोगे? आज सर्वाधिक जरूरत नीर-क्षीर विवेक की है। शिव यदि समुद्र-मंथन से निकले जहर को कंठ में नहीं उतारते तो इस धरती पर उस विष की ज्वालाओं से कुछ भी शेष नहीं बचता। वर्तमान मुकाम पर आज समग्र विश्व को विकास बनाम विनाश के मुद्दे पर सोचना है। भारत इसमें अग्रणी भूमिका निभा सकता है।

हंसा! भारत तो स्वयं विकासशील राष्ट्र है। वह इस क्षेत्र में क्या कर सकता है?

हे मनुष्य! भारत भौतिक क्षेत्र में विकासशील है। वह चेतना के स्तर पर विकसित राष्ट्र रहा है। उसका अमर संदेश है कि वे शाश्वत रहें, जिन्होंने स्वयं को अमर बनाने का प्रयास नहीं किया। हम एक पैर से खड़े रहें और दूसरे से चलें। हमारी सजगता के लिए बौद्धिक मूर्च्छा तोड़ना जरूरी है। अतिशय बौद्धिकता भी मूर्च्छा का रूप होती है। भारत अपने सांस्कृतिक उपकरणों से इस मूर्च्छा को तोड़ सकता है।

भारत के पास विकास का सर्वथा भिन्न पैमाना है। उसने वर्षों पूर्व पुरुषार्थ चतुष्टय को अपने चिंतन के निष्कर्ष रूप में ग्रहण कर उसे व्यवहार में अपना लिया था। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म भी है, भौतिकता भी है, जीवन की रचना प्रक्रिया भी है और मानव की मुक्ति भी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में संयमित तथा संतुलित संबंध है। भारत इस आधार पर विश्व को विकास का नया पैमाना दे सकता है। विष-बुझे

बाणों को तोड़कर नष्ट किया जा सकता है।

ऋषि वैदिक प्रार्थना करते हुए कहता है—

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्॥

(—अथर्ववेद, १२/१/६३)

—हे पृथ्वी! मेरी माँ, तुम मुझे भद्र भावों के साथ स्थापित करो। तुम मुझे स्वर्गीय आनंद की प्राप्ति कराओ। हे करुणामयी! पार्थिव सुख-संपत्ति में मुझे स्थान दो। साथ ही हे माँ, मुझे भागवती विभूति का दिव्य दान दो।

इस वैदिक प्रार्थना में जीवन के चारों लक्ष्य निहित हैं। ये जीवन-मूल्य न केवल भारतभूमि पर रहनेवाले व्यक्ति के कल्याणार्थ प्रक्रिया निर्दिष्ट करते हैं बल्कि इनमें 'सर्वेऽपि सन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की सुवास समाहित है। धर्म का अर्थ है—आत्मा का अभ्युत्थान और मुक्ति। हम जिन प्रवृत्तियों को धारण करें, वे धर्मसम्मत हों। अर्थ धर्म द्वारा अनुशासित हो। अर्थोपार्जन का ढंग जीव-सृष्टि के लिए अहितकर न हो। उसके साधन अमर्यादित न हों। धर्मानुसार अर्जित और धर्मानुसार व्यय किया हुआ धन ही मूल्यवान् होता है। काम भी धर्म-विरुद्ध नहीं हो। मनुष्य की इच्छाएँ अनंत हैं। सबकी पूर्ति संभव नहीं होती। यदि काम धर्म द्वारा मर्यादित न हो तो वह आत्मघाती हो जाता है। संतुलित और संयमित जीवन जीते तथा अर्थ और काम को धर्म द्वारा नियमित कर आत्मोत्थान की दिशा में बढ़नेवाला व्यक्ति अंततः मोक्ष प्राप्त करता है। वह संतोषी होता है। वह शांति चाहते हुए चिर शांति को प्राप्त होता है।

विश्व की शांति में भी व्यापक स्तर पर भारतीय जीवन-मूल्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) महती भूमिका निर्वाह कर सकते हैं। आज विश्व के अनेक राष्ट्र अनंत और अपार इच्छाओं की पूर्ति में अर्थ और काम की अमर्यादित दिशाओं में दौड़ रहे हैं। यह मानव सृष्टि के लिए आत्मघाती है। जीवन-मूल्यों की महत्ता को पुनः स्थापित करना आवश्यक हो गया है।

हंसा! क्या मनुष्य अपनी बेलगाम इच्छाओं को कभी लगाम लगा सकेगा? वर्तमान युग के विष को पचाने के लिए क्या कोई शिव पैदा होगा?

हे मानव! मनुष्य को अपनी अतृप्त और आत्मप्रवंची इच्छाओं पर काबू पाना ही होगा, अन्यथा अनियंत्रित और अतिशय प्रवाह में सबकुछ बह जाएगा।

हाँ, एक बात और, शिव पैदा नहीं होते, वह तो शाश्वत हैं। उन्हें जगाने की जरूरत है। कल्याणार्थ उनकी समाधि को तोड़ना है। विश्व के भीतर जो शिव तत्त्व है उसे ही उभारना है। यह धरती मिट्टी-पत्थर-पानी से बना गोला नहीं है। यह गरम साँसों और नरम छुअनों की जीवित सृष्टि है। यह पृथ्वी सत्य तो है ही, सुंदर भी है।

हंसा! वो देखो, प्राची में लालिमा छा रही है। चिड़ियाँ चहक उठी हैं। भोर होने वाली है।

हाँ, भाई! अब मैं उड़कर अपने ठौर पहुँचना चाहता हूँ।

नहीं हंसा! मेरे बंधु! उड़कर कहाँ जाओगे? यहीं रहो। यह धरती अमरों का लोक है।

□

आजाद नगर, खंडवा-४५०००१

गीत

एक आवाज

रमानाथ अवस्थी

एक आवाज सरेशाम से उभरती है,
पूछ मत दिल में वह किस तरह उतरती है!
मैंने चाहा कई बार इसे पहचानूँ,
कौन है किसकी आवाज उसे तो जानूँ।
सोचता हूँ मगर कामयाब होता नहीं,
रोने काबिल है जिंदगी पर रोता नहीं।
चाँदनी झूम-झूम रात भर सँवरती है,
एक आवाज सरेशाम से उभरती है।

× × ×

जादू जैसी है आवाज जो सुनता हूँ,
कौन आवाजदार है नहीं समझता हूँ।
द्वार है कौन जहाँ जा करके दस्तक दूँ,
चरण दिखाओ जिनको अपना मस्तक दूँ।
बिन बताए उम्र रोज ही गुजरती है,
एक आवाज सरेशाम से उभरती है।
दर्द तो कुछ नहीं बोलता, होता भर है,
रोनेवाला कभी थककर सोता भर है।
मारती है मगर करती नहीं प्यार कभी,
जिंदगी को यहाँ किसीका इंतजार नहीं।
न कभी पल भर किसीके लिए ठहरती है,
एक आवाज सरेशाम से उभरती है।

□

ए-४०२, रिवर व्यू अपार्टमेंट,
फेस-I, मयूर विहार, दिल्ली-११००९१

व्यंग्य

देवर्षि का दिल्ली दर्शन

✍ चंद्रधर त्रिपाठी

'नारायण! नारायण! नारायण!'

बाहर से आती हुई हलकी आवाज सुनाई पड़ रही थी। लगा कि ठीक दरवाजे के पास कोई भिखारी इकतारा बजाता हुआ खड़ा है।

मैंने रामू से कहा, 'जाओ, देखो, बाहर कोई आवाज दे रहा लगता है।'

रामू ने बाहर जाकर जोर से आवाज लगाई, 'कौन है? क्यों चिल्ला रहे हो?'

आगंतुक ने धीरे से कहा, 'अरे वत्स! इतना अधीर क्यों हो रहे हो? यह तो किसी सद्गृहस्थ का निवास दिखाई देता है। क्या गृहपति घर में हैं?'

'क्या कहा, कौन घर में हैं? यहाँ कोई पती-वती साहेब नहीं रहते। यह तिवारी साहेब की कोठी है।'

'जिसकी भी हो, वत्स। द्वार खोल दो, मैं गृहस्थ का दर्शन करना चाहता हूँ।'

'तो यों बोलो न कि साहेब से मिलना है। फिर यह 'नारायण, नारायण' क्या लगा रखा है? घंटी क्यों नहीं बजाते?'

'वत्स, मैं तो केवल वीणा बजाता हूँ। और मेरे पास कोई घंटा या घंटी है भी नहीं। घंटा तो देवी दुर्गा का आयुध है, वत्स।'

'क्या बस्स-बस्स लगा रखा है! मैं तुम्हारे घंटे की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं तो बिजली की घंटी यानी कॉलबेल की बात कर रहा हूँ। दरवाजा खुलवाना है तो भले आदमी की तरह कॉलबेल क्यों नहीं दबाते? 'नारायण, नारायण' चिल्ला रहे हैं। हुँह!'

घर के भीतर मुझे काफी कुछ सुनाई पड़ रहा था। सोचा कि शायद गाँव से कोई आया है, स्वयं जाकर देख लेना उचित होगा। बाहर निकलकर देखा तो अजीब सा भेष बनाए, जटा बढ़ाए एक साधु जैसा नौजवान दिखाई पड़ा।

मैंने पूछा, 'कौन हो भई, क्या चाहिए? तुम भिखारी हो या बहुरूपिया अथवा सचमुच साधु ही हो? नौजवान हो, हट्टे-कट्टे हो। जाओ, कुछ मेहनत-मजदूरी करो। इस तरह घर-घर माँगते हुए शर्म नहीं आती?'

'बस-बस, वत्स, मैं कोई भिक्षुक नहीं हूँ। आश्चर्य है कि तुम मुझे नहीं पहचानते। मैं तो समझता था कि समस्त जंबूद्वीप में, विशेषकर भरतखंड में तो आबालवृद्ध सभी मुझे पहचानते हैं। किंतु वह शायद मेरा अहंकार था। आज तुमने उसे चूर-चूर कर दिया—वैसे ही जैसे कभी स्वयं नारायण ने किया था। मैं तुम्हारा आभारी हूँ, वत्स।'

'अरे, आप तो भाषण देने लगे। बताइए तो आप हैं कौन और क्या चाहते हैं?'

'वत्स, मेरा नाम नारद है। मेरे जटा, मुकुट और वीणा से नहीं तो 'नारायण, नारायण' की मेरी पुकार से तो सभी मुझे पहचान लेते हैं।'

'नारद! देवर्षि नारद! आप मुझे क्षमा करें, भगवन्। आपका तिरस्कार कर मैंने घोर अपराध किया है। अब आज्ञा करें। इस अकिंचन ब्राह्मण के द्वार पर पधारकर आपने मेरा जीवन धन्य कर दिया! अब मैं आपकी क्या सेवा करूँ, वह आदेश दीजिए। कैसे पधारे आप?'

'वत्स, तुमने कहा कि तुम ब्राह्मण हो, अतः शास्त्रों से पूर्ण परिचित होगे। तुम्हें ज्ञात ही होगा कि मैं स्वर्ग और मर्त्य दोनों लोकों में निरंतर अबाध भ्रमण करता रहता हूँ। इधर बहुत दिनों से भारतभूमि का कोई समाचार नहीं मिला था तो सोचा कि एक चक्कर लगाकर स्वयं देख आऊँ। जहाँ जन्म लेने के लिए देवता भी तरसते रहते हैं उस धन्य भारतभूमि की क्या अवस्था है, यह देखने के लिए अभी-अभी आकाश से यहाँ उतरा हूँ। सबसे पहले तुम्हारा घर दिखाई पड़ा तो यहीं नारायण को पुकारने लगा।'

'हे देवर्षि! बड़ी कृपा की आपने। अब घर के अंदर पधारकर उसे पवित्र करें।'

मैं नारदजी को लेकर ड्राइंगरूम में आ गया। सोफे की ओर इंगित कर उनसे बैठने का अनुरोध किया।

वे बोले, 'वत्स, यह कैसा आसन है? तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे पास मृगचर्म या कुशासन जैसा कोई आसन हो तो वही दो मुझे।'

'नहीं, महाराज, आजकल हम लोग मृगचर्म या कुशासन का प्रयोग नहीं करते; अब तो यही सोफा प्रस्तुत है। यह भी चर्ममंडित ही है।'

'चर्ममंडित है! कैसे चर्म से?'

'भगवन्! यह तो मैं नहीं जानता, पर सुना है कि इस प्रकार के कामों में गाय या बैल का चमड़ा ही लगाया जाता है।'

'नारायण! नारायण! इसमें संदेह नहीं कि इस समय कलिकाल अपने पूर्ण प्रताप से भारतवर्ष में उपस्थित है। अब ब्राह्मण भी गोचर्म के आसनों पर बैठते हैं!'

मैं भागकर घर के अंदर गया और एक सफेद सूती चादर लाकर कारपेट पर बिछा दी। कहा, 'भूल हो गई, भगवन्। अब आप शुद्ध कपास से बने इस वस्त्र पर विराजें और आज्ञा करें कि कैसा भोजन आपको रुचिकर होगा?'

नारदजी बैठ गए तो मेरे जी में जी आया। फिर वे बोले, 'भोजन में तो मैं गोदुग्ध और फलाहार ही करता हूँ। उसीकी व्यवस्था कर दो तो नारायण से तुम्हारी मंगलकामना करूँ।'

घर के अंदर गया तो पत्नी ने कहा कि दूध तो एक किलो पड़ा है—सवेरे मदर डेयरी से लाई थी; पर फल के नाम पर बस दो केले हैं घर में। दूध गरम कर, काफी चीनी डालकर चाँदी के गिलास में तैयार रखने को कह मैंने बाहर जाकर फल की दुकान का रास्ता पकड़ा। जल्दी ही एक पपीता, चार सेब, छह केले लेकर वापस आया और पत्नी से सब सामान एक थाली में सजाने को कहकर मैं नारदजी के पास एक चौकी रखने चला गया। पाँच मिनट में पत्नी ने सब सामान चौकी पर सजा दिया और मैं देवर्षि को लेकर बाथरूम की ओर चला कि उनके हाथ-मुँह धुला दूँ। वॉशबेसिन के नल से पानी निकलता देखकर उन्हें आश्चर्य तो हुआ, पर बिना कुछ बोले हाथ-पाँव धोकर, कई कुल्ले कर वे वापस आसन पर आ गए।

'क्षमा करें, देवर्षि। यह अवस्था दिल्ली की ही नहीं, सारे भारत की है। आप कहीं भी चलें, यही हाल मिलेगा।'
'अरे-अरे, भगवान् गोपाल कृष्ण की भूमि की यह अवस्था! फिर क्या किया जाए, वत्स?'
'असली गोदुग्ध तो यूरोप और अमेरिका में ही मिलता है। आदेश दें तो अमेरिका चलने का प्रबंध किया जाए।'
'ठीक है, आज ही चलो। यात्रा का साधन क्या है?'

नारदजी ने एक-एक कर सभी फलों को थोड़ा-थोड़ा खाया, फिर दूध के गिलास में मुँह लगाया।

'बड़े सुस्वादु फल थे, वत्स; पर यह क्या है?'

'क्यों महाराज, दूध ही तो है।'

'दूध! तुम इसे दुग्ध कहते हो? अरे, मुझे अश्वत्थामा समझते हो क्या कि चाहे जो घोल पिला दोगे दुग्ध कहकर?'

'पर महाराज, हम तो नित्य इसीका सेवन करते हैं। भारत की राजधानी में तो यही दूध मिलता है। व्यवस्था भी सरकारी है, अतः संदेह का कोई कारण नहीं। महाराज, अभी तो इसे ही स्वीकार करें। कल से ग्वाले के दूध का प्रबंध कर दूँगा।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा! मैं भी इसे न लेकर आतिथेय को दुःख पहुँचाने का पाप नहीं करूँगा। नारायण! नारायण!'

जैसे-तैसे दिन बीता, फिर रात में भी देवर्षि हमारे मेहमान बनकर रहे। अगले दिन वायदे के अनुसार मैं ग्वाले का दूध ले आया। उसका एक घूँट पीकर ही नारदजी का मुँह अनेक कोण बनाने लगा।

मैंने पूछा, 'क्यों महाराज, यह दूध भी सुस्वादु नहीं लगा?'

'अरे वत्स, कल जो पेय तुमने दिया था वह तो पशु का दुग्ध था ही नहीं; पर आज भी यह पेय गोदुग्ध है, यह मैं नहीं मानता।'

'सच कहते हैं, महाराज। यह गोदुग्ध नहीं, यह तो भैंस का दूध है। दिल्ली में गाय का दूध मिलता ही नहीं।'

'भैंस! वह क्या होती है? कोई पशु ही है न?'

'भैंस अर्थात् मादा महिष! यानी श्रीमती भैंसा या श्रीमती महिष। उनका दूध तो गोदुग्ध से भी उत्तम माना जाता है; क्योंकि उसमें चिकनाई अधिक होती है।'

'राम-राम' करके नारदजी का लंच पूरा हुआ। फिर उन्होंने कहा, 'वत्स, दो दिन हो गए, मैंने हवन नहीं किया है। उसके बिना ही भोजन करता रहा, यह महा अपराध हुआ। अब तो तुम हवन की व्यवस्था करवा दो। कल ब्राह्म मुहूर्त में ही हवन कर डालूँ। उपयुक्त काष्ठ, धूप आदि और गोघृत की व्यवस्था कर दो, वत्स।'

'करता हूँ, भगवन्। काष्ठ, धूप आदि की तो कोई बात ही नहीं, पर गोघृत टेढ़ी खीर है, महाराज।'

'क्यों, गोघृत की क्या समस्या है?'

'मैंने निवेदन किया था न कि यहाँ गाय का दूध ही नहीं मिलता; फिर घी कैसे होगा?'

'नारायण! नारायण! वत्स, तुम्हें बहुत कष्ट दे रहा हूँ। इस नगरी में यदि गोदुग्ध और घृत नहीं मिलते तो मुझे अन्यत्र ले चलो, जहाँ इनका अभाव न हो।'

'क्षमा करें, देवर्षि। यह अवस्था दिल्ली की ही नहीं, सारे भारत की है। आप कहीं भी चलें, यही हाल मिलेगा।'

'अरे-अरे, भगवान् गोपाल कृष्ण की भूमि की यह अवस्था! फिर क्या किया जाए, वत्स?'

'असली गोदुग्ध तो यूरोप और अमेरिका में ही मिलता है। आदेश दें तो अमेरिका चलने का प्रबंध किया जाए।'

'ठीक है, आज ही चलो। यात्रा का साधन क्या है?'

'यात्रा तो वायुयान से ही होगी; पर वह बाद की बात है, पहले तो पासपोर्ट और वीजा बनवाने पड़ेंगे।'

'जो भी आवश्यक हो, करो, वत्स! मैं उस देश को देखना चाहत

हूँ जहाँ शुद्ध गोदुग्ध मिलता है।'

पहले तो मैं पासपोर्ट का फॉर्म ले आया। शाम को जाकर नारदजी की तसवीरें भी खिंचवा लीं। नारदजी से फॉर्म पर हस्ताक्षर करवाए। मेरे मित्र सिन्हा साहब उप सचिव हैं, उनसे फॉर्म पर प्रमाण-पत्र लिया कि वे नारदजी को दो वर्षों से अधिक समय से जानते हैं और नारदजी पासपोर्ट पाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। पते के स्थान पर अपना पता ही लिखा 'द्वारा' के साथ। फिर फॉर्म लेकर पासपोर्ट अधिकारी के पास गया कि इमरजेंसी का मामला है, तत्काल पासपोर्ट बना दें।

अधिकारी ने नाक सिकोड़ी, 'यह पता क्या लिखा है आपने, द्वारा श्री राम प्रकाश तिवारी! यह द्वारा-पुआरा नहीं चलेगा, ठीक-ठीक पता लिखिए।'

मैंने कहा, 'साहब, क्यों नहीं चलेगा? 'द्वारा' के पते लिखकर तो हमारे नेता दिल्ली की जगह गुवाहाटी और पटना के वासी बन गए और राज्यसभा के सदस्य होकर वित्तमंत्री और प्रधानमंत्री बन गए। यह तो सिर्फ पासपोर्ट की बात है।'

अंततः वे मान ही गए।

जैसे-तैसे यह प्रकरण भी पूरा हुआ और वीजा बनवाने के लिए हमने अमेरिकी दूतावास का रास्ता पकड़ा। वहाँ की भीड़ देखकर नारदजी चकित रह गए। बोले, 'यह कौन सा स्थान है, वत्स? इतने लोग जमा हैं! क्या दिन में ही संगीत और नृत्य का कार्यक्रम होने वाला है?'

'नहीं-नहीं, भगवन्! यह तो अमेरिकी दूतावास है। अमेरिका जाने के लिए अनुमति अर्थात् वीजा यहीं मिलता है।'

'तो क्या ये सभी लोग अमेरिका जा रहे हैं? केवल शुद्ध गोदुग्ध और घृत की तलाश में? अर्थात् भारत में अभी भी आचारनिष्ठ धर्मात्माओं का अभाव नहीं?'

'नहीं, महाराज। ये लोग धर्म के लिए नहीं, धन के लिए अमेरिका जाना चाहते हैं। आजीविका के लिए।'

'आजीविका के लिए! पुण्यभूमि भारतवर्ष को छोड़कर केवल आजीविका के लिए दूर देश जा रहे हैं! कहते क्या हो, वत्स? भारत में आजीविका का अभाव है क्या?'

'अभाव तो नहीं, भगवन्; किंतु जिस काम के लिए यहाँ सहस्र मुद्राएँ मिलती हैं उसीके लिए उस देश में लक्ष मुद्राएँ मिल जाती हैं। उसी लोभ में ये सब अमेरिका जाना चाहते हैं।'

'नारायण! नारायण! कलिकाल के साक्षात् दर्शन हो रहे हैं।'

हमने दूतावास में वीजा का प्रार्थना-पत्र दाखिल कर दिया। अब वहाँ से सूचना की प्रतीक्षा है कि नारदजी को इंटरव्यू के लिए कब बुलाया जाएगा। इस बीच देवर्षि कभी-कभी उकताए हुए लगे। एक दिन बोले, 'मैं तो यों ही वायु मार्ग से आता-जाता हूँ। मैं तुम्हारे वीजा और वायुयान की प्रतीक्षा क्यों करूँ? मैं ऐसे ही चला जाता हूँ।'

मैंने समझाया, 'नहीं भगवन्! ऐसा कदापि न कीजिएगा। उस देश में केवल अधिकृत मार्ग से ही जाना होता है। आप ऐसे ही योगबल से वहाँ पहुँच गए तो वे लोग आपको गैर कानूनी 'इमिग्रेंट' कहकर 'डिपोर्ट' कर देंगे। और आप तो उनकी भाषा भी नहीं जानते। कुछ बता ही नहीं पाएँगे। बस आपकी वेशभूषा से वे समझ जाएँगे कि आप निश्चय ही भारत से आए हैं। और वे लोग अगले ही क्षण आपको भारत भेज देंगे। फिर आपको हवन के लिए गाय का शुद्ध घी नहीं मिलेगा और पीने को मिलेगा वही पाउडरवाला दूध, या अधिक-से-अधिक श्रीमती महिष का दूध!'

देवर्षि को मेरी बात समझ में आ गई और अब शांतचित्त होकर अमेरिकी दूतावास से इंटरव्यू के बुलावे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस बीच जिसकी भी देवर्षि के दर्शन की इच्छा हो, उसका इस ब्राह्मण की कुटिया पर स्वागत है।

□

अध्येता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,
राष्ट्रपति निवास, शिमला-१७१००५

कविता

काँप गई थी कुछ क्षणों को

देवव्रत जोशी

कुछ क्षण की जानलेवा कँपकँपी के बाद
पृथ्वी स्थिर हुई :
स्थगित हुआ उसका लोमहर्षक, रौद्र नृत्य
दबी जबान मैंने पूछा—
'अपनी मर्यादा और सहनशीलता को त्याग—
अचानक क्यों गाया माँ/तुमने यह मरण राग?'

धरती सिहरी-सकुची
चुप रही कुछ देर
फिर बिलख उठी अचानक :
'सहने की सीमा होती है हर माँ की
कि अपनी छाती पर/निरंतर हिंसा, रक्तपात
और चीख-कोलाहल से व्याकुल मैं
काँप गई थी कुछ क्षणों को।

'पूरे भूमंडल को तंबू बनाकर
शोषितों-वंचितों पर किए जा रहे
अनाचार/बलात्कार देखकर
मैं अभिव्यक्त हुई/तुम डरे, सिहरे
कोई विष्णु कहाँ/जाती और सुनाती
अपने व्यथा-भार की कथा
मेरे मनुज-पुत्र पाखंड और छल और स्वार्थ
के दलदल में धँसे
निर्लज्ज/हँसते रहे...
और तुम जिसे कहते हो मेरा
लोमहर्षक रौद्र नृत्य/मरण राग
वह मेरी करुण-कातर मातृ-अभिव्यक्ति थी
अश्वमेधों के आत्महंता
अक्षौहिणियों के नायक
कब सुन पाए मेरा विलाप?
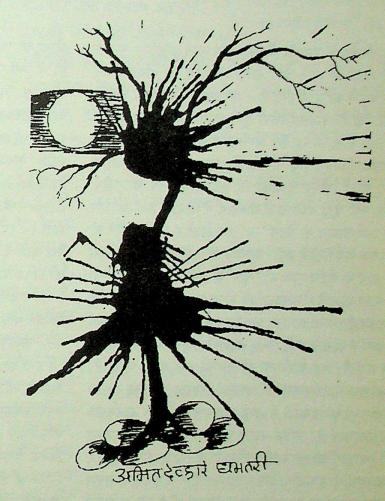
बुदबुदाई पृथ्वी/जैसे स्वयं को संबोधित करती :
'सहे नहीं जाते आत्मजों के प्रहार/बार-बार
अब तो छोड़ो विनाश की वल्गाएँ
वनस्पतियों, सहोदरों पर/पर्यावरण की चादर
पर
मत बिछाओ अंगार
यह मेरा शोकाकुल निवेदन/या सीख नहीं
मुझमें समाई हजारों-हजार
सीताओं की चीख है—
अपने लवकुशों की कुशल-क्षेम के लिए।'
इस करुण वक्तव्य के बाद
धरती फिर घूमने लगी :
नदियों-पहाड़ों-वनस्पतियों-मनुपुत्रों को
अंक में लिये/लोरी सुनाती हुई!

□

२४, वेदव्यास कॉलोनी,
रतलाम-४५७००१

आलेख

तप से ज्योति की ओर

✍ राममूर्ति त्रिपाठी

भूमंडलीकरण के इस दौर में जो वसुधा कभी कौटुंबिक भाव से मंडित मानी जाती थी आज वह 'बाजार' बन गई है। बाजार बेचने, बिकने और कमाने की जगह होती है—और यह उसके हाथ में होती है जिसके पास पूँजी है। इसलिए इसपर पूँजीपतियों का अधिकार दुर्निवार स्तर का है और होता जा रहा है। अर्थोपार्जन अपने आपमें गर्हित नहीं है—यदि उसका नियंत्रण कक्ष मानवता हो। 'मानवता' परदुःखकातरता का ही दूसरा नाम है। मैं 'पर'दुःखकातरता कह रहा हूँ, 'स्व' या 'स्वीय' दुःखकातरता नहीं; ऐसी कातरता तो मानवेतर में भी होती है। 'स्व' और 'स्वीय' से ऊपर उठकर जो चेतना 'पर' तक अपने दुःखकातर होने की संवेदना व्यापक कर लेती है वही 'मानवता' है। यही वह मूल्य है जिसे 'संस्कृति' कहा जाता है। मूल्य का 'मूल' से कहीं कोई संबंध है जिसे 'संस्कृति' कहा जाता है। 'मानवता' ही मानव का मूल है। उसीके होने से मानव मानव है। मानवता मानव का 'स्वभाव' है—स्व = मानव, भाव = ता। आचार्यों ने ठीक कहा है, 'वत्थू सहावो धम्मो'—वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म है। यह धर्मात्मक स्वभाव ही उसे धारण करता है। अतएव कहा गया है, 'धारणाद् धर्मं इत्याहुः'। उष्णता अग्नि का स्वभाव है। वही अग्नि को धारण करती है। इसी तरह मानवता मानव का स्वभाव है। वही उसका धर्म है। इसीके कारण वह धार्यमाण है। इस मानवता (धर्म) की रक्षा होगी तो मानव भी सुरक्षित रहेगा (धर्मो रक्षति रक्षितः), अन्यथा वह स्वयं भी नष्ट होगा और दूसरों का भी नाश कर देगा। मनुष्य अपरिमेय संभावनाओं का आगार है, जो ऊर्ध्वगामी भी है और अधोगामी भी। ऊर्ध्वगामी संभावना इसी 'मानवता' से उपजती है और अधोगामी संभावना 'अ-मानवता' (हैवानियत) से। पूँजी की हविश मानव को अमानव बना देती है, जिसकी बराबरी कोई हिंसक जंतु नहीं कर सकता। बाजार पूँजी पर खुलती है और पूँजी की हविश हैवानियत की ओर ले जाकर मानव को अमानव बना देती है, उसे संस्कृति (मानवता) रूपी मूल्य से विच्छिन्न कर देती है। वह अप-संस्कृति का अंधा वाहक बन जाता है। कहने को तो यह देश आध्यात्मिक प्रकृति का है, पर समय विज्ञान और प्रौद्योगिकी का है। वह प्रभावी है। मनुष्य के हाथ का यंत्र छीनता जा रहा है। हजारों-लाखों के हाथों का काम एक यंत्र कर देता है। तो क्या यंत्रवाद का विरोध किया जाए? नहीं, उसे 'मानवता' से परिचालित किया जाए, मूल्याधृत किया जाए, संस्कृति की दिशा दिखाई जाए। मानवता हमारा मूल भी है और मंजिल भी। वही व्यष्टि और समष्टि की यात्रा का वृत्त निर्मित करती है। पर बाजार में बढ़ती पूँजी की स्पर्द्धा 'मानवता' को नजरअंदाज करती है। उसे 'मंजिल' की नहीं, पद्धति Means की धुन है और By any means/value संस्कृति है और means सभ्यता। संस्कृतिहीन सभ्यता दानवीय होती है, सोने की लंका होती है। वहाँ रावण और उसका परिवार होता है। प्रौद्योगिकी means पैदा करती है। यदि वह अनियंत्रित हुई तो भस्मासुर बनकर अपने निर्माता को ही खा जाएगी।

'दूरदर्शन' इसी प्रौद्योगिकी की देन है और 'मंजिल' तथा 'मूल' नियंत्रण कक्ष से विच्छिन्नप्राय है। विच्छिन्नप्राय इसलिए कि यदि वहाँ २/१० ऊर्ध्वमुख संभावना को बल देता है तो ८/१० अधोमुख दुःसंभावनाओं को हवा देता है। आबालवृद्ध नर-नारी सभी इससे जुड़ते हैं। बच्चे तो नासमझ और कच्ची मिट्टी के होते हैं। वे तो समाज की नींव में हैं। उनके संस्कार यदि भ्रष्ट हुए तो भावी समाज और सृष्टि को संस्कार कौन देगा? मनुष्य की प्रकृति तो जल की तरह निम्नगामी है। बुद्धि और विवेक से हम उसे ऊपर की ओर मोड़ते हैं। बच्चों में यदि बुद्धि और विवेक ही हो तो वे बच्चे काहे हैं! रहे प्रौढ़जन, तो चटखारा सभी लेना चाहते हैं—और इस चटखारे से घर-बाहर सभी प्रभावित होते हैं। अधिकांश चित्र अनियंत्रित भावनाओं को जगाते हैं, सामाजिक संपर्क को विच्छिन्न करते हैं और उत्तेजक चेहरों से विज्ञापन करते हैं। बाप-बेटा, बहू-बेटी सभी उन असामाजिक चित्र के कार्यकलापों को बेशर्म होकर देखते हैं और रस लेते हैं। इसका प्रभाव पहले तो परिवार पर ही पड़ा है, बाद में समाज में अपसांस्कृतिक। मीडिया से जुड़ने के लिए एक-से-एक भावनोत्तेजक चित्रों का संयोजन होता जा रहा है।

इस भूमंडलीकरण के दौर में बाजारूपन इस कदर छाता जा रहा है कि इसके जहरीले गुंजलक के पाश में हम चाहे-अनचाहे फँसते जा रहे

हैं। अर्थ का विषम वितरण ऐसा होता जा रहा है कि जिनके पास है उनका बढ़ता ही जा रहा है और जिनके पास नहीं है उनका घटता ही जा रहा है—और इनका अनुपात बेहद विषम होकर खाई बढ़ाता जा रहा है। विक्रय, खपत और उपभोग का दौर बढ़ता जा रहा है। एक तरफ पूँजीपतियों की क्रय शक्ति और उपभोग वृत्ति भोगवाद को प्रतिष्ठित कर रही है तथा दूसरी ओर अधिकांश जनता को शरीर और परिवार चलाना ही चुनौती बनता जा रहा है। अब इस क्रम में 'मूल' से जुड़ने की किसे पड़ी है? फिर क्या किया जाए? प्रजातंत्र अल्पतंत्र हो गया है। उसके चारों पाये भ्रष्टाचार में डूबते नजर आ रहे हैं। जो मूल की ओर जाना चाहते हैं उनकी आवाज बाजारवाद के नक्कारखाने में अनसुनी कर दी जाती है। उपदेश देनेवाले भी हैं; पर 'मानवता' के दर्शन उनके भी आचरण में कहीं क्वचित् ही लक्षित होता है। वह भी बेचा जा रहा है। आचरण का दीप-स्तंभ ही कुछ कर सकता है, जो एक-एक कर बुझता जा रहा है या बुझाया जा रहा है। अंधकार घना होता जा रहा है, रास्ता सूझ नहीं रहा है। अध्यात्म में गहरा विश्वास ही उबार सकता है। जो उठ गया है, उठता जा रहा है। साम्यवाद बदलाव का संकल्प लेकर आया। पूँजीवादी और दुर्निवार भोगवादी वृत्ति ने व्यक्तिवाद को उभारकर उसका भी जनाजा निकाल दिया। अब एकमात्र 'अध्यात्म' का ही सहारा है। पर यह दंभियों की खाल बन गया है। चेतना से अध्यात्मवादी आचार्य शंकर अथवा संत कबीर कितने हैं और हैं तो कहाँ हैं, जो भ्रष्टाचारी कापालिकों और धर्मांध लोदियों से लोहा ले सकते हैं। इस हैवानी दौर से लड़ने की ताकत तो अध्यात्म की शक्ति—अपराजेय शक्ति—ही दे सकती है। संत और आचार्य जीवंत निदर्शन हैं। इस हैवानी वृत्ति से निजात तो वही दिला सकता है जिसमें अध्यात्म की शक्ति हो। इसीलिए शंकर और कबीर ने दानवी शक्तियों से लोहा लिया था। इस आध्यात्मिक शक्ति की उपलब्धि के लिए तप और संकल्प की अपराजेय क्षमता होनी चाहिए। उपनिषद् कहते हैं—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

—बलहीन इसे नहीं पा सकता।

तभी तो कबीर ने कहा था—

सो मुल्ला जो आपस्यों लरै।

इनसे लड़ना आसान नहीं है। अध्यात्म विश्वासी आस्थावान् ही इनसे लड़ सकता है। आस्था की टेक जिसके पास नहीं है, वह भौतिक प्रलोभनों से मुक्त होकर दुर्जेय वृत्तियों से नहीं लड़ सकता। और इनसे लड़े बिना वह अपराजेय क्षमता आ नहीं सकती जिससे 'मानवता' की प्रतिष्ठा और चरितार्थता हो। गोस्वामीजी ने कहा है कि हराम राज्य नहीं—यदि रामराज्य चाहिए तो···

—मुल्ला या अध्यात्म पुरुष वही है जो दूसरों से नहीं, अपनों से भी नहीं, अपने से लड़े—अर्थात् अपनी चेतना पर छाई हुई दुर्वृत्तियों से लड़े; काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मात्सर्य से लड़े। इनसे लड़ना आसान नहीं है। अध्यात्म विश्वासी आस्थावान् ही इनसे लड़ सकता है। आस्था की टेक जिसके पास नहीं है, वह भौतिक प्रलोभनों से मुक्त होकर दुर्जेय वृत्तियों से नहीं लड़ सकता। और इनसे लड़े बिना वह अपराजेय क्षमता आ नहीं सकती जिससे 'मानवता' की प्रतिष्ठा और चरितार्थता हो। गोस्वामीजी ने कहा है कि हराम राज्य नहीं—यदि रामराज्य चाहिए तो—'सचिव बिरागु बिबेक नरेसू।'

वैराग्य या अनासक्ति का साचिव्य और विवेक का आधिपत्य चाहिए। कबीर ने जब मानवता के उद्धार का शंखनाद किया था तब यही कहा था—

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ॥

यह घर घास-फूस या ईंट-पत्थर का भौतिक घर नहीं है। यह चेतना में जड़ जमाए 'आसक्ति' का घर है। इस 'आसक्ति' रूपी घर को जो जलाएगा वही मानवीय यात्रा में चल सकता है। जिस संसार में पराशर और विश्वामित्र को भी रूप प्रकंपित कर गिरा देता है उसमें अनासक्ति पा जाना मामूली बात नहीं है। पर यहीं से मानवता के उद्धार का रास्ता शुरू होता है। इसलिए यह चुनौती जो लेगा उसीसे कुछ उम्मीद की जा सकती है। एकमात्र रास्ता यही है। आचार्यों, ऋषियों, मुनियों, संतों और भक्तों से भरा भारत का अतीत ऊर्ध्वबाहु घोषणा कर रहा है—हम अपनी चेतना का कान ही बंद कर लें तो क्या हो? रास्ता तो सामने है, पर—

हरित भूमि बृण संकुलित समुझि परै नहिं पंथ।

केदारनाथ सिंह की एक कविता है, जिसमें एक भटका हुआ व्यक्ति एक व्यक्ति से रास्ता पूछता है। वह एक ढेला फेंककर उस घास को हटा देता है जो रास्ते को ढक रही है।

□

२, स्टेट बैंक कॉलोनी,
देवास रोड, उज्जैन-४५६०१०

कहानी

सुरसती बुआ

✍ विद्याविंदु सिंह

सुरसती बुआ देखने में सामान्य स्त्री जैसी थीं। दाँत थोड़े बड़े, रंग साँवला, आँखें छोटी; पर उनके चेहरे पर कुछ ऐसा था कि उन्हें असुंदर नहीं कहा जा सकता था। कद-काठी लंबी थी।

वह चबूतरे पर बैठी थीं। गाँव की कई औरतें उनके सामने हाथ जोड़े बैठी थीं। वे रह-रहकर काँप रही थीं। जालपा माई उनके सिर आ गई थीं। लल्लन बहू उनके पैर पर गिरकर घिघिया उठीं, 'माई, हमरे छोटकी क एक बेटवा दैद्या। माता, तुहार चौरा लीपब। तुहैं हरदी क धार, पियरी, कराही चढ़ाइब।'

सुरसती बुआ जोर-जोर से झूमने लगी थीं। झूमते-झूमते हुंकार उठीं, 'नइहरे क बरम आय बा, उहै रोके है रास्ता।'

लल्लन बहू अँचरा पसारकर बोलीं, 'उपाय बतावा, महतारी। जौन कहा तौन करी।'

उनका काँपना और बढ़ गया। अब वे कमर से लेकर सिर तक का हिस्सा वृत्ताकार घुमा रही थीं। उनकी आँखों में खून उतर आया था। वे किसीको डाँट रही थीं, 'छोड़ दे इसे। छोड़ दे इसे, नहीं तो मैं तेरा खून पी जाऊँगी। जा, जहाँ से आया है वहीं लौट जा। यहाँ मेरा चौरा है। इस सिवान में आगे कदम मत रखना।' फिर जोर-जोर से हँसने लगीं, 'खून चाहिए तुझे, खून! अच्छा ले, चख ले। पर फिर इधर घूमकर मत देखना।' कहकर उन्होंने सरपत से अपनी उँगली चीर ली और खून की बूँद धरती पर गिरा दी।

छोटकी की ओर करुणा की दृष्टि से देखकर बोलीं, 'जा, अब गोद भरेगी। वह तुझे छोड़ गया।'

सभी स्त्रियाँ फिर से सुरसती बुआ के चरण छूने लगी थीं। अब वे सँभल रही थीं। कुछ स्त्रियाँ निराश हो रही थीं। आज तो हम अपने बारे में कुछ पूछ-कह ही नहीं पाए। अब जाने कब माई फिर उनके सिर आएँ?'

मैं अपने बचपन से सुरसती बुआ को देखती आ रही थी। तब से, जब वे पुष्ट देहयष्टिवाली युवती थीं। अब तो वे वृद्धा हो गई थीं।

मैंने अपनी दादी से सुना था कि सुरसती बुआ ब्याह कर ससुराल गईं तो कुछ ही सालों बाद लौटकर मायके आ गईं। माँ-बाप साल भर के अंतर में ही मर गए। छोटा भाई अनाथ हो गया। उसे साथ ले गईं। खेती-बारी, गाय-भैंस गाँववालों के भरोसे छोड़ गई थीं। साल भर तो जल्दी-जल्दी आकर देखती रहीं।

एक बार आईं तो देखा कि गाय-भैंसें दुबरा (दुबली) गई हैं, और जिन्हें उनको सौंपकर आई थीं उनका परिवार चिकना गया है। बरदौरी में माछी भिनक रही है। गाय-भैंसें उन्हें देखकर ऐसे रँभाने लगीं जैसे ससुराल से लौटी बेटी माँ को देखकर विह्वल होकर रो पड़े। वे गाय-भैंसों से गले लगकर रोती रहीं। बरदौरी में गोबर साफ किया। गाय-भैंसों को ले जाकर तालाब में नहलाया। सानी-भूसा दिया। फिर अपने पिता के हाथ के लगाए बाग में गईं। लगा जैसे पेड़ उदास हों। वह उनसे लिपट-लिपटकर रोती रहीं। भाई को वापस साथ ले आई थीं। बाग में जब उन्हें ध्यान आया कि भाई भूखा होगा और थका भी, तब वह जल्दी-जल्दी घर लौटीं।

रसोई में गईं तो देखा कि सभी हँड़िया (घड़े) खाली हैं। दाल, चावल, आटा घर में कुछ नहीं। तेल-घी की मटकियाँ भी खाली हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ कि वह तो सबकुछ भरा हुआ छोड़कर गई थीं। घर की चाभी वह इसलिए दे गई थीं कि घर में दीया-बत्ती और घर की सफाई होती रहेगी। गाय-भैंसें जो दूध देंगी उसे जमाकर, मथकर, मक्खन खर (गरम) करके वे रख देंगे। मट्ठा-दूध वे लोग खा लेंगे। पर यहाँ तो देख रही थीं कि सारा सामान ही साफ हो गया है। घर में लग रहा था कि महीनों से झाड़ू नहीं लगी है।

उन लोगों ने छोटी सी बच्ची के हाथ चाभी भेज दी। उन्होंने जब उसकी माँ के बारे में पूछा तो वह बोली, 'उन्होंने कहा है कि बता देना, माई बीमार है।'

सुरसती की समझ में आ गया बीमारी का कारण। कैसे मुँह दिखाने का साहस करें। अबकी सुरसती बुआ अचानक आ गई थीं।

'अवधू', यही नाम था छोटे भाई का, मुँह लटकाए गाँव से लौट रहा था। वह पुरवा भर में घूमकर आया था। किसीने भी उसे कुछ खाने को नहीं पूछा था। सुरसती बुआ उसे बिठाकर डलिया लेकर खेत में गईं। जाड़े के दिन थे। सोचा कि 'मटर तोड़ लाऊँ और घुघुरी बना दूँ।' पर मटर का डाँठ जानवर खा गए थे। थोड़ा डाँठ जो बचा था उसकी फलियाँ तोड़ी जा चुकी थीं।

वे किसी तरह गुस्से पर काबू करके उनके घर गईं। उनको देखते ही जैसे सबको साँप सूँघ गया। वह कुछ बोलतीं, उसके पहले ही उनकी काकी बोल उठीं, 'हमरे घरे तौ एक ओर से सब बोखार मा परा रहा, आजै सब उठा है।'

सुरसती बुआ ने दबी जबान में कहा, 'न घर में आटा, दाल, तेल है और न खेत में मटर की फली। अवधू भुखान है, का बनाई? थोड़ा दूध दै द्या तौ उहै पिलाइ देई।'

काकी कहँरती हुई बोलीं, 'तोहार गैया-भैंसी तो दूधै देब बंद कइ दिही हैं। हमरी गइया क दूध लरिकनों क ना पूर परत है। थोड़ा आटा, दाल, चाउर देवाय देइत है, लिहे जा, बनाय ल्या।' उन्होंने अपनी बहू को आवाज लगाई।

सुरसती बुआ के सिर से पैर तक आग लग गई। खून का घूँट पीकर रह गईं। काकी की बहूरानी आवाज सुनकर भी नहीं आई थी। वह उलटे पाँव लौट पड़ीं।

बाहर निकलते ही पतरकी नटिनियाँ मिली, 'बुआ, पाँय लागी।' कहकर चरण छुआ और हाल-चाल पूछने को हुई तो उनका तमतमाया चेहरा देखकर सहम गई। 'क्या बात है, बुआ, कब आईं?'

उसकी संवेदना से वे विह्वल हो उठीं। उनकी आँखों में आँसू आ गए।

'कुछ नाँय, भौजी। अवधू भुखान है, घर मा कुछ नाय है, वही के लिए दूध लेवै आय रहे, मुला…'

पतरकी सब समझ गई। बोली, 'बुआ, हम तो ठहरे नट बहुँचरिया। हमरे घर क त तू पानी न पीबू। मुला अवधू बबुआ तौ हमरी छेरी क दूध पी सकत हैं। चला, आपन बरतन द्या, हम वही में दुहि के भेजित है।'

उसने अपने लड़के को आवाज दी, 'अरे मिठुआ! डलिया में छीमी (मटरफली) धरी है, उठाय कै बुआ के हियाँ पहुँचाइ दे।'…फुआ, हमरे तो खेत-बारी नाँय है, मुला कौनो चीज खाय क कमी नाँय है। आज ठाकुर बाबा किहाँ से छीमी पायो है। आजु तू खाय ला। हम काल्हि लाय के खाय लेबै।' सुरसती बुआ के लाख मना करने पर भी वह उनके बरतन में दूध दुहकर दे आई। मटरफली लाकर छील दिया। आलू भी अपने घर से लाकर, छीलकर-धोकर रख दिया। बुआ ने घुघरी बनाकर अवधू को खिलाया। पतरकी को दिया और खुद भी खाकर तृप्त होकर बोलीं, 'भौजी, आज मालूम परा कि जाति-गोत-सगा सब कहै के हैं। जो आपन दुःख-सुख समझै उहै आपन है।'

पतरकी से उन्होंने गाँव का हाल-चाल पूछा। सब बताने के बाद पतरकी दबी जबान से बोली, 'फुआ, तोहार काका एक दिन कहत रहे कि हमैं अधिया पै दै देयँ तबै हम कराउब उनकै खेती-बारी। हमरे यतना जाँगर फालतू नाँय है कि अपनौ सँभारी और मुफत माँ दुसरेव के।'

बुआ कुछ नहीं बोलीं। उनके माता-पिता थे तो गाँव में ही। एक जून का दूध चार-पाँच घरों में बेच देते थे। और एक जून का घरवाले
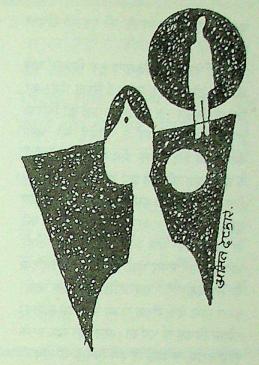
दूध-दही-मट्ठा खाते, घी बनाते, काम भर का रखकर घी बेच भी लेते थे। खेती भी बहुत ज्यादा नहीं तो इतनी तो थी ही कि साल भर आराम से खाकर बचा हुआ बेच लेते। कपड़ा-लत्ता, नमक-मसाला खरीदने से जो बच जाता उसे गाढ़े समय के लिए एक हँड़िया में रखकर जमीन के अंदर गाड़ देते थे। उसके ऊपर ऐसा लीप देते थे कि कोई पता नहीं लगा सकता था। खुद भी जगह पहचानने में भूल न हो, इसलिए उसीके ऊपर छोटी चकिया रख दी जाती थी। सुरसती बुआ की शादी में वह हँड़िया खोदकर उसमें से कुछ धन निकाल लिया गया था और अवधू के लिए रखकर उसी तरह बंद करके, लाल कपड़े से उसका मुँह बाँधकर उसे गाड़ दिया गया था।

उसी दिन सुरसती बुआ की माँ ने बेटी को वह जगह दिखा दी थी और कहा था, 'बेटी, अवधू अभी छोटा है। हमारे बुढ़ापे की औलाद है। हमें कुछ हो जाय तो उसका हिस्सा उसे सौंप देना।' माँ ने यह भी कहा था कि 'किसीको यह बात बताना नहीं। अवधू को भी नहीं। अभी बच्चा है, किसीको बता देगा।'

सुरसती बुआ माता-पिता दोनों के अंतिम क्षणों में आ नहीं सकी थीं। दोनों बार ही मृत्यु के बाद पहुँचीं। अवधू अकेला बिलख रहा था। उसने दीदी की गोद में सिर रखकर रोते हुए कहा था, 'माई कहती रहीं, दीदी से कहि दिह्या, चकिया देखि लेइहैं। कहते-कहते उनकी बोली बंद होई गई।' जब अवधू बता रहा था उस समय काकी वहीं बैठी थीं। सुरसती पिता और फिर माँ के अकस्मात् चले जाने से इतनी विह्वल थीं कि उन्हें तुरंत जाकर चकिया देखने की सुधि नहीं रही थी।

माँ का दाह करने लोग दिलासीगंज (सरयू नदी के तट पर एक स्थान) से लौटे तो रात हो गई थी। दुःख से बेहाल भाई-बहन की रोते-रोते आँख लग गई थी। अचानक कुछ खटका हुआ तो सुरसती बुआ उठकर चारों ओर देखने लगीं। कोठरी में ताला लगा था। वे फिर आकर लेट गईं। पूरा बदन यात्रा की थकान और दुःख से पोर-पोर दुख रहा था। सवेरे हल्ला सुनकर और अपने दरवाजे पर खटपट सुनकर उठीं। कोई उनका और अवधू का नाम लेकर बुलाते हुए दरवाजा खटखटा रहा था।

उन्होंने बदहवास घबराती हुई उठकर किवाड़ खोले तो देखा, दरवाजे पर भीड़ लगी है। उनकी चकियावाली कोठरी की दीवार में सेंध कटी है। चकिया अलग पड़ी है। हँड़िया का पता नहीं है।

सुरसती बुआ सिर थामकर बैठ गईं। भाई का दुर्भाग्य उन्हें झकझोर गया था। मन पश्चात्ताप से भर गया था। वह माँ के विश्वास की रक्षा नहीं कर सकी थीं।

भाई की संपत्ति जो बची है, मैं उसे अधिया पर नहीं दूँगी। जमाना कितना खराब है। किसीके मन में पाप का डर रह नहीं गया है। अधिया पर दे दें तो धीरे-धीरे लोग पूरा हड़पने की कोशिश करेंगे।

पतरकी से अधिया पर देने की बात सुनकर और आज काका के परिवार का व्यवहार तथा अपना घर खाली देखकर उनके मन में अचानक सेंध की घटना कौंध गई। काकी ही तो थीं उस समय, जब अवधू उससे माँ की कही बात बता रहा था। अचानक उनके मन से

जैसे रहस्य का परदा उठ गया। मैं भी कैसी मूर्ख हूँ! उन्हीं लोगों पर विश्वास करके उनके हाथ में घर-द्वार, खेती-बारी, गाय-गोरू सौंप गई थी। हे भगवान्! मेरी मति मारी गई थी। अच्छा हुआ, आज उन्हीं लोगों ने चेता दिया, वरना बार-बार मैं छली जाती रहती अपनों के संबंधों के नाम पर।

उसने पतरकी भौजी के जाते ही घर, खेत-पात और जानवरों की व्यवस्था शुरू की। चार दिन में घर चमक गया। गोशाला और गाय-भैंसें साफ-सुथरी हो गईं। लगा कि उनमें जीवन का संचार हो गया है। खेती-बारी का काम हलवाहे को बुलाकर साथ में लगकर पूरा किया। राशन-पानी ठीक किया। अभी कुछ और काम बाकी था। तभी ससुराल से देवर आ गया उन्हें ले जाने के लिए।

वह अवधू को छोड़कर जाना नहीं चाह रही थीं और उसे लेकर जाने पर यहाँ की व्यवस्था फिर पूर्ववत् बिगड़ जाएगी। वह रहेगा तो गाय-भैंसों को चारा लाकर देगा, घर में दीया-बत्ती कर लेगा। पर अभी वह अपना खाना बना नहीं पाता है। खाएगा कहाँ?

काकी के यहाँ अब सौंपने का उनका मन नहीं था। देवर को उन्होंने समझा-बुझाकर विदा कर दिया था कि मैं पाँच-छह दिन बाद अवधू को लेकर आ जाऊँगी। देवर मुँह लटकाए लौट गया। वहाँ भी अभी वह अकेली बहू थीं। सासजी बहू के आने के बाद से चूल्हा-चौकी से एकदम फुरसत पा गई थीं। बहू जाकर अपना मायका सँभाले और वे घर-बाहर खटें, यह उन्हें नागवार गुजर रहा था।

छोटे बेटे को अकेले लौटा देखा और बहू का संदेश सुना तो एकदम आगबबूला हो गईं, 'हम बेटवा क बियाह किए हैं आपन घर सँभारे बदे कि उनके नइहर सँभारै कि खातिर!' और आटी-पाटी लेकर पड़ गईं।

बड़ा बेटा घर आया तो माँ को लेटा देखकर चिंतित हो गया। हाल-चाल पूछा तो छोटे भाई और माँ ने नमक-मिर्च लगाकर बहू के न आने की बात कह डाली और कहा कि बहू ने कहा है कि मायके की गृहस्थी सँभाल लूँगी, तभी आऊँगी।

माँ ने बेटे को उकसाना शुरू किया, 'जाने का देखें तोहार बाप, जवन ई रिश्ता मंजूर कर लिहिन। न सूरत, न सीरत। कंगाले की बिटिया दान-दहेज ना मिला त सोचेन की चला कामकाजी होई। मुला अब वै नइहर सँभरिहैं त हमरे बूता नाँय बा इहाँ खटै कै। चार-पाँच दिन माँ न आवैं त हम दूसर बियाह करि देब तुहार। हमार मामा अपनी पोती क रिश्ता करै के खातिर इहाँ गोड़ घिसि डारिन, मुला तोहरे बाप के आगे हमार एकौ ना चली। ऊ बिटिया कै रूप देखा तौ तोहार आँख चौंधियाय जाय। हमार मामा धन-दौलत से घर पाट दिहे होतिन। ओकर बियाह ना भय बा। आठ दिन तक उनके राहि देखब, न आईं तौ हम बियाह कै लेब।'

इस समय सुरसती के ससुर सिंगापुर चले गए थे। सास के वही मामा वहाँ रहते थे। आए तो पैसों का लालच दिलाया। वे नहीं जाना चाह रहे थे। पर सास ने उन्हें जबरन भेज दिया। वे अभी एक साल तक तो आने से रहे, इसी बीच सास यह गुल खिला देना चाहती थी। उसे अकस्मात् एक मौका ऐसा मिल गया था जिससे वह चूकना नहीं चाहती थी।

सुरसती बुआ को देखते ही उसे अपने मामा की पोती याद आ जाती। साथ ही मामा की सिंगापुर की कमाई हुई भारी-भरकम दहेज की रकम भी। मामा से गुपचुप उसने बात भी कर ली हो तो कोई ताज्जुब नहीं है। शायद सुरसती बुआ के माँ-बाप के मरने के बाद ही उसके मन में यह योजना कुलबुलाने लगी थी। सुरसती बुआ के पिता उनके ससुर के रिश्ते में भी थे और दोनों गहरे मित्र भी थे। इसीलिए लाख विरोध के बाद भी ससुरजी ने यह संबंध मान लिया था। वे सुरसती को अपनी बेटी की तरह मानते थे और उनका यह दुलार ही सुरसती की सास की आँखों में काँटा बनकर कसकता था।

सुरसती बुआ के पति कुछ नहीं बोल सके। माता-पिता का दबदबा उस समय इतना था कि अपनी पत्नी और विवाह के बारे में मुँह खोलना बेशरमी मानी जाती थी।

उनके देवर को लौटकर गए आठ दिन बीत गए और बुआ वापस नहीं लौट सकीं। रात-दिन की मेहनत और मानसिक चिंताओं के कारण उन्हें बुखार आ गया। अपनी परवाह उन्हें उतनी नहीं थी। पर अवधू को भी दूसरे दिन बुखार ने आ घेरा। उसे शीतला माई निकल आईं। अपना बुखार झटककर वे उठ खड़ी हुईं और भाई की सेवा में जुट गईं। वे शीतला माई के लिए सवेरे नीम का चौरा लीपें, हलदी-लवंग-गुड़ का ढरकावन चढ़ावें। (शीतलहा) के खटिया तरे लीपें। नीम की टहनी से बयार करें। रोज बिछौना, कपड़ा की सफाई करें, घर में छौंक-बघार दाल में हलदी तलना-भूजना सब बंद हो गया। अवधू कुछ खा ही नहीं पाता था। अपने लिए बनाने का न उन्हें समय था, न इच्छा। वह रात-दिन देवी माई का सुमिरन करती थीं, 'हे माई! दया करा, जान बख्शा।' वे जैसे भक्ति के उन्माद में खोई रहने लगीं। करुण स्वर में देवी गीत 'पचरा' गाने लगीं। माँ ने उनकी पुकार सुन ली। आठवें दिन अवधू ने आँखें खोलीं। देवी ढार पर थीं। सुरसती बुआ की तपस्या सफल हुई। देवी को पानी छुआया, पूजा की और उसी दिन उनको भी देवी निकल आईं। उन्हें कौन देखता? अवधू इतना कमजोर था कि स्वयं को सँभाल नहीं सकता था।

पतरकी भौजी के लड़के को अपनी ससुराल भेजा कि जाकर यहाँ का हाल-पता दे आओ।

वह गया। दरवाजे पर ही उनकी सास मिलीं। सुनते ही कि चेचक निकली है और वहाँ से संदेश लेकर आदमी आया है, वह बिफर पड़ीं, 'हाय राम! घर माँ देव्री निसरी हैं और उहाँ से सनेसा लैके मनई पठवा है। देवी! हमरे पशु-परानी कै रक्षा किहू। जो हमार अनभल चेतै, ओकर साथ तू विचार किह्या, मइया।'

कलुआ को दाना-पानी को कौन कहै, उन्होंने बैठने को भी नहीं कहा।

कलुआ सूखा मुँह लिये भूखा-प्यासा लौट

आया और आकर जब सारी बात बताई तो सुरसती बुआ का मन एकदम खट्टा हो गया। वे चारपाई पर पड़ी थीं। पतरकी भौजी ही उनकी सेवा कर रही थी। अवधू को भी अपने घर से तो नहीं, यहीं पकाकर खिला देती। अपने पट्टीदारों ने झाँककर देखा भी नहीं था। जबकि सब जानते थे कि सुरसती अपनी बिरादरी के बाहर के हाथ का छुआ नहीं खातीं-पीतीं। वे बचपन से ही देवी की भक्त थीं।

'मड़हा' नदी के उस पार जालपा देवी का टीला था। वहाँ जाकर वे जो मनौती मान देती थीं, वह पूरी हो जाती थी। वहाँ हर सोमवार को वे दर्शन करने और लवंग-जल चढ़ाने जरूर जाती थीं। गरमियों, जाड़ों में आसान था जाना, क्योंकि एक जगह से नदी सँकरी और उथली थी। वहाँ से घुटने-घुटने तो कभी-कभी कमर तक और कभी-कभी कंधे तक पानी में चलकर वे जाती थीं।

'मड़हा' नदी के उस पार जालपा देवी का टीला था। वहाँ जाकर वे जो मनौती मान देती थीं, वह पूरी हो जाती थी। वहाँ हर सोमवार को वे दर्शन करने और लवंग-जल चढ़ाने जरूर जाती थीं। गरमियों, जाड़ों में आसान था जाना, क्योंकि एक जगह से नदी सँकरी और उथली थी। वहाँ से घुटने-घुटने तो कभी-कभी कमर तक और कभी-कभी कंधे तक पानी में चलकर वे जाती थीं।

माँ डाँटती थीं कि बीमार हो जाएगी, या किसी दिन फिसलकर गिरेगी तो क्या होगा। भगवान् न करे, कभी पैर ऊँचे-नीचे गड्ढे में पड़ जाए तो तैरना भी नहीं जानती है। पर सुरसती बुआ हँस देती थीं। बड़े विश्वास के साथ कहतीं, 'अरे माई, जेकर दर्शन करै जाइत है ऊ बचाए न, तू काहे फिकिर करत हौ।'

लेकिन बरसात में जब मड़हा नदी बढ़ती तो लगता कि सरजू का चौड़ा पाट हो गया है और बाढ़ आने पर तो जालपा माई का चौरा या टीला भी डूब जाता था। सुरसती इस पार खड़ी होकर अनुमान करतीं कि कहाँ माई का चौरा होगा और मन-ही-मन आतंकित होतीं कि कहीं नदी उस टीले को बहा न ले जाए। है तो माटी का ही न।

उनकी माँ ने एक दिन कहा, 'बिटिया, एतना काहे परेशान रहत हौ। अरे, माई कहाँ नाहीं हैं, नीमी क पेड़ में देवी क वास है। तू यहीं के तरे चौरा बनाय ल्या। जालपा माई यहीं में समाय जैहैं।'

सुरसती बुआ ने ऐसा ही कर लिया। दरवाजे की नीम के नीचे नदी से मिट्टी लाकर चौरा बना लिया। दूसरे दिन से वहाँ भी लवंग, फूल, ढरकावन चढ़ने लगा और नदी तीरे के चौरे पर भी। जाने लायक रास्ता न रह जाए तो इस पार से ही उसी ओर मुँह करके वह पूजा चढ़ाने लगीं।

शादी हुई तो जाते समय जालपा माई के चौरा से लिपटकर ऐसे रोई थीं जैसे माँ के गले से लगकर। ससुराल में भी नीम के नीचे चौरा बना लिया। यहाँ जाते समय पतरकी भौजी को जालपा माई की सेवा सौंप गई थीं। वह भी बड़ी लगन से सेवा-पूजा करती थी। मायके लौटकर वह इस बात से बहुत संतुष्ट हुई थीं। पतरकी भौजी वैसे तो नट जाति की थी, जिनके कबीले की रीति है भीख माँगना, गाना बजाना, झाड़-फूँक, कुश्ती लड़ना-सिखाना, सरकस के करतब दिखाना, गोदना गोदना आदि। वैसे तो यह घुमक्कड़ जाति थी, पर कई पुश्तों से यह कुनबा इस गाँव के किनारे बस गया था।

इन्हींके नाम पर इस गाँव का नाम पड़ा था 'नटवा क पुरुवा'। इनका कुनबा दूर-दूर के गाँवों में था। इनकी परस्पर संदेश भेजने की तरकीब बुहत की निराली थी। एक गाँव का नट पेड़ पर चढ़कर ढोल बजाता था, सुनकर दूसरे गाँव का, फिर तीसरे गाँव का और इस प्रकार मिनटों में सारे कबीले को समाचार मिल जाता। भिन्न संदेश के लिए ढोलक बजाने के तरीके भिन्न होते थे। इसका अर्थ वह लोग ढोलक सुनकर लगा लेते थे। ऐसे ही कबीले की थी पतरकी, जो सुरसती बुआ की पूजा से जुड़कर उनके जीवन के सुख-दुःख से जुड़ गई थी।

पूरे महीने भर बाद सुरसती बुआ ठीक हुईं। पतरकी भौजी ऊपर का सारा काम कर देती थी। बुआ का चौका पोत देती, चूल्हा जला देती, शाक-सब्जी काटकर रख देती। बस बुआ बैठे-बैठे खाना बना लेने लगीं। उनकी रसोई की लक्ष्मणरेखा पतरकी नहीं लाँघती थी।

बुआ का मन हाहाकार कर रहा था। बीमारी की खबर सुनकर न तो ससुराल का कोई आया और न पति ने ही कोई खोज-खबर ली। बीमारी ने उनका साँवला रंग काला कर दिया था। उनके पति गोरे-चिट्टे थे। बुआ पहले ही महसूस करती थीं कि अपने पति के अनुरूप नहीं हूँ; किंतु अपनी सेवा और कर्मठता से उन्होंने पति का हृदय जीत लिया था। वह सास की खरी-खोटी सुनने पर जब दुःखी होतीं तब पति ही उन्हें धीरज बँधाया करते; पर माँ के सामने उनकी बोलने को कौन कहे, पत्नी की ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं थे।

सुरसती का मन भर आया। वह खुद नहीं आ सके तो किसी मनई-मजूर को ही भेजकर हाल-चाल तो ले ही सकते थे।

अभी भी उनकी कमजोरी इतनी थी कि चार कदम चलते ही हाँफने लगती थीं। ऐसी हालत में ससुराल जाने पर वहाँ तो कोई बैठाकर खिलाएगा नहीं। क्या करें, वे समझ नहीं पा रही थीं।

उन्हें मायके आए सवा महीने हो गए थे।

उन्होंने अवधू को और घर को पतरकी के हवाले करके जाने का निश्चय किया। अवधू को ले जाना ठीक नहीं लगा। उन्होंने महसूस किया था कि उसे वहाँ पर रखना सास को नागवार लगता है। अभी यहाँ आते समय उन्होंने चाहा था कि अवधू के लिए रास्ते को खाने को कुछ लेते चलें। सास से पूछा तो बोलीं, 'जौन मरजी होय तौन ले जाओ। हम हाथ थोड़े पकड़े हैं।'

जिस लहजे में बात कही गई थी उसे सुनकर सुरसती बुआ का मन कुछ लाने को नहीं हुआ और दोनों भाई-बहन ऐसे ही चले आए थे। बुआ को लगता था कि भाई का खाना-नाश्ता सास को खलता था। जबकि पिछली बार जाते समय वे चावल, दाल, गेहूँ, सरसों आदि लढ़िया में लदवाकर ले गई थीं। इस बार उन्होंने निश्चय किया कि न वे भाई को ले जाएँगी और न ही सामान। अपने मन से आई थीं, इसलिए अकेले ही जाएँगी।

वह तैयार हुईं। गाँव से निकलकर कच्ची सड़क तक आते-आते ही हाँफ गईं। सड़क के किनारे ही बगिया थी। उसीमें बैठकर सुस्ताने लगी थीं। अवधू और पतरकी भौजी यहाँ तक पहुँचाने आए थे। उनकी हालत देखकर दोनों बोले, 'मत जाओ अकेले, लौट चलो। कोई आएगा तो जाना, नहीं तो किसीकी लढ़िया से चली जाना।'

वे हिम्मत नहीं बटोर पा रही थीं। पर सास का पारा चढ़ा होगा। न जाने पर सब नाराज होंगे, यह सोचकर जाना जरूरी समझ रही थीं। पति से भय नहीं था। वे तो मिट्टी के माधो हैं। जैसा माँ ने कह दिया होगा, मान गए होंगे।

इतने में बैलों की घंटियाँ सुनाई दीं। उधर निगाह डाली तो एक बैलगाड़ी आती दिखाई दी। गाड़ी नजदीक आई तो सुरसती बुआ उठकर खड़ी हो गईं, 'अरे भइया, कहाँ जात हौ?'

गाड़ीवान ने कहा, 'गोसाईंगंज तक।'

वह बोलीं, 'हमैं वहाँ तक लेते चलत्या भइया।'

गाड़ीवान ने कहा, 'बइठि जा।'

वह बैलगाड़ी से गोसाईंगंज तक चली गईं। वहाँ से उनका गाँव दो कोस पड़ता था। धीरे-धीरे पैदल चलते-चलते गाँव के सिवान पर बगिया में पहुँचीं तो वहाँ तालाब में मौरी सिराने के लिए गाँव की स्त्रियाँ जुटी थीं। वे सोचने लगीं, पता नहीं गाँव में किसकी शादी हुई है। गई थी तब तो किसीकी तय नहीं हुई थी। चलो, अभी घर पर पता लग जाएगा।

उन्होंने घूँघट से मुँह ढक रखा था। लेकिन देखनेवालों ने उनकी चाल-ढाल से उन्हें पहचान लिया था। कुछ स्त्रियाँ लपककर उनके पास आने को हुईं; पर सहमकर खड़ी हो गईं। उनकी सास से सभी डरती थीं। वैसे कोई भी उनके घर कम ही आता-जाता था। बहू भी कम बातचीत करती थी। कौन सुनेगा उनकी कर्कशा सास का ताना कि हमारी बहू को बिगाड़ने आते हैं लोग!

परंतु आज तो बात करने का परिणाम और भयंकर हो सकता था। सब स्त्रियाँ एक ओर खड़ी रह गई थीं। सुरसती को आशा थी कि अभी लोग बढ़कर आएँगी और साथ ले चलेंगी; क्योंकि स्वयं तो वे उन लोगों के संकोचवश नहीं जा रही थीं। जब तक सास रहती है तब तक दयादी करने बहू नहीं जाती। इसलिए अभी तक किसीके काम-काज में वह नहीं जाती थीं। वह मेंड़-मेंड़ चलती अपने घर के दरवाजे पर पहुँचीं तो देखा, वहाँ किसी उत्सव का माहौल था। उन्हें झटका सा लगा, 'क्या देवर की शादी हो रही है? मुझे खबर भी नहीं दी गई?' असमंजस और ऊहापोह में वह घर में प्रवेश कर गईं। सामने से देवर आ रहा था। उन्हें देखते ही वह जैसे चौंक पड़ा, 'अरे भौजी!'

वे कुछ बोलें, तब तक सामने से उनके पति आते हुए दिखे। हाथ में कंगन बँधा था, पैर में महावर थी। वे चौंक उठीं। पति के चेहरे पर निरीह भाव आया। हकलाते हुए बोले, 'हम तो नहीं चाहत रहे, लेकिन माई के आगे हमार कुछ न चली।'

सुरसती बुआ के चेहरे पर आज पहली बार पति के लिजलिजे स्वभाव के प्रति घृणा का भाव कौंध गया। उनके चेहरे की प्रसन्नता तो बता रही थी कि रूप और धन का मोह उन्हें भी छल गया। वे उलटे पाँव लौट पड़ीं। दरवाजे के सामने से सजी-धजी और स्त्रियाँ आ रही थीं। आगे-आगे नाउन डलिया लिये थी।

सुरसती बुआ का मन हुआ कि धरती फट जाती तो उसमें समा जातीं। इस लज्जा को घूँघट भी नहीं सँभाल पा रहा था। किसीने उनकी सास को कोहनी मारकर इशारा किया। सास ने उन्हें अनदेखा कर दिया। वे घर से निकल चुकी थीं। सामने नीम के पेड़ के नीचे उनका बनाया हुआ जालपा माई का चौरा था। विह्वल होकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया—माई, आखिरी दर्शन है। आगे कुछ सोच नहीं सकीं। पीछे से आवाजें आ रही थीं, 'किसीसे खबर मिल गई होगी बेचारी को; पर आने में देर हो गई।'

अपनी बेचारगी को वह तमाशा नहीं बनने देना चाहती थीं। बिना एक बूँद पानी पिए, बिना रुके वापस मायके आ गईं।

उसके बाद उनकी दिनचर्या में जालपा माई की पूजा और उनके ध्यान का समय बढ़ता ही गया। धीरे-धीरे गाँव भर के लोग उनके चौरे पर पूजा करने आने लगे। जालपा माई को 'कराही' चढ़ाने लगे, हवन होने लगा।

सुरसती बुआ घर के सारे काम करके जैसे ही खाली होतीं, उसी चबूतरे पर ध्यान लगाकर बैठ जातीं। यहीं उनका विश्राम स्थल बन गया। अवधू बड़ा हो गया था। उसकी खेती-बारी व्यवस्थित हो गई थी। गाय-भैंसों के दूध-घी से भी आमदनी होती थी। बुआ ने घर भी नया बनवा लिया।

अवधू के वरदेखा आने लगे। बुआ ने उसकी शादी तय कर दी। बहू घर आ गई तो घर-गृहस्थी से थोड़ी फुरसत मिल गई। अब अवधू दूध दुहता है। जिनके यहाँ दूध बँधा था, बुआ ले जाकर दे आतीं। खेती-बारी का काम अवधू सँभालने लगा। पर वह सीधा बहुत था। लेकिन पट्टीदारों की दाल गलने नहीं दी। बुआ परिवार के मुखिया मर्द की तरह दबंगई से रहीं।

उन्हें ससुराल छोड़कर आने का मलाल था या नहीं, कोई जान नहीं सका। शायद भाई की गृहस्थी सँभालकर माता-पिता की आत्मा को सुख देने का संतोष उस दुःख के समानांतर खड़ा था। नहीं भी हो तो उनके मन की थाह पाना मुश्किल था। वे कभी हँसती नहीं थीं, बोलती बहुत कम थीं। उनकी खिलखिलाहट तो शायद किसीने सुनी भी नहीं थी।

अवधू के तीन बच्चे हो गए। बहू भी कम बोलनेवाली थी; पर मिजाज की घुरमुसही थी। अपने घर-गृहस्थी के संचालन में ननद का हस्तक्षेप उसे खलता था। पर जानती थी कि वे न होतीं तो घर बिला गया होता। छोटे बच्चों को सँभालते हुए घर-गृहस्थी चला पाना उसके अकेले के बूते का नहीं था। सोचकर मन मसोसकर रह जाती।

पर अब उसे लगने लगा था कि पति समर्थ हो गया है, ननद के बिना भी काम चल सकता है। उन्होंने हमारे लिए किया जरूर; पर उनका भी तो कहीं ठिकाना नहीं था। यहीं गुजर-बसर हुई, वरना दर-दर की ठोकरें खातीं।

मन की भावनाएँ कितनी ही दबाई जाएँ, उभरकर आ ही जाती हैं। अवधू की बहू अब जानबूझकर ननद की उपेक्षा करने लगी थी। वह जानती थी कि उन्हें बिना नहाए रसोई में घुसना पसंद नहीं; पर वह रसोई में बिना नहाए जाकर एक दिन इधर-उधर करने लगी। बुआ ने टोका, 'दुलहिन, नहायू नाँय।'

उनकी बात पूरी होने से पहले ही वह बोली उठी, 'गोदी मा लरिका है, दीदी; तोहरे भगतई खातिर नहाय लेई और ऊ बीमार होइ जाय तौ हम का करब?'

सुरसती बुआ उस दिन बिना खाए रह गईं। थोड़ा चना-चबैना जरूर खा लिया था।

लेकिन अब लगभग रोज ही बिना नहाए खाना बनने लगा। बुआ कब तक उपवास करतीं। अपना चूल्हा अलग जलाकर खिचड़ी चढ़ा दी।

अवधू उस दिन खेत से जल्दी लौट आया था। सिर दर्द कर रहा था। उन्हें खाना बनाते
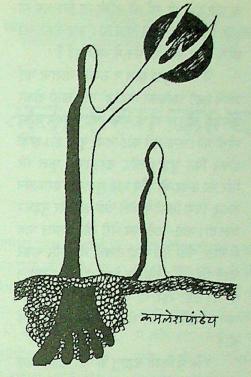
देखा तो पूछा, 'दीदी, तुम काहे बना रही हो आज?'

बुआ स्थिति बिगाड़ना नहीं चाह रही थीं, प्रश्न अनसुना करके पूछने लगीं, 'आज अवहिनै से काहे लौटि आया?'

'मूँड़ पिरा रहा है, दीदी।' उसने उत्तर दिया और फिर पूछा, 'आज और लोग कहाँ गईं? तू काहे बनावति हौ?'

बात न बिगड़े, क्या उत्तर दें, वह सोच रही थीं, तब तक तमककर अवधू की बहू बाहर आकर बोली, 'हमार छुआ न खइहैं और काहे बनावति हईं! कैसे गाँववाले जनिहैं, भौजाई ननद को बनाइ के खिलावति नाँय।'

आज पहली बार इस तरह का व्यंग्य भौजाई से सुना था सुरसती बुआ ने। जिसके सुख के लिए उन्होंने पूरा जीवन होम कर दिया था, वही आज उन्हें ताना दे तो कैसे बरदाश्त करें वह। दो दिन का उपवास किया था, ऊपर से यह चोट। उनका सिर भन्ना उठा। घड़े का पानी चूल्हे में डालकर उठ गईं। जाकर नीम के पेड़ तले बैठ गईं। पूरी देह थरथर काँपने लगी, आँखें लाल हो गईं। अवधू भागकर पतरकी भौजी को बुला लाया। उसकी बातें सुनकर और भी कई लोग पीछे-पीछे दौड़े चले आए।

सुरसती बुआ निरंतर काँपती जा रही थीं। बाल बिखरे थे। वे हाँफ रही थीं। एक स्त्री ने कहा, 'अरे, इनपर देवी माँ क सवारी है।'

दूसरी ने कहा, 'हाँ-हाँ, जालपा माई इनके सिरे आई हैं।'

बाकी औरत-मर्द एक स्वर में बोलने लगे, 'दोहाई जालपा माई की! रक्षा करा। पसु-परानी तोहरे भरोसे हैं।'

सुरसती बुआ एकटक घूर रही थीं। कानों में आवाज पड़ी तो उन्हें रोमांच हो आया, 'क्या सचमुच जालपा माई मुझपर सवार हो गई हैं? ऐसा गुस्सा तो कभी नहीं आया। तब भी, जब पति की दूसरी शादी देखी। ऐसी कँपकँपी तो पहले कभी नहीं आई, उस समय भी जब पिता के पट्टीदारों ने उसे इस गाँव से जड़ से काटने के लिए कुचक्र रचे। आज तो अनहोनी हो गई। मेरा न मन पर काबू रहा, न तन पर। हाँ-हाँ, मुझपर माई की सवारी आई है।' उनके मुँह से आवाजें निकलने लगीं। जाने क्या-क्या बकने लगीं। अस्पष्ट, असंबद्ध। बोलने से राहत मिली। लोग लवंग, फूल चढ़ा रहे थे। उनकी गरमी शांत करने के लिए हलदी-गुड़ घोलकर पानी मँगाया गया। लोटे से ही मीठा पानी गट-गट करके पी गईं। ताकत महसूस हुई। वे थक चुकी थीं। वे एक ओर को वठंग कर लेट गईं। भाई की लड़की को बुलाया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगीं। धीरे-धीरे कई माताओं ने अपने बच्चों का सिर उनके पैरों पर रख दिया। वे सबको आशीर्वाद देने लगीं।

तब से अकसर सुरसती बुआ के सिर जालपा माई आने लगीं। उनका आशीर्वाद फलने लगा। जिनका न फले तो लोग अपने कर्म का दोष समझकर संतोष कर लेते। सबका मन उनके प्रति अगाध श्रद्धा से भरता गया।

अब वे सबके लिए जालपा देवी बन चुकी हैं। पर एक उनकी सगी भौजाई है। वह मुँह पर तो नहीं, आड़े ओलते मुँह विचकाकर बोलती है, 'ई सब ढोंग है।'

धीरे-धीरे सुरसती बुआ के आशीर्वाद की

ख्याति आस-पास के गाँवों में फैलने लगी। कोई बीमार हो जाए, डॉक्टर से पहले सुरसती बुआ बुलाई जाने लगीं। हाथ में लवंग लेकर, रोगी को सामने बिठाकर वह बैठतीं और उनकी देह में कंपन शुरू हो जाता। आँखें लाल हो जातीं और रोगी की ओर तीखी नजरों से देखती हुई उसपर सवार किसी प्रेतात्मा को डाँटना या बातें करना शुरू कर देतीं। उनकी आँखों में न जाने क्या था कि कमजोर तन-मन का मरीज उनके प्रश्नों का ऊटपटाँग उत्तर देने लगता। लोगों का विश्वास और बढ़ जाता प्रेत-बाधा दूर करनेवाली जालपा माई की कृपा के प्रति।

मुझे याद है, बचपन में मुझे मियादी बुखार (टायफाइड) हो गया था। मेरा इलाज चल रहा था; पर बुखार छोड़ नहीं रहा था। मेरी ताईजी को सुरसती बुआ पर बहुत भरोसा था। वे उन्हें बुला लाईं। मुझे जमीन पर उनके सामने बिठा दिया गया। वे काँपने लगीं। थोड़ी देर बाद आँखें लाल करके मेरी ओर देखते हुए कड़ककर पूछा, 'छोड़त है कि नाहीं? बोल! बोल, का चाही तोहका?'

अपने पिता के दिए संस्कारों के कारण बचपन से ही भूत-प्रेत पर मेरा कतई विश्वास नहीं था। बुआ के प्रश्नों को सुनकर मैं मुसकरा दी। बस क्या था, वे और जोर-जोर से डाँटने लगीं, 'बहुत घाघ है, बेहया है। देखा, हँसत बाय। हम तुम्हें फूँकि देब। लाओ, चिमटा गरम लाल करिकै लाओ तो। बोल, जाबे कि दागों!' मैं सहम गई। एक तो उपवास और बुखार की कमजोरी, दूसरे मुझे लगा कि कहीं सचमुच बुआ ने चिमटे से दागना शुरू किया तो उनके प्रेत का तो कुछ नहीं होगा, मेरी चमड़ी जल जाएगी। मैंने अपनी माँ को आवाज दी, 'अम्मा, ये देखो क्या कर रही हैं?' कहकर मैं रो पड़ी।

माँ पास आ रही थीं। तब तक बुआ चिल्ला पड़ीं, 'हटो सामने से! ई बड़ा छछन्नी (छल-छद्मवाली) है। छछन्न (नाटक) करत है, रोवत है। समझत है, रोवै पै हम छोड़ि देब।' कहकर वे मुसकराईं।

उस मुसकान में क्रूर हिंसा भाव था। मरीज के प्रति दया थी, माँ की शक्ति पर विश्वास था और जाने क्या-क्या भाव थे। उस हँसी की कौंध आज तक मेरे मन में बसी हुई है।

मैं आगे कुछ बोल न सकी। जालपा माई अपने घुटने पकड़कर खड़ी हो गईं। खड़ी होकर अँगड़ाई ली। कमर पर पीछे हाथ रखकर कमर सीधी की। लगा जैसे कोई जर्जर वृद्धा हो। खड़ी होकर फिर मुड़ीं। लौंग, ढरकावन, फूल मेरे सिर के ऊपर से पाँच बार घुमाया। ढरकावन लेकर, बिना किसीसे बोले पीछे की ओर मुड़कर चल दीं। जाते-जाते फिर मेरी ओर वत्सल भाव से देखा, जैसे मेरी दादी देखती थीं, और बाहर चली गईं। मैं उनके पैर देख रही थी। अब न वे लड़खड़ा रही थीं और न काँप रही थीं। अब वे जालपा माई से सुरसती बुआ बन गई थीं।

गाँव में किसी श्रद्धालु के यहाँ चाहे विवाह का मंगल हो या पुत्र-जन्म का, सुरसती बुआ को पियरी जरूर पहनाई जाती थी। उनके अतीत के बारे में कोई कुछ नहीं पूछता था और न ही वे किसीसे कोई जिक्र करती थीं। भाई-भाभी की गृहस्थी में हस्तक्षेप करना छोड़ दिया था और दिन-रात जालपा माई के ध्यान में खोई रहती थीं। खेती का काम, गाय-भैंसों का काम पूरे परिश्रम से अभी भी कर देती थीं; पर निस्पृह भाव से। कभी मन में आता तो कंडे का अहरा जोड़कर कुछ पका लेती थीं, वरना वैसी ही पड़ी रहतीं। मौसम का साग-पात, फल खाकर या दूध पीकर दिन काट देती थीं। अबकी बार उनको काँपते देखकर लगा कि अब जालपा माई उनके सिर नहीं आई हैं। वे स्वयं जालपा (वृद्धा) हो गई हैं। अब वे कहीं किसीके घर नहीं जा पातीं। संकट में पड़े लोग अब उनके चौरे पर ही आकर उनका आशीर्वाद लेते हैं।

अब कोई उन्हें 'सुरसती बुआ' नहीं कहता, सभी जालपा माई बोलते हैं। पिछली बार जब गाँव गई तो पता चला कि वे सदा-सदा के लिए जालपा माई के चौरे में समा गई हैं। चौरे पर न फूल था, न दूध की सूखी धार। नदी ने चौरे को काटकर छोटा कर दिया था। चारों ओर कुश-काँस उग आए थे।

भूले-भटके लोग अब उधर आते भी हैं तो उस चौरे की ओर मुख करके दूर से ही पूजा चढ़ा देते हैं। पर 'जालपा माई' का नाम लेते ही लोगों की आँखों में सुरसती बुआ की ही छवि आती है।

□

४५, गोखले विहार मार्ग,
लखनऊ-२२०००१

अगस्त २००१ में साहित्य अमृत अपने प्रकाशन के सातवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। साहित्य अमृत के बहुचर्चित तथा बहुप्रशंसित 'कहानी विशेषांक' व 'कविता विशेषांक' के प्रकाशनोपरांत इसका अगस्त २००१ अंक कथा साहित्य से इतर गद्य साहित्य की विविध विधाओं पर केंद्रित होगा। इसके अंतर्गत हम नाटक, व्यंग्य, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, पत्र, डायरी, यात्रा-वृत्तांत, रिपोर्ताज, भेंटवार्त्ता आदि विधाओं पर उत्कृष्ट रचनाएँ सम्मिलित करेंगे। इस अभिनव प्रयोग में आप सबका सहयोग अपेक्षित है।

कृपया अपनी रचनाएँ हमें ७ जून, २००१ तक अवश्य भेज दें।

आलेख

सुख अंतःकरण की वस्तु है

एस.एन. राय

सुख-शांति जीवन में दुर्लभ जरूर है, परंतु इसका बहुत महत्त्व है। श्रमजीवी एवं दुःखी लोगों के लिए यह मरहम का काम करती है। यह धर्मपरायण लोगों की मनोकामना और कठोर परिश्रम से उपार्जित फल है।

यह सुख-शांति है क्या? चिंता या परेशानी का न होना यह नहीं है। खोया हुआ बटुआ या सगे-संबंधी का मिल जाना भी यह नहीं है। संकट से बचाव या किसी गलती का सुधारना भी सुख-शांति नहीं है। यह एक कीमती कार या गलीचा की प्राप्ति भी नहीं है। तो आखिर यह है क्या?

जब सुख-शांति किसी बाहरी चीज पर आधारित होती है, जैसे मन पसंद जीवनसाथी, औलाद या पद, तब इसको पानेवाला व्यक्ति एक चिंतित रखवाला भी बन जाता है और उसको इस बात का भय बना रहता है कि कोई चोर या किस्मत इसको छीन न ले। इसी बात को लेकर एक दार्शनिक ने कहा है कि 'ऐसी भी सुख-शांति क्या, जो दिल को धड़काती रहे!'

जब सड़क पर चलते राहगीर से हम पूछते हैं कि जिंदगी से आपको क्या चाहिए, तो प्रायः यही उत्तर मिलता है कि उन्हें निरंतर सुख-शांति चाहिए। सदैव बनी रहनेवाली सुख-शांति मनुष्य के अंतःकरण की वस्तु है, जो आत्मस्वीकृत और आत्मज्ञान से आती है। इसका अनुभव तब तक नहीं हो सकता जब तक दुःख, निराशा, अकेलापन, ईर्ष्या और क्षुद्रता का आभास न हो। जिसके मन में परोपकार की भावना हो, लोगों को बिना शर्त प्यार करता हो, जिज्ञासु हो, सहज स्वभाववाला हो, जिसके मस्तिष्क में आस्था का भंडार हो, वह व्यक्ति सुख और शांति का अधिकारी होता है। वह विवेक, साहस और मूर्खता में भेद कर सकता है। उसके पास हास्य वृत्ति पर्याप्त मात्रा में होती है। निष्कपटता ही सुख-शांति की सर्वोपरि सहचर है।

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जिन लोगों के अंदर सुख और शांति होती है उनको कोई भी भूकंप, सैलाब या कारागृह दुःखी नहीं बना सकता। किशोरावस्था की उग्रतापूर्ण अवधि के बाद ही इस सुख-शांति के साम्राज्य में प्रवेश मिलता है। बच्चे आनंद की चरम अनुभूति महसूस कर सकते हैं, जो बालिगों के लिए दुर्लभ है; परंतु वे वास्तविक सुख और शांति के क्षेत्र से बाहर होते हैं। उनकी शक्तिहीनता और संवेदनशीलता उन्हें सहजता और आत्मविश्वास से विमुख कर देते हैं, जो सुख-शांति के विकास के लिए अनिवार्य है।

एक सर्वेक्षण में एक हजार वृद्ध व्यक्तियों से यह पूछा गया कि उनके जीवन में कौन सा समय अत्यंत सुख-शांति का रहा है? इसके बारे में अधिकतर लोगों का उत्तर था कि पच्चीस वर्ष से लेकर पैंतीस वर्ष का समय उनके लिए सबसे ज्यादा सुख और शांति का समय रहा है। इस सर्वेक्षण का नतीजा जब इस उम्र के युवकों को बताया गया तो वे इससे आश्चर्यचकित और निराश हुए। यथार्थ में इन वर्षों का घटनाचक्र इतनी तेजी से चलता है कि इसमें आत्मनिरीक्षण को कौन कहे, सामने खिले हुए फूलों को सूँघने का भी समय नहीं होता। ये लोग शिकवा और शिकायत को साथ में लिये हुए हँसते और मुसकराते हुए चलते हैं; परंतु अंदर में खालीपन का अहसास ही होता है। ये लोग खूब खेलते हैं, कूदते हैं, काम करते हैं; लेकिन यदि किसी चीज की प्रतीक्षा रहती है तो वह होती है सुख-शांति की।

सुख-शांति को पहचानने में भूल नहीं हो सकती। जो लोग ऐसा सोचते हैं कि क्या वे सुख-शांति से हैं, वे लोग निश्चय ही सुख-शांति से नहीं हैं। एक लेखिका ने यही बात समझाने के लिए इसकी तुलना प्रसव पीड़ा से किया है। जब एक गर्भवती महिला के दिन पूरे हो जाते हैं, उसके बाद जब भी उसके पेट में किसी तरह की हलचल या चुभन होती है तो वह समझती है कि शायद यह प्रसव पीड़ा है। परंतु जब यथार्थ की प्रसव पीड़ा प्रारंभ होती है तो उसे संदेह की कोई संभावना नहीं रह जाती।

कुछ साल पहले एक रेडियो स्टेशन ने अपने सुननेवालों से कहा कि वे अपने एक पत्र द्वारा इस स्टेशन को लिखें कि यदि वे सुखी हैं तो किन कारणों से और यदि दुःखी हैं तो किन कारणों से? इसके फलस्वरूप उनके पास हजारों पत्र आए, जिसमें श्रोताओं ने अपने दुःख या सुख का कारण लिखकर भेजा। इसमें सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि कुछ लोगों ने जिन परिस्थितियों के कारण अपने को सुखी पाया ठीक उन्हीं परिस्थितियों में अन्य लोगों ने अपने को दुःखी पाया; जैसे—अकेलापन, अपंगता, गरीबी इत्यादि।

धूप में पत्थर तोड़ रहे एक मजदूर ने अपने इस दुःखी जीवन का

कारण गरीबी को रोता रहा। वहीं पर दूसरे मजदूर ने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि इस काम से वह अच्छे पैसे कमा रहा है और जो गिट्टी वह तोड़ रहा है उससे भगवान् का एक मंदिर बनेगा। इस कारण वह बड़ा आनंद का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार एक विकलांग बालक का पालन-पोषण करने से एक दंपती अत्यंत दुःखी था तो दूसरे दंपती ने लिखा कि एक विकलांग बालक का पालन-पोषण करने से उनको बड़ा आत्मसंतोष मिला और इससे उन लोगों ने बहुत कुछ सीखा भी। ये सारी चीजें उनके सुख का कारण हैं।

एक दार्शनिक ने उदाहरण दिया है कि सुख और शांति एक तितली की भाँति हैं। यदि आप तितली को दौड़कर पकड़ना चाहेंगे तो वह आपसे दूर भागेगी, परंतु यदि आप उसके पास शांत होकर बैठ जाएँ तो वह तितली आपके शरीर पर आकर बैठ जाएगी। ग्रीक देश के दार्शनिक अरस्तू का मत है कि सुख-शांति ही जीवन का उद्देश्य है। इसकी प्राप्ति तभी संभव है, जब जीवन तर्क के सहारे चलता है। उसीका समकालीन दार्शनिक प्लेटो इससे सहमत नहीं था। उसका मत था कि सच्चा सुख मस्तिष्क का भ्रम दूर होने से और भय की मुक्ति होने पर ही मिलता है।

दार्शनिकों के एक दल ने अपनी राय जाहिर की है कि केवल सद्गुणी व्यक्ति ही सुखी होते हैं; परंतु इसके अपवाद भी देखने को मिलते हैं। कुछ अन्य दार्शनिकों की बात तो आप भूल ही जाएँ तो अच्छा है, क्योंकि इन लोगों का मत है कि आज तक कोई भी व्यक्ति मरने के पहले सुख-शांति को नहीं प्राप्त कर पाया है।

एक दार्शनिक का कहना है कि सुख सक्रिय नैतिक आचरण से आता है। डिजराइली का मत है कि सुख का आधार अच्छा स्वास्थ्य है। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ का मत है कि सुख कार्य करने में है। उनका कहना है कि काम इतना किया जाए कि शरीर थककर चूर हो जाए। भगवान् बुद्ध और कई अन्य दार्शनिकों का मत है कि सुख को शांति से अलग नहीं किया जा सकता। भगवान् बुद्ध अपने भजन में गाते हैं—जब हम चिंताग्रस्त लोगों के बीच चिंतामुक्त होकर रहते हैं, वही सुख है।

मनोवैज्ञानिक सुख-शांति के अध्ययन में अनिच्छुक और सुस्त हैं। शायद वे इस मनोभाव को लज्जा और अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। अन्य मनोभाव जैसे चिंता, अपराध और पूर्वग्रह की तुलना में इसे तुच्छ समझते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों को इस बात का संदेह है कि सुख-शांति जैसी कोई चीज है भी।

जब लोगों से यह पूछा जाता है कि वे लोग सुखी हैं या नहीं, तब इसके उत्तर की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है; क्योंकि आदमी का अभिमान यहाँ पर आड़े आ जाता है। जैसेकि यदि एक व्यक्ति, जो आत्महत्या करने जा रहा हो और रास्ते में कोई अनजान व्यक्ति उससे पूछे कि कैसे हो? इसके उत्तर में वह यही कहेगा कि मैं बहुत आनंदपूर्वक हूँ।

गरीबी, सामाजिक अलगाव, नीरसता, ऊब और सीमित विकल्प से सुखी होने की संभावना घट जाती है। यह सुनकर शायद किसीको आश्चर्य नहीं होगा। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि सुख-शांति अखंड रूप से बनी रहती है। यह खंडित भी होती रहती है। इसके बीच-बीच में कष्ट का समय भी आ सकता है, जिसमें बीमारी, चिंता व प्रियजनों का विछोह भी हो सकता है। परंतु सुख-शांतिवाला व्यक्ति जल्दी ही इससे निकलकर बाहर आ जाता है।

एक सर्वेक्षण में यह तथ्य सामने आया कि जो स्त्रियाँ घर से बाहर जाकर नौकरी करती हैं और घर में भी बाल-बच्चों का ध्यान रखते हुए घर का काम निपटाती हैं, वे ज्यादा सुख का अनुभव करती हैं। कुछ सर्वेक्षणों से यह परिणाम निकला कि जो लोग युवावस्था में ज्यादा व्यस्त रहे हैं उनका बुढ़ापा भी सुख से बीतता है।

बर्टेंड रसेल ने नब्बे वर्ष की उम्र में कहा था कि प्रति वर्ष उनकी सुख-शांति में बढ़ोतरी होती है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि तीन चीजों ने मेरे जीवन को दिशा और सुख दिया है और वे चीजें हैं प्यार की चाह, ज्ञान की भूख और मानव समाज के कष्टों के समाधान की खोज।

एक कवि ने लिखा है कि 'मुझे सुखी जीवन के लिए एक छोटी झोंपड़ी, बढ़िया पलंग, स्वादिष्ट भोजन, खिड़की के पास कुछ फूल के गमले और घर के सामने एक बड़ा बरगद का छायादार पेड़ चाहिए। यदि परम पिता परमेश्वर मुझे और भी सुखी बनाना चाहें तो एक दिन सुबह जब मैं सोकर उठूँ तो देखूँ कि बरगद की डाल से मेरे दो या तीन दुश्मन अपनी गरदन रस्सी में बाँधकर लटक रहे हों।'

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि 'सुखी लोग सुखी रहने के कारण व्यस्त रहते हैं। ये लोग प्रसन्नता एवं आत्मविश्वास से परिपूर्ण होते हैं और अन्य लोगों की भावनाओं के प्रति सचेत रहते हैं। इसलिए समाज में ऐसे लोगों की प्रतिष्ठा और माँग होती है।' एक मनोवैज्ञानिक पत्रिका ने एक प्रश्नावली छापकर सुख के बारे में पाठकों की राय माँगी। इसका परिणाम यह था कि ज्यादा आमदनीवाले लोग कम आमदनीवाले लोगों की तुलना में ज्यादा सुखी थे। नौकरी करनेवाली स्त्रियाँ केवल घर में काम करनेवाली स्त्रियों की तुलना में ज्यादा सुखी थीं। अविवाहित महिलाएँ अविवाहित पुरुषों से ज्यादा सुखी थीं। शादीशुदा पुरुष अविवाहित पुरुषों से ज्यादा सुखी थे। नास्तिक उतने ही सुखी थे जितने आस्तिक।

कुछ लोग जिंदगी में सुख का पैबंद लगाना चाहते हैं, जैसे समुद्र के किनारे बैठना, बागवानी करना, बाँसुरी बजाना इत्यादि। ऐसा करने से उन्हें कुछ समय के लिए सुख जरूर मिल जाता है; परंतु यथार्थ सुख के लिए और चिर आनंद के लिए अंतर्दृष्टि का विकास, सार्थकता एवं आत्मसंयम आवश्यक है।

एक इतिहासकार ने ज्ञान से सुख प्राप्त करने का प्रयास किया, परंतु उसे असफलता ही हाथ लगी। फिर उसने यात्रा में आनंद प्राप्त करने का प्रयास किया, परंतु इससे उसको थकान ही मिली। धन में सुख प्राप्त करने के बदले उसको कलह और चिंता ही हाथ लगी। फिर उसने लिखने में

सुख पाने का प्रयास किया; परंतु उसको इससे भी थकान ही मिली।

एक दिन उसने एक स्त्री को मोटरगाड़ी में एक सोए बच्चे को लेकर बैठे देखा। कुछ समय के बाद एक पुरुष रेलगाड़ी से उतरकर आया और धीरे से पहले स्त्री का तथा फिर सोए हुए बच्चे का चुंबन लिया और फिर उसी गाड़ी में बैठकर चलता बना। जब गाड़ी आगे बढ़ी तो वह इतिहासकार सुख की इस पूरी प्रक्रिया को देखकर ठगा सा रह गया। इसके बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जीवन की हर छोटी-छोटी क्रियाओं में ही सुख मौजूद है।

एक महिला अचानक छत्तीस वर्ष की अवस्था में बिना किसी बाहरी परिवर्तन के एक सुखी व्यक्ति हो गई, जिसको मनोवैज्ञानिकों ने 'दिव्य अनुभूति', 'चरम अनुभूति' कहा। उसके फलस्वरूप उसकी प्रत्येक इंद्रियाँ चैतन्य हो गईं, घास की प्रत्येक पत्तियाँ उसको अलग-अलग दिखलाई पड़ने लगीं, बरसात की हर एक बूँद और बुलबुले उसको एक असीम आनंद देने लगे और उसको इस बात से प्रसन्नता हो रही थी कि वह इन चीजों को देखने के लिए जिंदा है।

मनोवैज्ञानिकों ने इस चरम अनुभूति या दिव्य अनुभूति के बारे में कहा है कि यह घटना एक फुहारा छूटने जैसी क्रिया है, जिससे उस व्यक्ति की पूरी ऊर्जा एक आनंददायक रूप में प्रकट हो जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति ज्यादा संगठित, ज्यादा रचनात्मक, ज्यादा विनोदप्रिय, कर्तव्यपरायण एवं पूर्ण हो जाता है। यह एक उल्लासपूर्ण अवस्था है। यह कहाँ से आती है, इसका पता नहीं। यह चरम दिव्य अनुभूति व्यक्ति की अपने बारे में राय भी बदल देती है। जिंदगी अधिक सार्थक लगने लगती है। व्यक्ति अपने को और योग्य समझने लगता है।

किसीने सुखी होने के लिए नुस्खा दिया है कि आप अपनी उपलब्धियों और वरदानों को गिनें। यह देखने में आया है कि ऐसा करने से इन दु:खी लोगों का दु:ख निश्चित रूप से कुछ कम हो जाता है। मनुष्य को दु:ख से सुख की ओर मुड़ने के लिए उसे रुकना होगा, रुककर अपनी उपलब्धियों और वरदानों को देखना होगा। इसके पश्चात् अपनी सोच बदल करके सुख की ओर मुड़ना होगा।

यह भी किसीने ठीक ही कहा है कि किसीका भी जीवन किसी दूसरे के जीवन से बहुत प्रभावित नहीं हो सकता; क्योंकि अंत में सभी अकेले ही रह जाते हैं। जिस सुख में आदमी रहता है उस सुख का निर्माण उसी व्यक्ति के दृष्टिकोण से होता है। मनुष्य के अंदर जो कुछ भी है, उसके सुख का वही आधार है।

एक लेखक ने लिखा है कि 'सुख अभ्यास से आता है।' अभ्यास का यहाँ मतलब है कि जब आप किसी चीज को देखें तो उसकी सुंदरता, भव्यता एवं विशालता को ध्यानपूर्वक देखें और उसपर मनन करें। यह अभ्यास की क्रिया पहले छोटी-छोटी चीजों पर शुरू करें, जैसे खिले हुए फूल और समुद्र की सीपियों को अत्यंत सूक्ष्म दृष्टिकोण से देखें और उनकी सुंदरता को परखकर उनका आनंद उठाएँ। इसके अलावा खेल में एकाग्रचित्त बालक, आसमान में उड़ते बादल, हरे-भरे खेतों में हवा से लहराते पौधे, संध्या वेला की सुनहरी किरणें, जो संसार को सुनहरा कर देती हैं—इनका अवलोकन करके इनकी सुंदरता और भव्यता का आनंद उठाएँ। महान् वैज्ञानिक एल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था, 'मुझे यह संसार इतना भव्य और सुंदर दिखता है कि मैं इसको देखकर भाव-विभोर हो जाता हूँ।'

पैंतालीस साल की एक माँ ने एक समाचार-पत्र में लिखा है कि 'मैं सुखी हूँ। सुबह मैं आशा के साथ सोकर उठती हूँ। मेरी अधिकतर गलतियाँ बीती बातें हो गई होती हैं। मैं अपना बहुमूल्य समय उनके पछतावे पर नहीं बरबाद करती। मैं फिर से सुंदर नहीं हो सकती, धनी नहीं हो सकती, भविष्य में फैशनेबल समाज की सदस्या नहीं हो सकती; परंतु मैंने कुछ ऐसे सत्कार्य किए हैं कि लोग उन्हें याद करेंगे। बच्चों को पाला है, सूरज को उगते और तारों को ढलते देखा है। अब मैं उस अवस्था को पहुँच गई हूँ जहाँ मैं स्वयं की खोज कर सकूँगी।'

मनोवैज्ञानिक मासलोव का मत है कि 'यदि मनुष्य के स्वभाव को निर्विघ्न छोड़ दिया जाए तो वह उन्नति ही करता है। उसका मानना है कि मनुष्य के स्वभाव की निर्विघ्न यात्रा की कुछ बुनियादी आवश्यकताएँ होती हैं, जिनकी पूर्ति आवश्यक होती है। जैसे भूख और प्यास, तत्पश्चात् उसे चाहिए एक भयविहीन वातावरण, इसके पश्चात् आवश्यकता होती है प्यार और चाह की। इसके बाद आता है व्यक्ति का आत्मसम्मान, और सर्वोपरि होती है वह बनने की आकांक्षा, जो व्यक्ति बनना चाहता है।'

कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि 'मनुष्यों में दो प्रकार की अभिलाषाएँ होती हैं—एक होती है साधारण कोटि की अभिलाषा, जो जीवन में संतोष देती है और दूसरी होती है उच्च कोटि की अभिलाषा, जिससे निर्माण, उत्पादन, रचना एवं आंतरिक विकास होता है। साधारण कोटि की अभिलाषा की पूर्ति से व्यक्ति को तनाव से मुक्ति मिलती है और उच्च कोटि की अभिलाषा की पूर्ति से भाव समाधि एवं शांति मिलती है।'

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि 'स्थायी सुख संभव नहीं है। हमें यह प्रयास करना चाहिए कि दु:ख के झटकों से निकलकर हम पुन: सुख की बगिया में आ जाएँ। जिसके अंदर यह क्षमता आ जाती है उसे हम एक पूर्ण सुविकसित व्यक्ति की संज्ञा देते हैं।'

प्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ सुख के बारे में कहते हैं कि 'संपूर्ण सुखी जीवन! कोई भी जिंदा व्यक्ति इसको सह नहीं सकता। ऐसा जीवन पृथ्वी पर ही नरक हो जाएगा।' आचार्य रजनीश का मत है कि 'भगवान् ने प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आधा सुख और आधा दु:ख आवंटित कर रखा है।'

□

२९, गांधी नगर,
सिगरा, वाराणसी
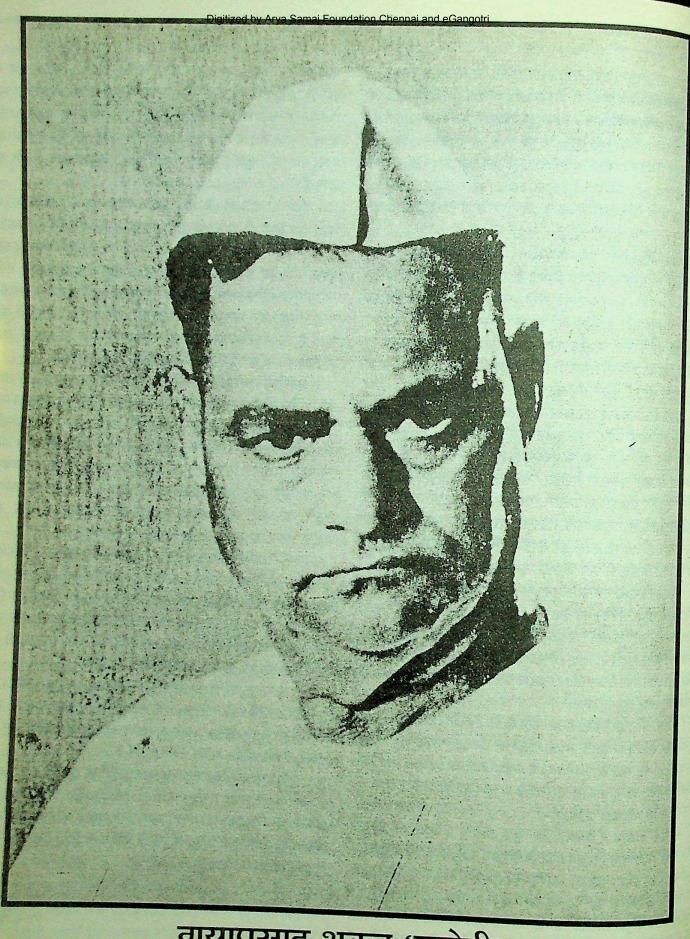
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : हिंदी की तान

कुमुद शर्मा

साहित्य जगत् में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का पदार्पण आधुनिक हिंदी के निर्माण काल में उस समय हुआ जब ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली का विवाद चल रहा था। खड़ीबोली हिंदी को काव्य भाषा के रूप में स्वीकृत करने के लिए आंदोलन चलाए जा रहे थे। खड़ीबोली हिंदी काव्य केवल आकार ही ग्रहण नहीं कर रहा था बल्कि उसे काव्यात्मक गरिमा से मंडित करने का अनुष्ठान भी प्रारंभ हो चुका था। गद्य के विकास की कई सरणियाँ उजागर हो रही थीं। हिंदी के प्रमाणीकरण की चिंता भी जोर पकड़ रही थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी का परिष्कृत, परिमार्जित और व्यवस्थित स्वरूप गढ़ रहे थे। इस वातावरण में सनेहीजी ने खड़ीबोली हिंदी काव्य भाषा का परिष्कार ही नहीं किया बल्कि कवि सम्मेलनों के प्रतिष्ठापक बनकर उन्होंने हिंदी काव्य को जन-जन तक पहुँचाने का काम किया, खड़ीबोली हिंदी छंद काव्यधारा का नेतृत्व किया। उन्होंने खड़ीबोली में ब्रजभाषा समान घनाक्षरी, सवैया छंदों में माधुर्य व वाग्वैदग्ध्यपूर्ण रचना करके खड़ीबोली की सामर्थ्य को प्रमाणित कर दिया।

कविता के संदर्भ में सनेहीजी

सागर-मंथन से निकला,
अमी पी गए देव न बूँद बचा बस।
वासुकी वास पताल में है,
सुधा-धाम शशांक को चाट गए शश।
जीवनदायक कोई नहीं,
यहाँ खोज के देखिए आप दिशा दस।
है तो यही कविता रस है,
नहीं और कहाँ बसुधा में सुधारस।

कविता में राष्ट्रीय भावों की गुहार लगानेवाले गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का जन्म २१ अगस्त, १८८३ को उन्नाव जिले के हड़हा गाँव में हुआ और निधन २० मई, १९७२ को हुआ। हिंदी-उर्दू के साथ उन्होंने मिडिल स्कूल तक की शिक्षा ग्रहण की। अपनी प्रतिभा-संपन्नता के साथ मात्र सोलह वर्ष की आयु में ही वे मिडिल स्कूल में अध्यापक हो गए। साहित्य-प्रेमियों ने उन्हें सर्जनात्मक की ओर प्रेरित किया। उनकी विलक्षण काव्य प्रतिभा के संबंध में एक उदाहरण याद किया जाता है। उनके स्कूल की मरम्मत के लिए एक ओवरसियर आया, जो कविता में रुचि रखता था। उसने सनेहीजी की मेज पर उर्दू का छंद शास्त्र देखकर पूछा, 'इसे कौन पढ़ता है ?' सनेहीजी ने कहा, 'मैं ही पढ़ता हूँ।' सच्चाई परखने के लिए उसने उर्दू की कविता की एक पंक्ति सुनाकर उसका वजन बताने को कहा। सनेहीजी ने कहा कि 'कोई मिसरा दीजिए तो गिरह लगाऊँ।' ओवरसियर ने मिसरा दिया, 'लब पै जिसके शुक्र है और हलक पर तलवार है।' सनेहीजी ने गिरह लगाई, 'किस क़दर मुश्ताक़ तेरा तालिबे दीदार है।' सनेहीजी का साहित्यिक जीवन उर्दू रचनाओं से प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में वे 'त्रिशूल' उपनाम से उर्दू में रचनाएँ किया करते थे।

सन् १९०४-५ के आस-पास सनेहीजी की काव्य प्रतिभा चर्चा में आने लगी थी। 'रसिक मित्र' में उनकी पहली कविता प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त 'रसिक रहस्य', 'काव्य सुधानिधि', 'साहित्य सरोवर' आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। सन् १९१३ में 'प्रताप' में प्रकाशित उनकी 'कृषक क्रंदन' कविता अत्यंत प्रसिद्ध हुई, जिसे पढ़कर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'सरस्वती' में नियमित रूप से लिखने का निमंत्रण दिया। 'तरंगी', 'अलमस्त', 'लहर-लहरपुरी' इत्यादि उपनामों से भी सनेहीजी ने हास्य-व्यंग्य कविताएँ लिखीं।

सनेहीजी की प्रकाशित काव्य पुस्तकें इस प्रकार हैं—'प्रेम पचीसी', 'गप्पाष्टक', 'कुसुमांजलि', 'कृषक-क्रंदन', 'त्रिशूल तरंग', 'राष्ट्रीय मंत्र', 'संजीवनी', 'राष्ट्रीय वीणा', 'कलामे-त्रिशूल', 'करुणा कादंबिनी', 'सनेही रचनावली'। सनेहीजी ने दैनिक पत्रकारिता की ओर भी अपना रुख किया। कानपुर से जब दैनिक 'वर्तमान' का प्रकाशन हुआ तो वे इससे संबद्ध हो गए। इस पत्र के उद्देश्य वाक्य के रूप में जीवन भर सनेहीजी की ये पंक्तियाँ प्रकाशित होती रहीं—'शानदार था भूत भविष्यत् भी महान् है/अगर सम्हालें आप उसे जो वर्तमान है।'

दैनिक पत्रकारिता में मस्त कवि मन रम नहीं सका। अपनी रुचि के अनुकूल उन्होंने १९२८ में 'सुकवि' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्रिका ने राष्ट्रीय आंदोलन को तीव्रता और गति प्रदान करते हुए ऐसे कवियों की फौज तैयार की जिन्होंने बंदूक की जगह कलम के जरिए स्वाधीनता आंदोलन की लड़ाई में अपनी कारगर भूमिका निभाई। काव्य के क्षेत्र में खड़ीबोली की प्रतिष्ठापना के साथ-साथ काव्यगत संपन्नता के लिए भी सनेहीजी ने नई दिशाओं का अन्वेषण किया। उनकी पत्रिका ने केवल खड़ीबोली हिंदी कविता की समृद्धि की ही चिंता नहीं की बल्कि ब्रजभाषा की पारंपरिक शैली को भी नए कलेवर में ढाला। इस पत्रिका में प्रकाशित समस्यापूर्तियों ने भी सामयिक और राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत् करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। तत्कालीन कवियों की कलात्मक संवेदना को 'सुकवि' के माध्यम से प्रोत्साहन और निखार मिला। सनेहीजी के आचार्यत्व को लोगों ने सहजभाव से स्वीकारा। हिंदी में कवियों का एक सनेही मंडल स्थापित हो गया, जो कानपुर से लेकर दूर-दूर तक फैला। सनेहीजी तथा उनका मंडल राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद लेकर उपस्थित हुआ। उन्होंने आधुनिक हिंदी कविता में 'हालावाद' के विरुद्ध 'विजयावाद' का आंदोलन चलाया।

सनेहीजी के काव्य में एक ओर प्रेम, शृंगार और करुणा की धारा प्रवाहित हुई तो दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना की धारा। इन दो धाराओं में वे 'सनेही' और 'त्रिशूल' दो रूपों में सामने आए। कोमल मन, शांत चित्त और अनुशासित 'सनेही' कवि व्यक्तित्व ने 'त्रिशूल' बनकर सामयिक स्थितियों और राष्ट्रीय समस्याओं को चुनौती दी। सरकारी नौकरी के कारण उन्होंने राष्ट्रीय कविताएँ उर्दू का रंग चढ़ाकर 'त्रिशूल' उपनाम से लिखनी शुरू कर दीं। राष्ट्र भावों की ओजस्विता उन्हें लोकप्रिय बनाती गई। लेकिन 'सनेही' ही 'त्रिशूल' हैं, यह रहस्य लंबे समय तक बना रहा। सनेहीजी हिंदी में स्वाधीनता अभियान के प्रवक्ता बनकर उभरे। उनकी समूची कविता यात्रा राष्ट्रीय चेतना की विकास यात्रा के साथ जुड़ी हुई है। उन्होंने स्वाधीनता के आंदोलन के संघर्ष को, उसके कार्यक्रम को उजागर करते हुए बलिदानमयी चेतना को जाग्रत् किया। आर्थिक विषमता, अस्पृश्यता, भाषा की समस्या आदि समस्याओं पर भी उनकी दृष्टि गई।

सनेहीजी मूलत: जनता के कवि थे। मुहावरों से युक्त बोलचाल की सहज और जीवंत भाषा के माध्यम से उनकी कविताएँ बिना किसी अवरोध के पाठकों के मन तक पहुँचती रहीं। उन्हें समझने में किसी कोश अथवा पंडित की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। सनेहीजी ने स्वयं कहा है, 'जिसे न सब समझें, कुछ ही समझें/बनी हुई ठगों की बोली/ तुम्हीं बताओ 'सनेही' ऐसी/ जुबान हम ले के क्या करेंगे।'

खड़ीबोली हिंदी की शक्ति को प्रतिष्ठापित कर, कविता के लिए नया वातावरण रचकर, हिंदी छंद काव्यधारा को सशक्त बनाकर, काव्य क्षेत्र में राष्ट्रीय और सामयिक भावनाओं का प्रसार कर, कवि सम्मेलनों के माध्यम से कविता को जनता के बीच लोकप्रिय बनाकर सनेहीजी ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया उसके लिए वे हमेशा याद किए जाएँगे। □

एफ-९ जी, मुनीरका, डी.डी.ए. फ्लैट, नई दिल्ली-११००६७

भारत में दान-चंदा

गोपाल चतुर्वेदी

यह खुफिया जानकारी, जो बहुत दिनों हड़प्पा-मोहनजोदड़ो की तरह गुम रही, अब शोधकर्ताओं के परिश्रम और लगन से उजागर हो रही है। दूसरे देशों का पता नहीं, पर भारत-विशाल सरकार, उधार और कार वगैरह-वगैरह में कभी-कभार इधर-उधर सरक भले जाता हो, चलता वह केवल दान-चंदे से है। जब से मुरारी ने हमें यह ज्ञान दिया है, हम फूले नहीं समा रहे हैं। अपना सीना गर्व से चौड़ा हो गया है। अपना झुका सिर ऊँचा उठ गया है। कभी नजरें सिर्फ सड़क के गड्ढे देखती थीं, अब सामने का क्षितिज निहारती हैं। अपनी आस्था अखबार, टी.वी. और रेडियो के समाचार से जाती रही है। आठ-दस वर्षों से लगातार ये देश में भ्रष्टाचार का भ्रम फैला रहे हैं। इनकी वजह से पूरे मुल्क में संत्रास, संशय और दोषदर्शिता का वातावरण बना है। भूले-भटके कोई सियासत-वजारत और तिजारत से संपर्क में आए तो उसे धाँधली का शक होता है। सरकार के हर पीपल में उसे भ्रष्टाचार का भूत नजर आता है।

मुरारी ने अपने निजी अनुभव के आधार पर हमें विश्वास दिलाया है कि भूत की तरह भ्रष्टाचार सिर्फ अंधविश्वास है, सच नहीं है। मुरारी देश के उन भाग्यशालियों में से एक हैं, जिनके सिर को शहर के विकास प्राधिकरण की छत मिलने की खासी संभावना है। निर्धारित किश्तों में से वह सबका भुगतान कर चुके हैं। नियमित रूप से वह प्राधिकरण का चक्कर काट आते हैं, जैसे कोई हनुमानजी का भक्त हर मंगल को बजरंगबली के दर्शन को जाए। गाहे-बगाहे वह अपने स्वप्न-नगर की सैर भी करते हैं, जहाँ सैकड़ों घर निर्माण के विभिन्न चरणों में हैं। कहीं नींव खोदी जा रही है, कुछ पर छत पड़ चुकी है, कई पूरी तरह बन चुके हैं और कई तैयार होकर गिर गए हैं। मुरारी सारे घरों को हसरत की नजर से देखते हैं। इनमें से दो कमरे का एक महल उनका है। लॉटरी के अनुसार एक बहुमंजिली इमारत के पहले फ्लोर पर उनका पैलेस स्थित है। बस उन्हें उसके स्वामित्व के पत्र की प्रतीक्षा है।

जब मुरारी को पता लगा कि बिहारी पत्र ले आए हैं तो उनके दिल में तहलका मचा। कहीं उनका पत्र कोई दूसरा मुरारी तो नहीं ले गया। उन्हें बनवारी ने बताया था कि विकास प्राधिकरण में सब संभव है। वह प्राधिकरण की ओर दौड़े। संबद्ध अफसर के कमरे के बाहर एक लंबी कतार थी। मुरारी तय नहीं कर पाए कि ट्रेन के टिकट का काउंटर, सरकारी अस्पताल, रोजगार के दफ्तर या राशन की दुकान की भीड़ में ज्यादा मजा आता है या विकास प्राधिकरण का 'क्यू' अधिक मजेदार है। वह कतार में लगकर विचार करने लगे। उन्होंने अस्पताल को पहली बार में ही खारिज कर दिया। अगर कोई बीमार स्वयं 'क्यू' में है तो उसे मजा आने का क्या सवाल है। अगर किसी मरीज का रिश्तेदार कतार में खड़ा है तो उसे रोगी की दशा का तनाव होगा। यों अपने दो कदमों से आकर दूसरों के कंधों पर लद के जाने की सरकारी चिकित्सा की ख्याति के भार से अच्छे-से-अच्छा हँसमुख आदमी भी गंभीर हो जाता है। टिकट मिलना तो रेल की सुखद यात्रा की एक बेहद प्रारंभिक शुरुआत है। उसके बाद आरक्षण, डिब्बे में प्रवेश का रण, बर्थ किसी और द्वारा हथियाए जाने का संकट-क्षण, दुर्घटना की आशंका, सामान गायब होने की शंका जैसे सुख-दुःख के अनेक अध्याय शेष हैं। राशन की भीड़ उसका नंबर आने तक चीनी खत्म होने जैसे खतरे से सशंकित रहती है। रोजगार के दफ्तर का 'क्यू' नौकरी की आशा और न मिलने की निराशा से कुछ ऐसा पीड़ित है कि मुसकराना भूल गया है। बेरोजगारी उनके चेहरों पर दाढ़ी की तरह उग आई है। यह दाढ़ी तरतीब से सजे बालों की बुद्धिजीवी दाढ़ी नहीं है, बल्कि पथरीली जमीन में उगे कैक्टस के काँटे हैं। उनकी तुलना में अफसर के कमरे के सामने की भीड़ काफी प्रसन्न और उल्लासमय थी। ज्यादातर लोग अपनी जेब पकड़े खड़े थे, जैसे उन्हें डर हो कि वे जेबकतरों के अड्डे पर आ गए हैं। चपरासी साहब के दर्शनार्थ नामों को ऐसे पुकार रहा था जैसे कोर्ट के कहानी-किस्सों में 'परलोकी प्रसाद हाजिर हों' की हाँक लग रही हो।

इतने में एक अनजान हाथ ने पीछे से उनका कंधा दबाया। वह चौंके। उन्होंने कुछ गुस्से से ऐसी नागवार हरकत करनेवाले को मुड़कर घूरा।

एक अत्यंत निरीह से व्यक्ति ने विनीत मुद्रा में उनसे निवेदन किया, 'जरा सुनिए!'

मुरारी ने उत्तर दिया, 'सुनाइए।'

> 'आपका गुस्सा जायज है; पर रामदीन की माँग भी न्यायोचित है। आपकी आखिरी किश्त 'लिंक' नहीं हुई है। इसमें तीन-चार अनुभाग आपसी तालमेल से– तीन-चार दिन की मेहनत के बाद– आपकी फ़ाइल फिर से बनाएँगे, चालीस हजार के भुगतान की देरी से लगा ब्याज माफ करवाएँगे। अधिकारी को रियायत करने के लिए पटाएँगे, तब जाकर बात बनेगी। इसे घूस कहना पाप है। यह तो मेहनत का मुआवजा है।'

'आप फ्लैट पर कब्जे की चिट्ठी लेने आए हैं?'

मुरारी ने प्रश्न किया, 'आपको कैसे पता कि हम यहाँ क्यों आए हैं?'

'रोज चिट्ठी चाहनेवालों का 'क्यू' लगता है यहाँ। यह कोई नेहरू वन, इंदिरा बगिया, संजय पार्क या राजीव गार्डन तो है नहीं कि लोग सैर-सपाटे के लिए टहलते हुए चले आएँ।'

'आपने ठीक अंदाज लगाया। हम भी कब्जे की चिट्ठी के मुंतजिर हैं। पर इससे आपको क्या लेना-देना?'

'हम महेंद्र मोहन 'मददगार' हैं। 'मददगार' हमारा तखल्लुस है। जब तक हम आठ-दस की मदद न कर लें, हमारा दिन नहीं कटता है।'

'पर आप फिजूल में मदद क्यों करना चाहते हैं?'

'अपना-अपना स्वभाव है। कुछ लोग दुनिया में सिर्फ दूसरों की सहायता के लिए पैदा होते हैं। बुद्ध, महावीर, गांधी जैसे महामानवों ने इनसानियत की कितना सेवा की। उनके सामने तो हम भुनगे भी नहीं हैं। किसी सज्जन पुरुष की मदद न करो तो अपना पेट पिराता है, भूख नहीं लगती है; साँस चलती तो है, पर रुक-रुक के चलती है जैसे अब रुकी, तब रुकी। मदद करना अपनी मजबूरी है।'

अंधा क्या चाहे, दो आँखें। मुरारी जैसे शक्की को भी लगा कि आधा दिन यहाँ काटने से बेहतर है कि मददगार की मदद ले ही लें। भुक्तभोगियों ने मुरारी को बताया था कि सारे रुपए जमा करने के बाद भी लोगों का अधिकतर जीवन विकास प्राधिकरण से फ्लैट के स्वामित्व का पत्र पाने के चक्कर में गुजर जाता है। हजारों के भेंट-चढ़ावे के बाद कभी चिट्ठी मिलती है, कभी वह भी नहीं मिलती है। रामजी ने बड़ी कृपा की कि मददगार को भेज दिया। वह मददगारजी के पीछे हो लिये। वह मुरारी को एक कोने में ले गए। वहाँ एक बड़ा बोर्ड लगा था, 'कृपया घूस न दें। घूस लेना और देना दोनों अपराध हैं। बिचौलियों से सावधान।' मुरारी और मददगार उसके नीचे पड़ी बेंच पर स्थापित हो लिये।

मददगार ने मुरारी का पूरा 'केस' सुना। अपनी ठुड्डी पर हाथ रख और शून्य को निहारकर उसपर मनन किया और बोले, 'आपकी फाइल तो बाबू रामदीन 'डील' करते हैं। चलिए, उनसे आपको मिलवा दें।'

यह प्रकृति का नियम है कि विकास प्राधिकरण जैसी सदाचारी संस्थाओं के सामने एक मंदिर जरूर होता है। सरकारी जमीन को घेरे एक छोटे से राम-सीता के अस्थायी मंदिर के पास एक चाय-पकौड़ी के ठेले से पकौड़ी खरीदते रामदीन बरामद हुए। मददगार ने उनकी एक पकौड़ी अपने मुँह में रखते मुरारी से उन्हें मिलवाया, समस्या बताई और पत्र जल्दी जारी करवाने की प्रार्थना की। रामदीन चुपचाप अपने पकौड़ी हनन और चाय सुड़कने के अभियान में लगे रहे। इस बीच मददगार ने मुरारी को एक प्लेट पकौड़ी से उपकृत किया। मुरारी ने उनका आभार माना। अगर सरकार में भी सब ऐसे ही मददगार हों तो देश कितनी तरक्की कर जाए। चाय-भजिया को ठिकाने लगा यह त्रयी विकास प्राधिकरण के प्रांगण में पहुँची। रामदीन मुरारी का केस पता करने हेतु गायब हो गए। मुरारी और मददगार 'घूस' के बोर्ड के नीचेवाली बेंच पर फिर जम लिये। आध घंटे बाद रामदीन ने दूर से इशारा किया। मददगार उनकी ओर लपके। वह लौटे तो उनका मुँह लटका हुआ था। रामदीन ने बताया कि मकान की चालीस हजार की किश्तें रिकॉर्ड में जमा नहीं हैं। उसके बगैर तो चिट्ठी मिलना नामुमकिन है।

'पर हमारे पास तो जमा करने की रसीद है।'

'लाइए, कहाँ है?'

'घर पर है। हम कल ला सकते हैं।'

मामला कल पर टला। तय हुआ कि ग्यारह बजे इसी घूस के बोर्ड के नीचेवाले पावन स्थल पर मददगार मुरारी का इंतजार करेंगे। पहले दिन की प्रक्रिया दूसरे दिन भी दोहराई गई। रामदीन इस बार चाय-पकौड़ी की जगह शीतल पेय पी-पिला रहे थे। उन्होंने रसीद की तीन फोटो कॉपी करवाई और फिर अंतर्धान हो गए। उनके बाहर आकर इशारा करने में इस बार घंटा लगा।

मददगार फिर मुँह लटकाए लौटे। उन्होंने दुःखी स्वर में मुरारी को सूचित किया, 'आपका काम तो हो जाएगा, पर खर्चे-पानी का दस हजार देना होगा।'

'जब रसीद का सबूत है तो फिर यह खर्चे-पानी की माँग कैसी? यह तो सरासर बेईमानी है। घूस माँगते रामदीन को शर्म नहीं आती है!' मुरारी का पारा चढ़ने लगा।

मददगार मुसकराते रहे, 'आपका गुस्सा जायज है; पर रामदीन की

माँग भी न्यायोचित है। आपकी आखिरी किश्त 'लिंक' नहीं हुई है। इसमें तीन-चार अनुभाग आपसी तालमेल से—तीन-चार दिन की मेहनत के बाद—आपकी फाइल फिर से बनाएँगे, चालीस हजार के भुगतान की देरी से लगा ब्याज माफ करवाएँगे। अधिकारी को रियायत करने के लिए पटाएँगे, तब जाकर बात बनेगी। इसे घूस कहना पाप है। यह तो मेहनत का मुआवजा है।'

'हमें तो यह सरासर भ्रष्टाचार लगता है।'

'माफ कीजिए, आपको गलतफहमी है। आपके भुगतान को खोजने में तीस-चालीस आदमी अपना काम छोड़कर तीन-चार दिन तक दृढ़ निश्चय और लगन से फाइल-फाइल आपके चालीस हजार की तलाश करेंगे। आपके दस हजार उनके श्रम-परिश्रम को देखते हुए कम हैं। हम उनकी नेकनीयती का फायदा उठा रहे हैं। यह कतई मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण है।'

मुरारी घूस न देने की अपनी जिद पर अड़े रहे। मददगार उन्हें बाहर मंदिर तक ले गए। उन्होंने मुरारी को समझाया कि रामदीन जैसों ने दान-चंदा देकर मंदिर का निर्माण करवाया है। देश के हर बड़े आदमी ने अपने-अपने आराध्य की शान में पूजागृह बनवाए हैं। उसका यह मतलब तो नहीं है कि वे ऊपरवाले को घूस दे रहे हैं। ऐसा सोचनेवाले का चिंतन विकृत है। दान देना और लेना तो भारत की सदियों पुरानी परंपरा है। पंडित पूजा करता है, हम उसे दान देते हैं। रामदीन अगर काम करता है तो वह भी मुरारी के दान का हकदार है। अगर मुरारी को 'खर्चे-पानी' शब्द से घूस की गंध आती है तो वह उसे दान मान लें। अगर उन्हें दान से भी एतराज है तो वह इसे राष्ट्रीय बाबू राहत कोष का चंदा समझ सकते हैं। सारे सियासी दल चंदे से ही चलते हैं। अब इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता है। छुपे कैमरे ने चंदा-दान का दृश्य सबके दर्शन के लिए सुलभ कर दिया है। ऐसे भी दान-चंदे और भ्रष्टाचार में बुनियादी अंतर है। भ्रष्टाचार अधिकार का दुरुपयोग है, डंडे से डरा-धमकाकर पैसा वसूलने का तरीका है। सभ्य समाज में बर्बरता की निशानी है। दान-चंदा भक्त द्वारा अपने से ऊपर के किसी भी भगवान् को अर्पित एक तुच्छ स्वैच्छिक भेंट है। इसकी मूल प्रेरणा श्रद्धा, आस्था और विश्वास है। भ्रष्टाचार एक बलात् हरकत होने के कारण गलत है। दान-चंदा मनुष्य के विकसित व्यक्तित्व का प्रतीक है, पारस्परिक भरोसे की निशानी है, स्वार्थ से परमार्थ की प्रगति का परिचायक है, आत्मा का परमात्मा पर न्योछावर होने का प्रयास है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम है।

यों भी भ्रष्टाचार कोई छोटी-मोटी हस्ती नहीं है। वह दान-चंदे के एक-दो लाख की चींटियों के बीच करोड़ों का हाथी है। चींटी-हाथी का मुकाबला ही क्या है! मददगार ने सरकार को उसकी पारदर्शिता की संस्कृति के लिए बधाई देते हुए मुरारी को बताया कि यह उसकी कल्याणकारी नीतियों का नतीजा है कि किसी राष्ट्रीय दल के अध्यक्ष को अब लाख-दो लाख का चंदा लेते झिझक नहीं महसूस होती है। अफसर कभी लाख के नीचे नहीं बिकते थे, अब उनकी बोली सैकड़ों-हजारों में लगती है। भारत से भ्रष्टाचार कब का समाप्त हो चुका है। अब तो सिर्फ दान-चंदा बचा है। सरकार भी घूस के खिलाफ है, दान-चंदे के नहीं। दान-चंदा तो देश का सामूहिक चरित्र है। मुरारी ने दोस्तों से राय ली। उनके शुभचिंतकों ने सलाह दी कि बाकी जिंदगी विकास प्राधिकरण में बिताने और घर गँवाने से दस हजार के चंदे का विकल्प हर हाल में बेहतर है। उन्होंने अपनी गाढ़ी कमाई में से दस हजार बैंक से निकाले और कैश मददगार के हवाले कर दी।

अब वह हर सरकारी विभाग से काम पड़ने पर दान-चंदे के हिमायती हैं। वह एक नैतिक व्यक्ति हैं। भारत जैसे धार्मिक देश में दान-चंदा पुण्य कमाने का साधन है। घूस लेना और देना पाप ही नहीं, कानूनन अपराध भी है। मुरारी जेल जाने से डरते हैं। वह हर परिचित को विश्वास दिलाते हैं कि उन्होंने मददगार को मदद के लिए केवल दान दिया है। दूसरों को भी सिर्फ दान देना चाहिए। घूस और भ्रष्टाचार इस देश में कभी होते होंगे, आजकल केवल दान-चंदे का चलन है। इसमें एक पंथ दो काज का सिलसिला है। काम का काम होता है और पुण्य का लाभ भी मिलता है।

□

डी-II/२९८, विनय मार्ग,
चाणक्य पुरी, नई दिल्ली-११००२१

पाठकों से निवेदन

- आपके सक्रिय सहयोग से साहित्य अमृत का प्रकाशन निरंतर हो रहा है। इसके लिए हम आपके आभारी हैं।
- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो गई है, वे कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करवा लें। साथ ही अपने मित्रों-संबंधियों को भी इसकी सदस्यता ग्रहण करने हेतु प्रेरित करने की कृपा करें।

कविताएँ

रमेश सोनी

पेट की खातिर

वे, कच्ची उम्र की,
रबर-सी लचीली लड़कियाँ
सर्कस में—
रस्से पर कूदती
झूले झूलतीं, मौत की परवाह किए बिना
छलाँग लगाती हैं
···पेट की खातिर!

वह लड़की!
आँखों पर काली पट्टी बाँधकर
जान जोखिम में डालकर
मौत के अंधे कुएँ में
बिना ब्रेक की मोटर साइकिल चलाती है
···पेट की खातिर!

वह—
बिजली के बल्ब और ब्लेड चबाता है
शरीर को तोड़ता-मरोड़ता
लोहे के छल्ले में से निकल जाता है
···पेट की खातिर!

वह पहलवान!
काला भुसुंड, थुलथुल भारी
तीखे कीलोंवाला तख्ता
सीने पर रखवाकर···
निकलवाता है मोटरगाड़ी
···पेट की खातिर!

वह बौने कद का जोकर
जो छोड़कर आया है
बीमार माँ को घर पर
गृहस्थी की चिंताओं में डूबा,
आँसुओं के समंदर को दबाए हुए
बाँटता है मुसकराहटें, कहकहे
···पेट की खातिर!

वह मदारी,
जो दर्शकों को फल और मिठाइयाँ खिलाता है
रद्दी कागज से असली नोट बनाकर
दिखाता है
खेल की समाप्ति पर—पेट दिखाता, झोली
फैलाता है
···पेट की खातिर!

□

ईंट की एक-एक सतर से

वे सारी-की-सारी धूप
नंगे जिस्मों पर झेलते, झुलसते हुए
हिफाजत कर रहे हैं—
अपने बड़े होते, स्कूल जाते बच्चों की।

बूढ़ी माँ
दमे का मरीज बाप
कैंसरग्रस्त कारीगर
इन सबके बच्चे जाते हैं स्कूल
माँ—मिट्टी की तगाड़ी उठाती
बाप—ईंट की टोकनी ढोता
बूढ़ा कारीगर—हाँफता-काँखता चलाता है
करनी।
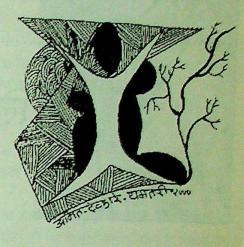
करनी चलाता है कारीगर
और ऊँची उठ रही है
जमींदार की हवेली, ईंट की एक-एक सतर से

ईंट की एक-एक सतर से
ऊँची उठ रही है—जमींदार की हवेली
ऊँची उठ रही है—मजदूरों के सपनों की इमारत
अर्थात् उनके बच्चे।

बच्चे बड़े हो रहे हैं
जमींदार बूढ़ा हो रहा है
कल···जब जमींदार इस दुनिया से खारिज होंगे
इन बच्चों में से ही कोई—इस इमारत के वारिस
होंगे
फिलहाल दोनों ही बेखबर हैं—इस खबर से।

और जमींदार की हवेली ऊँची उठ रही है
ईंट की एक-एक सतर से···

□

११, वर्धमान अपार्टमेंट,
ओल्ड पलासिया,
इंदौर-४५२००१
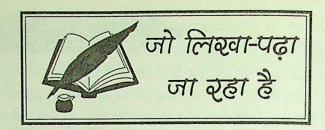
लिखने से कहीं अधिक मुझे न लिखने की प्रेरणा होती है—अजित कुमार

इन दिनों आप क्या लिख रहे हैं?

इन दिनों मैं वही लिख रहा हूँ जो उन दिनों लिखता था, जिन दिनों मैंने लिखना शुरू किया था—यानी कविताएँ, कहानियाँ, सफरनामे, संस्मरण, समीक्षाएँ आदि। (जो कभी-कभी एक-दूसरी में गड्ड-मड्ड भी होती रहती हैं) और हाँ, प्रश्नों-जिज्ञासाओं के उत्तर भी, जैसेकि अभी तुरंत यत्न करते हुए कि ये आपस में गड्ड-मड्ड न हों।

आपके लेखन की मूल प्रेरणा क्या है?

प्रेरणाएँ कई हैं—कुछ अंशों में भीतर का वह उमड़न, जो मुझे लिखने या पढ़ने के लिए बेचैन रखती है; किन्हीं अंशों में बाहर का वह दबाव, जो कभी संपादक-पत्रकार, कभी आयोजक-संयोजक तो कभी पाठक-पत्र लेखक का बाना धरकर मेरे सामने आ खड़ा होता है, ताकि मैं 'अपनी पेट-पूजा' छोड़ 'अतिथि के स्वागत-सत्कार' में संलग्न हो जाऊँ। कहना अनावश्यक है कि लिखने से कहीं अधिक मुझे न लिखने की प्रेरणा होती है और पहला बहाना मिलते ही—चाहे वह गपशप, सैर-सपाटा, झाड़ू-पोंछा, हाट-बाजार कुछ भी क्यों न हो—लिखने से बचने का कोई भी मौका मैं हाथ से नहीं जाने देता।

मुमकिन है, यह उस कविता का असर हो, जो मैंने कभी पढ़ी थी—

'ओ वीनस, ओ मरकरी—गॉड ऑफ थीव्स
गिव मी अ टोबैको शॉप
आई ऐम फेड अप विद दिस बिजिनेस ऑफ राइटिंग
इन ह्विच वन नीड्स वन्स ब्रेन्स
ऑल द टाइम।'

(ओ प्रेम तथा सौंदर्य की देवी वीनस, ओ वाक् तथा चौर्य के देवता मरकरी! मुझे तो तुम तंबाकू की दुकान करवा दो। लिखने के इस धंधे से मैं तंग आ चुका हूँ, जिसके लिए सारे वक्त दिमाग की जरूरत पड़ती रहती है।)

यह बात अलग है कि इन पंक्तियों को याद करते ही मेरे मन में श्री जयशंकर प्रसाद की छवि उभरने लगती है, जो कमाल के लेखक होने के साथ-साथ तंबाकू का पिंडा भी तौला करते थे। तब यह खयाल भी मन में उठता है कि अगर उन्होंने इन दोनों कामों में से कोई एक छोड़ दिया होता तो शायद उन्हें एक लंबी उम्र मिल सकी होती। पर तुरंत ही मैं यह भी सोचता हूँ कि भले ही तब उन्होंने सुँघनी साह के कारोबार को आसमान पर चढ़ा दिया होता, पर उससे मुक्त होने का मतलब शायद उनके लेखन का कमतर होना होता।

शायद मैं थोड़ा बहक गया। आपका प्रश्न गौण प्रेरणा नहीं, मूल प्रेरणा के बारे में था। तो मुझे अपनी एक आरंभिक कविता 'एक विलापन' (१९५१) याद आती है, जो पहली बार सन् १९५२ में श्री अज्ञेय द्वारा संपादित मासिक 'प्रतीक' में छपी थी और बाद में मेरे प्रथम कविता संग्रह 'अकेले कंठ की पुकार' (१९५८) में संकलित हुई। कविता इस प्रकार थी—

'सोचता हूँ—
गीत लिखने से कहीं अच्छा,
जुटा लूँ हर तरफ से कीमती सामान···
और जितने उपकरण हैं गीत के
मन को भुलाने और धन की

और जन की फिक्र से पीछा छुड़ाने की—
युवतियाँ, प्रेम, आँसू, विरह, पीड़ा
सेक्स की अवरुद्ध क्रीड़ा,
सुप्त मन में गड़ी फाँसें,
गरम या ठंडी उसाँसें
और सपने हार के या जीत के—
सबको करीने से सजाऊँ,
ढोल जोरों से शहर भर में बजाऊँ,
छापकर परचे गली-सड़कों-घरों में पहुँच जाऊँ—'
'प्रेमियो, साहित्यिको, विक्षिप्त कवियो!
तम भरे संसार के अनगिनत रवियो!
'मुफ्त' ले जाओ यहाँ से माल खुदरा
कुछ दिनों से गीत का बाजार उतरा
है, इसीसे भूल सारा मान या सम्मान
सोचा है कि अब इस तरफ दूँगा ध्यान—
मैंने खोल ली है शहर में साहित्य के परचून की दूकान
जिसमें 'मसि' तथा 'कागद', 'कलम' से ले
'विचारों, 'भावनाओं', 'कल्पनाओं' तक
मिलेंगे हर किसिम, हर ढंग के सामान!
आए हैं समंदर पार से 'लेटेस्ट मॉडल',
काव्य बाला को सजाने के लिए
रंगीन आभूषण तथा परिधान!
आएँ आप, देखें और परखें,
करेंगे मुझपर बड़ा उपकार!'

यदि मूल प्रेरणा वह थी, जो पिछले पचासेक बरसों के दौरान बढ़ी-पनपी, तो संभव है—पादप, पल्लव, फूल-फल प्रेरणाएँ भी कोई-न-कोई रही ही होंगी, तो फिर क्यों न मैं यहाँ उस ठूँठ प्रेरणा का भी उल्लेख कर दूँ जो मेरे नए कविता संग्रह 'ऊसर' (२००१) में एक प्रश्न बनकर उभरी है। 'बरताव' शीर्षक कविता का आरंभिक अंश यह है—

'भाषा के साथ हम सब कुछ न सही,
बहुत कुछ कर सकते हैं
मसलन : तोड़-फोड़, खिलवाड़ या मजाक,
दोस्ती, झगड़ा, जबरदस्ती···
संभव है, रूठ भी हम सकते हों उससे
बरतने के क्रम में।
सवाल तो यह है कि
भाषा भी क्या हमसे
वही सबकुछ करती है
जो कि हम उससे?'

एक रचनाकार के रूप में आपकी मानवीय, सामाजिक और राजनीतिक चिंताएँ क्या हैं?

एक रचनाकार के नाते मेरी सामाजिक चिंता यह है कि जो भी लिखूँ, वह संप्रेष्य हो; मानवीय चिंता यह कि 'देवत्व' या 'राक्षसत्व' से 'मनुष्यत्व' को अलगाता रह सकूँ; और राजनीतिक चिंता यह कि मेरा लेखन समता, स्वाधीनता, बंधुता का पक्षधर बन सके।

साथ ही, मैं जोड़ना जरूरी समझता हूँ कि इन क्षेत्रों से संबद्ध मेरी अनेक चिंताएँ और भी हैं, जिनको लेखन का हिस्सा बना पाना अभी तक मेरे लिए संभव नहीं हुआ।

इन दिनों आप क्या पढ़ रहे हैं? और क्या पढ़ना पसंद करते हैं?

आजकल मैं बीसवीं शताब्दी की कुछ कालजयी हिंदी कृतियाँ पढ़ रहा हूँ, जिसका कारण यह नहीं कि मैं कोई डॉ. जॉनसन हूँ, जिनसे एक नए लेखक ने जब यह प्रश्न किया था, 'श्रीमन्, क्या आपने मेरी अमुक नई पुस्तक पढ़ी' तो उन्होंने उत्तर दिया था, 'जी नहीं, जब भी कोई नई पुस्तक छपती है, मैं किसी पुरानी पुस्तक को पढ़ना शुरू करता हूँ।'

इसके विपरीत मेरा कारण निरा स्थूल या गद्यात्मक समझा जा सकता है। दूरदर्शन से एक शृंखला प्रसारित हो रही है—'बीसवीं शताब्दी की कालजयी कृतियाँ', जिसके कुछ कार्यक्रमों में भागीदारी के लिए मुझे 'गोदान', 'कामायनी', 'अंधायुग', 'उर्वशी' आदि को फिर से पढ़ना पड़ा है। ऐसा करते हुए मुझे बार-बार आचार्य रामचंद्र शुक्ल याद आए हैं, जिन्होंने घोड़ी पर सवार हो ससुराल जा रहे अफीमची की कहानी सुनाई है। ये पिनक में थे। घोड़ी ने दूसरी राह पकड़ ली तो इन्होंने यह कहते हुए लगाम छोड़ दी, 'अच्छा, चल! मुझे इधर भी कुछ काम है।'

इस लेखन को पढ़ने में ऐसा मजा आने लगा है कि चाहता हूँ, यह सिलसिला चलता ही जाए, कभी खत्म न हो—बीसवीं सदी से पीछे, ईसा के कई हजार साल पहले तक पहुँचे।

आज आप कैसा रचनात्मक माहौल पाते हैं?

रचनात्मक माहौल—विशेषत: कविता और कथा-साहित्य में खासा रोचक बल्कि उत्तेजक है। काश, नाटक और आलोचना का भी परिदृश्य ऐसा होता। विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण होना दूर, वह रुचिकर और विवादास्पद भी नहीं जान पड़ता। हाँ, नाटक के नाम पर मंचन और आलोचना के नाम पर छीछालेदर की ओर ध्यान जाए तो जाए। □

१६६, वैशाली, पीतमपुरा,
दिल्ली-११००३४

साँझ भई चहुँ देश

रश्मि कुमार

जन्म : १ अगस्त, १९६४, दरभंगा (बिहार)।
शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), पी-एच.डी.।
प्रकाशन : कहानी संग्रह 'नेपथ्य की जिंदगी', 'दहलीज के उस पार', 'कुछ पल अपने' तथा लघु उपन्यास 'मैं बोनसाई नहीं' प्रकाशित। हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, संस्मरण एवं रेखाचित्र प्रकाशित।
आकाशवाणी से कई कहानियों एवं नाटक का प्रसारण।
सम्मान : 'पं. प्रताप नारायण मिश्र स्मृति युवा साहित्यकार कथा सम्मान'।

रात का भोजन समाप्त होते-होते बारह बज गए। विदेश के प्रवास में मुक्ता की यह दूसरी रात्रि थी—अपेक्षाकृत सहज, शांत और अपनत्व से भरी हुई। दिन में भोजन के बाद गणपति ने कहीं घूमने जाने के लिए पूछा था; पर मुक्ता टाल गई थी। विदेश में मिला यह देशी परिवेश उसे बाँध गया था। दोपहर में जरा आराम करने को लेट गई तो आँख लग गई। उठी तो शाम ढल गई थी। ऐसी गहरी नींद आई कि समय का पता ही नहीं चला। लखनऊ छोड़ने के बाद से करीब तीन दिनों से ठीक से सोई नहीं थी। उठकर बैठ तो गई, पर आँखों में अभी भी नींद भरी हुई थी। निगाहें घुमाकर चारों तरफ देखा, केतकी कमरे में नहीं थी। जाने कब दबे पाँव उठकर चली गई थी।

''तुम अभी भी घोड़े बेचकर सोती हो।'' हँसती हुई केतकी सामने चाय का गिलास लिये खड़ी थी।

मुक्ता चौंक उठी।

''लो, चाय पिओ। गिलास भरकर लाई हूँ—तुम्हारी पसंद का फ्लेवर और काँच का गिलास।''

मुक्ता ने गिलास थाम लिया। चाय की गरमाहट के साथ संबंधों की ऊष्मा भी अंदर तक उतर गई। घूँट भरते हुए बोली, ''वक्त क्या हुआ होगा?''

''साढ़े आठ बजे हैं।''

''अरे, इतनी रात हो गई!''

''रात नहीं, शाम। मॉरीशस में आठ बजे तो सूरज डूबता है।''

''ऐसी गहरी नींद सोई कि समय का पता ही नहीं चला। अब लग रहा है कि कितनी थकी हुई थी।''

''हाँ, इसीलिए तो पूरा दिन सोकर बरबाद कर दिया, कहीं घूमने भी नहीं गई।''

''ऐसी कोई बात नहीं, केतकी; तू तो जानती है कि घूमने-फिरने का मुझे कोई खास शौक नहीं है। बल्कि उससे तो अच्छा है, इस काँच के गिलास में यह दार्जिलिंग टी पीते हुए तुम्हारी जैसी सहेली के साथ मिलकर गप्पें मारी जाएँ। घूमने को सारी दुनिया पड़ी है। तू मुझे फिर कहाँ मिलेगी, बोल?''

''तो फिर थोड़ा और सो ले। मैं रात का भोजन बना लूँ। फिर तेरे मन की मुराद पूरी करूँगी।''

''चल, मैं भी चलती हूँ तेरे साथ रसोई में।'' चाय पीकर मुक्ता का सारा आलस्य जाता रहा। नई स्फूर्ति से भरकर वह उठकर खड़ी हो गई थी।

रात के भोजन की तैयारी केतकी ने पहले ही कर रखी थी। यद्यपि मुक्ता को रात में खाने की इच्छा नहीं थी, पर सत्तू का पराँठा और आलू-बैंगन का भुरता देखकर उसे वाकई भूख लग आई।

खाकर तृप्त भाव से बोली, ''बहुत अच्छा बनाया है।''

''हाँ, अच्छा तो बनाया ही है, ज्यादा भी बनाया है। रख दिया है तुम्हारे लिए। मुझे पता है, तुझे बासी पराँठे ज्यादा पसंद हैं।''

मुक्ता बार-बार अभिभूत होती रही, अंदर-ही-अंदर भीगती रही। खाते-पीते रात के बारह बज गए। पति को केतकी ने आज बच्चों के कमरे में भेज दिया। वे चुपचाप अपना तकिया उठाकर हँसते हुए बोले, ''लगता है, आज आपकी सखी जी भरकर मेरी बुराई करेगी।''

''नहीं जी, सिर्फ मैं ही नहीं, हम दोनों ही आज अपने-अपने पतियों की शान में कसीदे काढ़ेंगी।''

मुँह-हाथ धोकर, कपड़े बदलकर केतकी जब सोने आई तो मुक्ता चुपचाप तकिया गोद में रखे हुए बैठी थी। ओढ़ने के लिए आलमारी से चादर निकालती हुई बोली, ''नींद नहीं आ रही?''

मुक्ता ने सिर हिला दिया।

''विशाल की याद आ रही होगी।''

"धत्! तुम भी बस। ऐसी बात नहीं है।"

"तो ऐसी मूरत सी क्यों बैठी है?"

"यों ही बस। बच्चे सोने चले गए न, घर एकदम से शांत हो गया है।"

"अपने बच्चों की याद आ रही है न?"

"हाँ रे, दोनों को पहली बार इतने दिनों के लिए छोड़कर आई हूँ।"

"तो क्या हुआ; वहाँ घर में दादा हैं, दादी हैं, चाचा हैं, चाची हैं। तेरे पति तो हैं ही। जॉइंट फैमिली का यही तो सुख है। बच्चों को जो सुख जॉइंट फैमिली में रहकर मिलता है वह और कहीं नहीं।"

जाने क्यों यह सुनकर मुक्ता एकदम से कुछ बोल नहीं सकी। दो पल रुककर ही बोली, "मेरी छोड़, अपनी सुना। सुबह से अकेली काम में लगी हुई है, मैंने तो आकर तेरा काम और बढ़ा ही दिया।"

"हाँ, सो तो है।" केतकी ने आँखें झपकाईं।

"आ चल, बैठ अब आराम से।"

केतकी बड़े ही आज्ञाकारी भाव से आकर उसके पास बैठ गई।

मुक्ता उसे थोड़ी देर चुपचाप देखती रही। कमरे में साइड लैंप की धीमी रोशनी थी। केतकी ने खिड़की के पल्ले खोल दिए थे। बाहर से आती समुद्री हवा भली लग रही थी। नेट के परदों से छनकर आती हलकी रोशनी केतकी के चेहरे पर पड़ रही थी। उस रोशनी में केतकी का सलोना चेहरा बड़ा भला, बड़ा ही कमनीय लग रहा था। कभी-कभी हवा में 'साँय-साँय' की आवाज गूँज उठती। बात शुरू करते हुए मुक्ता बोली, "यहाँ रोज ही ऐसी हवा चलती है? कितना अच्छा लग रहा है!"

"हाँ, रोज ऐसी ही हवा चलती है। तुम्हारे देश में जो कन्याकुमारी नाम की जगह है न, बिलकुल वैसी ही। वहाँ भी ऐसी ही हवा चलती है हमेशा।"

"सिर्फ मेरा देश ही क्यों, तुम्हारा भी तो देश है वह। मायका है तुम्हारा वहाँ।"

"मायका!" केतकी जाने कैसी तो अवहेलना भरी एक हँसी हँसी। फिर गंभीर होकर बोली, "काहे का मायका और कौन सा मायका! मेरा अब वहाँ कुछ भी नहीं है।"

"ऐसा क्यों कह रही हो? तुम्हारे मम्मी-डैडी तो अब भी वहीं हैं, बनारस में।"

"हाँ, हैं तो सही।"

"फिर ऐसा क्यों कह रही हो?"

"क्योंकि वे दोनों ही अलग हो गए हैं। वे न माँ हैं, न बाप। सिर्फ डॉ. शालिनी मेम साहब एवं डॉ. प्रतीक साहब हैं।"

"छिह! ऐसा नहीं कहते।"

"तो और क्या कहूँ? वे अगर माँ-बाप होते तो उनके लिए अपना ही अहं इतना बड़ा होता कि घर में बड़ी होती अपनी इकलौती बेटी की परवाह किए बगैर हमेशा लड़ते-झगड़ते रहते।"

मुक्ता यह सुनकर एक पल को चुप हो गई। उसकी समझ में ही नहीं आया कि क्या जवाब दे।

"जानती हो मुक्ता, जिन लोगों के लिए सिर्फ अपना अहं, जिसे वे शान से स्वाभिमान कहते हैं, वही सबकुछ हो तो उन लोगों को कभी शादी नहीं करनी चाहिए। और अगर यह गलती कर भी लें तो कम-से-कम माँ-बाप नहीं बनना चाहिए।"

"ऐसा क्यों कह रही है, केतकी? लड़ाई-झगड़ा किस घर में नहीं होता!"

"क्यों, तुम्हारे घर में कभी होती थी लड़ाई? सब कितने खुश, कितने घुल-मिलकर रहते थे!"

मुक्ता फिर चुप हो गई। केतकी का भ्रम कि उसके घर में कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता था, तोड़ने की उसकी इच्छा नहीं हुई। केतकी का यह रूप उसके दिन भर के रूप से बिलकुल ही अलग था। दिन की उस मोहिनी मूरत की छाप अभी केतकी के चेहरे पर बिलकुल ही नहीं थी। वह जैसे दूसरी ही केतकी हो उठी। मुक्ता उसके तमतमाए चेहरे को थोड़ी देर देखती रही, सोचती रही, फिर उसका हाथ थामकर बोली, "अच्छा, पहले की बातें छोड़, ये बता कि तू अब तो खुश है—यहाँ, अपनी इस घर-गृहस्थी में?"

"बहुत, बहुत सुखी हूँ, मुक्ता। ईश्वर से दुआ करना कि मेरा यह घर-संसार हमेशा इसी तरह बना रहे।"

मुक्ता ने धीमे से हँसते हुए उसका हाथ दबा दिया। हलकी साँवली कोमल कलाइयों में पड़ी हुई सोने की दो-दो चूड़ियाँ उस नीम अँधेरे में चमक उठीं। उनकी चमक का असर केतकी के चेहरे पर भी हुआ। चेहरा फिर पहले की तरह ही कोमल और सलोना हो उठा।

"तुम्हारी अरेंज मैरिज हुई?"

केतकी ने 'हाँ' में सिर हिला दिया। फिर बोली, "तुम्हारी भी तो अरेंज मैरिज ही हुई।"

"होनी ही थी। मैं तो ऐसे घर की लड़की हूँ जहाँ उस वक्त लड़की अगर प्रेम-विवाह का नाम भी अपनी जबान पर ले आती तो उसके घरवालों के पास उसे इस भयंकर अपराध से रोकने के लिए सौ उपाय थे। गोली से उड़ा देना, जमीन में गाड़ देना, जहर दे देना, जन्म लेने के साथ ही गला नहीं घोंट देने पर अफसोस जाहिर करना और इन सब धमकियों,

संवादों के बाद समाज में नाम कट जाने के डर से हाथ-पाँव बाँधकर मड़वे में बिठा देना तो अंतिम और आजमाया हुआ नुस्खा था ही। हम जैसी लड़कियाँ प्रेम-विवाह करने लगतीं तो यह समाज आज के बजाय उसी वक्त रसातल में चला गया होता।''

''ठीक ही कह रही हो। मेरी माँ को यही समझानेवाला कोई नहीं था। फिर भी अपने प्रेम-विवाह से सबक लिया उन्होंने और मेरी शादी समय रहते कर दी। हमेशा एक-दूसरे से छत्तीस का आँकड़ा रखनेवाले मेरे माँ-बाप एक इसी बात पर एकमत हो गए।''

''अपने माँ-बाप को हमेशा दोष क्यों देती है, केतकी? दोनों डॉक्टर थे। कितनी अच्छी जोड़ी थी उनकी! अगर उनमें अलगाव हो गया तो यह उनकी तकदीर का ही दोष होगा और क्या!''

''इनसान अपनी तकदीर खुद भी तो बनाता है, मुक्ता। कम-से-कम मेरे अभिभावकों ने तो यही किया था।''

''दोनों साथ ही पढ़ते थे?''

''हाँ, बी.एच.यू. के मेडिकल कॉलेज में। माँ तो बनारस की ही हैं। कॉलेज में विदेशियों के लिए जो आरक्षित सीट होती है, उन्हींकी सहायता से पिता का एडमिशन वहाँ हुआ था।''

''वे यहाँ से बनारस पढ़ने गए थे?''

''हाँ, अब भी बहुत से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए भारत जाते हैं। वैसे भी यहाँ की साठ प्रतिशत जनसंख्या उन भारतीयों की है जिनके पूर्वज भारत से यहाँ आकर बस गए थे। भारत के प्रति इनका आकर्षण स्वाभाविक है। मेरी माँ को पिता के डॉक्टर होने से अधिक उनका विदेशी होना प्रभावित कर गया। मेरे नाना भी बहुत बड़े डॉक्टर हैं और माँ उनकी इकलौती बेटी। बेहद खूबसूरत, महत्त्वाकांक्षी डॉक्टर बेटी के लिए अपने देश में वे एक-से-एक होनहार वर ढूँढ़ सकते थे, पर उन्हें अपनी बेटी की इच्छा के आगे घुटने टेकने पड़े। मेरे पिता को कभी उन्होंने दामादवाला मान-सम्मान नहीं दिया।''

''फिर?''

''विवाह के बाद यहाँ मॉरीशस आ गए। थोड़े समय तक तो सब ठीक चला, पर अस्थिर प्रवृत्ति की माँ यहाँ से जल्दी ही उब गईं। साल में तीन-चार बार इंडिया जातीं।''

''यह तो स्वाभाविक ही है।''

''देखो, ये कोई तुम्हारे लखनऊ से पटना जाने की तरह नहीं है कि जब मन हो, ट्रेन से चले गए। यहाँ से इंडिया जाने में खासी बड़ी रकम खर्च हो जाती है। उस वक्त उनकी इन्कम इतनी नहीं थी कि वे साल में चार बार इतना खर्च कर सकें। फिर वे जब भी जातीं, डैडी को भी साथ ले जाना चाहतीं, जो कि उन्हें पसंद नहीं था। किसी तरह छह-सात साल काटने के बाद आखिर उन्होंने इंडिया में ही सेटल होने का फैसला कर लिया। जब वे लोग इंडिया लौटे, उस वक्त मेरी उम्र छह साल की थी।''

''वहाँ, बनारस में, अच्छी प्रैक्टिस थी?''

''प्रैक्टिस ठीक ही थी। नानाजी का जमा-जमाया नर्सिंग होम था। वो बँगला, वो गाड़ी, वो सारी शानो-शौकत जो तुमने देखा था वो सब उन्हींका दिया हुआ था। यहाँ तक कि मेरी बोर्डिंग की फीस तक नानाजी ही भरते थे।''

मुक्ता चुपचाप सुनती रही, फिर बोली, ''फिर क्या हुआ? सब ठीक ही तो था।''

''मेरे पिताजी संवेदनशील इनसान हैं। अपना देश, अपने माँ-बाप, भाई-बहन सब छोड़ने का दुःख उनके मन में हमेशा रहा। मेरी माँ ने कभी इन संबंधों की कदर नहीं की। महत्त्व ही नहीं दिया। धीरे-धीरे उनमें मनमुटाव बढ़ता गया। मेरे पिता बहुत अच्छे पति और बहुत अच्छे पिता हैं, मुक्ता। उन्होंने मम्मी की हर इच्छा पूरी करने की हरसंभव कोशिश की; पर मम्मी ने कभी समझौता करना सीखा ही नहीं। उनके लिए अपना सोच, अपनी इच्छा ही सर्वोपरि थी। पति के लिए, बेटी के लिए भी किसी तरह का समझौता करना उन्हें अपनी हार लगती। मुझे तो लगता है कि विवाह भी उनके लिए एक इच्छा, एक मिशन से अधिक कुछ नहीं था। उनका विवाह उनकी जिद का परिणाम था, उनके प्रेम का नहीं।''

मुक्ता का सनातनी मन माँ-बाप के लिए इस तरह की बात सुनकर सिहर उठा। बरजते हुए बोली, ''नहीं, केतकी, माँ-बाप के लिए ऐसा नहीं कहते।''

''मैं किसी दुर्भावना से नहीं कह रही हूँ, बस परिस्थिति बयान कर रही हूँ। कहीं कुछ तो कमी जरूर रही होगी उनके रिलेशन में। वे इंडिया से मॉरीशस आए, फिर वापस इंडिया लौट गए; पर सुखी नहीं हो पाए। अगर आपस में प्रेम होता तो ऐसा नहीं होता। वे कहीं भी सुख-चैन से रह सकते थे।''

''हो सकता है, कोई और बात हो, केतकी। उनके रिलेशन में ही कमी हो, यह जरूरी नहीं है।''

''बिलकुल ऐसा ही है, मुक्ती। आपस में प्रेम होता तो ऐसा कभी नहीं होता। प्रेम तो बहुत बड़ी ताकत है, मुक्ता। यह तो इतनी बड़ी शक्ति है कि इनसान इसके सहारे दुनिया के किसी भी कोने में रह सकता है। क्या इंडिया, क्या मॉरीशस—कोई फर्क नहीं पड़ता।''

इतनी गूढ़ बात सुनकर मुक्ता हैरान रह गई। फिर हँसते हुए बोली, ''तू तो बहुत समझदार हो गई है रे!''

''इसमें समझदारी की क्या बात है? जो सच है वही कह रही हूँ।''

''तू सुखी है, खुश है, देखकर अच्छा लग रहा है।''

''हाँ, मुक्ता। मेरी शादी मेरे दादाजी ने तय की। मेरे पिता इंडिया में मेरी शादी करने को तैयार नहीं हुए। गणपति उन्हींकी पसंद हैं, मुक्ता। बाद में माँ को भी सहमत होना पड़ा और आज तुम्हारे सामने यह स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि मेरे मम्मी-डैडी की जो सबसे बड़ी देन है मेरे जीवन में वह उनका यही निर्णय है कि मेरे लिए सही व्यक्ति का चुनाव करते वक्त वे आपस में लड़े-झगड़े नहीं। इस देश में, इस घर

में आकर मुझे वह सबकुछ मिला जिसका सपना मैं बचपन से देखती आई थी। वरना मुझ जैसी लड़की को इतना आदर, इतना मान कौन देता?''

''कैसी बातें करती है, केतकी। तुझ जैसी लड़की, तुझमें कमी क्या है? कोई भी परिवार तुम्हें इतनी ही खुशी से अपनाता।''

''कमी कैसे नहीं है! शादी-ब्याह में अब भी लोग लड़की का कुल देखते हैं, उसका खानदान देखते हैं। ऐसा कोई परिचय मेरे पास नहीं था। मेरे पिता समाज के लिए विदेशी ही रहे। जो मतभेद उनके लिए उनका निजी मामला था वह मेरी शादी के मामले में सार्वजनिक हो गया। टूटे हुए परिवार की लड़की को कुलीन घर की कुलवधू बनाने से पहले लोग कई बार सोचते हैं। यही मेरे साथ भी हुआ। माँ-बाप के संबंधों का असर लड़की के संस्कार पर तो पड़ता ही है।''

''कोई जरूरी है कि ऐसा हो।''

''ऐसा ही होता है, मुक्ता। सच कहूँ तो लोगों का सोचना गलत नहीं है। दरअसल ऐसे परिवार के बच्चों के मन पर छाप तो होती ही है। वे एक विकल्प लेकर ही बड़े होते हैं।''

''कैसी छाप, कैसा विकल्प?'' मुक्ता की समझ में वाकई कुछ नहीं आया।

''टूटे हुए संबंधों की छाप। बच्चों के स्वस्थ मन के विकास के लिए घर में स्वस्थ वातावरण होना बहुत जरूरी है, मुक्ता। शादी की अनिवार्यता की बात जब उनके मन में आती है कि 'शादी होनी ही है' तो इस बात के साथ अचेतन रूप से एक विकल्प भी जुड़ा होता है कि 'शादी तोड़ी भी जा सकती है।' ''

''यह कोई अच्छी बात या अच्छा समाधान थोड़े ही है।''

''बिलकुल नहीं है; पर हर होनेवाली बात अच्छी ही हो, कोई जरूरी तो नहीं है। और विकल्प तो हमेशा दूसरे या तीसरे नंबर का होता है; या फिर यह कहो कि मजबूरी होती है। वह श्रेष्ठ कभी नहीं होता, समाधान भी नहीं होता; पर होता है, वह चाहे अच्छा हो या बुरा, मन के किसी कोने में यह विचार मौजूद तो रहता है। मेरे साथ भी ऐसा ही होता। अगर मेरे साथ ऐसा नहीं है तो इसके लिए मैं तुम्हारी कर्जदार हूँ, मुक्ता; एहसानमंद हूँ। यह तो ऐसा कर्ज है जिसे मैं कभी चुका ही नहीं सकती।''

''मैं समझी नहीं, केतकी।'' मुक्ता के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा।

''इसमें न समझने जैसा कुछ भी नहीं है, मुक्ता। अगर मुझे तुम्हारा साथ नहीं मिला होता, मैंने तुम्हारा घर और तुम्हारा परिवार नहीं देखा होता, उस संयुक्त परिवार में फलते-फूलते संबंध नहीं देखे होते तो मेरा सोच ही अलग होता। परिवार ऐसा भी होता है जहाँ सब एक-दूसरे के लिए ही जीते हैं, एक-दूसरे को प्यार करते हैं, एक-दूसरे का सम्मान करते हैं—यह तो मैंने तुम्हारा घर देखकर ही जाना। परिवार सिर्फ पति-पत्नी और बच्चे से ही नहीं बनता; अपितु उसमें दादा, ताऊ, चाचा या फिर दादी, ताई, चाची सभी होते हैं। हर संबंध का अपना महत्त्व तो है ही, सौंदर्य भी है। इनसान को जीने के लिए, सुखी होने के लिए हर संबंध की जरूरत होती है। परिवार से अलग होकर रहनेवाले मात्र पति-पत्नी बनकर रह जाते हैं; पर बाकी संबंधों का खालीपन भरने के लिए व्यक्तित्व में जो उदारता, विशालता, विविधता चाहिए, वह अगर उनके पास न हो तो टकराव तो होगा ही। यही मेरे मम्मी-डैडी के साथ भी हुआ। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि संबंधों को संतुलित रखने के लिए परिवार का लिहाज या अनुशासन बहुत जरूरी है। यह नहीं होना चाहिए कि गुस्सा आने पर बड़ों या छोटों का लिहाज किए बगैर एक-दूसरे पर चिल्ला उठें, चीख-चिल्लाकर, लड़-झगड़कर अगर एक-दूसरे से मुँह फुला लें तो कोई मेल करानेवाला ही न हो। तुमने उन दंपतियों को नहीं देखा होगा, मुक्ता, जो क्षणिक आवेश में एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। दूसरे दिन भले ही फिर एक मन, एक प्राण हो जाएँ। पर यह क्षणिक आवेश ही कभी-कभी मन पर ऐसा घाव छोड़ता है, जो उम्र भर नहीं भरता।''

''अरे, तू जो इतनी बड़ी-बड़ी बातें कर रही है, तू भी तो संयुक्त परिवार में नहीं रहती। पति-पत्नी और दो बच्चे बस; फिर इतना अनुभव कहाँ से बटोर लाई? तेरी बातों से तो लगता है कि मायके से भी मुँह फुलाए हुए है, तथा ससुराल का और कोई तो मुझे तेरे घर में दिखा नहीं।'' मुक्ता जाने किस रौ में बोल गई।

''ठीक कह रही हो। संयुक्त परिवार में तो नहीं रहती हूँ, यहाँ ऐसा संभव भी नहीं है; पर सच कहूँ, मुक्ता, तो मैं तुमसे पहली बार यह कह रही हूँ, उम्र के इस मोड़ पर मैं पूरे मन से यह स्वीकार करती हूँ कि आज मेरे लिए मेरा पति ही मेरा सबकुछ है। वही मेरी माँ है, वही पिता; वही भाई है, वही मित्र। उससे अलग तो मेरा कोई वजूद ही नहीं है, कोई अस्तित्व नहीं, कोई पहचान नहीं। और अपनी इस जिंदगी से मैं पूरी तरह से संतुष्ट हूँ; या कह लो, परिपूर्ण हूँ। मुझे तो किसीसे कोई शिकायत ही नहीं है, मम्मी-डैडी से भी नहीं।''

मुक्ता यह सुनकर आश्चर्य से आँखें फाड़े केतकी को देखती रह गई। केतकी जैसी मॉड, आधुनिक महिला के मुँह से यह बात सुनने की उसे सपने में भी उम्मीद नहीं थी। स्वयं क्या उसका मन इसे स्वीकार कर पा रहा था? शायद नहीं। तभी बोल पड़ी, ''धत्, क्या बोल रही है—पति ही माँ-बाप है, भाई है। जा, जा, एकदम बौरा गई है तू। ऐसा कभी हो सकता है, पागल। यह तुम्हारा स्वीकार नहीं, मौलिक आविष्कार है।''

''क्यों नहीं हो सकता? नहीं होता तो ऐसा ही होना चाहिए, स्टुपिड।'' केतकी ने हार नहीं मानी।

''पति सिवाय हुकुम चलाने के करते क्या हैं; जैसे पत्नी का कोई अधिकार ही नहीं होता। हुँह! पति ही पत्नी के लिए सबकुछ है और पत्नी उसके लिए कुछ भी नहीं।'' मुक्ता वाकई तुनक उठी।

''क्यों नहीं है। पत्नी को भी पति के लिए सबकुछ होना चाहिए; माँ, बहन, मित्र—सभी कुछ। अगर पुरुष सिर्फ हुकुम चलाने के लिए

नहीं है, तो पत्नी भी सिर्फ अधिकार जताने के लिए नहीं है, समझी। यही बात तो मेरे मम्मी-डैडी कभी नहीं समझ सके।''

''मैं भी नहीं समझी। तुम्हारी बात समझने के लिए सोचना पड़ेगा, ईडियट।''

''ले, ठंडा पानी पी ले, फिर सोच और समझ।''

केतकी ने रेशम की जाली से ढका हुआ शीशे के पानी का गिलास उठाकर उसे पकड़ा दिया। ठंडा पानी पीते हुए वाकई मुक्ता का मन ठंडा होने लगा, या उसे ऐसा महसूस हुआ कि मन ठंडा ही नहीं हुआ है, दरकने लगा है, पिघलने लगा है। मन में विशाल का चेहरा कौंध गया। केतकी ने यह क्या कह दिया कि पत्नी को सिर्फ पत्नी ही नहीं, माँ, बहन, मित्र होना चाहिए। जैसे मुक्ता को नींद से जगा दिया। वह सोच में पड़ गई। परिवार से अलग होने में भले ही उसकी विशेष भूमिका न रही हो, पर इच्छा तो थी ही। विशाल ने उसके ऊपर कभी साथ रहने के लिए दबाव नहीं डाला; पर क्या वे मन से परिवार से अलग होना चाहते थे, या हो पाए? शायद नहीं, कोई भी बेटा नहीं हो पाता। अभी यहाँ आने से दो दिन पहले ही तो उन्होंने कहा था कि 'रोज-रोज ब्रेड खिलाती हो, कभी पराँठे भी बनाया करो। अम्मा कितने अच्छे पराँठे बनाती हैं आलू, गोभी, मटर के।'

यह सुनकर वह तुनक गई थी। बिना विशाल की भावनाओं की परवाह किए बगैर बोल उठी थी, 'अम्मा ने पराँठे खिला-खिलाकर ही तो इतना मोटा कर दिया है। थोड़ा वेट कंट्रोल करो, नहीं तो कोलेस्ट्रोल बढ़ जाएगा, समझे! और फिर मुझे सुबह पचास काम रहते हैं, अम्माजी की तरह सिर्फ पराँठे बनाती रहूँ तो बाकी काम कैसे हो! खाना हो तो नीचे जाकर खा लिया करो, मुझसे नहीं बनते पराँठे-वराँठे।'

'ठीक है, कल अम्मा से ही कहकर बनवा लूँगा। वैसे भी उनके जैसा भोजन कोई नहीं बनाता।' विशाल ने सहज रूप से ही कहा था।

पर वह जैसे सिर से पाँव तक जल उठी थी। चिढ़कर बोल उठी, 'देखो, अम्मा से मेरी तुलना मत किया करो बात-बात में। मेरी उम्र और उनकी उम्र में बहुत फर्क है, समझे।'

'मैं तुलना नहीं कर रहा हूँ, बस एक बात कह रहा हूँ। तुम बेकार नाराज हो जाती हो।' विशाल इतना कहकर नाश्ता अधूरा ही छोड़कर चले गए थे। दिन भर उसका मूड ऑफ रहा था। आज वह सोचती रही कि क्या उस दिन उसे इतना कटु होना चाहिए था? इतना कटु हुए बिना भी तो बात की जा सकती थी।

पर इसके साथ-साथ जो सैकड़ों प्रश्न उसके मन में उठ खड़े हुए थे उसका वह क्या करे? क्या केतकी की तरह ही वह भी अपने मन को खोलकर रख दे? इसमें हर्ज ही क्या है? वैसे भी केतकी की बातें सुनकर उसकी बहुत इच्छा हो रही थी कि वह भी उसकी तरह अपनी बातें सुनाए। बहुत दिनों के बाद दोनों सहेलियों को मौका मिला था एक-दूसरे को जानने-सुनने का।

''क्या सोचने लगी?'' केतकी ने फिर पूछा, ''मेरी बात अच्छी नहीं लगी?''

''नहीं, ऐसी बात नहीं है। तुम्हारी बात गलत नहीं है, केतकी; पर एक बात कहूँ, हर तसवीर की तरह ही हर बात का भी एक दूसरा रुख होता है। ऊपर से जो कुछ नजर आता है, उसका भीतरी रूप भी वैसा ही हो, कोई जरूरी नहीं होता।'' मुक्ता सोचते हुए बोली। केतकी की बातें धीरे-धीरे उसके मन में उतरने लगीं। वह सहमत भी होने लगी थी; पर इसके साथ-साथ जो सैकड़ों प्रश्न उसके मन में उठ खड़े हुए थे उसका वह क्या करे? क्या केतकी की तरह ही वह भी अपने मन को खोलकर रख दे? इसमें हर्ज ही क्या है? वैसे भी केतकी की बातें सुनकर उसकी बहुत इच्छा हो रही थी कि वह भी उसकी तरह अपनी बातें सुनाए। बहुत दिनों के बाद दोनों सहेलियों को मौका मिला था एक-दूसरे को जानने-सुनने का।

''तू भी क्या सोच रही होगी, इतनी देर तक अपनी ही राम कहानी सुनाती रही; पर तू तो जानती है कि बोलने की मुझे बीमारी है और फिर इतने दिनों के बाद तू मिली है। जाने कितनी बातें तुझे देखकर याद आ गईं। अब तू बता, तेरे घर में सब कैसे हैं?''

''सब ठीक हैं, केतकी।''

''और पटना में, वहाँ सब कैसे हैं? तुम्हारी दादी। दैट स्वीट ओल्ड लेडी।''

''दादी नहीं रहीं, केतकी। कई साल हो गए, गुजर गईं।''

''अरे, आई एम सॉरी। हुआ क्या था उन्हें?''

''बस, यही समझ ले कि उम्र हो गई थी। अच्छा ही हुआ, समय से चली गईं। और अधिक जीतीं तो दुःख ही पातीं।''

''ऐसा क्यों कह रही है? घर में और सब तो ठीक हैं न?''

''घर बँट गया, केतकी। उस घर के तीन हिस्से हो गए। तीन चूल्हे जलते हैं वहाँ। तीनों भाइयों की अपनी-अपनी गृहस्थी हो गई है। सिर्फ जमीन और मकान ही नहीं, गहना-जेवर, कपड़े-लत्ते, नए-पुराने फर्नीचर और बरतन-भांडे तक बँट गए। माँ होतीं तो उसे कैसे बाँटते! अच्छा हुआ, यह दिन देखने से पहले, तीन पुत्रों के बीच बँट जाने से पहले ही दादी चल बसीं।''

''आई एम शॉक्ड। तुम्हारे घर में बँटवारा हो गया। इंपॉसिबिल, अविश्वसनीय।''

''क्यों, इंपॉसिबिल क्यों, और अविश्वनीय ही क्यों? आजकल घर-घर में यही हो रहा है। वक्त बहुत बदल गया है, केतकी। अब न तो

साझा चूल्हा है, न साझा आँगन। सबके अपने-अपने फ्लैट हैं और अपना-अपना किचन।''

''होगा, और सबों का होगा, पर तुम्हारे घर में क्यों हुआ और कैसे? मुझे वाकई यकीन नहीं होता।''

''अब मैं तुझे कैसे बताऊँ!''

''नहीं बताना चाहती तो मत बता।''

''नहीं-नहीं, बात बताने की नहीं, समझने की है। मैंने तुम्हें कहा था न, केतकी, कि हर वह चीज जैसी ऊपर से दिखाई देती है, अंदर से भी वैसी ही हो, जरूरी नहीं है। मेरा परिवार या मायका जैसा ऊपर से दिखाई देता था, बिलकुल वैसा ही नहीं था।''

''कमाल है, मुझे तो कभी नहीं लगा कि परिवार के किसी भी सदस्य का आपस में मतभेद है।''

''मुझे भी तो नहीं लगा कभी। बड़ी माँ से अधिक तो ताईजी ने मेरी सभी इच्छाएँ पूरी कीं। और छोटी चाची, वह तो मेरी आदर्श थीं। ताऊ, पिता, चाचा—सभी जैसे एक-दूसरे के लिए ही बने हों। घर में जितने भाई-बहन थे, देखकर पता नहीं चलता था कि कौन सगा है और कौन चचेरा। ऐसा नहीं था कि आपस में कभी खटपट नहीं होती थी, होती थी; पर जल्दी ही बात आई-गई हो जाती। कोई किसी बात को मन से नहीं लगाता था। कम-से-कम मुझे तो ऐसा ही लगता था। पहली बार उनका आपसी मतभेद खुलकर सामने आया दादी की मृत्यु के बाद।''

''दादी की मृत्यु के बाद क्या हुआ?''

''दादी के श्राद्ध कर्म में बहुत से लोग आए। दूर-पास के सभी नाते-रिश्तेदार न्यौते गए थे। मैं भी गई थी विशाल के साथ। सारा कार्य बहुत ही अच्छी तरह से संपन्न हो गया। खाने-पीने, पूजा-दान सभी की ऐसी व्यवस्था थी मानो श्राद्ध नहीं, किसी शादी-ब्याह का यज्ञ हो। घर में होनेवाले हर कार्य की तरह ही ताऊजी ही मुख्य कर्ता-धर्ता थे। इतनी धूमधाम देखकर आए हुए सभी कुटुंबियों ने जी खोलकर सराहना की। दादी करीब नब्बे की होकर गुजरी थीं। भरा-पूरा घर था। कमी क्यों होती! तीनों बेटे अच्छी नौकरी कर रहे थे। आए हुए एक-दो रिश्तेदारों ने दबी जबान से ताई से पूछा था कि 'इतना खर्च-वर्च किसने किया है?' ताई ने हँसकर बात टाल दी थी। मेरी माँ ने कहा कि 'अधिकतर खर्च मुक्ता के ताऊजी ने ही किया है, थोड़ा सहयोग उसके पिता ने भी किया है।'

'' 'और छोटे ने?' रिश्तेदार महिला मेरी बड़ी बुआ थीं। घर की बेटी, सो उन्होंने अधिकारपूर्वक पूछा बड़ी ताई से। पर ताईजी ने हँसकर कहा, 'वो भी करेगा, दीदी। छोटा है न, जब दो-दो बड़े भाई हैं जिम्मेदारी उठाने के लिए तो उससे क्या खर्चे की बात करें!' ताई ने हमेशा की तरह समझदारी से कहा था। बुआ एकदम चुप हो गई थीं। पर जाते-जाते कह गईं कि 'देखो भौजी, आप घर की बड़ी हैं, अब माँ की जगह आप ही हैं। हमेशा से पूरे घर की जिम्मेदारी उठाती आई हैं, ठीक है; पर छोटों को भी तो सोचना चाहिए। अब वह कोई बच्चा थोड़े ही है। अच्छा कमाता है, बीवी-बच्चे हैं उसके। कब तक बच्चा बना रहेगा?' जाने बुआ छोटे चाचा की किस बात से आहत हुई थीं, उन्होंने खुलकर नहीं बताया। शायद यज्ञ के दौरान छोटी चाची का सिरदर्द की वजह से हमेशा कमरे में बंद रहना उन्हें भाया नहीं। तीन-चार दिन लगातार उनका सिर भारी रहा और छोटे चाचा उनकी तीमारदारी में लगे रहे। वर्षों बाद मायके आई बहन से ढंग से बात तक नहीं की, यही उन्हें बुरा लग गया शायद।''

''तुम्हें नहीं लगा?'' केतकी बोल उठी।

''उस वक्त तो मैंने ध्यान नहीं दिया था; पर आज लगता है कि ऐसा हमेशा होता था। घर में जब भी कोई मेहमान आता कि उनका सिरदर्द शुरू हो जाता था। सारा काम बड़ी ताई और मेरी माँ ही सँभालती थीं। घर के किसी काम में हाथ बँटाते मैंने उन्हें कभी नहीं देखा। दादी के काम में ही मुझे महसूस हुआ, न तो चाची ने कभी घर के काम में सहयोग किया, न ही चाचा ने घर के खर्चे में। उन्होंने अपने छोटे होने का सिर्फ फायदा ही उठाया, कभी अपनी जिम्मेदारी नहीं समझी। संयुक्त परिवार ऐसे नहीं चलता है, केतकी।''

''फिर भी तो तुम्हारे यहाँ सब ठीक ही चल रहा था।''

''इसलिए कि दादी जीवित थीं और ताऊजी संवेदनशील ही नहीं, जिम्मेदार भी थे। सबसे पहले वही गाँव से पटना आए थे। नौकरी की, जमीन खरीदकर घर बनाया और पूरे परिवार को शहर ले आए। दोनों छोटे भाइयों को उन्होंने ही पढ़ाया। छोटे चाचा तो उनके लिए बेटे के समान थे। उम्र में बहुत छोटे होने के कारण छोटे चाचा उनके लिए हमेशा बच्चे ही रहे। बच्चा समझकर ही वे उनकी हर गलती को माफ करते रहे, इसलिए सब ठीक चलता रहा। पर हर चीज की एक सीमा होती है, केतकी। दादी की मृत्यु के बाद तो वो मानो सीमा पार कर गए।''

''हुआ क्या था?''

''तेरहवीं के बाद धीरे-धीरे सभी रिश्तेदार चले गए। सिर्फ दो-तीन मेहमान ही बच गए। मुझे भी उसी दिन चले जाना था। दुर्भाग्यवश रिजर्वेशन कन्फर्म नहीं हो पाया और मुझे रुकना पड़ा।''

''फिर?''

''काम के बाद सभी फुरसत में बैठे थे। करीब-करीब परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे थे। बात काम-काज से शुरू होकर खर्चे तक आ पहुँची। हमेशा की तरह छोटे चाचा हिसाब-किताब पूछने लगे। एक यही कार्य वो करते थे। उसी दौरान उन्होंने कहा, 'न्यौते में क्या कुल दस हजार रुपए ही आए, भौजी?'

'' 'जो आए, सब तुम्हारे सामने ही हैं।' ताऊजी बोले।

'' 'मुझे तो कम लग रहे हैं, भैया। लोग तो बहुत जुटे थे। किसीने दो सौ इक्यावन, पाँच सौ से कम नहीं दिया। कुछ लोगों ने तो ग्यारह सौ भी दिए। मैंने खुद देखा था।'

'' 'पास बैठे तुम्हीं तो लिख रहे थे, फिर उन्हें क्यों पूछ रहे हो?'

ताईजी बोल उठीं। वैसे तो कम ही बोलती थीं; पर उस दिन शायद अपने थके-हारे पति से सवाल किया जाना उन्हें अच्छा नहीं लगा।

'' 'इसीलिए तो पूछ रहा हूँ, मेरी लिस्ट में तो इतने ही लिखे हैं। कहीं और तो नहीं रखे हैं बाकी रुपए?'

'' 'क्या मतलब है, लाला। और कौन रखेगा?'

'' 'हो सकता है, आपने या मझली भौजी ने रखा हो; फिर भूल गई हों।' चाचा हमेशा की तरह अपनी दबंग आवाज में बोल उठे। अपनी दोनों भाभियों से ऐसे ही बातें किया करते थे, खासकर बड़ी भौजी से। वे ध्यान नहीं देती थीं। पर उस दिन अप्रत्याशित रूप से बोल उठीं, 'आज तो तुम इतना हिसाब-किताब कर रहे हो, लाला। इसके पहले एक बार भी पूछा कि इतने बड़े आयोजन में कुल कितना खर्च हुआ और कैसे हुआ!'

'' 'कितना हुआ होगा, यही कोई चालीस हजार।'

'' 'नहीं, पूरे पचहत्तर हजार रुपए खर्च हुए हैं। बीस हजार मझले ने दिए, तुमने क्या दिया?'

'' 'हुँह! आप कहेंगी और मैं मान लूँगा। इतने रुपए कैसे खर्च हो गए? भैया ने तो नहीं कहा। आप क्यों कह रही हैं?' इतना कहकर उन्होंने बड़ी आशा से बड़े भाई की तरफ देखा। उन्हें पूरी उम्मीद थी कि हमेशा की तरह वे अपनी पत्नी को टोक देंगे, यह कहकर कि 'जाने दो, वो तो सबसे छोटा है, बिलकुल बच्चा है। क्यों उसकी बात पर ध्यान देती हो!' और भौजी चुप रह जाएँगी। क्योंकि ऐसा पहले भी कई बार हो चुका था। बात बढ़ने से पहले ही खत्म हो जाती थी। पर उस दिन ऐसा हुआ नहीं।''

''फिर क्या हुआ, मुक्ता?''

''ताऊजी तमतमाए मुख से उठकर खड़े हो गए। जीवन में पहली बार इस तरह खुलेआम अपनी पत्नी का पक्ष लेते हुए बोल उठे, 'तुम्हारी भौजी बिलकुल ठीक कह रही हैं, मुन्ना। कुल इतने रुपए ही खर्च हुए। और जब तुम मुझसे इतने छोटे होकर मेरे सामने इतना सवाल-जवाब और हिसाब-किताब कर ही रहे हो तो फिर इस पूरे खर्च का तीसरा हिस्सा दो। कुल पच्चीस हजार रुपए तुम्हारे हिस्से में आते हैं। यही नियम है। माँ के प्रति तुम्हारी भी उतनी ही जिम्मेदारी थी जितनी कि मेरी।'

''यह सुनकर एक पल को तो सभी को साँप सूँघ गया, केतकी। ताऊजी ऐसा कहेंगे, किसीको उम्मीद नहीं थी। छोटे चाचा कुछ कहने को तत्पर हुए कि ताऊजी ने उन्हें वहीं रोक दिया, 'बस, अब मैं और कुछ नहीं सुनना चाहता। अपना हिस्सा दो और बात को खत्म करो।' यह कहकर उन्होंने अपनी चादर सँभाली और मुड़कर चले गए। उनकी खड़ाऊँ की 'ठक-ठक' देर तक उस पूरे आँगन में गूँजती रही।''

''इस पूरे कांड के समय तुम्हारे पिताजी उपस्थित नहीं थे?'' केतकी ने पूछा।

''थे क्यों नहीं, पूरे कांड को मूकदर्शक बने देखते रहे। उस वक्त उनके ऊपर मेरे आक्रोश का अंत नहीं रहा।''

''पर क्यों, उन्होंने तो कुछ नहीं कहा।''

''कुछ नहीं कहा, इसीलिए तो।''

''पर वे क्या करते, मुक्ता?''

''क्या करते! उन्हें चाहिए था कि पिता समान बड़े भाई तथा माँ समान बड़ी भाभी से जबान लड़ाते छोटे भाई को कान पकड़कर दो थप्पड़ रसीद कर दें। पर नहीं, वे तो ऐसे भाव से पूरी घटना को देखते रहे मानो यह झगड़ा उनके घर का नहीं, पड़ोस का हो; या फिर वे सारे नाते-रिश्ते, सारी मोह-माया से परे हों, साधु हों, संन्यासी हों। उस वक्त न तो किसीसे छोटे थे, न किसीसे बड़े। तीन भाइयों में से एक थे। दो भाइयों के झगड़े में पड़कर अपनी स्थिति क्यों खराब करते!''

''उसके बाद चाचा ने दिए रुपए?''

''मुझे नहीं मालूम। मैं तो अगले दिन ही वापस आ गई थी। अगर रुपए दिए भी होंगे तो आसानी से नहीं दिए होंगे; क्योंकि इस बात को लेकर छोटी चाची ने उन्हें आड़े हाथों लिया था।''

''क्या मतलब?''

''इस घटना के बाद जब उन्होंने अपनी पत्नी से यह कहा कि अब तो पच्चीस हजार देने ही पड़ेंगे। तो छोटी चाची तमककर हाथ नचाते हुए बोल उठी थी, 'इतने लोगों के बीच उन्होंने तुम्हारी इतनी बेइज्जती की और तुमने सुन लिया। तुमने क्या चूड़ियाँ पहन रखी हैं? उनके पास बहुत पैसा है तो वे प्रदर्शन करें। हमारे पास नहीं है तो हम क्या चोरी करें, डाका डालें!'

''अपनी पढ़ी-लिखी, स्मार्ट चाची के मुख से ऐसी भाषा और ऐसी ओछी बात सुनकर मैं दंग रह गई, केतकी। इनसान भी गिरगिट की तरह रंग बदलता है, यह बात मैंने उस दिन देख ली।''

''और तुम्हारी माँ?''

''वह भी चुप ही रहीं। न तो जेठानी की बात का समर्थन किया, न ही देवरानी को टोका। मेरा मन तो यह सब नाटक देखकर बिलकुल ही खिन्न हो गया। गनीमत कि विशाल उस वक्त वहाँ मौजूद नहीं थे, अपने किसी मित्र से मिलने गए थे; वरना पति के सामने मेरा सिर शर्म से झुक जाता।''

''और तुम्हारे ताऊजी?''

''उनकी तो बात मत पूछो। इस घटना के बाद पहले से ही कम बोलनेवाले ताऊजी बिलकुल ही गुमसुम हो गए। उनका मूड देखकर ही उनके पास जाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ी। वरना मेरे तो मन में आ रहा था कि जाकर उनकी पीठ ठोंक दूँ।''

''क्यों भला?''

''क्यों, जिंदगी में पहली बार उन्होंने बड़े भाईवाला सही काम किया। संयुक्त परिवार का जिम्मेदार बेटा सिर्फ बैल की तरह परिवार के जुए को कंधे पर ढोने के लिए ही नहीं होता, अधिक दबाव पड़ने पर, कंधे छिलने पर जुए समेत सवार को उठाकर पटक भी सकता है।''

"ठीक कह रही हो, मुक्ता। तुम्हारे ताऊजी जैसा बड़ा भाई ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा।"

"सभी सही कहते थे, केतकी, और ठीक ही कहते थे। उनकी जिंदगी जिम्मेदारियों का ही दूसरा नाम है। पूरे परिवार का स्तर ऊपर उठाने के लिए उन्होंने क्या नहीं किया। किंतु उनके छोटों ने उनके सारे किए-कराए पर पानी फेर दिया। जब उनकी अवस्था अधिक हो गई तो सभी अलग हो गए।"

"क्या कह रही हो, उनके करने का कोई महत्त्व नहीं रहा?"

"नहीं, अपने ताऊजी तथा ताईजी की परिणति देखकर मैं एक बात जान गई कि संयुक्त परिवार में महत्त्व करने का नहीं, महत्त्व सहने का है। और यह अपेक्षा सबसे अधिक सिर्फ उस व्यक्ति से होती है जो सबसे अधिक करता है, यानी कि अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक होता है। जिस दिन उसकी सहन शक्ति जवाब दे जाती है, परिवार की सारी कोमल और रेशमी भावनाएँ टूट जाती हैं। सिर्फ ठोस और पथरीली, नितांत व्यावहारिक सच्चाई बचती है, केतकी। यही मेरे ताऊजी के साथ हुआ।"

"अब वहाँ का क्या हाल है? उसके बाद गईं कभी?"

"क्यों नहीं गई, कई बार गई। अकसर जाती रहती हूँ। परिवार तीन हिस्सों में बँट गया तो मेरी पूछ भी तो तीन गुनी बढ़ गई है।" मुक्ता के स्वर में व्यंग्य छलक आया।

"वह कैसे?"

"मायके जाती हूँ, अपने माँ-बाऊजी के घर, तो ताऊजी तथा चाचाजी दोनों न्यौते पर बुलाते हैं। एक ही घर में रहते हुए, न्यौता खाते हुए मन टूक-टूक हो जाता है, केतकी।"

"सब उसी घर में रहते हैं?"

"हाँ, नीचे के हिस्से के ठीक बीचोबीच दीवार खड़ी हो गई है। एक तरफ मेरे माँ-बाप और दूसरी तरफ चाचा-चाची का परिवार।"

"और ताऊजी का परिवार?"

"तुम्हें याद होगा, ऊपर छत पर एक बरसाती बनी थी न भैया लोगों के रहने के लिए। उसीके साथ एक टीन शेड डालकर एक रसोई बना दी गई है। उसीमें वे लोग रहते हैं। इतना बड़ा घर बनानेवाले ताऊजी के हिस्से में सिर्फ वही बरसाती आई। छत साझी है। वही बरसाती उनका बेडरूम है, किसीके जाने पर वह ड्राइंगरूम हो जाता है और खाना खाते वक्त डाइनिंग हॉल।"

"लेकिन ऐसा क्यों, तुमने तो कहा था कि वह जमीन और वह घर सभी ताऊजी ने बनवाया था।"

"बनवाया था तो क्या, उनपर क्या उनका नाम लिखा था!"

"नाम नहीं लिखा था?"

"नहीं; वह जमीन, वह घर, सबकुछ मेरी दादी के नाम पर था।"

केतकी कुछ बोली नहीं, हैरानी से मुक्ता का मुँह देखती रही। उसकी हैरानी को और बढ़ाते हुए मुक्ता बोली, "परिवार का बड़ा और होनहार बेटा, जिससे माँ-बाप को बहुत अधिक आशाएँ हों, जिसपर बहुत अधिकार हो, जिसे सभी छोटे भाई-बहनों के सामने आदर्श उपस्थित करना हो वह अपने पैरों पर खड़े होने के बाद माँ-बाप के जीवित रहते अपने नाम से जमीन खरीदे, घर बनवाए तो समाज क्या कहेगा कि उसकी आँख का पानी मर गया। और मेरे ताऊजी ऐसे बेशर्म तो थे नहीं। उन्होंने जमीन ली तो माँ के नाम से, घर बनवाया तो माँ के नाम से—और माँ तो सबकी थी, सो संपत्ति भी सबकी हुई कि नहीं। माँ अपने सामने सब देखकर, तृप्त होकर गईं। उनकी भावुकता को कोई ठेस तो नहीं पहुँची।"

"यह बात भी ठीक है।"

"ठीक तो है, पर इनसान को यही भावुकता कभी-कभी बड़ी महँगी पड़ जाती है, केतकी। आज मुझे लगता है कि थोड़ा व्यावहारिक होना चाहिए। निरी भावुकता के सहारे जिंदगी नहीं कटती। कम-से-कम ताऊजी के परिवार के साथ तो ऐसा ही हुआ।"

केतकी ने चुपचाप सिर हिला दिया। फिर बोली, "चलो, पहले नहीं तो बाद में तो उन्हें प्रैक्टिकल होना चाहिए था। उन्हें कहना चाहिए था कि घर उन्होंने बनवाया है। कम-से-कम उसीमें रहने की व्यवस्था ढंग की होनी चाहिए थी।"

"अकसर ऐसा नहीं होता, केतकी। जिम्मेदार, भावुक, शरीफ इनसान चाहे भी तो एकदम से प्रैक्टिकल नहीं हो सकता। उसकी ईमानदारी, उसकी उदारता, उसकी भलमनसाहत पहले तो उसकी अपनी इच्छा, उसकी अपनी संतुष्टि के लिए होती है; पर बाद में वह उसकी मजबूरी बन जाती है। वह बँधुआ हो जाता है, केतकी, एकदम बॉण्डेड।"

"ऐसा कैसे हो सकता है?"

"होता है, बिलकुल ऐसा ही होता है। शरीफ इनसान की उदारता

कब उसकी मजबूरी बन जाती है, वह स्वयं भी नहीं जान पाता। इनसान का स्वयं अपना स्वभाव ही उसका दुश्मन हो जाता है। एक कहावत है न कि आदत मरने के बाद ही छूटती है। वह सिर्फ गलत आदतों के लिए नहीं है, सही आदतों के लिए भी है। जो इनसान शुरू से ही घर में सबके लिए अपने कर्तव्य का पालन करता रहा हो, हाँ में हाँ मिलाता रहा हो, वह एक बार यदि ना कह दे तो लोग बरदाश्त नहीं कर पाते। ना की बात तो छोड़ो, इच्छा पूरी करने में यदि थोड़ी भी कमी रह जाए तो वह प्रशंसा का नहीं, निंदा का पात्र हो जाता है; मानो सभी की इच्छा पूरी करने के लिए—और स्वयं उनकी शर्तों को पूरी करने के लिए वह बाध्य हो। उसकी परेशानियों को लोग सुनना तक नहीं चाहते। अगर वह अपनी परेशानियाँ बताना भी चाहे तो लोग समझते हैं कि वे एहसान जता रहे हैं।"

"जब ताऊजी के साथ ऐसा है तो तुम्हारे चाचा को किसीने कुछ नहीं कहा?"

"कहा क्यों नहीं। कहा कि उसका तो स्वभाव ही ऐसा है, कोई नई बात तो नहीं। बातें तो ताऊजी को ही अधिक सुननी पड़ीं। जानती हो, केतकी; कभी-कभी तो मुझे समाज के इन उलटे-पुलटे आदर्शों से बड़ी उलझन महसूस होती है। जो कर्तव्यहीन है, कृतघ्न है उससे एक शिकायत और जो कर्तव्यनिष्ठ है, कृतज्ञ है उससे सौ शिकायत।"

"उन जैसे इनसान से किसीको शिकायत हो सकती है, मुझे यकीन नहीं होता। तुम तो कहती थीं कि लोग उन्हें देवता कहते हैं। स्वयं तुम्हारी दादी कहती थीं कि वे तो बहुत ही सहृदय और संत हैं।"

"यही तो हम गलती करते हैं, केतकी। किसी भी इनसान को देवता बना देना बहुत बड़ी सजा है। और अकसर यह सजा उसे उन्हींसे मिलती है जिसे वह अपना मानता है। इनसान से देवता बनना बहुत कठिन है, सबके लिए संभव नहीं है; पर एक बार जो देवता बन जाए उसके लिए दुबारा आम इनसान बनना तो असंभव है। और फिर हमारे धर्म शास्त्रों ने देवताओं का जो स्वरूप हमारे सामने रखा है उसे अगर हम ध्यान से देखें तो पाएँगे कि जो भगवान् जितना सुंदर, कोमल और देनेवाला है वह उतना ही कठोर भी होता है। पात्र और अपात्र का भेद तो भगवान् भी करते हैं, केतकी। अगर ऐसा नहीं होता तो भोले बाबा शंकर के एक हाथ में डमरू और दूसरे हाथ में त्रिशूल नहीं होता, श्रीकृष्ण के एक हाथ में बाँसुरी और दूसरे हाथ में सुदर्शन चक्र नहीं होता। पर इनसान से देवता बने मनुष्य के साथ तो समाज इतनी रियायत भी नहीं करता। और जहाँ तक मेरी दादी का अपने बेटे को संत समझने का सवाल है, तो हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि संतों को गृहस्थी नहीं चलानी पड़ती, तमाम रिश्तेदारियाँ नहीं निभानी पड़तीं। अगर उन्हें ऐसा करना पड़ता तो पाते कि इन सब कार्यों में उलझकर चकरघिन्नी बनने से हिमालय पर जाकर तपस्या करना अधिक आसान है।"

"तुम्हारी बात सही है, मुक्ता; पर दूसरे व्यक्ति को जो नाम और यश मिलता है उसका भी तो कोई महत्त्व है।"

"पर इस बात को मानता कौन है, कहता कौन है?"

"नहीं माने, न कहे, पर उसकी आत्मा तो कहती ही होगी।"

"आत्मा की आवाज सुनने की अलौकिक शक्ति मनुष्य में नहीं होती। और अगर हो भी तो इससे उसकी परेशानियाँ तो कम नहीं हो जातीं।"

"फिर भी, व्यक्ति जिसपर विश्वास करता है उसीसे आशा भी करता है।"

"जरूर करता है; पर विश्वास को कभी सामर्थ्य से नहीं जोड़ना चाहिए। ये तो अपने विश्वास को, अपने संबंध को भुनाना है, केतकी। कोई मेरे ऊपर विश्वास करता है, इसका अर्थ यह नहीं कि इससे मेरी हैसियत या मेरी क्षमता चार गुना बढ़ जाएगी। ऊपर से सुनने में ये बातें बड़ी अच्छी लगती हैं कि 'हमें तो आपका ही आसरा है। हम तो आपके ही भरोसे हैं। आप तो हमारे लिए भगवान हैं। हमारा तो आपके ऊपर बहुत अधिकार है।' अब कोई कहे उनसे कि भरोसा करने से पहले, अधिकार जताने से पहले या भगवान् मानने से पहले एक बार उनसे पूछ तो ले कि वह स्वयं इसके लिए तैयार हैं या नहीं। अपने ऊपर इतने विश्लेषण थोपे जाने के लिए वह इच्छुक भी हैं या नहीं। तुम्हें संयुक्त परिवार बहुत पसंद है न, केतकी, अच्छी बात है; पर यह भी सच है कि संयुक्त परिवार तभी ठीक है जब सुख के साथ-साथ सभी का दुःख भी संयुक्त हो। यह पूरा समाज, खासकर मध्यम वर्ग का परिवार, जिसमें हम रहते हैं, इसमें सबकुछ अच्छा-ही-अच्छा, भला-ही-भला या शुभ-ही-शुभ नहीं है। इस मध्यम वर्गीय संसार में निहित लिप्सा, पतन, डाँवाँडोलपन, स्वार्थ, छल-छद्म और हिप्पोक्रेसी का तुम अनुमान भी नहीं लगा सकतीं। अपितु कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मध्यम वर्ग का यह पूरा पारिवारिक ढाँचा, या समाज का ढाँचा इन्हीं दुर्गुणों के बल पर खड़ा है। ऊपर से मीठी-मीठी बातें करनेवाले तुम्हारे अपने, सगे रिश्तेदार, परिचित कब तुम्हें उलटी छुरी से मूँड़ लेंगे, तुम्हें पता भी नहीं चलेगा। स्वयं परिवार में ही ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो अपना काम निकल जाने के बाद पहचानते भी नहीं हैं।" इतना कहते-कहते जाने कौन सी अव्यक्त पीड़ा से, आक्रोश से या आवेश से मुक्ता की आँखें छलक उठीं। चेहरा तमतमा आया।

केतकी आश्चर्यचकित रह गई उसकी मुखमुद्रा देखकर। फिर बोली, "तुम इतनी एक्साइटेड क्यों हो रही हो, मुक्ता? ये सब गुण-अवगुण समाज के किस वर्ग में नहीं हैं!"

"मैं जानती हूँ कि उच्च वर्ग और निम्न वर्ग भी इनसे अछूता नहीं है; पर यह भी सच है कि ये दोनों ही वर्ग तथाकथित नैतिकता से बँधे हुए नहीं हैं। उनका जो कुछ है वह खुला है, स्वीकार्य है। सिर्फ मध्यम वर्गीय भला आदमी ही नैतिकता का बोझ ढोते-ढोते मारा जाता है।"

"चलो, जाने दो; हम भी कौन सी बातें ले बैठे। तुम ठीक ही कह रही हो। आजकल हर घर में यही परिस्थिति है और फिर तुमसे सब

अच्छा ही व्यवहार करते हैं। आपस में सब भले ही अलग हो गए हों, पर तुमसे कोई भेदभाव नहीं करते हैं।''

''नहीं, भेदभाव तो नहीं करते हैं, उलटे सभी अपना-अपना पक्ष रखकर अपने-अपने मन की बात बताते हैं। बँटवारे के बाद पहली बार जब मैं गई, मेरी जिज्ञासा का समाधान करते हुए मेरी माँ ने बताया कि शुरू से ही वह ठाकुरजी की सेवा करती आई हैं। सो अब मेरी दादी के मरने के बाद वह उन्हें दूसरे हाथ में कैसे सौंप दें। और ठाकुरजी की स्थापना इसी भाग में है, इसलिए इस भाग में रहना उनकी मजबूरी है। दूसरे और सबसे अच्छे भाग में रहनेवाली चाची ने तो बाकायदा आँसू पोंछते हुए मुझसे कहा कि मरने से पहले दादी ने इसी घर में और इसी भाग में रहने का वचन लिया था, नहीं तो इतनी बेइज्जती सहकर भी क्या वह इस घर में रहतीं! वह तो किसी झोंपड़ी में भी रह लेतीं। यही नहीं, उन्होंने तो यह भी कहा कि भाई-भाभी किसीके नहीं होते। माँ के मरते ही सभी की नीयत बदल जाती है।

''मैं हैरान रह गई थी उनका यह मिथ्या और उलटा दोषारोपण सुनकर। अपनी इस अभिनय कला के बलबूते पर ही तो वे हमेशा परिवार में सबसे छोटी होने का भरपूर फायदा उठाती रहीं। सबकुछ रहते हुए भी अपने आपको निरीह, जरूरतमंद और कमजोर साबित करना वास्तव में एक ऐसा आर्ट है जो हर किसीको नहीं आता। अपने शौक को, स्वार्थ को अपनी मजबूरी जताना हर किसीके बलबूते की चीज नहीं है, केतकी।''

''और तुम्हारी ताईजी कुछ नहीं कहतीं तुमसे?''

''उनकी क्या बात करूँ, उन्होंने तो हमेशा की तरह खुले मन से मेरा स्वागत किया। मेरी पसंद की चीजें बनाईं, खिलाईं-पिलाईं, जतन किया। विदा करते वक्त साड़ी दी, फिर आने का मनुहार किया। किसीकी कोई शिकायत नहीं की। मैंने तो सोचा था कि वे दुःखी होंगी, परेशान होंगी; परंतु मुझे तो वह अपेक्षाकृत शांत, सहज लगीं। उनका स्वास्थ्य भी पहले से अच्छा लगा।''

''सरप्राइजिंग! आश्चर्य होता है सुनकर।''

''किंतु मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। उनकी जिंदगी वाकई पहले से अधिक आसान हो गई है, केतकी। अब वह सुबह आराम से चाय पीती हैं, पूजा करती हैं। चश्मा लगाकर अखबार भी बाँच लेती हैं। शाम को ताऊजी के साथ मंदिर तक टहल आती हैं। अब उन्हें रावण परिवार की रसोई जो नहीं करनी पड़ती। दो व्यक्तियों का काम ही क्या होता है। दोनों बेटे पढ़ने बाहर चले गए हैं। बेटी की शादी कर दी है। पहले की तरह सुबह से शाम तक न तो रसोई में खपना पड़ता है, न ही सबकी बातें सुननी पड़ती हैं।''

''क्यों, घर की और महिलाएँ पहले काम नहीं करती थीं?''

''क्यों नहीं करती थीं! मेरी माँ पूजा-पाठ, दीया-बाती में लगी रहती थीं और चाची तो नौकरी ही करती थीं। उस वक्त मैं समझ नहीं पाती थी, केतकी, कि रसोई सँभालना पूजा करने से और नर्सरी क्लास के बच्चों को ड्राइंग सिखाने से अधिक कठिन है। मैं तो घर की सभी महिलाओं से अपनी चाची को ही अधिक होशियार समझती थी। पर मेरा तो उनसे बिलकुल ही मोहभंग हो गया।''

''ऐसा क्यों?''

''मात्र चार सौ रुपए की नौकरी को अपनी मजबूरी बतानेवाली चाची और माँ के श्राद्ध पर पच्चीस हजार रुपए देने की नौबत आने पर अपनी पत्नी के कथनानुसार चोरी करने और डाका डालने पर मजबूर हो जानेवाले चाचा ने अलग होने के बाद उस पूरे हिस्से की साज-सज्जा में लाखों रुपए खर्च कर दिए। पूरे घर में संगमरमर के टाइल्स तथा नक्काशीदार फर्नीचर लगाए। देखोगी तो पहचान नहीं पाओगी कि यह वही घर है जिसकी गृहिणी को मात्र चार सौ रुपए के लिए नौकरी करनी पड़ती है।''

''तो फिर उन्हें जॉब करने की जरूरत क्या थी?''

''क्योंकि यह नौकरी उनका बहुत बड़ा हथियार थी। इसके बहाने न तो उन्होंने कभी भी घर के किसी काम को हाथ लगाया, न बीमार सास की सेवा की। फिर मरने से पहले सास ने उनसे उसी घर में बने रहने का वचन कब लिया, यह जानने का अलौकिक उपाय तो किसीके पास नहीं था, केतकी।'' इतना कहकर मुक्ता खामोश हो गई।

रात काफी हो गई थी। बातें करते हुए वक्त का पता ही नहीं चला। कमरे में लगी घड़ी की तरफ निगाह गई तो केतकी चौंक उठी, ''तीन बज गए! इतना समय हो गया, पता ही नहीं चला। चल, अब तू भी सो जा। दरअसल इतने समय बाद जो तू मिली तो बातों का सिलसिला ही चल निकला। मैं तो अब भी सोचती थी कि वहाँ सबकुछ वैसा ही है जैसा मैं छोड़कर आई थी।''

''बहुत कुछ बदल गया, केतकी। अब उन घरों में नीम के पेड़ पर तोते नहीं आते; क्योंकि दीवार खींचने के लिए हरे-भरे पेड़ को काट दिया गया है। घर-घर की यही कहानी है, केतकी। जब मेरी ससुराल में बँटवारे की नौबत आई तो मैं अपने घर का हश्र देखकर ही खामोश रही। एक दिन तो सबको अलग होना ही है। संबंध बिगाड़कर अलग होने से तो अच्छा है कि संबंध अच्छा रहते ही अलग हो जाएँ।''

इतना कहकर मुक्ता तकिया सिर के नीचे रखकर लेट गई। केतकी ने लंबी साँस ली। मुक्ता को लगा, पहले से ही हैरान केतकी के मुख पर थोड़ी उदासी झलक आई है, या हो सकता है, वह स्वयं उसकी आँखों का भ्रम हो। अपने आपमें खोई सी केतकी ने भी सोने का उपक्रम किया। एक-दूसरे को थोड़ा सो लेने का मौका देने के लिए दोनों ही सखियों ने खामोशी जरूर ओढ़ ली, पर नींद तो उनकी आँखों से कोसों दूर थी। □

द्वारा—श्री मनोज कुमार
आयुक्त, वाराणसी मंडल,
आयुक्त निवास, वाराणसी

कविताएँ

रात

✍ शशींद्र अग्निहोत्री

रात हो चुकी है
प्रथम प्रहर है
दिन तो किसी तरह से
बीत गया है।
खुद को भूलकर जो कुछ
कर्म था उसमें लगा रहा पर
अब क्या करूँ?
सोने के क्या कार्य हैं?
शायद फिर सुबह का
इंतजार है,
अपने आपको खोना है,
किस सुबह को पाना है।
वही सुख-दुःख के ताने-बाने
वही इनसान के इनसान का
शोषण का समाचार।
ईश्वर और माला जपने का
संस्कार न मानो तो
अपने मन का करता है।
पता नहीं क्या पाना चाहता है
यह मन किससे मतभेद।
इनसान उठता है
प्रकृति को भोगने के लिए
फूल तोड़ने के लिए
लड़की को मारने के लिए
पेड़ों को काटने के लिए
धरती को खोदने के लिए
अपनी सुख-सुविधा के लिए,
वह समझता है कि इस
ब्रह्मांड का वही केंद्रबिंदु है।
उसको नहीं पता है कि
फूल देखने के लिए हैं
सुंदरता भोगने के लिए नहीं है,
महसूस करने के लिए नहीं है,
केवल अस्तित्व के लिए है
जैसे स्नेह, लय और
तरंग की अनुभूति है।
वह हवा जो इनको
आत्मसात् करती है,
प्राण का प्रतीक है
और इनसान को जीवित रहना है।
दिन भर लाभ के लिए
विकास के लिए
वह सबकुछ करने के लिए

जिससे बच्चे डरें
जानवर माँगें जान के लिए
नारी सोचे अपने को बचाने के लिए
इनसान की कर्कश
प्रवृत्तियों से,
मैं क्या करूँ?
मैं दिन को किसी तरह
से बिता डालता हूँ,
लेकिन रात नहीं
बीतती है सोने में
क्योंकि ये सब प्रश्न मुझे घेरते हैं
अपने होने की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न
भी लगाते हैं
क्योंकि जो
कोमल है,
सुंदर है,
छोटे हैं,
सौम्य हैं,
वे सब डरकर किसी तरह से सोए हैं।
पता नहीं कल सुबह उनके
साथ क्या होगा?
क्या वे अपने आपको
इनसान से बचा पाएँगे?
या उसी प्रक्रिया में
समाप्त हो जाएँगे
और मैं
इन्हीं आँखों से
इन्हीं कानों से
इसी दिमाग से
इस दृश्य को देखने को
मजबूर होता हुआ
कुछ पाने के लिए
क्योंकि 'नेक वचन' यह कहेंगे

तुमको इस सबसे क्या कार्य है?
तुम जिज्ञासु नहीं हो सकते,
तुम इसीको बचा नहीं सकते,
क्योंकि
यह सब होना नहीं है।
पर होता आया है,
रात क्या बीतेगी?
हाँ, पर क्या दिन के अँधेरे
खत्म होंगे।
रोशनी होते हुए भी
जिन अँधेरों में मैं हूँ
उसमें मैं क्या करूँ?
सुबह जो
कल होगी वह तो होती है
पर मैं ही अपना अस्तित्व
खो दूँ,
एक ताकत बन जाऊँ,
और
फूल में/लड़की में/पेड़ों में
जानवरों में समा जाऊँ कि
मेरे होने के डर से इनसान
सहम जाए
और अपने को निर्दयी होने
से बचाए
तभी शायद मेरे लिए
रात नहीं होगी
दिन नहीं होगा
सुबह नहीं होगी
शाम नहीं होगी
और कुछ भी व्यक्तिगत नहीं होगा
स्वयं भी कहीं नहीं होगा
और फिर प्रश्न भी नहीं होंगे,
पर
क्या यह संभव हो सकेगा?
पता नहीं
तब तक
ऐसे ही
रात में समय के बीतने का
इंतजार करना होगा,
और फिर एक सुबह अगली सुबह
कुछ-कुछ आज की सुबह जैसी। □

सी-१६, एल-पार्क,
महानगर विस्तार, लखनऊ-२२६००६
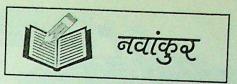
कविताएँ

✍ मयंक 'श्रीमुख'

जन्म : ३०.४.१९९३ को दिल्ली में।

रचनाकर्म : संगम ज्योति II में अन्य प्रतिष्ठित कवियों के साथ कविताएँ (प्रकाशन में)।
'पेंटिंग विदाउट ब्रुश' पुस्तक प्रकाशनाधीन।

पुरस्कार : १. उत्तर प्रदेश सरकार की पठन-पाठन एवं साहित्य अभिरुचि प्रतियोगिता में पुरस्कार। २. हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा बाल कवि प्रतियोगिता में सहभागिता पुरस्कार। ३. माननीय संचार मंत्री श्री रामविलास पासवान द्वारा पेंटिंग के लिए प्रोत्साहन। ४. अवंतिका ग्रुप द्वारा प्रशस्ति पत्र।

सूरज जो हारे बादलों से

जो हिम्मत हारते
कभी न बढ़ते,
पीछे-ही-पीछे
रहते वह हरदम।
सूरज जो हारे
बादलों से थक,
कैसे हो उजियारा
धरती पर अपनी।
पेड़ों को न मिले
धूप तनिक भी,
न पानी होगा
न ऑक्सीजन होगी,
न भोजन के लिए
कुछ कहीं होगा।
कहाँ कब तक हम
जिंदा रहेंगे,
कैसे चलेगी यह
सृष्टि निरंतर।

□

इंद्रधनुष

देखो इंद्रधनुष निकला
बारिश की रिमझिम बूँदों में,
जब धूप मुसकाई
देखो इंद्रधनुष निकला।
दूर आकाश में
सात रंगों के,
किसने ब्रुश से रंग बिखराए?
कौन बढ़ई किस आरी से,
इंद्रधनुष को गढ़ा अरे?
मैं निश दिन सोचूँ
रामचंद्र ने शिवधनुष तोड़ा
इंद्रधनुष को तोड़े
ऐसा शूरवीर है कौन?
देखो इंद्रधनुष निकला।

□

चिड़िया

सुबह-सुबह चिड़िया चहचहाती है
चीं-चीं करती जमीन पर उतरती है,
मैं देता हूँ उसे दाना
और वह उसे चुगती है
घूम-घूमकर,
फुदक-फुदककर।
मैं टहलना छोड़ देता हूँ,
हँसता हूँ, खिलखिलाता हूँ
और दूर से देखता रहता हूँ
और चिड़िया फुर्र से उड़ जाती है।

□

८९/२, राधा पुरी विस्तार-II,
दिल्ली-११००५१

आवश्यक सूचना

प्रिय पाठको! 'नवांकुर' स्तंभ के अंतर्गत केवल पच्चीस वर्ष तक की आयु के लेखकों की ही रचनाएँ—कहानी, लघुकथा, कविता, आलेख, व्यंग्य आदि सभी विधाएँ—प्रकाशित की जाएँगी।

कृपया रचना के साथ अपनी जन्मतिथि का प्रमाणपत्र भी भेजें।

आपकी रचनाओं का स्वागत है।

व्यंग्य कथा

तिवारीजी

✍ अजय मिश्र

जन्म : १२ नवंबर, १९४८ को काशी के एक संस्कृतज्ञ परिवार में।
शिक्षा : काशी हिंदू विश्वविद्यालय से स्नातक।
कृतित्व : प्राय: तीन दशक की हिंदी-अंग्रेजी पत्रकारिता के बाद साहित्य लेखन की ओर मुड़े। बनारस के पक्के महालों पर लिखे उपन्यास से, जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में।
संप्रति : धनबाद में कालक्षेप करते हुए बनारस और धनबाद पर दो उपन्यासों का लेखन। प्राय: साथ-साथ।

पं. राममोहन तिवारी को आप न जानते हों, ऐसा हो ही नहीं सकता। क्षमा करें, पहले उनका निवास-स्थान तो बता दूँ। तिवारीजी उसी शहर के रहनेवाले हैं, जिसे हेमचंद्र नामक एक प्राचीन संस्कृत कवि 'ठगों का स्थान' बता गए हैं, यानी जहाँ के लोग बाहर से आनेवालों को बेवकूफ बना वस्त्रामोचन करते आए हैं, जहाँ रहनेवालों से न चाहते हुए भी पाप-कर्म सिर्फ इसलिए हो जाया करते हैं कि मृत्यु-पश्चात् मोक्ष-प्राप्ति तयशुदा है—वो क्या कहते हैं गारंटी के साथ, जहाँ बहुत से व्यक्तियों का जन्म संभवत: भाँग पीने के लिए ही होता है, जहाँ परमपद से लुढ़कने में राँड़ और सीढ़ी अद्‌भुत मदद करती हैं, सभी तरह की जिम्मेदारियों के जुए से मुक्त, जबरदस्ती भोग लगाने के लिए कटिबद्ध जहाँ के साँड़ और संन्यासी जगत्-प्रसिद्ध हैं तथा जिनसे बचने की सलाह सभी ज्ञानी पुरुष समय-समय पर देते आए हैं।

ऐसी अनेक-अनेक विशेषताएँ हम तिवारीजी के शहर के बारे में बता सकते हैं। चूँकि आप ज्ञानी हैं, विज्ञ हैं, अत: अब तक समझ गए होंगे कि तिवारीजी महाराज भारतेंदु, रत्नाकर और प्रसाद के शहर यानी बनारस में रहते हैं। आपके रहने से यह शहर धन्य हुआ, उनके पड़ोसी धन्य हुए। आचार्यों ने स्वयं किए अनुभव को उत्तम कोटि का बताया है। इस शहर की विशेषताओं से आप स्वानुभव के पिटारे को संवृद्ध करना चाहें तो हमें आपत्ति न होगी, किसी बनारसी को भी न होगी। आप नि:शंक वहाँ जाएँ।

हमारे तिवारीजी, जिन्हें आप अब तक पहचान गए होंगे और न सिर्फ उनका नाम बल्कि उनका डील-डौल, उनकी आदतें, उनका स्वभाव और बात-बात में उनका 'जाए द बतिया त एक्कै हौ' कहना आपके स्मृति-पटल पर बार-बार कौंध रहा होगा, में इतनी विशेषताएँ हैं कि इनसे एक बार भी मिल लेने पर कोई इन्हें भूल नहीं सकता। पाणिनि के सूत्र घोखने में असमर्थ या वैदिक ऋचाओं का 'स्वर' साधने में लगातार त्रुटि करने में दक्ष जिन छात्रों के घुटनों और अँगुलियों पर संस्कृत के विद्वान् ताड़ के पंखें की डंडी बरसाते हुए उन्हें 'मूढ़, मतिमंद, अपंडित, बुद्धि के शत्रु जैसी उपाधियों से विभूषित करते हैं उन छात्रों जैसी खराब स्मरण शक्तिवाले व्यक्ति भी तिवारीजी को भूलने के दोषी नहीं हो सकते।
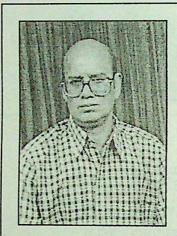
तिवारीजी मीरघाट मुहल्ले की एक बंद गली के अंतिम मकान में रहते हैं। उनके मकान से ठीक पहले एक सरदार यानी यादव बंधु का मकान है, जिसकी भैंस गली में ही बँधी रहती है। अक्ल और भैंस के बारे में प्रचलित कहावत के बावजूद वह तिवारीजी को आने-जाने का रास्ता दे देती है। तिवारीजी से मिलने के लिए आनेवालों को सँकरी गली के बीचोबीच अड़ी और खड़ी भैंस को हटाने के लिए भाँति-भाँति के प्रयास करने होते हैं। उनके ध्वनि प्रयास मात्र से आगंतुक को पहचान तिवारीजी तय कर लेते हैं कि उन्हें अपने दर्शन से आगंतुक को धन्य करना है अथवा नहीं। इसलिए उन्होंने दरवाजे की चौखट पर घंटी नहीं लगवाई है। जो काम घंटी नहीं कर सकती, उसे भी भैंस पूरा कर देती है। अत: भैंस से तिवारीजी का खासा तादात्म्य है।

हाँ, तो तिवारीजी की इस गली का नाम आपको सोद्‌देश्य नहीं बताया जा रहा है। गली के ठीक बाहर एक विशाल चबूतरे के सामने उस देवी का मंदिर है जिसकी चर्चा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में अत्यंत श्रद्धा से की है। ठीक सामनेवाली गली में स्वामी करपात्री द्वारा निर्मित 'नया' विश्वनाथ मंदिर है। तिवारीजी की विशेषताओं को जानने के बाद आप अवश्य ही श्रद्धा से अभिभूत हो उठेंगे और दशाश्वमेध से चौक की ओर जाते आपके कदम अनायास गली के बाहर थमेंगे। आप ठिठककर, तिवारीजी के घर की ओर मुँह कर, आँखें बंद कर

श्रद्धापूर्वक प्रणाम करेंगे। तब आपकी पीठ उपर्युक्त वर्णित मंदिरों की ओर हो जाएगी। फलतः आपको पाप लगेगा। थोड़े-बहुत पाप का भागी गली का नाम बतानेवाला यह अधम भी होगा; क्योंकि आचार्य कौटिल्य कह गए हैं कि चोर का साथ देनेवाला या जानते हुए भी चोरी की वस्तु बेचनेवाला चोर जितने ही दंड का भागी है। गली का नाम सुनते ही हमें मालूम है कि आप पाप-पुण्य की संभावना को बीजगुप्त की तरह तिलांजलि दे प्रणाम करने दौड़ पड़ेंगे। अस्तु, गली का नाम आपको नहीं बताया जा रहा है। हमें अपने संचित पुण्यों से बहुत मोह है।

किंतु इस विवरण से इतना तो आप समझ ही गए होंगे कि जिस व्यक्ति के निवासमात्र को प्रणाम करने से पुण्यों के क्षय की प्रबल संभावना हो, वह व्यक्ति महान् होगा। वैसे, आपने यदि तिवारीजी से सशरीर मिलना तय कर लिया है तो घोड़े पर सवार होकर गदौलिया से आगे बढ़ डेढ़सी के पुल या घाट की ओर जानेवाली दशाश्वमेध सड़क पर चित्तरंजन पार्क तक का चक्कर लगा लें। तिवारीजी शहर में घोड़े पर किसी देहाती-से लगनेवाले व्यक्ति को देखते हैं तो उसे 'परनाम' अवश्य करते हैं। अगर वह ब्राह्मण न हुआ तो बाद में उसे 'आशीर्वाद' देते हैं। उसके घोड़े की कनौती, दुम, अयाल और टाँगों की प्रशंसा करते हैं। घोड़े की खटपट के जिम्मे लगा अतिथि की देव-स्वरूप पूजा के लिए अपने घर ले आते हैं। अपने घर ले जाकर, समय चाहे जो हो, स्नान कर पूजा अवश्य करते हैं। ऐसा कर वे आगत अतिथि को स्वयं के सनातनी होने का सबूत देते हैं, ताकि वह बिना बताए ही उनकी भक्ति तथा धर्मपरायणता के बोझ तले दब जाए। यानी तिवारीजी कहने की अपेक्षा करने में अधिक विश्वास रखते हैं, 'कहा सौ, किया एक।' यह थी भूमिका, अब काम।

इतना करने के बाद कंधे पर अँगौछा रख वे जलपान कराने के उद्देश्य से अतिथि को भगवानदास की कचौड़ी की दुकान पर ले आते हैं। मीरघाट निवासी आपको शपथपूर्वक बताएँगे कि चौक से दशाश्वमेध तक इतनी अच्छी, स्वादिष्ट कचौड़ियाँ कोई नहीं बनाता। जलेबों का तो कहना ही क्या—गरम और कुरमुरे। सुबह के समय यहाँ लाइन लगती है। तिवारीजी चूँकि पुराने तथा नियमित ग्राहक हैं, इसलिए बूढ़ा भगवानदास इनका विशेष ध्यान रखता है। वह जानता है कि तिवारीजी जितनी देर यहाँ रहेंगे, उसके अनेक ग्राहक दूर ही ठिठके, दुबके और सहमे खड़े रहेंगे। भगवानदास की जल्दी और हड़बड़ी का कोई बुरा नहीं मानता। अतिथि तिवारीजी को मिले इस सम्मान से प्रसन्न होता है। संसार में चूँकि कुछ भी स्थायी नहीं, यहाँ तक कि देह भी क्षणभंगुर है, अतः अतिथि की प्रसन्नता भी स्थायी नहीं होती। इसमें तिवारीजी का कोई दोष नहीं है।

कचौड़ी, जलेबा और सब्जी के दोने दोनों हाथों से सहेजने के बाद तिवारीजी को अकस्मात् याद आता है कि घर से चलते समय हड़बड़ी में वे कुरता पहनना तो भूल ही गए। तिवारीजी की धर्मपरायणता, माथे पर शोभित चंदन के टीके और सिर पर बँधी शिखा से प्रभावित अतिथि जाहिर है, उन्हें दुबारा घर जा पैसे लाने का कष्ट नहीं देता। वह संकटमोचक बन तिवारीजी का त्राण कर स्वयं को धन्य मानता है, 'ऐसे पठित, ब्राह्मण और धर्मानुरागी की सेवा का मौका बड़े सौभाग्य से मिलता है।'

आकंठ जलपान के बाद अँगौछे से हाथ और मुँह पोंछ तिवारीजी अपने अतिथि को विशालाक्षी, कालिका माई, विश्वनाथ, अन्नपूर्णा और वापसी में विघ्न-विनायक का दर्शन अवश्य कराते हैं। प्रत्येक मंदिर में घुसने से पहले वे अतिथि को फूल-माला, प्रसाद खरीदवाना तथा मंदिर में पुजारी को चढ़ावा और दक्षिणा दिलवाना नहीं भूलते। यह सब करते हुए तिवारीजी उसका नाम, पता, गाँव की चौहद्दी तथा उसकी आर्थिक स्थिति से संबंधित सामान्य ज्ञान की आवश्यक जानकारी हासिल कर अपनी स्मृति के भोजपत्र पर खोद चुके होते हैं। विघ्न-विनायक का दर्शन तिवारीजी इसलिए आवश्यक मानते हैं, क्योंकि उन्हींकी कृपा से वे निर्विघ्न जीवन-यापन कर रहे हैं।

चूँकि पृथ्वी से अभी धर्म का पूर्णतः नाश नहीं हुआ है, 'मित्रता', 'प्रतिकार' जैसे शब्दों की अंतर्निहित भावना थोड़ी-बहुत बची रह गई है, इसलिए इतना होने के बाद विदा लेते

अतिथि का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह तिवारीजी को अपने गाँव आने का निमंत्रण दे। उन्हें आज तक ऐसा एक भी कृतघ्न अतिथि नहीं मिला है जिसने विदा लेते समय स्वस्तिवाचन करते आशीर्वाद की मुद्रा में उठे उनके हाथ पर कम-से-कम पाँच रुपए न रखे हों और उन्हें अपने घर न बुलाया हो। अतिथि के घोड़े पर चढ़ते ही तिवारीजी भी लंबे कदमों से उन फूल-माला विक्रेताओं से, पुजारियों से अपना हिस्सा वसूलने लौटते हैं, जिन्हें उनके माध्यम से लाभ होता आया है तथा आगे भी होता रहेगा।

तिवारीजी के इन गुणों के लिए किसी 'बाहरी' व्यक्ति को श्रेय देना उपयुक्त न होगा। उक्त सभी गुण तथा विभिन्न प्रकार की कलाएँ उन्होंने बिना गंडा बँधवाए, बिना गुरु-दक्षिणा दिए अपने पिता से सीखी हैं। मुहल्ले में फैली अनेक दंतकथाओं के नायक तथा अनेक किंवदंतियों के उत्स तिवारीजी के पिता से चूँकि आपका कुछ लेना-देना नहीं, अतः पिता-प्रसंग को आगे बढ़ा हम उनकी आत्मा को कष्ट नहीं देंगे। हिंदू होने के नाते पुण्यात्मा के अनेकानेक विशिष्ट गुणों के प्रति आँख, कान तथा मुँह बंद रखना हमारा कर्तव्य है। फिलहाल आप अपना काम तिवारीजी से ही चला लें। वैसे भी संस्कृत साहित्य के अध्येता जानते हैं कि हर योग्य पिता 'पुत्रादिस्यात् पराजयं' की कामना करता है—यानी पिता में पुत्र को स्वयं से बड़ा (बढ़कर) देखने की इच्छा होती है। तिवारीजी ने अपने पिता को निराश नहीं किया है। उनके पिता जहाँ कहीं भी होंगे, अपने पुत्र यानी तिवारीजी पर गर्व कर रहे होंगे।

यह सारा वृत्तांत आपको अजीब, अटपटा अथवा किसी अद्भुत देश का आश्चर्य-वृत्तांत तो नहीं लग रहा? ऐसा हो, तब भी हम आपकी कोई मदद नहीं कर सकते और न क्षमा-याचना ही करेंगे।

बनारस यानी काशी में आजीविका के जो हजारों तरीके उपलब्ध हैं। उनमें सबसे सहज और सबके लिए सुलभ तरीका है 'यात्री पुजाना'। इस तरीके में धन का निवेश नहीं है, न किसी विशेष किस्म की वेशभूषा की ही जरूरत है। सिर पर शिखा और कंधे पर सूत्र भी आवश्यक नहीं। होने पर सोने में सुहागावाली बात है। दैवात् कभी किसी अड़ गए देहाती यात्री को डराने, पुंनरक का भय दिखाने और शाप की भूमिका बेधने में सूत्र की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। प्राचीन काल में चोर सेंध की लंबाई-चौड़ाई नापने का काम सूत्र से ही लिया करते थे। तिवारीजी के सुंदर, सुचिक्कण, गोल-मटोल ऊर्ध्व भाग पर कसा और फँसा जनेऊ शरीर का एक हिस्सा ही प्रतीत होता है।

यदि आप कभी रिक्शा पर, गाड़ी पर या पैदल ही गदौलिया से दशाश्वमेध घाट की ओर बढ़ें तो बनारस लॉज पार करते-न-करते आपकी भेंट एक खास तरह के प्राणी से होगी, जिसे बनारस के पुराने वाशिंदे 'भड्डर' कहते हैं। इनसे मिलने, भेंट करने के लिए आपको किसी भी तरह का यत्न या प्रयत्न नहीं करना है। आपको तो बस इधर-उधर दुकानों का साइनबोर्ड देखते हुए या निर्विकार भाव से सामने की सड़क देखते हुए चुपचाप रहना है। आप पाएँगे कि अचानक कोई व्यक्ति आपके रिक्शा या ताँगा के पीछे दौड़ने लगा है। सुबह के समय, यानी जब हजारों धर्मालुओं की भीड़ गंगास्नान के लिए टूटती है तब यह बंद दुकानों के चबूतरों, तख्तों पर बैठे अपने साथियों के साथ गपियाते रहते हैं। पान की पीक से थूकते समय, खरके से दाँत खोद सुपारी का टुकड़ा निकालते हुए या किन्हीं पुण्य श्लोकों का स्मरण करते हुए इनकी दृष्टि गदौलिया से आनेवाले व्यक्तियों पर टिकी होती है, जो पैदल भी होते हैं और किसी सवारी में भी। अपने लिए योग्य यजमान का चुनाव कर यह उसके पीछे पूरी ताकत से लग गंगास्नान तथा मंदिर जाने के लिए, यानी धर्म के लिए प्रेरित करते हैं।

तिवारीजी भी यही काम करते हैं, किंतु परिष्कृत ढंग से; क्योंकि यह विद्वान् व्यक्ति हैं, समझदार तथा ज्ञानी व्यक्ति हैं। वे गदौलिया से दशाश्वमेध की दौड़ लगा स्वास्थ्य नहीं बनाते, जो ईश्वर की कृपा से तथा यजमानों के सत्संग से काफी अच्छा है। तिवारीजी 'द सैलून' के बाहर बैठे रहते हैं—सड़क पर कल्लू की चाय की दुकान की किसी बेंच पर कब्जा कर पालथी मार 'आज' या 'भारत' के पन्ने पलटते हुए। खेल-खबरों के चक्कर में वे नहीं पड़ते; क्योंकि तिवारीजी यह नहीं मानते कि देश में इतनी गरीबी है कि बाईस खिलाड़ियों को एक ही गेंद से खेलना पड़े। वे सभी खिलाड़ियों को एक-एक गेंद देने के पक्षधर हैं। व्यापार से तिवारीजी का क्या लेना, क्या देना! अपने देहाती यजमानों के हार्दिक निमंत्रण पर वर्ष में चार-पाँच बार गाँव-देहात जानेवाले, वापसी में गेहूँ, गुड़, चावल या दाल बँधवाकर साथ लानेवाले तिवारीजी को तिलहन-दलहन वर्ग की सभी वस्तुओं की कीमत जबानी याद है। यह भी कि मुहल्ले का कल्लू साव इन वस्तुओं पर कितना मुनाफा धरता है।

संपादकीय, यदि मौका मिले तो, वे खाडिलकर नामक संपादक से बेहतर लिख सकते हैं; क्योंकि 'आज' संपादक के सैद्धांतिक ज्ञान की समाज में कोई उपयोगिता नहीं। जीवन-निर्वाह में व्यावहारिक ज्ञान ही साथ देता है, जो तिवारीजी में कूट-कूटकर भरा हुआ है। वे जानते हैं कि आधी आबादी स्त्रियों की है, जिनका बुद्धि से छत्तीस का संबंध है। शेष आधी आबादी में खेलने की उम्रवाले नौनिहाल हैं, सामाजिक कार्यों में लिप्त नौजवान हैं, शेष बचे आधे के एक-तिहाई यानी बूढ़ों में कितनों की दृष्टि पर अखबार पढ़ने में जोर पड़ता है। अपने इस ज्ञान के कारण, यानी लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति न होने के कारण वे ज्ञान-प्रकाश नहीं करते। ज्ञान तो उनमें इतना कि वे प्रधानमंत्री को भी सलाह दे सकते हैं। स्थानीय समाचारों को क्या पढ़ना! उनका संपर्क सूत्र इतना विशाल तथा चहुँमुखी है कि समाचार-पत्र जिन घटनाओं को ताजा समझ छापते हैं, वे उनके कर्ण-कुहरों के माध्यम से उनकी खोपड़ी में धँस कई घड़ी पहले ही बासी-तिबासी हो चुकती हैं। ऐसे ज्ञानी व्यक्ति को अखबार से क्या काम। अतः

तिवारीजी शास्त्रीय अर्थ में पन्ना पलटते हैं—इसीको वे अखबार पढ़ना बताते हैं। जबकि तिवारीजी के बारे में छिद्रान्वेषियों का कहना है कि वे लिख लोढ़ा, पढ़ पत्थर हैं। निंदक और शत्रु प्रायः मिथ्याचरण करते हैं, अतः उनकी बातों पर आप भी ध्यान न दें तो बेहतर। तिवारीजी नहीं देते!

बचपन में पता नहीं कैसे तिवारीजी का रामनगर की रामलीला में लक्ष्मण बनने के लिए चयन हो गया था। इस घटना से आप यह तो समझ ही गए होंगे कि वे बचपन से ही बहुत तेजस्वी किस्म के व्यक्ति हैं। तेज पहले केवल उनके चेहरे से टपकता था, आजकल उनकी जिह्वा से भी प्रकट होता है। इस कार्य में उनकी पहली पत्नी के भीषण योगदान को पड़ोसी भुलाए नहीं भूलते। काशी में रहने के कारण पंडितों का शास्त्रार्थ कभी-न-कभी आपने देखा ही होगा। पहले एक पक्ष अपनी बात कहता है, पुष्टि के लिए प्रमाण देता है; उसके चुप होने पर दूसरा पक्ष तर्कों को काटता है, अपने तर्क रखता है। इस लंबी प्रक्रिया के बाद न्याय-पीठ पर बैठा व्यक्ति जय-पराजय का निर्णय देता है। तिवारीजी की पूर्व पत्नी कंकावती शास्त्रार्थ के इन नियमों में विश्वास न रखती थी। उसकी वाक्-शक्ति, स्मरण-शक्ति तथा उच्चारण-शक्ति अपूर्व थी। होती भी क्यों न, शक्ति रूपा जो ठहरी!

वह ब्राह्म मुहूर्त से ही शुरू हो जाती थी, फलतः तिवारीजी को भी आलस से निवृत्ति पा बिस्तर-त्याग करना होता था। पुराणों में कहा गया है कि समस्त चराचर सूर्य के तेज से शक्ति प्राप्त करता है। यह बात, यानी पुराण-वचन कंकावती पर पूरी तौर पर लागू होता था; क्योंकि ज्यों-ज्यों सूर्य चढ़ता था, उसकी वाणी भी प्रखर तथा तेजोमय होती जाती थी। शब्द-शरों की प्रहारक क्षमता भयंकर हो जाती थी। तिवारीजी के पड़ोसी बताते हैं कि वे कुछ देर तो पत्नी को शास्त्रार्थ में पराजित करने की कोशिश करते थे; किंतु पत्नी एक ही वाक्य में अनेकानेक उपमाओं, घटनाओं तथा अभिधा, लक्षणा और श्लेष आदि अलंकारों का धड़ल्ले से प्रयोग करती थी। पत्नी के इस ज्ञान के सम्मुख नतमस्तक हो तिवारीजी अपने अस्त्र-शस्त्र 'त्वदीयं वस्तु गोविंदं' की भाँति पत्नी को चरणार्पण कर हाथ में लोटा और कंधे पर अँगौछा रख गृह-त्याग कर देते थे।

प्रथम पत्नी की मृत्यु से तिवारीजी के पड़ोसियों के सुबह उठने की आदत खराब हो गई। नुकसान उनको भी हुआ। पुराने लोग कह गए हैं कि घूरे पर पड़े कंचन और बालक के मुँह से निःसृत सुभाषित को लपककर ग्रहण कर लेना चाहिए। फिर वह तो अर्धांगिनी थी—अपना ही आधा अंग। उनका ज्ञान अधूरा ही रह गया। पत्नी की मृत्यु को विधि का विधान मान उन्होंने उतने ही ज्ञान से संतोष किया, जो उनके लिए पर्याप्त था। इस हानि की भरपाई उन्होंने सामान्य ज्ञान वृद्धि से की, जो समय बीतने पर उनमें मुँह तक भर छलकने लग गया था। उन्होंने अपने अड़ोसी-पड़ोसी तथा मुहल्लेवालों की कई पुश्तों के बारे में विशेष रुचि लेकर ऐसी-ऐसी गूढ़ बातें अपनी स्मृति के पिटारे में जमा कर रखी हैं, जिन्हें सार्वजनिक रूप से सुनना कोई भी समझदार पड़ोसी पसंद करता; यथा चिथरूमल पत्नी के मैके जाने के बाद एक बार चमाइन के हाथों पिटे थे, सेठ मातादीन की विधवा बहन ने फलाँ साल एक पुत्र को रूपा चमाइन की मदद से जन्म दिया था।

> अखबार का एक संस्करण 'यानी' लिखता है तो दूसरा 'यानि'। एक में 'राजनैतिक' होता है तो दूसरे में 'राजनीतिक'। एक 'संवैधानिक' सवाल उठाता है तो दूसरा संस्करण 'सांविधानिक'। कहाँ तक गिनाएँ, किस-किसके बारे में सोचें।

पड़ोसी यह नहीं मानते कि ज्ञान का सही उपयोग उसके प्रसार में है, अपने ज्ञान से दूसरों का लाभार्थी करने में है। तिवारीजी अपने ज्ञान को स्वयं तक सीमित रखें, इसकी एवज में तिवारीजी से सामना होने पर यानी तिवारीजी यदि संकट के समय कुछ माँगने पहुँचें तो पड़ोसियों को रहीम का 'उनसे पहले वे मुए' दोहा याद आ जाता है। एक की स्मृति दूसरे की विस्मृति का कारण बनती है। इस तरह वे अपने सामान्य ज्ञान के प्रदर्शन से वंचित रह जाते हैं।

तिवारीजी की इन कतिपय विशेषताओं के सामान्योल्लेख से ही आप समझ चुके होंगे कि वे पहले दरजे के वेदांती हैं। वेदांत में अज्ञान, सुस्ती, काहिली, निद्रा, मूर्खता एवं प्रमाद को तमस का लक्षण बताया गया है। उनकी धार्मिक प्रवृत्ति तो आपने देखी ही, उनके सामान्य ज्ञान का जायजा आपने लिया ही। ब्राह्म मुहूर्त में शय्या त्याग करनेवाला व्यक्ति सुस्त या काहिल नहीं हो सकता। उन्हें मूर्ख एवं महज भाँग छानने के कारण प्रमादी भी नहीं कहा जा सकता। उनमें अभिमान भी नहीं—सबको, अनजान व्यक्ति को भी 'परनाम' करते हैं। लोकोपकारी हैं, कल्याण-भावना के तहत स्वस्तिवाचन पश्चात् आशीर्वाद देते हैं। वेदांत के अनुसार तमस का संबंध सही निर्णय क्षमता के अभाव, विपरीत निर्णय, न होने पर होने की संभावना व्यक्त करने तथा संदेह से है, जिसे अभावना, विपरीत भावना, असंभावना तथा विपर्तिपति कहा गया है। वे इन सबसे कोसों दूर हैं—यानी वेदांती हैं। वे अज्ञानियों की खोज में रहते हैं। कितना भी बड़ा अज्ञानी और मूर्ख क्यों न हो, उनके संसर्ग में आ उसके ज्ञानचक्षु तथा बुद्धि-कपाट स्वतः खुल जाते हैं। फिर आजीवन उसे कोई मूर्ख नहीं बना सकता—

सिवाय तिवारीजी के।

तिवारीजी ने तय किया कि वे पंडिताई छोड़ लेखक बनेंगे। पंडित रहने में बड़ा कष्ट है। नहीं-नहीं, गलत कह गए। लेखक बनना है, अतः शुद्धाशुद्धि का तो विचार करना ही होगा। गलत-सलत शब्द का, उलटी-पलटी क्रिया का या अशुद्ध वाक्य का प्रयोग नहीं कर सकते। सबकुछ व्याकरणसम्मत होना होगा, ताकि मंदाग्नि रोग पीड़ित आलोचक नामक जीव उनकी रचना हजम न कर सकें। सही वाक्य होगा, 'पंडित बने रहने में अतीव कष्ट हैं'—भाँति-भाँति के, कोई छोटा, कोई बड़ा—नाना प्रकार के बहुविध कष्ट। पुराना समय होता तो अब तक कोई-न-कोई धुरंधर 'पंडिताष्टक' लिख लखटकिया पुरस्कार ले उड़ा होता।

वैसे शुद्धाशुद्धि पर विचार किए बिना भी लेखक बन सकते हैं। पाबंदी नहीं कि लेखक बनने के लिए व्याकरण की गली में धक्के खाने ही होंगे। आजकल के अधिकतर लेखकों ने तो पाणिनि का नाम भी न सुना होगा। कबीर, सूर, तुलसी की जीवनी में कहीं नहीं लिखा है कि इनमें से कोई कभी व्याकरण के पास से भी गुजरा था। भयंकर वृष्टि में जब उल्लू भी अपने कोटर से नहीं निकलते, पति-पत्नी के बीच की गोपनीय वार्ता सुनने के शौकीन जीवनी लेखकों की उस काल में भी कमी न थी। खोजी प्रवृत्ति के इन जीवों ने कहीं नहीं लिखा है कि तुलसी बाबा ने फलाँ घाट पर चंदन घिसते हुए व्याकरण का रट्टा लगाया था। अमावस की काली रात में बनारस की असूर्यंपश्या गलियों में रामानंद का पीछा कर यह बतानेवाले कि उन्होंने पचगंगा घाट की उनचासवीं सीढ़ी पर लेटे कबीर के पेट की बजाय पीठ में लात मारी थी, यह जरूर बताते कि कबीर ने अला या फलाँ अखाड़े में दंड-बैठकी निकालते हुए पाणिनि को घोखा था।

तिवारीजी दूर क्यों जाएँ! उनके सामने जयशंकर प्रसाद का उदाहरण है, जो जगत्-प्रसिद्ध नारियल बाजार में एक हाथ से सुँघनी की पुड़िया बाँधते थे और दूसरे से 'कामायनी' के छंद और आँखें सामने छज्जे पर टिकी होती थीं। उनसे प्रेरणा पाकर आजकल अनेक हिंदी लेखक दोनों हाथों से लिख रहे हैं—कुछ चार हाथों से लिखवा भी रहे हैं। तिवारीजी बहुत दुःखी हैं कि छंद का सत्यानास हो गया है और 'रस-निष्पत्ति' की बेल सूख गई है। ऐसे एकाक्ष संपादक हो गए हैं, जो कलम भी ठीक से पकड़ना नहीं जानते; किंतु नीर-क्षीर विवेक का दावा करते हैं। लाखों की संख्या में छपनेवाले पत्र की हर दूसरी पंक्ति में चार अशुद्धियाँ होती हैं। हों भी क्यों न! हिंदी पत्र के संवाददाता को रोमन लिपि में जो लिखना होता है। अखबार का एक संस्करण 'यानी' लिखता है तो दूसरा 'यानि'। एक में 'राजनैतिक' होता है तो दूसरे में 'राजनीतिक'। एक 'संवैधानिक' सवाल उठाता है तो दूसरा संस्करण 'सांविधानिक'। कहाँ तक गिनाएँ, किस-किसके बारे में सोचें।

यह भी सुना है तिवारीजी ने कि आजकल कुछ भी लिख देना पर्याप्त होता है। प्रकाशक पुस्तक छापने से पूर्व पांडुलिपि उलटता-पलटता भी नहीं। मात्र यह देखता है कि भूमिका किसने लिखी है अथवा पांडुलिपि से संलग्न गुण-पत्र किस स्वनामधन्य साहित्यकार अथवा राजनेता का है। प्राइमरी में क ख ग पढ़ानेवाले यानी अक्षर-बोध करानेवाले स्वयं को महावीरप्रसाद द्विवेदी अथवा रामचंद्र शुक्ल का नगड़दादा मानते हैं। तमाम हिंदी अध्यापक, चाहे वे किसी भी दरजे के क्यों न हों, स्वयंभू समीक्षक बन नामवरी छाँट रहे हैं। लोग अपने परिचय में बताते हैं, 'संप्रति मैं हिंदी विभाग का पूर्व अध्यक्ष हूँ।'

'अहो रूपं,अहो ध्वनि' ने तिवारीजी को लिखने के लिए प्रेरित किया है। एक लिखता है और दूसरा वाह-वाह करता है। भाईचारे की इस अद्भुत मिसाल से वे गद्‌गद हैं। वैसे अपने लिखे पर स्वयं पीठ ठोकने पर भी किसीको आपत्ति नहीं होती। उन्हें यह भी बताया गया है कि पंडिताई और लेखन में एक अद्भुत समानता है। जिस तरह धनी व्यक्ति किसी पंडित को भूखा रख, उससे पाठ करवा, कुछ दक्षिणा दे स्वयं के लिए पुण्य अर्जित करते हैं उसी तरह कुछ कृतविद्य, लिख लोढ़ा-पढ़ पत्थर प्रतिभावान् समर्थ व्यक्ति, जो सभी तरह के दोषों से मुक्त होते हैं, कुछ गुमनाम सभासदों को पोस, उनसे लिखवा स्वयं लेखक, साहित्यकार, समीक्षक होने का पुण्यार्जन करते हैं। लेखन क्या, बस घरेलू उद्योग!

किंतु तिवारीजी इन पचड़ों में न पड़ेंगे। स्वयं लिखेंगे, 'ऑरिजॅनल' लिखेंगे और स्वानुभव से लिखेंगे। तिवारीजी को मालूम है कि अभी हाल-फिलहाल हिंदी के एक वरिष्ठ लेखक यह सवाल उठा चुके हैं कि स्वानुभूति को ही एकमात्र रचनात्मक साहित्य का आधार क्योंकर मान लिया जाए? किंतु स्वानुभव की टेक पकड़े रहना तिवारीजी की मजबूरी है। पंडिताई छोड़ने का निर्णय तिवारीजी ने स्वानुभव के कारण ही लिया है।

इच्छा हो या न हो, मन भले ही प्रातः समीर की मंद-मंद अठखेलियों के बीच निद्रा देवी से और एक प्रहर आँखमिचौली खेलने का हो, पर उठना ही होता है। न उठने पर या देर होने पर देवी-स्वरूपा पत्नी आ उठा देगी, 'अजी सुनते हो! आज सेठ घासीराम की तिथि है। इक्यावन रुपए और एक धोती मिलेगी—पिछले साल की तरह। धोती तुम जनाना माँग लेना, चौड़े पाड़वाली। मेरी धोती में कल ही खोंच लग गई है।'

अपनी भार्या को एकवस्त्रा या विवस्त्रा कैसे देख सकते हैं तिवारीजी! वे धर्मराज युधिष्ठिर तो हैं नहीं कि भरी सभा में द्रौपदी की लाज उघड़ती देखते रहें। किसी कलियुगी कृष्ण पर भरोसा भी तो नहीं किया जा सकता! एक धोती के बदले पता नहीं क्या माँग बैठें! शय्या को शत्रु मान उन्हें उसका त्याग करना ही होता है। सोचते हैं, भला किया पितामह भीष्म ने जो शादी नहीं की थी, वरना शरविद्ध देह के साथ कहाँ-कहाँ डोलना होता। स्वयं तिवारीजी के पास भी दो ही धोतियाँ हैं। गीली धोती में सुबह त्रिपुरा भैरवी घाट से घर तक वापस आने में बहुत कष्ट होता है। शरीर काँपता

रहता है। उनकी यह दुर्दशा कभी-कभी रानी गुरु के मजाक का कारण बनती है, 'एसे अच्छा तऽहौत कि तू भउजी कऽ पेटीकोट पहिर के नहावल करऽ। धोतिया तऽ बचल रही पहिरे बदे।'

अपने बाल-मित्र यानी लँगोट-बदल दोस्त और फिलहाल घाटिया का पोस्ट सँभाले रानी गुरु का कुबोल सुनना और तड़के गंगा में नहाना तिवारीजी की मजबूरी है। नहाने को तो वे घर पर भी नहा सकते हैं—वे घाट पर नहाएँ या घर में, इससे पत्नी को फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि धोती उन्हें ही कचारनी होती है और लँगोटा भी, जिसे पत्नी छूती भी नहीं। दरअसल पुराने लोग बाने के निर्वाह की सीख दे गए हैं। सो, मात्र नहाने से गति नहीं। स्नान के बाद पंडित का बाना बनाने के लिए चंदन चाहिए। सफेद चंदन गले और छाती के लिए, पीला चंदन दोनों बाँहों के लिए, चंदन और रोली का टीका मस्तक के लिए। चंदन रगड़ने की एक घंटे की कसरत से बचने के लिए तो गंगास्नान करते हैं, वरना गंगा का यही पानी शुद्ध होकर नल में आता है। रानी पंडित को तिथि, वार, सूर्योदय और चंद्रोदय का समय बताते हुए तिवारीजी प्रेमपूर्वक चंदन लेप लेते हैं। रानी गुरु बहुत खल हैं, परम दुष्ट। तिवारीजी को छेड़ने का कोई मौका नहीं चूकते। पूछते हैं, 'का गुरु चंदन पोतले से गधा बामन बन सकला का?'

रानी गुरु को कई बार समझा चुके हैं तिवारीजी कि दुष्ट, यह कहानी तेरे जैसे गधों के लिए नहीं है। फिर भी हर दूसरे-तीसरे रानी पंडित अपनी शंका रख ही देते हैं। रानी गुरु अजीब खोपड़ी के व्यक्ति हैं—ऐसी खोपड़ी के स्वामी, जिसमें भगवान् या तो बुद्धि रखना भूल गए या रानी गुरु 'इस्तेमाल करने से खत्म हो जाएगी' सोच बुद्धि का प्रयोग नहीं करते। ऐसा तिवारीजी का आकलन है अपने मित्र के बारे में। इसके ठीक विपरीत रानी गुरु मानते हैं कि 'तिवारीजी बिसखोपड़ा हैं।' यह एक सामान्य विवाद है। आशा है, इसके लिए पाठकों को 'निर्णयसिंधु' की आवश्यकता न होगी। वे अपनी सहज बुद्धि से महान् व्यक्ति का चयन कर लेंगे। स्नान के पश्चात् तिवारीजी वह सब करते हैं, जिसके बारे में पहले ही बताया जा चुका है। फिर शुरू होती है उनकी पंडिताई।

तिवारीजी पूजा की थाली ले दुआरी-दुआरी घूमनेवाले पंडित नहीं हैं। उनके किसी पूर्वज ने ऐसा किया हो, इसका भी इतिहास नहीं है कि जो जरा ठीक-ठाक दीखा उसका रास्ता रोक बत्ती दिखाई, टीका लगाया, हाथ पर दो दाना इलायचीदाना रख दक्षिणा झींट ली। बत्ती की थाली ले घूमने में बहुत झमेले हैं। आँधी-तूफान और बरसात को झेल भी लें; पर आकस्मिक आपदा और प्राकृतिक विपदा से कैसे पार पाएँ! गलियों में विचरनेवाले बनारसी साँड़ योगी होते हैं, गलियों के बीचोबीच बैठ, ध्यानमग्न हो साधना करते हैं। इनकी धार्मिक वृत्ति का तो कहना ही क्या! किसीने ध्यान भंग किया तो सींगों पर ले उसी तरह त्रिलोक दर्शन कराते हैं जैसे गणेश ने परशुराम को सूँड़ में लपेट तीनों लोक दिखाए थे। टीका लगवाने की इच्छा से साँड़ तिवारीजी को कई बार हुरपेट चुके हैं। यह तो हुई आकस्मिक आपदा। प्राकृतिक विपदा वही है जिसे लोग बनारस में 'शंका-समाधान' कहते हैं। आप किसीसे बात करते हुए जा रहे हों, अचानक वह व्यक्ति गायब हो जाए और इधर-उधर नजर दौड़ाने पर गली किनारे उकड़ूँ बैठा दीखे, यही शंका-समाधान है। हाथ में पूजा की थाली लिये तिवारीजी कहाँ और कैसे समाधान करें! किसीको अगोरने के लिए दे भी नहीं सकते। इनके अलावा एक और विपदा है, यजमान का मूड ठीक न हुआ तो खड़े पाँव इज्जत उतर जाती है। सुनना पड़ता है, 'क्या पंडितजी, भोरे-भोरे!' भले ही घड़ी में बारह क्यों न बज रहा हो। उस समय तिवारीजी के चेहरे पर जो भाव आते हैं, उन्हें देख कोई बालक भी बारह ही बताएगा।

जैसा रामराज्य बनारस में है वैसा शायद

ही कहीं होगा। तिवारीजी इस बिंदु पर कई बार मगजमारी कर चुके हैं। टकहवा साड़ी दुकानदार भी खुद को राजा बनारस समझता है। दुर्भाग्य से तिवारीजी के यजमानों में प्रमुखता इन्हींकी है। खाना-पीना कर, टहलते हुए, पान घुलाते हुए, रास्ते में चिथुख्आ, पनख्आ और पता नहीं किस-किसका हाल-चाल लेते हुए कोई बारह बजे दुकान पर आता है, तो कोई एक नींद ले दोपहर दो बजे गद्दी पहुँचता है। तिवारीजी को उनकी उपस्थिति में लछमी-गनेस को अगरबत्ती दिखानी होती है। न करें तो खाएँ क्या! देर-सबेर घर पहुँचने पर गृहलक्ष्मी की फटकार से ही पेट भर जाता है। होली-दीवाली भी चैन नहीं। सारी रात उल्लू की तरह जागते बीतती है। किसीको गोधूलि लग्न में पूजा करानी है तो किसीको रात दो बजे सिंह लग्न में। चार लड्डूआ टिका हाथ झाड़ लेते हैं, 'पंडितजी, दक्षिणा कल ले लीजिएगा। आज दीवाली है न!'

अब इस दीवाली की दच्छिना वसूली अगली दीवाली तक हो जाए तो गनीमत। लोग समझते हैं, तिवारीजी मुफ्त का खा-खाकर मुटिया रहे हैं, शरीर फैल रहा है, तोंद गोल-मटोल हो गई है; पर अपना कष्ट तो वही जानते हैं। आज खीर खाने की इच्छा है; पर सेठ झाऊमल हलुआ खिलाएँगे। तबीयत ठीक नहीं है। बार-बार लोटा ले दौड़ रहे हैं; किंतु यजमान को 'ना' नहीं कर सकते। इस बार की दच्छिना तो जाएगी, अगले साल याद भी न करेगा। कभी-कभी एक ही दिन तीन-चार घरों से भोजन का बुलावा आ जाता है। तब उनको कहना पड़ता है, 'आज दो बजे तो अनुष्ठान है, तीन बजे आऊँगा।' तीन का चार हो सकता है; किंतु दिन छिपे तो श्राद्ध न होगा। तिवारीजी को येन-केन सलटाना ही होता है।

पंडिताई में तिवारीजी के ज्ञान का कचूमर निकल जाता है। कोई चाहता है कि वे दुर्गा सप्तशती का पाठ करें, किसीको सुंदरकांड का पाठ कराना है तो कोई सत्यनारायण की कथा सुनना चाहता है। किसीको ग्रह-शांति करानी है तो किसीको सिर आई विपत् टालनी है महामृत्युंजय का पाठ करवा। किसीको अन्नप्राशन का मुहूर्त चाहिए तो किसीको गर्भाधान का। किसीको हाथ दिखाना है तो किसीको कुंडली बँचवानी है।

इन झमेलों से त्राण पाने के लिए ही तिवारीजी ने लेखक बनना तय किया। सुना है कि लेखक बनने में फायदे-ही-फायदे हैं। जब मन किया, लिखा, नहीं तो मुँह ढक सो गए। मित्र आवभगत करते हैं—क्या पता अगली कहानी में तिवारीजी यानी लेखक महोदय उन्हें कुत्ता, घोड़ा, गधा न बना दें। चार बड़े लोग मिलने आते हैं। पुलिस और प्रशासन में जान-पहचान हो जाती है। हलके का थानेदार सलाम करता है। मुहल्ले में इज्जत बढ़ जाती है आदि-आदि।

तो तिवारीजी लेखक बन गए। स्वानुभव से लिखेंगे, यह पहले ही तय कर चुके हैं। तिवारीजी आजकल रामायण की टीका लिख रहे हैं—नए सिरे से नए अर्थों के साथ। आप भी देखें, तुलसी बाबा ने लिखा है—

सर समीप गिरजाघर सोहा।
वरुणि न जाइ देखि मन मोहा॥

तिवारीजी ने टीका की है—सर = तालाब, समीप = पास, गिरजाघर = ईसाइयों का प्रार्थना-भवन, सोहा = शोभायमान है।

मतलब सुस्पष्ट है। ईसाई धर्म बहुत प्राचीन है, तभी तो जनकजी की वाटिका में तालाब के समीप गिरजाघर भी बना हुआ है—तालाब में स्नान कर सीधे पूजा-अर्चना हेतु जाने के लिए। राजा जनक बहुत पहुँचे हुए ज्ञानी थे, सभी धर्मों को समभाव से देखते थे, अतः उन्होंने गिरजाघर बनवाया।

आगे भी लिखा है—

रामसीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउराज।
जहँ तहँ पुर जनकहहि अस मिलि नर नारि समाज॥

तिवारीजी ने टीका की—रा = राजा (राजा जनक, और भला कौन!), मसिय = मसीहा (ईसा मसीह) अर्थात् रा मसिह = राजा जनक के मसीहा।

जनक राजा के मसीहा की शोभा अवधिसुकृत (अवध के दो राज्यों) में देखें। लिखा है, 'जहँ तहँ पुर जनकहहिं' अर्थात् जहाँ-तहाँ जनक के नगर हैं, 'अस'—ऐसा है—अर्थात् ईसा मसीह के सुंदर गिरजाघर बने हुए हैं। 'मिलि नर नारि समाज'—वहाँ स्त्री-पुरुष के टोले मिलते हैं।

अतएव सिद्ध है कि ईसा मसीह रामायण काल से पूर्व के हैं। कहा है, 'हरि कथा अनंता।' अतएव ईसा मसीह भी बारंबार हुआ करते हैं। एक व्यक्ति जनकपुरी में गिरजाघर देख आश्चर्य करने लगा तो कवि ने तुरंत कहा, 'जनि आश्चर्य करहु मन माहीं।' आश्चर्य क्यों करते हो! प्रभु की लीला अपरंपार है।

तिवारीजी ने कृपापूर्वक शोध कर यह भी निष्कर्ष निकाला है कि (१) महाभारत की लड़ाई चार जून को प्रारंभ हुई थी—

'बहूति मे व्यतीतानि' फिर ये मास व्यतीत हो जाने पर—'जन्मानि तव चार्जुन :' तब चार जून की तिथि (ने जन्म लिया) आई। मई भर संधि-वार्त्ता होती रही और उसके असफल होने पर चार जून को प्रातःकाल युद्ध प्रारंभ हुआ।

(२) कौरव मूढ़ थे—मूढं दुर्योधनस्तदा।
—मूढा द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता:।

उस समय नशे का बहुत जोर था, जिसके कारण बहुत से वीरों ने जीविका छोड़ दी—बध्व: शूरा मदर्थे त्यक्त जीविका:।

तिवारीजी आजकल अपनी इन खोजों से, जिन्हें विज्ञ जन 'रिसर्च' कहते हैं, हिंदी साहित्य का जीर्णोद्धार कर रहे हैं। भविष्य में यदि कभी मौलिक शोध को पुरस्कृत करने की रीति शुरू हुई तो उनकी प्रतिभा अवश्य ही समादृत होगी। □

रेड हार्ट एंड कंपनी,
कतरास रोड, धनबाद-८२६००१

कुछ रिश्तों की शब्द-यात्रा

✍ रमेश चंद्र महरोत्रा

'बाप' और 'अब्बा'

बीज के बिना उत्पाद नहीं होता। पिता संतान के लिए बीज बोनेवाला होता है। 'बीज बोना' के लिए 'वपन' शब्द में 'वप्' धातु है। 'वपन' का अर्थ 'वीर्य' भी है।

'बाप' को रामचंद्र वर्मा ने सीधे संस्कृत के 'वाप' से जोड़ा है ('वाप' का अर्थ 'बीज बोनेवाला' लिखकर), लेकिन नरेश कुमार ने 'बाप' की कहानी '(बीज का) बोनेवाला' अर्थ-द्योतन करनेवाले संस्कृत के 'वप्तृ, वप्ता' से शुरू करके इसका विकास प्राकृत में 'बप्प' और अपभ्रंश में 'बप्पो, बप्प' बताते हुई पेश की है।

'बाप' मराठी और नेपाली में 'बाप' ही है, गुजराती में 'बापा' है।

'बापू' को कौन नहीं जानता। रामचंद्र वर्मा ने इस शब्द को फारसी के 'बाप' से व्युत्पन्न लिखा है; जबकि मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' (अहमक़) ने अपने 'उर्दू-हिंदी शब्दकोश' में 'बाप' को शामिल तक नहीं किया है। निष्कर्ष स्पष्ट है।

महाराष्ट्र में गणपति 'बप्पा' की धूम से सभी परिचित हैं।

'बपौती' बराबर 'पिता की संपत्ति पर अधिकार' और 'बाप का माल' है।

'अब्बा' को 'बाबा' से जोड़ा गया है, जिसके अर्थ 'बाप, दादा, नाना' सब दिए गए हैं और जिसे ('बाबा' को भी) रामचंद्र वर्मा ने संस्कृत के 'वाप' से जोड़ा है; जबकि 'अब्बा' को 'बाबा' का अनुकरणवाचक शब्द बताते हुए 'बाबा' को फारसी का लिखा है। 'बृहत् हिंदी कोश' में भी 'बाबा' को फारसी का बताया गया है। 'हिंदी व्युत्पत्ति कोश' (नरेश कुमार) में 'अब्बा' और 'बाबा' दोनों की छुट्टी है। 'उर्दू-हिंदी शब्दकोश' में भी 'अब्बा' नहीं है, 'बाबा' है; पर उसे अरबी का बताया गया है, फारसी का नहीं। उधर अरबी में 'बाप' के लिए 'वालिद' मौजूद है।

'दोहता' और 'सड़पोता'

'दोहता' बराबर 'पुत्री का पुत्र' है, 'पोता' बराबर 'पुत्र का पुत्र' है। 'नाती' दोनों है।

संस्कृत में 'पुत्र या पुत्री का पुत्र' 'नप्तृ' है, जिससे 'नाती' बना है। 'पुत्र का पुत्र' 'पौत्र' है, जिससे 'पोता' बना है और 'पुत्री का पुत्र' 'दौहित्र' है, जिससे 'दोहता' बना है। 'दोहता' का एक रूप 'धेवता' भी चलता है। उर्दू में यह 'नवासा' (फारसी 'नवास:') है।

'दोहता' के जनक 'दौहित्र' की रचना 'दुहितृ (दुहिता)' से हुई है, जिसका अर्थ 'पुत्री' है। 'दुहिता' में 'दुहना' अर्थवाली 'दुह्' धातु है ('दुग्ध' बराबर 'दुह्+क्त' बराबर 'दुहा हुआ')। भाषा विज्ञान के लोग जानते हैं कि 'पुत्री' को 'दुहिता' इसलिए कहा जाने लगा कि प्राचीन काल में गौएँ आदि दुहने का कार्य प्रायः लड़कियाँ किया करती थीं।

अब आगे की पीढ़ी से संबंधित कुछ शब्द देखें। 'परपोता' (पोते का बेटा) 'प्रपौत्र' रहा है। 'परदोहता' (दोहते का बेटा) 'दौहित्रायण' रहा है ('प्रदौहित्र' नहीं मिला)। 'परनाती' (नाती का बेटा) 'प्रनप्तृ' रहा है।

एक पीढ़ी और आगे का 'परप्रपौत्र' (परपोते का बेटा) आज 'सड़पोता' बना दिया गया है ('परपोता' के परिवर्त 'पड़पोता' की लय पर 'सड़ना' के 'सड़' से इस 'सड़' का कोई रिश्ता नहीं है)।

'बाई' और 'बा'

'बाई' प्रथमतः एक आदरसूचक शब्द है, जो किसी प्रतिष्ठित महिला के लिए प्रयुक्त किया जाता है। 'महारानी लक्ष्मीबाई' और 'मीराबाई' में यही है।

उत्तर प्रदेश में पुराने रईस और जमींदार लोग नाचने-गाने में माहिर महिलाओं के यहाँ शराब और शवाब से अपना मन बहलाने के लिए जाते थे और उनपर संपत्ति बरसाते थे। 'बाई' नाम से संबोधित ये महिलाएँ बदनाम होने लगीं और इनके ठौर-ठिकाने को 'वेश्या का कोठा' कहा जाने लगा। 'बाई' को 'बाई जी' कहने से भी 'वेश्या' अर्थ की इज्जत नहीं बढ़ी। प्रख्यात गजल गायिका 'अख्तरीबाई (फैजाबादी)' ने अपने नाम में से 'बाई' हटाकर 'बेगम अख्तर' नाम कर लिया।

छत्तीसगढ़ आदि कुछ क्षेत्रों में घर के मालिक से भी उसकी पत्नी के लिए पूछ लिया जाता है कि घर में 'बाई' हैं क्या? जाहिर है कि शब्द सम्मानमूलक है। दूसरी ओर, वहाँ आपसे कोई यह भी पूछ सकता है कि घर का काम करने के लिए 'बाई' आ रही है क्या? इसका मतलब यह है कि वहाँ भी इस शब्द का अर्धांशतः अर्थापकर्ष हो गया है। यद्यपि प्रारंभ में इसका प्रयोग घर का काम-काज करनेवाली स्त्री को सम्मान देने के लिए ही किया गया था।

यह 'बाई' आया कहाँ से, इसका उत्तर स्थिर नहीं है। रामचंद्र वर्मा इसका जन्म 'बावा' से लिखते हैं; पर 'बावा' क्या है, इसका जिक्र उनके कोश में कहीं नहीं है। जोड़नेवाले इसे 'बामा', असल में 'वामा' (स्त्री, दुर्गा) से जोड़ सकते हैं।

शायद 'बाई' 'बा जी' से संबद्ध हो। (जबकि 'बा' को रामचंद्र वर्मा ने संबोधन में 'बाई' का संक्षिप्त रूप लिखा है।) पंजाबी में 'बा जी' बड़ी बहन को कहा जाता है। उधर राजस्थान और गुजरात में 'बा' 'माँ' के लिए चलता है, जो 'अंबा' (अम्मा, माँ, माता, देवी, भद्र महिला) के बहुत निकट है। ☐

डगनिया, रायपुर-४९२०१३

छत्तीसगढ़ की माटी से उपजे लोकगीत

✍ अनसूया अग्रवाल

छत्तीसगढ़ की विभिन्न जातियों का सबसे बड़ा भंडार उनके लोकगीत हैं। इन लोकगीतों में छत्तीसगढ़ के प्राकृतिक सौंदर्य की झलक, सामाजिक जीवन की महक, इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों का उल्लेख, प्रमुख पर्वों का विवरण, संस्कृति और सभ्यता की झलक, राजनीतिक आकांक्षाएँ तथा ऐतिहासिक घटनाओं की अभिव्यक्ति सहज ही दिखाई दे जाती हैं। इन लोकगीतों में संगीत की स्वरलिपि नहीं है। डॉ. मन्नूलाल यदु लिखते हैं—'लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मानव तन की सहज अनुभूति का आकलन हैं, अर्थात् ये आवेगों के साथ ही मनुष्य के मुख से बोल के रूप में फूट पड़ते हैं और यही गीत का रूप धारण कर लेते हैं। इसमें देश एवं काल का बंधन नहीं होता। कहीं भी, किसी भी क्षण उसका सर्जन हो जाता है।' सचमुच ये लोकगीत अत्यंत सरल, सहज, रुचिकर और भावाभिव्यक्ति में पूर्णतः सक्षम हैं। इन गीतों में मनोविज्ञान स्तर पर मानव मन की विभिन्न परतें खोलकर रख दी गई हैं। इनमें जीवन का स्पंदन है, व्यथित मन का क्रंदन है, संवेदनशीलता के साथ खरापन है।

नारी गीतों में नारी सुलभ कोमल कल्पनाओं के स्पष्ट दर्शन हैं। नृत्य गीतों में स्त्रियाँ प्रायः सम्मिलित गीत गाती हैं। वे एक वृत्त में झूमती हैं, हाथों की तालियों से संगीत यंत्र का काम करती हैं। प्रवाह और गति का इनमें विशेष ध्यान रखा जाता है। इन गीतों में नारियों के हृदय की प्रसन्नता और प्राणों की वेदना के दुःखांत स्वर स्पष्टतः मुखरित होते हैं।

जन्म गीत के अंतर्गत गर्भाधान में नौ माह तक की अवधि के संपूर्ण गीत आते हैं। छत्तीसगढ़ के प्रथम गर्भाधान के सातवें माह में 'सेधौरी' संस्कार होता है। नौ माह में संतानोत्पत्ति के तीसरे दिन 'कांके पानी' पीने का संस्कार होता है। छठे दिन 'छठी' और बारहवें दिन 'बही' का संस्कार होता है। इसी दिन 'कांके पानी' के घड़े को विसर्जित किया जाता है। इन गीतों में 'सोहर गीत' प्रमुख है, जिसे छठी के दिन महिलाएँ गाती हैं।

विवाह संस्कार के गीतों में मँगनी के गीत में कार्यक्रम का प्रारंभ होता है। इस दिन वैवाहिक कार्य पुरोहित के लग्न विचार से होता है। फिर 'हलदी चढ़नी' का संस्कार होता है। फिर 'चुलमाटी' और 'तेलमाटी' का संस्कार होता है। तेलमाटी के बाद 'दतेला' जाति हैं, जिसमें बैगा को सुआसिनें (बुआ, बहन, भानजी) सीधा (दाल, नमक, घी, तरकारी, आटा, चावल, कच्चा भोजन) समर्पित करती हैं। इसी दिन रात्रि को 'माँय मौरी' करते हैं। फिर 'बारात प्रस्थान, बारात स्वागत, समधी भेंट, परघनी का संस्कार, शुभ लग्न में झाँपी बुलाव, पगरैत बुलाव, डहर छेउनी, भाँवर, टिकावन और बारात विदाई का संस्कार होता है। इस तरह विवाह संस्कार संपूर्ण होने तक वर-वधू पक्ष द्वारा गीत गाए जाते हैं, जो विवाह के गीत कहलाते हैं।

इन लोकगीतों से जुड़कर छत्तीसगढ़ की माटी से सहज ही जुड़ा जा सकता है। ये गीत छत्तीसगढ़ की परंपरागत निधि हैं। डॉ. दयाशंकर शुक्ल ने इन लोकगीतों का विभाजन निम्नानुसार किया है—
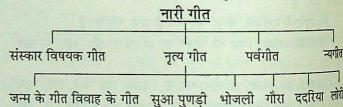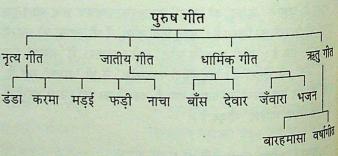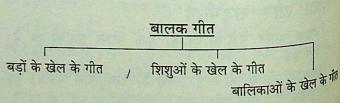
नृत्य गीतों में 'सुआ नृत्य' प्रमुख है। जो सुग्गे को संबोधित करके गाया जाता है। इन गीतों में नारी जीवन के कारुणिक चित्र एवं सुखद प्रसंगों को चित्रित किया जाता है। इन गीतों में स्त्री जाति की आत्मा की आवाज मुखरित होती है। डॉ. दयाशंकर शुक्ल लिखते हैं—'सुआ छत्तीसगढ़

का गरबा है।' यह समूह नृत्य है, जिसमें अनेक स्त्रियाँ वृत्त बनाकर, ताली बजा-बजाकर, पैरों को धीरे-धीरे, ऊपर-नीचे कर झूम-झूमकर गाती हैं। सुआ नृत्य गीत कार्तिक कृष्णपक्ष में प्रारंभ होता है। स्त्रियों की टोली तकरीबन पंद्रह दिनों तक घर-घर जाकर यह नृत्य गीत करती है और बदले में अनाज, तेल, पैसा आदि एकत्रित करती है और इस एकत्रित संपत्ति से दीवाली की रात 'शिव-गौरा विवाह' का आयोजन करती हैं।

'पुणड़ी' यों तो खेल गीत है, तथापि रजस्वला होने के पूर्व तक की कन्याओं से इसका संबंध है। इन गीतों में नारी जीवन की व्यथा-कथा के साथ सामाजिक व्यवस्था पर कड़ा प्रहार है। इस खेल में कमर, पैर और हाथों का उपयोग होता है। लड़कियाँ उकड़ूँ बैठकर पैर एवं हाथ को क्रम से संतुलन बनाते हुए आगे-पीछे ले जाती हैं। डॉ. मन्नूलाल यदु लिखते हैं—'पुणड़ी छत्तीसगढ़ी संस्कृति का दर्शनशास्त्र है। नारी जीवन का ऐसा दर्शन विश्व साहित्य में बेजोड़ है। शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार का जीवंत दिग्दर्शन पुणड़ी गीत की आत्मा है। यह न तो मात्र एक खेल गीत है, न ही लड़कियों के मनोरंजन का साधन।'

पर्वगीतों में 'भोजली' और 'गौरा' प्रमुख हैं। 'भोजली' सावन मास में नाग पंचमी से राखी तक मनाया जाता है; जिसमें चना, उड़द, गेहूँ, धान, कोदों के बीज आदि को भिगोकर अंकुरित कर बो दिया जाता है। इसे ही 'भोजली बोना' कहते हैं। भोजली गीतों में देवी की प्रार्थना, महत्ता, स्तुति आदि की जाती है। साथ ही पारिवारिक चित्रण, विशेषत: भाई-बहन के परस्पर अनुरागमय संबंधों की चर्चा होती है। ये भोजली गीत अत्यंत कर्णप्रिय होते हैं। नारियाँ समवेत स्वर में इसे गाती हैं।

'गौरा' पर्व में महादेव-गौरी की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर स्थापित की जाती हैं। स्त्रियाँ गौरा के दिन प्रतिमा के सामने नाच-नाचकर गौरा-गौरी का आवाहन करती हैं, तत्पश्चात् पूजा-अर्चना की जाती है। लक्ष्मी पूजन के दूसरे दिन गाजे-बाजे के साथ प्रतिमाएँ विसर्जित कर दी जाती हैं। सामान्यत: गौरा गीतों में ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। साथ ही छत्तीसगढ़ के खान-पान, भोजन का चित्रण भी इन गीतों में होता है।

'ददरिया' छत्तीसगढ़ का शृंगार गीत है, जिसमें शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग से संबंधित हृदयस्पर्शी भाव अभिव्यक्त होते हैं। इसे छत्तीसगढ़ का प्रमुख प्रणय गीत माना जा सकता है। डॉ. शकुंतला वर्मा लिखती हैं—'ददरिया गीतों का भंडार विशाल है। प्रणय शृंगार के विविध, विभिन्न रूपों की झाँकी इनमें मिलती है। इन गीतों में रस है। भाषा, भाव सभी में एक विचित्र खुमारी है।'

'लोरी' बच्चों को बहलाने या भुलाने के लिए गाया जानेवाला गीत है। बच्चों को तेल चुपड़ते समय, नहलाते समय या बच्चे को लगी 'नजर' उतारते समय भी माताएँ यह गीत गाती हैं।

पौरुष प्रकृति के छत्तीसगढ़ी पुरुष नृत्य गीतों में डंडा, पंथी, करमा, मड़ई पड़ी आदि समारोहों के अवसर पर सामूहिक रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं। इन गीतों में भाव-प्रवणता, सरसता, रागात्मकता तथा धार्मिक चिंतन की विशृंखल भावनाएँ होती हैं। पुरुष गीतों में बाँस, नगाड़ा, मृदंग, बाँसुरी, लोटा, कटोरी आदि गीतों के प्राण समझे जाते हैं।

'डंडा' छत्तीसगढ़ का रास कहलाता है। इसमें गोंड जाति के लोग छोटे-छोटे डंडे बजाते हुए नृत्य करते हैं। वर्ष में दो बार—फाल्गुन व चैत्र और आश्विन में यह नृत्य होता है। सामान्यत: डंडा नाच का प्रारंभ गणेश, सरस्वती और गुरु वंदना से होता है।

बीच-बीच में राधाकृष्ण की प्रेम लीलाएँ, रासलीलाएँ, प्रकृति सौंदर्य, संयोग और वियोग के सुख-दु:ख आदि भावनाओं को इन गीतों में बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। डॉ. दयाशंकर शुक्ल लिखते हैं—'वसंत ऋतु की ज्योत्स्ना में जब यह नाच होता है तब सारा गाँव मुखरित हो उठता है।'

'करमा' शरद् ऋतु में प्रमुखत: घसिया जाति द्वारा प्रस्तुत किया जानेवाला लोकनृत्य है; वैसे दूसरी जातियों द्वारा भी यह गाया जाता है। कहा जाता है कि 'कर्म' नाम के किसी राजा ने विपत्ति के समय 'मानता' मानी और नृत्य-गान शुरू किया, जिससे उसकी विपत्ति दूर हो गई। तब से करमा नृत्य प्रचलित हुआ है। इन नृत्य गीतों में प्रेम और प्रकृति का प्राधान्य रहता है। संयोग और वियोग की दशाओं का हृदयग्राही चित्रण, अंतर्द्वंद्वों की अभिव्यक्ति, संगीतात्मकता, मरुनी, सरलता, हँसी-खुशी और सरसता का अद्भुत सम्मिश्रण के अतिरिक्त सांसारिक विरक्ति की भावना, लोक-जीवन की निष्काम वृत्ति आदि सब करमा लोकगीतों की जान है। करमा गीत प्राय: माँदर के सहारे गाया जाता है।

'मड़ई' गो-पूजन का त्योहार है। ग्वाल-ग्वालिन इसे धार्मिक उत्सव के रूप में मनाते हैं। छत्तीसगढ़ के रावत कौड़ियों और मोरपंखों से स्वयं को सजाते हैं। अपने पैरों में घुँघरू बाँधकर गाजे-बाजे के साथ ये समूह-के-समूह अपने यजमानों के घर जाते हैं, दोहे कहते हैं, नृत्य करते हैं, यजमान के गाय के गले में सुई (जो पलाश वृक्ष की छाल से बना होता है) बाँधते हैं और बदले में अन्न, शस्त्र, धन का दान पाते हैं। इन मड़ई लोकगीतों में छत्तीसगढ़ के जनजीवन की झाँकी मिलती है। कहीं प्रकृति का सजीव चित्रण है, कहीं धार्मिक कथा, कहीं ग्राम्य जीवन की आर्थिक विपन्नता, अभावमयता तथा सामाजिक अन्याय की भावना है वहीं 'यजमानों' के घर गाए जानेवाले गीतों में उनके पशुधन की संवृद्धि की कामना तथा उनके प्रति आभार की भावना है।

'फड़ी' भी पुरुषों का सामूहिक नृत्य है, जिसमें हास्य-व्यंग्य के साथ मानवीय भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति है।

'नाचा' छत्तीसगढ़ का अंतर्जातीय लोकनृत्य है, जिसमें नारी की अंतर्व्यथा तथा विरह भावना का सजीव एवं मार्मिक चित्र है। पति-पत्नी का प्रणय व्यापार, मित्र की मित्रता तथा भाई-बहन का स्नेह और बचपन की मीठी यादें आदि समग्रता के साथ इसमें प्रस्तुत हुआ है।

बाँसों से बने वाद्ययंत्रों की धुन पर किया जानेवाला नृत्य और गाया

जानेवाला गीत क्रमशः 'बाँस नृत्य' और 'बाँस गीत' कहलाते हैं। बाँस की धुन छेड़ते जब रावत जाति का जत्था चलता है तब सारा वातावरण झूमने लगता है। इन बाँस गीतों में राजा-रानी के किस्से-कहानी, नारी की व्यथा-कथा, पति-पत्नी के वार्त्तालाप आदि की सुंदर अभिव्यक्ति होती है। देवी-देवताओं की स्तुति भी इन गीतों में रहती है।

गाँव-गाँव घूमकर गोदना गोदने और भिक्षा माँगनेवाली देवार जाति का गीत 'देवार गीत' कहलाता है। इनके नृत्य गीतों में भी इनकी संपूर्ण दशा का चित्रण होता है।

धार्मिक गीतों में जँवारा और भजन प्रमुख है। छत्तीसगढ़ में नवरात्र पर्व वर्ष में दो बार मनाया जाता है, जिसमें आश्विन मास का पर्व 'शारदीय नवरात्र' तथा चैत्र का पर्व 'वसंतीय नवरात्र' कहलाता है। इन पर्वों के प्रथम दिवस श्रद्धालुगण गेहूँ बोया करते हैं, जो 'जँवारा' कहलाता है। इस जँवारा को नौ दिन बाद या नौवें दिन ठंडा कर दिया जाता है। छत्तीसगढ़ अंचल में इसी जँवारा के सम्मुख जँवारा गीत गाया जाता है, जिसमें देवी की स्तुति, पराक्रम तथा महिमा का वर्णन होता है। कहते हैं—जँवारा गाने या सुननेवाले पर कभी-कभी देवी आ जाती है। उस देवी का नारियल, सिंदूर, अगरबत्ती, नए कपड़े आदि से सम्मान किया जाता है तभी देवी उतरती है। देवी पुरुष व स्त्री दोनों पर आती है। जिसे देवी आती है वह झूम-झूमकर नाचने लगता है और अपने तन को यातना भी देता है; किंतु देवी की कृपा से उसे कोई कष्ट नहीं होता।

छत्तीसगढ़ी भजन में सरस्वती-गणेश, शिव-पार्वती, कृष्ण तथा राम की वंदना होती है; साथ ही जाति विशेष के देवी-देवताओं का उल्लेख भी। कहीं आराध्य के शृंगार का तो कहीं आराध्य के गुणगान का उल्लेख इन गीतों में रहता है। इस तरह निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं का समन्वय इन गीतों में मिलता है।

'बारहमासी' ऋतु गीतों में बारह महीनों की विशेषताओं का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। ये गीत बारह महीनों के जीवंत चित्र होते हैं, जिसमें खान-पान, रहन-सहन, बोली-घात आदि की सम्यक् अभिव्यक्ति होती है।

'वर्षा गीत' सावन मास में पुरुषों द्वारा गया जानेवाला व्यक्तिगत गीत है। इसमें छत्तीसगढ़ के प्रमुख खाद्यान्नों—कोदों, धान, तिवरा, अरहर, चना, मूँग, मसूर, बटरा, गेहूँ आदि का व्याख्यामूलक वर्णन होता है; साथ ही स्थानीय साग-भाजी और प्रमुख मिष्टान्नों का वर्णन भी इन गीतों में है। इसके अतिरिक्त 'बालक गीत' में कबड्डी, डांडी पौहा, भौंरा, कोबी, घाय गोड़, कदम्मा, घानी-मुँदी, घेर खो-खो, वीरम गीत, गेड़ी गीत, नचोरी गीत आदि भी हैं। सचमुच ये लोकगीत छत्तीसगढ़ के सजीव एवं परंपरागत निधि हैं। डॉ. शकुंतला वर्मा के अनुसार—'इस जनपदीय अंचल के लोकगीतों में किसी विदेशी अपरिचित को भी अमूल्य निधि मिल जाएगी। हाँ, यह अनिवार्य है कि खोजनेवाले में संवेदना हो, आत्मीयता की भावना हो।'

□

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
शासकीय महाविद्यालय, महासमुंद (म.प्र.)

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

अप्रैल २००१ के 'साहित्य अमृत' का संपादकीय 'भारत की अस्मिता' एवं आलेख 'अजोधिया न जाबइ' तथा 'गौ, गोवर्धन, जीवन-धन—गोबर संस्कृति की सार्थकता' पढ़कर हनुमान प्रसाद पोद्दार के 'कल्याण' अंक का स्मरण होता है। ऋता शुक्ल की कहानी 'दंड-विधान' अपनी रोचकता के साथ नारियों के लिए प्रकाश स्तंभ भी है। अरुणेश नीरन की कविताएँ मृत्यु के बहाने बहुत कुछ कह जाती हैं। अमृत राय के 'नगर वधू' व्यंग्य में तीखापन है।

—विद्यासागर मिश्र, देवरिया

मैंने 'साहित्य अमृत' का अप्रैल २००१ अंक देखा। संपादकीय 'भारत की अस्मिता' में भारतीय संस्कृति के अभी तक अनुद्घाटित शाश्वत तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। कहानी 'दंड-विधान' में रत्ना एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित हुई है। 'विदाई' कहानी में मृदुला के रूप में एक बहू की कारुणिक दशा का वर्णन किया गया है। 'भाषा-प्रयोग' आलेख उत्तम है। आवरण चित्र चित्ताकर्षक है।

—विश्वंभर दयाल अवस्थी, बाँदा

अप्रैल अंक के 'साहित्य अमृत' ने अपनी अस्मिता की खोज के लिए मानवीय मन को झकझोर दिया। पंडितजी की लेखनी चमत्कारिक होती है। 'गौ, गोवर्धन, जीवन-धन—गोबर संस्कृति की सार्थकता' आलेख ने मन को मोह लिया। 'ब्रज के लोकगीतों में रामकथा' भी उत्तम रचना है। तीनों कहानियाँ एवं कविताएँ अच्छी रहीं। शिवम् श्रोत्रिय अपनी कविता-यात्रा जारी रखें। उनके लिए शुभकामनाएँ।

—गीतांजलि बोरा, जोरहाट

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक पढ़ा। साहित्य शिरोमणि पं. विद्यानिवास मिश्र के संपादकीय में पत्रिका का अमृतत्व छलकता रहता है। ऐसे ही विद्वज्जन से भारत की अस्मिता भा-रत है। कहानी 'दंड-विधान' सशक्त और संवेदनशील रचना है। गोविंद कुमार 'गुंजन' ने श्रीकांत जोशी को स्मरण कर काफी सामग्री दी है। जगदीश गुप्त एवं शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव की कविताएँ अच्छी लगीं।

—टी. रामानायडू, पांडिचेरी

मार्च २००१ का 'साहित्य अमृत' पढ़ा। श्री श्यामसुंदर दुबेजी की कहानी 'जा धरती काहू की न भई' मार्मिक, हृदय-विदारक एवं रुचिकर लगी। इसमें बीभत्स एवं शृंगार रस का सम्मिश्रण हुआ है। कहानी में रोचकता एवं एकरूपता बनी हुई है और पाठक इसे आद्योपांत एक साँस में पढ़ने के बाद ही दम लेता है। यह श्री दुबेजी की कुशल लेखनी का ही प्रतिफल है। उन्हें हृदय से साधुवाद देता हूँ।

—शीतकुमार, हजारीबाग

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक मिला, आभार। संपादकीय विचारणीय तो है ही, अनुकरणीय भी है। कहानी 'दंड-विधान', आलेख 'अजोधिया न जावइ', संस्मरण 'मेरे मित्र बलदेवजी' तथा 'शमशेर बहादुर सिंह : हिंदी के अद्वितीय शिल्पी' भी पठनीय हैं। 'मरणातिक्रमण पुरुषार्थ के कवि का यूँ चले जाना' स्मरण श्रीकांत जोशी के भाव-संसार का मर्मस्पर्शी चित्रण है। कविताएँ भी अच्छी हैं।

—रामनारायण सिंह, सिवनी

'साहित्य अमृत' के मार्च अंक में प्रकाशित रचनाएँ पढ़ीं, अच्छी लगीं—विशेष रूप से विष्णु प्रभाकरजी द्वारा लिखित 'स्वाधीनता संग्राम की अमिट स्मृतियाँ' संस्मरण। गांधीजी की मृत्यु से उपजी गहरी वेदना, फिर जातियों के द्वंद्व। निश्चित ही जातियाँ हमारा पीछा नहीं छोड़ रही हैं।

कहानी एवं कविताएँ भी ठीक-ठाक हैं।

—मोहनदास नैमिशराय, नई दिल्ली

उपयुक्त मूल्य के कारण पहली बार 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक खरीदा और पढ़ा। श्री श्यामसुंदर दुबे की कहानी 'जा धरती काहू की न भई' का अंतिम पैराग्राफ इतना अच्छा लगा कि मन यह पत्र लिखने के बिना नहीं माना। लेखक को बधाई।

पर कहानी 'बोलो बुआ, बोलो' पढ़कर लगा, शायद औरत आदमी को कभी नहीं समझती। पत्नी के अधिकार का अर्थ शायद लेखिका खुद नहीं समझ पाईं और पुरुष को दोषी साबित करने पर लगी हैं।

—दिनेश चंद्र दुबे, ग्वालियर

'त्रासद वसंत आगम' के माध्यम से साहित्य पुरोधा पं. विद्यानिवास मिश्रजी ने समग्र मानवीयता की प्राण-पीड़ा को जिस तीव्रता से महसूस किया है, वह सराहनीय है।

निस्संदेह हम जिस परिवेश में घुट-घुटकर जी रहे या जी-जीकर मर रहे हैं उस परिवेश से मुक्ति पानी ही होगी। 'प्यासी हूँ' की तृप्ति 'कल्लो रानी' की वापसी होगी। 'बट्टू' की आत्मा प्रसन्न होगी।

वस्तुतः 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक एक दहकता हुआ गुलदस्ता है।

—रामशंकर भारती, झाँसी

प्रश्नोत्तरी-४६

अगस्त १९९७ से हमने पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु 'प्रश्नोत्तरी' प्रारंभ की थी, जिसमें पाठक निरंतर बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। हमें विश्वास है, पाठकों को आगे भी यह रुचिकर लगेगी तथा पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे और पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा–

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० जून, २००१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध जवाबवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो पत्र छाँटे जाएँगे तथा उन्हें एक सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कृत होनेवाले उत्तरदाताओं के नाम-पते अगस्त २००१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने पत्र 'प्रश्नोत्तरी', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ के पते पर भेजें।

प्रश्नोत्तरी-४३ के शुद्ध उत्तर

१. जॉर्ज ग्रियर्सन
२. हिंदी भाषा का इतिहास
३. मिश्रबंधु विनोद
४. नलिन विलोचन शर्मा
५. रामविलास शर्मा
६. राहुल सांकृत्यायन
७. विनय मोहन शर्मा
८. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
९. श्यामसुंदर दास
१०. हिंदी साहित्य की भूमिका और हिंदी साहित्य का आदिकाल

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री मुकुंद नीलकंठ जोशी**
४४/३, कॅनाल रोड
जाखन
देहरादून-२४८००१

२. **डॉ. एस.के. मिश्र**
२५९, आदर्श नगर कॉलोनी
शाजापुर-४६५००१

प्रश्नोत्तरी-४६

१. भारतीय आर्य भाषा परिवार की भाषाओं का मूल स्रोत कौन सी भाषा है?
२. खड़ीबोली हिंदी का साहित्यिक रूप कब विकसित हुआ?
३. मध्यकाल में राजकाज की भाषा के रूप में किस भाषा को मान्यता मिली?
४. मानक हिंदी का विकास किस भाषा से हुआ?
५. आदिकालीन कृति 'ढोला मारू रा-दूहा' की गणना किस साहित्य के अंतर्गत की जाती है?
६. किस आलोचक ने आदिकाल को 'बीजवपन' काल की संज्ञा दी?
७. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' स्वतंत्र पुस्तक से पूर्व किस रूप में प्रकाशित हुआ?
८. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में मिश्र बंधुओं ने किस पुस्तक के रूप में अपना योगदान दिया?
९. 'श्यामा स्वप्न' पुस्तक का लेखक कौन है?
१०. 'जिप्सी', 'मुक्तिपथ' उपन्यासों के लेखक कौन हैं?

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

'साहित्यवाचस्पति' सम्मान प्रदत्त

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का बावनवाँ अधिवेशन १७ मार्च से १९ मार्च तक गोवा (पणजी) विश्वविद्यालय में डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के सभापतित्व एवं डॉ. नामवर सिंह की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। समापन समारोह में हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' को उनकी दीर्घकालीन साहित्य सेवा के लिए सम्मेलन की सर्वोच्च सम्मानोपाधि 'साहित्यवाचस्पति' से अलंकृत किया गया।

इस अवसर पर सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री विभूति मिश्र की ओर से साहित्यकार श्री श्याम कृष्ण पांडेय ने प्रशस्ति-वाचन किया। □

डॉ. देवेंद्र दीपक को 'स्व. मुरलीधर मित्तल स्मृति सम्मान'

गत दिनों अखिल भारतीय साहित्य परिषद् की राजस्थान इकाई ने सुप्रसिद्ध साहित्यकार और म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी के पूर्व संचालक डॉ. देवेंद्र दीपक को 'स्व. मुरलीधर मित्तल स्मृति सम्मान' से विभूषित किया। वरिष्ठ चिंतक एवं राज्यसभा सांसद डॉ. महेश शर्मा ने डॉ. दीपक को शॉल, श्रीफल और पाँच हजार रुपए की धनराशि भेंट की। अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' इस समारोह के मुख्य अतिथि थे। संस्कृताचार्य डॉ. रघुवीर प्रसाद गोस्वामी ने भी सभा को संबोधित किया।

आयोजन के सूत्रधार थे राजस्थान अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के प्रांताध्यक्ष डॉ. मथुरेशनंदन कुलश्रेष्ठ। □

श्रीमती कनक लता को 'राधाकृष्ण पुरस्कार'

१८ मार्च को 'राँची एक्सप्रेस' द्वारा आयोजित समारोह में कथाकार श्रीमती कनक लता को प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा बीसवाँ 'राधाकृष्ण पुरस्कार' प्रदान किया गया। पुरस्कारस्वरूप उन्हें ग्यारह हजार एक सौ एक रुपए एवं प्रशस्ति-पत्र दिया गया। □

लेखिकाओं का राष्ट्रीय सम्मेलन

अखिल भारतीय लेखिका संघ और स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन यादगार समिति द्वारा ३०-३१ मार्च को 'भारतीय गणतंत्र में नारी चेतना' विषय पर दो दिवसीय सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन उपराष्ट्रपति महामहिम कृष्णकांतजी की धर्मपत्नी श्रीमती सुमन कृष्णकांत ने किया। कांग्रेस नेत्री श्रीमती मोहसिना किदवई, केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की पूर्व अध्यक्ष श्रीमती विद्याबेन शाह, पूर्व केंद्रीय मंत्री श्री वसंत साठे एवं प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्रीमती सुभद्रा जोशी विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थीं। इस अवसर पर सत्तर से भी अधिक महिला स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और प्रमुख स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के परिवार की महिलाओं को सम्मानित किया गया।

संगोष्ठी के दूसरे दिन प्रथम सत्र में डॉ. हरिकृष्ण देवसरे की अध्यक्षता में 'नारी चेतना के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' विषय पर चर्चा हुई। इसमें सहभागी थीं—श्रीमती चंपा लिमये, डॉ. प्रतिमा अस्थाना एवं श्रीमती आशा रानी व्होरा। द्वितीय सत्र श्री अजय उपाध्याय की अध्यक्षता में शुरू हुआ। इसमें 'सामाजिक न्याय और नारी चेतना' विषय पर श्रीमती मारग्रेट अल्वा, श्रीमती किरण चौधरी, श्रीमती विभा पार्थसारथी एवं श्री अरविंद जैन; 'आर्थिक पक्ष में नारी चेतना' विषय पर डॉ. जी.एन. गांधी एवं श्रीमती सुरेखा पाणंदीकर; 'प्रशासन और योजना में नारी चेतना' विषय पर श्री एम.डी. अस्थाना एवं श्रीमती लीना महेंदले; 'संस्कृति के क्षेत्र में नारी चेतना' विषय पर श्रीमती कपिला वात्स्यायन, श्रीमती हेम भटनागर एवं श्रीमती धीरा वर्मा ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए।

तृतीय सत्र में 'संचार माध्यमों में नारी चेतना' शीर्षक के अंतर्गत विभिन्न विषयों पर कथाकार श्री कमलेश्वर की अध्यक्षता में चर्चा हुई। इसका शुभारंभ दिल्ली सरकार के मंत्री श्री योगानंद शास्त्री ने किया। 'भारतीय साहित्य एवं स्वतंत्रता संग्राम में महिला लेखकों का योगदान' विषय पर श्री शशिभूषण सिंह, डॉ. कमल कुमार एवं डॉ. सुशील गुप्त; 'पत्रकारिता में महिलाओं का योगदान और उनकी छवि' विषय पर सुश्री गार्गी परसाई, श्री आलोक मेहता एवं डॉ. कुमुद शर्मा; 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में नारी' विषय पर सुश्री नलिनी सिंह; 'कामकाजी महिलाओं की समस्या और लेखिकाओं के दायित्व' विषय पर डॉ. मृदुला सिन्हा, सुश्री प्रीति भार्गव, सुश्री रंजना कुमारी, डॉ. रेणु चंद्रा एवं सुश्री उमा यादव ने अपने-अपने विचार रखे।

सम्मेलन में अतिथियों एवं प्रतिनिधियों का स्वागत किया लेखिका संघ की अध्यक्ष श्रीमती इंदिरा स्वरूप ने। इस दो दिवसीय संगोष्ठी का विषय प्रवर्तन सुश्री विभा देवसरे ने किया। □

ब्रिटेन में हास्य कवि सम्मेलन संपन्न

११ मार्च को ब्रिटेन की हिंदी संस्थाओं 'यू.के. हिंदी समिति' और 'कथा' द्वारा भारतीय उच्चायोग के तत्त्वावधान में गुजरात भूकंप-पीड़ितों के सहायतार्थ होली मिलन और हास्य कवि सम्मेलन का आयोजन लंदन के नेहरू केंद्र में किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता 'इंडिया टुडे' के संपादक श्री प्रभु चावला ने की। समारोह के मुख्य अतिथि भारतीय उच्चायोग में उप उच्चायुक्त श्री हरदीप पुरी थे। इस हास्य कवि सम्मेलन में श्री पद्मेश गुप्त, श्री तेजेंद्र शर्मा, श्री कैलाश बुधवार, श्री अनिल शर्मा, श्री भारतेंदु विमल, डॉ. के.के. श्रीवास्तव, श्री कृष्ण टंडन और श्रीमती राजेश्वरी गुप्ता, सुश्री दिव्या माथुर एवं सुश्री सीमा चटर्जी ने अपने काव्य पाठ से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। कार्यक्रम का संचालन श्री रवि शर्मा ने किया।

कार्यक्रम में सुश्री के. सक्सेना, वरिष्ठ कवि श्री सोहन राही, श्री चमनलाल चमन, बी.बी.सी. से जुड़े श्री नरेश अरोड़ा और श्री नरेश कौशिक, बर्मिंघम से पधारी श्रीमती तितिक्षा शाह, श्रीमती प्याली रे और रीड इंडिया पब्लिकेशंस के श्री वेद मोहला उपस्थित थे। □

'शांतिदूत' पत्रिका के अंक भेंट किए गए

नॉर्वे से प्रकाशित अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रिका 'शांतिदूत' के प्रकाशन के ग्यारह वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में १७ अप्रैल को महामहिम उपराष्ट्रपति श्री कृष्णकांत को उनके आवास पर आयोजित समारोह में पत्रिका के अंक भेंट किए गए। कार्यक्रम की अध्यक्षता संविधानविद् व सांसद डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने की।

कार्यक्रम को डॉ. कर्णसिंह, डॉ. लोकेश चंद्र व श्री कमलेश्वर का सान्निध्य प्राप्त हुआ। □

लोकार्पण समारोह

१७ अप्रैल को नई दिल्ली में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा हिंदी के दुर्लभ साहित्य के संकलन और प्रकाशन की योजना के अंतर्गत डॉ. इमरै बंघा द्वारा संपादित पुस्तक 'द फर्स्ट पब्लिश्ड एंथोलॉजी ऑफ हिंदी पोएट्स : थॉमस ड्यूर ब्रॉटंस सेलेक्शंस फ्रॉम द पॉपुलर पोएट्री ऑफ द हिंदूज, १८१४' का लोकार्पण प्रख्यात विद्वान् पं. विद्यानिवास मिश्र द्वारा संपन्न हुआ। इस अवसर पर पं. विद्यानिवास मिश्र ने 'हिंदी की मध्यकालीन कविता की लोक-व्याप्ति' विषय पर वक्तव्य भी दिया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री अशोक वाजपेयी ने की।

★★

१४ अप्रैल को साहित्य समन्वय मंच, दिल्ली द्वारा आयोजित लोकार्पण समारोह में सुप्रसिद्ध कवि ज्ञानेश्वर मुले के सद्य: प्रकाशित काव्य संग्रह 'ऋतु उग रही है' का लोकार्पण संविधानविद् एवं सांसद डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने किया। समारोह की अध्यक्षता आचार्य निशांतकेतु ने की। मुख्य अतिथि केंद्रीय श्रम मंत्री डॉ. सत्यनारायण जटिया एवं विशिष्ट अतिथि सुप्रसिद्ध गीतकार श्री गुलजार थे।

मुख्य वक्ता साहित्य अकादमी, दिल्ली के उपाध्यक्ष डॉ. गोपीचंद नारंग थे। समारोह में मंच के संस्थापक श्री रामगोपाल शर्मा व राष्ट्रीय सहारा के संयुक्त संपादक डॉ. अजीज बर्नी के अलावा अनेक साहित्यकार, पत्रकार एवं साहित्य-प्रेमी उपस्थित थे।

★★

१० अप्रैल को नई दिल्ली के हिंदी भवन में संविधानविद् और सांसद डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने श्रीमती इंदिरा मोहन के गीत संकलन 'पीछे खड़ी सुहानी भोर' का लोकार्पण किया। समारोह की अध्यक्षता आचार्य निशांतकेतु ने की।

प्रमुख वक्ताओं में डॉ. निर्मला जैन, डॉ. सुरेश गौतम, श्री मधुर शास्त्री, डॉ. श्याम निर्मम, श्री असीम शुक्ल आदि ने गीत की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का संचालन डॉ. शेरजंग गर्ग ने किया।

★★

गत दिनों खंडवा में सुप्रसिद्ध कवि व व्यंग्यकार डॉ. देवव्रत जोशी के व्यंग्य संकलन 'कबीर किसकी जायदाद हैं ?' का लोकार्पण प्रसिद्ध रचनाकार पद्मश्री डॉ. रामनारायण उपाध्याय ने किया।

इस अवसर पर डॉ. प्रताप राव कदम, श्री ललित नारायण उपाध्याय, डॉ. ओम ठाकुर, डॉ. श्रीराम परिहार आदि प्रमुख रचनाकारों ने डॉ. जोशी की साहित्य साधना पर प्रकाश डाला।

□

बहुभाषा कहानी-कविता गोष्ठी व लोकार्पण संपन्न

३१ मार्च को 'एकेडमी ऑफ फाइन आर्ट्स एंड लिटरेचर' द्वारा गठित संस्था 'डायलॉग' के तत्त्वावधान में श्री अशोक वाजपेयी की अध्यक्षता में संपन्न हुई गोष्ठी में श्री विनोद शर्मा की गद्य पुस्तक 'अपने समय में जीना' का लोकार्पण हुआ। इसके बाद उमा वासुदेव ने अंग्रेजी में, नॉर्वे से आए श्री हरचरण चावला ने उर्दू में कहानी तथा श्री अशोक वाजपेयी और श्री राजकुमार सैनी ने हिंदी में, श्री मनमोहन ने पंजाबी में, श्री शहरयार व सुश्री जमीला बानो गुप्ता ने उर्दू में और डॉ. सत्यभूषण वर्मा ने जापानी कविताओं को हिंदी में सुनाकर श्रोताओं को अभिभूत कर दिया।

श्री विनोद शर्मा द्वारा संयोजित व संचालित इस गोष्ठी में अनेक रचनाकार, पत्रकार, कलाकार व रंगकर्मी उपस्थित थे।

★★

२५ मार्च को अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, हिसार की ओर से सर्वोदय भवन में विक्रमी संवत्सर २०५८ की पूर्व संध्या पर दो आयोजन हुए। प्रथम प्रात:कालीन आयोजन के विशिष्ट अतिथि श्री उदयभानु हंस, मुख्य वक्ता प्रो. भुवनेश्वर गुरुमैता तथा अध्यक्ष डॉ. कमल गुप्ता थे। इस समारोह में विक्रमी संवत्सर के प्रवर्तन को राष्ट्रीय विजय, पराक्रम, शौर्य एवं स्वाभिमान का प्रतीक बताते हुए इसके ऐतिहासिक परिदृश्य पर प्रकाश डाला गया।

दूसरे कार्यक्रम नवोदित काव्य गोष्ठी समारोह की अध्यक्षता श्री रघुनाथ प्रियदर्शी ने की तथा श्री उदयभानु हंस एवं डॉ. गुरुमैता ने विशिष्ट अतिथि एवं मुख्य वक्ता का दायित्व निभाया। गोष्ठी का संचालन श्री मनोज यादव ने किया।

★★

१९ अप्रैल को नई दिल्ली में स्व. राजेंद्र माथुर स्मृति समिति के तत्त्वावधान में 'मीडिया में आचार व राजनीतिक भ्रष्टाचार' विषय पर कुँवर नटवर सिंह की अध्यक्षता में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसके मुख्य वक्ताओं में श्री कुलदीप नैयर, श्री विनोद मेहता, श्री जगदीश सरीन, श्री मणिशंकर अय्यर आदि थे।

गोष्ठी में मीडिया की प्रमुख हस्तियाँ, पत्रकार एवं साहित्यकार उपस्थित थे।

□

राजभाषा पखवाड़ा व कवि गोष्ठी

स्टेट ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली द्वारा १९ मार्च से ३० मार्च तक राजभाषा पखवाड़े का आयोजन किया गया। निदेशक डॉ. टी.एस. सागर एवं सुश्री रीता कुनूर ने दीप प्रज्वलित कर समारोह का उद्घाटन किया।

इस अवसर पर एक कवि गोष्ठी का भी आयोजन वरिष्ठ गीतकार श्री शिशुपाल सिंह 'निर्धन' की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें श्री ओमप्रकाश आदित्य, डॉ. शेरजंग गर्ग, डॉ. राजेश खुशदिल व श्री सूरजपाल चौहान ने काव्य-पाठ किया। श्री किशोर कुमार कौशल ने कार्यक्रम का संचालन किया।

□

हिंदी कार्यशालाएँ आयोजित

गत दिनों द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के चेन्नई क्षेत्रीय कार्यालय में शहरी मंडल कार्यालयों के हिंदी संयोजक के लिए तथा शाखा कार्यालय के हिंदी प्रभारी अधिकारियों के लिए हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। इन कार्यशालाओं का उद्घाटन क्रमश: प्रभारी क्षेत्रीय प्रबंधक श्री पी.सी. डागा एवं उपप्रबंधक श्रीमती डी. रमा ने किया।

□

साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-६ अंक-११ ज्येष्ठ-आषाढ़, संवत्-२०५८ . जून २००१

संपादक
विद्यानिवास मिश्र

प्रबंध संपादक
श्यामसुंदर

सहायक संपादक
कुमुद शर्मा

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन-फैक्स : ३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@indianabooks.com
वेब ठिकाना : indianabooks.com/sahityaamrit

शुल्क
एक अंक—१२ रुपए
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—१२५ रुपए
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—१५० रुपए
विदेश में
एक अंक—दो यू.एस. डॉलर (US$2)
वार्षिक—बीस यू.एस. डॉलर (US$20)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८९, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

आवरण चित्र : श्री पंकज यादव

इस अंक में

संपादकीय

गंगा : आविर्भाव और तिरोभाव

१ जून को गंगा दशहरा है। गंगा दशहरा के दिन गंगा का धरती पर आविर्भाव हुआ था। वे देवलोक से मर्त्यलोक में आई थीं। शायद भू-विज्ञान की भाषा में इसी दिन गोमुख के रास्ते एक बड़ा हिमनद किसी आकस्मिक घटना के कारण द्रवित हुआ। हम उसीको भगीरथ का तप कहते हैं, उसीको हम असंख्य अभिशप्त मनुष्यों की आकांक्षा का ताप कहते हैं। उसने और भी द्वार बनाए। उन सबसे सहस्र गंगाएँ निकलीं और देवदारुओं के सघन जटाजूट में उलझते-सुलझते गोमुख से निकली हुई धारा में मिलीं और 'भागीरथी' कहलाईं। मनुष्य का एक तप वह था जिसने धाराओं के द्वार खोले और उसकी लिप्सा का एक आयाम यह है कि उसके द्वार बंद किए जा रहे हैं। जब हम किसी धारा को मुख्य धारा कहते हैं, जब किसी नदी को मुख्य नदी कहते हैं तो हम इस आधार पर नहीं कहते कि उसके पास जल का सँभार अधिक है, बल्कि इस आधार पर कहते हैं कि उसके पास दूसरों को साथ ले चलने की क्षमता है, उसमें संवहन सामर्थ्य है। पुराणों की एक कहानी है—गंगा को शाप मिला कि 'तुम विष्णु के चरणों की सेवा में निरंतर लगी रहती हो, कभी दूसरों को मौका नहीं देतीं। जाओ, तुम मर्त्यलोक के सामान्य मरणधर्मा असंख्य प्राणियों की सेवा में लगो।' और गंगा स्वयं अभिशप्त होकर असंख्य-असंख्य लोगों के लिए वरदान बनीं। भारत के भूगोल का परिवर्तन हुआ। आज पुरातात्त्विक साक्ष्य के आधार पर लगभग आठ हजार वर्ष से गंगा और उसकी सहायक नदियों की गोद में जो धरती है वह उर्वर बनी हुई है। दूसरी बड़ी नदियों ने रेगिस्तान बना दिया है, स्वयं रेगिस्तान बन गईं। पर गंगा ने अविच्छिन्न उर्वरता भारत की धरती को दी। यह गंगा की न टूटनेवाली इस धारा के कारण है, जिसके बल पर वह अपने से अधिक जल सँभारवाली नदियों को अपनी पीठ पर लाद लेती है और उन्हें भी अनंत महासागर तक पहुँचाती है, ताकि उनका जल सूर्य की किरणें उठा लें। ताप के भाप के रूप में उठा लें और बादलों के माध्यम से निखरे हुए रूप में फिर ढरका दें, ताकि जल संग्रहण की निरंतरता टूटने न पाए।

गंगा किसी नदी का नाम नहीं है, जाग्रत् देश की प्राण-नाड़ी का नाम है गंगा। ध्यान से अगर हम नक्शा देखें तो हिमालय, हिमालय के बाएँ बाजू की पहाड़ियाँ, विंध्याचल, पारियात्र (अरावली) की पहाड़ियाँ—इन सबके ऊपर जो बर्फ गिरती है, जल बरसता है वह सब गंगा समेटती है। यमुना के जरिए चंबल, बेतवा, काली सिंध, पार्वती, केन, धसान नदियों का सोन के जरिए मेकल पर्वतश्रेणी, कैमूर पर्वतश्रेणी, केहजुआ का जल बटोरती है। तमसा के माध्यम से सतना की पहाड़ियों का जल बटोरती है और जमुना के जरिए ही मध्य हिमालय की छोटी-छोटी अनेक नदियों का जल बटोरती है। और उत्तर से आनेवाली रामगंगा, गोमती, घाघरा, नारायणी, कोसी, तिस्ता और सबसे बड़ी ब्रह्मपुत्र के जरिए पूरे हिमालय के रस को समेट लेती है। भारत का यह पूरा भूभाग 'नदीमातृक भूभाग' कहा जाता है, क्योंकि इस भूभाग की माता नदी है। और वह नदी स्वर्ग का सुख छोड़कर आई हुई, जड़ अमरत्व की नींद छोड़कर आई हुई, मरणशील जीवों के जीने-मरने में साथ देनेवाली नदी बनकर आई हुई गंगा है। वह मनुष्यता की पीड़ा है, मनुष्यता का उल्लास है, वह नदी नहीं है; पर उसका शरीर जल तो है ही, उस जल की शोभा बढ़ते रहने में है, उस जल की क्षमता धार बनने में है। उसको अवरुद्ध करना और ऐसे अवरुद्ध करना कि धार टूट जाए, गंगा के जीवन प्रयोजन के साथ विश्वासघात है। यदि गंगा पर जीनेवाला आदमी गंगा की चिंता नहीं करता तो आत्मघात करता है।

गंगा दशहरा के दिन हम लोग काशी में गंगा नहाते हैं तो देखते हैं कि पानी कुछ बढ़ गया है। जेठ में हिम का पिघलना शुरू होता है और वह पिघला हुआ जल काशी तक भी पहुँचता है। शायद ज्येष्ठ शुक्ल की दशमी (गंगा दशहरा) प्रतीत करा देती है कि हिमालय हमारी अँजुरी में आ गया है। देश की गरिमा, देश की ऊँचाई हमारे पास आ गई है। ऐसा

लगता है, गंगा आज के दिन हिमालय के घर जन्म ले रही है। इसी दिन हम यह भी अनुभव कर रहे हैं कि बहुत बड़ा संकटासन्न है। इस संकट का नाम है 'टिहरी बाँध'। तर्क दिया जाता है कि गंगा की धारा मोड़ी जाएगी और उसका लाभ भारत की राजधानी को मिलेगा; पर किस कीमत पर? कहीं धार रुक जाए और असंख्य-असंख्य नदियों की आकांक्षाएँ सागर में मिलते ही अधूरी रह जाएँ, उन्हें ले जानेवाली धारा लुप्त होने के करीब पहुँच जाए, बड़े भूभाग का प्राणतंत्र टूट जाए। क्या संभावित क्षति को रुपए में आँका जा सकेगा? हजारों-हजार वर्षों में करोड़ों-करोड़ आदमी जिसके नाम का स्मरण मात्र करके साधारण जल में नई ताजगी पा जाते हैं, वह तिरोभाव की ओर जाए, यह मामूली नहीं, भयावह दुर्भाग्य की बात होगी। इस योजना को शुरू करना ही कहीं-न-कहीं गलत था। कहीं-न-कहीं एक बड़े शिल्पी भगीरथ के परिश्रम को व्यर्थ करना था, जो पहाड़ों के बीच में उन्होंने गंगा के लिए राह बनाई। इसीलिए वह 'भागीरथी' कहलाई। इसके पीछे बड़ी दूरदृष्टि थी। उसके पीछे संयोजन का भाव था। हरिद्वार में गंगा नहर बनी, दूसरी नहर बननी शुरू हुई तो महामना मालवीयजी ने सत्याग्रह किया था और गंगा के लिए एक अलग राह छोड़ी गई थी; पर उस समय का जल-संभरण टिहरी बाँध के प्रायोजित जल-संभरण से कहीं कम था। क्या इतनी बड़ी जलराशि को सुरक्षित रखते हुए जल के निकास की व्यवस्था की जा सकेगी? हम जल यांत्रिकी के जानकार नहीं, भूगर्भ विद्या के जानकार नहीं। गंगा की सहायक नदी राप्ती के किनारे छोटे से गाँव में मैं जनमा-पला। मैंने अपने अनुभव से देखा, जब पानी कहीं रोककर छोड़ा जाता है या पानी कभी मेंड़ या छोटे सूराख बना देता है तो सूराख पर इतना जोर पड़ता है और पानी इतने वेग से निकलता है कि बाँध भी ढह जाता है और पानी फैल जाता है। उसका अभीष्ट उपयोग नहीं होता। मैं नहीं जानता कि कैसे यह व्यावहारिक होगा कि इतना ऊँचा बाँध बने और इतने पानी को सँभालने का कोई उपाय भी सोचा जाए, जो पानी की निकासी को भी सुनिश्चित करे। मुझे तो दोनों बातें विरोधी लगती हैं। इतना बेसँभाल संग्रहण और इतनी सावधानी से जल के निकास की व्यवस्था। ऐसे सुनने में आया है कि कोई समिति इन सब मामलों के बारे में पुनर्विचार कर रही है। पर रुपया-आना-पाई को सर्वस्व माननेवाले लोग हैं, जो आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, बिजली सबको रुपए में परिवर्तित कर लेते हैं और सोचते हैं कि इससे अधिक कुछ नहीं। मनुष्य की कीमत पचास रुपए प्रतिदिन से लेकर हद-से-हद एक हजार रुपए प्रतिदिन तक हो सकती है। पानी की कीमत तो एक बोतल की बारह रुपए हो ही गई है। आकाश की कीमत आकाशचुंबी इमारत बनानेवालों से पता की जा सकती है। हवा की कीमत ऑक्सीजन की थैली की कीमत से नपी है। क्या पवित्रता, पवित्र होने की आकांक्षा की भी कीमत नपी है? क्या सबकुछ के बावजूद जीने की इच्छा नपी है? क्या दूसरे के लिए अपना विसर्जन करने की आकांक्षा की कीमत नपी है? यदि नहीं तो गंगा की कीमत भी नहीं आँकी जा सकती, जो तिरोभाव के आसन्न संकट से ग्रस्त है। किसी दूसरी नदी से गंगा की तुलना नहीं हो सकती। भारत की ही नहीं, भारत के दूर-दूर के देशों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी की साध पूरी करनेवाली कोई दूसरी नदी नहीं है। लाओस में लोग मेकांग को माँ गंगा का ही रूपांतर मानते हैं। मंगोलिया से आए हुए शिष्टमंडल के एक सदस्य ने हरिद्वार में तत्कालीन मुख्यमंत्री संपूर्णानंद से अनुरोध किया था कि 'गंगास्नान की मेरे लिए व्यवस्था करा दीजिए। मेरे दूसरे साथी न जानने पाएँ।' जब वे स्नान कर चुके तो उनकी आँखों में आँसू थे और उन्होंने संपूर्णानंदजी से कहा, 'आज पच्चीस पीढ़ियों का ऋण उतरा। पच्चीस पीढ़ी पूर्व मेरे एक पुरखे ने अपने लड़के से कहा था कि हमारे वंश में कोई गंगा नहा ले तो मुझे बड़ी शांति मिलेगी।' डॉ. संपूर्णानंद यह सुनकर स्वयं बहुत ही भीग गए थे कि गंगा कितना बड़ा इतिहास ढो रही थी, कितना बड़ा भूगोल ढो रही है। इसके साथ-ही-साथ उस स्नानार्थी के दूसरे साथियों के अविश्वास का रेत ढो रही है।

आज के दिन की अविश्वास की रेतीली आँधी में भी करोड़ों आदमी एक ही दिन में दस-बारह किलोमीटर के घेरे में स्नान कर लेते हैं और हर आदमी के मन में नई स्फूर्ति होती है। विचित्र धन्यता का अनुभव होता है। कोई भी बीमार नहीं पड़ता और माघ के कड़ाके के जाड़े में भी कष्ट का अनुभव नहीं करता। यह कौन सी शक्ति है? गंगा के जल मात्र की शक्ति है या गंगा के जल से जुड़ी हुई असंख्य-असंख्य लोगों की शुचिता के संकल्प की शक्ति है? इस सच्चाई को कौन अर्थतंत्र है जो झुठला देगा। गंगा का आविर्भाव दिवस मनाते समय यह विचार स्वभावतः आता ही है कि तिरोभाव की मनुष्यजनित संभावनाओं पर भी हम विचार करें और शुद्ध हृदय से विचार को रुपए-पैसे की दृष्टि से न विचार करें। मुझे स्मरण है कि एक बार किसी अमेरिकी मित्र ने कहा कि 'तुम शुद्ध बौद्धिक स्तर पर विचार करने के लिए तैयार हो?' मैंने कहा, 'अवश्य।' उन्होंने पूछा कि 'गोमांस खाने में दोष क्या है? पाप क्या है? इससे ठाँठ गाय-बैलों के पालन का खर्च बचेगा और आपके ही पुरखे गोमांस भक्षण करते थे। खाद्य की कमी की समस्या की भी पूर्ति होगी।' मैंने कहा, 'आपकी सभी बातें सही हैं, मुझे भी

एक प्रश्न करने की अनुमति दीजिए। आप मनुष्य का मांस क्यों नहीं खाते? आपके यहाँ बहुत से ऐसे लोग हैं जो सचमुच जी नहीं रहे हैं, साँस ले रहे हैं। उनका मांस खाइए, बहुत बड़ी जनसंख्या का हल निकल जाएगा। ऐसा नहीं कि कभी मनुष्य ने मनुष्य का मांस खाया न हो। आज भी कुछ लोग खाते हैं और बड़े चाव से खाते हैं।' वे एकदम से बिफर पड़े, 'ऐसा तो मैं कभी सोच भी नहीं सकता; क्योंकि मनुष्य का जीवन तो पवित्र है, इसमें किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है।' मैंने पूछा, 'आप उसी प्रकार सोच लीजिए, हम प्राणिमात्र का जीवन पवित्र मानते हैं। विशेष तौर पर गाय को, क्योंकि वह हमारी खेतिहर संस्कृति की प्राणभूत है। जहाँ प्राण की बात आती है वहाँ हम रुपए-पैसे की बात नहीं सोचते।' वे निरुत्तर हो गए। उन्होंने कहा, 'मैं अब यह प्रश्न किसी भारतीय से नहीं पूछूँगा।'

गंगा भी निरंतर दूध देनेवाली गाय है। वह उस बछड़े के लिए भी पिन्हाती है जो उसके थनों में दाँत लगाता है और उसके लिए तो पिन्हाती ही है जो उसके थन बड़ी मुलायमियत से चुँभलाता है। गंगा ने हिंदू को पवित्र किया हो, मुसलमान को नहीं—ऐसा कभी हुआ नहीं। हुआ होता तो रहीम यह न लिखते, 'अच्युत चरनतरंगिनी सिव सिर मालति माल। हरि न बनाओ सुरसरी! कीजौ इन्दव भाल॥' विष्णु के चरणों में तरंगित होनेवाली गंगा शिव के सिर पर मालती की माला की तरह विराजनेवाली गंगा। जब मैं यह शरीर छोड़ूँ तो तुम मुझे विष्णु बनाना, मुझे शिव बनाना, ताकि मेरे सिर पर ही विराजमान रहो। वह गंगा धैर्य ही क्षीण हो रहा है। मनुष्य ने उसे बुलाया, उसकी पवित्रता अपनी पवित्रता मानी। वही मनुष्य अपने कचरे उसमें डाल रहा है। वही मनुष्य उसका दोहन कर रहा है। ऐसा दोहन कर रहा है कि उसका जल घटता जा रहा है। वही मनुष्य बर्फ की चोटियों को रौंद रहा है। और जिसे हिमालय के बेटे धर्म-कर्म की चूली कहते हैं, वह नहीं रहेगी तो धर्म-कर्म नहीं रहेगा। भारत के आदमी की क्रियाशीलता उन हिम-धवल चोटियों के कारण है। गंगा उन्हीं को गुहारती है और अपने केशपाश जैसे वनों में बहुत बचा-बचा के आगे ले जाती है। मनुष्य उन वनों को काट रहा है। वही मनुष्य आज गंगा विजय अभियान पर निकला है। उसकी अपार क्षमता को अपने कमजोर हाथों में थामना चाहता है। क्या यह केवल गंगा का ही तिरोभाव है या भारत की मनुष्यता का तिरोभाव है? मैं नहीं जानता कि इन शब्दों का कोई प्रभाव कहीं पड़ेगा। हमारी नजरें इतनी कमजोर हो गई हैं कि अपने पैर के आगे की जमीन भी नहीं दीखती तो आगे आनेवाले समय में गंगा की धार टूटने पर क्या परिदृश्य होगा, यह हम कहाँ से देख पाएँगे! हमारे कान भी तरह-तरह की आवाजों से बहरे हो रहे हैं। हम उस प्रलाप के स्वर को कहाँ से सुन पाएँगे, जो बाँध के साथ कभी घटित हो सकता है। तब भी स्वधर्म जानकर मैंने गंगा आविर्भाव के दिन इसके तिरोभाव के भय की आसन्न सच्चाई से अवगत कराया।

श्रद्धांजलि

स्वर्गीय शैलेश मटियानी अपने ढंग के ऐसे मसिजीवी साहित्यकार थे जिन्होंने अपने विचारों की स्पष्टता बहुत सहज रूप में अपने साहित्य में रखी और अपने जीवन में कष्ट उठाकर भी अपने खरे विचारों के लिए अनेक संकट सहे। जीवन के उत्तरार्द्ध में वे तथाकथित सेक्युलरवाद के छद्म से बहुत नाराज थे। इसे उन्होंने बहुत मुखरता के साथ सामने रखा। इसके कारण उन लोगों के बीच में भी अज्ञात हुए जो उन्हें संघर्ष का मसीहा मानते थे। पर इसकी उन्होंने परवाह नहीं की। पिछले कई वर्षों से वे अस्वस्थ चल रहे थे। अस्वस्थता के बावजूद उनका लेखन रुका नहीं था। अभी हाल ही में उनकी लंबी कहानी 'नदी किनारे का गाँव' पढ़ी। यह कहानी पर्वतीय नदी की तरह ही उमड़-घुमड़कर सिमटनेवाली कहानी है। एक तरह से मृत्यु से जूझने की, और सबकुछ झेलते हुए जीते रहने की कहानी है। मैं तो ऐसा मानता हूँ, यह शैलेश मटियानी की अपनी कहानी है। इस कहानी में पहाड़ी परिवेश के बीच पलनेवाले मंगल-अमंगल का द्वंद्व तो है ही, राग-विराग का भी बड़ा ही मार्मिक द्वंद्व है। कहानी में दो कहानियाँ चलती हैं—एक नारी की, दूसरी एक संन्यासी की, जो घर छोड़कर भी पर्वतीय क्षेत्र के गाँव के घरूपन का अंग हो गया है। देखने में कहानी बड़ी सीधी-सपाट है, पर इसके भीतर छोटे-छोटे मोड़ हैं, जो बहुत ऊपर से नहीं दिखते, पर बिलकुल गहराई से कहानी पढ़ी जाए तो साफ झलक आते हैं। कहानी बड़ी पारदर्शी है—नदी की तरह, और बड़े अप्रत्याशित मोड़ लेती है नदी की ही तरह। नदी के कुंड से मृत्यु का आमंत्रण आता है और नदी में से ही जीवन का। मटियानीजी का इधर का जीवन इन दोनों आमंत्रणों में जूझने का था। इस अंक में उनके ऊपर हम अलग से लेख दे रहे हैं। पर यह संक्षिप्त श्रद्धांजलि 'साहित्य अमृत' परिवार की ओर से है। वे रचनाओं में जीवंत बने रहें और उनके शोक से संतप्त परिवारी जन तथा पाठक उन्हें वहीं पढ़ते रहें, उनसे संवाद करते रहें। □

प्रतिस्मृति

गोटे की टोपी

✍ होमवती

हिंदी कविता और कहानी के क्षेत्र में स्व. होमवती का अपना एक निश्चित स्थान है। करुणा उनकी काव्यानुभूति की विशिष्ट अंग बनी तो विषाद के रंग ने उनकी कहानियों को गहरी मार्मिकता दी। मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन के अंतर्विरोधों, संघर्षों और द्वंद्वों को उनकी कहानियों में बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से अभिव्यक्ति मिली। यहाँ हम उनकी ऐसी ही एक मार्मिक कहानी पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

'चाची, लो तुम्हारा पत्र आया है।' नवल ने एक मैला सा लिफाफा चौके में बैठी चाची की ओर बढ़ा दिया।

'मेरा पत्र? मेरे पास किसका खत आएगा, भैया? ऐसा फूटा भाग लेकर संसार में आई हूँ कि सभी को निगल गई। मैके में कोई न रहा, अपने सिर-पेट को उजाड़ चुकी। वहाँ एक भतीजी बची है, यहाँ तुम सब हो। भगवान् तुम्हें सुखी रक्खें, मुझसे तो मौत भी दूर भागती है।' पार्वती को यह सब कहते-कहते पति की याद हो ही आई; परंतु उस चार दिन के शिशु का ध्यान भी आ गया जो संसार में थोड़े समय के लिए आकर पार्वती की कोख को सूनी कर गया।

नवल को इस समय चाची की लंबी-चौड़ी वक्तृता तनिक भी न भाई। उसने पत्र को रसोई की परिधि के प्रमाणस्वरूप खींची गई रेखा में रख दिया। बोला, 'यह तो तुम्हीं जानोगी जब पढ़ोगी, कि पत्र किसका है! मोहर तो इसपर 'माणिकगंज' की पड़ी हुई है, और पता किसी स्त्री के हाथ का लिखा जान पड़ता है, इतना तो मैं बता सकता हूँ।'

'माणिकगंज! वहाँ तो भैया, वह मंजरी ब्याही है। पर उसका तो कभी पहिले ही कोई खत-पत्तर आया हो तो आया हो, इधर दो-अढ़ाई साल से तो मुझे उसका कोई भी समाचार मिला ही नहीं।' पार्वती की वाणी में उद्विग्नता तथा नेत्रों से आश्चर्य प्रकट हो रहा था। नवल चला गया। पृथ्वी पर पड़ा हुआ वह कागज का टुकड़ा अपने अस्तित्व पर अभी पश्चात्ताप कर ही रहा था कि नवल की माँ ने वहाँ आकर उसपर पैर रखते हुए कहा, 'यह क्या, छोटी बहू? किसका खत आया है?'

'क्या मालूम! शायद मंजरी का आया हो। चौके में से निकलूँ तो देखूँगी। और माणिकगंज से किसका आता!' पार्वती की वाणी में किसी प्रकार का कौतूहल न था।

'तुम्हें कोई चैन से बैठकर दो रोटी न खाने देगा, छोटी बहू, और क्या! अब तो भूले-बिसरे सभी याद कर लेंगे, तब किसी ने भी न पूछी। अच्छा, अब जल्दी से चूल्हे पर तवा टेक दो। नवल नहाने गया है। उसके बाबूजी कभी के पूजा भी कर चुके। रोज कहते हैं, कचहरी जाने को देर हो जाती है। कहते थे—न हो, अच्छी सी कोई मिसरानी ही ढूँढ़ लो। पर कोई ठीक मिले तभी तो? नवल को भी कालेज जाने को रोज देर हो जाती है। क्या करूँ, मेरी तो काया निगोड़ी भी अपने बूते की न रही! काया के साथ ही सारे काम हैं...।' इत्यादि कहती हुई गृहस्वामिनी मालिश का तेल और खाने की दवा की पुड़िया लेकर छत पर धूप में जा बैठी। बेचारी पार्वती को दो बातों का उत्तर देने का भी अवसर न मिला, न उसमें वैसा कुछ साहस ही था।

वह मन-ही-मन सोचती रह गई—यह सब क्या कह गई? किसने कब मेरी सुध नहीं ली? था ही कौन जो बात पूछता? क्या भतीजी के घर जाकर रहती? वह मेरी बात पूछती? राम-राम! संसार में बहुत सी

विधवाएँ हैं, तो क्या वह सब लड़की या भतीजी के आश्रय पे रहती होंगी? पीहर या ससुराल, दो ही जगह रहने की होती हैं। फिर जब वहाँ कोई भी न रहा तो कहाँ चली जाऊँ? उसकी आँखों में आँसू भर आए।

नवल ने आकर कहा, 'रोटी हो गई न, चाची?' किंतु कोई उत्तर न पाकर उसने देखा, उसकी चाची रो रही है। सामने पड़े हुए पत्र को उठाकर बोला, 'यह क्या? तुम रो क्यों रही हो? खत तो अभी खोला भी नहीं, फिर···फिर?'

'कुछ नहीं। रो कहाँ रही हूँ, भैया? लाओ, इस चिट्ठी को चूल्हे में झोंक दूँ, क्या करूँ? चौका छू जाएगा, नहीं तो अभी उठकर फाड़ फेंकती। आओ, तुम रोटी खा लो, नहीं तो देर हो जाएगी। चिट्ठी आले में रख दो और अपने बाबूजी को भी बुला लो।' फिर महरी से कहा, 'दो आसन बिछाकर थाली व पानी रख दे।' जल्दी और तेजी से फुलके बनाने लगी। आँखों में उमड़ते हुए आँसू आँखों से ही पी डाले। हृदय की ज्वाला शांत करने के लिए कदाचित् यही एक साधन है।

□

वह दालान में बैठी लौकी सँवार रही थी। नवल ने कालेज से आकर कहा, 'बड़े जोर की भूख लगी है, अम्माँ। कुछ खाने को है?'

'खाने को क्या धरा है? आज छोटी बहू की भतीजी का खत आया है, इसी झमेले में कुछ नास्ता बन ही नहीं पाया। क्या किया जाय? बेचारी इतनी छोटी उमर में ही बिगड़ गई। छह मास का दुधमुँहा बच्चा छोड़ गया है। उसे कौन देखे-सुनेगा? लड़की की उमर तो कोई सोलह साल की होगी बस! क्यों, न छोटी बहू?'

'हाँ, और क्या जीजी! बस यही होगी।'

'अच्छा, तो अब सोच करने से होगा ही क्या? जैसी राम की इच्छा। न हो, नवल के लिए जल्दी से चार चँदिया बना दो, दिन भर का भूखा होगा। और हाँ, देखना, जगदीश के लिए सागूदाना भी बनाना ही है। दोपहर से उसने कुछ खाया भी नहीं। क्या करें, भगवान् जैसी कुछ डालता है, सब सहनी ही पड़ती है। अब हमारी ही काया नहीं चलती तो क्या डूब मरें! न हो, चैत में देवी वर्तों में एक दिन को जाकर बेचारी को देख आना। उन दिनों कोई ऐसा काम भी नहीं रहता, मैं तो उपासी ही रहूँगी। जगदीश के इम्तहान हो जाएँगे तो वह चला ही जाएगा। वह गाँव जाने को कह रहे हैं, फिर अगले दिन तुम लौट ही आओगी। साथ में न होगा, नवल ही चला जाएगा।'

जिठानी की बातों पर पार्वती ने तो कुछ विशेष ध्यान दिया नहीं, क्योंकि उन्हें तो प्रतिदिन सुनते-सुनते ऐसी बातें सुनने का अभ्यास हो चला था। आज चार वर्ष से इन्हीं जिठानी के आश्रय में रहकर तो वैधव्य यातनाएँ झेल रही है। परंतु नवल कुछ देर तक माँ की ओर देखता ही रह गया। फिर कहा, 'चाची, तुम कोई मशीन तो हो नहीं, यह भी कर और वह भी कर। जगदीश के लिए (नवल का ममेरा भाई) तो सागूदाना बनाना जरूरी है ही, मेरी चिंता न करना, मैं भिक्का से चाय बनवाकर पिए लेता हूँ। चँदिया-वँदिया बनाने की जरूरत नहीं है, बस रात को खाना ही खाऊँगा।'

इसी प्रकार एक सप्ताह और बीत गया। तभी 'माणिकगंज' से एक पत्र और आया। उसमें लिखा था—

माणिकगंज
८.२.३२

बुआ!

भाग्य तो फूट गया ही, पर तुम भी शायद रूठ गईं। अब क्या करूँ? अकेली कैसे रहूँ? न यहाँ कोई है, न वहाँ। घर फाड़ खाने को आता है। चार दिन से मुन्नू बुखार में पड़ा है, कोई सुध लेनेवाला नहीं। यह (बच्चा) न होता तो क्या प्राणों से वैसा कुछ मोह था! पर अब तो मरा भी नहीं जाता। बताओ, कहाँ जाऊँ? जवाब जल्दी देना, जी घबड़ा रहा है।

अभागी
मंजरी।

पार्वती ने पत्र पढ़ा, उन्हें चक्कर सा आ गया। न जाने क्या सोचकर, कौन-कौन से दिनों को याद करके उनके हृदय से एक गहरी श्वास निकल पड़ी। वह दीवाल का सहारा लेकर, माथा पकड़कर बैठ गईं।

नवल ने पूछा, 'क्या लिखा है, चाची?'

बिना कुछ उत्तर दिए पार्वती ने पत्र उसके सामने डाल दिया। चिट्ठी पढ़कर युवक के चेहरे पर अनेक भावों की झलक आई और चली गई। क्षण भर बाद बोला, 'क्या थोड़े दिन के लिए वह यहाँ नहीं आ सकती? जब चाचाजी थे तब तो वह छुटपन में कितनी ही बार तुम्हारे पास आई है!'

'हाँ, भैया, तब की बात और थी। अब तो मुझे ही अपने दिन काटने भारी हो रहे हैं। मैं उसे आज ही लिख दूँगी। न हो, अकबरपुर चली जाय। न हो, दो किराएदार बसा लेगी—उसके खाने भर को आ ही जाएगा, और अकेली भी न रहेगी। पर गाँवों में शहरों की नाईं भाड़े पर कौन रहता है, भैया! बड़ी ही तबाही है—क्या करूँ?'

'करती क्या? मैं तो तुम्हारी ओर से अभी पत्र लिखे देता हूँ कि न हो किसीको साथ लेकर थोड़े दिन के लिए यहीं आ जाओ।'

'ना नवल, ऐसा न करना, भैया! जानबूझकर अनजान न बन जाओ। बहुत कुछ सुनते-सुनते कलेजा पक गया है—अब और न सहा जायगा। उसका बच्चे का साथ है···ठहरो नवल, सुनते जाओ···।'

'सो कुछ नहीं, चाची।' कहता हुआ युवक तेजी से बाहर निकल गया। पार्वती सोचने लगी—यह अपनी माँ के ऊपर क्यों नहीं हुआ? कितनी दया-माया है इसके मन में!

परिस्थितियाँ हमें कितना विवश कर देती हैं!

□

मंजरी आ गई। बुआ ने उसे छाती से लगाकर आँसू पोंछ डाले।

और···और बुआ की जिठानी ने अपनी धुली हुई धोती को बचाते हुए दूर से ही उसे बैठ जाने का आदेश किया। मन में सोचा—ऐसा रूप कहाँ समाएगा?

नवल ने अभागी विधवा के फूल-से शिशु को गोद में लेकर, ऊपर तक उछालकर हृदय से चिपटा लिया। फिर उसको प्यार से दुलारते हुए पूछा, 'भला इसका नाम क्या है, चाची?'

'नाम! नाम अभागे का क्या होता, भैया!'

'ऐसा न कहो, मैंने आज से ही इसका नाम प्रवाल रख दिया है।' फिर मन-ही-मन सोचा—कितना सुंदर शिशु है यह! बिलकुल ही माँ जैसा। बालक उसकी गोद में खिलखिला रहा था, और वह एकटक उसे देख रहा था। कुछ देर यही क्रम चलता रहा।

गृहिणी ने अचानक मौन भंग करते हुए कहा, 'जा नवल, देख तो तेरे बाबूजी आ गए क्या? घर में बैठा-बैठा···और हाँ, छोटी बहू, जाओ, लड़की के कपड़े वगैरा उतरवाओ, खाने-पीने का समय हो गया।'

गृहस्वामिनी की बात सुनकर सब ऐसे चौंक पड़े मानो भूचाल ही आ गया।

पार्वती मंजरी को घर में ले गई। वहाँ जाकर कहा, 'देख बीबी! जीजी का स्वभाव जरा ऐसा ही है। महीना-दो महीना जब तक भी यहाँ रहो, सदा उन्हें प्रसन्न रखने का यत्न करती रहना। ऐसा न हो, मंजरी, जो तेरे कारण मुझे नीचा देखना पड़े।' पार्वती की वाणी काँप रही थी।

जब नवल 'प्रवाल' को लेकर बाहर जाने लगा तब उसकी माँ 'हरप्यारो' ने चीखकर कहा, 'हैं···हैं! अरे, इसे लेकर न जा। पराए बच्चे को छूने से डरता भी तो नहीं बाबा! जरा में हाथ-पैर उतर जाए तो बस।'

'पराया! पराया किसका, अम्माँ? अब तो यह हमारे घर आ गया सो हमारा ही है।'

पुत्र की बात सुनकर माता का मुँह खुला-का-खुला ही रह गया। नेत्र थोड़े और भी फैल गए। नवल प्रवाल को उछालता हुआ बाहर चला गया। धीरे-धीरे इस घर में आए मंजरी को दो मास बीत गए। इतने थोड़े ही समय में इस घर के लिए वह ऐसी हो गई मानो सदा से ही यहाँ उसका कोई घनिष्ठ नाता है। चूल्हे-चौके के काम से लेकर घर की सफाई तक की देखभाल अब उसे ही करनी पड़ती है। यहाँ तक कि दो-चार बार मना करने के उपरांत बड़ी बुआ अब मंजरी से ही तेल की मालिश कराना अधिक पसंद करती हैं।
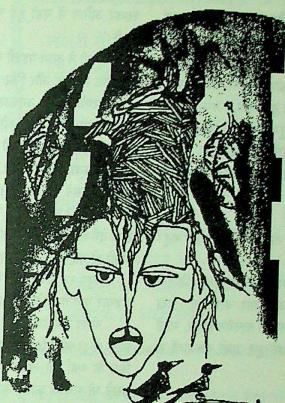
बदन तो आज तक उनका वैसा किसी ने दबाया तक नहीं जैसा मंजरी को दबाना आता है। और शायद इसी सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन एक फेरीवाले बजाज से उन्होंने मंजरी के बच्चे के लिए बहुत विरोध करने पर भी दो कुरतों की जापानी छींट खरीद ही डाली। इतना ही नहीं, धोबी की धुलाई तथा ग्वाले के दूध का हिसाब भी उसे ही जोड़ना पड़ता है। शाम को बिस्तरे तक बिछवाना उसी के जिम्मे आ पड़ा है। यद्यपि मंजरी को वैसा तो कोई अधिकार किसी ने दे नहीं रक्खा है, फिर भी महरी से लेकर घर की महतरानी तक का दुखड़ा उसे सुनना पड़ ही जाता है।

नवल के पिता को न तो और किसी का बनाया अब खाना ही पसंद आता है और न भिखारी की पीसी हुई ठंडाई में ही अब मजा आता है। नवल के मन की वही जाने, वह किसी पर कोई बात कभी प्रकट करता ही नहीं। हाँ, पहले से अधिक चुस्त, फुर्तीला और कर्तव्यनिष्ठ अब दीख पड़ता है। पहले घर में किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो वह दो-दो दिन तक यूँ ही टाल देता; परंतु अब ऐसा नहीं होता। पहले तो थोड़े-बहुत प्रबंध की चिंता पिता को भी अपने माथे लेनी पड़ती ही थी; किंतु अब नवल ने उन्हें छुट्टी सी दे दी है। पहले वह कितनी ही बातों को पढ़ने के बहाने या अवकाश न मिलने के कारण यूँ ही टाल देता था; परंतु अब ऐसा नहीं करता।

कालेज से आकर नवल ने भिक्का से कहा, 'यदि इसी प्रकार आप रोज ही बिना कहे मेरे कमरे की सफाई कर दिया करें तो मुझे बेकार बकझक करने से छुट्टी मिल जाए।'

भिखारी मालिक के मुँह की ओर देखकर चुपचाप सिर खुजाने लगा। नवल ने फिर कहा, 'बोलो, स्वीकार है न मेरी प्रार्थना?'

अब की मालिक के शब्दों में कुछ तीव्रता सी थी। वह घबड़ाकर बोला, 'भैया! बाबू हम तो नाहिन···कुछ नहीं कीन्ह रहाँय? ई सब उहै कीन्ह रहाँय···उहै।'

'उहै-उहै क्या बकता है? साफ-साफ क्यों नहीं कहता?' नवल ने हँसी रोककर कहा।

'उहै सरकार, जौन बीबी जो इन रहाँय कि नाहीं!'

'अच्छा जाओ, चाय तैयार करो। तुम बड़े आराम-पसंद हुए जा रहे हो।'

नवल सोचने लगा, मंजरी…उसी ने किया है यह सब? इतनी सुघराई और सफाई से? वह इतनी निकट क्यों होती जाती है? और मुन्नू कितना प्यारा लगता है! चलूँ देखूँ, प्रवाल सो रहा है या जाग रहा है? घर में आकर देखा, आँगन में पड़ी हुई चारपाई के ऊपर साकार शैशव हाथ-पाँव फेंक रहा है। नवल ने उसे गोदी में उठाते हुए कहा, 'अम्माँ, देखो, हमारा प्रवाल कैसा भाग्यवान् है! आज मालूम हुआ कि बाबूजी की तनख्वाह में पूरे पचास रुपए बढ़ गए, अब मिलेंगे पूरे चार सौ।'

माँ ने तो इस बात पर कोई उत्तर दिया नहीं, किंतु चाची कह उठीं, 'अरे भैया! भाग्यवान् होता तो क्या होते ही…।'

'छिः-छिः! ऐसी बात न कहो, चाची।'

अब की गृहिणी भी बोल उठीं, 'ठीक तो कहती हो, छोटी बहू! होते ही बाप को डस गया।'

नवल ने तीव्र दृष्टि माँ पर डालकर मन में कहा—यह कितनी निष्ठुर हैं! और फिर माँ की ओर देखता हुआ बाहर चला गया। देख गया, मंजरी चाय का पानी छान रही है—बिलकुल तल्लीन होकर, मानो यह बात उसने सुनी ही नहीं। हदय के दुखते हुए छाले वाग्बाणों से बिंधकर कसक ही उठते हैं।

□

आज एकादशी का दिन था। छोटी बहू पार्वती तो निर्जल व्रत रखती ही थीं; बड़ी बहू हरप्यारी आज के दिन कच्ची रसोई नहीं जीमती थी। यद्यपि सुहागिन होने के कारण वह व्रत नहीं रखती थी।

मंजरी ने बड़े आग्रह से पार्वती से कहा, 'बुआ, आज मैं ही रसोई बनाए लेती हूँ, आप लोग तो आज रसोई जीमेंगी ही नहीं।'

पार्वती कुछ सम्मति दें, इससे पहिले ही गृहिणी ने विरोध करते हुए कहा, 'मैं और तुम्हारी बुआ नहीं खाएँगी तो क्या हुआ, मंजरी! तनिक सोच-समझकर तो बात कहा करो। वह क्या (नवल के पिता) तुम्हारी बनाई रोटी खा सकेंगे? तुम्हारा बच्चे का साथ है। इस घर के मर्द क्या-क्या छुई-भिड़ी धोती से बनाई गई रोटी खाना पसंद थोड़े ही करते हैं!'

'लेकिन बड़ी बुआ, मैं तो इसी से कहती थी कि बुआ आज उपासी हैं, मैं ही रसोई बना लेती। वैसे लल्ला को अभी तक तो मैंने छुआ नहीं है।'

'सो क्या हुआ? आखिर धोती कैसे अछूती रह सकती है, जब तक इस पर पूरा ध्यान न दिया जाय।'

नवल ने अपने कमरे के दरवाजे पर खड़े होकर कहा, 'क्यों अम्माँ! धोती में छूत कहाँ से घुस गई? मैं तुमसे पचास बार छू जाऊँ, तुम मुझे तो कभी रोकतीं नहीं।'

'मर्दों का क्या विचार गिना थोड़े ही जाता है, बेटा! तू इन बातों को क्या समझे!'

माँ की बात का उत्तर देने के बदले नवल ने अपनी धुली धोती लाकर आँगन में पड़ी हुई चौकी के ऊपर डालते हुए कहा, 'लो, यह धोती।'

मंजरी ने आज पहली बार ही नवल को सिर से पाँव तक एक छिपी हुई दृष्टि से देखा और फिर वह न जाने क्या सोचकर कमरे में भाग गई।

हरप्यारी मानो आकाश से गिर पड़ी। वाणी को थोड़ा तीव्र करके बोली, 'राम-राम, भैया! घोर कलियुग आ गया। लाज-शर्म का तो नाम ही नहीं रहा। मर्द की धोती पहनने में क्या लज्जा न आएगी?'

गृहस्वामिनी की बात सुनकर अभागी विधवा खड़ी-की-खड़ी ही रह गई। उसने क्या कभी नवल की धोती पहनने का मन में विचार तक भी किया है? कमरे में से केवल इतना ही कहा, 'बुआ, केवल लाकर डाल देने से ही तो धोती नहीं पहन ली गई। मेरी धोती सूखी नहीं तो क्या गीली ही पहनकर रोटी बनाने भर से मर थोड़े ही जाऊँगी।'

'चुप रह मंजरी, अधिक जबान न चला। रोटी मैं ही बनाऊँगी।' कहकर पार्वती चौके में आ बैठी।

नवल सबकुछ सुनता हुआ आज बिना खाए ही कालेज चला गया। माँ ने थोड़ा क्रोध दिखलाया। चाची ने सोचा—भूखा तो रह चुका, किसी मित्र के यहाँ खा लेगा। पर मंजरी…उसके मन की वही जाने। आज उसने भी भय के कारण केवल नाम मात्र को ही खाया। बार-बार उसके मन में एक ही बात उठने लगी—वह यहाँ क्यों आई?

जब रात को नवल घर में आया तो उसका मन बहुत ही अशांत और दुःखी सा था। मित्रों के विशेष आग्रह करने पर आज वह सिनेमा देखने चला ही गया। खेल था देवदास। पार्वती का प्रेम, उसकी मूक भाषा तथा चुभते हुए भाव और पत्तों के विवश जीवन का प्रभात नवल के हदय में रेखाएँ-सी खींच गया। देवदास की दुर्दशा देखकर तो उसकी आँखें रोते-रोते लाल हो गई थीं। मित्रों ने न जाने कितना मजाक उड़ाया, फिर भी वह अपने को रोक न सका।

गिरता-पड़ता घर आकर, वह अपने कमरे में पड़ी हुई आरामकुरसी पर लेटकर न जाने क्या-क्या सोचता रहा। अचानक कैंची के गिरने की-सी आवाज से वह चौंक उठा। देखा, मंजरी बहुत से कपड़ों का ढेर लगाए, ठीक उसके कपड़ों की आलमारी के सामने बैठी कुछ सी रही है। नवल एकदम कुरसी से उठकर खड़ा हो गया। कौतूहल का कुछ पारावार न था। 'इतनी रात को…मेरे कपड़े ठीक कर रही है? अकेली मेरे कमरे में! अम्माँ क्या कहती होंगी? चाची ही क्या कहेंगी? मंजरी को मेरी इतनी चिंता क्यों है? वास्तव में मेरी वह कौन है?' इत्यादि बातों ने नवल के मस्तिष्क में हलचल सी मचा दी। जो कुछ वह अभी देखकर आ रहा था, हदय को उद्वेलित करने के लिए वह सबकुछ क्या कम था?

वह धीरे-धीरे बाहर चला आया। बरामदे में आकर बड़े साहस से माँ को आवाज दी, चाची को पुकारा, 'मुझे दूध दे जाओ।' आज उसकी हिम्मत मंजरी से दूध माँगने की न हुई।

माँ ने कहा, 'आज मेरे पैरों में बड़ा दर्द है।'

चाची ने उत्तर दिया, 'आई भैया! देख तो मंजरी इसी आसरे में वहीं कहीं बैठी होगी। मुन्नू को अकेला कैसे छोड़ आऊँ?'

नवल की आवाज सुनकर मंजरी का ध्यान टूट गया। जल्दी-जल्दी कपड़े को यथास्थान यूँ ही सरकाकर वह बाहर निकल आई। नवल ठगा हुआ सा यह सब देख रहा था। पर मंजरी के हृदय में न कोई भाव ही दीख पड़ता था और न नेत्रों में कोई कौतूहल ही नाच रहा था। जल्दी से चौके में गई और दूध का गिलास भर लाई। बुआ ने उसके हाथ से दूध का गिलास लेकर कहा, 'जा, लल्ला अकेला है, मैं दूध दे आऊँ।'

मंजरी ने यह भूल जाना चाहा था कि यह दूसरे का घर है। कुछ सफल भी हुई। परंतु अब न जाने क्यों, उसे अपने घर की याद आने लगी। उन टूटे-फूटे खंडहरों में एक प्रकार की स्वच्छंदता, एक प्रकार का संतोष निहित था। किंतु इस इतने बड़े पक्के मकान में एक प्रकार की जलन, एक प्रकार का अपमान और कटुता का आभास अब मंजरी के अनुभव में आने लगा।

रात को नवल बहुत देर तक जागता रहा। नींद आती ही न थी। एक के बाद एक-एक करके उसके मस्तिष्क में विचार आने-जाने लगे। नवल को उस दिन की बात भी याद हो आई, जब वह दालान में खड़ा अपनी कमीज में बटन टाँक रहा था। मंजरी देखती हुई उसके सामने से निकल गई, परंतु यह नहीं कहा कि 'तुम्हें क्या बटन टाँकना आएगा, या कालेज को देर हो जाएगी, लाओ मैं ही लगा दूँ।' नवल ने उस दिन मन-ही-मन कहा था—कितनी अभिमानिनी लड़की है! पर आज उसके हृदय से वह भाव कितनी जल्दी लुप्त होकर केवल थोड़ा सा पश्चात्ताप छोड़ गया। यह स्वयं नवल भी ठीक-ठीक न समझ सका। धीरे-धीरे कई मास बीत गए। अब मंजरी की प्रत्येक गतिविधि का ध्यान बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किया जाने लगा।

वैसे तो वह घर का प्रत्येक कार्य बड़े उत्साह और सुचारुता से करती ही थी, किंतु जो कुछ और जितने भी कार्य वह नवल से संबंध रखनेवाले करती, उन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। और कोई तो पीछे ही रहा, सबसे पहिले तो उसकी बुआ ही बहुत सतर्क रहने लगीं। पर जब उन्होंने देखा कि स्वयं नवल ही अब बड़ी झिझक और संकोच के साथ घर में आता है, और मंजरी तो कभी उसकी ओर आँख उठाकर देखनी भी नहीं, तब उन्हें संतोष सा हो गया। कारण न मिलने से संशय का क्रम आप ही मंद पड़ता गया। अब नवल ने प्रवाल को भी अधिक खिलाना कम कर दिया था। सबने सोचा—उसकी पढ़ाई के दिन हैं। मन-ही-मन ये बातें उठीं और पनपने से पहिले ही मन में दब गईं।

मंजरी ने यह भूल जाना चाहा था कि यह दूसरे का घर है। कुछ सफल भी हुई। परंतु अब न जाने क्यों, उसे अपने घर की याद आने लगी। उन टूटे-फूटे खंडहरों में एक प्रकार की स्वच्छंदता, एक प्रकार का संतोष निहित था। किंतु इस इतने बड़े पक्के मकान में एक प्रकार की जलन, एक प्रकार का अपमान और कटुता का आभास अब मंजरी के अनुभव में आने लगा। एक दिन बुआ से उसने कहा, 'बरसात ऊपर से आ रही है। दोनों ही जगह के मकानों की कच्ची छतें हैं। उन्हें तो देखना ही चाहिए न! दूसरे घर की और भी बहुत सी चीजें बरबाद हो रही होंगी।'

पार्वती उसके इस विचार से सहमत होकर बोली, 'हाँ! आखिर घर से तो सदा काम रहेगा, घर उजाड़ देने से कैसे बनेगा, बेटी? न हो, थोड़े दिन के लिए चली ही जाओ। यहाँ ऐसे कब तक बीतेगी?'

'लेकिन मैं अकेली ही उस घर में क्योंकर पैर रक्खूँगी, बुआ? क्या तुम दो-चार दिन के लिए भी नहीं चल सकतीं?'

'तू देखती नहीं, मंजरी, मैं कितनी विवश और पराधीन हूँ। बड़ी जी से तो कुछ होता ही नहीं, और जब से तू आई है तब से तो वह अपने शरीर का भी कुछ नहीं कर पातीं। देख, अकबरपुर में मेरी मौसी की लड़की है। न हो तू उसे थोड़े दिन के लिए साथ रख लेना। मैं खत लिख दूँगी, वह तेरा सारा काम करवा देगी। फिर कोई बूढ़ी-ठेरी औरत मिल जाने पर अपने पास डाल लीजियो। जिंदगी के दिन तो किसी प्रकार काटने ही पड़ेंगे, लाड़ो! देख, आ सकी तो दो-चार दिन के लिए मैं भी आ जाऊँगी।' कहते-कहते पार्वती की आँखों में आँसू भर आए। मंजरी भी रो पड़ी।

शाम को नवल कालेज से आया तो उसके सामने यह प्रस्ताव रक्खा गया कि वह जगदीश के साथ भेजने का प्रबंध कर दे। किंतु नवल ने क्षण भर सोचने के बाद कहा, 'उसके साथ तो मैं हरगिज भी किसी का आना-जाना पसंद न करूँगा, चाची। वह बड़ी खराब आदत का लड़का है। दूसरे, जाने की ऐसी जल्दी भी क्या है? वहाँ अकेले रहना क्या ठीक होगा? प्रवाल को ही तब कौन देखे-सुनेगा?'

भतीजे की बात सुनकर चाची अचंभे में आ गई। और तो कुछ नहीं कहा, बस इतना ही कहा, 'नवल, जान पड़ता है कि अपनी स्त्री से भी अधिक तू बच्चों की विशेष चिंता किया करेगा। प्रवाल को कौन देखे-सुनेगा, भैया? उसे देखने-सुननेवाला ही न रहा।'

युवक कुछ झेंपकर बाहर चला गया। दो दिन बाद पार्वती ने जगदीश के साथ मंजरी को भेजने का आयोजन कर ही दिया। नवल स्टेशन पर

मंजरी को पहुँचाने गया तो उसने केवल उससे यही कहा कि 'प्रवाल को अच्छी तरह से रखना।' आगे वह कुछ न कह सका। जगदीश टिकट लेकर लौटा तो नवल ने उसे मर्दानी गाड़ी में सामान रखा कर बैठ जाने का आदेश करके, गाड़ी आने पर मंजरी को जनाने दरजे में चढ़ा देने का विचार किया। किंतु जगदीश को यह रुचा नहीं। मन में आया कि कह दूँ—तुम कौन? यह अधिकार तो मुझे ही मिलना चाहिए। मैं जी चाहे जैसे और जहाँ बैठा हूँ···मैं पहुँचाने जा रहा हूँ और तुम स्टेशन पर भी केवल अपनी ही इच्छा से चले आए। परंतु यह सब केवल सोचने भर की बातें थीं, ट्रेन आने पर वही हुआ जो कुछ नवल ने चाहा था। उसकी बात दुलखने की हिम्मत जगदीश में तो क्या, बहुतों में न थी।

नवल ने गार्ड से कुछ कहा, जिसके उत्तर में वह बोला, 'आप चिंता न करें, बाबू···आपके घर के लोग अच्छी तरह उतार दिए जाएँगे।' और फिर वह मुसकरा के हलके छींटे डालता हुआ चला गया। नवल के चेहरे पर हलकी लाली दौड़ गई और मंजरी ने अपना सिर घुटनों में डाल लिया। इंजिन ने सीटी दी तो नवल प्रवाल का मुख चूमकर तेजी से स्टेशन के बाहर चला गया। मंजरी ने केवल एक ही बार दृष्टि उठाकर देखा था कि उस सहृदय युवक की पलकें गीली हो गई थीं।

जगदीश जब कुलियों को पैसे दे चुका तो खिड़की से मुँह निकाल मंजरी की ओर देखकर बोला, 'जिस चीज की जरूरत हो, बता देना, मैं बराबर में ही बैठा हूँ।' और फिर मन-ही-मन सोचने लगा—नवल कितनी दृढ़ता से मुझे आज ही शाम को लौट आने की आज्ञा दे गया।

गाड़ी धक-धक करती हुई हवा से बाजी लेने लगी। मंजरी ने आँचल के छोर से अपने नेत्र मल डाले। पास ही बैठी हुई दूसरी महिला ने पूछा, 'क्या यह तुम्हारे···' पर बात पूरी न सुनने के विचार से मंजरी ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया—मानो वह कुछ सुनना ही नहीं चाहती। प्रवाल अब भी हाथ-पैर पटक रहा था।

□

क्रमशः डेढ़ वर्ष बीत गया। जो दुःख से घबरा उठे थे उन्होंने अपने हृदय को सब सहने योग्य बना लिया था, और जो सुखी थे उनकी कल्पना में दुःखियों के दुःख पर विचार करने की गुंजाइश ही न थी। नवल साल भर वकालत कर लेने के पश्चात् अब मुंसिफी की परीक्षा में बैठने की तैयारी कर रहा था। पार्वती गृह कार्यों से छुट्टी पाकर अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ की ओर अधिक लगाने लगी, और हरप्यारी बेटे के विवाह की चिंता में रत रहने लगीं। किंतु न तो नवल को कोई कन्या ही पसंद आती थी और न वह अभी नौकरी मिलने से पहिले विवाह ही करना चाहता था। स्वावलंबी बनकर ही शादी करेगा, यही उसका निश्चय था।

नवरात्र के दिन आ गए। गाँव से जगदीश के पिता अथवा नवल के मामा-मामी सपरिवार रामलीला देखने के लिए बहिन के घर सीतापुर ही आए हुए हैं। नवल की माँ ने शाहाबाद से अपनी भानजी और भतीजी उमा को बुला रक्खा है। अपने दो छोटे बच्चों के साथ वह भी बुआ के घर आई हुई है। मंजरी को शायद इस घर के सभी लोग भूल से गए, क्योंकि जब से गई है, उसका कभी कोई जिक्र ही नहीं आया।

खाना खाते समय नवल ने चाची से कहा, 'न हो थोड़े दिन के लिए चाची, प्रवाल को भी बुला लो। दो-चार दिन रहकर मेला ही देख जाएगा। बहुत दिन हो गए, उसे देखने का मन कर रहा है। अब तो न जाने कैसा लगता होगा! शायद कुछ-कुछ चलने भी लगा हो। क्यों चाची, अब तो वह उमा जीजी की छोटी मुन्नी के बराबर हो गया होगा?'

'हाँ, भैया! मंजरी का खत आया तो था, लिखा था कि थोड़ा-थोड़ा बोलने भी लगा है। खूब तमाशा करता है। अब तो वह चलने लगा है। पर बुलाऊँ कैसे, नवल? तुम तो सब जानते हो, जीजी ने जब वह चली गई थी तब कहा था—मेरे घर में किसी की राँड़-विधवा सयानी लड़की का कब तक गुजर होता, छोटी बहू! यह तुमने अच्छा ही किया जो उसे भेज दिया।'

'लेकिन चाची, अब तो मैं भी नौकर हो जाऊँगा। तब क्या मैं अकेला ही परदेश में रहूँगा? तुम मेरे साथ न चलोगी? अम्माँ के बस का तो कुछ है नहीं, चाची, तुम्हीं को चलना होगा। तब तुम किसी को भी बुलाकर रख सकोगी।'

'खैर, तब जैसा कुछ होगा, देखा जाएगा। तुम्हारे पास तब दुलहिन रहेगी, नवल! मेरा रहास कहाँ हो सकता है, भैया! और न मुझे कोई यहाँ से कभी निकलने ही देगा। यहीं के धंधों से फुरसत नहीं मिलती, जीजी के बस का तो अब पानी भी लेकर पी लेना नहीं रहा।'

'और जो मैं विवाह ही न करूँगा तब?'

'हुश! तू अपनी माँ का इकलौता बेटा है, चंदा! फिर मेरे ही कौन बैठा है? दो घर का दिया तेरे ही वंश से तो जलता रहेगा, मुन्ना!'

'यह सब कुछ नहीं, चाची। जिसे अपना मान लिया वही अपना है। संसार में आकर कुछ दूसरों के दुःख को बँटाना भी मनुष्य का कर्तव्य है। मुझे वैसा कुछ शादी-वादी का ढोंग नहीं सुहाता। अपने सुख में ही डूबे रहना क्या कोई जीवन है? महात्माजी ने एक बार कहा था कि—दीन और अनाथ तथा विधवाओं की रक्षा का भार आजकल के पढ़े-लिखे नवयुवकों को अपने ऊपर लेना ही चाहिए, तभी जाति और समाज का उद्धार होगा।'

'यह आज तू कैसी बातें कर रहा है, नवल?' पार्वती ने उसकी बात काटकर कहा।

इसी समय उमा अपने बच्चे को गोद में लिये आई। बोली, 'दूध दे दो, बुआ! लल्ला कब से भूखा रो रहा है!'

'देती हूँ।' कहकर वह दूध ठंडा करने चली गई।

नवल ने कहा, 'क्या तुम्हारे हाथ नहीं रहे, उमा जीजी? चाची रात-दिन काम करते मरी जा रही हैं!' फिर कुल्ला करके माँ के पास जा बैठा। धीरे-धीरे उनके पाँव दबाते-दबाते बोला, 'अम्माँ! आजकल काम

बहुत बढ़ रहा है, मिसरानी वगैरा तुम्हें कोई जँचती नहीं। न हो थोड़े दिन के लिए मंजरी को बुला लो। जब यह सब लोग चले जाएँगे तब उसे भी भेज देना। बहुत दिन से उसका कोई समाचार भी नहीं मिला। इधर तुम्हारी सेवा भी वैसी कुछ ठीक नहीं हो पाती।'

हरप्यारी आँखें फैलाए पुत्र की ओर देखती रही।

नवल ने कहा, 'हाँ, बस यही ठीक है, इसका प्रबंध किए देता हूँ। मुझसे तुम्हारा दुःख नहीं देखा जाता।'

'सो तो ठीक है, नवल! पर तुझे उस लड़की की इतनी चिंता क्यों है? उसका ब्योरा जाने बिना क्या रोटी न पचेगी?'

'नहीं, अम्माँ, यह बात नहीं है। लेकिन मनुष्य की चिंता करना मनुष्य का कर्तव्य है न? मैं उसी की बात कह रहा था।' और फिर वह उठकर चल दिया।

हरप्यारी कहती रह गई, 'अरे सुन, ठहर तो, नवल!'

'मुझे जरा काम है, अम्माँ, आया।' कहता हुआ वह चला ही गया।

पार्वती के आने पर हरप्यारी कहने लगी, 'आज लड़के को क्या पढ़ा दिया? न हो, दो-चार नौकर-दासी और लगा लो।'

पार्वती की समझ में खाक न आया। वह अवाक् होकर जिठानी का मुँह ताकती ही रह गई। अचानक हुए वज्रपात के विषय में कोई क्या अनुमान लगावे!

□

दशहरे का दिन आ गया। घर के सभी बालक रामलीला जाने की खुशी में फूले न समाते थे।

'अहा जी, आज तो रावण फुँकेगा। हम तो तीर-कमान लाएँगे।' एक दूसरे बच्चे ने चीखकर कहा, 'और मैं गुब्बारा!'

इसी समय उमा की मुन्नी ने अपने सिर की टोपी की ओर इशारा करके कहा, 'देखो जी! अहा! हमारी टोपी, नई चमकनी, गोटे की।' इत्यादि कहकर वह पल भर में वहीं पहुँच गई, जहाँ दीवार के सहारे प्रवाल खड़ा-खड़ा निमाना सा सबकी ओर देख-देखकर आँखें झुका लेता था।

मुन्नी अपनी टोपी दिखाकर प्रवाल के सिर में एक हलकी सी चपत लगाकर अपनी नानी के पास भाग गई। इस ओर किसी का भी ध्यान न था। बच्चों के शोरगुल से कानों के परदे फटे जाते थे।

मंजरी जल्दी-जल्दी पूरियाँ बेल रही थी और पार्वती उतारती जाती थी।

नवल ने रसोई की चौखट पर खड़े होकर कहा, 'क्या प्रवाल मेला नहीं जाएगा, चाची? उसे तो अभी कपड़े भी नहीं पहनाए गए। क्या ऐन जाने के वक्त ही इसे तैयार किया जाएगा? उठो, सुनती हो या नहीं?'

पर दोनों में से एक ने भी उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। नवल जानता था कि इधर कुछ दिनों से चाची मुझसे नाराज सी रहती हैं। मंजरी में इतना साहस ही कहाँ था!

अब की उसने कुछ लापरवाही से कहा, 'ठीक है, अच्छा लो, हम भी नहीं जाते।'

यह सुनकर पार्वती झल्ला उठीं—क्या और कोई नया कांड रचने की सूझी है, नवल? मुझे इस घर में अब रहना भी भारी हो उठा है। तुम क्यों न जाओगे? प्रवाल को मैं नहीं भेजूँगी। उस पर मेरा अधिकार है।'

बुआ की पिछली बात सुनकर चाहे नवल इतना विस्मित न हुआ हो जितनी मंजरी। वह स्तंभित होकर उनका मुँह देखने लगी। इच्छा हुई कि एक बार आँगन की ओर मुँह फेरकर देख ले कि वे गए या हैं? पर साहस न हुआ।

इसी समय दालान की ओर से बड़ा शोरगुल सुन पड़ा, मानो एक साथ कई कंठों से निकली हुई तीव्र ध्वनि किसी आनेवाली विपत्ति की सूचना दे रही है।

'अरे ले बस, कमबख्त मुन्नी के बाल खींचकर, टोपी छीनकर भाग गया न। बड़ा शौकीन बना है। होते ही तो बाप को खा गया, अब कौन लाकर उढ़ावे-पहनावे। माँ भी खूब है भई! अपने बच्चे को जरा भी डाँट-डपटकर नहीं रखती। चार दिन शहर में रहकर निगोड़े को दिन ही लग गए।' इत्यादि कर्णकटु शब्दों की बौछार से मंजरी का हृदय फटने लगा।

पार्वती ने उधर कान लगाए। मंजरी बेलन फेंककर भागी। और नवल आग्नेय दृष्टि से उमा को निगलता हुआ पल भर में प्रवाल के पास जा पहुँचा। टोपी छीनकर दूर नाली पर फेंक दी और प्रवाल को उठाकर गोद में ले लिया। मंजरी वहीं खड़ी रह गई। आँखों में आँसू थे और होंठों पर थी एक मंद मुसकान। क्षण में यह सब हो गया। उमा का भारी चेहरा फूलकर कुप्पा बन गया। हरप्यारी की भवें तन गईं तथा नवल की मामी के बत्तीसों दाँत किटकिटाने लगे।

पल भर पश्चात् नवल की माँ ने गरजकर कहा, 'तुम मेरे घर का सत्यानास करने पर क्यों तुल गईं, छोटी बहू? कहो तो काला मुँह करके मैं कहीं निकल जाऊँ?'

'नहीं अम्माँ! तुम्हें तो कहीं भी जाना न होगा, मैं ही अपना काला मुँह करके निकल जाने की बात सोच रहा हूँ। फिर सब झगड़ा ही मिट जाएगा'''मेरे ही कारण तो यह सब हो रहा है न!'

'यह कुछ नहीं करना होगा, भैया नवल! और जीजी! तुम सब

शांत हो जाओ। मैं कल दिन निकलने से पहिले ही इन दोनों अभागों को यहाँ से निकाल दूँगी। यह कलमुँहा क्या जाने कि जिसके बाप होता है वह गोटे की टोपी ओढ़ सकता है!' फिर मंजरी की ओर घूमकर पार्वती ने कहा, 'जा डायन! अपना सामान ठीक कर ले। फिर मुझे कभी अपना मुँह न दिखाना।'

मंजरी को उस समय कुछ न सूझ रहा था। वह मूर्च्छित सी होकर, धम्म से नवल के कमरे की चौखट पर जा गिरी। कनपटी से फूटकर रक्त की धारा बह चली। युवक ने प्रवाल को लिये-ही-लिये युवती को खींचकर अंदर करके कमरे के किवाड़ बंद कर दिए। किंतु उसे कुछ भी पता न था। ज्ञान शक्ति हमारी वेदना को और भी तड़पा देती है, और शायद बेहोशी उसके दर्द को कम करने का यत्न करने लगती है।

□

शरद् पूर्णिमा का दिन था। प्रकृति चंद्रमा की चाँदनी में मल-मल कर स्नान कर रही थी, और तारिकाएँ उसकी माँग भरने के लिए मोतियों की लड़ियाँ गूँथ रही थीं। छत पर खड़ी हुई मंजरी चाँद दिखा-दिखाकर प्रवाल को बहला रही थी। द्वार पर किसी ने धक्का मारा, साँकल झनझना उठी। नीचे आँगन में पड़ी हुई खाट पर मंजरी के एकाकी जीवन की एक मात्र सहारा बुढ़िया ग्वालिन चीख उठी, 'कौन है रे?'

ऊपर से मुड़ेल पर बैठते हुए मंजरी ने भी वंशी में फूँक मार दी, 'कौन है, दादी?'

उत्तर आया, 'मैं ही हूँ, किवाड़ खोल दो।'

मंजरी की उरतंत्री आपसे आप बज उठी—वही, क्या वही आए हैं? इतने दिन बाद, इतनी रात को? उसने सिर का आँचल ठीक कर लिया, फिर अपनी धोती की ओर देखकर मन-ही-मन कहा—ठीक है, वैसी मैली तो नहीं दीख रही। और फिर जल्दी से चौबारे में सूखता हुआ प्रवाल का धुला कुरता ले आई। बुढ़िया से कहा, 'किवाड़ खोल दो दादी, दूध में थोड़े चौले भिगोकर चाँदनी में रख दो।'

मंजरी ने देखा, सूट-बूट से सुसज्जित नवल कितने आकर्षक रूप में, पल में आकर मंजरी के सामने खड़ा हो गया। पर पहिले से कुछ लंबा और दुबला भी दीख रहा था। न जाने कब की पड़ी हुई एक टूटी सी कुरसी लाकर मंजरी ने छत पर डाल दी। पर वह उस पर बैठा नहीं। जिस चारपाई पर प्रवाल पड़ा था, वह उसी के पैताने बैठ गया।

मंजरी सोच रही थी—यह क्यों आए? अब तो मैं इनकी चौखट पर कभी भी पैर न रक्खूँगी। चाहे भूखी ही क्यों न मर जाऊँ और चाहे प्रवाल ही क्यों न म···। आगे उससे सोचा ही न गया। उसका हृदय काँप उठा। मंजरी को किसी उलझन में पड़ी देख नवल ने ही बात शुरू की, 'अच्छी तो हो, मंजरी? प्रवाल तो अच्छा रहा? कुछ दुबली अधिक हो गई हो!'

'नहीं तो, अच्छी हूँ।' फिर चुप।

अब की उसने प्रवाल का सहारा लेकर कहा, 'देखा प्रवाल, तुमने? तुम्हारी अम्माँ अकारण ही मुझसे रूठ गईं। घर आए अतिथि का सत्कार क्या ऐसे ही किया जाता है? भूख तो बड़े जोर की लगी है। मैं तो आया था भरपेट मावे के गँझे खाने, पर जान पड़ता है कि भूखे ही रहना पड़ेगा।'

युवती का तन-मन सिहर उठा। वह आगे कुछ सुनने के पहिले ही जल्दी से नीचे जाकर कटोरा भर चौले और थोड़ी सी बेसन की पपड़ी ले आई।

नवल ने हँसते हुए वह सब उसके हाथ से लेते हुए कहा, 'यह सब तो शायद कम हो जाएगा, मंजरी! बताओ, और भी कुछ है या नहीं? मैं फिर उसी अंदाज से खाना शुरू करूँ।'

'हाँ, बहुत है।' वह भी इतना कहकर हँस पड़ी।

नवल ने खाते-खाते कहा, 'तुम सोच रही होगी कि यह दाना अचानक कहाँ से आ पड़ा? पर मैं खाली तुम्हें यह बताने आया था, मंजरी, कि अब प्रवाल को गोटे की टोपी की कमी न रहेगी। अब मैं नौकर हो गया हूँ। पूरे अढ़ाई सौ एक महीने में मिल जाया करेंगे। अच्छा जाओ तो, नीचे मेरे सामान में कागज का एक गोल डब्बा रक्खा होगा, उसे उठा लाओ। बहुत भारी नहीं है, आसानी से उठ सकेगा। न होगा, जीने पर से मैं थाम लूँगा।'

युवती चुपचाप आज्ञा-पालन कर आई। डब्बा खोलकर देखा, एक न दो, पूरी चार टोपियाँ सलमे और जरी के काम से पुती हुई धरी हैं। देख कर बोली, 'यह क्या? यह सब इतनी सारी क्यों ले आए? बेकार पैसे फेंकने से क्या लाभ? बहुत पैसा दीख रहा हो तो थोड़ा गरीबों को ही दे डालो!'

'हाँ, यही सब पैसे-वैसे का हिसाब रखने के लिए ही तो मैं तुम्हें लेने आया हूँ। मैं अपना बाहर का काम देखूँ या घर-गृहस्थी सहेजता रहूँ! तुम तो यहाँ हो, वहाँ कोई अभी जाना नहीं चाहता, फिर घर कौन देखे?'

युवती का बदन काँपने सा लगा। वह आज कैसी बातें सुन रही है? हिंदू घर की अभागी विधवा को यह सब कैसे रुचता! बड़ा साहस करके बोली, 'ऐसी बातें न कहो, मुझे इन बातों से खुशी नहीं होती।'

'यही तो मैं भी कहता हूँ, मंजरी! बातें करना मुझसे वैसा आता ही कब है! वही सब तो तुमसे सीख लेने की जरूरत मालूम हुई। तभी तो चला आया। और जहाँ तक खुशी का सवाल है वहाँ तक मैं तुम्हें खुश करने तो आया नहीं, मैं तो अपनी खुशी को लेकर ही यहाँ तक चला आया हूँ। अच्छो बोलो, कब तक चलने का विचार है? छुट्टी तो सिर्फ दो ही दिन की मिल सकी, ज्यादा मिली ही नहीं।'

'चलने का विचार? कहाँ चलने का?' युवती ने आश्चर्य से पूछा।

'यह कैसे बताऊँ? मेरे या अपने किसी के भी घर चलने का विचार पूछ रहा था। वह है तो आखिर घर ही, सीमेंट और चूने का बना है।'

'मेरा घर तो कच्चा-पक्का जैसा भी है, मेरे लिए बहुत है। पर मैं

वहाँ तो भूलकर भी अब पैर न रक्खूँगी। किस मुँह से जाऊँ?'

'क्यों, मुँह में क्या हो गया? भई, तुम्हारे घर तो मैं तुम्हें अकेली छोड़ नहीं सकता, मेरे घर अथवा अम्माँ की चौखट पर तुम चढ़ने की नहीं, तो फिर प्रवाल के घर सही, वहीं तुम्हें ले जाना चाहता हूँ, समझी! मेरी बदली वहीं की हो गई है, मंजरी। गाँव का नाम है बाँदा।'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी, साफ-साफ कहो। क्या तुम मुझे बिलकुल ही धूल में मिला देना चाहते हो?'

'हाँ, ऐसा ही समझ लो! धूल में से ही हीरे का जन्म होता है, मंजरी! और धूल में मिलकर ही तो बीज पौधे का रूप धारण करके, सुंदर फूलों की सृष्टि करके संसार को मुग्ध कर आश्चर्य में डाल देता है।' नवल ने शांति से कहा।

'तो मैं तो कलंक का टीका अपने माथे पर नहीं लगवाना चाहती।'

'देखो मंजरी! चंद्रमा में भी कलंक है, और शायद सभी अच्छी वस्तुओं में किसी-न-किसी रूप में थोड़ा-बहुत कलंक छिपा रहता है। मैं तुम्हें छोड़कर जीते जी तो जाऊँगा नहीं। हाँ, यह बात दूसरी है कि तुम इसी घर में मुझे फूँक-फाँककर खत्म कर दो, फिर जाने-आने का कोई सवाल ही नहीं उठेगा।'

युवक की बातों से युवती का सिर चकराने लगा; पर इस समय वह अपने घर थी, स्वाधीन थी, टूटे-फूटे खंडहरों में रहते हुए भी उसके शरीर में शक्ति थी और आत्मा में बल था। दृढ़ता से बोली, 'यह सब कुछ न हो सकेगा, नवल बाबू! वह स्त्रियाँ और ही होती होंगी, जो इस प्रकार पुरुषों की बातों में आकर अपना सर्वस्व गवाँ बैठती हैं। मैं तो रूखी-सूखी रोटी का टुकड़ा अपनी मेहनत-मजदूरी कर के ही पैदा कर लूँगी और उसी से ही अपना पेट भर लूँगी।'

'सो तो ठीक है, मंजरी! मुझे भी एक ऐसी ही स्त्री की जरूरत थी'''लेकिन यह तो मैं भी खूब जानता हूँ कि तुम्हें कुछ नहीं चाहिए। न तुम्हें किसी चीज का लोभ है और न जरूरत ही है। परंतु मंजरी, प्रवाल को तो एक अभिभावक की जरूरत महसूस होती ही है न? मैं यह सब उसी की बात को लेकर कह रहा था।'

युवक की बात सुनकर युवती के सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। बालक ने न जाने क्या सोचकर नवल के गले में अपने छोटे-छोटे और मृदुल कर डाल दिए और वह उसकी पीठ पर झूल गया। वह हार गई, परास्त होकर उसकी उठी हुई पलकें आपसे आप ही नीचे झुककर उमड़ते आँसुओं को छिपाने का यत्न करने लगीं।

नवल ने कहा, 'देखा तुमने? मेरा प्रवाल कैसा राजा बेटा है! तुम से तो यह अच्छा है'''कम-से-कम यह अपने घर आए अतिथि का अनादर तो न करेगा।' और फिर वह प्रवाल का मुँह चूमकर खिलखिला कर हँस पड़ा।

नवल ने देखा, युवती मौन है। अपने बचे हुए चौलों में से उसने एक चम्मच भर चौले प्रवाल के मुँह में भर दिए। फिर दूसरा चम्मच भर कर, मंजरी की ओर बढ़ाकर कहा, 'तुम भी खाओ, चौले खिला दूँ!'

प्रवाल ने अपने नन्हे से हाथ का सहारा देकर नवल का हाथ माँ की ओर बढ़ा दिया। नवल ने जबरन दूसरा चम्मच मंजरी के मुँह में डाल दिया। ज्योत्स्ना झिलमिलाकर हँस पड़ी। बालक किलकारी मारकर हँसा और कहीं दूर पर पपीहा पुकार उठा—'पी'''पी'। □

संस्मरण

कागज पर खेती करते-करते चले गए मटियानी

✍ प्रकाश मनु

दिग्गज कथाकार शैलेश मटियानी का जाना मर्मांतक दु:ख और शोक के साथ-साथ एक ऐसा शर्मिंदगी भरा अहसास भी जगा रहा है, जिसे ठीक-ठीक समझ पाना या समझा पाना मुश्किल है। शब्द यहाँ असमर्थ और लाचार हैं और हम सबके दिल—जो मटियानीजी से बेहद प्यार करते थे—एक गहरे आत्मक्षोभ, करुणा और संताप से भरे हुए हैं। इसलिए कि वे हमारे देखते-देखते, हमारे बीच ही लगातार क्षत-विक्षत होते गए और अंतत: विक्षिप्त हुए। मृत्यु से पहले खुद उन्होंने अपना 'तर्पण' किया—एक पत्रिका में कई किस्तों में उनका यह 'आत्मतर्पण' या 'मृत्यु लेख' छपा···और तिसपर भी सारे हिंदी साहित्य-संसार को बेखबर और सोया हुआ जान एक दिन वे चुपचाप चले गए।

शैलेश मटियानी

यों जिस किस्म की बीमारी तथा जिस्म और दिल को तोड़ देनेवाले मानसिक संकट में वे फँस गए थे, उसकी कड़ी मारें झेलते हुए भी उनकी जिजीविषा ने कभी हार नहीं मानी। इस दौरान जितनी बार उनसे मुलाकातें हुईं या फिर जो चिट्ठियाँ उन्होंने लिखीं, उनमें बार-बार उस भयानक सिरदर्द का जिक्र होता था जिसके अतिशय उग्र होने पर उन्हें लगता था, कोई सिर पर हथौड़े चला रहा है। और फिर होश गँवा देना—बेहोश होकर कहीं भी गिर पड़ना—और तेज मानसिक दौरों के कई मरणांतक आघात तो थे ही। लेकिन मटियानी इनसे झुके नहीं। उनकी जिजीविषा चुकी नहीं। बार-बार वे उन यातनाओं से उबर आते थे। और तनिक स्वस्थ होने पर जब वे अपनी बीमारी का जिक्र कर रहे होते थे तो वह वर्णन इतना लंबा, सचित्र और ब्योरेवार होता था कि लगता था, वे हमें अपनी बीमारी के बारे में नहीं बता रहे, किसी लंबी, करुण और अंतहीन कहानी के बीच ले जा रहे हैं। ऐसे क्षणों में वे अपने बारे में कहते हुए भी, अपने आपसे कितना 'तटस्थ' होते थे, यह देख पाना मेरे लिए एक कभी न भूल पानेवाला अनुभव है। और दूसरी बात यह कि जब-जब वे थोड़े भी स्वस्थ हुए, उन्होंने हाथों में फिर से कलम सँभाली और लिखने-पढ़ने में जुट गए।

मटियानी लिखने-पढ़ने को 'कागज पर खेती करना' कहते थे। लेखक का यह बिंब उनको इतना प्रिय था कि मैं दर्जनों बार उनके मुँह से सुन चुका हूँ। यानी कहानियाँ लिखना उनके लिए सिर्फ लिखना ही नहीं था, एक बहुत बड़ी आस्था थी। यह उनके लिए ऐसा ही था जैसे जमीन में हल जोतकर बुआई करना और फिर बाद में 'आनेवाले कल' की, एक बेहतर भविष्य की फसल काटना। इसलिए जीवन में चाहे उन्हें आर्थिक जकड़बंदियों के कारण न चाहते हुए भी छोटे-मोटे समझौते करने पड़े, लेकिन जहाँ साहित्य की दुनिया का सवाल था या कहानी लिखने का सवाल था, उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया और बड़े-से-बड़े लोभ और प्रलोभनों को ठोकर मार दी। यहाँ तक कि जो पुराने मित्र थे वे भी कई बार शत्रुओं की पाँत में खड़े हो जाते थे और उन्हें अजब ढंग से यंत्रणाएँ देने लगते थे; लेकिन जहाँ सिद्धांतों का प्रश्न था, मटियानी टस से मस होनेवाले नहीं थे। हाँ, वे दिल-दिमाग से खुले थे और बहस में किसी का भी स्वागत करते थे—किसी को भी ललकार सकते थे। मटियानी ने 'लेखक की हैसियत से' जो एक दुनिया बनाई थी, उसमें एक लेखक का 'होना' या उसका कद सबसे बड़ा था। लेकिन दुर्भाग्य से उनका सामना जिस कारोबारी दुनिया से होता था—जिसमें चतुर-चालाक और 'सफलतावादी' लेखक भी शामिल थे—उसमें लिखना इतनी बड़ी चीज नहीं थी जितना दूसरे दंद-फंद, संपर्क और व्यावसायिक समीकरण। मटियानी इस सबसे बेपरवाह थे; हालाँकि लगातार टूट भी रहे थे। उनकी अकेली शक्ति उनकी रचना थी, जिससे वे इन सबका सामना करते थे। बस, लिखते, लिखते और लिखते थे। लेकिन पारिवारिक और बाहरी मोरचे पर विफलताएँ और दबाव इतने बढ़ गए थे कि अंतत: फिर बीमारी उनपर हावी हो गई। और अपनी प्रचंड जीवनी शक्ति के बावजूद, लगातार देखते-देखते एक दिन अचानक वे एक 'शोक समाचार' बन

गए। जिन 'फलाँवादी' या 'ढिकाँवादी' लेखकों, पत्रकारों और तथाकथित नामी आलोचकों ने उन्हें कभी महत्त्वपूर्ण नहीं माना, वे सिर झुकाए हुए शोकसभा में आए और बड़ी निर्लज्जता के साथ उन्होंने कहा कि उन्होंने मटियानी को नहीं पढ़ा, मगर अब पढ़ेंगे! (हा, हंत!)

यह अच्छा ही है कि मटियानी बेईमान लेखकों, आलोचकों के इस छल-छद्म और नाटक को देखने के लिए मौजूद नहीं हैं। वे देह के कष्टों के साथ-साथ अपनी बहुत सी अन्य यातनाओं से भी मुक्त हो चुके हैं। और अगर होते भी तो ऐसे बेपानीदार आलोचकों की वे भला क्यों परवाह करते! उनकी ताकत तो देश के कोने-कोने में फैले उनके पाठक थे। बहुत मामूली पाठक, जो उन्हें दिलोजान से प्यार करते थे और यहाँ मटियानी का 'कद' इतना बड़ा था कि मौजूदा दौर का शायद ही कोई और लेखक या कथाकार उनके मुकाबले खड़ा होने का साहस कर सके। मटियानी जगह-जगह, देश के हर कोने-अँतरे में फैले अपने इन्हीं सीधे-सरल और सहृदय पाठकों के लिए लिखते थे। ऐसा नहीं कि मटियानी के यहाँ भाषा और शैली की 'सिद्धता' या पूर्णता न हो; बल्कि कई बार तो भाषा की ऐसी बारीक कताई और उसमें पिरोई हुई जीवन की ऐसी उदात्त छवियाँ और उदात्त चरित्र उनमें दिखाई पड़ते हैं कि मन बार-बार चकित और विमुग्ध होता है। किंतु ऐसा वे सायास करते नहीं थे, ऐसा खुद-ब-खुद होता था। ऐसे स्थल मटियानी की कहानियों के सजावटी स्थल नहीं हैं, बल्कि मटियानी की कहानियों की भावधारा में बहते-बहते ये चीजें खुद-ब-खुद वहाँ आ जाती हैं। और इनका मूल्यांकन करने के लिए किसी भी बड़े-से-बड़े आलोचक को पहले एक सहृदय पाठक होना होता है। हमारे यहाँ आलोचना जिस तरह की 'राजनीति' और छल-छद्म का शिकार हो गई है, उसमें 'रचना' के साथ-साथ मटियानी जैसे बड़े रचनाकार भी तिरस्कृत रहे हों तो ताज्जुब क्या! हालाँकि आश्चर्य! मटियानी के जाने के बाद ऐसे समीकरण और जोड़-तोड़ बैठानेवाले आलोचकों की पूरी पाँत-की-पाँत शर्मिंदा और सिर झुकाए नजर आ रही है। यहाँ तक कि ऐसी राजनीतिबाज आलोचना को एक सिरे से गैर-प्रासंगिक घोषित किया जा रहा है और हिंदी आलोचना को सचमुच इसका कोई जवाब नहीं सूझ रहा है। यह हिंदी आलोचना की नग्नता और बेशर्मी का परदाफाश है। यह दीगर बात है कि इसे देखने के लिए आज मटियानीजी हमारे बीच नहीं हैं।

□

असल में मटियानी उन बड़े और 'महाप्राण' लेखकों में से हैं जिनके जीवन और साहित्य को आप बेहिचक एक लेखक के सबसे बड़े आदर्श के रूप में पेश कर सकते हैं। लिखना उनके लिए जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। इसलिए कि लिखना उनके लिए सिर्फ लिखना नहीं, एक लेखक का जीवन जीना भी है। एक ऐसी ऊँचाई पर जीना जिसमें लेखक अपने आस-पास की छोटी-से-छोटी चीज से जुड़ा होकर भी कालजयी और भविष्यद्रष्टा होता है। मटियानी वह थे, इसीलिए रचना उनकी सबसे बड़ी ताकत है। चाहे 'इब्बू मलंग', 'चील', 'प्यास', 'मैमूद', 'शरण्य की ओर', 'दो दुःखों का एक सुख' जैसी निम्न वर्ग के पात्रों से जुड़ी घोर यथार्थधर्मी रचनाएँ हों, या फिर 'अर्धांगिनी', 'छाक', 'माता', 'कुतिया के फूल' जैसी पारिवारिकता और दांपत्य संबंधों की उदात्त कहानियाँ—मटियानी का सचमुच कोई जोड़ नहीं। वे कहानियाँ लिखते ही नहीं थे, बल्कि कहानियाँ लिखते हुए जीवन के उन स्तरों तक पहुँच जाते थे जहाँ तक जाने का साहस कोई किताबी लेखक कर ही नहीं सकता। मटियानी ने जीवन जिया था, छाती से छाती भिड़ाकर जीवन की आपदाओं, मुश्किलों और घोर गरीबी का सामना किया था। यहाँ तक कि ढाबे में बरतन माँजकर उन्होंने गुजारा किया, मंदिर के आगे भिखारियों की पाँत में बैठकर उन्हें अपनी क्षुधा शांत करनी पड़ी। भूख और गरीबी के जो रूप उन्होंने देखे थे, उसकी कल्पना भी हमारे लिए भयावह है। इसीलिए उनकी कहानी में जीवन छलछलाता हुआ फूटता है। वे जीवन के महाप्राणत्व के लेखक हैं। जीवन के ऐसे-ऐसे रूप उनकी कहानियों में मिल जाते हैं कि ड्राइंगरूम में बैठकर सुविधा-परस्ती से लेखन करनेवाले लेखक दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं।

फिर मटियानी की यह खासियत थी कि उनके यहाँ छोटे-से-छोटा और मैला-कुचैला लगनेवाला पात्र भी इनसान और इनसानियत की पूरी गरिमा के साथ मौजूद है। वहाँ बेतरह सताए हुए पात्र तो हैं, मगर मटियानी के पात्र हार नहीं मानते। उनमें प्रतिरोध शक्ति तथा जीवनी है और वे डटकर जीवन स्थितियों का मुकाबला करते हैं। शायद ही हिंदी का कोई दूसरा लेखक हो, जिसने गरीब और निचले वर्ग के लोगों को इतना आदर और गरिमा दी हो जितनी मटियानी ने। मटियानी मानो मैले-से-मैले आदमी के हृदय में छिपी उज्ज्वलता को खोज लेना चाहते हैं। उनकी रचनाओं में ऐसे अनगिन मोती पिरोए हुए हैं। और जब वे ऊपर से मैले, दीन या कातर नजर आते ऐसे किसी गरीब आदमी की शक्ति और उज्ज्वलता को दिखाते थे तो वहाँ मटियानी की लेखनी में इतनी ताकत आ जाती थी कि लगता था, यह छूछा आदर्श नहीं है। ऐसा ही हुआ होगा, क्योंकि यही जीवन है! मटियानी इसी को रचना की ताकत मानते थे, जिसपर उनका सबसे ज्यादा भरोसा था। उनके लिए समाज में किसी कवि या लेखक की सत्ता सबसे बड़ी थी और किसी बड़े-से-बड़े पद पर बैठा आदमी भी उनके आगे हेय या गौण। इसीलिए यह मानो उनमें जिद थी कि वे अपने जीवन में आई हर बाधा या मुश्किल का सामना रचना से ही करेंगे। वही उनके लिए 'ढाल' भी थी और 'अस्त्र' भी। मटियानी की तकरीबन सभी रचनाएँ उनकी भीतरी और बाहरी तमाम लड़ाइयों की गवाह हैं। पर वे सिर्फ मटियानी की ही लड़ाइयों की गवाह नहीं हैं। वे हमारे देश की विराट् जनता की विराट् लड़ाइयों की गवाह हैं। यह मटियानी का महाप्राणत्व ही था कि वे अपनी हर लड़ाई को अपने पूरे समाज के विकट सुख-दुःख और लड़ाइयों का आईना बना देते थे। इसीलिए भारतीय समाज के पिछले पचास वर्षों के संघर्ष

और उतार-चढ़ावों को समझना हो तो मटियानी की कहानियों से बेहतर समाजशास्त्रीय साक्ष्य मिलना मुश्किल है।

शैलेश मटियानी यह मानते और बार-बार कहते भी थे कि एक ऊँचे और बड़े कद का लेखक ही ऊँची और बड़ी रचना दे सकता है। कोई बेईमान और सुविधापरस्त लेखक अच्छा नहीं लिख सकता। उसकी रचना ही उसकी पोल खोल देती है। इसीलिए मटियानी के बहुत से समकालीन लेखक, जो समझौतों और सुविधाओं की डगर पर गए, वे एक-एक कर लेखन से दूर होते गए और उनके जीवन का एकमात्र मकसद 'न लिखने का कारण' जैसी झूठी बहसें करवाना और जैसे-तैसे चर्चा में रहना था। कोई बड़ी रचना लिख पाना ऐसे लेखकों के बस की बात नहीं थी। दूसरी ओर मटियानी ने रचना का और सिर्फ रचना का रास्ता पकड़ा। मौजूदा बदले हुए समाज में वे लगातार अकेले और विपन्न होते गए, लेकिन रचना का रास्ता उन्होंने नहीं छोड़ा। जीवन के अंतिम वर्षों में तो मटियानी की हालत यह हुई कि वे सब ओर से दुःख और विपत्तियों से घिर गए। उनमें से कई पारिवारिक मोरचे पर थीं, कई साहित्यिक मोरचे पर और कई आर्थिक मोरचे पर। अगर बिंब की भाषा में कहूँ तो उन्हें देखकर कई महारथियों से घिरे अकेले अभिमन्यु का खयाल आता है। अभिमन्यु जैसे रथ के टूटे हुए पहिए का एक छोटा सा टुकड़ा लेकर लड़ रहा था, वही हालत शैलेश मटियानी की थी। वे मानो दसों दिशाओं में शत्रुओं और विपत्तियों से घिरे हुए थे और हाथ में सिर्फ रथ का टूटा पहिया पकड़े एक साथ सबसे जूझ रहे थे। लड़ते-लड़ते वे गिर पड़े, क्षत-विक्षत हो गए, तब भी मानो यह 'रथ का टूटा पहिया' उनके साथ था। यह मानो उनकी रचना थी। यह रथ का टूटा पहिया रचना के प्रति उनकी आस्था और रचनात्मक साहस था और यह चीज मटियानी में शुरू से लेकर अंत तक रही। बुरे-से-बुरे हालात, घोर दैन्य और भुखमरी में भी रचना पर उनका विश्वास कभी नहीं टूटा। यह उनके लिए इतनी बड़ी और पवित्र चीज थी कि इसके बूते वे खुद को तीसमारखाँ समझनेवाले या किसी बड़े पद और ओहदेवाले बड़े-से-बड़े घमंडी और शक्तिशाली आदमी को ललकार सकते थे।

☐

मटियानी के लिए एक लेखक की स्वतंत्रता सबसे बड़ा मूल्य था। उनका मानना था कि एक लेखक किसी भी विचार या विचारधारा का हो सकता है, लेकिन रचना पर विचार थोपा नहीं जा सकता। विचार रचना में अदृश्य रूप में गुँथा हुआ और उसका हिस्सा बनकर आए, इसी से रचना सार्थक और बड़ी होती है। रचना उनके लिए एक तरह की तपस्या है, 'मिलकर की जानेवाली राजनीति' नहीं। इसीलिए प्रगतिशील लेखक संघ और जनवादी लेखक संघ आदि को वे ज्यादा पसंद नहीं कर पाए। अपने गुट के लेखकों को आगे बढ़ाने और जो असहमत या भिन्न विचारधारा के हों, उन्हें शत्रु मानकर दुत्कारने की राजनीति उनके शब्दों में रचना-विरोधी चीज थी और इससे वे बुरी तरह चिढ़ते थे। विडंबना यह है कि मटियानी की बहुत सी बातें, यहाँ तक कि आशंकाएँ भी आज एकदम सही साबित हुई हैं। मटियानी जैसे जनता से जुड़े कद्दावर लेखक के गुजरने पर न जनवादी लेखक संघ और न प्रगतिशील लेखक संघ ने ही उन्हें याद करना या उनके लिए शोकसभा करना जरूरी समझा। वहाँ छोटे-से-छोटा लेखक महत्त्वपूर्ण हो सकता है, लेकिन इतने बड़े शोषित और दलित समाज की पीड़ाओं से जुड़ा शैलेश मटियानी जैसा बेहद संवेदनशील लेखक नहीं। इससे मटियानी की यह आशंका सही साबित होती है कि लेखक संघ लेखक गिरोहों में बदल गए हैं और वे धीरे-धीरे लेखकों की संवेदनशीलता को मार रहे हैं। इसी असंवेदनशीलता का ही एक भद्दा उदाहरण यह है कि शैलेश मटियानी जैसे कठोर बहसें करने और कड़े सवाल पूछनेवाले लेखक को असुविधाजनक मानकर 'दलित विरोधी' या 'प्रगति विरोधी' ठहरा दिया जाए। और यह तो तब था, जब कि दलित और निम्न वर्ग के पात्रों पर, यहाँ तक कि कोढ़ियों, भिखारियों, वेश्याओं और जेबकतरों तक पर 'दो दुःखों का एक सुख', 'चील', 'प्यास', 'इब्बू मलंग' एवं 'वृत्ति' जैसी जीवंत और मार्मिक कहानियाँ शैलेश मटियानी ने लिखीं—ऐसी जीवनधर्मी कहानियाँ, जो प्रेमचंद के अलावा शायद ही कहीं मिलें। लेकिन दुराग्रही आँखों को शैलेश मटियानी फिर भी 'शत्रु' ही नजर आते रहे।

यह ठीक है कि मटियानी को लेखक संघों की धड़ेबाजी और वैचारिक जड़ता कतई न सुहाती थी। लेकिन उनकी आलोचनाओं का जवाब देने के बजाय, जो छोटे कद के दिखावटी प्रगतिशील थे, उन्होंने मटियानी को धकियाकर साहित्य के हाशिए पर फेंक देने में ही अपनी सफलता समझी। इसके बजाय इन लेखक संघों ने थोड़ा आत्ममंथन किया होता तो अच्छा था। कम-से-कम तब उनमें इतनी संवेदनशीलता

अपने गुट के लेखकों को आगे बढ़ाने और जो असहमत या भिन्न विचारधारा के हों, उन्हें शत्रु मानकर दुत्कारने की राजनीति उनके शब्दों में रचना-विरोधी चीज थी और इससे वे बुरी तरह चिढ़ते थे। विडंबना यह है कि मटियानी की बहुत सी बातें, यहाँ तक कि आशंकाएँ भी आज एकदम सही साबित हुई हैं।

तो बची होती कि वे समझ पाते, मटियानी किस पाये के कलाकार हैं। दूसरी ओर मटियानी ने लेखक संघों के विरोध और उपेक्षा की परवाह नहीं की, तो इसीलिए कि रचना पर उनका अगाध विश्वास था। वे हँसकर कहा करते थे—इतने प्रगतिशील लेखक हैं, वे निम्न वर्ग के पात्रों पर मेरी तरह कोई अच्छी और बड़ी कहानी लिखकर दिखाएँ। इसी तरह 'दलित''' दलित' का शोर मचानेवाले तो बहुत हैं, लेकिन दलित वर्ग पर जैसी मर्मांतक कहानियाँ शैलेश मटियानी के यहाँ हैं वैसी कितने लोग लिख पाए? यहाँ फिर मटियानी का लेखकीय आदर्श याद आता है। उनका कहना था कि महज कोई विचार या विचारधारा रचना नहीं हो सकती। रचना बनाने के लिए लेखक को उसे अपने भीतर रखकर तपाना होता है और खुद भी तप करना होता है। लेकिन मटियानी की तरह तप करनेवाले कितने लेखक हमारे यहाँ हैं! और ऐसा नहीं कि मटियानी की कहानियाँ कोई विचारहीन या मात्र भावुक कहानियाँ हैं। 'माता', 'वृत्ति', 'अहिंसा' जैसी ढेरों कालजयी कहानियाँ इस बात की गवाह हैं कि वे विचार को निरंतर अपने भीतर पोसते और अपनी संवेदना का हिस्सा बनाते थे, तब उसपर कलम चलाते थे। इसलिए मटियानी की ऐसी तमाम कहानियाँ हैं, जो उनके भीतर कोई दस या पंद्रह वर्षों तक घुमड़ती रहीं और जब वे निथरकर एक रचना के रूप में आईं तो उनकी शक्ति चकित और चमत्कृत करनेवाली थी। और सिर्फ कहानियाँ ही क्यों! मटियानी के 'मुठभेड़' और 'बावन नदियों का संगम' जैसे उपन्यासों में व्यवस्था और राजनीति के 'प्रभु वर्ग' को लेकर जिस तरह की लंबी-लंबी और तिलमिलाहट भरी बहसें हैं, वे किसी लीक में सोचनेवाले पाठक को बार-बार स्तब्ध करेंगी, चौकाएँगी। उनके इन उपन्यासों के पीछे यथार्थ की शक्ति तो है ही, बहुत बड़ी तर्क शक्ति या विचार शक्ति भी है। हालाँकि मटियानी किस तरह इस विचार को साधते और उसे एक तरह की रचनात्मक ऊँचाई पर पहुँचाते हैं, यह एक ऐसा कमाल का कौशल है—एक तरह का उस्तादाना फन—जिसे बड़े-से-बड़े रचनाकार भी विनीत भाव से मटियानी से सीख सकते हैं।

□

यों शैलेश मटियानी इस मामले में भी बड़े लेखक थे कि वे अपने संपर्क में आनेवाले किसी छोटे-से-छोटे लेखक को भी खूब स्नेह और प्यार से नहला सकते थे। वे प्यार निछावर करनेवाले लेखक थे। 'हंस' के दफ्तर में जब उनसे पहली मुलाकात हुई थी तब मेरी बमुश्किल दो-एक किताबें आई थीं। और जब उन्हें पता चला कि मैंने सत्यार्थीजी पर किताब निकाली है तो वे बहुत भावुक होकर याद करने लगे थे कि अपने बचपन में उन्होंने सत्यार्थीजी की कौन-कौन सी रचनाएँ पढ़ी थीं और पढ़कर उनके मन में कैसी अनोखी छवि बनी थी। उन दिनों मटियानीजी उत्साहित होकर लेख लिखने में जुटे थे। उनका एक लेख बेहद चर्चित था, जो उन्होंने एक उत्तर-आधुनिक आलोचक के जवाब में लिखा था। उस आलोचक का मानना था कि गुलशन नंदा बहुत बड़े लेखक हैं, क्योंकि उनकी किताबें लाखों में बिकती हैं। उनकी तुलना में हिंदी के तमाम लेखक, यहाँ तक कि प्रेमचंद भी कहाँ ठहरते हैं! इसके जवाब में मटियानी ने सात्त्विक रोष से भरकर जैसा तीखा और तर्कपूर्ण लेख लिखा था, वही लिख सकते थे। शायद इसलिए कि उस लेख में मटियानी को अपना ही अपमान नहीं, बल्कि हिंदी के पूरे लेखक समाज का अपमान नजर आया था। मैंने उस लेख की याद दिलाते हुए कहा, 'मटियानीजी, आजकल तो आप साहित्य के मैदान में सफाई में जुटे हैं!' तो वे खुलकर हँसे। बोले, 'कभी आपके दफ्तर में मिलने आऊँगा। मेरे लिए सत्यार्थीजी वाली किताब की एक प्रति जरूर रखिएगा।'

मुझे लगा, मटियानी मुझ जैसे नाचीज लेखक को भला क्या याद रखेंगे! पर वे आए। और जब वे अपनी भव्य काया के साथ सामनेवाली कुरसी पर विराजमान थे तो लग रहा था, मानो उनका भव्य व्यक्तित्व और बड़ा कद दफ्तर की उस छोटी सी कुरसी में अँट नहीं रहा। पर जल्दी ही अपनी सहज बातों से उन्होंने मुझे मोह लिया और कुछ इस तरह घुल-मिलकर बातें होने लगीं जैसे बरसों से मैं उन्हें जानता होऊँ। फिर तो जल्दी-जल्दी उनसे मुलाकातें होने लगीं। और उनसे कोई भी मुलाकात तीन-चार घंटे से छोटी तो हो ही नहीं सकती थी। दफ्तर से छुट्टी के बाद भी 'हिंदुस्तान टाइम्स' की कैंटीन में हम बैठे रहते थे और मुझे याद है, कई बार मेरी आखिरी गाड़ी भी छूट जाती थी। हर मुलाकात में उनकी संघर्षपूर्ण आत्मकथा के कुछ नए और रोमांचक पन्ने खुलते थे और मेरा लालच बढ़ता ही जाता था। मैंने उनसे कहा, 'कभी आपसे लंबी बातचीत होनी चाहिए।' उन्होंने तब तक मेरे दो-एक इंटरव्यू पढ़ लिये थे और उनसे काफी प्रभावित थे। उन्होंने कहा, 'वैसे तो मैं आसानी से किसी को इंटरव्यू देता नहीं, लेकिन तुम लेखक के मर्म तक पहुँचते हो, तुम्हारे साथ बातचीत करके मुझे अच्छा लगेगा।' फिर वे एक लंबी योजना मुझे बताने लगते, 'कभी पूरा सप्ताह भर तुम्हारे घर रहूँगा। कोई छह या सात दिन अलग-अलग विषय तय करके बातचीत करेंगे। बातचीत टेपरिकॉर्ड पर होगी। फिर तुम उसे बाद में लिख लेना।''' किताब छपने पर रॉयल्टी आधी-आधी!'

मुझे थोड़ी हँसी आई। इसलिए कि रॉयल्टी की परवाह किसे थी। बस, उनसे बातचीत का लोभ था। और मैं जानता था, मटियानीजी जिस तरह के आवेगपूर्ण लेखक हैं, उनके साथ इतना लंबा कार्यक्रम सध पाना मुश्किल है। फिर भी मैंने कहा, 'आप बताइए, कब आपको फुरसत है?'

इसपर मटियानी ने बेहद उदास होकर बताया कि अभी यह बातचीत संभव नहीं है, क्योंकि वे बहुत से तनावों और परेशानियों से घिरे हुए हैं। उनके लिए सबसे बड़ा तनाव पारिवारिक मोरचे पर था। बेटियाँ बड़ी हो गई थीं, लेकिन उनका विवाह नहीं हो सका था। यह अपराध-बोध उन्हें अंदर-ही-अंदर तोड़ रहा था। फिर परिवार की आर्थिक असुरक्षा और दुश्चिंताएँ अलग थीं। उन्होंने बहुत आर्द्र होकर कहा, 'मनु, तुम्हें पता

नहीं, मैं जीवित कैसे हूँ! कायदे से तो जिन हालात में मैं घिर गया हूँ, उनमें मुझे जीवित नहीं होना चाहिए था!' फिर उन्होंने बेहद चुभते हुए शब्दों में कहा, 'इस समय परिवार के मोरचे पर ही मुझे बुरी तरह हारना पड़ रहा है। मनु, तुम याद रखना, जब भी मैं हारूँगा, परिवार के मोरचे पर ही हारूँगा।'''साहित्य के मोरचे पर तो कोई मुझे हरा नहीं सकता।'

इन्हीं दिनों लेखक की हैसियत और स्वाभिमान को लेकर मैंने उन्हें बुरी तरह क्षुब्ध और नाराज होते देखा। एक बार तब, जब राजेंद्र यादव ने 'हंस' के एक संपादकीय में हिंदी के वरिष्ठ लेखकों की तुलना पोपले मुँहवाली 'विगतयौवना' अभिनेत्रियों से करते हुए उनका मखौल उड़ाया था। उन्हीं दिनों मटियानी ने बहुत उत्तेजित शब्दों में मुझे बताया कि मैंने राजेंद्रजी को सलाह दी है कि वे 'हंस' के दफ्तर के बाहर एक 'ब्यूटी पार्लर' खोल लें, ताकि जो भी लेखक आए वह मेकअप करके उनके सामने उपस्थित हो और उन्हें बुरा न लगे। पर उन्होंने कहा कि मैंने शर्त यह रखी है कि सबसे पहले राजेंद्र यादव को ही अपना मेकअप कराना होगा। इसी मुलाकात में उन्होंने बेहद तिलमिलाहट के साथ कहा था कि हिंदी के लेखक स्वाभिमानशून्य हैं। किसी और भाषा के संपादक ने ऐसी बदतमीजी की होती, तो उस भाषा के सभी लेखक मिलकर उसका बायकाट करते।

उन दिनों राजेंद्र यादव से उनकी असहमतियाँ बेहद बढ़ती जा रही थीं। उन्हें लग रहा था कि राजेंद्र यादव अपनी सनकों के कारण पत्रिका का दुरुपयोग कर रहे हैं। एक दिलचस्प बात यह है कि जहाँ वे राजेंद्र यादव के 'संपादक' से नाराज थे वहाँ उनके 'कहानीकार' के प्रशंसक भी थे। वे इन दोनों को अलग-अलग देख सकते थे और इसमें उन्हें कोई परेशानी नहीं महसूस होती थी। मैंने उनसे पूछा, 'राजेंद्र यादव के संपादक से आपकी नाराजगी की सबसे बड़ी वजह क्या है?' इसपर उनका कहना था एक संपादक को व्यक्तिगत रुचियों और अरुचियों से ऊपर उठना चाहिए। इस मामले में उन्होंने जो उदाहरण दिया, उसे मैं आज तक नहीं भूल पाया। उनका कहना था, 'मान लीजिए, मैं एक संपादक हूँ। मैं रास्ते पर जा रहा हूँ। बीच रास्ते में कोई लेखक मुझे मिलता है और उससे मेरी बहस होने लगती है। अब मान लीजिए, बहस इतनी गरमागरमी में बदल गई कि लेखक ने सड़क पर पड़ा हुआ पत्थर उठाकर मेरे सिर पर दे मारा। मैं भले ही लहूलुहान हूँ, लेकिन एक संपादक के नाते मैं उस लेखक से कहूँगा, 'तुमने मुझे पत्थर मारा, यह एक अलग विषय है; पर तुम कहानीकार बढ़िया हो। अपनी अगली जो भी कहानी लिखोगे, वह पहले मुझी को दोगे।' मैं नहीं समझता कि एक संपादक का इससे बड़ा 'आदर्श' भी कोई हो सकता है। और शायद इससे आसान शब्दों में इसे कहा भी नहीं जा सकता। मटियानी में किसी भी बात को रूपक में ढालकर कहने की अद्भुत सिद्धि थी, जिसके ढेरों प्रसंग मुझे याद आ रहे हैं। लेकिन विस्तार के भय से उन्हें कहने से बच रहा हूँ।

□

> **मटियानी बचपन में भेड़-बकरियाँ चराते थे और बड़े लोभ के साथ स्कूल में जाते बच्चों को देखा करते थे। एक बार अध्यापक ने इस भेड़ें चरानेवाले बच्चे की आँख में झाँका और पूछा, 'क्या तुम भी पढ़ना चाहते हो?' आवाज में ऐसी ममता थी कि बालक के मुँह से कोई जवाब नहीं निकला। बस, धाराधार आँसू बह निकले। अध्यापक का हाथ बालक के सिर को सहला रहा था।**

इस बीच मटियानी को एक और मरणांतक यातना से गुजरना पड़ा। उनके युवा बेटे मनीष की हत्या—जिसने उन्हें बुरी तरह हिला दिया। उस समय वे कितने उद्विग्न, हताश और टूटे हुए थे, शब्दों में बता पाना मेरे लिए मुश्किल है। अपने भाई प्रेम मटियानी के दफ्तर से फोन करके उन्होंने मुझे बुलाया, 'मनु, आ जाओ, तुमसे कुछ बात करनी है।' मैं दौड़ा-दौड़ा गया। कोई दो-तीन घंटे तक उनके साथ रहा। न एक शब्द उन्होंने कहा, न मैंने पूछा। और कोई दो-तीन घंटे तक हम चुपचाप एक-दूसरे के आगे बैठे रहे। फिर उन्होंने कहा, 'मनु, जाओ, मैं कुछ बोल नहीं पा रहा।' लेकिन दो-तीन घंटे जब मैं उनके साथ था तो क्या वे बोल नहीं रहे थे? उनके शरीर के रोएँ-रोएँ से दुःख और हाहाकार निकल रहा था, जो मेरे भीतर दर्ज हो रहा था। यह एक लंबा शब्दहीन संवाद था, मौन इंटरव्यू—जिसे मैं जब चाहूँ, जस-का-तस याद कर सकता हूँ। पर कभी लिख भी पाऊँगा, इसमें मुझे संदेह है।

फिर मटियानी की विक्षिप्तता का समाचार मिला तो मैं बुरी तरह हिल गया। मुझे लगा, उनसे मिलने पर हर बार जो टुकड़ा-टुकड़ा बातें होती थीं और हर बार अपनी आत्मकथा के जो पन्ने वे मेरे आगे खोलते थे, उन्हीं को एक लंबे संस्मरण की शक्ल में लिख दूँ, ताकि यह दर्ज हो सके कि मटियानी जैसा लेखक किन मरणांतक यातनाओं से होकर गुजरा है। हालाँकि यह राहत की बात थी कि थोड़े समय बाद ही मटियानीजी ने अपने आत्मविश्वास और जिजीविषा के बल पर अपनी बीमारी को पछाड़ा और काफी कुछ स्वस्थ हो गए। उन्होंने न सिर्फ कई पन्नों में फैला वह लंबा संस्मरण पढ़ा, बल्कि उसे बेहद पसंद भी किया और उसकी एक प्रति वे अपने साथ ले गए।

□

मटियानीजी से एक लंबे, बेहद लंबे इंटरव्यू का मौका भी मिला।

लेकिन दुर्भाग्य से वह भी तब, जब वे अस्वस्थ थे और दिल्ली के गोविंद बल्लभ पंत अस्पताल में दाखिल थे। उन दिनों हर दूसरे-तीसरे दिन मैं उनसे मिलने जाता था। उस बीमारी की हालत में भी वे मुझे नीचे तक छोड़ने आते और कहते थे, 'मनु, तुमसे मिलकर मुझे अच्छा लगता है। तुमसे बातें करते समय बीमारी दूर भाग जाती है।'

उन दिनों वे धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहे थे, हालाँकि भयंकर शिरोवेदना से ग्रस्त भी थे। कभी उन्हें चक्कर आने जैसा लगता था। कभी इतनी भयानक वेदना होती थी मानो कोई सिर के बाल पकड़कर खींच रहा हो और कभी लगता था मानो कोई सिर पर हथौड़े चला रहा हो। इतनी तकलीफ में भी वे संयत थे। डॉक्टरों से खूब सहजता और धीरज से बात करते थे, आने-जानेवालों से भी। खूब कष्ट सहकर सहनशीलता की जो आब आती है, वह उनके चेहरे पर दिखाई देती थी। पिछली बातों और बीमारी की एक-एक घटना की स्मृति उन्हें थी। बल्कि याददाश्त इतनी अच्छी थी कि जब धाराप्रवाह बोलने पर आते तो लगता ही नहीं था कि वे अस्वस्थ हैं। इसी बीच खुद ही उन्होंने प्रस्ताव किया, 'मनु, तुम मेरा लंबा इंटरव्यू करना चाहते थे। चाहो तो अभी कर लो, फिर हो न हो, कह नहीं सकता।'

अगले दिन मैं अपने मित्रों रमेश तैलंग और शैलेंद्र चौहान के साथ पहुँचा। इंटरव्यू बड़े अनौपचारिक अंदाज में शुरू हुआ। हालाँकि शुरू में वे थोड़े नर्वस लगे। बोले, 'मनु, लगता है, आज बातचीत हो नहीं पाएगी। रहने दो।' लेकिन कुछ आगे चलते ही वे अपनी रौ में आ गए। और सवालों के इतने अच्छे, सधे हुए और बेलौस जवाब उन्होंने दिए कि हमें सचमुच चकित रह जाना पड़ा। कोई चार घंटे तक वे लगातार हमारे सवालों का सामना करते हुए बोलते रहे। यह एक अद्‌भुत इंटरव्यू था। एक बड़े कद के लेखक का एक 'महान्' इंटरव्यू। इसलिए कि घोर बीमारी के बावजूद वे जिस ऊँचाई से बोल रहे थे, वह बहुत सारे लेखकों के लिए तो अकल्पनीय ही होगी। मानो बहुत तरह के राग-द्वेष और कड़वाहटों से वे ऊपर उठ चुके थे और अपने आपको तथा अपनी बीमारी को भी एक दूसरी आँख से देख रहे थे। यह इंटरव्यू मानो मटियानी के जीवन पर बनी एक समूची फिल्म है, जिसमें मटियानी के बचपन से लेकर उनके आखिरी वर्षों तक की दुःख और पीड़ा की ऐसी अनगिन कहानियाँ हैं कि कोई चाहे तो उनसे उनकी पूरी जीवनी लिख सकता है। उसमें बेहद द्रवित करनेवाला एक प्रसंग उनके अध्यापक का है। मटियानी बचपन में भेड़-बकरियाँ चराते थे और बड़े लोभ के साथ स्कूल में जाते बच्चों को देखा करते थे। एक बार अध्यापक ने इस भेड़ें चरानेवाले बच्चे की आँख में झाँका और पूछा, 'क्या तुम भी पढ़ना चाहते हो?' आवाज में ऐसी ममता थी कि बालक के मुँह से कोई जवाब नहीं निकला। बस, धाराधार आँसू बह निकले। अध्यापक का हाथ बालक के सिर को सहला रहा था। और यों उस दिन बालक रमेश मटियानी के रमेश मटियानी 'शैलेश' और अंततः शैलेश मटियानी बनने की कथा की नींव पड़ी।

ऐसा ही किशोरावस्था का एक और प्रसंग। वे कसाई की दुकान पर कीमा कूट रहे हैं। इसी बीच उनकी कोई रचना किसी स्थानीय पत्र में छप गई। पास से गुजरनेवालों ने व्यंग्य किया, 'वाह, बूचड़ों के बच्चे भी लेखक होने लगे!''' देखो, क्या सरस्वती का कीमा कूटा जा रहा है!''' उस समय किशोर हो चुके रमेश मटियानी का पूरा शरीर क्रोध से झनझना उठा। उन्होंने आँखें बंद कीं और हाथ जोड़कर मन-ही-मन माँ सरस्वती से प्रार्थना करने लगे, 'माँ, चाहे मुझे जीवन में कितने ही कष्ट दे, लेकिन मुझे लेखक बनाना, जरूर बनाना। मैं हर हाल में लेखक बनकर दिखा देना चाहता हूँ!'

इस इंटरव्यू में पहली बार उनके दुःख और अपमानों की कई कथाएँ खुलीं। मैं भौचक्का था, एक आदमी अपने जीवन में इतना कैसे सह सकता है! लेकिन मटियानी के शब्दों में आत्मदया बिलकुल नहीं थी और वे बार-बार उन बड़े लेखकों को याद करते हैं, जिनके कारण उनके मन में लेखक होने का सपना पैदा हुआ। बंबई में जब वे ढाबे पर काम करते थे तब 'धर्मयुग' के संपादकीय विभाग के लोगों और तत्कालीन संपादक सत्यकाम विद्यालंकार ने कितनी मदद की, इसे याद करके मानो वे भावना में बहने लगते हैं। लेकिन जीवन भर नौकरी न करने के और एक लेखक का जीवन जीने के लिए कैसे-कैसे दुःख और संताप झेलने पड़े, यह याद करके बार-बार उनका चेहरा उदास हो जाता था। तभी मैंने पूछा कि क्या उन्हें लगता है कि इस देश में पैदा होने की बजाय वे किसी और देश में पैदा हुए होते तो इतना लिखने पर उन्हें अधिक पैसा, नाम और यश मिलता? जबकि यहाँ तो उनके लिए दो वक्त की रोटी जुटा पाना और अपनी बीमारी का इलाज कराना तक मुश्किल है!

इसपर मटियानी ने जो जवाब दिया, वह मुझे कभी नहीं भूलेगा। उन्होंने कहा कि मैं एक गरीब देश का लेखक हूँ—एक गरीब देश की गरीब जनता का लेखक। जिस देश की जनता खुद अपने लिए दो वक्त की रोटी का इंतजाम नहीं कर सकती, उसके पास इतनी फुरसत कहाँ कि वह लिखे-पढ़े और अपने लेखक की चिंता करे। मैं इन्हीं गरीब लोगों का लेखक हूँ तो मुझे इन्हीं की तरह रहना चाहिए। एक लेखक को अपने लिए अलग से सुविधापूर्ण जीवन की कामना नहीं करनी चाहिए। तभी वह अपने स्वाभिमान को बचाए रख सकता है, वरना नहीं। एक जनता के लेखक को अपनी जनता जैसा ही होना चाहिए।'''

मटियानी के जवाब में जो खुद्दारी और आत्माभिमान था, उससे कलावादी ही नहीं, तमाम जनवादी लेखक भी चाहें तो बहुत कुछ सीख सकते हैं।

☐

अलबत्ता मटियानी फिर से स्वस्थ हुए और लिखने-पढ़ने में जुट गए। उनसे बीच-बीच में मुलाकातें होती रहीं। फोन और चिट्ठियों से भी संवाद जारी रहा। अभी कुछ ही महीने पहले वे दिल्ली आए तो मैंने उनसे आग्रह किया कि वे अपनी जिन अनलिखी कहानियों और उपन्यासों

की चर्चा करते हैं, उन्हें एकाग्र होकर पूरा करें। इसपर उन्होंने थोड़ा उदास होकर कहा, 'कहानी लिखने के लिए जिस तरह अपने आपको समेटना होता है, वैसी शक्ति मैं अभी अपने आपमें नहीं पा रहा हूँ।'

मुझे याद आया, कुछ बरस पहले जब वे स्वस्थ थे, उन्होंने मुझे अपने एक उपन्यास का खाका सुनाया था। मैंने कहा, 'इसे आप लिखते क्यों नहीं?' तो उन्होंने कहा था, 'मनु, मैं आर्थिक परेशानियों से बुरी तरह घिरा हूँ। लेख लिखने से मेरी रोजी-रोटी का थोड़ा इंतजाम हो जाता है। उपन्यास लिखने के लिए मुझे यह सब छोड़ना पड़ेगा। उपन्यास मेरे भीतर बनकर तैयार है। अगर कोई प्रकाशक पाँच-दस हजार रुपए एडवांस दे दे तो मैं उसे महीने भर में उपन्यास लिखकर दे सकता हूँ।' मैंने दो-एक लोगों से चर्चा की; लेकिन दिल्ली जैसे शहर में जहाँ ढेरों प्रकाशक हैं, ढेरों साहित्य अकादमियाँ हैं वहाँ मटियानी जैसे बड़े लेखक को थोड़ी देर के लिए आर्थिक परेशानियों से निवृत्त करके उपन्यास लिखवा लेने में किसी की रुचि नहीं थी।...और अब तो बीमारी ने उन्हें इतना थका डाला था कि वे शायद अब यह सोच भी नहीं सकते थे।

हिंदी साहित्य की 'नकली' चिंता के लिए ढेरों अकादमियाँ, ढेरों लेखक संघ, संस्थाएँ, फेलोशिप और न जाने क्या-क्या अटरम-पटरम हैं। ढेरों नकली लेखक उनसे लाभान्वित हो रहे हैं और उछल-कूद रहे हैं। लेकिन इस सारे माहौल में 'एक सच्चा लेखक' किस तरह जी रहा है और किस मौत मर रहा है–

हाँ, इस मुलाकात में यह जरूर हुआ कि मटियानीजी जो कहानियाँ लिखना चाहते थे, उन सबके कथासूत्र वे मुझे बताते गए और मैंने उन्हें कागज पर दर्ज कर लिया। ताकि यह सनद रहे कि मटियानी इन कहानियों को लिखना चाहते थे। खुशी की बात यह है कि उनमें से 'नदी किनारे का गाँव' कहानी 'अकार' पत्रिका में अभी हाल ही में छपकर आई है। एक और बेहद मार्मिक कहानी 'उपरांत' 'हंस' में छपी है। और ये कहानियाँ यह साबित करने के लिए काफी हैं कि घोर पस्ती, अवसाद और यातना के क्षणों में भी मटियानी का जीवन कितना बड़ा था, जीवन-आस्था कितनी बड़ी थी और वे कितने उदात्त स्तरों और मानस भूमियों पर विचरण कर रहे थे। एक ओर जनता के घोर दुःख और गरीबी से जुड़ी मामूली से मामूली बातें और दूसरी ओर उन्हीं मैली और साधारण स्थितियों में, उन्हीं मैले, विपन्न और साधारण लोगों में जीवन के उदात्ततम आदर्शों की खोज! मटियानी को इसमें कोई विरोध नहीं लगता था। बल्कि वे इतने अच्छे ढंग से इन दोनों को साथ लेकर चल पाए कि इस मामले में हिंदी साहित्य में निराला को छोड़कर उनके जोड़ का कोई दूसरा लेखक ढूँढ़ पाना मेरे खयाल से मुश्किल है। और अफसोस, दोनों ही लेखक अपनी प्रचंड जीवनी शक्ति के बावजूद विक्षिप्त हुए!

अलबत्ता शैलेश मटियानी जिस तरह से गए, वह हिंदी समाज के लिए तो शर्म की बात है ही, हिंदी साहित्य के आलोचकों या आलोचना के लिए भी एक कलंक है। इसलिए कि शैलेश मटियानी को, जिन्हें लाखों पाठकों का प्यार हासिल था, ठीक-ठीक समझने और उनके मूल्यांकन की कोशिश शायद ही किसी बड़े आलोचक ने की। निराला की तरह मटियानी भी एक 'महाप्राण' लेखक थे, जिनके दिल में पूरी भारतीय जनता का सुख-दुःख बसता था। मटियानी के गुजरने के बाद भी आलोचक अगर यह जान लें और अपना कलंक धोने की ईमानदार कोशिश करें, तो गनीमत होगी।

शैलेश मटियानी से लिये गए इंटरव्यू में मैंने उनसे पूछा था कि आप प्रेमचंद के बाद सबसे बड़ा कहानीकार किसे मानते हैं? इसपर उनका जवाब था, 'अगर आप बड़बोलापन न मानें तो प्रेमचंद के बाद...मैं अपने आपको हिंदी का सबसे बड़ा कहानीकार मानता हूँ।' हिंदी का कोई भी और कहानीकार यह कहता तो अटपटा लगता। पर आश्चर्य! मटियानी यह कह रहे थे तो ये शब्द उनके साथ फब रहे थे और उनमें घमंड जरा भी नहीं लगता था। शायद इसलिए कि एक कथाकार के रूप में मटियानी के लंबे आत्मसंघर्ष और पहाड़ जैसे दुःखों की छाप उसमें है।

उसी समय चलते-चलते मटियानीजी की पत्नी से भी मैंने एक सवाल पूछा, 'इतने बड़े लेखक की पत्नी होकर आपको क्या मिला—सुख या दुःख?' और उन्होंने पथराए चेहरे से कहा कि अगर उनकी शादी हिंदी के इतने बड़े लेखक से न होकर एक मामूली क्लर्क से होती तो वे कहीं ज्यादा सुखी होतीं!

मटियानी यह सुन रहे थे। पर उनके चेहरे पर कोई रोष नहीं, कोई परेशानी नहीं थी। बस, एक दुःख भरी शांति थी।...

क्या एक स्थापित लेखक की इससे बड़ी त्रासदी की आप कल्पना कर सकते हैं?

हिंदी साहित्य की 'नकली' चिंता के लिए ढेरों अकादमियाँ, ढेरों लेखक संघ, संस्थाएँ, फेलोशिप और न जाने क्या-क्या अटरम-पटरम हैं। ढेरों नकली लेखक उनसे लाभान्वित हो रहे हैं और उछल-कूद रहे हैं। लेकिन इस सारे माहौल में 'एक सच्चा लेखक' किस तरह जी रहा है और किस मौत मर रहा है—शैलेश मटियानी मरकर हमें यह बता गए हैं। □

५४५, सेक्टर-२९, फरीदाबाद,
हरियाणा-१२१००८

आलेख

मीराँबाई की प्रासंगिकता और महात्मा गांधी

✍ कमल किशोर गोयनका

मीराँबाई भक्तिकाल की सर्वोत्कृष्ट भक्त कवयित्री थीं। भक्तिकाल में गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, कबीर और जायसी जैसे महान् कवि उत्पन्न हुए। इन महान् कवियों में मीराँबाई भी अपने वैशिष्ट्य के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं; बल्कि यदि यह कहा जाए कि वे अपने प्रकार की अकेली कवयित्री हैं, तो अतिशयोक्ति न होगी। वे केवल कवयित्री नहीं थीं बल्कि ऐसी भक्त कवयित्री थीं जिनका उदाहरण मिलना दुर्लभ है। वे ऐसे समय में जनमी थीं जब देश में भक्ति आंदोलन चल रहा था—और यदि ग्रियर्सन के शब्दों में कहें तो, यह धार्मिक आंदोलन अब तक का सबसे विशालतम आंदोलन था, जो बौद्ध आंदोलन से भी विशाल था; क्योंकि उसका प्रभाव आज तक विद्यमान है। ग्रियर्सन कहते हैं कि अब धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय था और हम यहाँ ऐसे रहस्यवाद और प्रेमोल्लास के देश में आते हैं और ऐसी आत्माओं का साक्षात्कार करते हैं जो काशी के दिग्गज पंडितों की जाति के नहीं थे। मीराँ क्षत्रिय कुल में जनमी थीं और राजरानी थीं। वे आरंभ से ही भगवान् श्रीकृष्ण की उपासिका थीं। मीराँ ने विवाह तो किया, परंतु लौकिक पति को पति नहीं माना। उन्होंने ईश्वर रूप कृष्ण को अपना वास्तविक पति मानकर अपना जीवन कृष्णमय बना लिया। लेकिन उन्होंने इस ईश्वरीय आलंबन को पति-पत्नी के मानवीय संबंधों में बाँधकर उसे लोकमानस के लिए सुलभ बना दिया। इस मानवीय संबंध ने भक्ति को नया आयाम और नया रूप दिया तथा धर्म की रहस्यवादिता एवं घोर आध्यात्मिकता के स्थान पर भक्ति साधारण मनुष्य के जीवन का अंग बन गई। मीराँ की काव्य-साधना ने कृष्ण के अलौकिक एवं पारलौकिक अस्तित्व को जैसे समाप्त कर उन्हें मानवीय प्रेम की पूर्णता एवं रसनिष्ठा का प्रतीक बना दिया और प्रेम में आत्मोत्सर्ग, तन्मयता, तीव्रता, मिलन-वियोग की गहरी संवेदना का ऐसा रागात्मक संबंध उत्पन्न किया जिसने वेदना में आत्मपरिष्कार एवं आत्मा-परमात्मा के एकल का मार्ग प्रशस्त किया।

मीराँ का वैशिष्ट्य इतना ही नहीं है। मीराँ ने पति की परंपरागत सत्ता एवं अधिकार को स्वीकार नहीं किया और न पति के देहांत के बाद सती होकर परंपरा को आगे बढ़ाया। उस युग के सामंती परिवेश तथा पुरुषप्रधान समाज में 'पति को परमेश्वर' माननेवाली हिंदू स्त्री का 'परमेश्वर को पति' मानने का अधिकार प्राप्त करना आसान नहीं था। यह एक प्रकार से राजनीतिक सामंतवाद तथा धार्मिक परंपराओं के विरुद्ध मीराँ के रूप में युग की नारी का मूक विद्रोह था। मीराँ इस मूक विद्रोह के कारण 'कुलनाशी' कहलाई और उसे विष का प्याला भी पीना पड़ा। परंतु मीराँ ने नारीत्व को जीवित रखा और सिद्ध कर दिया कि पति की सत्ता के बिना भी नारीत्व का अस्तित्व है। इस प्रकार मीराँ ने नारी की स्वतंत्र सत्ता का उद्घोष करके भी उसे स्वकीया प्रेम से जोड़ा तथा परमेश्वर पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम की साधना करके भारतीय नारी को परंपरागत मर्यादा और संयम में रखा। वास्तव में मीराँ इष्टदेव के प्रति अनन्य भाव, स्वकीया प्रेम की तन्मयता, घनीभूतता, वियोग में मिलन की कामना, संयम और मर्यादा आदि के कारण भारतीय नारी का जीवंत प्रतीक बन गई।

मीराँ के ऐसे ही रूप तथा भारतीय नारी की ऐसी ही विशेषताओं ने महात्मा गांधी की चेतना, संघर्ष तथा जीवन-मूल्यों को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने अपने स्वाधीनता संग्राम में मीराँ के व्यक्तित्व तथा काव्य-साधना का भरपूर उपयोग किया। उन्होंने अपने जीवनकाल में लगभग पचास बार अपने भाषणों, पत्रों, लेखों आदि में मीराँबाई का स्मरण किया और उनकी किसी-न-किसी विशेषता का उल्लेख करके सिद्ध किया कि भारत की स्वतंत्रता तथा उसके विकास में उनका किस प्रकार उपयोग हो सकता है। महात्मा गांधी अपने समय के सबसे अधिक आधुनिक भारतीय थे और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका से ही अंग्रेजों की दासता तथा उनके अत्याचारों के विरुद्ध अहिंसक संघर्ष शुरू कर दिया था। उन्होंने भारत आकर असहयोग, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा तथा अहिंसा से स्वराज्य के लिए संघर्ष आरंभ किया—और इसके लिए उन्हें मध्ययुग की भक्त कवयित्री मीराँबाई अत्यंत उपयोगी लगीं और वे उनके जीवन एवं साहित्य का उपयोग इस राष्ट्रीय जागरण में बराबर करते रहे।

महात्मा गांधी ने सबसे पहले २२ जून, १९०७ को मीराँबाई का उल्लेख करते हुए लिखा कि हमें मीराँबाई जैसी हजारों स्त्रियों की आवश्यकता है, जो भारत के आधे स्त्री समाज को शिक्षित और जाग्रत् कर सकें। ऐसी मीराँबाई का परिचय अपनी एक ईसाई मित्र को देते हुए

गांधी ने अपने ११ जून, १९१७ के पत्र में लिखा, 'दो-तीन शताब्दी पूर्व मीराँबाई नामक एक महान् रानी हुई हैं। उन्होंने अपने प्रिय व्यक्तियों और समस्त वैभव का त्याग करके परम प्रेम का जीवन बिताया। अंत में उनके पति उनके भक्त बन गए। हम अकसर उनके रचे हुए कुछ सुंदर भजन आश्रम में गाते हैं। जब तुम आश्रम में आओगी तब उन गीतों को सुनोगी और किसी दिन गाओगी भी।' मीराँ के इन सुंदर गीतों का कारण गांधी यह मानते थे कि वे मीराँ के हृदय से निकले हैं तथा उनकी रचना गीत रचने की इच्छा या लोगों को खुश करने की इच्छा से नहीं की गई है। गांधी मीराँ के जीवन से जुड़े चमत्कारों को उपेक्षणीय मानते हैं, क्योंकि उन्हें इस प्रकार के ईश्वरीय चमत्कारों में विश्वास नहीं है। उन्होंने इसी कारण ईसा मसीह से जुड़े चमत्कारों को भी अस्वीकार किया। लेकिन मीराँ के जीवन की प्रमुख चीज की ओर ध्यान दिलाना नहीं भूलते और वे कहते हैं कि हमें जिस चीज को ध्यान में रखना है वह तो मीराँबाई की पवित्रता है।

गांधी मीराँ के पति से अपने सत्य के लिए असहयोग करने का समर्थन करते हुए कहते हैं कि हमारे धार्मिक ग्रंथ ऐसे असहयोग का समर्थन करते हैं। हमारी परंपरा में प्रह्लाद ने अपने पिता से, विभीषण ने अपने क्रूर भाई से तथा मीराँ ने अपने पति से असहयोग करके कुछ भी अनुचित नहीं किया। यह सच है कि अन्यायी एवं असत्य से असहकार एवं असहयोग तथा न्यायी एवं सत्य से सहकार एवं सहयोग की परंपरा हमारे यहाँ रही है।

महात्मा गांधी मीराँ के प्रेम की अद्‌भुत शक्ति से पूर्णरूप से परिचित ही नहीं थे बल्कि वैसी प्रेमानुभूति तथा प्रेम की शक्ति अपने प्रेम से उत्पन्न करना चाहते थे। गांधी समझ चुके थे कि मीराँ जैसी गहन एवं घनीभूत प्रेमानुभूति ही विश्व को बदल सकती है। गांधी १५ नवंबर, १९१७ को लिखे एक पत्र में कहते हैं कि मीराँ को प्रेम की कटारी गहरी लगी थी। प्रेम की वैसी कटारी हमारे भी हाथ लगे और हममें उसे भोंकने का बल आ जाए तो हम दुनिया को हिला दें। प्रेम के अपने अंतर में होते हुए भी मैं हर क्षण उसके अभाव का अनुभव करता रहा हूँ। गांधी मीराँ के उस पद का कई बार उल्लेख करते हैं जिसमें मीराँ कहती हैं कि कच्चे धागे से मुझे हरिजी ने बाँध लिया है। वे जिधर खींचते हैं, मैं उधर ही मुड़ जाती हूँ। मुझे तो प्रेम की कटारी लगी है। गांधी इसी प्रेम के कच्चे धागे से मुसलमानों को बाँधने तथा गाय की रक्षा करना चाहते हैं और भारत माता के साथ अटूट संबंध में बँधने के लिए भी इसी प्रेम के कच्चे धागे का इस्तेमाल करते हैं। वे ३० जनवरी, १९२१ को 'नवजीवन' में लिखते हैं कि मीराँ ने जो कहा सो करके दिखा दिया। प्रेम का यही धागा प्रत्येक मुसलमान को बाँधने और गाय की रक्षा के लिए काफी है। इसी प्रकार गांधी जब शिवप्रसाद गुप्त के आग्रह पर 'भारत माता मंदिर' का काशी में उद्घाटन करते हैं तो कहते हैं कि प्रेम की पुकार टाली नहीं जा सकती। मीराँ के प्रेम का धागा कच्चा और कोमल था; लेकिन वह मजबूत था। ऐसा प्रेम लोगों को हजारों मील दूर से खींच लाता है। गांधी मीराँ के इस प्रेम-पद का अनुसरण युवावस्था में ही कर रहे थे। और यही कारण है कि उन्होंने मीराँ के प्रेम-दर्शन को अपने जीवन का आधार बना लिया। वे मीराँ और भारत माता को एक साथ स्मरण करते हुए कहते हैं कि मीराँबाई कुशल कातनेवाली न होती तो हरिजी के प्रेमपाश के धागे से सुंदर उपमा कैसे देती? भारत माता भी हमें वैसे ही धागे से बाँधकर गुलामी के बंधनों से मुक्त करना चाहती है। इस प्रकार महात्मा गांधी भारत माता में मीराँ का रूप देख रहे हैं और दासता से मुक्त करने के लिए मीराँ की प्रेम-शक्ति का उपयोग कर रहे हैं।

महात्मा गांधी मीराँबाई का, अपने स्वराज्य आंदोलन को तर्कशील तथा शक्तिशाली बनाने के लिए, अनेक प्रकार से उपयोग करते हैं। गांधी भिन्न-भिन्न समय पर सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ करते हैं और उनके औचित्य एवं विश्वसनीयता के लिए मीराँबाई का वैसे ही उल्लेख करते हैं जैसे तुलसीदास अपनी बात का प्रमाण देने के लिए वेद का उल्लेख करते हैं। गांधी के शब्दों में मीराँबाई 'महान् सत्याग्रही' थीं। वे दक्षिण अफ्रीका के अपने आंदोलन से ही मीराँ की इस सत्याग्रही शक्ति से शक्ति प्राप्त कर रहे थे और मीराँ के अपने सत्य के लिए निर्द्वंद्व भाव से विषपान का बार-बार स्मरण भी कर रहे हैं। गांधी मीराँ के पति से अपने सत्य के लिए असहयोग करने का समर्थन करते हुए कहते हैं कि हमारे धार्मिक ग्रंथ ऐसे असहयोग का समर्थन करते हैं। हमारी परंपरा में प्रह्लाद ने अपने पिता से, विभीषण ने अपने क्रूर भाई से तथा मीराँ ने अपने पति से असहयोग करके कुछ भी अनुचित नहीं किया। यह सच है कि अन्यायी एवं असत्य से असहकार एवं असहयोग तथा न्यायी एवं सत्य से सहकार एवं सहयोग की परंपरा हमारे यहाँ रही है। इस कारण हम प्रह्लाद, विभीषण और मीराँ—तीनों को ही पूजा करते हैं। गांधी मीराँ के जीवन के इस सत्य का भी उद्घाटन करते हैं कि मीराँ ने राणा के सभी कठोर दंड तथा विषपान भी निर्विकार भाव से स्वीकार किए और क्रोध एवं प्रतिकार जैसा कोई भाव उनके मन में उत्पन्न नहीं हुआ। गांधी इसका उपयोग अपने असहयोग आंदोलन के लिए करते हुए कहते हैं, 'मीराँबाई ने राणा कुंभा के साथ जो असहयोग किया उसमें द्वेष नहीं था। राणा कुंभा द्वारा दिए गए कठोर दंड उसने प्रेमपूर्वक स्वीकार किए। हमारे असहयोग का मूल मंत्र भी प्रेम ही है। उसके बिना सब फीका, सब खाली है।' महादेव देसाई की गिरफ्तारी पर वे पुनः मीराँ को याद करते हैं और लिखते हैं कि मेरा पूरा विश्वास है कि मीराँबाई पर उनके पति द्वारा दी गई यातनाओं का कोई असर नहीं

हुआ था। ईश्वर के प्रति प्रेम और उसके अमूल्य नाम का निरंतर स्मरण उन्हें नित्य प्रसन्न बनाए रखता था। गांधी मीराँ के इसी एकनिष्ठ ईश्वर-प्रेम की बार-बार सराहना करते हैं और वैसा ही प्रेम अपने सत्याग्रहियों के मन में उत्पन्न करना चाहते हैं। गांधी मीराँ के एक पद की व्याख्या में कहते हैं कि मीराँ जैसी भक्त नारी कह गई हैं कि प्रभु भक्ति में जिसका मन लीन हो गया उसे दूसरी चीजें नीम के रस की तरह कड़वी और जुगनू के प्रकाश की तरह निस्तेज लगती हैं। गांधी कहते हैं कि मीराँ ने यह कर दिखाया कि 'चाहे राणा रूठै पर ईश्वर न रूठै'। गांधी मीराँ से यही शिक्षा लेते हैं और ६ दिसंबर, १९४४ को डायरी में लिखते हैं कि मीराँबाई के जीवन से हम बड़ी बात यह सीखते हैं कि उसने भगवान् के लिए अपना सबकुछ छोड़ दिया। गांधी मीराँ के राज-भोग को त्यागकर ईश्वर-प्रेम में नाचने की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और असहयोग आंदोलन में सक्रिय छात्रों से आग्रह करते हैं कि वे सरकारी स्कूलों के बहिष्कार में मीराँ जैसे त्याग और बलिदान में आनंद की अनुभूति करें। गांधी मीराँ की आत्मा को देश की युवा पीढ़ी के हृदय में उतार देना चाहते हैं।

महात्मा गांधी मीराँ के विवाह, पति-पत्नी संबंध, स्त्री के अधिकार और उसकी अस्मिता के प्रश्न को भी उठाते हैं और इस तरह वे एक मध्ययुगीन भारतीय स्त्री को आधुनिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं। गांधी विवाह की परिभाषा में कहते हैं कि विवाह शरीर द्वारा दो आत्माओं का मिलन होता है और इसमें परमेश्वर के प्रति प्रेम एवं भक्ति का भाव भी निहित रहता है। गांधी कहते हैं, 'पति-पत्नी का प्रेम स्थूल वस्तु नहीं, उसके द्वारा आत्मा-परमात्मा के प्रेम की झाँकी दिखाई दे सकती है। यह प्रेम वासनागत प्रेम कभी नहीं हो सकता। विषय-सेवन तो पशु भी करता है। जहाँ शुद्ध प्रेम है वहाँ बल-प्रयोग के लिए गुंजाइश नहीं और वे एक-दूसरे का मन रखकर चलते हैं।' इसलिए गांधी मानते हैं कि मीराँ ने यह अपने आचरण से सिद्ध कर दिया कि पत्नी के रूप में उसका भी एक व्यक्तित्व है। गांधी की दृष्टि में मीराँ 'सती स्त्री' थी और उसके लिए विवाह वासना को तृप्त करने का साधन नहीं था। गांधी के विचार में, 'सतीत्व' का अर्थ है—'पवित्रता की पराकाष्ठा', और मीराँ इसकी प्रतिमूर्ति थी। महात्मा गांधी पुरुष की निरंकुशता एवं एकाधिकार के विरुद्ध मीराँ के विद्रोह को तर्कसंगत मानकर अपनी आधुनिकता के परिचय के साथ नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का समर्थन करते हैं। गांधी लिखते हैं, 'मीराँबाई ने मार्ग दिखा दिया है। जब पत्नी अपने को गलती पर न समझे और जब उसका उद्देश्य अधिक ऊँचा हो तब उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने मन का रास्ता अख्तियार कर ले और नम्रता से परिणाम का सामना करे।' इस प्रकार गांधी मीराँबाई के साथ हैं और उनके पति-विद्रोह तथा परंपरा-विद्रोह को औचित्यपूर्ण मानते हैं और मध्ययुगीन मीराँबाई को आधुनिक संदर्भ में भी स्वीकृत और मान्य बना देते हैं।

अंत में, महात्मा गांधी मीराँबाई को भारत की एक 'महातेजस्विनी भक्त स्त्री', 'सत्याग्रहिणी', 'महान् त्यागी एवं बलिदानी', 'सतीत्व' की प्रतीक, 'संत', 'भक्त नारी' आदि मानते हैं और अपने समय के संघर्ष के साथ संबद्ध करके उसे और भी प्रासंगिक बना देते हैं। गांधी का कौशल यह है कि वे मीराँबाई के मध्ययुगीन भक्ति, प्रेम-दर्शन और नारी चेतना को आधुनिक भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के लिए भी सर्वथा सार्थक और उपयोगी बना देते हैं और मीराँबाई को सभी स्वतंत्रता-प्रेमियों, अनाचारों का मूक विद्रोह करनेवालों, ईश्वर-प्रेम को सर्वोच्च माननेवालों तथा नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करनेवालों के लिए सहज-सुलभ बनाकर उनमें अपना प्रतिरूप खोजने का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। इस प्रकार मीराँबाई भारत के स्वतंत्रता संग्राम का ही नहीं, आधुनिक लोकमानस का भी अंग बन जाती है। महात्मा गांधी जब भी मीराँ को याद करते हैं, वे 'मीराँमय' हो जाते हैं। वे आधुनिक भारत को भी 'मीराँमय' बनाना चाहते हैं। दूदामाई की बेटी लक्ष्मी को वे 'मीराँबाई' बनाना चाहते हैं। और सरोजनी नायडू को तो वे 'मीराँबाई' कहते ही हैं। उनकी कामना है कि भारत में मीराँबाई जैसी हजारों स्त्रियाँ हों, जो स्त्री समाज का कायाकल्प कर दें। परंतु गांधी मीराँ को प्रासंगिक बनाने के अलावा कोई दूसरी मीरा की सृष्टि नहीं कर पाए। यह गांधी की बड़ी असफलता थी। □

ए-९८, अशोक विहार,
फेज-I, दिल्ली-११००५२

वे बातें हमें घेरती हैं जिन्हें हम याद नहीं रखना चाहते। जिन बातों को सोचना नहीं चाहते वे अपनी पूरी जकड़न के साथ हमें लगभग नियोजित तरीके से घेरती हैं। बहुत पुरानी बातें भी शायद प्रतिध्वनि के रूप में हमारी भीतरी तहों में कहीं-न-कहीं मौजूद होती हैं—और उन्हें भुलाया जाना इसीलिए संभव नहीं होता। और जिन बातों का बखान हम किसीसे नहीं कर पाते वे तो हमारी चेतना का हिस्सा बन जाती हैं और बेचैन कर देती हैं। भगवती यह बात किसीसे नहीं कह सकती। आई.आई.टी., मुंबई में अंतिम वर्ष के विद्यार्थी

जन्म : ५ अक्तूबर, १९५९।

शिक्षा : विज्ञान स्नातक।

कृतियाँ : कहानी संग्रह—'मेरी बिटिया', 'नुक्कड़ नाटक', 'महिमामंडित'; उपन्यास—'गृहस्थी'।

प्राय: साठ-पैंसठ कहानियाँ, बीस लेख, बीस हास्य-व्यंग्य विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। आकाशवाणी रीवा से कहानियों व नाटकों का प्रसारण।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

कहानी

मूल्यांकन

✍ सुषमा मुनींद्र

अपने पुत्र नरोत्तम से कहे तो वह भावुक लड़का आत्मग्लानि से कुछ कर न बैठे। भगवती अपनी एकमात्र संतान को नहीं खो सकती। अपने पति पुरुषोत्तम से कहे तो वे लापरवाही से चीख पड़ेंगे, 'कुछ होश है, लड़का किस रास्ते पर जा रहा है। अब भुगतो।' और भगवती में ऐसी बात कहने का साहस और संस्कार भी तो नहीं है। विश्वास ही नहीं होता। कुछ सोच नहीं पा रही है। ऐसा हो सकता है, यह कभी सोचा तक नहीं। लेकिन हो जाने के बाद भी विश्वास नहीं कर पा रही है कि बड़की (बबुली की नानी) ने बबुली और नरोत्तम को लेकर जो कुछ कहा है वह आधारभूत सच है।

अभी कुछ वर्ष पहले ही तो यह छह-सात वर्षीया रूखी-सूखी, दुर्बल बालिका ढीली-ढपोल बंडी, खूब लंबी चड्ढी पहने, हाथ में संटी लिये बकरियों को खदेड़ती हुई खूब गला फाड़कर 'छेरी, छेरी' चिल्लाती पूरे मैदान में घूमती थी। वह बालिका भरी देहवाली स्वच्छ-सुंदर रमणी कब बन गई? कितनी जल्दी बीत जाता है समय और कितनी जल्दी बड़ी हो जाती हैं लड़कियाँ! और नरोत्तम? जो नन्हा बच्चा खिड़की में झूलते हुए बबुली को पुकारता था, 'गोटवाली! इधर आ···' वह इतना युवा कब हो गया कि बबुली इसके लिए गोटवाली से युवती बन गई। कितनी जल्दी बीत जाता है समय और कितनी जल्दी जवान हो जाते हैं लड़के!

बातें···प्रतिध्वनियाँ···घेराव···

तब इस एक एकड़ के विशाल भूखंड में बाउंड्रीवाल नहीं थी। भूखंड के दक्षिणी छोर पर भगवती का मकान और दूर तक व्याप्त एकांत। भगवती कभी छत पर चढ़कर चारों ओर दृष्टि डालती तो दूर कुछ कच्चे घर दिखाई पड़ते, जिनमें से एक बड़की का था। विपरीत छोर पर हाउसिंग बोर्ड के निर्माणाधीन मकानों की कतार दिख पड़ती थी। फिर यह इलाका तेजी से रिहायशी होता गया और अब उस एकांत का बखान किसी गत युग का किस्सा प्रतीत होता है। उस एकांत में साथी-संगति के अभाव में नरोत्तम के लिए बबुली और उसकी चार बकरियाँ मनोरंजन का उत्तम साधन हुआ करती थीं। बहुत छोटी चितकबरी बकरी के कंठ में घुँघरू बँधे थे। नरोत्तम घुँघरू की सुमधुर ध्वनि और बबुली के तेज स्वर से जान लेता था कि बबुली बकरियाँ चराने आ गई है।

वह खिड़की पर आ जाता, 'गोटवाली···'

बबुली छोटी चितकबरी बकरी को गोद में उठाए खिड़की पर लपक आती, 'बाबू, हमार नाम गोटवाली नहीं, बबुली आय।'

बड़की नरोत्तम को 'बाबू' संबोधित करती थी तो बबुली भी करने लगी।

'तू गोट चराती है न—जी फॉर गोट, ये बकरी, इसीलिए तू गोटवाली है।'

बबुली की अज्ञानता और अपनी बुद्धिमत्ता पर किलक उठता।

'गोट नहीं, छेरिया (बकरी)।' बबुली नरोत्तम को अपनी भाषा समझाती।

'छेरिया?'

'बोकर···बोकरी।'

'गोट।'

'गोट? बाबू, तुम्हार रँगरेजी हमरे समझ

मा नहीं आबय।'

कभी-कभी बबुली के साथ दो छोटी लड़कियाँ होती थीं। बबुली अपने बड़े होने का प्रमाण देते हुए उन्हें फटकारकर रखती थी।

नरोत्तम पूछता, 'गोटवाली, ये लड़कियाँ कौन हैं?'

'हमार बहिनी आहीं। हमरे महतारी के संगे कदैला माँ रहती हईं। ई दूनौ आन (दूसरे) बाप के आहीं। हम आन बाप के आहेन।' बबुली बहुत सहजभाव से बताती।

नरोत्तम के निकट खड़ी भगवती चकित होती—बबुली को यह बात किसने बताई और यह इस बात को इतनी सहजता से कैसे कह पाती है? शायद इन लोगों के घर में बहुत खुली बातें होती होंगी और इन घरों के बच्चे बचपन में ही बहुत कुछ जान-समझ लेते होंगे। बड़की जिस खुलेपन से बात करती है उससे स्पष्ट होता है कि ये लोग सामाजिक मूल्यों को लेकर विशेष सजग नहीं रहते।

'स्टूपिड! क्या बोली, फिर से बोल?' नरोत्तम अर्थ नहीं समझ पाया था। वह बबुली के समवयस्क होने के बावजूद उसकी तुलना में भोला और अबोध था।

'हमार बाप आन, इनकर आन।' बबुली परेशान, जो बाबू अच्छे स्कूल में पढ़ता है, विद्वान् बना फिरता है वह छोटी सी बात नहीं समझता।

'ये दोनों इसकी कजिन हैं।' भगवती नरोत्तम को यही समझा सकती थी।

'कजिन।' नरोत्तम समझ गया था।

कजिन? अब बबुली अर्थ न समझ पाती।

निश्छल, कौतुक से भरी मासूम बातें वयस्क कब बन गईं? इतने चुपचाप? हैरानी होती है। भोला नरोत्तम बहुत रहस्यास्पद हो गया है और बेवकूफ बबुली बहुत शातिर।
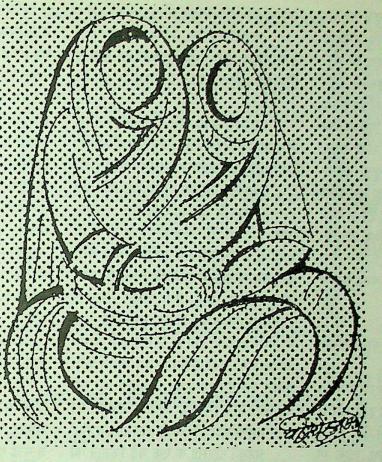
बड़की की बातों में बबुली प्रमुख रूप से हुआ करती है। भगवती ने बबुली को सीधे कम, बड़की की बातों के माध्यम से अधिक जाना है।

'मलकिन साहेब, बबुली हमार नातिन आय। बड़ी बिटिया जसोदा के लड़िकी। बबुली का हम सेये-पालेन। जसोदा के पहिला घरवाला कउनों नक्टी से इस्क लड़ाबत रहा, फिर ओहिन नक्टी का राख (रख) लिहिस। जसोदा का मार लाता भगाय दिहिस। जसोदा सीध-साध रही, रोबत-कलपत हमरे पास आय गय। हम होइत त वा नक्टी अउर नक्टा मनुस (मर्द) का चूँदी पकड़ि के घर से निकारित। हम न निकरित। फेर जसोदा के दूसर काज (ब्याह) भा। जसोदा के या दूसर घरवाला बबुली से घिनात (घृणा) रहा त एही हम अपने पास राख लिहेन। जसोदा के दुइ बिटिया अउर भई। जसोदा बहुत सुंदर ही, बबुलीयौ ओहिन कर सुंदर ही।'

बड़की लड़कियों की सुंदरता को रेखांकित करना नहीं भूलती।

'हाँ, मैंने जसोदा को देखा है। तुम्हारे साथ कभी-कभी कंडे ढोकर ले जाती है।' भगवती बात आगे बढ़ाती।

'वहय। जब अपना के पक्का (पक्का मकान) बना तब जसोदा काम करत रही।'

'मालूम है।'

बड़की का अनुभव विशाल है। बातें अनगिनत।

भगवती इस भूखंड को बड़की से अलग रखकर नहीं देख पाती। वह जैसे सदियों से बड़की को इस भूखंड में कंडे पाथते देख रही है। उसकी दोनों छोटी लड़कियाँ गोबर बीनकर यहाँ एकत्र करतीं, फिर बड़की दोपहर में आकर कंडे पाथती। वह जिस एकाग्रता और तल्लीनता से कंडे पाथती है उसे देख लगता है, कोई भी काम उबाऊ नहीं होता।

बड़की कंडे पाथकर, फुरसत निकाल भगवती के पास आकर बैठ जाती, 'मलकिन साहेब, हम यहाँ के पुरान बासिंदा आहेन। या जाघा (भूखंड) कबहूँ अपना के ससुर खरीदे रहें। चारौं (कई ओर) उजाड़ रहा। अब त बस्ती बसत जात ही। अपना मकान ठीक बनवाए लिहेन, नहीं त या भुँई हउसिंग बोरड वाले लई लेते।'

भगवती चकित होती कि निरक्षर बड़की ये जानकारियाँ कहाँ से एकत्र कर लेती हैं। भगवती के ससुर गाँव के संपन्न किसान थे। मामले-मुकदमे का खूब शौक रहा और कोर्ट-कचहरी आते-जाते रहे। भूमि संबंधी विवाद निबटाते हुए भूमि क्रय-विक्रय में रुचि जागरित हुई और वे उसमें पैसा लगाने लगे। अब भगवती के पति पुरुषोत्तम रियल इस्टेट का काम

बाकायदा करते हुए इस शहर में बस गए हैं। यहाँ इस निर्जन में मकान इसीलिए बनवाया कि हाउसिंग बोर्डवाले जमीनें हथिया रहे थे।

बड़की का वक्तव्य जारी रहता—

'आदमी हमार लाँगड़ है। इक्सीडेंट होइगा रहा। कुछू नहीं करय, पै दारू पियैंका दाम चाही। हम कंडा बिकन (बेच) लेइत हयन, खपड़ा पारित (बनाती) हयन, कुछू पइसा-दाम मिल जात हय। कंडा मा खपड़ा खूब अच्छे पक जात हैं। चार-छह ठै मुरगी हँई त अंडा बेच लेइत हयन, बोकरी के दूध बिक जात है। अपना के या जमीन से चारा काट के बेच लेइत हयन। हमार लड़िका कालू भैंसी-बरदा चराबत हय। गुजारा होइ रहा है।'

'कितने बच्चे हैं?'

'पाँच बिटिया, एक बेटवा। तीन बिटियन के काज होइगा।'

भगवती देखा करती, पशु चारण में व्यस्त कालू पशुओं को लेकर साँझ ढले इसी ओर से गुजरता हुआ मौज में कभी-कभी ऊँचे सुर में गाता था—'ससुरे मा नीक लागय, मइके मा नाहीं···'

बड़की चटख धूप और तीक्ष्ण धुएँ में पकी काली त्वचा के कारण पहले अपनी उम्र से अधिक लगती थी तो अब उम्र से कम लगती है। उसकी त्वचा का स्याहपन भेद खुलने नहीं देता और उसकी उम्र ठहर गई लगती है। बहुत उद्यमी स्त्री है। रूखा-सूखा खाकर भी इसकी कार्यक्षमता गजब की है। कार्यक्षमता का शारीरिक मजबूती और पौष्टिक आहार से सीधा संबंध नहीं होता, वरना मजदूरिन दिन भर सिर में गारा न ढो पातीं। कार्यक्षमता अनिवार्य अभ्यास और आदत होती है। बड़की इस भूखंड में एक तरह से अपना अधिकार समझ निर्बाध आने-जाने लगी। बदले में भगवती का बहुत सा गृहकार्य अनाज धोना, बीनना, पौधे सींचना, सब्जी लाना, थलहा बना लौकी, कुम्हड़ा, रेरुआ लगाना, बरौनी न आए तो बरतन माँज देना आदि कर देती। उसे अपनी उपयोगिता सिद्ध करना आता है। फिर इस भूखंड में बाउंड्रीवाल बन गई तब बड़की खुश थी—

'मलकिन साहेब, बंधेज होइ गा। अब हमार कंडा चोरी न जइहैं, चारा का गोरू न रौंद पइहैं। बहुत सुंदर चारा हय।'

□

एकमुश्त समय कैसे तो नामालूम तरीके से बेआवाज खिसक गया। बबुली बड़ी हो गई। अब बड़की की बातों का केंद्रबिंदु बबली होती।

'बबुलिया के चिंता लगी रहत ही। राँड़ (गाली) दिन पै दिन सुंदर निकरत जात ही। आज-काल मजूरी करँय जाँय जात ही त डेर लगी रहत ही। गरीब के सुंदरापा बड़ा बैरी। एही हम जसोदा के घर नहीं जाँय देई। एकर जो सबतिया बाप हय ओकर आचरन (आचरण) ठीक नहीं जनाय। बबुली दुइ-चार बेर गय। कहत ही बाप से डेर लागत ही, खराब आदमी हय। बड़ी मुसीबत। हम जब नौबस्ता फसल काटयँ जइत हयन त बबुली का नहीं लइ जई। होन हम मजूर खुले मा रहित हयन अउर बबुली सुंदर ही। सबके लार टपकत ही।'

बड़की नौबस्ता के एक बड़े किसान की रबी और खरीफ फसल काटने के लिए कुछ मजदूरों के साथ प्रतिवर्ष जाती है। मेहनताना और एक बोरा अन्न पा जाती है। बड़की की बातों का खुलापन भगवती को हैरान करता है। पर बड़की अपने घर के भेद बेझिझक कह डालती है—

'जसोदा बज्र बदमास ही। अबे भर (अब तक) बबुली का हमरे नेरे (पास) छाँड़े रही अउर अपना (खुद) भतार के साथ मजा मारत रही। अब बबुलिया कमाय लाग त कहत ही, हमार बिटिया लउटाव।'

अश्लील गालियाँ अभ्यासवश बड़की की सहज भाषा बन गई है। वह इन गालियों का प्रचुर प्रयोग अपनी पुत्रियों के संदर्भ में भी करती है।

'तो दे दो। बुढ़ापे में अपने ऊपर जिम्मेदारी लादे हुए हो।' भगवती सोचती थी, बबुली न हो तो बड़की अपेक्षाकृत स्वतंत्र और तनावमुक्त जीवन जी सकती है।

'जुम्मादारी नहीं, मलकिन साहेब, बबुली हमरे जिउ (जीने) के अधार ही। हमहीं ओसे बहुत मोह हय। जसोदा अउर जसोदा के मनुस चाहत हैं बबुली उनके पास रहय, कमाय के दे। बड़े स्वारथ के जीव। भाग्य हमार खराब हय, मलकिन साहेब। लूल-लाँगड़ आदमी रहा त वहौ मर गा। सराब करेजा (कलेजा) फूँक दिहिस। अपना से रिन (ऋण) लइके दवाई करायेन, पै कउनो अरथ न निकरा। लड़िका हय कालू त ओही जुआ के लत लगी रही। बोकरी, मुरगी सब बेंच डारिस अउर अब ससुरारि मा बस गा। वहँय अपने मेहरी के साथ पेंट-पोताई के काम करत हय। बिटिया अब बर-बियाह दिहेन। या बबुली हय जिउ के अधार।'

'बबुली को कब तक बाँधकर रखोगी? शादी नहीं करोगी?'

'अरे, या बिटिया विचित्र ही। बड़ा फोक्कस बनाबत ही। एही अच्छी धोतिया चाही, चप्पल, फीता चाही। कहत ही, कमइत हयन त मनई धारन रहब। एक रोज कहत रही···बड़ी निलज्ज ही, कहत रही, अइसन-वइसन लड़िका से काज न करब, जे बाबू जइसन सुंदर होइ ओसे करब। बहुत बतात (बोलती) ही।' बड़की यह बात बहुत हँसकर बता रही थी।

अर्थात् बबुली अच्छे सपने देखने लगी थी। अर्थात् उसे अपनी सुंदरता का बोध था। अर्थात् उसने अपने आस-पास नरोत्तम को सबसे अच्छे लड़के के रूप में पाया और उसे पहली पसंद बना लिया। फिर जल्दी ही बड़की की हँसी रुक गई और चेहरे पर दुःख का भाव छा गया। यह स्त्री भाव बदलने में अत्यंत प्रवीण है। ऐसे मुलुर-मुलुर पलकें झपकाने लगती है जैसे यही एक श्रेष्ठ बची है, बाकी पूरी दुनिया का ईमान नष्ट हो चुका है—

'जसोदा आई हय। बबुली का सिखाबत-पढ़ाबत ही, पै बबुली समझदार ही। हम कहि दिहेन, बबुली त तोरे साथ न जाई। तैं आए हा त कुछ दिन रहि ले अउर जा अपने घरे-दुआरे। चार-छह रोज कहौं मजूरी कर ले त वहय पइसा

से दुइ ठे धोतिया बेसाह देबय। का करि, मइके से बिटिया छूँछय (खाली हाथ) जाए त भद्दा लागत हय।' लोक-परंपरा प्रत्येक वर्ग में जीवित है।

भगवती को दुनिया-जहान की बातें बतानेवाली बड़की फिर एक दिन यह क्या ले बैठी? आकर घुटनों में मुँह लटकाए सिकुड़कर भूमि पर एक ओर बैठ गई। भगवती जानती है, बड़की यह खामोश और निवेदक मुद्रा तभी बनाती है जब उधार पैसे चाहिए हों।

भगवती को पूछना पड़ा, 'कुछ काम है?'

और बड़की की शुष्क आँखें, जो कभी न रोने के कारण कठोर दिखती हैं, हहराकर बह चलीं। भगवती ने इस औरत को कभी रोते-टूटते नहीं देखा। इसका आदमी मरा था तब भी यह तीसरे दिन चारा काटने आ गई थी—

'सोग मनाबत घर मा बइठ रही त खई का?'

किसी तरह जी लेने की चिंता इन लोगों को शोक, भोग, भय, आनंद जैसे भावों को व्यक्त करने का भरपूर समय नहीं देती।

'क्या हुआ?' भगवती चिंतित हो उठी।

और 'कुछ नहीं हुआ' के नकार में सिर डुलाते हुए बड़की ने ध्वंस कर डाला—

'बबुलिया, एही हुलकी परय। एकर नास होय, बरबाद होइ गय।'

जब शब्दों के अर्थ खतरनाक हों तब शब्द डराते हैं। भगवती सहम गई।

तमाम अशुद्धता-अस्पृश्यता को भूल बड़की ने भगवती के पैर पकड़ लिये। उसका स्पर्श बहुत ठंडा और गिजगिजा था, 'हुजूर, कुछू गलती कही त जीभ मा कीड़ा पड़ै। या दुष्टिन पहिले कुछू ना बताइस। जब दिन चढ़िगें तब मुँह खोलिस···मलकिन साहेब, बाँभन देउता···एही बाबू के संगे रहँय मा लाज न आई···।'

भगवती का मस्तिष्क इतना सुन्न हो गया कि बात और बात की गंभीरता को समझना तो दूर, महसूस करना कठिन हो रहा था। वह द्विविधा, दुःख और दबाव से इतनी स्तब्ध थी कि बड़की को दो शब्द कहकर दिलासा नहीं दे पा रही थी। क्या कहती, 'देखो बड़की, जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ। पर हम दोनों की भलाई इसीमें है कि बात को यहीं खत्म कर दें। हजार-दो हजार जो कहो, दे दूँ। बबुली को झंझट से छुटकारा दिला दो।

बाबू! भगवती ने लगभग चीखते हुए अपने पैर छुड़ा लिये, 'पागल।'

'झूठ तोहमत लगाई, या हमार अउकात नहीं, साहेब। बबुली का बहुत मारेन-गरियायेन के तैं एतने बड़े कुल के खयाल न किहे।'

लाचारी, विषाद, क्रोध, खीझ, आग्रह, लज्जा, संकोच में भरी बड़की ऊँचे स्वर में रो रही थी।

भगवती कुछ सोच नहीं पा रही थी। ऐसा कुछ हो सकता है, उसे विश्वास नहीं हुआ। इतना भर ध्यान आया, बबुली सुंदर है। विजन वन में अपनी मस्ती और लापरवाही में खिला अनछुआ, सुंदर-सुकुमार, धवल, ताजा पुष्प।

'बड़की, तू पागल हुई है। बबुली दिन भर छुट्टा घूमती है और नरोत्तम तो यहाँ रहता ही नहीं।' भगवती को नहीं मालूम, वह यह तर्क कैसे ढूँढ़ पाई।

बड़की चरणों में लोट गई, 'किरिया (कसम) करित हयन साहेब, बाबू दुइ-चार महीना मा आबत रहत हैं। हम त अइसन-अइसन भेद या पेटे मा डारे हयन के···जिंदा रहें का हय त बहुत सहँय का परत हय। गरीब के इज्जत अउर माटी मा कउनौ फरक नहीं होय, मलकिन साहेब। दूनौ लतियाएँ जात हैं···'

दारुण संकट से गुजरी भगवती। संक्रमण काल। इस वर्ग का क्या विश्वास? उन्हें स्वाँग भरना आता है; पर बड़की का रोना स्वाँग नहीं लग रहा। इसलिए और भी कि इसे कभी रोते नहीं देखा।

किंतु नरोत्तम पर दोष···

क्या यह संभव है? कहाँ? इसी घर में। भगवती कभी कहीं जाती है, तब नरोत्तम घर में अकेला होता है। पुरुषोत्तम तो दिन भर के बाद साँझ ढले घर लौटते हैं। सबकुछ संभव है, पर प्रत्येक संभव सत्य नहीं होता। सत्य वही होता है जिसका सत्यापन हो जाए। सत्यापन कैसे होगा? नरोत्तम के आने पर उससे पूछेगी। कैसे पूछेगी? और वह क्या बताएगा? आत्मग्लानि में कहीं कुछ कर बैठे तो···नहीं।

इस दारुण संकट का निवारण क्या हो? पुरुषोत्तम से भी नहीं बताया जा सकता। कंधे लापरवाही से उचका देंगे, 'आजकल के लड़के कर क्या रहे हैं! बाप की नाक काट रहे हैं।'

भगवती का मस्तिष्क इतना सुन्न हो गया कि बात और बात की गंभीरता को समझना तो दूर, महसूस करना कठिन हो रहा था। वह द्विविधा, दुःख और दबाव से इतनी स्तब्ध थी कि बड़की को दो शब्द कहकर दिलासा नहीं दे पा रही थी। क्या कहती, 'देखो बड़की, जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ। पर हम दोनों की भलाई इसीमें है कि बात को यहीं खत्म कर दें। हजार-दो हजार जो कहो, दे दूँ। बबुली को झंझट से छुटकारा दिला दो। फिर इसका काज-ब्याह कर दो। थोड़ी-बहुत आर्थिक मदद मैं कर दूँगी।' पर गरीब की इज्जत को कागज के चंद टुकड़ों से ढाँपने के सामंती तरीके को सही

ठहराने का साहस उसमें नहीं था। भगवती इतनी स्तब्ध, संज्ञाशून्य थी कि बड़की फिर क्या और कब तक बोली, उसे नहीं मालूम। यहाँ तक कि बड़की आँसू पोंछती हुई चली गई और वह अपनी स्तब्धता व जड़ता में उसे देखती भर रही। जैसे उसका जाना और दिनों की तरह ही था।

भगवती का संसार क्षणों में बदल गया। दूषित हो गया। अमान्य हो गया। वह जैसे खुद को भी पहचान नहीं पा रही थी। बड़की से सामना करने में उसे भय होने लगा। वह उसकी नजरों से बचते हुए घर के भीतर घुसी रहती। भीतर से अनुमान लगा लेती, बड़की कंडे पाथने आई है या सूखे कंडे झौआ-टोपरी में भरकर ले जा रही है। समय की निर्बाध गतिशीलता में घटना घट चुकी थी और घटे हुए को विलोप नहीं किया जा सकता। वह समय को पकड़ नहीं सकती थी, इसलिए घटित को मिटा नहीं सकती थी। चिलचिलाती-चुनमुनाती घाम भरी दोपहरी में वह अपने शयनकक्ष में सुस्ता रही थी। कंडे बहुत एकत्र हो गए थे। बड़की और जसोदा झौआ भर-भर कंडे ढो रही थीं। चार खेप की मशक्कत के बाद वे दोनों उसके शयन कक्ष की बाहरी दीवार की टेक लेकर सुस्ताने लगीं। इस ओर मकान की परछाईं उतर आई थी और वही उनकी आड़ बनी हुई थी। माँ-बेटी स्वभावगत ऊँचे स्वर में बात किया करती हैं। इस समय भी कर रही थीं। उनका स्वर खिड़की के पार भगवती तक सरलता से पहुँच रहा था।

बात बबुली और नरोत्तम की थीं। भगवती के कान चैतन्य हो उठे—

'दीदी, तैं हमरे बिटिया का लइ डारे (बरबाद कर दिया)। कहत रहेन, हम अपने पास राखब, पै तैं नहीं माने।' जसोदा का स्वर।

'होन तोर मनुस ओही लइ डारत। एकर काज कइ देई त या जानय, एकर मनुस जानय।' बड़की का स्वर।

'काज के फेर सोचे, अबे पेट गिरबावय के सोच। मलकिन से कह त कुछू पइसा-दाम दें। ई बड़े मनई मजा मारँय मा आगे रहत हैं त पइसा दें मा काहे मुँह लुकाबत (छिपाते) हँय।'

'मलकिन का सब बताय दिहे हन। अब उँइ खुदय सोचिहैं। या घर के एहस्सान हैं, नहीं त गारी दइ-दइ के इज्जत दुइ कौड़ी के कइ देई। कंडा पाथयँ का जाघा मिली है। चारा काटि के बेंच लेइत हयन त हजार खाँड़ रुपिया बन जात हय। मलकिन साहेब अनाज-गल्ला, पुरान-धुरान कपड़ा-लत्ता देतय रहती हईं, साहेब रिन दइ देत हैं जो हम कबहूँ नहीं चुकायन। मुँह बंद है। हल्ला करबय त साहेब हियन आमय न देहैं। रोजी मारी जई।'

पुरुषोत्तम क्या चोरी-छिपे ऋण देते हैं? कितने राज खुलने बाकी हैं। भगवती को लगा, वह किसी छद्म संसार में रह रही है।

'कुछू न होइ। तैं नहीं समझते ई बड़े-मनइन के करम खोट होत हैं, पै चाहत हैं इज्जत बनी रहय। इनहीं सान-सौकत-इज्जत बड़ी पियार होत ही। मलकिन पइसा न देहँय त हम ताल ठोंक के साहेब से माँगब। अब बहुत भा। साहेब अउर साहेब के लड़िका एक जइसन हैं। साहेब हमहीं खराब किहिन, साहेब के लड़िका बबुलिया का। हम चुप न रहब।' जसोदा के स्वर में चेतावनी थी।

'तैं जसोदा, आपन राम कहानी लइ के न बइठ। तैं बरी-बियाही रहे, कोउ सक्क नहीं करिस, पै बबुली कुमार (कुआँरी) ही।'

'एहिन से कहित हयन, पइसा-दाम माँग। साहेब त हमहीं खूब दिहिन। तोरे घर के पछीती के भितिया बहय पइसा से बनी रही।'

भगवती सिहरकर उठ बैठी। ये माँ-बेटी एक-दूसरे से इतने खुलेपन के साथ बात कैसे कर पाती हैं? आखिरी हद तक व्यावहारिक।

साहेब···साहेब के लड़िका···कौन सी शतरंजी चाल है? यह कौन सी दुनिया है? कौन सी वास्तविकता? ये किस तरह की बातें हैं और भगवती खुद कहाँ है? उसे उस क्षण अपना होना भी झूठ लगने लगा। एक क्षण को उसकी नसों में झनझनाहट हुई। जाए और दोनों का झोंटा पकड़कर कहे—तुम लोग झूठ बोल रही हो। पर वह इतनी मलिन और शिथिल थी कि वास्तविक स्थिति का सीधा सामना नहीं कर सकती। ये स्त्रियाँ भी इस क्षण इतनी समर्थ तो हैं ही कि किसीको खुलेआम चुनौती देने का इनके पास कारण है। और वह तो इन्हें कुछ कहकर तमाशा ही बनेगी। भगवती ऐसी मलिन और शिथिल हो गई जैसे उसी की दुश्चरित्रता जाहिर हुई है। क्या सारे पुरुष एक जैसे होते हैं? दोहरे-तिहरे स्तर पर जीनेवाले? संबंधों में घपला करनेवाले? इनका दोमुँहापन इन्हें संत्रस्त नहीं करता? स्त्री किसी भी वर्ण, वर्ग, विचार की हो, इनके लिए एक मादा है, जिसे भोगना इनका ध्येय है। और ये पैसे का गणित कितना क्रूर और निष्ठुर बना देता है इनसान को। भगवती बड़की से पैसे की बात करने में सकुचा रही है और यहाँ ये माँ-बेटी गणित लगा रही हैं।

भगवती अपने स्थान पर जड़वत् बैठी रही। बातें···प्रतिध्वनि···घेराव···

'साहेब अउर साहेब के लड़िका एक जइसन···

'गरीब के इज्जत अउर माटी मा कउनो फरक नहीं होय···

'बबुली बाबू जइसन सुंदर लड़िका से बियाह···

'हम त अइसन-अइसन भेद या पेट मा डारे हयन···

'जा, मलकिन से पइसा माँग···'

भगवती ने किसी तरह अपने काँपते पैरों में दम भरा और उठकर खड़ी हो गई। अलमारी खोली, रुपए गिनने लगी। उसे नहीं मालूम, वह इन रुपयों से गरीब की इज्जत का मूल्यांकन कर रही है या पति-पुत्र की गलीज पर राख डाल रही है, अथवा अपनी उदारता साबित कर रही है अथवा युगों से चले आ रहे आचरण का पोषण कर रही है। □

द्वारा—श्री एम.के. मिश्र,
लक्ष्मी मार्केट, रीवा रोड,
सतना-४८५००१
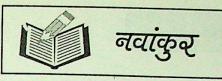
वनिता त्रिपाठी

जन्म : १ मई, १९७७।
प्रकाशन : कॉलेज पत्रिका 'यमुना' में कई रचनाएँ प्रकाशित।
'संकल्प' रचना हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा पुरस्कृत (१९९६)।
संप्रति : प्राध्यापक, दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

अर्जुन

हर जगह भीड़ धक्का-मुक्की
बहुत मारा-मारी है
सभी चिल्लाकर कह रहे हैं
कि अब मेरी बारी है।

लड़ाई न चिड़िया की है
न उसकी आँख की
लड़ाई न ईश्वर के लिए है
न अमृत घट हेतु।

लड़ाई तो गांडीव के लिए है
और है एक द्रोणाचार्य के लिए
पहला, लक्ष्य-प्राप्ति का साधन
दूसरा, लक्ष्य पथ का संस्थापक।

क्योंकि सभी यहाँ—
अर्जुन बनना चाहते हैं।

चक्रव्यूह

कुछ आशाएँ, आकांक्षाएँ,
पर अनगिनत संभावनाएँ।
हर पल बनती बदलती,
जिंदगी की परिभाषाएँ।
होनी-अनहोनी का किस्सा कहतीं
हाथों में खिंची ये रेखाएँ।

नभ छूने की चाह,
पर हाय, धरा की सीमाएँ।

एकात्म मानववाद मूलमंत्र
और व्यक्तिवाद की विषमताएँ।

फिर भी मुझसे आलिंगन करतीं,
जीवन में असीमित अभिलाषाएँ,
कहतीं—खड़ी है अँधेरे में क्यूँ,
उठ, जाग और भेद यह चक्रव्यूह।

ऊँचाई

आज मैंने एक और
ऊँचाई को छुआ
फिर एक अनमोल पाषाण
मेरे सपनों के स्वर्णिम महल में जुड़ा।
आज पास हूँ उस क्षितिज के
जिसे छूने की तमन्ना थी बरसों से।

पर पता नहीं क्यों,
रास्ता बढ़ता ही जाता है,
और हर मील का पत्थर
अगले का लालच दे जाता है।

१२३, पॉकेट-२, पश्चिम पुरी,
नई दिल्ली-११००६३

आवश्यक सूचना

प्रिय पाठको! 'नवांकुर' स्तंभ के अंतर्गत केवल पच्चीस वर्ष तक की आयु के लेखकों की ही रचनाएँ—कहानी, लघुकथा, कविता, आलेख, व्यंग्य आदि सभी विधाएँ—प्रकाशित की जाएँगी।

कृपया रचना के साथ अपनी जन्मतिथि का प्रमाणपत्र भी भेजें।

आपकी रचनाओं का स्वागत है।

कविता

बाजार

✍ प्रमोद त्रिवेदी

वस्तुएँ सजी हुई हैं बाजार में अपनी-अपनी जगह
और वस्तुएँ ही कर रही हैं—
वस्तुओं को बाजार से बाहर।
वस्तुओं की कीमत में ही नहीं,
कुछ आदमियों की कीमत में भी आ गया है
अचानक जबरदस्त उछाल!
यानी, बाजार में जिस तरह वस्तुएँ
ठीक उसी तरह आदमी भी!

आदमी की जरूरतें जैसे—नमक
होता जा रहा है आदमी की पहुँच से बाहर।
कितना कुछ है आदमी की आँखों के सामने अब
जिससे बनाया जा सकता है—सपनों को नमकीन।
वह मूर्ख भटक रहा है थोड़े से गुड़ के लिए!
और उसे बतलाई जा रही है वह दिशा
जहाँ उमड़ रहे हैं सैलाब—
शीतल पेय के!

कुछ वस्तुओं की तरह ही आदमी भी छू रहे हैं—आसमान!
और कुछ लोग हो गए हैं—बेभाव
बाजार में वस्तुओं की तरह।

वे लाए सदन में प्रस्ताव—
बाजार में उसकी फितरत के विरोध में
वे एकजुट हुए।
और उन्हें अचानक याद आया—
अपना गुजरा जमाना।
उन्होंने हालात पर आँसू बहाए,
फिर क्रोध किया
और सत्ता को घेरने की पुरजोर कोशिश की।
अंततः सभी अपने वेतन-भत्ते बढ़वाकर
प्रसन्न भाव से बाजार की ओर चल दिए।
वे कृमि की तरह पेट में पुष्ट हुए
और पूरे बाजार में फैल गए।

उन्होंने सजाया नए ढंग से अपना घर।
पकवानों की महक सजाई अपनी डॉयनिंग टेबल पर।
बाजार की चकाचौंध
और मूल्यवान् वस्तुओं के अंबार में दिखाई दिया
उन्हें, अपने देश का सर्वांगीण विकास!

आदमी नहीं,
वस्तुएँ भी पीट रही हैं अब,
आदमी को बुरी तरह!
पिटा हुआ व्यक्ति नहीं रहा बाजार में खड़ा रहने लायक।
जो कुछ फैला पड़ा है यहाँ—
वह सब फटी और मैली कमीज की हद के बाहर है।
हाँ, जिनके पास है—उर्वर दिमाग
जिनके पास है—सलीकेदार घर
उनके घर तक
अब बाजार खुद ही आ जाता है—चलकर! □

'मन्वंतर'
२०५, सेठी नगर,
उज्जैन-४५६०१०

कविताएँ

विस्मय की पोटली

✍ सीतेश आलोक
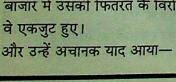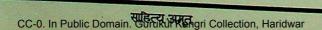
बादलों का गर्जन नहीं
बिजली की कौंध नहीं
निरंतर...
बारूदी धमाके थे
उनकी चमक थी
फूलों की घाटी पर
संगीनों का साया था।

नहीं...
कोई दानवी सावन
रक्त की वर्षा लेकर
नहीं आया था।

पाँव तले से
सरकी जमीन
और बस—
विस्मय की पोटली लिये
अपनी आँखों में
वह दूर
बहुत दूर निकल आया था।

खोज जारी है

अब तो
स्कूल जा रहा है उसका निक्का
वह गोद में था
जब वह थाने गया था
पहली बार...
रिपोर्ट लिखवाने
कि ले गया जाने कौन
उसके पाँव तले की जमीन
दोस्तों के दिल का प्यार
और पड़ोसियों की इनसानियत,
हवाओं की महक
दृष्टि से पहाड़ों की पंक्ति
केसर की क्यारियाँ
अखरोट के झुरमुट
और गगन चूमते चिनार...
मन से शांति
और सपनों का समूचा संसार।

बीच में
न जाने कितनी बार
दुहरा आया है अपनी पीड़ा...
पूछ आया है
गिड़गिड़ाकर, कि कुछ करे सरकार।

परंतु हर बार
मिला वही उत्तर
—खोज जारी है
जल्दी ही मिलेगा आपका सामान
पाँव तले की जमीन
दोस्तों का प्यार
दृष्टि के चिनार
और सपनों का संसार।

अब कभी नहीं

वह जमीन
उसे फिर कभी नहीं बुलाएगी...
और जाफरान की सुगंध
यहाँ की हवाओं में कभी नहीं आएगी।

मित्र भी
पिस्तौल तान सकते हैं
कनपटी पर,
सुख-दुःख का साथी
पड़ोसी...दुर्दिन में
दूर खड़ा मुसकरा सकता है;
यह पाठ वह कैसे पढ़ आया!
डरेगा वह मित्रता से
नए पड़ोसियों से आँखें चुराएगा
उसकी हर भयानक रात
कुछ और लंबी हो जाएगी।

सपनों के खँडहर ही तो थे
जो वह
साथ बाँधकर लाया,
पर बोझ उस खँडहर का
उसका सीना कभी नहीं सह पाया।

वसंत के
किसी सपने में भी
अब कभी
कोई कली नहीं खिल पाएगी।
किंतु व्याकुल है वह
भय है उसे यह भी
कि जाने कब
कोई नया थानेदार
उसे पहचानने से भी
कर दे इनकार...

और सुनते-सुनते
बरस-दर-बरस
उसकी पुरानी रट
उसका निक्का ही कहीं
मान न बैठे उसे
पागल...
और उसकी पीड़ा को निराधार। □

प्राचार्य आवास, इंद्रप्रस्थ कॉलेज,
दिल्ली-११००५४

फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ रेणु : ग्रामांचल के शिल्पी

✍ कुमुद शर्मा

आजादी के बाद के कथा साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु भाव, भाषा, शैली और 'ठेठ देशीयता' का विशिष्ट रंग-ढंग लिये अलग धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। मिट्टी की ऐसी सोंधी और प्रामाणिक गंध, लोकजीवन की ऐसी गहरी संपृक्ति नई कहानी आंदोलन के किसी भी लेखक में नहीं मिलती। रेणु के साहित्य को जाने बिना शायद ही किसीको हिंदी साहित्य में आजाद भारत के ग्रामीण अंचल की प्रामाणिक और जीवंत तसवीर देखने को मिले। 'धरती के धनी' और 'वसुंधरा की संपदा' के स्वामी माने जानेवाले रेणु ने आंचलिकता को उपन्यास विधा की एक स्वतंत्र वृत्ति के रूप में प्रतिष्ठापित किया और ग्रामांचल के शिल्पी के रूप में समादृत हुए। उन्होंने अपनी समूची कथा यात्रा के दौरान मानवीय संवेगों और कलात्मक संकेतों से समन्वित जिस हिंदी गद्य को रचा है उसमें पाठकीय संवेदना को झकझोर देने की असीम शक्ति निहित है।

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के असली वारिस कहे जानेवाले फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म ४ मार्च, १९२१ को बिहार के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना गाँव में हुआ और निधन १४ अप्रैल, १९७७ को हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज में हुई और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे बनारस एवं भागलपुर गए। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में आचार्य नरेंद्र देव और डॉ. लोहिया जैसे चिंतकों के संपर्क में आए, जिससे उनकी समाजवादी सोच एक व्यवस्थित आकार ग्रहण करने लगी। राष्ट्रीय स्वाधीनता लहर के चलते वे स्वतंत्रता सेनानी के रूप में सन् १९४२ के आंदोलन में कूद पड़े। स्वाधीनता आंदोलन के साथ नेपाल की सशस्त्र क्रांति में भी उन्होंने एक जूझारू योद्धा की भूमिका निभाई। इस तरह उनके हाथों में 'कलम और तलवार' दोनों रहीं।

रेणु के साहित्यिक संस्कारों को दिशा मिली सामाजिक और राजनीतिक अंतर्दृष्टि से। राजनीतिक लेख लिखते-लिखते लगभग सन् १९४५-४६ से वे साहित्यिक लेखन की ओर मुड़े। कथा साहित्य के विभिन्न आंदोलनों से परे रहकर रेणु अपना साहित्य सर्जन करते रहे। किसी भी तरह के 'लिटरेरी जारगन' में उनका विश्वास नहीं था। उन्होंने जिस स्थिति को जिया, भोगा उसपर प्रतिक्रिया की। उन्होंने लिखने की प्रक्रिया में कभी अपने को खोजा तो कभी अपने को खोजने की प्रक्रिया में लिखा। एक कलाकार की हैसियत से उनकी प्रतिबद्धता आदमी के प्रति रही।

उपन्यासकार, कथाकार और रिपोर्ताज लेखक के रूप में रेणु ने अपने ही किस्म की रचनाएँ हिंदी साहित्य को दीं। उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं : **कहानी**—'ठुमरी', 'आदिम रात की महक', 'अगिन खोर', 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप', 'अच्छे आदमी', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'भित्ति चित्र की मयूरी'। **उपन्यास**—'मैला आँचल', 'परती : परिकथा', 'जुलूस', 'दीर्घतपा', 'पलटू बाबू रोड', 'कितने चौराहे'। **रिपोर्ताज**—'ऋणजल : धनजल', 'नेपाली क्रांति कथा', 'वन तुलसी की गंध'। **निबंध**—'श्रुत-अश्रुत पूर्व'।

कथा साहित्य में रेणु को व्यापक प्रतिष्ठा सन् १९५४ में प्रकाशित 'मैला आँचल' से मिली। जिसने उन्हें प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचा दिया। उनकी यह कृति आजादी के बाद के उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी साहित्य की ठोस और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बन गई। स्व. नलिन विलोचन शर्मा ने उत्साहित होकर कहा, "मैं अपने श्रेष्ठ उपन्यासों की सूची से 'गोदान' को छोड़कर किसी भी रचना को 'मैला आँचल' के लिए अपदस्थ कर सकता हूँ।' हिंदी सिनेमा के रुपहले परदे पर आई रेणु की 'तीसरी कसम' कहानी ने उनकी लोकप्रियता को भरपूर उठान दी।

आजादी के बाद का करवट लेता हिंदुस्तानी गाँव नई आहटों की उपस्थिति दर्ज कराते हुए रेणु के उपन्यासों में उजागर हुआ। जिसमें ग्रामीण जन-जीवन की वास्तविक हलचलों, परिवर्तित स्थितियों, टकरावों, तनावों और जटिलताओं तथा विडंबनाओं के बीच पिसती मानवीय पीड़ा को एवं बनते-बिगड़ते मानवीय संबंधों को एक साथ अभिव्यक्ति मिली।

रेणु की कहानियों ने ग्रामीण आंचलिक परिवेश के साथ-साथ शहरी जीवन की विभिन्न स्थितियों को भी अपने वस्तु-विन्यास में समेटा है। 'मूल राग से आँखमिचौनी खेलती' उनकी आंचलिक कहानियों में 'देश की मिट्टी बोलती है' तो शहरी जीवन की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविक संवेदनाओं से रचना का रूपबंध तैयार हुआ।

हिंदी लेखकों पर रेणु की टिप्पणी

'सारे हिंदी लेखकों को''' गाँवों में भेजना चाहिए, एकदम! गाँवों में किसानों के साथ काम करें—और किसीको 'उससे ज्यादा कुछ' करना हो तो खान में जरा भेजें!''' ये हिंदी के लेखक, जो सब अपने को 'जनता' समझ बैठे हैं! जो सोचते हैं कि वे सबकुछ जान गए हैं, लिखने को जान गए हैं, राष्ट्रभाषा उनकी हो गई है''' और असल में इनकी गरीबी का, बौद्धिक गरीबी का हिसाब नहीं है। ये और कुछ जानते ही नहीं— धान का पेड़ होता है या पौधा— यही ये नहीं जानते।

रिपोर्ताज लेखक के रूप में भी रेणु ने उल्लेखनीय साहित्य रचा। लोकजीवन से लेकर नेपाल, बँगलादेश, पाकिस्तान युद्ध तथा दक्षिण बिहार के अभावग्रस्त क्षेत्रों से लेकर फिल्म नगरी मुंबई तक उनके रिपोर्ताज लेखन का फलक फैला हुआ है। जिनमें वर्तमान से उत्पन्न स्थिति विशेष के आयामों को चित्रात्मक शैली में अभिव्यक्ति मिली।

प्रेमचंद की महत्त्वपूर्ण कड़ी होते हुए भी रेणु उनसे भिन्न रास्ते पर चले। उनके कथा साहित्य में प्रेमचंद की तरह आदर्शवादी ढाँचे की भूमिका नहीं है, न ही आदर्श और यथार्थ के समन्वय पर बल है बल्कि उनके साहित्य में जीवन के ठोस और वास्तविक परिपेक्ष्य से साक्षात्कार कराते हुए मानवीयता की खोज का संकल्प है। रेणु अपने साहित्य में मनुष्य के भीतर से मनुष्यता की गंध को ढूँढ़ते नजर आते हैं, अमानवीय होते जा रहे समाज में मानवीय सरोकारों और मानवीय ऊर्जा की तलाश करते नजर आते हैं तथा नीरसता में सरसता की खोज करते हैं। इसी कोशिश में वे लोकजीवन और लोकसंस्कृति से जुड़ते हैं। उनका कथा साहित्य लोकजीवन की संपन्नता और सांस्कृतिक समृद्धि को साथ लेकर चलता है।

लोकभाषा का सहज और जीवंत रूप रेणु के साहित्य को प्राणवान् बना देता है। 'गप्प रसाने के भेद' लोकवार्ता के रस और किस्सागोई की शैली में लोकजीवन की समरसता, लयात्मकता और बिंबात्मकता का समावेश रेणु के गद्य की विशिष्टता है। जहाँ नाटकीयता या प्रत्यक्षीकरण का बोध चमत्कारिक ढंग से नहीं बल्कि यथार्थ का बोध देनेवाली स्थितियों के चित्रण से पैदा होता है।

हिंदी साहित्य के इस लाड़ले रचनाकार को कुछ आलोचकों ने 'अपदार्थ, अप्रतिबद्ध, व्यर्थ रोमांटिक प्राणी' प्रमाणित करने की कोशिश की। यह ठीक है कि रेणु की रचनाएँ गहरे जीवन-दर्शन के आग्रह को लेकर नहीं चलतीं और न ही निष्कर्षात्मक निदान प्रस्तुत करने में विश्वास करती हैं; लेकिन उनमें मानवीय संवेदनाओं का जो ताप है, अमानवीय होते जा रहे समाज से तथा मानवीय अंतर्द्वंद्वों-तनावों से जूझने की शक्ति और मानवीय सरोकारों को तलाशने की जो ललक है वही उसको सार्थक बनाती है।

आंचलिकता को कथा साहित्य की विशिष्टता के रूप में प्रतिष्ठापित करनेवाले रेणु ने उपन्यास के विकास को नई पगडंडी पर डालकर ऐतिहासिक महत्त्व का काम किया है। □

एफ-९ जी, मुनीरका, डी.डी.ए. फ्लैट, नई दिल्ली-११००६७

जग बीती

✍ चंद्रशेखर दुबे

रद्दी

उस सरस्वती-पुत्र को लक्ष्मी-पुत्र के द्वार की कॉलबेल बजाते देख शंकर-पार्वती तमाशा देखने लगे।

द्वार खुला। सामने निरीह लेखक को देखकर प्रकाशकजी की पेशानी पर बल पड़ गए। त्योरियाँ चढ़ गईं। उन्होंने तल्ख स्वर में पूछा, ''कहिए, कैसे तकलीफ की?''

''मैं अपनी पांडुलिपि का आपको स्मरण कराने आया हूँ।''

''हमें स्मरण है।''

''पाँच वर्षों से पांडुलिपि आपके पास पड़ी है।''

''हमें पता है।''

''उसका उद्धार कब होगा?''

''उद्धार नहीं होगा। पांडुलिपि आप ले जाइए।''

प्रकाशकजी उठने लगे तो लेखकजी ने दयनीय मुद्रा में कहा, ''नहीं-नहीं, लौटाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप अपने पास ही रखिए।''

''ऐसे अटाले के लिए मेरे पास जगह नहीं है।''

''यह अटाला नहीं है, श्रीमान, मेरी दीर्घ साधना का फल है।''

''इस फल का अचार आप अपने घर पर डालिए। मैं ला रहा हूँ आपका अटाला।''

प्रकाशकजी फिर उठने को हुए तो लेखकजी ने उनका हाथ थामकर उन्हें फिर से वहीं बैठा दिया। वे स्वयं भी प्रकाशकजी के कहे बिना ही अब उनके पास के सोफे पर बैठ गए।

अब लेखकजी ने विनम्र स्वर में पूछा, ''मुझसे ऐसी नाराजी क्यों हो गई?''

''कहाँ हुई नाराजी?''

''तो फिर मेरी कृति का उद्धार कीजिए। आपने आश्वासन दिया था।''

''आश्वासन तो मैं अभी भी दे सकता हूँ।''

''तो फिर समस्या क्या है?''

''समस्या आपको कितनी बार तो समझा चुका हूँ! मगर आप समझते ही नहीं तो मैं क्या करूँ! अब आप फिर कान खोलकर सुन लीजिए, आप आर्थिक सहयोग देंगे, तभी आपका अटाला मैं छापूँगा। समझ गए?''

''समझ गया।''

''बस, तो निकालिए आर्थिक सहयोग।''

''आर्थिक सहयोग मेरे बूते की बात नहीं है। मैं रचनात्मक सहयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं…''

प्रकाशकजी ने लेखकजी की बात काटते हुए कहा, ''तो तशरीफ ले जाइए, और दुबारा यहाँ आने की तकलीफ न कीजिएगा।''

लेखकजी गिड़गिड़ाए, ''मेरी सुनिए तो!''

मगर प्रकाशकजी ने उनकी एक नहीं सुनी। वे दनदनाते हुए भीतर गए और लेखकजी की धूल सनी पांडुलिपि लाकर जूते की तरह उनकी ओर फेंक दी।

इस मर्मांतक आघात से लेखकजी हक्का-बक्का रह गए। प्रकाशकजी द्वार की ओर संकेत करते हुए बोले, ''अब पधारिए यहाँ से। मेरा वक्त बरबाद मत कीजिए।''

सौ जूते खाए व्यक्ति की तरह लेखकजी अपनी पांडुलिपि उठाकर चल पड़े। प्रकाशकजी ने भड़ाक से द्वार बंद करते हुए कहा, ''उल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए।''

इस अपमान से क्षुब्ध लेखकजी बगल में पांडुलिपि दबाए चल पड़े। सामने एक पनवाड़ी की दुकान देखकर उन्होंने एक सिगरेट खरीदी। सिगरेट को माचिस की तीली रगड़ी। मगर तभी उन्हें जाने क्या सूझी कि सिगरेट सुलगाने के बजाय उन्होंने वह तीली अपनी पांडुलिपि से छुआ दी।

पनवाड़ी की नजर पड़ी तो उसने वह पुलिंदा लेखकजी से छीनते हुए कहा, ''आप भी अजीब आदमी हैं, रद्दी को जलाने लगे! हमें क्यों नहीं दे दी? पान बाँधने के काम आती। हम सिगरेट आपको मुफ्त में दे देते।''

शंकर-पार्वती मुसकराते हुए आगे बढ़ गए।

प्रैक्टिकल

एक दफ्तर में से गुजरते हुए शंकर-पार्वती साहब के कक्ष में ठिठक गए।

साहब ने अपनी पी.ए. मिस से पूछा, ''तो मिस आनंद, आप चल रही हैं न दिल्ली के सेमिनार में?''

''सर, आपका आदेश है तो चली चलूँगी।''

''गुड!''

''मगर सर, मैं आपके साथ होटल में नहीं ठहर पाऊँगी।''

''क्यों?''

''क्योंकि मेरे साथ मेरी मम्मी भी रहेंगी, सर। हम दोनों अपने एक रिश्तेदार के यहाँ ठहर जाएँगी।''

''व्हाट नॉनसेंस! सेमिनार में मम्मी को साथ ले जाने की क्या जरूरत है?''

''सर, बात यह है कि मेरी मम्मी थोड़ी कंजरवेटिव नेचर की हैं। वे मुझे अकेली कहीं जाने नहीं देती हैं।''

''नौकरी करने आने देती हैं?''

''नौकरी की भी उन्होंने मजबूरी में ही इजाजत दी है।''

''तो फिर उन्हें समझाइए कि सेमिनार भी नौकरी की मजबूरी में ही है।''

"यह बात उन्हें समझाना मुश्किल है, सर।"

"मगर आप तो समझ रही हैं न? बी प्रैक्टिकल।"

मिस आनंद ने साहब की ओर सहमतिसूचक दृष्टि से देखा।

पार्वतीजी ने शंकरजी से पूछा, "ये प्रैक्टिकल क्या होता है?"

शंकरजी ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया, "गणेश से पूछना, वह बहुभाषाविद् है।"

ब्लैकमेल

हमेशा की तरह परदुःख-कातर भगवान् शंकर एवं पार्वतीजी अपने वाहन नंदी पर सवार होकर जग के हाल-चाल जानने के लिए अपने धाम कैलास से निकले। जगदंबा शंकरजी की वाम जंघा पर विराजीं। वे इस ढंग से चले कि वे तो जग को देखें, मगर जग उन्हें न देख पाए।

कर कूच, कर मुकाम वे जंबूद्वीप, जिसे अब कलिकाल में 'भारत' उर्फ 'इंडिया' कहते हैं, के एक महानगर में आए। इस महानगर की बहुमंजिली इमारत के एक फ्लैट में से वे गुजरे।

उस फ्लैट के एक कमरे में एक सुदर्शन युवक को टेबल पर खड़े होकर, सीलिंग फैन में रस्सी बाँधकर फाँसी का फंदा बनाते उन्होंने देखा। भगवती को आश्चर्य हुआ कि यह सुदर्शन, स्वस्थ युवक फाँसी का फंदा किसके लिए बना रहा है।

उस युवक ने जब वह फंदा अपने गले में फँसाया तो भगवती ने आर्त स्वर में भोलेनाथ से कहा, "स्वामी, इस युवक को बचाइए। यह मूर्ख इस आयु में मरने को क्यों तत्पर हो रहा है? इसे ऐसा क्या दुःख है?"

"इस दुनिया में तो पग-पग पर दुःखी-ही-दुःखी हैं। तुम यह चिंता छोड़ो।" भोलेनाथ ने नेत्रों को बंद करते हुए कहा।

भगवती ने नंदी को रुकने का संकेत करते हुए कहा, "नहीं, प्रभु! इस युवक को तो आपको बचाना ही होगा। मुझे इसपर दया आ रही है।"

मगर भोलेनाथ टस से मस नहीं हुए। उन्होंने नंदी को आगे बढ़ने का संकेत कर दिया। यह देख भगवती को क्रोध आ गया। वे शिवजी की जंघा पर से उतरकर लुप्त हो गईं। शहर की मक्खी का रूप धारण कर वे शंकरजी की जटा में घुस गईं।

अपनी जंघा सूनी पाकर शंकरजी विलाप करने लगे, "कहाँ गई? भागवान, इस युवक के लिए मुझे क्यों तड़पा रही हो? प्राणप्रिये, शीघ्र प्रकट हो जाओ।"

मगर भगवती प्रकट नहीं हुईं। वे शंकरजी की जटा में ही छुपी रहीं।

उनके विरह में शंकरजी डमरू एवं तुंबा फोड़ते हुए करुण क्रंदन करने लगे, "प्राणप्रिये, आ जाओ, विरहाग्नि में मत जलाओ।"

मगर भगवती फिर भी प्रकट नहीं हुईं। शंकरजी ने चारों ओर नजर दौड़ाई, मगर वे कहीं नजर नहीं आईं। उन्होंने शिखरासीन चंद्र से पूछा, जटा में रमण कर रही जाह्नवी से पूछा, गले में शोभित व्याल से पूछा; मगर किसीने भी जगदंबा का पता नहीं दिया। सभी मौन रहे।

शंकरजी ने पराजय स्वीकार करते हुए कहा, "भागवान, हठ त्यागो। मैं इस युवक को बचा लूँगा।"

भगवती जटा में से फौरन प्रकट होकर शिवजी की वाम जंघा पर आ विराजीं और बोलीं, "प्राणनाथ, जल्दी कीजिए, नहीं तो उस युवक के प्राण-पखेरू उड़ जाएँगे। उसने टेबल लात मारकर हटा दी है।"

शिवजी ने अपने वादे के अनुरूप युवक को बचा लिया। उन्होंने फाँसी के फंदे की रस्सी अपने त्रिशूल से काट दी।

युवक धड़ाम से फर्श पर आ गिरा।

'धड़ाम' के इस स्वर से चौंककर युवक के पिताजी उस कमरे में आए। अपने बेटे को फर्श पर पड़ा देख वे डरे कि यह क्या हो गया। बेटे के गले में रस्सी का फंदा देख उनका माथा ठनका। किंतु अपने बेटे की खुली आँखें और उसे पलक झपकाते देख वे आश्वस्त हुए। तभी उनकी नजर सीलिंग फैन पर बँधे रस्सी के फंदे पर पड़ी तो वे सारी बात समझ गए।

उन्होंने सख्त लहजे में बेटे से पूछा, "क्यों रे, यह नाटक क्यों किया? मुझे ब्लैकमेल करने के लिए?"

बेटा उठते हुए बोला, "यह नाटक नहीं था, पापा।"

"तो फिर क्या था?"

"मैं आत्महत्या कर रहा था। मगर इस रस्सी ने धोखा दे दिया। नहीं तो आपको यहाँ मेरी लाश झूलती हुई मिलती।"

"मरना ही था तो पक्की रस्सी मुझसे ले लेता।"

बेटे ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वह आड़ी पड़ी कुरसी को सीधी करने लगा।

उसके पिताजी गरजे, "नालायक! परीक्षा में फेल होता है और मरने का नाटक करता है! हमें तूने बुद्धू समझ रखा है? हम तेरी चालें समझते हैं।"

बेटे ने अब मुँह खोला, "पापा, इसमें मेरी कोई चाल नहीं थी। आत्मग्लानि के कारण मैं सच में मरना चाहता था।"

"मरकर हमें फँसाना चाहता था?" पापा ने चतुर वकील की तरह जिरह की।

बेटे ने कैफियत दी, "नहीं, पापा, मैंने अपने पत्र में सारी बात स्पष्ट लिख दी थी। कह दिया था कि आत्महत्या के लिए मैं ही दोषी हूँ। आप मेरा पत्र देख लीजिए।" बेटे ने टेबल पर रखा पत्र अपने पिता की ओर बढ़ाते हुए कहा, "देखिए।"

पापा ने पत्र पढ़ने के बाद उसे उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "इसमें इतना और लिख कि मेरी मम्मी, पापा एवं परिवार के अन्य किसीका भी इसमें कोई दोष नहीं है।"

"लिखा तो है, पापा, कि केवल मेरा दोष है।"

"नहीं, उससे क्या होता है! सारी बातें स्पष्ट कर। तुझे इतना पढ़ाया, मगर यह सड़ा मसौदा भी बनाना नहीं आया!"

यह देख भगवती बोलीं, "चलो, प्राणनाथ!" ☐

२४२, तिलक नगर,
इंदौर-४५२००१

आकाश प्रिया के नाम पाती

✍ श्रीराम परिहार

प्रिय पृथ्वी,

समझ में नहीं आता कि मैं अपनी कुशल लिखूँ या तुम्हारा कुशल-क्षेम जानूँ। मैं आकाश की संज्ञा धारण कर तुम्हारे ओर-छोर व्याप्त हूँ। मेरे फैलाव से मैं खुद विस्मित हूँ। अनंत उल्का पिंडों को मैं रोज टूटते-गिरते-मिटते देखता हूँ। मेरा खालीपन ही कभी-कभी मेरा विक्षोभ बन जाता है। कभी चाँदनी से नहाई तुम्हारे-मेरे बीच की राह दूधिया बन खिल उठती है। कभी टिमटिमाते तारों की नन्ही हथेलियों से आकांक्षाएँ बुलाती हैं। कभी बादलों से मेह बरसता है। कभी बिजुरी की कौंध में मेरी धड़कन भी सहम जाती है। आग और पानी के इस खेल में मैं मिटता हूँ, लेकिन इस खेल में बरसती जल-बिंदुओं में हे पृथ्वी! तुम्हारी जिजीविषा पलती है। तुम्हारे-मेरे बीच जो प्रकृति-पुरुष के रिश्ते हैं, उनमें महनीय सेतु-बंधन का काम बादर-बिजुरी ही करते हैं। पृथ्वी! इस अनंत-अनंत ब्रह्मांड में तुम्हारा-मेरा अस्तित्व लावण्यमय इसलिए है कि तुम्हारी कोख से और मेरे स्वेद से जीवन की आँखें खुलती हैं।

धरती, तुम बहुत सुंदर हो। सुंदर इसलिए हो कि तुमपर जीवन है। तुम धरित्री हो। तुम जीवन को धारण करती हो। अखिल ब्रह्मांड में शायद जीवन की चहक सिर्फ तुम्हें और तुम्हें मिली है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। इतनी महत्त्वपूर्ण कि इससे तुम्हारी अलग और सुंदर पहचान है। इस जीवन से दूसरे ग्रह वंचित हैं। जीवन की चाह में दूसरे ग्रह आकुल-व्याकुल हैं। लेकिन किसीके पास हवा-पानी का संसार नहीं। असंख्य-असंख्य हरे-हरे तंतुओं ने तुम्हें खुशी दी है। असंख्य-असंख्य पंखों ने आकांक्षाओं को उड़ान दी है। असंख्य-असंख्य पखेरुओं के पंखों पर तुम शक्ति-स्वरूपा बनकर शून्य-रेखा खींचती हो, तो मेरा नीला मौन कलरव में बदल जाता है। तब मुझे लगता है, तुम अपनी संतानों के साथ कितनी संपन्न हो और मैं इस शून्य नीलिमा के एकांत में कितना दरिद्र, कितना तनहा! तुम्हारा लमहा-लमहा संगीत और उछाह से भरा है। मेरे पास युगों की चुप्पी है। युग-युग की विवश वाक्हीनता है।

वसुंधरा तुम्हारे पास कितने रंग हैं। एक-एक रंग सृष्टि का अनोखा उल्लास और दर्द समेटे हुए है। वैसे सृष्टि के मूल में तो आनंद ही है; लेकिन कहीं-कहीं संधियों में, ओट में दर्द दुबका बैठा है। कहा जाता है, सूर्य रंगों का झरना है। वह प्रकाश-पाझर है। लेकिन यदि उसे एकटक देखें तो दृष्टि में काला धब्बा पड़ जाता है। सूर्य से आँख मिलाने की शक्ति की अपरिमितता किसके पास है? संपाती के बेटों के पास भी नहीं है। सूर्य के ये रंग तुम्हारे बिना चटकहीन हैं। सूर्य जब तक तुम्हारे अंगों का सान्निध्य नहीं पा जाता, उसके रंग खिलते ही नहीं। धरती! तुम नहीं जानतीं, ये रंग कितनी उजास और कितनी कालिमा को अपने में पचाकर कहीं खुशी, कहीं प्रीत और कहीं शुचिता के बिंब ग्रहण करते हैं। ये रंग जब झगुलिया में, मोरपंखों में और करील के पत्तों पर द्वापर की कथा लिखते हैं तो स्वर्ग की सारी कथाएँ फीकी लगने लगती हैं।

धरती! तुम्हारे पास एक प्रतीक्षारत धनुष है। वह धनुष त्रेता की रह-रह याद दिलाता है। सहस्रशीर्ष पुरुष उस धनुष को काँधे पर धारण कर नंगे पाँव चलने लगता है। तब पृथ्वी, तुम्हें कैसा लगता होगा? क्या उस अनुभव को अभिव्यक्त करनेवाली कोई वाणी तुम्हारे पास है? हे जलौघमग्ना धरा! तुम्हारे पास ऋषि है—मार्कंडेय। तुम्हारे आँचल में एक नदी है—नर्मदा। कहते हैं—ये प्रलय में भी बचे रहते हैं। प्रलय काल में स्रष्टा के पाँव में एक धवल रेखा-सी रेवा बची रहती है। मेकलसुता का जल अमृत है। उसका दर्शन स्वयं कल्याण है। हे महाभाग पृथ्वी! तुम्हारे पास एक हिमालय है। एक संस्कृति-स्रोतस्विनी नदी गंगा है। इनसे तुम्हारी पहचान भी है, शोभा भी है; क्योंकि इन्होंने तुमपर स्थित-जीवन को वस्त्र पहनाए हैं।

हे रसवंती वसुधा! भागीरथी मुझे करुणा की धारा-सी लगती है और नर्मदा जीवन का शाश्वत प्रवाह। नर्मदा साधना की नदी है और गंगा सिद्धि की। गंगा के बिंदु-बिंदु में करुणा का शिवत्व है। उसका जन्म ही कल्याण के लिए हुआ। उद्धार उसके मूल में है। करुणा जब सिद्ध हो जाती है तब वह शिवत्व से बूँद-बूँद झरती है, धारा बन बहती है। तीर्थ बनाती है। घाट-घाट उत्सव रचती है। मिट्टी में महनीयता बनकर विहँसती है। जीवन में राग बन फैलती है। पत्र-पत्र पर हरियाली के छंद लिखती है। यह करुणा जीवन का शृंगार है। और हे नवलवसना धरा! गंगा तुम्हारा शृंगार है, सात्त्विक शृंगार। करुणा-कलित और ललित रूप का वरदान। इस वरदान से तुम धन्य हो। तुम अपनी विनम्रता में गर्व कर सकती हो, क्योंकि करुणा की नदी केवल तुम्हें मिली है।

करुणा आनंद की भगिनी है। करुणाविहीन आनंद सर्जन नहीं कर सकता। हे भूमि! तुम्हारे ऊपर जो हिमालय है, वह आनंद की अद्भुत और अनुपम उछाल है। उसके हिमाच्छादित शिखर आनंद के ऊर्ध्वगामी सर्ग हैं। इन्हीं में से देवसरि गंगा करुणा की धारा बनकर फूटती है। आनंद ऊर्ध्वगामी है तो करुणा निम्नगामी। वह सूखे कोनों और रूखे अधरों तक जाती है। वह सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार करती है। वह प्यासे कंठों की तृप्ति बनती है। वह सूखे खेतों का संस्कार बनती है।

यह करुणा ही बड़ी चीज है, जो आनंद को सर्जन का अर्थ देती है।

हे मानव माता! जब कभी सतपुड़ा की चोटियों के बीच बसे गाँवों में चाँदनी झरती है, रात-रात भर कर्मा नृत्य की गूँज पहाड़ों पर बरसती रहती है। देह-भंगिमाओं में आम्र बौर की गंध फूटने लगती है। उल्लास नयनों में लाज और अधरों पर गीत लिखता है। मादल की थापों और वंशी के स्वरों के साथ सरई के पत्ते-पत्ते जीवन का राग गाते हैं। जीवन की मद्धिम रोशनी में आनंद और करुणा के संवाद चलते हैं। रात महारास में बदल जाती है। जानती हो मानुष माता! मैं सतपुड़ा की उन्हीं चोटियों पर बैठा-बैठा तुम्हारे बेटों का यह संस्कार उत्सव देखा करता हूँ। धरती! तू बड़भागिनी है कि तुझे हजार-हजार विविधताओं का संसार मिला। तू भाग्यवती इसलिए भी है कि तेरे घर में एक मोरपंख है, एक वंशी है, एक यमुना है, एक बावरी-सी छोरी राधा है, एक माँ यशोदा है, बाबा नंद हैं। एक बरसाना गाँव है। एक भूमि है—ब्रज। कुल मिलाकर एक नटनागर है, जो तुझे निरंतर-निरंतर लीलाभूमि का मान दिए रहता है।

सागर मंथन में अमृत निकला। देवता और दानव दोनों उसे प्राप्त करने हेतु झपटे। दानवों से बचाने के लिए इंद्र का पुत्र जयंत उस अमृत कलश को ले भागा। उसने जहाँ-जहाँ वह अमृत कुंभ रखा, वे स्थान विशिष्ट हो गए। आज देव और दानव नहीं रहे। ये प्रवृत्तियों के रूप में तुम्हारे बेटों में मौजूद हैं। लेकिन तुम्हारे सपूतों की आनंदकामी स्फुरणता का चमत्कार यह है कि उन चारों स्थानों पर कुंभ पर्व में जल की लहरों पर प्रार्थनाएँ उकेरी जाने लगीं। यह करुणा की नदी में डूबकर आनंद की प्राप्ति का सहज प्रयास है। वे मंत्रस्रष्टा ऋषि, जिन्होंने चारों पुरुषार्थों को गाया और पाया, इन कुंभ पर्वों में संस्कृति के भीतर स्थित मनुष्य को दुलारते प्रतीत होते हैं। हे धरती! वायु मेरा अंश है। शब्द की उत्पत्ति में मेरी सहभागिता है। जल मेरे माध्यम से बनता-बरसता है। आग और पानी का खेल मेरे भीतर भी है। लेकिन ये सब मिलकर तेरे आँगन की मिट्टी से जो जीव गढ़ते हैं, उसकी लीला पर मेरी सौ-सौ नीलिमा न्योछावर हैं। तेरे जीवों की श्यामलता के अर्थ बहुत गहरे हैं।

हे माधवी वसुधा! भूमा ने तुझे मधुमय वरदान दिया है। तुझे अमृत संतानें दी हैं। तेरा यह विपुल से भरा भंडार आक्षितिज फैला है। तू जननी है। करुणा की धारा से तू नम है। सुना है कि पुत्र कुपुत्र हो जाता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। तब हे प्रिय पृथ्वी! मैं पूछना चाहता हूँ, यह भूकंप का सर्वनाशी कृत्य तुमसे क्योंकर होता है? क्यों? तुम्हारी ही संतानों की इस तरह निर्मम इति? तुम्हारे ही जायों द्वारा निर्मित संसार का इस तरह विध्वंस? गंगा की धारा तो अभी सूखी नहीं है, तब क्या एक माता की करुणा निःशेष हो गई? वे बेटे, जो हमेशा के लिए सो गए, फिर जन्म लेंगे। जो गिर गए, वे फिर से खड़े होंगे। उनके घर फिर से बनेंगे। जीवन फिर रोशन पंखों से उड़ान भरेगा। सबकुछ शायद ठीक हो जाएगा, लेकिन पृथ्वी! क्या मन के घाव कभी भर पाएँगे? ममता के आँसू क्या कभी पोंछे जा सकेंगे?

मैं उत्तर चाहता हूँ, मेरी प्राण-वल्लभा! तुम्हारी पाती की प्रतीक्षा है।

तुम्हारा
आकाश

□

आजाद नगर,
खंडवा-४५०००१

मच्छर का महत्त्व

✍ गोपाल चतुर्वेदी

इधर हम मक्खी, मच्छर, गरमी से बहुत परेशान हैं। मित्र मुरारी हमें सांत्वना देते हैं कि कोई घबराने की बात नहीं है। हमें उतावला नहीं होना चाहिए। गंदगी के लिए नगर निगम को कोसना गलत है। कभी वह कीट-निरोधक छिड़काव करवाती थी; जिस अधिकारी की इस मच्छर-संहारक कार्यक्रम में मुख्य भूमिका थी, उसे दिल का दौरा पड़ गया। जैसे हर दीवार से एक-न-एक छिपकली चिपकी है वैसे ही भारत में हर गली-कूचे, नुक्कड़-मोड़, गाँव-शहर, मेले-भीड़, सराय-होटल, दफ्तर-घर में एक-न-एक ज्योतिषी मौजूद है। उसके उत्तराधिकारी को दफ्तर के ज्योतिषी ने सलाह दी कि जीव-हत्या पाप है। इसका नतीजा खतरनाक हो सकता है—'आपके पहले के अफसर अभी भी अस्पताल में हैं।'

उन्होंने इस चेतावनी की ओर ध्यान नहीं दिया। वह मच्छर मार दवा खरीदकर अपने मच्छर-मक्खी उन्मूलन के अभियान में जी-जान से जुटे रहे। उन्होंने नालियाँ साफ करवाईं, कूड़े के ढेर हटवाए। नगर निगम के चुने हुए पार्षदों को लगा कि अन्याय हो रहा है। यह भटका अफसर लोकप्रियता के चक्कर में भ्रष्टाचार पर आमादा है। अभी तक दवाओं के सिर्फ बिल आते थे। फाइलों में शहर के हर वार्ड में नालियाँ-कूड़ा साफ किया जाता, दवाएँ छिड़की जातीं, मजदूरों का भुगतान होता। मच्छर, अफसर, पार्षद, सप्लायर सब अमन-चैन से मौज उड़ाते। यह सिरफिरा सिर्फ फाइल का पेट भरने के बजाय जमीनी कारवाई कर रहा है। कमजोर की हाय में बड़ा जोर होता है। अगर मच्छरों ने शाप दिया तो नगर निगम की खैर नहीं है। पार्षदों को लगा कि इस अफसर का कबाड़ा हुआ भी तो यह किसी और विभाग में नया अवतार लेकर उसकी रेढ़ पीटेगा; पर उनका भविष्य तो इसकी नगर और मच्छर विरोधी हरकतों से पूरी तरह अंधकारमय हो जाएगा।

अगर मच्छर वाकई मरे तो वह अगले चुनाव में किसकी सफाई और सफाए का वादा करेंगे। जनता को मच्छर-मक्खी की आदत पड़ चुकी है। मच्छरों के अभाव में कौन लोरी गाकर शहर की अधिसंख्य आबादी को मीठी नींद सुलाएगा। भिन-भिन के उसके मधुर मनुहार के बगैर भोर में कैसे उनकी आँख खुलेगी? मच्छर के सतत भिनभिनाते संगीत के बिना जीवन कितना सूना होगा!

कल्पना कीजिए कि कोई प्रशंसक महान् कवि आततायी के दर्शनार्थ उनके घर हाजिर हुआ है। उसने वर्षों से आततायी का नाम सुना है। उनके राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों की खबरें पढ़ी हैं, बस उनकी कविता न पढ़ी है, न सुनी है। वह आततायी के निवास के अपरिचित प्रतीक्षा-कक्ष में उनके आगमन का इंतजार कर रहा है। पर इस अनजान स्थान में वह 'नर्वस' नहीं है। घर और घर का मालिक अपरिचित है तो क्या हुआ, माहौल तो जाना-पहचाना है। दीवार पर छिपकलियाँ अठखेलियाँ कर रही हैं, जैसे यह ईंट-पत्थर की दीवार दीवार न होकर नीर का प्राचीर हो और उसमें सुंदरियाँ इठलाएँ। वह कवि के घर में है। वहाँ चारों ओर कविता बिखरी है। उसे भी छूत का रोग लगता है। कान में मच्छर भिनभिनाते हैं और वह गुनगुना उठता है—

> दीवार पर
> छिपकली
> या कोई
> सौंदर्य प्रतियोगिता जहाँ
> 'पूल' के जल में
> बलखाती
> अर्धनग्न सुंदरी!

आततायी इस दौरान पधारते हैं। कविता का अंतिम शब्द उनके कानों को आह्लादित करता है। प्रशंसक के अंतर में जैसे किसी मंगलोत्सव की घंटियाँ बज उठती हैं, जब आततायी उनसे अपनी रचना सुनाने का अनुरोध करते हैं। प्रशंसक सोचता है कि विलक्षण पारखी है यह व्यक्ति! खत का मजमून भाँप लेता है लिफाफा देखकर। वह जब तक 'सौंदर्य प्रतियोगिता' तक पहुँचता है, आततायी शून्य में हाथ तानकर मुट्ठी बंद करते हैं। उसके 'अर्धनग्न' कहते-कहते आततायी के दोनों हाथ हवा में लहराते हैं और नारी-पुरुष से अन्य किन्नर-ताकत के अंदाज और ताली की आवाज के साथ बंद होते हैं।

प्रशंसक भयभीत होकर प्रश्न करता है, 'मान्यवर! मुझसे कौन ऐसी गलती हो गई, जो क्रोध में आप बाँहें फड़फड़ाने और ताली बजाने लगे?'

आततायी उसे अभय की मुद्रा में आश्वस्त करते हैं, 'तुम चिंता न करो, वत्स! मैं तो मच्छर मार रहा था।' प्रशंसक के मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। आधुनिक कविता के कितने विविध आयाम और स्तर हैं। एक स्तर पर वह जनता और वास्तविकता से इस हद तक जुड़ी है कि कोई छिपकली तक पर प्रभावी कविता लिख सकता है, दूसरे पर वह संसार के समस्त दर्द और चिंतन को अपने में समेट कह उठती है—

सबकुछ गोल है—
धरती, प्लेट, क्रिकेट की गेंद
ऑमलेट, सेब, अमरूद
आओ! हम यह विचार करें
कि हम गोल क्यों नहीं हैं!

प्रशंसक आनंद से झूम उठा। आततायी को मच्छर मारते-मारते कविता आ गई थी। उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ा। पर यही तो आधुनिक कविता की महानता है। वह गूँगे का गुड़ है। कौन उसका अर्थ या तुक जानने का दुस्साहस कर अपने आधुनिक न होने का खतरा उठाए। प्रशंसक आततायी से भेंट कर इस विश्वास के साथ लौटा कि उसमें भी महानता के कीटाणु हैं। वह भी मच्छर मारता है, आततायी भी। दरअसल, आततायी ने उन्हें चर्चा के दौरान ज्ञान दिया था कि उनकी 'मुट्ठी और ताली तकनीक' से सिर्फ मच्छर ही नहीं, मक्खी भी मारी जा सकती है, 'इस तकनीक में एक लय है। इस लय के कारण मक्खी-मच्छर के संहार में थकान नहीं आती है। सर्जन और जीवन बेतुके हैं। इसमें लय की जरूरत नहीं है। हमारी कविता पूरी तरह लय-विरोधी होने के कारण जीवन से जुड़ी है।'

प्रशंसक हर जगह अपने आराध्य आततायी की बात दोहराता है कि मच्छर और मक्खी जीवन में वह लय भर रहे हैं जो तथाकथित आधुनिक कविता ने छीन ली है। 'मुट्ठी और ताली तकनीक' से मच्छर मारते-मारते उसने भी सैकड़ों कविताएँ लिखी हैं। उन्हें सुनाने के लिए उसे समान रुचि के कवि-श्रोता की प्रतीक्षा है।

कविता के अलावा भी मच्छर का साहित्य में उल्लेखनीय योगदान है। कई ऐसे लेखक हैं जो नाराज मच्छर से होते हैं, गुस्सा पाठकों पर निकालते हैं। वह मच्छर के सम्मुख मजबूर हैं। ऐसा नहीं कि वह आततायी की मुट्ठी और ताली तकनीक में माहिर नहीं हैं। पर आज के मच्छर चालाक हैं। तिल भर जगह मिली नहीं कि मच्छर निकल बचते हैं और आततायी तथा उनके साथी लेखक मुट्ठी बाँधते और ताली बजाते रह जाते हैं। यों मच्छर मारने के नाम पर ताली बजाने से लेखकों को कोई परहेज नहीं है। लेखकों को आत्ममुग्ध होते देर नहीं लगती है। आजकल प्रगतिशील लेखकों-आलोचकों का बड़ा पालतू रिश्ता है। यह कहना कठिन है कि कौन किसको पालता है। पर प्रतिक्रिया के लिहाज से प्रगतिशील घोर प्रतिक्रियावादी हैं। अपने लेखक की किताब प्रेस में हो तब से उसपर प्रतिक्रिया आनी शुरू हो जाती है। लेखक-आलोचक शीशे में अपने को निहार-निहारकर ताली बजाते हैं। उन्हें विश्वास है कि उनकी ताली से मच्छर मरें न मरें, साहित्य और समाज में क्रांति जरूर आएगी। उन्होंने रात-दिन एक करके यह क्रांतिकारी कालजयी कृति रची है। उन्हें रात-दिन रचना के कारण नहीं, मच्छरों की वजह से एक करना पड़ा। मच्छर समझदार हैं। वह कान-नाक में घुस, भिन-भिनकर आदमी का दिमाग भन्नाते हैं। उसे काटने की गलती नहीं करते हैं। वह जानते हैं कि आदमी का जहर साँप के विष से कहीं अधिक जहरीला है। लेखक क्या करें। सो नहीं पाते तो अपने मच्छर साहित्य से पाठकों से बदला लेते हैं। उन्हें विश्वास है कि मच्छर नश्वर है, पर मच्छर साहित्य अमर है।

> **ऐसे क्षणभंगुर मच्छर के विनाश के लिए इतने नियोजित और खर्चीले अभियान की क्या दरकार है? यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कोई तोप के गोले से मक्खी का शिकार करे। निगम पार्षदों और कर्मचारियों को मच्छर और गंदगी का सफाया करनेवाला यह नामाकूल अफसर नगर और देश का दुश्मन लगा। उन्हें आशंका हुई कि मच्छरों के खात्मे से नगर की पहचान को खतरा है।**

पार्षदों को साहित्य और मच्छर के रिश्ते का पता नहीं है; पर इतना वे जरूर जानते हैं कि यदि मच्छर-हनन इसी रफ्तार से चलता रहा तो जीवन अर्थहीन हो जाएगा। बिल के साथ दवाएँ आईं तो 'कमीशन' का क्या होगा। नगर निगम पर निर्भर दुकानदार का व्यापार चौपट होगा, सो अलग। इनसानों के साथ कितना अन्याय है कि इस भीषण लू-गरमी में उन्हें काम करना पड़े। वे दिन कितने अच्छे थे, जब वह सिर्फ कागजों पर काम करते और भुगतान अधिकारी-पार्षद की मिलीभगत से बँट जाता। बेरोजगारी आशा का वह अध्याय है जब बेरोजगार रोजगार की उम्मीद में जीता है। काम पाकर उसे निराशा होती है। इतना श्रम-परिश्रम भी किया और फिर भी बरहाल ही रहे। पार्षदों को हर दुःखी जन से हमदर्दी है। उनकी संवेदना के दायरे में इनसान ही नहीं, मक्खी-मच्छर भी आते हैं। एक अहिंसक देश में हिंसा का ऐसा वातावरण बनाना कहाँ तक उचित है। यों भी मच्छरों की जिंदगी ही कितनी है। बेचारे जन्म लेते हैं। गंदगी के माकूल माहौल में पल-बढ़कर एक-दो दिन में ही उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। ऐसे क्षणभंगुर मच्छर के विनाश के

लिए इतने नियोजित और खर्चीले अभियान की क्या दरकार है? यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कोई तोप के गोले से मक्खी का शिकार करे। निगम पार्षदों और कर्मचारियों को मच्छर और गंदगी का सफाया करनेवाला यह नामाकूल अफसर नगर और देश का दुश्मन लगा। उन्हें आशंका हुई कि मच्छरों के खात्मे से नगर की पहचान को खतरा है। कल कोई दूसरे शहर या विदेश से आएगा और मच्छरों को न पाएगा तो उसे नगर निगम के प्रति कितनी खीझ होगी। यह कैसी संस्था है जो मक्खी-मच्छर तक की देखभाल नहीं कर पाई? यह इनसानों का क्या खाक भला करेगी! उन्होंने लोकहित से प्रेरित होकर अपनी कल्पना का प्रयोग किया। अफसर के विरुद्ध कुछ सच-झूठ और कुछ कतई सफेद झूठ से भरी शिकायतों के पुलिंदे-के-पुलिंदे गृहमंत्री से लेकर प्रधानमंत्री और सी.बी.सी. से लेकर सी.बी.आई. तक भेजे। इन शिकायतों में अफसर के नाम के अलावा कुछ भी सही न था।

इस तरह के कीचड़ उछालने का सबसे बड़ा सुख यह है कि सफेद-से-सफेद व्यक्तित्व पर एकाध दाग तो लगना लाजमी है। यों भी सफेदी खबर नहीं होती है; जबकि उसपर उछलता कीचड़ एक मजेदार समाचार है। पार्षद कहते हैं कि प्रभु ने मच्छरों की सुन ली। उस अफसर के घर सी.बी.आई. का छापा पड़ा। उसके घर से पुराना फर्नीचर, कुछ बिल और एक बैंक का खाता मिला, जहाँ उसकी तनख्वाह जमा होती थी। वह जेल तो नहीं गया, पर नौकरी से निलंबित है। सी.बी.आई. की जाँच जारी है। ऐसी जाँच अकसर किसी ईमानदार के जीवन के साथ ही खत्म होती है।

नगर निगम के अधिकारी, कर्मचारी व पार्षदों ने चैन की साँस ली। हमारे अहिंसक देश में नैतिकता की हत्या पर मिठाई बँटी। व्यवस्था नैतिक मूल्यवाले नालायकों को ज्यादा बरदाश्त नहीं कर पाती है। उन्हें नेस्तनाबूद करने के लिए 'निर्दोष' मच्छरों को बचाने जैसे बहाने अकसर मिल जाते हैं। इससे यह भी जाहिर होता है कि आधुनिक मच्छर सदाचारी मूल्यों के प्रति पूरी तरह समर्पित हैं। यह आज के समय का सबसे सुखद सच है कि लोग गटर और गंदगीवासी मच्छर तक के माध्यम से अपना उल्लू सीधा करने से बाज नहीं आते हैं।

वर्तमान वक्त में सफलता के लिए छुरी-तमंचे जैसे हिंसक हथियार का चलन नहीं है। लोगों का काम 'मन में मच्छर, मुँह में राम' रखने से चल जाता है। जब तक वे अपना मतलब नहीं निकाल लेते, मच्छर की तरह अपने शिकार के पास भिनभिनाते रहते हैं, यहाँ तक कि वे तंग आकर उनका काम करके अपना पीछा छुड़ाते हैं। चूँकि उनके मुँह में राम है, इसलिए कोई शक भी नहीं करता है कि कामयाबी पाने के लिए उन्होंने मच्छर-मंत्र का ही नहीं, भ्रष्टाचार का मंदिर बनवाने के तंत्र का भी प्रयोग किया है। सियासत में मच्छरों का प्रभाव पार्षदों से लेकर सांसदों तक समान रूप से व्याप्त है। संसद् की अव्यवस्था, हत्या, वॉक-आउट की पूरी जिम्मेदारी मच्छरों की है। खबर है कि मच्छरों ने संसद् में सफल घुसपैठ कर ली है। मच्छर सांसदों को इतना सताते हैं कि कभी वे क्रोध में चीखते तो कभी बहिर्गमन कर जाते हैं। सार्वजनिक रूप से वे इसके लिए दोष सरकार या भ्रष्टाचार को भले दें, उनकी असली शिकायत मच्छर से है। वे मच्छर को नाखुश भी नहीं करना चाहते हैं। चुनाव के गटर में उन्हें मच्छर का ही सहारा है।

मुरारी ने मच्छर के महत्त्व पर इतनी सारी जानकारी देकर हमें सीख दी कि अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए मच्छर से सह-अस्तित्व आवश्यक है। हर दफ्तर, मकान, दुकान, कोठी, महल, होटल, संसद्, रेल, बस, जहाज, टैक्सी, कार वगैरह-वगैरह इनसान कहीं भी जाए, मच्छर के बगैर गुजारा नहीं है। जैसे भ्रष्टाचार हर स्तर पर सरकार में है वैसे ही मच्छर हर सार्वजनिक एवं निजी दरबार और घरबार में हैं। □

डी-II/२९८, विनय मार्ग,
चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-२१

मुंशी अजमेरी की विदाई रोक ली

मुंशी अजमेरी का बुंदेलखंड के छोटे-बड़े राज्यों में बड़ा आदर था। उनमें खनियाधाना नामक एक छोटा राज्य भी था, जिसके शासक अपने साहित्य और काव्य-प्रेम के कारण बहुत प्रसिद्ध थे। महाराज को बरवै छंद बहुत प्रिय था। मुंशीजी एक बार वहाँ गए और कई दिन तक खूब काव्य-चर्चा रही। चलते समय महाराज ने अपने कारकून को (जिनका नाम श्री दौलतराय था) आज्ञा दी कि मुंशीजी को विदाई दे दी जाय और विदाई का आकार भी बतला दिया।

किसी कारणवश उस समय विदाई का भुगतान नहीं हो सका और दौलतरायजी ने उन्हें आश्वासन दे दिया कि वह शीघ्र ही उनके पास पहुँच जाएगी। एक-दो सप्ताह प्रतीक्षा करने के बाद मुंशीजी ने दौलतरायजी को विदाई भेजने के लिए पत्र लिखा, किंतु उत्तर न मिला। इस प्रकार कई पत्र लिखने के बाद भी जब उनके पास विदाई का रुपया न पहुँचा तब उन्होंने यह बरवै महाराज को लिख भेजा—

बीते तीन महिनवाँ, चरका देत।
प्रभु! अजहूँ नहिं दौलत, दौलत देत॥

इसे पढ़ते ही महाराज ने दौलतरायजी को बुलवाकर तुरंत मुंशीजी की विदाई उनके पास भिजवा दी। □

कविताएँ

✍ जनार्दन मिश्र

जगा हूँ

अपने दादा को धान के खेत में
उतारते हुए
नींद में भी कई बार, मैं
जगा हूँ

जगा हूँ/गाँव की हलचलों में शरीक
बिलकुल पास से बह रही काव
नदी की कछार पर
जहाँ मेरा बचपन/जलधारा के बीच
तैर रहीं मछलियों की आँखों
में
बरबस नाचता था
कि मेरे दादा
उतार लिये थे अपनी इस नदी को
सावन-घटा-राग में।

सुख-दुःख से जैसे बेपरवाह/अपने
थके-हारे पैरों के बावजूद
वे/खड़े हो जाते थे गाँव में
बधार में, रिश्तों में
आम जीवन की उन धड़कनों में
जिनका रहना जरूरी था
गाँव के लिए

आज मेरा बचपन/गाँव की टेढ़ी-
मेढ़ी पगडंडियों पर पैर रखते
हुए
काँप रहा है
कि किस तरह नर-संहार से
टूट चुका है मेरा गाँव
और खंडहर में तब्दील हो गए हैं
घर

बहुत अजनबी दिखने लगी है मेरे
गाँव की हवा

सोच रहा हूँ और बार-बार काँप
रहा हूँ मैं
कि पूर्वजों ने
बहुत जतन से बसाया था गाँव
और गाँव को अपने आँगन की
तरह सजाया था
तुलसी के बिरवे रोपकर।

अगर बचा सको

अगर बचा सको
तो बचाओ किसी की नींद
किसी की रोटी
किसी की आवाज

कि होगा सवेरा/घर की नींव में
नहीं लगेगी नोनी
नाद पर रँभाएगी गाय
और बैलों के कंधों पर टिका रहेगा
उनका
आसमान

थोड़ी उम्मीद भी
तैयार होंगे
बीज

खड़े रहेंगे पेड़
फैलेगी हरियाली
ठहरेगी घटा
दौड़ेगी नदी
नाचती रहेगी
पृथ्वी

बचाओ/धूप और हवा
फूलों की सुगंध
और काँटे

किसी का प्रेम
और किसी की दुआ
ताकि बचे रहेंगे शब्द

बचा रहेगा अपना होने का
अर्थ।

तुम्हारे जैसे

किताब खोलते हुए
पन्नों के बीच से
मेरे शब्द
गायब हो जाते हैं

वे शब्द
जिन्हें किताब के पन्नों के बीच
रहना चाहिए था
आस्था और विश्वास के बीच से
उन्हें
किसी ठठेरे की दुकान
या किसी ज्वेलर्स के मकान में नहीं
जाना चाहिए था

फिलहाल मैं देखता हूँ कि मेरे शब्द
मेरी किताब से गायब होकर
किसी बार-हाउस में
अर्द्धनग्न
नाच रहे हैं

बहुत मिहनत से हमने ढूँढ़ा
अपने कुछेक शब्द को
और पूछा—कि क्यों भाई!
कैसी नाराजगी है और कैसा
गुस्सा?

शब्द
दहक गया और मेरे सिर पर बाज
की तरह
मँडराने लगा
कहा—
कि मैं समय और नब्ज को ठीक-
ठीक पहचान गया हूँ
मेरी दुनिया
बहुत तेजी से भाग रही है/और
तुम मेरी तासीर को
समझ नहीं पा रहे हो

तुम्हारे जैसे अदना, ठिगना और
लाचार के पास
अब कभी नहीं टिक पाएँगे कोई
शब्द। □

संकटमोचन नगर, नई पुलिस लाइन,
आरा-८०२३०१

कहानी

मृत्यु-पर्व

✍ नीरजा माधव

'एक राजा था। उसकी रानी बहुत ही सुंदर और सुशील थी। राजा उसे बहुत प्यार करता था। समय बीतता गया। धीरे-धीरे रानी ने पाँच सुंदर बेटों और एक बेटी को जन्म दिया।'

'मेरी तरह, मम्मी?'

और कहानी सुनाते-सुनाते बिंदा देवी अपनी नन्ही बिटिया रीना के इस प्रश्न पर मुसकरा देतीं, स्नेह से।

'हाँ, तेरी तरह!' कहते हुए वे रीना को अपने सीने से चिपका लेतीं। सचमुच पाँच भाइयों के बीच अकेली रीना पूरे परिवार की लाडली थी। परंतु आज वही रीना अपने नन्हे बेटे विपुल और पति के साथ आकर उनके पैर छू रही है; पर सीने से लगाना तो दूर, उसके सिर पर स्नेह से आशीर्वाद भरा हाथ भी नहीं रख पा रही हैं वे। सोचकर बिंदा देवी की आँखों से आँसू ढुलककर कानों की ओर बह चले थे। जाड़े में धूप में सुखाई गई रजाई के भीतर रोना और छोटेवाले बबलू को अपने अगल-बगल सुलाकर नित्य वही कहानी सुनाते-सुनाते उन्हें सुलाना और फिर स्वयं भी दोनों हाथों को दोनों बच्चों के पेट पर धीरे से रखते हुए सो जाना, ताकि रात में चौंककर वे डरें नहीं। यह बिंदा देवी की आदत सी बन गई थी। बड़ेवाले चारों बेटे भी इसी तरह पलकर बड़े हो चुके थे। अब वे अपने पढ़नेवाले कमरे में सोने लगे थे।

"मम्मी, कैसी तबीयत है?" रीना उनकी चारपाई को पकड़े झुककर पूछ रही थी।

उन्होंने बहुत कठिनाईपूर्वक अपना काँपता हुआ दाहिना हाथ उठाकर संकेत से समझाने का प्रयास किया—

'क्या बताऊँ!' और हाथ के साथ ही होंठ भी केवल काँपकर रह गए थे। भीतर से आवाज नहीं निकल पा रही थी। बेबसी से असहाय आँखों से फिर आँसू निकल पड़े थे। रीना पास ही स्टूल पर बैठ गई थी।

एक वर्ष पूर्व पक्षाघात (लकवा) के
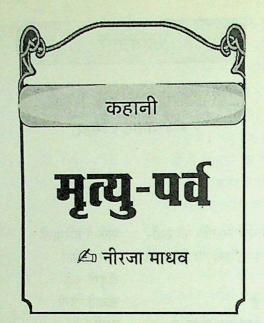
लेखिका परिचय

जन्म : १५ मार्च, १९६२ को कोतवालपुर (सरेमू), जौनपुर (उ.प्र.) में।

शिक्षा : एम.ए. (अंग्रेजी), पी-एच.डी., बी.एड. डिप्लोमा (सितार)।

प्रकाशित : 'चिटके आकाश का सूरज', 'अभी ठहरो अंधी सदी' (कथा संग्रह); 'अक्षर सुमन' (काव्य संग्रह)।

संप्रति : कार्यक्रम अधिशासी, दूरदर्शन केंद्र, वाराणसी।

कारण बिंदा देवी का बायाँ अंग निर्जीव सा हो गया था। मानसिक संतुलन भी थोड़ा डगमगा गया था। दवा और व्यायाम से कुछ आराम तो जरूर हुआ था, लेकिन अपने से उठना-बैठना संभव नहीं हो पाया था। बिस्तर पर लेटे-लेटे ही दैनिक चर्या का संपादन बहुएँ करवा देती थीं और कभी-कभी ह्वील चेयर पर बैठाकर उनके पति राम उजागरजी बाहर भी टहला लाते थे। शुरू-शुरू में अपनी यह दीन दशा देखकर बिंदा देवी का हृदय हाहाकार कर उठता था, क्योंकि अपनी दिनचर्या में वे नियम की बहुत पक्की थीं। सुबह पाँच बजे उठना, शौच-स्नान से निबटकर पूजा के लिए पिछवाड़े से फूल चुनना और फिर ठाकुरजी की पूजा के बाद, मुँहअँधेरे ही गाय को खूँटे से बाँधना, ताकि लोग देख न सकें कि बघेल साहब के घर की बहू बाहरी काम भी करती है। पुराने जमाने की पढ़ी-लिखी महिला थीं। गाय दुहने के बाद बच्चों और पति को जगाना, चाय-नाश्ता देने के बाद जल्दी-जल्दी खाना वगैरह बनाना, ताकि किसी को स्कूल या ऑफिस जाने में देर न हो। स्वयं प्राइमरी स्कूल की अध्यापिका की नौकरी इसलिए ठुकरा दी कि श्वसुर को पसंद नहीं था। सभी के चले जाने के पश्चात् घर की सफाई और फिर स्वेटर बुनना, मूज और बरुआ को लोटे के पानी में भिगोकर टिकुरी से छेद करके डलिया-मउनी बीनना या रजाई-गद्दा का कवर और मेजपोश सिलना-काढ़ना आदि उनका अपना अलग का कार्य होता था। इसके लिए उनके मन में न कभी कोई हीन भावना आई और न ही अपना व्यक्तित्व कुंठित होने की किसी से शिकायत। अड़ोस-पड़ोस की महिलाएँ भी उनके मिलनसार व्यवहार के कारण दोपहर में अकसर उनके पास गप्पें मारने के लिए आ बैठतीं। बिंदा देवी अपना हाथ चलाती रहतीं और साथ ही बातें भी करती रहतीं। दोनों बड़ी बहुओं के आ जाने के बाद तो उनके पास समय-ही-समय हो गया था। बहुएँ भी सारे जमाने की बुरी हवा से दूर। एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर काम करना, घर की देखभाल, सास-ननद के आगे-पीछे लगे रहना। अब और क्या चाहिए था बिंदा देवी को? पड़ोसियों को उनके इस सौभाग्य से ईर्ष्या होती थी। आजकल के युग में कहाँ मिलती हैं ऐसी बहुएँ? बिंदा देवी भी इस बात को समझती थीं, इसलिए बहुओं को कभी रीना के बाद का नहीं समझा। तीज-त्योहारों पर उनकी पसंद की साड़ियों से लेकर सैंडिल-बिंदी तक वे स्वयं बाजार जाकर खरीद लातीं। किस बहू को अपने मायके गए अधिक दिन बीत गए हैं और अब उसे चले जाना चाहिए ये सारी मनपसंद बातें बहुओं के साथ अकसर घटित होतीं। रुपए-पैसों की कोई विशेष चिंता नहीं थी। राम उजागरजी पी.डब्ल्यू.डी. में

ठेकेदार थे। बड़ेवाले दोनों बेटे भी उसी रोजगार से जुड़ गए थे। इसलिए आर्थिक तंगी का किसीने मुँह नहीं देखा था। बिंदा देवी भी सुबह-शाम अपने परिवार की खुशहाली और समृद्धि की कामना किया करतीं—भगवान्, कोई ग्रहण न लगे मेरे पति और बच्चों के जीवन में। और सचमुच भगवान् ने उनकी बात पूरी तरह से सुनी भी। परंतु पिछले वर्ष स्वयं बिंदा देवी के जीवन में ही ग्रहण लग गया था। दोपहर में खाना खाकर उठी थीं और एकाएक बाएँ पैर में झुनझुनाहट होते-होते वे अचेत होकर गिर पड़ी थीं। वह आज तक उठ नहीं सकीं।

बीमारी के कुछ महीनों के बाद ही उन्होंने लड़खड़ाती आवाज में बड़ी बहू मालती से आईना दिखाने को कहा था। प्रतिदिन बहुएँ ही उनकी चोटी करके बिंदी-सिंदूर लगा देती थीं। परंतु तीज के दिन वे स्वयं अपने हाथ से सिंदूर लगाना चाह रही थीं। आईने में अपनी आकृति देख वे काँप उठी थीं। भय से उन्होंने आँखें बंद कर लीं। अब हड्डियों का ढाँचा मात्र बन चुके अपने सुंदर कपोलों पर उन्हें कितना अभिमान था। वही कपोल अब पिचककर गोल गड्ढे के रूप में बदल चुके थे। दाँत बाहर को निकल आए थे और आँखें गहरे आले में रखी दो मटमैली काली गोलियों की तरह निस्तेज थीं। पूरा चेहरा विकृत हो चुका था। उन्होंने हाथ के इशारे से आईना दूर रखवा दिया था और बिलखकर रो पड़ी थीं। उनकी अस्फुट आवाज बाहर बैठक तक चली गई थी।

राम उजागरजी दौड़कर आए थे और उनके सिरहाने बैठ गए थे, 'क्या हुआ रीना की अम्मा?'

बिंदा देवी और फूटकर रो पड़ी थीं।

क्या बताएँ कि क्या हुआ? उन्होंने बेचारगी के साथ दाहिने हाथ से अपना चेहरा सहलाया था और 'सब व्यर्थ हो गया' के भाव से हाथ को धीरे से झटक दिया था। उनकी आँखों से झर-झर आँसू गिर रहे थे। राम उजागरजी उनकी बातों का आशय समझते हुए झुँझला उठे थे, 'बीमार हो तो क्या चेहरे पर निखार आएगा? मैं तो दौड़ा आया कि कहीं कुछ अधिक दर्द तो नहीं होने लगा।'

और वे उन्हें सांत्वना देने के बाद उठकर बाहर चले गए थे। बिंदा देवी असहाय सी उन्हें जाता देखती रही थीं। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि क्या वे उसके वही पति हैं जो उनके गोरे चेहरे पर जरा सी छाईं देखकर अपने मित्र डॉक्टरों के यहाँ लेकर दौड़े थे।

'भाई साहब, इनका चेहरा ही खराब हो रहा है छाईं से। कोई दवा…'

और डॉक्टर ने हँसकर उससे कहा था, 'देखो भाभीजी, राम उजागर को आपके चेहरे पर एक दाग भी पसंद नहीं।'

वे लाज और अभिमान से गुदगुदा उठी थीं स्वयं में। सचमुच अपने पति की वे कमजोर नस थीं। घर में मेहमानों के आ जाने पर भी वे उनके साथ ही खाना खाते। प्यार से कभी-कभी मेहमानों द्वारा विरोध करने पर कहते, 'देखो भाई, बिना पत्नी को संग लिये मैं न खा सकता हूँ और न ही मुझे नींद आती है। इसके लिए मैं भरी सभा में सबसे माफी माँग सकता हूँ।' सभी लोग हँस पड़ते और बिंदा देवी लाज से सिमट जातीं। पर मन स्वाभिमानी हो उठता। इस उम्र तक पति की पलकों में छाए रहना सौभाग्य नहीं तो और क्या है? मन क्यों न इतराए अपने इस सौभाग्य पर? बेटे-बहुएँ मुँह दबाकर हँस पड़ते पिता के इस बेबाक अंदाज पर।

"अम्मा, पहचान रही हैं न, कौन हैं ये?"

बड़ी बहू मालती रीना की ओर इशारा करके बिंदा देवी से पूछ रही थी। माँ की यह अवस्था देखकर रीना की आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे। बिंदा देवी का कलेजा मुँह को आ रहा था। रीना की आँखों में आँसू वे कभी बरदाश्त नहीं कर पाई थीं। उन्होंने रोने से मना करने के लिए इनकार में अपना सिर धीरे-धीरे हिलाया। उन्हें अब दाहिना हाथ उठाने में भी कठिनाई होती थी।

"अम्मा अब किसीको पहचान नहीं रही हैं, बीबीजी।" मालती सपाट स्वर में रीना को बता रही थी।

बिंदा देवी ने सुना तो उनका मन अधीर हो उठा था। कैसे बताएँ कि वे अभी सबको पहचान रही हैं और कान सबकी बातें सुन रहे हैं। बस आवाज और शरीर साथ नहीं दे रहा है।

उन्होंने पुनः विकल होकर सिर हिलाया था और अपना दाहिना हाथ उठाना चाहा था; परंतु वह काँपकर नीचे ढुलक गया था। व्याकुल आँखों से उन्होंने रीना की ओर देखा था, शायद बेटी उनकी वास्तविक स्थिति समझ जाए।

"ऐसे ही एक हफ्ते से चल रहा है, बीबीजी। न तो किसीको पहचान रही हैं, न बोल रही हैं। पहले तो थोड़ा-बहुत बोल लेती थीं, अब वह भी नहीं।"

"कोमा में हैं शायद।" कहते हुए दूसरी बहू कीर्ति भी रीना के पास आकर खड़ी हो गई थी। उसके चेहरे पर संतोष भरा एक बनावटी दुःख पसरा था। सभी बहुओं में सबसे अधिक गुणी और योग्य मानी जाती थी कीर्ति सास भी उसे कुछ ज्यादा ही स्नेह देती थीं इसीलिए जब उसने ब्यूटी पार्लर खोलने की बात कही तो न चाहते हुए भी बिंदा देवी ने 'हाँ' कह दिया था—

'देखो, बघेल परिवार की बहू हो। दूसरे की मालिश करना, बाल काटना, साज-शृंगार करना अच्छा नहीं लगेगा। बहुत इच्छा है तो घर में ही बाहरवाले कमरे में खोल लो। बाहर दुकान लेकर करना तो उचित नहीं है।'

और कीर्ति ने घर में ही ब्यूटी पार्लर खोल लिया था। बाहर की तमन्ना भीतर ही रह गई थी।

"नहीं, कोमा में होतीं अम्मा तो आँखें बंद रहतीं।" रीना ने अम्मा के चेहरे की ओर देखते हुए धीमे स्वर में कहा। बिंदा देवी को जैसे नया जीवन मिल गया था। उन्होंने स्वीकार में सिर हिलाने की कोशिश की। आँखों मे एक चमक उभर आई थी।

"देखिए, देखिए बीबीजी, रह-रहकर इनकी आँखें ऐसी ही हो जा रही हैं। कभी

कभी एकदम बंद हो जाती हैं और कभी-कभी ऊपर की ओर देखते-देखते न जाने क्या बुदबुदाती हैं। कुछ सुनाई नहीं पड़ता। बस होंठ हिलते हैं। हम लोगों का तो डर के मारे बुरा हाल है।'' कीर्ति रीना को बता रही थी।

''इसीलिए आपको हम लोगों ने टेलीग्राम दे दिया। हम जान रहे थे कि जाड़े में आप विपुल को लेकर कहीं नहीं जाती हैं, फिर भी हम लोगों ने सोचा कि आप आकर अम्मा को देख जाएँ।'' इस बार मालती ने कहा।

''अरे, एक दिन तो ऐसी हालत हो गई अम्मा की कि पिताजी दौड़े हुए रसोई में आए थे और बोले, 'चूल्हा बंद करो और चलो अम्मा के पास।' जिज्जी तो गिरीं घड़ाम से··· । वे ऐसा कुछ तो देख नहीं पाती हैं। आज तक उनकी कमर और पैर में दर्द हो रहा है।'' कीर्ति बताए जा रही थी।

बिंदा देवी एकटक उन्हें देखते हुए उनकी बातें सुन रही थीं। उनका मन घबड़ा रहा था। रीना उनका हाल-चाल उनसे ही क्यों नहीं पूछ रही है। बचपन में इन लोगों के रोने और हँसने से ही क्या वह इनकी भूख, तकलीफ और खुशी के बारे में नहीं जान लेती थीं? तब इन्हें क्या बोलना आता था? नन्हा बबलू जब छह महीने का था और उसके कान में भयंकर दर्द उठा था तो उन्होंने तुरंत ही उसके चिल्हककर रोने से जान लिया था कि कान में दर्द है—और अपने स्तन से दूध निचोड़कर चम्मच में निकाला था। कानों में डालते ही उसे आराम हो गया था। कहते भी हैं कि माँ का दूध सबसे बड़ी ओषधि है, अमृत है। क्या वही संतानें आज उनके हृदय की व्यथा नहीं समझ पा रही हैं। उन्हें अंतिम अवस्था में समझ रहे हैं सभी। स्वयं उसके पति भी तो··· । उनके बेड-सोर पर अब बड़ी बेरहमी से लोग पाउडर छिड़क देते हैं। कोई दवा नहीं लगाते। एक दिन पड़ोस की बूढ़ी अम्मा उन्हें देखने आई थीं। मालती उनसे कह रही थी—
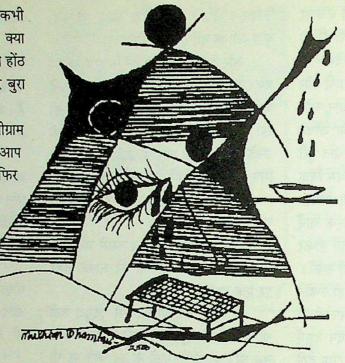
'इतना बड़ा घाव हो गया है। अब ठीक तो नहीं होना है। पाउडर बराबर छिड़कती हूँ कि बदबू न आए। अन्यथा यहाँ रहनेवालों की तो दुर्गति ही हो जाएगी।'

'अगरबत्ती जला दो सिरहाने, कीर्ति। हो सके तो गीता-पाठ भी करवा दो। अब ज्यादा दिन नहीं···'

पड़ोसन का सुझाव बिंदा देवी के कानों को भेद गया था। वे मरना नहीं चाहतीं और लोग उन्हें उसी किनारे पर ले जाना चाह रहे हैं। उसी दिन से लगातार चारपाई की बगल में दो अगरबत्ती स्टैंड में जलती रहती हैं और नहाने के बाद प्रतिदिन उनके पति 'गीता' का वह श्लोक दुहराते हैं—

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय···

—अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण करती है।···'

राम उजागरजी बाँचते जाते हैं और वे भयभीत सी सुनती जाती हैं। क्या उनकी नई देह को ये पहचान सकेंगे? उनके बच्चे स्वीकार कर पाएँगे? क्या वे इसी तरह अपना प्यार उड़ेल सकेंगी उनपर? कितना हास्यास्पद है यह सोचना भी! उस नई देह को लेकर क्या करना, जो सारे संबंध-विच्छेद करके फिर नई दुनिया बनाने को प्रेरित करे? उस नई देह से अच्छी तो यह मृत्यु-शय्या ही है। कम-से-कम अपनी दुनिया से संबंध-विच्छेद तो नहीं हो रहा। यह मृत्यु-शय्या···शर-शय्या।

···यही मोह रहा होगा भीष्म पितामह को भी जो शर-शय्या पर इतने दिनों तक पड़े रहे। मृत्यु-शय्या···भीष्म-शय्या···मोह··· बंधन··· । कैसे छूटेगा यह मोह बंधन?···शायद इसीलिए मृत्यु सत्य होते हुए भी अति दुःखद है···हे भगवान्···! कैसे होता है कोई विदेह? बिंदा देवी के होंठ बेचैनी से काँप-काँप उठते। वे चीखना चाहतीं, पर आवाज गले से बाहर नहीं निकल पाती। मस्तिष्क शून्य सा होने लगता। नसों में सूइयाँ सी चुभतीं। बेड-सोर में मवाद रिसकर टप से चू पड़ता। पीड़ा और हताशा से आँखें स्वयं बंद हो जातीं।

इस समय भी सिरहाने अगरबत्ती जल रही है। रीना, कीर्ति और मालती आपस में बैठी बातें कर रही हैं। बिंदा देवी चुपचाप उन्हें निहार रही हैं। किसी भी पर्व-त्योहार पर ये सभी बच्चे जब घर आ जाते थे तो इसी प्रकार चहल-पहल बढ़ जाती थी। अब तो सभी अपने-अपने ठिकानों पर। छोटावाला बेटा बबलू अभी कुँवारा है। वह भी नागपुर में इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है। बेटी रीना अपने पति और बच्चों के साथ अलीगढ़ में। बस दोनों बड़े बेटे और बहुएँ साथ हैं। तीसरे नंबर का बेटा भी अपनी पत्नी को लेकर दूसरे शहर में नौकरी कर रहा है। परंतु इस समय बिंदा देवी की बीमारी की खबर सुनकर सभी भागे चले आए हैं।

···व्यर्थ ही इन लोगों ने तार दे दिया। सब घबड़ा गए होंगे। उनके स्वस्थ रहने पर यही बच्चे आते थे तो आँगन कितना गूँज उठता

था। सुबह से ही कोई मंजन ढूँढ़ता तो कोई तौलिया। नाश्ते का पराँठा बनाते-बनाते दोनों बहुएँ जब थक जातीं तो बिंदा देवी स्वयं रसोई में जाकर उनका हाथ बँटाने लगतीं। चाय के दौर के कुछ ही देर बाद ताजा मट्ठे का एक-एक गिलास वे सभी बच्चों को दे आतीं।

बबलू नाक-भौं सिकोड़ता, 'ये क्या अम्मा, अभी-अभी···।'

'चुप! पी जा। फायदा करेगा।'

'हाँ-हाँ, सारा मक्खन तो उस मुटल्ली को चटा डालती हैं और हम बस खट्टा-खट्टा मट्ठा···। ओक्···।'

'छिह, गोरस के लिए ऐसे नहीं कहते, बबलू। शाप पड़ता है। पी ले। आ, तुझे भी मक्खन दे दूँ।'

और बिंदा देवी बबलू की हथेली पर धीरे से एक लोंदा मक्खन रख देतीं।

देखते ही रीना भी दौड़ी आती और भीख माँगने की नकल करते हुए उनके सामने अपनी अधमुड़ी हथेली फैलाकर कहती, 'हे माई···दो दिन से भूखी हूँ···रहम कर माई···एक लोना मक्खन देना, माई।'

उसकी इस हरकत पर सभी हँस पड़ते। बिंदा देवी प्यार से उसे एक चपत लगाते हुए मक्खन निकालकर दे देतीं। वही शरारती रीना इस समय स्वयं माँ बनने के बाद कितनी गंभीर सी लग रही है। शायद उनकी बीमारी से दुःखी होकर ऐसी दीख रही है। आखिर माँ की ममता इतनी कमजोर तो नहीं होती। फिर उसे पाला भी तो उन्होंने आँख की पुतली की तरह। कैसे बरदाश्त कर सकती है वह माँ की यह हालत? बिंदा देवी ने पास ही फर्श पर बैठी भाभियों से बातें करती रीना को स्नेह से निहारा था। उनके होंठों पर एक स्नेहिल मुसकान तैरी थी और उन्होंने इशारे से बेटी को पास बुलाना चाहा था। परंतु हाथ ऊपर की ओर ही उठकर लुढ़क गए थे। बेबसी से उन्होंने बातें करती रीना, कीर्ति एवं मालती की ओर देखा था और कीर्ति की निगाह से उनकी निगाह टकरा गई थी। उन्होंने आँख के इशारे से रीना को अपने पास भेजने की भंगिमा बनाई थी। कीर्ति सहमकर बोल उठी थी, "देखिए, देखिए बीबीजी! आजकल ऐसी ही भयानक हरकतें अम्माजी कर रही हैं! हम लोग एकदम डर जाते हैं।"

मालती बोल उठी, "पता नहीं कहाँ प्राण अटका है! भगवान् भी कितना अन्यायी है! एक से एक जवान लड़के बस-ट्रक से कुचलकर मर जा रहे हैं, जबकि उनकी जरूरत है दुनिया को—और इनका खाता पता नहीं कहाँ बंद करके बैठ गए हैं। अब इनकी दुर्दशा देखी नहीं जाती।"

कीर्ति ने सास को ध्यान से देखते हुए एक ठंडी साँस छोड़ी।

रीना माँ की चारपाई के और पास खिसककर बैठ गई। उनका हाथ सहलाते हुए पूछा, "कुछ दर्द हो रहा है, अम्मा? हम कौन हैं, पहचान रही हो?"

बिंदा देवी ने अपनी जीभ को 'हाँ' की शक्ल में खोलते हुए अपनी कमर पर बने बेड-सोर की ओर हाथ से दिखाना चाहा; पर असफल रहीं। हाथों में ताकत न होने से वे तकिए से मात्र तीन-चार इंच ही ऊपर उठकर फिर गिर गए।

उनका नंगा बदन जाड़े की धूप में किसी भूरे रंग की गठरी की तरह लग रहा था।

रीना के होंठों पर भी एक निःश्वास तैर गया था।

"भाभी, देख रही हैं न। यही अम्मा, जो चवन्नी भर की लाल बिंदी लगाए हमेशा रंग-बिरंगी चूड़ियाँ पहने पूरे घर की जिम्मेदारी उठाए रहती थीं, कभी साड़ी का पल्ला सिर से नीचे नहीं उतरता था, वही अम्मा नंगे बदन चारपाई पर पड़ी हैं। हे भगवान्!" रीना की आँखों में आँसू छलक आए थे।

कीर्ति ने भी दुखी होकर कहा, "कभी पैर का महावर छूटता नहीं था अम्मा का। अपने भी लगाती थीं और हम लोगों को भी डाँटती थीं लगाने को। कहती थीं, इससे सुहाग बढ़ता है।"

बहू और बेटी का वार्त्तालाप सुनकर बिंदा देवी का मन हाहाकार कर रहा था। अब तो एक साल से ज्यादा ही हो गए उन्हें बिस्तर पर पड़े।

मालती याद दिला रही थी, "याद है बीबीजी, पिछली की पिछली होली में किस तरह सोते में ही पापा के पैर में अम्मा ने महावर लगा दिया था और अपनी बिंदी उनके माथे पर चिपकाकर हम लोगों से आकर बोली थीं, 'अपने पापा को जाकर जरा चाय दे आना और कह देना, बाहर त्रिलोकी सिंह बैठे हैं, बुला रहे हैं। लेकिन उनके सामने हँसना मत। उनका कितना मजाक बना था उस बार होली में! है न, बीबीजी?"

मालती बताते हुए हँस रही थी।

कीर्ति ने बात को आगे बढ़ाया, "और पापा भी तो कम नहीं थे। त्रिलोकी सिंह के सामने ही अम्मा को पकड़कर गुलगुले के लिए फेंटा मैदा सिर से लेकर पेट तक लपेट दिया था। बेचारी अम्मा पूरे दो घंटे तक चिट-चिट करते बालों को धोती रही थीं।"

बिंदा देवी उन सबकी बातें सुन रही थीं। उनका बेड-सोर कुछ मुलायम हो उठा अतीत में भीगकर। आँखों में एक चमक जाग उठी। सचमुच कितना अच्छा लगता था उन्हें होली का पर्व! होली के दिन सबसे पहले वे अपने पति को रंग-अबीर लगाने के बाद ही और किसी से रंग खेलती थीं। हफ्ते भर पहले से गुझियाँ, खस्ता, सेवड़ा, पापड़, चिप्स बनाते-बनाते उनकी कमर दर्द करने लगती; लेकिन बच्चों और पति की छोटी सी मुसकराहट पर सारी तकलीफें कुरबान हो जातीं। होली के हफ्ते भर पहले से ही वे हुड़दंग शुरू करतीं और देखते-देखते पूरा परिवार उसमें शामिल हो जाता। हर बार एक नया नुस्खा। किसी बार बाल्टावाले यादवजी के ऊपर रंग डालकर तो कभी बिना दाँतोंवाले हमेशा मुसकराते हुए नारायण बाबा की पीठ पर आलू का ठप्पा मारकर। कितनी मेहनत से बड़े आलू को बीच से काटकर उसपर उलटे अक्षरों में 'जीजा' या 'मजनू' जैसे शब्दों को चाकू से बड़ी बारीकी

से खोदतीं और फिर उसे गाढ़े रंग में डुबा-डुबाकर किसी के भी पीछे कुरते पर मार देतीं।

कभी-कभी काम में उलझी बहुओं को मीठा ताना देतीं, 'क्या तुम लोग बूढ़ों की तरह सन्नाटा मारे बैठी हो! तुमसे जवान तो मैं ही हूँ। अरे हँसो, खेलो, खाओ। यही तो जिंदगी है। फिर क्या कोई दूसरा समय आएगा कुछ करने का!'

बिंदा देवी की आँखों मे पूरा अतीत झिलमिला रहा था और होंठों पर एक नैसर्गिक मुसकराहट। बेड-सोर से पाउडर को बहाती हुई मवाद की पतली रेखा उनके नग्न नितंबों पर बह आई थी। उन्होंने पास बैठी बेटी और बहुओं को भर निगाह निहारा था। सिरहाने अभी भी अगरबत्ती जल रही थी।

बबलू आया था और छोटी भाभी से कह रहा था, "जीजाजी आ रहे हैं अम्मा को देखने।"

"चाय पी चुके क्या?" मालती ने उठते हुए पूछा।

"भाभी, वो पतलीवाली चादर अम्मा के ऊपर डाल दीजिए। आनंद आ रहे हैं। भद्दा लगेगा।" रीना ने मालती को इशारा किया था।

मालती ने चादर से बिंदा देवी को गले तक ढक दिया था। बिंदा देवी निरीह सी उन सभी को देख रही थीं।

आनंद ने आकर बिंदा देवी के पैर छुए और कीर्ति की ओर मुखातिब होते हुए मजाक के मूड में बोल उठे, "और कैसा चल रहा है हमारी सलहज लोगों का? चेहरे पर दिनोदिन निखार आता जा रहा है!"

कीर्ति और मालती ने एक साथ हँसते हुए जवाब दिया, "आप भी जीजाजी, खूब बात करते हैं। अम्मा की बीमारी से शीशा देखने की फुरसत नहीं कि आपके आने पर जरा लिपस्टिक ही पोत लें, निखार आ रहा है।"

आनंद भी हँस पड़े थे।

"भाई, यही तो है केयरलेस ब्यूटी। क्यों, रीना?"

"यह आपका और आपकी सलहज का मामला है, मुझे बीच में मत घसीटिए।"

रीना ने हँसकर आनंद को दो-टूक जवाब दे दिया और बिंदा देवी की चादर ठीक करने लगी। बेड-सोर चादर की रगड़ से टीस उठा था। बिंदा देवी ने आँखें बंद कर लीं। कान में आनंद और कीर्ति की बातें आ-जा रही थीं।

"कैसा चल रहा है, भाभी, आपका ब्यूटी पार्लर?"

"ठीक तो नहीं ही कहेंगे। बस चल रहा है।" कीर्ति ने कुछ दबे स्वर में बताया।

"जब तक आप इसे मेन मार्केट में नहीं खोलेंगी तब तक नहीं चलेगा। इतनी दूर कॉलोनी में जो आपका परिचित होगा वही न आएगा। बाकी कस्टमर तो एप्रोच की जगह ढूँढ़ते हैं। बिजनेस के साथ बहुत सी शर्तें होती हैं।" आनंद ने सुझाव दिया।

कीर्ति ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा, "समझ रही हूँ, जीजाजी। बस यही माताजी का इंतजार है। जीते जी तो बिलकुल पसंद नहीं था इन्हें। हमने भी सोचा, जाने देते हैं। पर इस समय इनकी बीमारी ने तो…बस इन्हीं का जब तक कोई वारा-न्यारा नहीं हो जाता तब तक तो संभव नहीं है। उसके बाद ही सोचूँगी।"

बिंदा देवी की सुन्न पड़ी संवेदी शिराएँ झुनझुना उठी थीं।

याद आया—बहू ही है न। पराई बेटी। कितना भी लाड़-प्यार दो, आखिर अपनी बेटी वाली बात और ममता कहाँ आ पाएगी! रीना के दिल से कोई पूछे इस समय। …अपनी माँ की यह अवस्था देखकर उसके दिल पर क्या बीत रही है? बिंदा देवी ने कुछ वितृष्णा से कीर्ति को देखते हुए एक आशा भरी दृष्टि रीना पर टिका दी थी।

"तुम अभी कब तक रुकोगे, बबलू?"

आनंद उनके छोटे बेटे बबलू से पूछ रहे थे।

"मैं सोच नहीं पा रहा हूँ, जीजाजी। अम्मा की हालत तो स्थिर बनी हुई है। सुधार हो रहा है न। सोचता हूँ, कल आप लोगों के साथ ही निकल लूँ। कम-से-कम कुछ दूर तक तो साथ रहेगा। बाकी नागपुर तक की यात्रा तो बस अकेले झेलनी होगी। पढ़ाई का नुकसान हो रहा है।"

'क्या बबलू इतनी जल्दी मुझे छोड़कर इतनी दूर चला जाएगा? क्या उसे अपनी अम्मा की गोद की अब कोई आवश्यकता नहीं? थपकी भरे हाथों की अब कोई जरूरत नहीं? अम्मा के आँचल में मुँह छिपाकर सोनेवाले बबलू को अम्मा की इस पीड़ा का जरा भी एहसास नहीं? हे भगवान्…' बिंदा देवी अंदर-ही-अंदर तड़प उठीं।

मालती रीना से पूछ रही थी, "क्यों बीबीजी, आप भी कल ही चली जाएँगी क्या?"

"हाँ, भाभी, इनकी ड्यूटी का नुकसान और फिर आजकल मैंने एक जिम जॉइन किया है। मोटी जो हो रही हूँ।"

रीना हँस पड़ी थी आनंद को देख। कीर्ति और मालती भी मुसकरा उठीं। एकाएक बिंदा देवी के चेहरे से तनाव गायब हो गया और एक मुसकराहट नाच उठी। एक नैसर्गिक मुसकराहट। शर-शय्या पर लेटे भीष्म से एक संवाद अंतर में जागरित हो उठा—

'जिनके लिए मैं इतने दिनों से मुक्त नहीं हो पाई, वे तो मुझसे कब के मुक्त हो चुके हैं। कोई आसक्ति नहीं मुझमें। फिर मैं इतने दिनों से आसक्ति के मोह-बंधन में क्यों झूलती रही? मेरे मृत्यु-पर्व में सम्मिलित होने आए इनसे मुझे भी अब मुक्त हो जाना चाहिए।'

शेष दो बूँद आँसू आँखों के कोरों से निकलकर कपोलों पर ठहर गए थे। मुक्ति आसान हो गई थी, यात्रा सुगम। सिरहाने जल रही अगरबत्ती के ऊपर उठते धुएँ पर उनकी निगाहें केंद्रित हो गई थीं। □

द्वारा—डॉ. बेनी माधव,
प्रिंसिपल आवास,
महाबोधि कॉलेज कैंपस,
सारनाथ, वाराणसी

व्यंग्य

कहानी 'तकिया क्लब' की

✍ हरिकृष्ण देवसरे

आपने कुछ मजेदार और अजीबोगरीब क्लबों की सदस्यता ली हो या न ली हो, लेकिन उनके नाम सुनकर जरूर हँसे होंगे, जैसे—'ठलुआ क्लब', 'गंजों का क्लब', 'खर्राटेबाजों का क्लब' वगैरह। इसी परंपरा में कभी भोपाल में एक 'तकिया क्लब' भी हुआ करता था। जी हाँ, आम बोल-चाल की भाषा में उसका यही नाम था, क्योंकि उसका सदस्यता शुल्क था—'सिर्फ एक तकिया'। किस्सा यों था—उर्दू के प्रसिद्ध शायर जिगर मुरादाबादी को भोपाल से बड़ा लगाव था। अकसर वहाँ आते-जाते रहते थे। सन् १९३५ में जब वे भोपाल आए तब काफी लंबे अरसे तक रहे। तब वह अपनी पुस्तक 'शोलए तूर' के प्रकाशन के सिलसिले में आए थे। जिगर साहब भोपाल क्या आते, वहाँ की साहित्यिक जिंदगी का रंग ही बदल जाता। लोग अपना काम-धंधा छोड़कर जिगर साहब को घेरे बैठे रहते। रात को तो कुछ और ही आलम होता। नौ-दस बजे से महफिल जमती तो दो-तीन बज जाते।

अब इसी तरह दिन पर दिन गुजरने लगे तब जिगर साहब को लोगों के आराम की चिंता हुई। जाहिर था कि देर रात तक बैठे-बैठे लोग थक जाते।

आखिर एक दिन जिगर साहब ने कहा, ''देखिए, आप साहबान मेरे पास आकर बैठते हैं। रात भर महफिल चलती है। लेकिन मुझे इस बात से बेहद तकलीफ होती है कि आप लोग रात भर बैठे रहें और तकल्लुफ के मारे कुछ न कहें। मैं तो चाहता हूँ कि हमारी महफिल में बेतकल्लुफी का आलम हो। आप सब आराम से बैठें और दिल खोलकर बातें करें।''

आखिर कई दिनों तक सोच-विचार के बाद यह तय किया गया कि काहिली या आलस का प्रचार किया जाए। आलस का प्रचार करनेवाली एक संस्था बनाई जाए, जिसमें सभी को मजबूर होकर बेतकल्लुफ बनना पड़े।

उन दिनों जिगर साहब भोपाल रियासत के जनगणना अधिकारी जनाब महमूद अली खाँ के मकान में रहते थे। उन्होंने अपने मकान के बाहर का कमरा जिगर साहब को दे दिया था। बस, उसीको 'दारुल-कोहला' यानी 'आलसियों का घर' नाम दे दिया गया और काहिलों की भरती शुरू हो गई।

'दारुल-कोहला' में भरती होने के लिए फीस क्या रखी जाए, यह भी एक गंभीर सवाल था। इस बारे में यह तय हुआ कि चूँकि 'तकिया' ही सबसे ज्यादा आलस फैलाता है, इसलिए हर सदस्य एक तकिया लेकर आए। कुछ नियम भी बनाए गए थे, जैसे—वहाँ सभी के लिए यह अनिवार्य था कि लेटे रहें। लेटकर सोना जुर्म था। फिर आलसियों की किस्में भी बनाई गईं। पहले नंबर का आलसी लेटा हुआ, दूसरे नंबर का बैठा हुआ, तीसरे नंबर का खड़ा हुआ। इसलिए लेटा हुआ आलसी बैठे हुए को और बैठा हुआ आलसी खड़े हुए को हुक्म दे सकता था।

'दारुल-कोहला' ऐसी अनोखी संस्था बनी कि खूब महफिलें जमने लगीं। लोग बड़ी ही बेतकल्लुफी से आते और रात-रात भर जमे रहते। 'दारुल-कोहला' में लोगों के आने का सीन भी बहुत हँसानेवाला होता था। हर सदस्य अपनी बगल में तकिया दबाए दरवाजे से ही लेटे-लेटे पीठ रगड़ते, घिसटते हुए कमरे में दाखिल होता। उसे डर रहता था कि कहीं कोई काम करने का हुक्म न दे दे। यदि कोई पकड़ में आ जाता तो उससे हुक्का भरवाया जाता, चाय-पान आदि मँगवाते, उगालदान उठवाते तथा और इसी तरह के काम कराए जाते।

'दारुल-कोहला' के उस कमरे का आलम भी काबिले बयान है। कमरे के बीचोबीच हुक्का रखा रहता। उसकी लंबी सटक आलसियों के बीच घूमती रहती और सब बारी-बारी से हुक्का पीते रहते। सभी आलस के मारे पड़े रहते। जब शायरी का मूड होता, महफिल जम जाती; लेकिन तकिया कोई न छोड़ता। इसीलिए आम लोगों की भाषा में 'दारुल-कोहला' को 'तकिया क्लब' भी कहा जाने लगा था। वहाँ किसी तरह की घरेलू समस्या, दफ्तर की बातें, राजनीति, आपसी झगड़े या मुकदमों आदि की चर्चा करने पर पाबंदी थी, क्योंकि ऐसा करना काहिली के उसूल के खिलाफ था। सब लोग बेफिक्र होकर पड़े रहते और एक-दूसरे का मनोरंजन करते।

धीरे-धीरे इसके सदस्यों को काहिली की लत कुछ ऐसी पड़ गई कि वे सारी मुसीबतों के बावजूद वहाँ जरूर आते। लेकिन जल्दी ही उन्हें एक जबरदस्त मुसीबत का सामना करना पड़ता। जब वे देर रात को

घर वापस आते तब उनकी बीवियाँ पूछतीं कि कहाँ गए थे? वे यही जवाब देते, 'जिगर की महफिल में बैठे थे। बहुत मजा आता है वहाँ।' दो-चार रोज तो बीवियों ने बरदाश्त किया, लेकिन इसके बाद घर में झगड़े होने लगे। कई शायरों की बीवियों ने उनकी पिटाई भी की। बीवियाँ कहतीं, 'यह जिगर शायर-वायर नहीं है। यह तो हमें बेवकूफ बनाने की बातें हैं। जिगर तो जरूर कोई तवाइफ है, जिसकी महफिल में तुम लोग गुलछर्रे उड़ाते हो। अगर वह तवाइफ नहीं है तो लोग रात-रात भर वहाँ क्या करते हो? उसके पीछे इतने दीवाने क्यों हो रहे हो?' बेचारे काहिल शायरों के पास इन दलीलों के लिए कोई जवाब न होता!

तंबाकू खत्म हो गई तो क्या करता? तंबाकू का डिब्बा जरा दूर रखा था। उठकर लेता तो काहिली का कानून टूटता। इसलिए पहले कमीज फाड़कर उसे ही धीरे-धीरे चिलम पर रखकर पीता रहा, फिर जब कमीज खत्म हो गई तब पायजामा फाड़कर पी गया। बस इसके बाद से यह चादर ओढ़े नंगे बदन लेटा रहा—इस इंतजार में कि कोई आए और कपड़े माँगूँ।

'दारुल-कोहला' में सबकुछ ठीक से चले, इसलिए उस जमात के लिए पदाधिकारियों का भी चुनाव हुआ था। उसके अध्यक्ष थे—जिगर मुरादाबादी, उपाध्यक्ष—हसरत लखनवी, सचिव—महमूद अली खाँ और उद्घोषक गुलाम हुसैन खाँ 'अज्म बनारसी'। इनके अलावा इस जमात के कुल इक्कीस सदस्य थे। इन सदस्यों में से अधिकतर तो अब रहे नहीं, लेकिन शाकिर अली खाँ (म.प्र. के प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता), मशहूर शायर शेरी भोपाली, मंजूर हुसैन सरोश, सैयद लतीफ हसन लतीफ और अब्दुल जलील खाँ की यादों में 'तकिया क्लब' काफी अरसे तक बसा रहा। उन्हीं से जो कुछ सुना था, वह यहाँ पेश कर रहा हूँ।

शाकिर साहब ने बताया था कि 'दारुल-कोहला' के सदस्यों की शख्सियत और आदतों को देखकर उन्हें खिताब भी दिए गए थे। जैसे शाकिर साहब को संस्था में अनुशासन बनाए रखने का काम दिया गया था, इसलिए उन्हें 'तबीहुल कोहला' कहा गया। चूँकि 'दारुल-कोहला' का इंतजाम महमूद अली खाँ साहब के घर पर था, इसलिए उन्हें 'नाजिमुल कोहला' कहा गया। अब्दुल जलील खाँ जरा दुबले-पतले थे, इसलिए वह 'दबीउल कोहला' कहलाए। छोटे कदवाले फहमी साहब को 'कलीलुल कोहला', लंबे कदवाले अली अकबर साहब को 'तबीउल कोहला' के खिताब दिए गए थे। मोहम्मद अशरफ साहब चाय में चीनी ज्यादा पीते थे, इसलिए वह 'कुंदुल कोहला' कहलाए। शेरी भोपाली साहब कुछ ही दिनों तक मेंबर रहे, बाद में छोड़कर चले गए, इसलिए उन्हें 'बागीउल कोहला' कहा गया।

काहिलों के इस नामकरण के सिलसिले में कई रोचक किस्से भी मशहूर रहे हैं। एक मजेदार किस्सा शाकिर साहब ने सुनाया था कि 'दारुल-कोहला' में पड़े हुए लोग हर वक्त इस फिराक में रहते थे कि कोई आदमी फँसे और वे उसे हुक्म देकर काम लें। एक दिन की बात है, बड़ी देर से हुक्का नहीं भरा गया था। लोगों को हुक्के की तलब लगी हुई थी। आखिर एक साहब फँस गए। उनसे हुक्का भरवाया गया। जैसे ही हुक्का आया कि शाकिर साहब और लतीफ साहब हुक्के पर झपटे। इस छीना-झपटी में हुक्का लुढ़क गया। उसकी चिलम के दहकते अंगारे पास ही लेटे हुए मेहँदी साहब के सीने पर जा गिरे। इसपर लोग घबराकर उठ पड़े। लेकिन मेहँदी साहब नहीं घबराए और न ही उठे। उन्होंने चट से वहाँ के कानून का फायदा उठाया और उठे हुए लोगों से बोले, अमाँ, इन अंगारों को हटाओ। मेरा सीना जला जा रहा है।' खैर, उठकर बैठे हुए लोगों ने तब तक अंगारे हटा दिए थे; लेकिन मेहँदी साहब जल जाने के बावजूद उठे नहीं। सब काहिल बने पड़े रहे। काहिली के कानून का इतनी कठोरता से पालन करनेवाले मेहँदी साहब के सामने सबने घुटने टेक दिए। लोगों ने उन्हें 'जद्दुल कोहला' का खिताब देते हुए कहा, 'ये तो आलसियों के दादा हैं।'

एक बार शरीफ फिक्री साहब मरहूम लेटे हुए थे। उनके मुँह में पान की पीक बहुत ज्यादा भर गई थी। उगालदान जरा दूर था और बड़ी तोंद के कारण वे ज्यादा हिल-डुल भी न पाते थे। मुँह में पीक भरी थी, इसलिए कह भी नहीं सकते थे कि जरा उगालदान इधर खिसका दो। इसलिए जब उनसे बरदाश्त न हुआ तब उन्होंने पास रखे हुक्के की चिलम में ही सारी पीक उगल दी। नतीजा यह हुआ कि चिलम की सारी राख उड़कर उनके मुँह पर फैल गई। उनकी यह हरकत और राख लगी सूरत देखकर लोग बड़ी देर तक हँसते रहे। शरीफ साहब की तोंद के कारण ही उन्हें 'कुव्वतुल कोहला' का खिताब दिया गया था।

जिगर मुरादाबादी को 'रईसुल कोहला' का खिताब क्यों दिया गया था, इसकी भी कहानी है। हुआ यह कि एक रात को जब महफिल खत्म हो गई तब धीरे-धीरे सब लोग चले गए। जिगर साहब अपने उसी कमरे में एक ओर लेटे थे। उन्होंने चादर ओढ़ ली और सोने की कोशिश करने लगे। अगले दिन सुबह जब लोग फिर आए तब देखा कि जिगर साहब अभी तक लेटे हुए हैं। लोगों ने खैरियत पूछी। जिगर साहब बोले, 'भई, पहले मेरे संदूक से जरा कमीज और पायजामा निकालकर दो।' यह सुनकर लोगों को और फिक्र हुई कि आखिर मामला क्या है। जिगर

साहब बोले, 'जब तक मुझे पहनने के लिए कपड़े नहीं दोगे, मैं कुछ नहीं बताऊँगा।'

आखिर कमीज-पायजामा दिया गया। जिगर साहब ने जब कपड़े पहन लिये तब चादर हटा दी। बोले, 'भाई, बात यह हुई कि आप लोगों के जाने के बाद मुझे रात भर नींद नहीं आई। हुक्के में जितनी तंबाकू थी उसे पी गया। तंबाकू खत्म हो गई तो क्या करता? तंबाकू का डिब्बा जरा दूर रखा था। उठकर लेता तो काहिली का कानून टूटता। इसलिए पहले कमीज फाड़कर उसे ही धीरे-धीरे चिलम पर रखकर पीता रहा, फिर जब कमीज खत्म हो गई तब पायजामा फाड़कर पी गया। बस इसके बाद से यह चादर ओढ़े नंगे बदन लेटा रहा—इस इंतजार में कि कोई आए और कपड़े माँगूँ।' यह सुनकर सारे लोगों का हँसते-हँसते बुरा हाल हो गया और जिगर साहब को 'रईसुल कोहला' का खिताब दिया गया।

'दारुल-कोहला' से जिगर साहब को इतना लगाव था कि वे उसके हर सदस्य को बेहद प्यार करते थे और वहाँ के हर कानून का पूरी तरह पालन करते। चूँकि जिगर साहब सहित दस सदस्य शायर भी थे, इसलिए अकसर लोग नहले पर दहला लगाने के लिए बढ़िया-से-बढ़िया रचनाएँ सुनाते। जिगर साहब भी क्यों पीछे रहते, यही कारण था कि उनकी कुछ मशहूर और बढ़िया गजलें 'दारुल-कोहला' में ही कही गईं। कुछेक शेर प्रस्तुत हैं—

जो अब भी न तकलीफ फरमाइएगा,
तो बस हाथ मलते ही रह जाइएगा।
निगाहों से छिपकर कहाँ जाइएगा,
जहाँ जाइएगा हमें पाइएगा॥

× × ×

नजर मिला के मेरे पास आ के लूट लिया,
नजर हटी थी कि फिर मुसकरा के लूट लिया।
शिकस्ते हुस्न का जलवा दिखा के लूट लिया,
निगाह नीची किए सिर झुका के लूट लिया॥

'दारुल-कोहला' में शराब पीना सख्त मना था। जिगर साहब को तो शराब पीने की बड़ी आदत थी। लोग चाहते थे कि वह किसी तरह शराब छोड़ दें; पर वे मानते ही न थे। जब 'दारुल-कोहला' में शराब पर पाबंदी लग गई तो उनको मजबूर होकर शराब बंद करनी पड़ी। उस दौरान सात महीनों तक उन्होंने शराब नहीं पी। लेकिन एक दिन अचानक वे गायब हो गए। बहुत खोजबीन की गई, पर कहीं पता न चला। आखिर तीन दिन बाद वे मंगलवारा मुहल्ले की कलारी के पीछे चारपाई पर बैठे शराब पीते हुए पकड़े गए। लेकिन वे अपने दोस्तों और शायरों द्वारा की जानेवाली ज्यादतियों का कभी बुरा नहीं मानते थे। जब तक वे भोपाल में रहे, 'दारुल-कोहला' कायम रहा। भोपाल से उनके जाने के बाद वह खत्म हो गया। अब तो उसकी सिर्फ यादें बाकी हैं। वह भी 'तकिया क्लब' के नाम से। □

१०२, एच.आई.जी.,
ब्रजविहार, पो. चंद्रनगर,
गाजियाबाद-२०१०११

मातृभूमि का ममत्व

अकबर ने देशी रजवाड़ों के राजाओं पर साम्राज्य सेवा का अनिवार्य नियम लागू किया था। इस नियम के अनुसार उन्हें साम्राज्य विस्तार और अकबर की भारत-दिग्विजय के लिए किसी भी समय रणक्षेत्रों में जाना पड़ जाता था।

एक बार बीकानेर के किसी राजा को दक्षिण के किसी मोरचे पर भेजा गया। बीकानेर के आस-पास की भूमि प्रायः मरुस्थल है। इसमें वृक्ष बहुत कम होते हैं। कहीं-कहीं व्रज के करील जैसा, बिना पत्तों का, किंतु लंबी-लंबी सटकारी और बिना बीज की फलियों जैसी टहनियों का एक झुरमुटनुमा झाड़ होता है, जिसे 'फोग' कहते हैं।

दक्षिण की यात्रा करते समय एक दिन बीकानेर नरेश बड़े प्रातःकाल चले जा रहे थे। सहसा वहाँ, विदेश में, उन्हें एक फोग का झाड़ दिखाई दे गया। उन्होंने तुरंत अपना घोड़ा रोक दिया और पैदल उस झाड़ की ओर बढ़े। महाराज ने उस झाड़ का आलिंगन कर लिया और उसी मुद्रा में कुछ देर बने रहे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहते रहे। साथी सरदार और योद्धा यह दृश्य देखकर चकित रह गए। उनकी समझ में नहीं आया कि यह क्या हो रहा है।

किंतु साथ के एक कवि ने महाराज की भावना को इस दोहे में व्यक्त किया—

तूँ सै देसी रूखड़ो, म्हे परदेसी लोग।
म्हाने अकबर तेड़िया, तूँ कत आयो फोग॥

हमें तो विवशता के कारण, अकबर की जबरदस्ती से, देश छोड़ना पड़ा; पर तुझे क्या विवशता थी कि तू देश छोड़कर यहाँ चला आया? □

कविताएँ

✍ मंजुला चतुर्वेदी

मेरा मन

एकांत में
बसेरा
पार्श्व में कुछ झुरमुट
सामने देवदारु का एक वृक्ष
असहनीय सर्द में खड़ा हुआ।
गहरी-घनी
ऊँची-नीची चट्टानें
और जिंदगी के चट्टानी होने का
एक जनमता हुआ एहसास
उनपर उगी हुई काई
अनुभवी होने का एक प्रमाण
दूर-दूर तक
तुम्हें खोजती एक दृष्टि
पर तुम कहीं भी नहीं।

तभी दूर आकाश में
धरती पर उतरने की चाह लिये
एक सरिता का उछाल।

मैं नेत्र बंद कर
और कभी खोलकर
ढूँढ़ती हूँ, पुकारती हूँ तुम्हें
और तब तुम
गहराती साँझ में
नर्म बरफ से
झरने लगते हो
सर्वत्र छा जाते हो
और ढक लेते हो
बसेरा और मेरा मन।

□

अर्घ्य

मैं चित्रों में
संपूर्ण प्रकृति बनाती हूँ,
पेड़, पहाड़, झाड़-झंखाड़
और तुम्हें तलाशती हुई
बढ़ जाती हूँ
कभी झोंपड़ियों में
तुम्हें ढूँढ़ती हूँ
तो कभी चट्टानी कोटरों में।
अचानक उजला बहता हुआ जल
मेरे चित्रों में दौड़ता है,
और मैं लहरों के साथ लहर बन
दौड़ती हूँ,
तलाशती हुई क्षितिज के पार
जब थकी निराश लौटती हूँ
तो टकराती हूँ एक
विशाल चट्टान से,
गौर से देखने पर
एहसास होता है
पूरी-की-पूरी चट्टान में
तुम्हारे समाए होने का
खामोशी के साथ
समय के थपेड़ों को सहते हुए।
तभी मैं बूँद बन
चढ़ती हूँ
चरणों में अर्घ्य।

□

मन की पुकार

मैंने कभी वादियों में पुकारा है तुम्हें
कभी पेड़ों के झुरमुट में आवाज
दी है।
कभी खड्डी काली चट्टानों में
ढूँढ़ा है तुम्हें
कभी नदी के अनगढ़
पत्थरों में तलाशी है
तुम्हारी छवि।

कभी-कभी सड़क की
धूप और छाया के
आकारों में भी छूना चाहा है तुम्हें।
लेकिन तुम वहाँ
नहीं हो, कहीं भी।

आज मैंने जाना
और समझा है
कि तुम मेरी परिधि के बाहर हो
और वहीं से प्रवाहित की है
तुमने श्वेत निर्मल सरिता प्रेम की
जिसने मेरे चित्रों को गति दी है
और कभी-कभी तुम
सफेद बादल का टुकड़ा बन छाए
हो
मैं डूब जाना चाहती हूँ
दाता के खुले हाथ देने
की उदारता में
तुम्हारी इस आर्द्रता में।

□

चढ़ी साँकल

स्पंदन अब
एक रस है।
तुम्हारे घर की चढ़ाई
साँसों के साथ
समतल हो गई
समय के हाथों से
करील के झाड़
अब मेरे आँचल से
नहीं उलझते
शायद उनका विस्तार
थम गया है
आगे—
नीम का पेड़ भी खामोश है
निंबोरियाँ भी अब नहीं झड़तीं
तुम्हारे घर के दरवाजे पर
कैसी साँकल चढ़ी है?
न जाने कैसा होगा
वह आँगन
जहाँ पीपल का पेड़ था
झूला था, हिचकोले थे
कोटर में चिड़िया के
घोंसले थे।
लहराती हुई मस्ती में
फूलती हुई सौंफ के
सपने थे।
आज दिखते हैं
दो पखेरू उड़ान भरते हुए
अलग-अलग दिशाओं में
वसंत के आने से पहले।

□

सपनों का वसंत

ओ! मेरे सपनों का वसंत
चिर-प्रतीक्षित वसंत
तू कब आया
और कब चला गया
मैं समझ भी न सकी
तेरा आना और जाना।

बस इतना मालूम है
तू जब आया था
मैं पुलकित हो
आगे बढ़ी थी
और तूने थमा दी थी
एक चाबी
अपने वासंती द्वारों की
महक उठे थे वन-उपवन
और मेरा मन
किंतु पतझड़ का आना भी
निश्चित था
गोधूलि की वेला में
एक चाबी मेरे दूसरे हाथ में
और आई।

आज मैं जीवन के
दो राहे पर खड़ी हूँ
मेरी आँखों के सामने
दोनों चाबियाँ हैं।

मैं दोनों चाबियों में
ढूँढ़ती हूँ अपना वसंत
फूली सरसों की पुलक
और महकता उपवन
किंतु यह महज उपहास है
विधाता का
मेरे जिस हाथ में
चमकती हुई सोने की चाबी है
वह आँख कमजोर हो चुकी है
स्पष्ट है रोशनी
उस आँख की
जिसके सामने है चाबी
काली लोहे की
और लटक रहे हैं धागे
जिसमें यज्ञोपवीत के
मृत पिता की अंतिम
क्रिया के समय
उसे मैंने स्मृति रूप में
सहेजा था
यह चाबी याद दिलाती है
कर्तव्य और कर्म की
जहाँ दूर-दूर तक वसंत की पदचाप
नहीं है
और मैं खामोश बैठी हूँ
मेरी दोनों आँखें अब टिक चुकी
हैं
काली चाबी के पार से
दिखते संसार पर।

□

यात्रा

पिछले वसंत में तुम आए थे
सहमती पदचापों के साथ
फूलों का धनुष-बाण लिये,
महक उठी थी मन बगिया
कदंब, पारिजात-सी
दूर से ही सही
पर मैंने भी
देखा था तुम्हें
वसंती रंग में
अचानक आतप और बरखा
दोनों ही चले आए थे
बिन बुलाए।

किंतु उनका आना
और चले जाना
निशा और उषा-सा ही था
वसंत का रंग
कहीं अधिक गहरा था
किंतु अब राही!
तुम विदाई लो
कहीं पतझड़ तुम्हें
टेर रहा है।

अपना वसंत मनाने के लिए
मैं तुम्हारे दिव्य मस्तक पर
विजय तिलक दूँगी
और दूँगी अक्षत
मंगल कामनाओं के साथ
तुम्हारी यात्रा के लिए।

□

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
ललित कला विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी-२२१००२

कहानी

रघुनाथ बाबा

✍ स्व. रामेश्वरनाथ तिवारी

रघुनाथ बाबा मेरे प्रायमरी स्कूल जीवन के अध्यापक हैं। उनके निरीह जीवन की कथा भारत के दीन प्रायमरी स्कूल अध्यापकों की करुण कथा है। बाबा के पढ़ाए हुए कई शिष्य अच्छी आयवाले पदों पर पहुँच गए हैं; किंतु बाबा की आर्थिक स्थिति में कोई उन्नति नहीं हुई, अलबत्ता ह्रास भले ही आ गया है। जब कभी मैं अपने देश के किसी प्रायमरी शिक्षक को देखता हूँ, मुझे बाबा की करुण मुखाकृति याद हो आती है और मुझे लगता है कि जब तक देश के इन लक्ष-लक्ष शिक्षकों—मूक निर्माताओं—को उनका उचित प्राप्य नहीं मिल जाता तब तक समाज में खड़े और लोगों की भौतिक समृद्धि और ऐश्वर्य एक बहुत बड़ा उपहास, व्यंग्य और छलना भर है। जब तक प्रायमरी शिक्षकों पर ध्यान नहीं दिया जाता तब तक देश की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती है। नग्न तन और भग्न मन लेकर चलनेवाले बुभुक्षाग्रस्त प्रायमरी शिक्षक क्षुधित पाषाण नहीं तो और क्या हैं। और इन क्षुधित शिलाखंडों से कैसे उम्मीद की जा सकती है कि वे हाड़-मांस के बने संवेदनशील बालकों के हृदय-पट पर अच्छे और बारीक अध्यापन की लकीरें खींच सकेंगे?

इस प्रसंग में मुझे दो रूसी लेखकों गोर्की और चेखव की एक भेंट का स्मरण हो आता है। गोर्की ने इस भेंट का जो विवरण दिया है, उसका एक अच्छा सा अंश यहाँ मैं देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। गोर्की ने लिखा है, 'चेखव ने एक बार अपने गाँव में मुझे आमंत्रित किया। वहाँ उनकी थोड़ी सी जमीन थी और एक दुमंजिला मकान। उन्होंने अपनी जमीन-जायदाद दिखाते हुए कहा, 'गोर्की, अगर मेरे पास ढेर सा रुपया होता तो मैं देहात के बीमार शिक्षकों के लिए यहाँ एक सेनेटोरियम बनवा देता। उस भवन में बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ होतीं, ऊँची छत होती और वह प्रकाश से जगमग करता होता। मैं उसमें एक अच्छा सा पुस्तकालय रखता; हर तरह के वाद्य-यंत्र रखता; तरकारी का एक बगान रखता; एक बगीचा रखता और वहाँ भूगर्भशास्त्र, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान आदि पर भाषणों की व्यवस्था रखता; क्योंकि शिक्षकों को सबकुछ की जानकारी रखनी चाहिए।

'गोर्की, क्या तुम्हें मेरे स्वप्नों से ऊब आ रही है? मुझे इस बात में गहरी दिलचस्पी है। काश, तुम महसूस करते कि रूस के देहातों में अच्छे, चतुर और सुशिक्षित अध्यापकों की बेतरह जरूरत है! रूस में हम लोगों को अध्यापकों के लिए बहुत आला दरजे की परिस्थितियों का निर्माण करना है—और वह भी बहुत जल्द; क्योंकि हम सभी जानते हैं कि यदि जनता को सर्वतोमुखी शिक्षा नहीं दी जाएगी तो हमारा राज्य उस मकान की तरह ढह जाएगा जो अधपकी ईंटों पर खड़ा किया जाता है। शिक्षक को अभिनेता और कलाकार होना चाहिए। अपने कार्य में उसका गहरा प्रेम होना चाहिए। और अभाग्यवश हमारे शिक्षक भोले-भाले और नादान अर्धशिक्षित प्राणी हैं, जो गाँवों में उसी उत्साह से लड़कों को पढ़ाने जाते हैं जिस उत्साह से वे देशनिकाले पर जाते थे। वे बुभुक्षित और पददलित हैं तथा उन्हें अपनी आजीविका के खोने का बराबर भय बना रहता है। शिक्षक को तो गाँव का पहला आदमी होना चाहिए, जो किसानों के द्वारा पूछे गए हर प्रश्न का सही-सही जवाब दे सके; जो अपनी शक्ति के प्रति किसानों में सम्मान-भावना जगा सके; और किसी को भी यह हिम्मत न हो कि उसकी अवहेलना कर सके। यह न हो कि कोई आकर उसकी प्रतिष्ठा को नीचे गिराए, जैसा कि आजकल हमारे देश में हर कोई करता है। गाँव की पुलिस, धनी-महाजन, पुरोहित, स्कूल की प्रबंध समिति के सदस्य या संरक्षक और वह पदाधिकारी भी, जो कहा तो जाता है स्कूल निरीक्षक, किंतु जो बराबर व्यस्त रहता है—शिक्षा की परिस्थितियों के सुधार में नहीं, बल्कि ऊपर से भेजे गए सरकारी परिपत्रों के अक्षरशः पालन में। वह आदमी, जिसके ऊपर जनता को, जनता के मस्तिष्क को शिक्षित करने का दायित्व है, इतना कम वेतन पाए, इससे बढ़कर बेहूदा बात और कुछ नहीं हो सकती। यह असह्य है कि ऐसा व्यक्ति चिथड़ों से तन ढके, सीड़न भरे खंडहरनुमा स्कूल में रहे, सदा सर्दी पकड़ता रहे और तीस की उम्र तक आते-आते रोगों का भांडार बन जाए। यह हम लोगों के लिए अगौरव की बात है। गोर्की, मैं तुमसे कहता हूँ, जब किसी शिक्षक से मेरी भेंट होती है, मैं उसके सामने बेहद अटपटा महसूस करता हूँ—उसकी कातरता के लिए, उसकी गंदी वेशभूषा के लिए। मुझे लगता है कि शिक्षक की इस दयनीय अवस्था के लिए किसी अंश तक मैं भी जरूर जिम्मेवार हूँ।'

चेखव ने क्रांति पूर्व रूस के शिक्षकों के संबंध में जो कुछ यह कहा है, वह भारत के स्वाधीनतापूर्व या स्वातंत्र्योत्तर शिक्षकों के लिए अक्षरशः लागू होता है। बिना किसी अतिशयोक्ति के यह कहा जा सकता है कि ऊपर के उद्धरण में से अगर 'रूस' के स्थान पर 'भारत' रख दिया जाए तो वह कथन भी सोलहों आने सही

उतरेगा। चेखव की इस उक्ति को पढ़ते समय यही लगता है कि एक संवेदनशील व्यक्ति बहुत सहृदयता के साथ भारत के ही शिक्षकों की दयनीय आर्थिक स्थिति और उत्पीड़न के चित्र प्रस्तुत कर रहा है।

प्रत्येक वर्ष अपने महाविद्यालय के सत्रारंभ में नि:शुल्क छात्रत्व प्राप्त करने के लिए छात्रों की जो भीड़ मेरे सामने उमड़ती है, उसमें अभिभावकों की मंडली भी प्राय: आती है और जुलाई-अगस्त में शायद ही ऐसा कोई दिन जाता है जबकि किसी सुदूर गाँव का एक निरीह प्राणी, जो प्रायमरी शिक्षक कहा जाता है, मेरे पास अपने अभिभावित के नि:शुल्क छात्रत्व के लिए नहीं आता है। मैं उसे देखकर सिटपिटा जाता हूँ। मैं वैसा ही अटपटा महसूस करता हूँ जैसा चेखव रूस के शिक्षकों को देखकर करता था और मैं प्रार्थना और याचना से भीगी हुई उनकी आवाज निकलने के पहले ही उन्हें रोककर कह देता हूँ—बस इतना ही जानना मेरे लिए काफी है कि आप एक प्रायमरी स्कूल के शिक्षक हैं, इसके आगे आपको कुछ कहना नहीं है। फिर मन में सोचता हूँ कि अल्प वेतनभोगी शिक्षकों को तो अविलंब यह अधिकार मिलना चाहिए कि उनके अभिभावित नि:शुल्क, ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकें, बिना किसी शुल्क के वे सरकार या अन्य संस्थाओं द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में भाग ले सकें; लेकिन यह कैसी विडंबना है कि मेरे देश का एक शिक्षक, जो शत-शत छात्रों का प्रकाशदाता है, स्वयं अपने पुत्र या अभिभावित को ऊँची शिक्षा का प्रकाश देने में असमर्थ होकर याचक के रूप में मेरे द्वार पर या किसी के द्वार पर खड़े होने के लिए विवश है! यह असह्य स्थिति है। इसमें शीघ्र परिवर्तन लाना होगा। लेकिन यह परिवर्तन आ कहाँ रहा है? देश का नेतृवर्ग चिल्ला तो रहा है कि प्रायमरी स्कूलों का शिक्षक समुदाय अल्प-वेतनग्रस्त है और उसे शीघ्र वित्तीय सहायता देने का प्रयत्न होना चाहिए; किंतु होता यह है कि शिक्षकों का वेतन समुचित रूप में बढ़ा है, ऐसी सूचना के बजाय उच्च वेतनभोगियों की ही वेतन-वृद्धि के समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलते हैं।

पर, अब रघुनाथ बाबा की कहानी कही जाय। गाँवों में प्राय: कोई-न-कोई ऐसा परिवार निकल आता है जो 'बाबा'-घर हो जाता है। यह परिवार गाँव के अन्य परिवारों से कुछ इस प्रकार पिछड़ जाता है कि इसका छोटे-से-छोटा सदस्य भी जन्म के दिन से ही लोगों का 'बाबा' बन जाता है। रघुनाथ बाबा ऐसे ही परिवार से आते हैं, वे सारे गाँव के बाबा हैं। मेरे दादा के भी वे बाबा हैं, मेरे भी हैं और मेरे पोतों (जो अभी नहीं हैं) के भी। बाबा की उम्र जिस समय तेईस-चौबीस की होगी उस समय मेरी पचास वर्षीया श्वेत केशधारिणी दादी जीवित थीं।

बाबा उन्हें भी 'पतोहिया' कहते थे। मेरी दादी ही नहीं, उनसे भी बूढ़ी, घुटनों के बल चलनेवाली, पोपले मुखवाली वृद्धाएँ भी उन्हें 'बाबा' ही कहकर पुकारती थीं और वे भी उन्हें 'पतोहिया' कहा करते थे। आज मैं सोचता हूँ कि बचपन से ही चारों दिशाओं से जो यह संबंधमूलक सम्मान प्राप्त होता है, वह भी संभवत: अधिक स्पृहणीय वस्तु नहीं है। छोटा बनने में भी एक अपना सुख है। सामाजिक संबंधों की प्रत्येक भूमिका का अपना महत्त्व और अपना रस है।

रघुनाथ बाबा को मैं प्रतिदिन देखा करता था। मेरे घर के सामने से ही खेत शुरू हो जाते हैं। दक्षिण की ओर काली माई के चबूतरे के पास कटहल के दो पेड़ चिरबंधु की तरह खड़े हैं, उनके पास का खेत उन्हीं का है। उन्हें मैं बचपन में प्राय: इधर ही आते देखा करता था। पर कुछ दिनों के बाद यह जाना कि सामने के इस खेत में, कभी धोती ओढ़े, कभी नंगे बदन, कभी गमछा माथे पर बाँधे काम करते और खाँची ढोते उनके रूप में जो व्यक्ति दिखाई पड़ता है, वही हमारा भावी गुरु होगा।

हमारा गाँव छोटा है। उसका समीपवर्ती गाँव है—दलसागर। दोनों के बीच में आम का एक बगीचा है। दलसागर में ही रघुनाथ बाबा की पाठशाला है, जहाँ वे आस-पास के गाँवों के बच्चों को पढ़ाया करते हैं। अभी तक मैं अपने गाँव-घर की परिधि से बाहर नहीं गया था। मेरे गाँव और दलसागर के बीच बगीचे का जो व्यवधान था, वह मानो अनंत बनकर मेरी आँखों के सामने खड़ा था। शैशव की सुकुमार शक्तियाँ पंख फड़फड़ाकर उस व्यवधान का अतिक्रमण करना चाहती थीं; पर दूसरे ही क्षण अज्ञात भय की सिहरन समूचे शरीर में परिव्याप्त हो जाती थी।

किंतु बहुत दिन से चले आ रहे बगीचे के उस लंबे व्यवधान का अंत आ पहुँचा था। अब मैं दलसागर जाने वाला था; क्योंकि मेरी दादी ने यह निर्णय किया था कि मैं रघुनाथ बाबा के स्कूल में भेजा जाऊँ। बगीचे की इस सीमा पर सेमर का एक बड़ा पेड़ है। सेमर के फूल बड़े सुहावने लगते हैं। वसंत ऋतु में लाल-लाल अंगार जैसे लगनेवाले ये फूल धरती पर बिछ जाते और बच्चों को आमंत्रण देते हैं कि वे आकर उनकी मालाएँ गूँथें। मैं सोच रहा था कि अब सेमर के फूलों से लहलहाती हुई धरती को लाँघकर दलसागर जाऊँगा। जीवन की चहारदीवारियाँ टूटने के लिए ही बनी हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य का कर्मक्षेत्र विस्तार पाता जाता है, दीवालें टूटती जाती हैं और वह आगे बढ़ता जाता है। गृह, गाँव, थाना, जिला, राज्य और देश की सीमाओं को तोड़कर आज का मानव विश्व मानव बनने की प्रसव पीड़ा से गुजर रहा है। पर उसकी मानसिक संकीर्णता उसे रह-रहकर दबोच लेती है और वह निहायत भद्दे और बेहूदे रूप में प्रकट हो जाता है दलसागर का बगीचा, जो मेरे और बाबा की पाठशाला के बीच खड़ा था, बहुत दिनों तक बाधा के रूप में नहीं रह सका। एक दिन प्रात:काल बाबा मेरे द्वार पर आकर खड़े हो गए। कृषक के रूप में उनकी जो तसवीर थी उससे उनके शिक्षक की तसवीर भिन्न थी ठेहुने से तनिक नीचे आनेवाली मोटिए की धोती शरीर पर उजली खादी या शायद मोटिए की एक साफ कुरता, सिर पर सफेद टोपी, काँख

के नीचे बहियों और कॉपियों का एक बस्ता, हाथ में एक रूल, कान में एक कलम खोंसी हुई—यही थे प्रायमरी स्कूल के शिक्षक रघुनाथ बाबा। दादी ने जब उनसे भरे कंठ से कहा, 'बचवा पर ध्यान रखना, बाबा।' तो बाबा ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, 'घबरा मत, पतोहिया। मैं बच्चे का हर खयाल रखूँगा।' पर दादी भीत भाव से उनके हाथ के रूल को देख रही थीं। उसे लक्ष्य कर उन्होंने कहा, 'नहीं-नहीं पतोहिया, यह रूल तो बही पर लकीर खींचने के लिए है। हाँ, कभी-कभी यह दुष्ट बालकों का दुःखहरन भी जरूर बन जाता है; किंतु तुम्हारे बचवा को सींक की छड़ी से भी नहीं छूऊँगा।'

बाबा ने, मैं स्वीकार करूँगा, अपनी इस प्रतिज्ञा को, जब तक मैं उनके स्कूल में रहा, भली-भाँति निबाहा और कभी मुझे पीटा नहीं; यहाँ तक कि डाँटा भी नहीं। पर शायद एक बार कान उमेठे थे, वह किस अपराध में, सो विशेष स्मरण नहीं। पर शायद इसलिए कि मैं एक बालक से पिट गया, पर उसे पीटा नहीं। बाबा ने निष्करुण स्वर में कहा, 'जिंदगी में क्या इसी तरह दब्बू बने रहोगे, पिटे जाओगे, पर पीटोगे नहीं? तब तो यह दुनिया ही तुम्हें खा जाएगी।' बाबा के इस कथन में जीवन का बहुत कठोर सत्य छिपा हुआ है। दुनिया की गति विचित्र है। यह झुकनेवालों की नहीं, झुकानेवालों की है; दबनेवालों की नहीं, दबानेवालों की है; पिटनेवालों की नहीं, पीटनेवालों की है। इसलिए नम्रता के साथ-साथ कठोरता का, नमनीयता के साथ-साथ दृढ़ता का और विनय के साथ-साथ शक्ति का भी अभ्यास करना आवश्यक है। पर मैं आज सोचता हूँ कि अपने शिष्यों को दृढ़ता और कठोरता का उपदेश करनेवाले बाबा क्या स्वयं दब्बूपन और निर्जीवता के शिकार नहीं रहे हैं? क्या स्वयं वे अपने उच्चाधिकारियों के शासन के जुए के नीचे अकारण ही पिसते नहीं रहे हैं? अस्तु।

बाबा के स्कूल में कक्षाएँ चार थीं, पर शिक्षक के नाम पर वे थे अकेले ही। आज दो-ढाई दशकों के बाद भी स्थिति बदली नहीं है। देश स्वाधीन हो गया है; किंतु उनके स्कूल में एक भी नए शिक्षक की बहाली नहीं हुई है और वे स्वयं चारों कक्षाओं का अध्यापन-भार वहन कर रहे हैं। फिर भी, उस समय बाबा खूब तन्मयता के साथ हम लोगों को पढ़ाया करते थे। अध्यापन उनके लिए तप था। वे पाठशाले से बाहर एक श्रमजीवी किसान थे और हैं। जो दो-एक बीघे जमीन उनके पास है, उसपर वे अब भी जी-तोड़ परिश्रम करते थे और करते हैं तथा पाठशाले में वे शिशुओं के लिए ज्ञान-गंगा, प्रेम-गंगा बन जाते थे और हैं।

बाबा का गाँव में किसी से कुछ लेना-देना नहीं रहता। उन्हें बस अपने काम की धुन रहती है। लड़ाई-झगड़ा क्या है, यह तो वे तब भी नहीं जानते थे और आज भी नहीं जानते हैं। समूचे गाँव से उनकी भवद्दी है। सबके यहाँ खान-पान है। गाँवों में खान-पान का रिश्ता तो किसी से तब टूटता है जब कोई झगड़ा वगैरह हो जाय, पर बाबा ने तो कभी झगड़ा किया नहीं; इसलिए उनकी भवद्दी गाँव में सबसे ज्यादा है। लड़ाई-झगड़े के चलते दूसरों की भवद्दी पाँच-छह या दो-चार घरों तक आकर परिसीमित हो गई है; किंतु बाबा की भवद्दी तो ज्यों-की-त्यों है।

बाबा की एक खूबी यह थी कि वे शुद्ध हिंदी बोलते और लिखते थे। आज प्रायमरी स्कूल से निकले हुए छात्रों की अशुद्ध भाषा देखता हूँ, तब मुझे छात्रों पर कम, उनके गुरुओं पर अधिक तरस आता है। बचपन में अशुद्ध भाषा का जो संस्कार बालकों के मन पर पड़ जाता है, वह बी.ए. तक आते-आते भी नहीं मिटता। आजकल प्रायमरी शिक्षकों में वह लगन और निष्ठा भी शायद नहीं है, जो दो दशक पहले थी। बाबा के लिए अध्यापन केवल एक वृत्ति ही नहीं था, एक मिशन भी था।

बाबा अध्यापक के साथ-साथ एक किसान भी हैं; और भारत का औसत किसान काफी चतुर और कुछ दह तक धूर्त भी (अगर ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं मानी जाए तो) होता है। यह धूर्तता वातावरण से उत्पन्न हुई है। अपने इर्द-गिर्द खड़े सभी सरकारी कर्मचारियों को बंधु के रूप में नहीं, शोषक और उत्पीड़क के रूप में देखते-देखते उसमें एक चौकन्नेपन का भाव, ऐसा भाव जो हर चीज को अच्छी तरह से जाँच-पड़ताल कर लेने की प्रेरणा देता है, आ गया है। यही चौकन्नापन, मेरा खयाल है, कभी-कभी धूर्तता का रूप धारण कर लेता है। या यह भी हो सकता है कि औरों के हाथों धोखा खाते-खाते कुछ उसमें भी ठगने की वृत्ति आ गई है। जो हो, गाँवों में ऐसे किसान आपको कम संख्या में नहीं मिलेंगे, जो ऊपर से मिठबोलिए, सीधे और दाँव-पेंच रहित दिखाई पड़ते हैं; पर भीतर से वे काफी होशियार, चौकन्ने और धूर्त होते हैं। पर इनकी धूर्तता का अर्थ सर्वत्र दुष्टता नहीं है। कभी-कभी या अधिक बार यह धूर्तता

दुष्टता का रूप धारण कर लेती है, पर प्रायः इसमें विनोद का भी योग अधिक रहता है। बाबा ने भी दो-एक बार ऐसी विनोदपूर्ण धूर्तता से काम लिया है।

बाबा की कन्या सयानी हो गई थी। पास में इतने पैसे नहीं थे कि ये तिलक की ऊँची रकम दे पाते। सो ये एक गाँव के अच्छे प्रतिष्ठित आदमी के यहाँ गए। उसका लड़का इन्हें पसंद आया। तिलक की माँग इतनी ऊँची थी कि वह बाबा के सामर्थ्य के बाहर की बात थी। पर बाबा घबड़ाए नहीं। गाँव के लोगों ने भी इनकी मदद की। तिलक की माँग थी एक हजार। तिलक के दिन बाबा चढ़ा आए—एक सौ रुपए। अब लड़केवाले ने रुपया फेंकना शुरू किया। इसपर गाँव के लोगों ने कहा, 'महाराज, आप यह क्या करते हैं? आखिर बाबा खानदानी आदमी हैं। द्वार पर देने के लिए ही तो नौ सौ की रकम रोक रखी गई है। इसके अलावा आपको खर्च ही क्या करना है, तंबू लाने की जरूरत नहीं है, नाच से हम लोगों को सख्त चिढ़ है। तब आपका खर्च ही क्या है?' किसी तरह वह आदमी राजी हुआ। आखिर कर भी क्या सकता था, तिलक-समारोह में ही वह काफी रुपए खर्च कर चुका था।

इधर बाबा ने रामोबरिया के बाजार में आए हुए उस गाँव के दो-एक आदमियों से कहलवाया, 'देखिए, समधी से जाकर कह दीजिएगा कि हम तो तंबू-नाच नहीं चाहते हैं; पर गाँव के लोग उनका माथा फोड़ देंगे, अगर तंबू नहीं आया, नाच नहीं आया (वह भी एक जोड़ा—एक वेश्या का, एक जोगिन का) तो गाँव के लोग माटा-चूँटा और ढेले फेंककर बारात की हजामत बना देंगे। मैं क्या करूँ भाई, मैं तो लाचार हूँ। मैं गाँववालों को समझा रहा हूँ, पर वे सब मानते ही नहीं हैं। कहते हैं कि बाबा, आपकी लड़की का विवाह है, कोई हँसी-खेल नहीं है, किसी नाई-धोबी की लड़की का विवाह नहीं है कि बिना तंबू-नाच के बारात आएगी। सो भाई, मैंने तो खबर दे दी, अब समधी अपना काम जानें।'

नतीजा यह हुआ कि उनके समधी को खूब तड़क-भड़क के साथ बारात लानी पड़ी, तंबू और एक जोड़े नाच के साथ। तिलक के बाकी रुपयों को भी अब देने की क्या जरूरत थी!

एक बार बाबा के स्कूल का निरीक्षण करने के लिए एक डिप्टी साहब पहुँचे। ये डिप्टी साहब बड़े घूसखोर थे और प्रायमरी शिक्षकों को बहुत तंग करते थे। बाबा के जीवन का तो उसूल ही है कि एक पैसा भी घूस न दी जाए। शिक्षा विभाग के अधिकांश किरानियों को जब तक घूस नहीं दी जाती, वे वेतन भी हाथोहाथ नहीं देते। पर बाबा कभी ऑफिस में नहीं गए। वे तो चाहे छह महीने ही क्यों न बीत जाएँ, मनीआर्डर से ही वेतन की प्रतीक्षा करते हैं। सो, बाबा इन डिप्टी साहब को भी घूस नहीं देते थे। ये डिप्टी इनपर बहुत बिगड़े और काम में कोई त्रुटि न पाकर यों ही अंड-बंड बकने लगे। बाबा ने धीरज के साथ उनकी बातों को बरदाश्त किया। उन्होंने तब पूछा, 'वेल, दहिवर गाँव आप जानता है? कितनी दूर है?'

'जी हाँ, हुजूर।' बाबा ने कहा, 'है तो यहाँ से एक मील की दूरी पर ही, लेकिन बरसात का दिन है, सीधा जानेवाला रास्ता जलमय हो गया है (हालाँकि वह रास्ता बिलकुल सूखा था), इसलिए जरा घूमकर तिरछे जाना होगा।'

डिप्टी साहब ने सोचा कि एक मील के बजाय तिरछे, यही न कि डेढ़ मील चलना होगा, सो वे चलने के लिए तैयार हो गए। बाबा मार्गदर्शक बने और तिरछा रास्ता ऐसा पकड़ा कि आठ-नौ मील का चक्कर ले लिया। खेतों की पतली विषम पगडंडी पर चलते-चलते डिप्टी महोदय की बाई छटक गई। वे पसीने से तर-बतर होकर बोले, 'मैन, आप बोलता था कि एक मील है, और यहाँ रास्ता खतम नहीं होता।'

बाबा ने ओठों की कोरों में डिप्टी को न दिखाई पड़नेवाली कुटिल मुसकान लाकर, भोलेभाले स्वर में कहा, 'हुजूर, हम लोग देहाती आदमी हैं, सही नाप-जोख क्या जानें! हम लोग तो इसी को एक मील कहते हैं।'

डिप्टी कह भी क्या सकते थे। जब वे दस मील का चक्कर लगाकर दहिवर पहुँचे तब बदहवास होकर स्कूल की कुरसी पर गिर पड़े।

बाबा एक आदर्श भाई हैं। उनके छोटे भाई हैं—प्रभुनाथ बाबा, जो एक दूसरे स्कूल में गुरु हैं। वे लक्ष्मण हों या न हों, बाबा ने उन्हें राम की तरह स्नेह और प्यार दिया है। प्रभुनाथ बाबा उन्हें डाँट देते हैं, पर वे सहज भाव से बरदाश्त कर लेते हैं। आज जब चारों ओर संयुक्त परिवार व्यवस्था विघटित हो रही है, बाबा क्रोधी प्रभुनाथ बाबा और उनकी चंडिका वधू को एक संयुक्त परिवार की छाया में समेटे हुए हैं।

प्रायमरी स्कूलों में नई व्यवस्था के अनुसार छात्रों से फीस नहीं ली जाती। पहले शिक्षकों को सात-सात दिनों पर सनीचरा का सीधा भी मिल जाया करता था; पर अब वह भी बंद हो गया है। इस सीधा (अन्नदान) से ग्रामीण शिक्षकों का काफी उपकार होता था। बाबा की आर्थिक स्थिति भी अधिक दयनीय हो गई है, और मैं उनके विपन्न बन जाते हुए जीवन को देखकर काँप-काँप उठता हूँ। बचपन में मैंने बाबा को कभी गंदे कपड़ों में देखा हो, यह याद नहीं है; लेकिन अब बढ़े हुए परिवार की जिम्मेवारियों और समय के हिसाब से कम पड़ गई आय ने उन्हें शायद साबुन खरीदने में भी संकोच करने के लिए विवश कर दिया है।

मैं सोचता हूँ कि रघुनाथ बाबा प्रायमरी शिक्षक समुदाय के एक औसत प्रतिनिधि हैं; और जब तक समूचे शिक्षक समुदाय के चेहरे पर उल्लास, शरीर में मांस और वस्त्रों में सफेदी नहीं आ जाएगी, उन सब चीजों को रघुनाथ बाबा में देखने की उम्मीद करना आशा से युद्ध करना ही है।

□

(प्रस्तुति : श्रीमती ऋता शुक्ल
टैगोर शिखर पथ, मोराबादी
राँची)

लोक-साहित्य
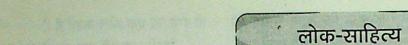
वैवाहिक संस्कार गीतों में छेड़छाड़ और मनुहार

✍ मृदुला सिन्हा

भारतीय अवधारणा में विवाह मात्र दो व्यक्तियों का संजोग नहीं, दो परिवारों का मिलन है। दो अनजान परिवारों के गुण, कर्म, दोष मिलाकर संबंध बनाया जाता है। विवाह का योग बनने पर 'संबंधी' कहलाते हैं। दोनों परिवार संबंध बनाने, रिश्ते को पुख्ता करने में विभिन्न लोकाचारों का सहारा लेते हैं। विवाह के अवसर पर हर रीति-रिवाज और लोकाचार को विवाह गीत गाकर मंगलकारी बनाया जाता है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में भाव एक ही होता है। भाषा और रीति-रिवाज बदलते हैं। और ये 'संस्कार गीत' कहलाते हैं। ये गीत मात्र मनोरंजन के लिए नहीं होते। ये गीत विवाह योग्य वर-कन्या के साथ-साथ समाज का भी संस्कार करते हैं। इसलिए इस गीत का रंग इंद्रधनुषी होता है। विवाह के समय बारात दरवाजे पर आने का विशेष महत्त्व है। उसकी बृहत् तैयारी की जाती है। बारात दरवाजे लगने के समय मात्र दूल्हे का महत्त्व नहीं होता, समधी का विशेष महत्त्व होता है। इसलिए उनका विशेष स्वागत होता है। इस अवसर पर दरवाजे पर स्वागत गीत होता है; परंतु इन गीतों में छेड़छाड़ भी समाहित है। वधू पक्ष की ओर से अपने को ऊँचा खानदान समझने का भाव रहा है—

दूल्हा आयो धूम से खूब रंग लायो री
दुल्हन की उम्मीद में माई को नचायो री
दूल्हा आयो धूम से खूब रंग लायो री
दुल्हन की उम्मीद में बहिनी को नचायो री।

इसी प्रकार दूसरा गीत है—

बागो बागो में तमाशा क्यों न लाया रे बन्ना
अपने बाबूजी को साथ क्यों न लाया रे बन्ना
अम्मा रानी को नचाता क्यों न लाया रे बन्ना।

दूसरा स्वागत गीत है—

अरे समधी तू क्या जाने तेरा खानदान छोटा है
तेरी जीजी भरे पानी तेरा जीजा तो खोटा है।
(इसी प्रकार सभी रिश्तों को लेकर)

बारात का स्वागत किया जा रहा है। कन्या पक्षवाले सहमे हुए भी हैं कि स्वागत में कोई कमी न रह जाए। कहीं वर पक्षवाले नाराज न हो जाएँ और दूसरी ओर ललनाएँ गीत गा-गाकर उन्हें छेड़ भी रही हैं, गालियाँ दे रही हैं। दूल्हे द्वारा अपनी माँ अर्थात् समधिन को नचाने की बात समधी का छेड़छाड़ ही तो है। पत्नी को भरी बारात में नचाना कोई मर्यादित कार्य नहीं है। इस प्रकार समधी को गीतों द्वारा छेड़ा जाता है।

दूसरे गीत की पंक्तियाँ हैं—

समधी देखो कैसा निराला है, समधी देखो···
मेरा समधी घोड़ा चढ़त है लोग कहे घोड़ा वाला है रे समधी देखो···
मेरा समधी मोटर चढ़त है
लोग कहे ड्राइवर है रे, समधी देखो···

और समधी महाशय हैं, जो रंच मात्र भी विचलित नहीं होते। मंद-मंद मुसकाते हैं, गालियों के रस में डूबते हैं।

मेरे समधीजी बड़े होशियार नाम उनका सुन लीजिए।
काले-काले मूँछ पर चश्मा चढ़ाते
देखन में लागें बिलाड़, नाम उनका सुन लीजिए॥

यह सब सुनकर कोई समधी गुस्सा होकर भागता नहीं, उलटा ये सुमधुर गालियाँ नहीं सुनने पर समधी और बाराती को खाली-खाली लगता है। कभी-कभी तो ये रस भरी गालियाँ उनके मन के नाराजगी रूपी काँटे को निकाल फेंकती हैं।

इस छेड़छाड़ और मनुहार गाने का एक और उद्देश्य है। वर पक्ष

और वधू पक्ष के अनेक रिश्तेदार उपस्थित होते हैं। जैसे वर पक्ष के ताऊ, चाचा, दादा, भाई, बहनोई, फूफा आदि। यही रिश्तेदार, वधू पक्ष के भी होते हैं। इसलिए गीत गा-गाकर उन रिश्तों का मिलन कराया जाता है। सबका नाम लेकर परिचय कराया जाता है। दोनों परिवार समरस कैसे हों। अधिकतर रिश्तों से छेड़छाड़ और मनुहार किए जाते हैं, पर कुछ संबंधों से नहीं। जैसे समधिन के साथ हास-परिहास में छेड़छाड़ होती है, परंतु लड़के और लड़की की बहनों के साथ नहीं। ये सब सामाजिक आचार-संहिताएँ हैं—

स्वागत में, स्वागत में गाली सुनाओ मेरी सखियाँ
इस समधीजी को टोपी नहीं है
कागज की टोपी पहनाओ, पहनाओ मेरी सखियाँ।
इस समधी साहब को कुरता नहीं है
बहिनी का ब्लाउज पहनाओ, पहनाओ मेरी सखियाँ।

समधीजी के लिए एक और गीत की पंक्तियाँ हैं—

समधी गाली न देइछी व्यवहार करइछी
हमर चाचा कुँआर अहाँ के चाची मँगइछी।

विवाह के हर रस्म-रिवाज को मनमोहक और जीवंत बनाने में इन मनुहार व छेड़छाड़ गीतों की विशेष घुसपैठ होती है। जैसे लड़की को चढ़ाने के लिए साड़ी और जेवर जेठ लाता है, कहीं-कहीं ससुर भी चढ़ाता है। पंडितजी द्वारा मंत्रोच्चारण के बीच इस आभूषण चढ़ाई की रस्म संपन्न होती है। परंतु उस सुअवसर का निरीक्षण करती ललनाएँ कहाँ चूकती हैं। जेठ के साथ भी छेड़छाड़ कर देती हैं—

बन्नी मेरी नई नवेली, ऐसी अलबेली पीतल नहीं पहनेगी
बन्नी को चाहिए सोने का टीका, ये भी न लाए हो तुम
अरे जेठ साहब कैसे अनाड़ी हो तुम।

दूसरा गीत है—

ले चल बाजार बाजार रे जिया ना लागे ननदी
कैसा है समधी गँवार रे जिया ना लागे ननदी
साड़ी ले आया ब्लाउज न लाया
कैसा है समधी गँवार रे जिया ना लागे ननदी।

विवाह के अवसर पर जेवनार कराया जाता है। अपनी शक्ति भर स्वादिष्ट भोजन बनाकर वधू पक्ष वाले समधी और बारातियों को खिलाते हैं। खाद्य सामग्री की संख्या अपने सामर्थ्य के अनुसार भले ही कहीं कम और कहीं अधिक होती है, परंतु स्वागत-भाव का स्वाद एक ही होता है। वधू पक्ष के लोगों में विनम्रता होती है। वे भयभीत रहते हैं कि कहीं बाराती लोगों को कोई कमी न रह जाए। ये ललनाएँ ऐसे अवसर पर भी समधी और बारातियों को छेड़ना नहीं भूलतीं।

इमली के पत्ता झिलमिल-झिलमिल, जीरा सन-सन भात,
एको अछत छोड़वा बरिअयतिया सब, काटव दूनू कान।

बारातियों को यह छेड़छाड़ गुदगुदाती है। जिह्वा पर तिर आए स्वाद को मधुर बनाते हैं ये गीत। पर ये धमकियाँ महज उनके मनोरंजन के लिए होती हैं। वे भात अपनी थालियों में भरपूर छोड़ जाते हैं; पर इन ललनाओं की हिम्मत नहीं होती कि उनके कान काटें।

थोड़ा-थोड़ा खाना रे महँगी का जमाना
चावल भी महँगा, दाल भी महँगा, महँगी है तरकारी रे महँगी जमाना।

देखिए इन गीत गायनों की ढिठाई। उधर उनकी थालियों में भोजन परोसनेवाले पुरुषों की ओर से 'थोड़ा और', 'थोड़ा और' का आग्रह हो रहा है और इधर ये अपना अलग राग अलाप रही हैं, 'थोड़ा-थोड़ा खाना रे महँगी का जमाना'। यह विपरीत भाव-कंट्रास्ट कलर। विभिन्न भाव रंगों से रँग जाता है जेवनार का अवसर। सुहाना हो जाता है। यादगार बन जाता है। समधी और बारातीगण भोज्य पदार्थों के स्वाद और छेड़छाड़ गीतों के रस में डूबकर भोजन करते हैं। जहाँ जिस गाँव में 'गाली' नहीं गाई जाती वहाँ सूना-सूना लगता है। उनके भोजन समाप्त कर उठते समय कहाँ ये गीतगायन चूकने वाली हैं—

सब बरियतिया भागल जाइअ
एक-एक बड़ी चुरैले जाइअ।

हमारी लोक-परंपरा और लोक-व्यवहार में बेटी न किसी जात, न समाज, न किसी परिवार की होती है, वह पूरे गाँव की होती है। इसलिए बेटी की शादी में पूरे गाँव के बड़े या छोटे व्यक्ति का यथायोग योगदान होता रहा है। अपनी बेटी को सब ऊँचा कर देखते हैं। विवाह योग्य बिटिया में गुण-ही-गुण नजर आते हैं गाँववालों को। इस भाव को एक बेटी-विवाह गीत में बहुत ही सुंदर ढंग से दरशाया गया है—

दूल्हा रामचंद्र जब बरियतिया गोंयर (सीमा) भीड़े आयल हजमा कलश लेले ठार
देवऊ रे हजमा रे कान दूनू सोनमा, मोहि आगू सीता बखान।
हजाम (नाई) हमें कैसे सीता बखानू राजा रामचंद्र सीता सुरजवा के जोत
सीता के जोत चंद्र छपित भेल भूली जायत श्रीराम हे।

एक लंबे विवाह गीत के द्वारा ललनाएँ सीता ब्याहने आए राम से भी छेड़छाड़ करती हैं। राम जब दूल्हा बनकर आते हैं, जनकपुर पहुँचते हैं तो उनका धैर्य टूट जाता है। गाँव का नाई उनके स्वागत में कलश

लेकर सीमा पर खड़ा है। वे उसे दोनों कानों में सोना देने का लोभ देकर पूछते हैं कि बताओ, सीता का रूप कैसा है? नाई के मन में दोनों भाव हैं—अपनी सीता (गाँव की बेटी) को भी सर्वोत्तम समझने का भाव, साथ ही राम के भावों को छेड़ने का अवसर मिलने का आनंद। वह राम से कहता है कि सीता तो सूर्य की ज्योति है। उसकी ज्योति में तो चंद्रमा छुप जाता है, आप तो खो ही जाएँगे। छुप जाएँगे। इसी गीत में राम द्वार पर पहुँचकर, चोरी से, आँगन में पहुँचकर साली से, सुहाग घर (कोहबर घर) के दरवाजे पर सलहज से सीता का रूप बखानने का आग्रह करते हैं, परंतु सबके सब एक ही उत्तर देते हैं, जो नाई ने दिया था। राम उन सब ग्रामवासियों द्वारा अपनी बेटी सीता के प्रति उड़ेले प्रेम में डूब जाते हैं। स्वयं सीतामय हो जाते हैं।

भारतीय समाज में हर लड़के और लड़की का विवाह शिव-पार्वती और विशेषकर राम और सीता का विवाह ही होता है। क्योंकि 'हर बाला सीता की प्रतिमा और बच्चा-बच्चा राम है,' हमारे गाँवों की वर्ण व्यवस्था में सभी जातियों के अपने-अपने कर्मानुसार सामाजिक सहभागिता भी निश्चित की हुई थी। ब्राह्मण, नाई, पनेरी, धोबी, चमार, लोहार, डोम जितनी भी जातियाँ थीं, हर विवाह के अवसर पर उनकी विशेष भूमिका होती थी। किसी भी जाति की अनुपस्थिति उस गाँव में खलती थी। परंपराओं ने उन जातियों को एकसूत्र में पिरोया हुआ था। उन गीतों के माध्यम से उनके विशेष दायित्वों का वर्णन होता था। ग्रामीण समरसता, एकता और एक-दूसरे के प्रति विश्वास ऐसा था कि तिलक लेकर ब्राह्मण और नाई ही जाते थे। कोई घर का सदस्य नहीं जाता था। फिर छेड़छाड़ भी उन ब्राह्मण और नाई का ही होता था—

अकलेल बभना बकलेल बभना
टाँग धरि पटक देव माँझ अँगना
छिपा (थाली) तो लाया है पुरान बभना
अकलेल हजमा बकलेल हजमा
लोटा लाया है पुरान हजमा।

लड़का ढूँढ़ने और पसंद करने ब्राह्मण और नाई ही जाते थे। इसलिए जब दूल्हा आँगन में आता है तो ललनाएँ उसे छेड़ती हैं—

ब्राह्मण की पोथी फाड़ो, हजमा के दाढ़ी जाड़ो
जिन्ह लयलन बुढ़वा जमाय गे माई।

इस गीत में दोनों से छेड़छाड़ है। दूल्हा को भी 'बूढ़ा' कहा जा रहा है और ब्राह्मण तथा नाई के भी पोथी फाड़ने व दाढ़ी जलाने की बात कही जा रही है।

वेदी पर बैठने से पूर्व धोबिन का काम लड़की को नहलाना होता है। एक रस्म के अनुसार धोबिन चुल्लू में पानी लेकर अपने बाल की लट डुबोती है और उस पानी को विवाह से पूर्व कन्या को पिलाती है। कन्या के बाल में दही-हलदी लगाकर उसे नहलाती है। उस रस्म के समय ललनाएँ धोबिन को छेड़ती हैं—

काली धोबिनिया के लामी-लामी केश
चल गे धोबिनिया बभना के देश
बभना के जनमल एक दूगो भेल
धोबिया के जनमल भर घर भेल।

विवाह के लिए दूल्हा जब मंडप पर आता है, उसे छेड़ने की रस्म है। गीतों के माध्यम से ही यह छेड़छाड़ होती है—

अँखिया निरेखू वर तोरा काजल नहीं
तेरी मैया छिनरिया को लूरियो नहीं।
माथ निरेखू वर तोरा चंदनों नहीं
तेरी बुआ छिनरिया को लूरियो नहीं।

दूसरा गीत है—

सिंदूर लाया रे वर डिब्बा में मूँद के
खोल-खोल रे दुलहा न त गाली दूँगी चून के
टीका लाया रे वर डिब्बा में मूँद के
खोल-खोल रे दुलहा न त गाली दूँगी चून के।

विवाह के समय के सभी रस्म-रिवाज लोकाचार हैं। वे लोक-रंजन के लिए बने हुए हैं। सारे रिश्तेदार इकट्ठे होते हैं। अपने विनोद के लिए हर रस्म-रिवाज को हास-परिहास में भिगो लेते हैं, जिसमें डूबने से कोई वंचित नहीं रहता। महिलाएँ अपनों को भी छेड़ती हैं—

अपन अम्मा चुमावन अइली
चोली बंद खोलत अइली
यौवन लुटावन अइली।

कई बार रिश्तों के बीच वर्षों से जमे मनोमालिन्य इस हास-परिहास, छेड़छाड़ और मनुहार की रस-वर्षा में भीगकर धुल जाता है। पुनः रिश्ता सुमधुर हो जाता है। ये संस्कार गीत मात्र मनोरंजन के लिए नहीं हैं। इनका विशेष प्रयोजन है। भारतीय समाज जीवन में हर रिश्ते का अपना रूप, रस, रंग और स्वाद है, विशेष पहचान है। इसलिए स्थान विशेष के कारण रस्म-रिवाज और गीतों के शब्दों में अवश्य अंतर होगा, भाव एक ही। समधी-सास, साला-साली, अम्मा-बुआ, बहन-भाई—सब रिश्तों की अपनी-अपनी महक है, भिन्न-भिन्न तासीर हैं। विवाह के अवसर पर गाए जानेवाले अन्य संस्कार गीतों में घुल-मिलकर ये छेड़छाड़ और मनुहार गीत अवसर को सरस बनाते हैं। नई पीढ़ी को भी सिखाने की आवश्यकता है, ताकि वे एक विशेष रस से वंचित न रह जाएँ। □

१०-ए, राजाजी मार्ग, नई दिल्ली-११००११

व्यंजन—पूर्ण वर्ण/अर्ध वर्ण

✍ रमेश चंद्र महरोत्रा

(१)

'उर्दू-हिंदी शब्दकोश' में अरबी मूल के उपरिसंकेतित शब्द को 'अस्वीकृति, नामंजूरी, न मानना' अर्थों के साथ देवनागरी में 'इन्कार' लिखा गया है। मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' (अहमक़) ने कोश के प्राक्कथन में इस शब्द को 'इंकार' वर्तनी में लिखा जाना अशुद्ध बताते हुए समझाया है कि तब यह 'इङ्कार' हो जाएगा। (संस्कृत मूल के 'टंकार' और 'अंकुर' आदि से समतुल्यता के साथ।)

'लघु हिंदी शब्दसागर', 'मानक हिंदी कोश', 'बृहत् हिंदी कोश' आदि में इस शब्द की वर्तनी 'इनकार' दी गई है। (इसके अर्थ के बारे में कोई बात उल्लेख्य नहीं है, क्योंकि हिंदी के कोशों में भी इसके अर्थ ठीक वही या बहुत मिलते-जुलते दिए गए हैं—अस्वीकार करना, मुकरना, नाहीं करना, न मानने की क्रिया या भाव आदि।)

भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तिका के पृष्ठ सोलह पर कंडिका (८)(ग) के अंतर्गत 'गरदन/गर्दन, कुरसी/कुर्सी, बिलकुल/बिल्कुल' आदि उदाहरण देते हुए इन शब्दों के दोनों वर्तनी रूपों को सही ठहराया गया है।

आज की परंपरा के अनुसार हिंदी वर्तनी संयुक्त वर्णों के वियुक्तीकरण और सरलीकरण की ओर बढ़ रही है, जैसे—

(१) 'विद्या, ब्रह्मा, लट्टू' आदि के बदले 'विद्‍या, ब्रह्‍मा, लट्‍टू' आदि की संस्तुति की जा रही है (देखिए, भारत सरकार की उपरिसंदर्भित पुस्तिका के पृष्ठ दस की कंडिका (१)(आ));

(२) 'मूर्च्छा, कर्त्तव्य, अर्द्ध, वर्म्मा, आर्य्य' आदि के बदले 'मूर्छा, कर्तव्य, अर्ध, वर्मा, आर्य' आदि स्थापित प्राथमिकता पा रहे हैं; तथा

(३) हल्-चिह्न ड्रॉप होकर अनेक शब्दों के अंतिम हलंत वर्ण को पूर्ण वर्ण बनाता जा रहा है, जैसे 'महान्, पृथक्' आदि से 'महान, पृथक' आदि में। इन्हें 'महानता, पृथकता' आदि में भी देखिए, जो अन्यथा 'महान्ता, पृथक्ता' होते।

इस सबके आधार पर 'इन्कार' की तुलना में 'इनकार' का पलड़ा भारी पड़ रहा है।

और भी। जब हम, उदाहरणार्थ, 'तिनका, कनखी, इतवार, पुचकार, कसरत, चलती, उजड़ा, बहके, अनजान, अरमान' आदि बहुत से शब्दों में स्थिति विशेष के लिखित पूर्ण वर्ण का उच्चारण अर्ध वर्ण के रूप में कर ही रहे हैं तो 'इन्कार' की जगह 'इनकार' का चयन-निर्णय क्यों नहीं कर सकते। फलतः ऐसे सभी शब्दों में एकरूपता के नाम पर अर्ध वर्ण की जगह पूर्ण वर्ण लिखा जाना संगत है (जैसे 'गर्मी, बर्दाश्त, तस्वीर, मुसल्मान' आदि की जगह 'गरमी, बरदाश्त, तसवीर, मुसलमान' आदि में)—लेकिन केवल उन शब्दों में जिनमें उच्चारण यथावत् रहते हुए लेखन में विकल्पात्मक स्थिति चल रही हो। (यह नहीं कि आँख बंद करके हर अर्ध वर्ण की जगह पूर्ण वर्ण ठोक दिया जाए!)

(२)

देवनागरी लिपि के पूर्ण वर्णों को अर्ध बनाने के लिए प्रथम पद्धति वर्ण के नीचे हल्-चिह्न लगा देने की है। कोई भी अर्ध वर्ण शब्दांत में आने पर केवल इस पद्धति से बने हलंत रूप में लिखा जाता है; उदाहरणार्थ—पृथक्, विद्, वरन्, दुर्। इन उदाहरणों के अंत में आए हुए चार वर्ण (क्, द्, न्, र्) वर्गीकरण की दृष्टि से अर्ध वर्णों के चार अलग-अलग वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शब्दांत से इतर स्थितियों में प्रयुक्त इन वर्णों के वर्ग इस प्रकार हैं—

(१) पहला वर्ग : पूर्ण वर्ण को अंत में कुछ अधूरा छोड़कर बनाए गए अर्ध वर्ण; नामशः —क्‍, फ्‍।

(२) दूसरा वर्ग : हलंत रूप के अलावा कोई अन्य रूप न रखनेवाले अर्ध वर्ण; नामशः —ङ्, छ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, द्, ह् (ड़्, ढ़् भी इसी वर्ग में रहेंगे)।

(३) तीसरा वर्ग : वर्णांत की खड़ी पाई को हटाकर बनाए गए अर्ध वर्ण; नामशः —ख्‍, ग्‍, घ्‍, च्‍, ज्‍, झ्‍, ञ्‍, ण्‍, त्‍, थ्‍, ध्‍, न्‍, प्‍, ब्‍, भ्‍, म्‍, य्‍, ल्‍, व्‍, श्‍, ष्‍, स्‍।

(४) चौथा वर्ग : तीन सहरूपों वाला अर्ध वर्ण; नामशः—ˆ, ‸, ˏ। र् के इन रूपों का परिपूरक वितरण इस प्रकार है—

(क) ˆ : उच्चारण में स्वर के बाद व्यंजन के पहले; उदाहरण—अर्ह, पूर्णिमा, झिर्री।

(ख-१) ‸ : उच्चारण में स्वर के पहले ऐसे व्यंजन के बाद, जिसके लेखन में नीचे की गोलाई के कारण डंडी में बाईं ओर ˏ लिखने की स्थिति न हो; उदाहरण—ट्रक, ड्रम, उष्ट्र।

(ख-२) ˏ : उच्चारण में स्वर के पहले शेष व्यंजनों के बाद; उदाहरण—क्रम, अग्रिम, द्रुम। □

डगनिया,
रायपुर-४९२०१३
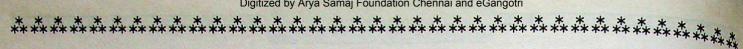
पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' के हर अंक में कुछ-न-कुछ ऐसा महत्त्वपूर्ण मिलता है जो अन्यत्र बहुत कम देखने में आता है। अप्रैल अंक में भारतीय अस्मिता को लेकर लिखा गया संपादकीय गंभीर और मार्मिक है। गहराई तक छूता है। अमृतराय की कहानी 'नगर-वधू' बड़ी जीवंत यथार्थ है। उसी प्रकार आशुतोष भट्टाचार्यजी का बलदेवजी संबंधी संस्मरण भी। लेकिन ऋता शुक्ल की कहानी 'दंड-विधान' कमजोर लगी। रत्नाश्री का चरित्र क्रांतिकारी नहीं बन पाया, परंपरापोषक ही रहा। श्याम विमल का प्रहसन रोचक है। अच्छे कटाक्ष हैं। चित्रा मुद्‌गल ने भी आज की भ्रष्ट साहित्यिक अभिरुचि पर कटाक्ष किया है। 'शब्दों का व्युत्पादन' भी अच्छा लगा। हिंदी के निर्माता शीर्षक लेखमाला बहुत उपयोगी है। इन्हें संग्रह करने से अच्छा सचित्र ग्रंथ बन जाएगा।

—गंगा प्रसाद बरसैंया, छतरपुर

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक मिला। धन्यवाद। अभिराज राजेंद्र मिश्रजी का आलेख इस अंक का सिरमौर है, क्योंकि इसमें लोकगीतों तथा शिष्टगीतों का अद्‌भुत समन्वय है। गुरुवर प्रो. विद्यानिवासजी ने एक गूढ़ विषय को बड़े सहज ढंग से प्रस्तुत कर अपनी अस्मिता की पहचान करा दी है। इस अंक की कविताएँ काफी सशक्त और रोचक हैं। ऐसा कदाचित् ही कभी मिला हो। चित्रा मुद्‌गल के विचार समसामयिक और उपयोगी हैं, सार्थक हैं। श्याम विमलजी का प्रहसन भी अच्छा लगा, सामाजिक संदर्भों का खजाना है।

—राजेश्वरी शांडिल्य, लखनऊ

मई का 'साहित्य अमृत' पढ़कर मन को आनंद हुआ। खासकर संपादकीय से मुझे बहुत ज्ञान मिला। असल में भारत का चित्रण ही उसमें समाया हुआ है। डॉ. रामदरश मिश्रजी की कहानी पढ़ते समय मन को लगा कि इनसान अपने काम के लिए बड़ों का कैसे इस्तेमाल करवाता है। आलेख, व्यंग्य, हिंदी के निर्माता और कविताएँ भी मन को छूनेवाली हैं। यह साहित्यिक विचार बाँटने के लिए देश में एकमात्र बड़ी पत्रिका है। ज्ञानवर्धन के लिए प्रश्नोत्तरी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

—राजु बागलकोट, धारवाड़

'साहित्य अमृत' के मई अंक में मयंक 'श्रीमुख' की कविताएँ 'नवांकुर' में पढ़ीं। मात्र आठ वर्ष की आयु में लेखक, कवि व रचनाकार होना विश्वास दिलाता है कि ईश्वर की शक्ति, कृपा एवं भक्ति का ही परिणाम है कि कवि 'श्रीमुख' का पदार्पण हुआ। ईश्वर उन्हें सतत ज्ञान व भक्ति में लगाए रखे। मैं उम्र में उनसे पचपन वर्ष बड़ा हूँ; पर 'नवांकुर' कवि को स्नेह, आशीष के साथ प्रणाम भी करता हूँ।

—कपूर चंद्र शर्मा, जयपुर

'साहित्य अमृत' के मई अंक के
अमृत का पान किया / और अमरत्व की पाई अनुभूति / कहानियों, लेखों और कविताओं ने / जाग्रत् की प्रीति / सुख-संतोष और परमानंद की हुई / प्रतीति / अब तो मासिक रूप से साहित्य का अमृतपान / करना बन गई है मेरी नीति / माँ सरस्वती के दर्शनों की रीति।

—शरद नारायण खरे, मंडला

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक पढ़ने को मिला। देखकर मन प्रसन्न हो गया। संपादकीय अनेकता में एकता की भावना प्रेरित करनेवाला है। अमृतराय की 'नगर-वधू' एक सशक्त रचना है। ऋता शुक्ल की कहानी 'दंड-विधान' भारतीय नारी का अबलापन ही दरशा रही है। अरुणेश नीरन की तीनों कविताएँ मर्मस्पर्शी हैं; किंतु 'हरिश्चंद्र घाट' ने अत्यधिक मर्माहत किया। गिरिधर करुण का गीत 'सुधि' मर्मस्पर्शी है। अच्छा होता कि रचनाकार ने उसकी तिथि भी दी होती।

—पारसनाथ गुप्त, देवरिया

'साहित्य अमृत' के मई अंक में 'नवांकुर' स्तंभ के अंतर्गत मयंक 'श्रीमुख' की सुंदर कविताएँ पढ़कर बहुत प्रभावित हुआ हूँ। इतनी कम उम्र में मयंकजी इतने सधे शिल्प व काव्यात्मक अंतर्दृष्टि से लिख रहे हैं, यह विलक्षण है। बाल कवि के बारे में जानने की गहरी उत्सुकता है।

—पीयूष दइया, उदयपुर

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक पढ़ा। 'विधवा पेंशन योजना' पर व्यंग्य कविता मन को छू गई। रंग, उमंग और रस से ओत-प्रोत होली का प्रसंग भी काफी रोचक व प्रभावकारी रहा। अप्रैल का संपादकीय, 'नगर-वधू' (आलेख), कविताएँ, 'कौन बनेगा साहित्यपति' (प्रहसन), 'विदाई' (कहानी) आदि सारगर्भित, ज्ञानवर्द्धक, रोचक तथा प्रभावशाली रहे। कृपया और लघुकथाएँ दिया करें।

—महेश प्रसाद, हुगली

'साहित्य अमृत' नियमित मिल रहा है। विद्यानिवासजी का संपादकीय बौद्धिक मनीषा का चरमोत्कर्ष है। अजित कुमार के विचार नए रचनाकारों के लिए प्रेरणास्पद हैं। सिद्धांत और प्रयोग की संप्रेषणीयता किसी भी रचना की समीक्षा में साधारण नहीं है। विद्याबिंदु सिंह की कहानी 'सुरसती बुआ', देवव्रत जोशी की कविता 'काँप गई थी कुछ क्षणों को' और रमेश जोशी की कविता 'पेट की खातिर' हृदयस्पर्शी हैं। आलेख, कहानियाँ, कविताएँ, व्यंग्य आदि स्तंभों में मौलिकता और सर्जनात्मकता का समाहार देखते ही बनता है।

—राजेश्वरी सिंह, सतना

प्रश्नोत्तरी-४७

अगस्त १९९७ से हमने पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु 'प्रश्नोत्तरी' प्रारंभ की थी, जिसमें पाठक निरंतर बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। हमें विश्वास है, पाठकों को आगे भी यह रुचिकर लगेगी तथा पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे और पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा–

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जुलाई, २००१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध जवाबवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो पत्र छाँटे जाएँगे तथा उन्हें एक सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कृत होनेवाले उत्तरदाताओं के नाम-पते सितंबर २००१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने पत्र **'प्रश्नोत्तरी', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ के पते पर भेजें।**

प्रश्नोत्तरी-४४ के शुद्ध उत्तर

१. मम्मट
२. कारयित्री प्रतिभा, भावयित्री प्रतिभा
३. पंडितराज जगन्नाथ
४. जीवनी
५. प्रेमचंद
६. मोहन राकेश
७. अज्ञेय
८. घनानंद
९. राजस्थानी
१०. ३४३

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **सुश्री रिंकू घोष**
बी.एस.एफ. सीनियर सेकेंडरी स्कूल, कदमतला
सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग
प.बंगाल-७३४४३३

२. **श्री गणेश बी. पवार**
शोध छात्र—हिंदी विभाग
कर्नाटक विश्वविद्यालय
धारवाड़, कर्नाटक-५८०००३

प्रश्नोत्तरी-४७

१. किस आलोचक ने बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र को हिंदी का 'स्टील' और 'एडीसन' कहा है?
२. 'निबंध' का जनक किसे माना जाता है?
३. जीवनी साहित्य का प्रारंभ किस युग में हुआ?
४. काका कालेलकर द्वारा लिखित जीवनी कौन सी है?
५. यायावरों के मार्ग-निर्देशन के लिए महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने किस पुस्तक की रचना की?
६. 'रिपोर्ताज' किस भाषा का शब्द है?
७. हिंदी का पहला पत्र कौन सा है?
८. 'कविवचनसुधा' पत्रिका का प्रकाशन किस रचनाकार ने आरंभ किया?
९. महादेवी वर्मा ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयाग में किस संस्था की स्थापना की?
१०. नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना कब हुई थी?

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

हिंदी अकादमी द्वारा सम्मान प्रदत्त

गत दिनों हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा मावलंकर सभागार में साहित्यकार एवं कृति सम्मान समारोह आयोजित किया गया। समारोह में वरिष्ठ रंगकर्मी श्रीमती जोहरा सहगल ने सभी साहित्यकारों को सम्मानित किया। इस अवसर पर दिल्ली के शिक्षामंत्री डॉ. नरेंद्रनाथ मुख्य अतिथि थे। समारोह की अध्यक्षता हिंदी अकादमी के उपाध्यक्ष श्री जनार्दन द्विवेदी ने की। मंच संचालन डॉ. अशोक चक्रधर ने किया।

इस अवसर पर कथाकार श्रीमती कृष्णा सोबती को वर्ष २०००-२००१ के 'शलाका सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें एक लाख ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रुपए का चैक, शॉल तथा प्रशस्ति-पत्र भेंट किया गया। वर्ष २०००-२००१ के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित किए गए साहित्यकारों में प्रो. निर्मला जैन, श्री सत्येंद्र शरत, डॉ. मैनेजर पांडेय, श्री प्रेम कपूर, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, डॉ. (श्रीमती) कमल कुमार, डॉ. धर्मेंद्र गुप्त, डॉ. रमेशदत्त शर्मा, श्री वीरेंद्र सांघी तथा श्री रवींद्र त्रिपाठी शामिल हैं। प्रत्येक साहित्यकार को सम्मानस्वरूप इक्कीस हजार रुपए का चैक, शॉल तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। साथ ही वर्ष २०००-२००१ के हास्य-व्यंग्य कविता के लिए 'काका हाथरसी सम्मान' डॉ. सरोजनी प्रीतम को प्रदान किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें इक्कीस रुपए का चैक, शॉल तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया।

इस अवसर पर वर्ष १९९९-२००० का 'विशिष्ट कृति सम्मान' श्री महावीर त्यागी (निधनोपरांत) को उनकी 'कृति आजादी का आंदोलन : हँसते हुए आँसू' के लिए प्रदान किया गया। वर्ष १९९९-२००० के 'साहित्यिक कृति सम्मान' से सम्मानित किए गए साहित्यकारों में श्रीमती चित्रा मुद्‌गल, प्रो. रामशरण जोशी, डॉ. मक्खनलाल शर्मा, श्री भगवानदास मोरवाल, श्री प्रताप सहगल, डॉ. रूपसिंह चंदेल, डॉ. रमेशचंद्र मिश्र, श्री देवेंद्र राज 'अंकुर', डॉ. राज बुद्धिराजा तथा श्री गौहर रजा शामिल हैं। 'साहित्यिक कृति सम्मान' से सम्मानित साहित्यकारों को ग्यारह सौ रुपए का चैक, शॉल तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए गए।

साथ ही 'बाल साहित्य कृति सम्मान' वर्ष १९९९-२००० से सम्मानित किए गए साहित्यकारों में पद्मश्री श्री चिरंजीत, श्री बलवीर त्यागी, श्रीमती चित्रा गर्ग, श्रीमती वंदना जोशी तथा डॉ. बी.आर. धर्मेंद्र त्यागी शामिल हैं। प्रत्येक को इक्यावन सौ रुपए का चैक, शॉल तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए गए।

इस अवसर पर डॉ. नरेंद्रनाथ ने सम्मानित किए गए साहित्यकारों के संक्षिप्त जीवन परिचय से संबंधित एक स्मारिका का भी लोकार्पण किया। □

'हिंदी रत्न' सम्मान प्रदत्त

५ मई को नई दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब में विश्व हिंदी एवं संस्कृति अलंकरण समारोह एक समारोह का आयोजन हुआ, जिसमें उ.प्र. के राज्यपाल महामहिम आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने छह विदेशी तथा दस भारतीय मनीषियों को उनकी हिंदी सेवा के लिए ताम्रपत्र, प्रशस्ति-पत्र, वाग्देवी की प्रतिमा, ग्यारह हजार रुपए का चैक और शॉल ओढ़ाकर 'हिंदी रत्न' से सम्मानित किया। सम्मानित विदेशी साहित्यकारों में थे—जापान के प्रो. तोमियो मिजोकामि, मॉरीशस के श्री अजामिल मताबदल, जर्मनी की डॉ. मार्गोट गात्सलॉफ, दक्षिण अफ्रीका के प्रो. राजभजन सीताराम, त्रिनिडाड एवं टुबैगो के प्रो. हरीशंकर आदेश, नीदरलैंड के डॉ. मोहनकांत गौतम तथा भारतीय साहित्यकारों में थे—डॉ. महीप सिंह, प्रो. वी.डी. कृष्णन नांपियार, श्री प्रेमचंद्र कटोच (आई.ए.एस.), डॉ. कामता कमलेश, श्री महेश्वर दयालु गंगवार, डॉ. नगेंद्र कुमार, श्री महेश चंद्र द्विवेदी (आई.पी.एस.), श्री तरुण विजय (संपादक—पाञ्चजन्य), श्रीमती नादिरा जहीर बब्बर, डॉ. देवी शंकर अवस्थी (मरणोपरांत) आदि।

कार्यक्रम में केंद्रीय पेट्रोलियम राज्य मंत्री श्री संतोष गंगवार, मॉरीशस के उच्चायुक्त श्री दानीलाल शिवजी मुख्य अतिथि थे। □

'भूकंप शोध संकलन' के लेखक पुरस्कृत

अखिल भारतीय हिंदी प्रचार समिति ने कौलाचार्य जगदीशानंद तीर्थ को उनकी पुस्तक 'भूकंप शोध संकलन' के लेखन पर 'हिंदी साधक' की उपाधि से सम्मानित किया। भूकंप पर हिंदी में प्रकाशित यह पहली पुस्तक है।

समिति के साहित्य सचिव रवि कुमार गोला ने यह सम्मान प्रदान करते हुए बताया कि इस पुस्तक में भूकंप और पर्यावरण का विवेचन, भूकंप से सुरक्षित विश्व की सुरक्षित इमारतों और उनकी बनावट के साथ दिल्ली में भूकंप का इतिहास के साथ आनेवाले समय की चुनौतियों का भी उल्लेख किया गया है। □

सम्मान समारोह आयोजित

गत दिनों साहित्यिक-सांस्कृतिक मंच 'अभिव्यक्ति' एवं 'परिचय' के संयुक्त तत्त्वावधान में नई दिल्ली में प्रसिद्ध लेखिका एवं कवयित्री श्रीमती उर्मिल सत्यभूषण की षष्टिपूर्ति के अवसर पर एक सम्मान समारोह आयोजित हुआ। समारोह की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध विदुषी डॉ. सरोजिनी महिषी ने की।

मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ लेखिका श्रीमती दिनेशनंदिनी डालमिया उपस्थित थीं। मुख्य वक्ता थे केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो के निदेशक डॉ. राजकुमार सैनी। कार्यक्रम में वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार डॉ. शेरजंग गर्ग, वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. राजेंद्र गौतम, श्री राजगोपाल सिंह, श्री सूर्य प्रकाश, श्रीमती सविता चड्ढा, श्री केवल गोस्वामी, डॉ. अर्चना त्रिपाठी, डॉ. स्टेला एवं श्री इंदुकांत आंगिरस आदि ने अपने विचार व्यक्त किए।

इस अवसर पर लेखिका को 'अभिव्यक्ति' की ओर से सम्मानस्वरूप प्रशस्ति-पत्र, प्रतीक चिह्न एवं शॉल प्रदान किया गया। □

सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' पुरस्कृत होगी

कला-संस्कृति के विविध आयामों की सुरुचिपूर्ण पत्रिका 'कला समय' को सुसंपादन के लिए 'रामेश्वर गुरु पुरस्कार' प्रदान किया जाएगा। माधवराव सप्रे समाचार-पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की ओर से इस पुरस्कार के तहत पत्रिका के संपादक श्री विनय उपाध्याय को पाँच हजार रुपए की नकद राशि, शॉल, श्रीफल एवं प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया जाएगा। □

'मेरे सहचर' की पहली प्रति उपराष्ट्रपति को भेंट

१७ मई को उपराष्ट्रपति भवन में प्रख्यात साहित्यकार स्व. श्री शंकर दयाल सिंह के जीवन पर उनकी धर्म पत्नी डॉ. कानन बाला सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'मेरे सहचर' की पहली प्रति महामहिम उपराष्ट्रपति श्री कृष्णकांत को भेंट की

गई। पुस्तक 'पारिजात प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित है।

कार्यक्रम मे सर्वप्रथम स्व. श्री शंकर दयाल सिंहजी के चित्र पर माल्यार्पण किया गया। श्री शंकर दयालजी के सुपुत्र श्री रंजन कुमार सिंह ने आगंतुकों का स्वागत किया। सुप्रसिद्ध कथाकार श्रीमती नासिरा शर्मा ने 'मेरे सहचर' पर समीक्षात्मक टिप्पणी दी तथा शंकर दयालजी की सुपुत्री श्रीमती रश्मि सिंह ने पुस्तक के कुछ अंशों का वाचन किया। कार्यक्रम में श्रीमती सुमन कृष्णकांत, श्रीमती यशो राजलक्ष्मी, डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, डॉ. कर्ण सिंह, पूर्व केंद्रीय मंत्री श्री हरिकिशोर सिंह, केंद्रीय समाज कल्याण मंत्री श्रीमती मेनका गांधी, केंद्रीय श्रम मंत्री श्री सत्यनारायण जटिया, श्री टी.एन. चतुर्वेदी, श्री डी.पी. यादव, डॉ. बिंदेश्वर पाठक, श्री संतोष भारतीय, श्री कन्हैयालाल नंदन, श्री आलोक मेहता, श्री राजीव शुक्ल, सपा महासचिव श्री अमर सिंह प्रभृति राजनेता व विद्वान् उपस्थित थे। □

लोकार्पण

२२ अप्रैल को उत्तरांचल प्रेस क्लब, देहरादून में सुपरिचित लेखक श्री हेमचंद्र सकलानी के कहानी संग्रह 'इस सिलसिले में' का लोकार्पण संयुक्त रूप से डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश, डॉ. गिरजा शंकर त्रिवेदी, श्री विद्यासागर नौटियाल, श्री सुभाष पंत, वयोवृद्ध पत्रकार श्री सत्य प्रसाद रतूड़ी तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे वयोवृद्ध सांस्कृतिक कर्मी और गढ़वाल सभा के अध्यक्ष श्री वीरसिंह ठाकुर के कर-कमलों द्वारा हुआ।

इस अवसर पर प्रख्यात पत्रकार श्री राधाकृष्ण रतूड़ी, भारती पांडे, सुश्री उमा जोशी, श्री शशिधर भट्ट, रा.प्र. डोमाल तथा देहरादून के अनेक गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन श्री पद्मेश बुड़ाकोटी तथा श्री नरेश रतूड़ी ने किया।

★★

२७ अप्रैल को प्रधानमंत्री निवास में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने प्रसिद्ध साहित्यकार पं. विद्यानिवास मिश्र के जीवन के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह में उनकी पुस्तक 'रामायण का काव्यमर्म' और उनपर केंद्रित पुस्तक 'अमृतपुत्र' का लोकार्पण किया। समारोह की अध्यक्षता मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने की। संपूर्ण कार्यक्रम सांसद एवं विधिविद् डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के सान्निध्य में संपन्न हुआ। इस अवसर पर विशिष्ट वक्ता के रूप में केंद्रीय गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी भी उपस्थित थे।

समारोह के प्रारंभ में श्रीमती मालिनी अवस्थी ने गणेश वंदना गाई। आगत अतिथियों का स्वागत श्री प्रभात कुमार ने किया। कार्यक्रम का संचालन 'अमृतपुत्र' की संपादिका श्रीमती कुमुद शर्मा ने किया। अंत में प्रभात प्रकाशन के संचालक श्री श्यामसुंदर ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

समारोह में वरिष्ठ साहित्यकार सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी, कपिला वात्स्यायन, चित्रा मुद्गल, उमा शर्मा, गगन गिल, सुनीता जैन, रमेशचंद्र जैन, सीतेश आलोक, कन्हैयालाल नंदन, आलोक मेहता, अच्युतानंद मिश्र तथा बालकवि वैरागी, टी.एन. चतुर्वेदी, विजय कुमार मल्होत्रा, ब्रह्मानंद मंडल, डॉ. दीनानाथ तिवारी के अतिरिक्त साहित्य एवं कला जगत् की अनेक विभूतियाँ, पत्रकार एवं विद्वज्जन उपस्थित थे।

★★

८ मई को राजभवन, लखनऊ में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने सुविख्यात कवि व राजनेता श्री केशरी नाथ त्रिपाठी के सद्यः प्रकाशित काव्य-संग्रह 'आयु-पंख' का लोकार्पण किया। प्रख्यात मनीषी पं. विद्यानिवास मिश्र की अध्यक्षता एवं उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री राजनाथ सिंह के सान्निध्य में समारोह संपन्न हुआ।

श्री धर्मनाथ मिश्रा, श्रीमती सीमा भारद्वाज, कुमारी सीमा शर्मा, कुमारी रश्मि तथा श्री अरुण भट्ट ने स्वागत गीत, श्रीमती सरस्वती एवं श्री अशोक वर्मा ने 'आयु-पंख' की कुछ कविताओं को युगल गीतों के रूप में सुनाया। श्री राकेश आर्य, श्री सुभाष शर्मा और श्री सुधीर ने वाद्ययंत्रों पर उनका साथ दिया।

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली द्वारा आयोजित समारोह में विधान परिषद् के सभापति श्री ओम प्रकाश शर्मा, प्रदेश की चिकित्सा शिक्षा राज्यमंत्री डॉ. शीमा रिजवी, श्री पद्मेश गुप्त सहित देश भर के प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार एवं राजनेता उपस्थित थे। कार्यक्रम के अंत में पुस्तक के प्रकाशक श्री पवन अग्रवाल ने आगत अतिथियों का आभार प्रकट किया।

★★

१२ मई को हिंदी भवन, नई दिल्ली के सभागार में मध्य प्रदेश के युवा कवि राजीव शर्मा द्वारा लिखित एवं मेधा बुक्स द्वारा प्रकाशित काव्य संकलन 'धूप के ग्लेशियर' का लोकार्पण प्रख्यात कथाकार कमलेश्वर ने किया। कार्यक्रम में केंद्रीय श्रम मंत्री डॉ. सत्यनारायण जटिया, कवि व सांसद श्री बालकवि वैरागी, कवि डॉ. गोविंद व्यास, व्यंग्यकार श्री गोपाल चतुर्वेदी, श्री लक्ष्मी शंकर वाजपेयी आदि ने अपने विचार प्रकट किए।

समारोह में सर्वश्री पंकज बिष्ट, वीरेंद्र जैन, मुरारीलाल त्यागी, मधुर शास्त्री, हरस्वरूप भँवर, अमर गोस्वामी, प्रभाकिरण जैन, गायत्री कमलेश्वर, रामकिशोर द्विवेदी, प्रदीप पंत आदि उपस्थित थे।

★★

१९ मई को प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने श्री सी.पी. श्रीवास्तव द्वारा लिखित पूर्व प्रधानमंत्री स्व. लालबहादुर शास्त्री की जीवनी पुस्तक 'ए लाइफ ऑफ ट्रूथ इन पॉलिटिक्स' का हिंदी अनुवाद 'राजनीति में सत्यनिष्ठ जीवन' का लोकार्पण किया। इसके अनुवादक हैं श्री शंकर नेने।

प्रधानमंत्री निवास में आयोजित इस समारोह की अध्यक्षता विधिवेत्ता एवं सांसद डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने की।

★★

विगत दिनों चापदानी साहित्य मंच, हुगली के तत्त्वावधान में डॉ. चंद्रा पांडेय की दूसरी काव्य कृति 'आकाश कहाँ है' का लोकार्पण बँगला अकादमी, कोलकाता के सभागार में साहित्यकार नामवर सिंह ने किया। कार्यक्रम में डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, श्री केशव प्रसाद कायाँ के साथ-साथ अनेक साहित्यकार उपस्थित थे। कार्यक्रम का आरंभ ओमप्रकाश मिश्र और कल्पनाथ ठाकुर द्वारा कबीर के गीतों से हुआ। संचालन किया अरविंद चतुर्वेदी ने।

★★

विगत दिनों परिचय साहित्य परिषद्, दिल्ली के तत्त्वावधान में डॉ. हरिसिंह पाल के सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'मशाल जलती रहे' का लोकार्पण केंद्रीय श्रम मंत्री डॉ. सत्यनारायण जटिया की उपस्थिति में डॉ. राजेंद्र अवस्थी ने किया।

समारोह में साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ और डॉ. इंद्र सेंगर की समीक्षाएँ पढ़ी गईं। श्री मधुर शास्त्री, डॉ. जयपाल तरंग, डॉ. हीरालाल बाछोतिया और श्री मलिक राजकुमार के साथ अनेक साहित्यकार-पत्रकार भी उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अलका सिन्हा ने किया।

★★

गत दिनों दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में भगत सिंह विचार मंच द्वारा आयोजित गोष्ठी में कवि श्री विजयानंद अंशुक के पहले कविता संग्रह 'हादसा हो गया हूँ मैं' का लोकार्पण गोष्ठी के अध्यक्ष कवि श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ने किया।

समारोह में सर्वश्री विनय विश्वास, अरुण प्रकाश, महेश दर्पण, सतीश सागर, रामकुमार कृषक, भारतेंदु मिश्र, प्रताप सिंह आदि ने अपने विचार प्रकट किए।

★★

८ अप्रैल को मुंबई में डॉ. शोभनाथ यादव द्वारा संपादित समकालीन त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'प्रगतिशील आकल्प' का लोकार्पण वरिष्ठ साहित्यकार एवं विचारक श्री जगदंबा प्रसाद दीक्षित ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में दैनिक 'हमारा महानगर' के संपादक तथा प्रसिद्ध उर्दू कथाकार श्री साजिद रशीद उपस्थित थे। समारोह की अध्यक्षता मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. रामजी तिवारी ने की।

प्रमुख वक्ताओं में डॉ. सोहन शर्मा, डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी तथा डॉ. त्रिभुवन राय थे। समारोह का संचालन श्री हृदयेश मयंक ने तथा आभार श्री मधुराज मधु ने व्यक्त किया।

★★

गत दिनों हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि डॉ. नरेंद्र मोहन की लंबी कविताओं का मराठी अनुवाद 'मुक्काम बदलतांना' (अनुवादक डॉ. गणेशराज सोनाळे) का लोकार्पण औरंगाबाद में मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री रंगनाथ तिवारी ने किया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. भगतसिंह राजूरकर ने की। मुख्य अतिथि उर्दू के प्रसिद्ध शायर बशर नवाज थे।

★★

८ अप्रैल को लखनऊ में एक लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न हुआ। इसमें कार्यक्रम के मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश के वनमंत्री श्री राजधारी सिंह ने तीन पुस्तकों का लोकार्पण किया; जिसमें डॉ. रवींद्र नाथ की पुस्तक 'तुलसी साहित्य में सामाजिक चेतना' हिंदी में तथा डॉ. किशोरी शरण शर्मा की काव्य पुस्तक 'मिलि के दिया जलाई' और डॉ. राजेश्वरी शांडिल्य का समीक्षा ग्रंथ 'भोजपुरी लोकगीतन में गीति तत्त्व' भोजपुरी भाषा में थे। इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने अट्ठाईस व्यक्तियों को विभिन्न अलंकरणों से अंगवस्त्रम् और प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया।

□

'त्रिनिडाड' में कवि गोष्ठी व लेखन कार्यशाला

पिछले दिनों त्रिनिडाड में श्री प्रेम जनमेजय के संयोजन में दो साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किए गए। भारतीय दूतावास में आयोजित छठी कवि गोष्ठी की अध्यक्षता भारतीय उच्चायुक्त प्रो. परिमल कुमार दास ने की। इसमें त्रिनिडाड और टुबैगो के अनेक उभरते कवियों के साथ-साथ लगभग साठ श्रोताओं ने भी उत्साहपूर्वक भाग लिया, जिनमें सर्वश्री राजेंद्र भगत 'मेघ', सुमीता चक्रवर्ती ब्रूम्स, सिल्विया मूदी, कुबलाल सिंह, चेतराम महाराज, विवेक रघुननन, डॉ. आशा, नीतू महाराज, शलाना, मनोज बुद्धिराजा, रामदास, जैंसी संपत, डेफने पैरिस, सावित्री आदि ने कविता-पाठ किया।

दूसरे कार्यक्रम हिंदी साहित्य लेखन कार्यशाला, 'लेखक मंडल' का उद्घाटन भी प्रो. दास ने ही किया। इस अवसर पर सर्वश्री मंगल पटेसर, राजेश श्रीवास्तव, राजेनदई चेन, विनोद कुमार संदलेश आदि ने अपने विचार प्रकट किए।

□

संगोष्ठी संपन्न

१३ मई को 'सार्थक' मंच के तत्त्वावधान में एक विचार गोष्ठी मियाँवाली नगर (दिल्ली) में संपन्न हुई। इस अवसर पर श्री मलिक राजकुमार, डॉ. हरीश नवल, डॉ. नरेंद्र मोहन एवं डॉ. सादिक ने अपने विचार रखे तथा डॉ. हरीश नवल, डॉ. नरेंद्र मोहन, डॉ. स्नेह सुधा, डॉ. कामिनी बाली, डॉ. सुनीता श्याम एवं श्रीमती सुनीता अरोड़ा ने कविता-पाठ किया।

★★

१८ मई को महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के 'सबद निरंतर' कार्यक्रम के अंतर्गत 'कबीर : पुनर्विचार का समय' विषय पर साहित्य अकादमी, दिल्ली में विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. अशोक वाजपेयी की अध्यक्षता में एक समारोह का आयोजन किया गया।

इस विषय पर प्रमुख आलोचक डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, श्री नित्यानंद तिवारी, डॉ. रमेशचंद्र मिश्र एवं श्री महेंद्र बैनीवाल ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए।

इस अवसर पर अनेक साहित्यकार एवं पत्रकार उपस्थित थे।

★★

१८ मई को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। गोष्ठी में सुप्रसिद्ध कवि श्री अजित कुमार ने अपनी पसंद की कई कविताएँ सुनाईं, जिनमें भवानी प्रसाद मिश्र, अज्ञेय, रघुवीर सहाय, विनोद कुमार शुक्ल, मुक्तिबोध और श्रीकांत वर्मा की कविताएँ थीं।

□

साहित्यिक क्षति

गत २४ अप्रैल को प्रख्यात कथाकार श्री शैलेश मटियानी का दिल्ली के एक अस्पताल में निधन हो गया। वे गंभीर मानसिक रोग से पीड़ित थे। उनका जन्म १४ अक्तूबर, १९३१ को बाड़ेछीना (अल्मोड़ा) में हुआ था। उन्होंने 'इब्बू मलंग', 'चील', 'प्यास', 'मैमूद', 'शरण्य की ओर', 'दो दुःखों का एक सुख', 'अर्धांगिनी', 'छाक', 'माता', 'कुतिया के फूल' जैसी रचनाएँ हिंदी साहित्य को दीं।

□